भूमिका ।

इस श्री सुकुमाल चरित्र मूल संस्कृत ग्रन्थ की श्लोक संख्या ११०० है, मूल ग्रन्थ रचिता श्री सकल कीर्ति आचार्य हैं, भाषा वचनिका सम्वत् १९१८ में जयपुर नगर विषे पंडित नाथूलालजी ने लिखा है, उक्त वचनिका को मध्य देश भाषा में अतिसुगम कर बाबू ज्ञानचन्द्र जैनी ने सम्वत १९१७ विषे लाहौर नगर में छपवाई है ॥

अथ भाषा वचनिका कर्त्ता पंडित नाथूलाल की ओर से ।

चौपई—अर्हंत सिद्ध सूर उवझाय । साधु भारती गण समुदाय ॥
जैन धर्म सब मंगल रूप । मंगल दायक होहु अनूप ॥ १ ॥

दोहा—आदि अन्त मंगल करो, श्रीवृषभांक जिनेश ॥
जैन धर्म जिन भारती, हर संसार कलेश ॥ २ ॥

सवैया—ढुंढाहड़ देश मध्य जैपुर नगर सोहै । चारों वर्ण राह चलें आपनों सुधर्म की ॥
रामसिंह भूपति के राज मांहि कमी नांहीं । कमी कछु दृष्टि परे मानों निज कर्म की ॥
वैश्य कुल जैनी को पूर्व कृत पुण्य थकी । पायो यह खोलो अब मुदी दृष्टि भर्म की ॥
जैन बैन कान सुनो, आत्म स्वरूप मुनो । चारों अनुयोग भनो यही सीख मर्म की ॥ ३ ॥

चौपई—दोशी गोत दुलीचंद नाम । ताको सुत शिवचंद अभिराम ॥

ओंनमः सिद्धेभ्यः ॥ ओंकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यंध्यायन्ति योगिनः कामदंमोक्षदंचैव ओंकारायनमोनमः ॥ अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित सकलभूतल कलङ्का मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतुनोदुरितम्। अज्ञान तिमिर ...

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥ ओंकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यंध्यायन्ति योगिनः
कामदंमोक्षदंचैव ओंकारायनमोनमः ॥ अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित
सकलभूतल कलङ्का मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतुनोदुरितम्।
अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया चक्षुरुन्मीलितंयेनतस्मै
श्रीगुरवेनमः। परमगुरुभ्योनमः । परम्पराचार्य्यगुरुभ्योनमः । सकल-
कलुषविध्वंसकं श्रेयसांप्रवर्द्धकं धर्म्मसम्बन्धकं भव्यजीवप्रतिबोधक
मिदं शास्त्रंश्रीसुकुमालचरित्रैनामधेयं। अस्यमूलग्रन्थकर्त्तारःश्रीसर्व्व-
ज्ञदेवाः।तदुत्तरग्रंथकर्त्तारःश्रीगणधरदेवाः।प्रतिगणधरदेवास्तेषांवचो-
नुसारमासाद्यकर्त्ताश्रीसकलकीर्त्याचार्य्येण विरचितम्।
मङ्गलं भगवान्वीरो मङ्गलंगौतमोगणी।मङ्गलंकुन्दकुन्दाद्याः।
जैनधर्म्मोस्तु मङ्गलम् ॥ श्रोतारःसावधान तयाशृण्वन्तु।

नाथूलाल तास सुत भयो । जैनधर्म को शरणो लयो ॥ ४ ॥
श्रीदिवाण संग ही अमरेश । पाय सहाय पढ्यो श्रुतलेश ॥
कासालवाल सदासुख पास । फिर कीनो श्रुतको अभ्यास ॥ ५ ॥
श्री सुकुमाल चरित्र रसाल । देखि कही हरचन्द गंगवाल ॥
होय वचनिकामय जो येह । सब ही जन बांचे हित गेह ॥६॥
बिनव्याकरणपढ़ेनहिं ज्ञान । मूलग्रन्थको होय निदान ॥
ऐसे प्रार्थन तने बसाय । मूलग्रन्थको पाय सहाय ॥ ७ ॥
भावारथसौं लिखियो येह । देश वचनिका मय धरि नेह ॥
पांचों पढो पढावो सुनो । आतम हित कूं नीके मुनो ॥ ८ ॥
जो प्रमादवस तैं कछु यहां । भोलपने से मैंने कहा ॥
सो सब मूलग्रन्थ अनुसार । करियो बुधजन सुष्ठू विचार ॥ ९ ॥
उनवीस शत ठारह सार । सावण शुदि दशमी गुरुवार ॥
पूरण भई वचनिका येह । बांचो पढो सुनो धरि नेह ॥ १० ॥

दोहा—मंगलमय मंगल करण,वीतराग चिद्रूप ॥ मन वच तनकरि ध्यावते,होहे त्रिभुवन भूप ॥ ११ ॥

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अथ श्रीसुकुमालचरित्र भाषा।

(सकल कीर्ति आचार्य्यकृत)

मंगलाचरण।

नमः श्रीविश्वनाथाय, पञ्चकल्याणभागिने।
महते वर्द्धमानाय, नित्यानंदगुणाब्धये॥

(मंगलाचरण का खुलासा अर्थ)

मैं जो सकल कीर्ति नामा आचार्य्य हूं सो श्रीवर्द्धमान तीर्थंकर के ताईं नमस्कार करूं ह
कैसे हैं श्रीवर्द्धमान तीर्थंकर श्रीविश्वनाथाय कहिये शोभायमान तीन लोक के स्वामी हैं अथवा
स्थावर जंगम सकल जीवों के ईश्वर हैं और पंच कल्याणभागिने—कहिये गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान
और निर्वाण ऐसे पचकल्याणक विषे जिनको इंद्रादिक देव सेवे हैं, महते कहिये सबों के पज्य हैं

अथवा चतुर्विध संघ विषे महान श्रेष्ठ हैं, और नित्यानंदगुणाश्रये–कहिये शाश्वते आनंदरूप जे अनतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य, आदि अनन्तानन्त गुण उनके समुद्र हैं ॥

भावार्थ–तीन भुवनकेस्वामी,पचकल्याणककेनायक,अनंत गुणोंके समुद्र,जोअंतिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमान कर प्रकाश्या हुआ जो सत्यार्थ धर्म,सो कैसा है वह धर्म तीन जगतकी लक्ष्मी,और सुखकी खान,और इस पंचमकाल विषे मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकाओंकर आचरणकिया हुआ प्रवर्त्ते है,और पंचमकालके अंत पर्यंत रहेगा॥ और जिन्हो ने वचन रूप किरणों कर सर्वथा एकांत मतरूप जो अज्ञान सोई भया अंधकार का समूह उसे मूल से उच्छेद कर भव्य जीवों को मोक्षकी प्राप्ति के अर्थ रत्नत्रय रूप मुक्ति का मार्ग प्रकट दिखाया,और श्री कहिये शोभायमान सम्यग्ज्ञानकी वृद्धिसे देवों ने जिनका वर्द्धमान नाम प्रसिद्ध किया, और अंतरंग विषे क्रोधादिक वैरियों के जीतने से वीर अथवा महावीर ऐसा नाम पाया, और स्वयं कहिये परोपदेश विना आपही आप सत्यार्थ मार्ग को जाना, इससे सन्मति ऐसा नाम कहाया, इस प्रकार वर्द्धमान, वीर, महावीर,सन्मति इन चार नामके धारक, धर्म रूप चक्रवर्तिपद के नायक,त्रिजगत पूज्य अंतिम तीर्थंकरको मैं नमस्कारकरूं हूं,और जो भगवान् शुक्लध्यान रूप खड्गकर वरजोरी से घाति कर्म रूप वैरी को नाश कर लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान को पाय चतुर्थ काल की आदि विषे भोले भव्य पुरुषों के कल्याण की सिद्धि के अर्थ मुनि श्रावक के भेद कर दो प्रकार

धर्म दिव्य ध्वनिकर उपदेशा ऐसा जो प्रथम तीर्थंकर श्रीवृषभदेव उसे नमस्कार करूं हूं, सो कैसा है वह धर्म ? स्वर्ग मुक्तिके सुख का दाता है, और अजितनाथ को आदि दे पार्श्वनाथ पर्यंत जे अवशेष बाईस तीर्थंकर हैं उनके चरण कमलों का सेवन करूं हूं, काहे के अर्थ ? तिन के अनत ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति के अर्थ, कैसे हैं वह २२ तीर्थंकर ? सर्व भव्य जीवों के हित विषे उद्यमी हैं, और इंद्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादिक कर वंदनीक पूजनीक अनंत गुणों के समुद्र हैं, और संसार से भयभीत जे भव्य जीव उनका शरण आधार हैं, और सर्व मंगल के कर्त्ता लोक विषे सर्वोत्तम हैं, और पूर्व पश्चिम विदेह विषे विद्यमान सीमंधरादि वीस तीर्थंकरोंके चरण कमलोंको मैं अपने हृदय विषे स्थापन करूं हूं, सो कैसे हैं वह भव्य जीवोंके मोक्ष सुखके अर्थ सत्यार्थ मार्ग को प्रवर्त्तावें हैं और अनंत गुणोंके समुद्र दिव्य ध्वनि कर मनुष्यों को तथा तिर्यंचों को संबोधे हैं, और त्रिकाल गोचर जे अनंत केवली हुए, आगे अनंतानंत होवेंगे, और वर्तमान विषे प्रवर्त्ते हैं, उन सर्व को स्तवू हूं, वंदूं हूं, नमस्कार करूं हूं, काहे के अर्थ सारभूत आत्मज्ञानकी सिद्धि के अर्थ, और जो महान ध्यान रूप खड्ग कर कर्म नो कर्म रूप वैरियों का नाश कर, सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों कर सहित, और जिन्होंने मुक्ति रूप साम्राज्य पद अंगीकार किया, और लोक शिखर पर है आवास जिन का, इंद्र नरेंद्र नागेंद्रों कर वंदनीक, ऐसे अनंत सिद्धपरमेष्ठीको सिद्ध गति कीप्राप्तिके अर्थ सदाकाल नमस्कार करूं हूं, और जो छत्तीस गुणोंकर सहित

और संसार समुद्र विषे भव्य जीवों के तारने को जहाज समान और परम उत्कृष्ट पंचाचार को
मोक्ष के अर्थ आप आचरण करे हैं, और विनयवान शिष्यों को आचरण करावे हैं, ऐसे आचार्य
परमेष्ठी को पंचाचार की सिद्धि के अर्थ मैं नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं आचार्य परमेष्ठी? विना हेतु
सकल जीवों के उपकार करन हारे हैं, और जे ग्यारह अंग चौदह पूर्व रूप शास्त्र समुद्र को आप पार
भये, और अन्य योगीश्वरोंको पारकरण हारे हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठीके चरणारविंद को समस्त श्रुत
के लाभ के अर्थ और निर्वाण पद की प्राप्ति के अर्थ नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं उपाध्याय परमेष्ठी ?
त्रिकालदर्शिनी प्रज्ञा जो बुद्धि सोई भया जहाज उसका है आश्रय जिनके, और सम्यग्दर्शन
ज्ञान चारित्रमय अमौलिक धन उसके ईश्वर, और जो शीत काल विषे नदियों के तट पर, ग्रीष्म विषे
पर्वत के शिखर ऊपर, और वर्षा काल में वृक्षों के नीचे, ध्यान धरते महान घोरवीर तप के धारण
धर्म शुक्ल ध्यान कर निरंतर मोक्ष का साधन करते पर्वतों की गुफा विषे, दुर्गम स्थान विषे, वा
निर्जन बन विषे, सिंह समान निर्भय तिष्ठे हैं, ऐसे जो सर्व साधु परमेष्ठी उनको मैं नमस्कार करूं हूं,
कैसे हैं वह साधु परमेष्ठी निरंतर आत्म हित विषे विद्यमान हैं, सो ऐसे यह पंचपरम गुरु ज्ञानी जनों
कर वंदनीक स्तुति करने योग्य इस शास्त्र के आरंभ के सिद्धिके अर्थ मुझको अपने उत्कृष्ट गुण देवो,
और जो महान कवितादि गुणोंकर परिपूर्ण, द्वादशांग श्रुत समुद्रके पार को प्राप्त भये, ऐसे जे गौतमादि

गणधर उन का आत्मीक बुद्धि के अर्थ ध्यान करूं हूं, कैसे हैं वह ध्येय कहिये ध्यायवे योग्य हैं, और जिनके प्रसाद कर काव्यों की रचना करने विषे समर्थ मेरी बुद्धि अति निर्मल भई, और चारित्र के आचरण विषे पवित्र भई प्रवीण भई ऐसी जिनेंद्र भगवान् के मुख कमल विषे निवास करने वाली जिनबाणी उसे मैं स्तवूं हूं, वंदूं हूं, नमस्कार करूं हूं, कैसी है वह जिनवाणी तीन जगतके जीवों को माता समान उपकार करनहारी है, और तत्त्वों के समस्त अर्थों की दिखावनहारी है, जिनेंद्र भगवान् की दिव्य ध्वनि से अर्थ रूप ग्रहण कर गणधर देवों ने जिन की अंग, पूर्व और प्रकीर्णक रूप रचना करी है, और प्रत्येक बुद्धि ऋद्धि के धारक योगीश्वरों कर श्रुत केवलियों कर धारण किये जे सर्व अर्थ उनके प्रकाशक और जिनेंद्र भगवान् कर कहे सांचे अर्थ तिन को ज्ञानादि गुण की प्राप्ति के अर्थ नमस्कार करूं हूं ॥ इस भांति अरहंत, सिद्ध, और केवली के भाषे द्वादशांग सिद्धांत, और आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु गणधर श्रुतकेवली आदि जे परम गुरु, इनको मंगल के अर्थि मैंने नमस्कार किया. स्तवन किया, प्रार्थना करी, कैसे हैं पंचपरमगुरु ? सर्व मंगलों के कर्त्ता और अपमंगलों के विनाशक हैं सो वह सर्व मंगल करो और मल जो पाप उसका नाश करो समस्त विघ्नों को दूर करो और शास्त्र के प्रारंभ की पूर्णता करो इष्ट की सिद्धि करो ॥

(यहां आचार्यने निर्विघ्न शास्त्रकी समाप्तिके अर्थ आदि विषे मंगलाचरण रूप नमस्कार किया है)

अब श्री महामुनि सुकुमाल को नमस्कार करे हैं।

अब मैं श्री महामुनि सुकुमाल का चरित्र वर्णन करने से प्रथम श्री सुकुमाल महामुनि को मन वचन काय कर नमस्कार करूं हूं, किस लिये नमस्कार करू हूं ? जो शक्ति सुकुमाल मुनि विषे भई सोई शक्ति कहिए सामर्थ्य मेरे विषे भी प्रकट होहु, इसलिये मैं श्री महामुनि सुकुमाल स्वामी को नमस्कार करूं हूं कैसे हैं। श्री महामुनि सुकुमाल महाधीर हैं और कामदेव समान मनोज्ञ रूपके धारक महापराक्रमी महा उत्तम वैश्य कुल विषे उत्पन्न भये और महा लक्ष्मी कर शोभायमान जगत विषे मानने योग्य महासाहसी और महाघोर उपसर्ग के जीतन हारे क्षायिक सम्यक्त्व आदि अनेक गुणों के समुद्र हैं और सुकुमाल वैश्य कुल रूप आकाश विषे सूर्यसमान उद्योतकारी भये और शिरसके फूलसमान अत्यंत कोमल है अंग कहिये शरीर जिनका महाघोर उपसर्गों के सहने को वज्रसमान अतिअभेद्य और इंद्रसमान दिव्य भोगों के भोगने वाले, सुख रूप समुद्रके मध्य प्राप्त भये और योग जो ध्यान उससे दुर्निवार सकल परीषहों के जीतनहारे स्यालनीकृत घोरउपसर्ग तीन दिनपर्यंत सहकर श्रीसुकुमाल मुनि समभावों से प्राण त्याग कर सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त भये ऐसे जो सुकुमालमुनि मैं उनका चरित्र कहूंगा और इसही चरित्र

के कहने कर सूर्यमित्र महामुनिके सिद्धांतों के पठनादिकों का जो फल प्रगट भया वह भी कहूंगा और इस ही ग्रथके मध्य अग्निभूत वायुभूत आदि बहुत महान पुरुषोंकी जो शुभ कथा हैं वह भी वर्णन करूंगा इत्यादिक श्रेष्ठ और प्रवीण महापुरुषोंके समूह कर परिपूर्ण जो यह चरित्र इसके सुनने कर बुद्धिवान पुरुषों के श्रुति का अभ्यास आदि अर्थका चितवन और धर्मविषे धर्मका फल विषे प्रीति, संसार देह भोगों विषे उदासीनता आदि अनेक गुण बृद्धिको प्राप्त होय हैं और पाप कर्म सहित रागद्वेषआदि सकल दोषों का निराकरण होय है, हे कल्याण के अर्थी भव्य जीवहो, तुम इस चरित्र को श्रेष्ठफल पूर्वोक्तप्रकार जान इस चरित्रको सुनों मैं आगमके अनुसार तुमको कहूं हूं ॥

अथ ग्रन्थ प्रारम्भः

१ प्रथम अधिकार

(नागश्री को धर्मलाभ)

अथानंतर–असंख्यात द्वीपसमुद्रों के मध्यविषे जबूवृक्षकर चिन्हित सार्थक नामको धारण करता हुआ जंबूनामा जंबूद्वीप शोभे है कैसा है जम्बूद्वीप लाख योजनका है विस्तार जिसका और लवण समुद्ररूप वस्त्र कर वेष्टित मानो चक्रवर्ती है, कैसा है जंबू द्वीप और कैसा है चक्रवर्ती ? द्वीप विषे तो अनेकदेव अनेक उत्तम पुरुष और समस्त विद्याधर सेवे हैं, और चक्रवर्ति को छह खंड निवासी देव और महा मंडलेश्वर आदि अनेक उत्तम पुरुष सेवे हैं और द्वीप विषे तो अनेक नदी पर्वत गहन देश वन आदि दुर्गम स्थान हैं और चक्रवर्त्ती अनेक नदी पर्वत देश गढ़ इनका नायक है, तिस द्वीपविषे लाख योजन ऊंचा और षोडश जिन मंदिरों कर महा रमणीक, सुदर्शननामा मेरु इंद्र समान शोभे हैं मेरु तो जल कर भरे सरोवर और गरुड आदि

पक्षी, तिन कर शोभायमान और इन्द्र अनेक अप्सरा अनेक देवों कर मंडित है, और मेरु तो ध्यान में लवलीन जे चारणमुनि तिन कर सेवनीक है, और इंद्र चारण गंधर्व आदि अनेक गुणीजन, तिन कर सेवनीक है, तिस मेरु की दक्षिण दिशा विषे पांच सै छब्बीस योजन छह कला के विस्तार कहिये दक्षिण उत्तर चौडा भरतक्षेत्र है, सो कैसा है भरतक्षेत्र ? धर्म और सुख इनकी खान है, और खेचर कहिये विद्याधर, भूचर कहिये भूमिगोचरी, और अमर कहिये देव, तिन कर भरा है, और अनेक धर्मात्मा पुरुषों कर भरा है, मानो धर्मका निवासही है, तिस भरतखड के मध्य आर्य खंड है, कैसा है ? अर्हंत कहिये तीर्थंकर, वा सामान्य केवली, और चक्री कहिये नवनिधि चौदह रत्न षट्खंडधरा का मालिक चक्रवर्त्ती, और आदि शब्दसे बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, त्रेसट श्लाका पुरुष, चौवीस कामदेव, इत्यादिकों कर भूषित है और धर्मात्मा पुरुषों के स्वर्ग और मोक्षके साधनका आदिहेतु कहिये मूल कारण है ॥ भावार्थ–आर्य खंड विषे उत्तम कुल विषे जन्म पाये विना अन्य क्षेत्रों से मोक्षका लाभ नाहीं, तिस आर्यखंड के मध्य नाभि समान अंगनामा देश शोभे है, कैसा है ? जिस के चार दरवाजे होय सो तो पुर, और पत्तन कहिये जिस विषे रत्नादिककी खानि होय, और जिस के एक ओर नदीका बेट होवें, एक ओर पर्वत का बेट होवे, बीचमें शहर बसे, उस की बेट संज्ञा है, और अद्रि कहिये पर्वत, बन, अनेक बाग, और जिस

के चारों तरफ कांटों की वाडि होय उस की गाम संज्ञा है, इत्यादिकों कर, पूरित कहिये भरा है, और तेरह प्रकार चारित्र के धारक महामुनि, धर्मात्मा, क्षुल्लक श्रावक, और असंयमी सम्यक्ती गृहस्थ श्रावक, इन कर निरंतर शोभायमान है, उस देश विषे चंपापुरी नगरी ऊंचा कोट, ऊंचे दरवाजे, और चारों ओर अगाध खाई कर अयोध्या समान शोभे है, और धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि श्रावक और धर्मात्मा शूरवीर सुभटों कर भरी है, और अनेक जिन मंदिरों विषे उत्साह शास्वते होय हैं, भव्य जीव स्वाध्याय, पूजन, गान नृत्यादि कर पुण्यका उपार्जन करें हैं, उस पुरीका सूर्य समान प्रतापी, धर्मात्मा, पुण्यवान, ज्ञानी, अति चतुर चंद्रवाहन नामा राजा, उस के लक्ष्मीमती नामा राणी, प्राणों से भी अति प्यारी शुभ लक्षणों कर परिपूर्ण साक्षात् लक्ष्मी समान होती भई और उस राजा के जिनमत से पराङ्मुख, खोटे, शास्त्रों का ज्ञाता मिथ्यामद कर उद्धत, अतिरौद्र, नाग शर्मनामा पुरोहित होता भया, उसके सौभाग्य की खानि त्रिदेवीनामा ब्राह्मणी स्त्री भई, उनके साक्षात् लक्ष्मीसमान नागश्रीनामा पुत्री विवेक, रूप, सौभाग्यकर शोभायमान और ज्ञान, विज्ञान आदि गुणों कर शोभायमान, देवांगना समान शोभा को धरती भई एक दिन नागश्री ब्राह्मणों की कन्याओं सहित नगरके बाहर नागके मंदिर मूढ़ बुद्धि कर पुण्यकी प्राप्ति के अर्थ नाग के पूजने को गई थी, कैसी है नागश्री ? शुभकर्मकी करणहारी क्रीडा में है उत्साह जिसके तहां पुण्य

के उदय कर सूर्यमित्र, अग्नि भूत हैं नाम जिनके ऐसे दोय मुनि देखे, कैसे हैं, मुनि ? पुण्य कर्म के कारण हैं,और शुभ लक्षणों कर संयुक्त, और सत्पुरुषों को निर्मल धर्मोपदेश के दायक, अनेक ऋद्धि कर मंडित, महाप्रवीण, द्वादशांग श्रुतसमुद्रके पारगामी, और सब जीवों के हित विषे उद्यमी और रत्नत्रय रूपही है धन जिनके, ध्यान और अध्ययन जो जिन बाणी का पठन, उस विषे सावधान है, शुद्ध प्राशुक शिलापर पद्मासन तिष्ठे हैं मुनियों के समीप जाकर मस्तक नवाय मुनि के चरणारविंद को नमस्कार कर भोलेपने से मुनियो के समीप बैठी. सूर्यमित्र मुनि नागश्री की आगामी शुभगति होनी जान और उसके पूर्वभवों को जान कर कोमल बाणी कर कहते भये, हे पुत्री तू गृहस्थ का धर्म अंगीकार कर, कैसा है धर्म ? स्वर्गनिवास को आंगण समान है ॥

भावार्थ-धर्मके प्रसाद से स्वर्ग की प्राप्ति तो बिना उपाय ही होय है, धर्म के सेवन कर इस भव विषे और परभव विषे मनोवांछित सुख उपजे है, इस धर्म के प्रसाद कर तीनलोक संबंधी इंद्र, नरेंद्र, नागेन्द्र के सुख होय हैं, धर्मात्मा जीवो के सैकडों मनोरथ बिना यत्न स्वयमेव ही सिद्ध होय हैं, मदिरा मांस और मधु कहिये शहत इन का त्याग कर और जूवा आदि सप्तव्यसनों का त्याग कर, और जीवों की दया करनी, सांच वचन बोलना, चोरी का त्याग करना, शीलव्रत पालना, और परिग्रह प्रमाणीक राखना, इन पंच अणुव्रत

के आचरण कर गृहस्थ का धर्म होय है, इस से व्रती धर्मात्मा जीव धर्म के फल कर देव लोक को प्राप्त होय हैं और यह आत्मा अव्रती पाप के उदय कर नरकगति तिर्यंचगति को प्राप्त होय है, इस भांति जान जे सुखके अभिलाषी जीव हैं उन को बारह अविरति कामचेष्टा, पांचों इंद्रियों के विषय, और खोटे आचरण, इनका त्याग कर सांचेव्रत ग्रहण करने योग्य हैं, यह वचन मुनि के सुन नागश्री बोली हे तात! सुखके अभिलाषी जीव जिनव्रतों को धर्म के अर्थ आचरण करे हैं वह व्रत कौनसे हैं सो मुझे कहो तब सूर्यमित्र मुनिराज बोले, हे पुत्री, व्रतों का किंचित् स्वरूप कहूं हूं सो तू आत्महित के अर्थि सुन, सकल त्रसजीवों को मन वचन काय कर चित्त विषे निज समान धारण कर, सब जीवों के हितकारी प्रथमही अहिंसा अणुव्रत ग्रहण करना, जैसे सुख के अर्थि शुभ क्रिया का जो आचरण सोयश का करनहारा होय है, तैसे समस्त जीवों को अभयदान का दायक ऐसा जो अहिंसा अणुव्रत सो समस्त व्रतों का मूलकारण है॥

भावार्थ–एक दया बिना सकल क्रिया आचरण और व्रतों का धारण करना निष्फल है, क्योंकि तीन लोककी राज्य संपदा से भी समस्त जीवों को अपना अपना जीतव्य अत्यंत प्रिय है॥

भावार्थ–प्राणों का वियोग भये पीछे तीन लोककी संपदा कौन भोगवेगा? इस लिये हे पुत्रि, आदि विषे अहिंसा अणुव्रत प्रधान है, और इस अहिंसा अणुव्रतविषे ही व्रतों की रक्षा के अर्थि

वडका वडवाला, पीपल की गोल, ऊमर, कठूमर, और पाकर फल इन पंच उदंबरों कर सहित मदिरा मांस और मधु कहिये शहत, यह ज्ञानी जीवों को विष समान जान त्याग करने योग्य हैं, सो श्रावक के यही आठ मूल गुण हैं, और मदिरा मांस शहत और पंच उदंबर इनके भक्षण विषे लपटी जे जीव हैं, उनके दया रूप बुद्धि का तो लेश भी नहीं है, और दया रूप बुद्धि बिना समस्त जीवों की दया है मूल जिस में ऐसा जो दया मई धर्म उसका विचार कैसे होय ॥

भावार्थ–जिसके अंतरंग विषे दया होगी सोई पुरुष जीवोंकी रक्षा करेगा, और पापी निर्दयी है सो जीवों की रक्षा कैसे करेगा ? और ज्ञानी जीवों को जूवा आदि सात व्यसन शीघ्र ही त्याग करने योग्य हैं, कैसे हैं सात व्यसन ? सकल पापों की तो खानि है, और नरक के मार्गके दिखाने हारे हैं, इन व्यसनों के त्याग से ही जीवों को लाभ होय है, सोई नाटक समयसार विषे कहा है,

दोहा–जुवा खेलन मांसमद, वेश्या विसन शिकार।
चोरी पर रमणी रमण, सातो विसन निवार ॥

जब व्यसनासक्त जीवोंके दया और सांच आदिगुण कभी भी नहीं होंय तो दया और सांच

बिना मनुष्यों के अहिंसादिक व्रत और उत्तम क्षमादिक धर्म कैसे उत्पन्न होंय ? जैसे जूवा आदि सप्तव्यसनका त्याग किया तैसेही धर्मात्मा पुरुषों को अहिंसा व्रतकी विशुद्धता के अर्थ सकल जगत् विषे निंदनीक जो रात्रि भोजन तिसका भी त्याग करना योग्य है, जो अपने प्राणों का त्याग होय तो भला ही हो, परन्तु प्राणियों की रक्षा वास्ते रात्री भोजन तो कदाचित् भी नहीं करना क्योंकि जे अज्ञानी जीव रात्रि विषे भोजन करे हैं उनके त्रस जीवों की राशिके भक्षण से मांस भक्षण का त्याग कैसे होय ? और दयाव्रत भी कहां से पले ?

भावार्थ–जिसने रात्रि भोजन किया उसने तो मांस ही भक्षण किया, देखो अन्यमत विषे भी ऐसा कहा है, "कि रात्रि विषे अन्न तो मांस समान है, और जल रुधिर समान है" इस लिये अहिंसादि व्रतों की रक्षा के अर्थ रात्रि भोजन का त्याग अवश्य ही करना और अनंतानंत जीवों के पुंज ऐसे जे अदरक आदिलेय कंद उनका औषधि के निमित्त भी ग्रहण नहीं करना कैसे हैं जमीकंद ? समस्त जगत् विषे निंदनीक हैं, और मूलीआदिक का भी भक्षण नहीं करना यह भी अनेक जीवराशि के पुंज हैं, और जे जीव रसना इंद्रियके विषय के लोलुपी अनंतकाय जे अद-रक आदि कंदमूल तिनको भक्षण करेहैं उन जीवों के अनंतानंत जीवराशि के भक्षण से दयामयी धर्म कहां है ? हे पुत्रि, अथाणा और बोरआदि फल और नवनीत कहिये लूण्यां घृत (मक्खन)

इत्यादिक जे हैं ते कीड़े लट आदि त्रस जीवों कर भरे हैं महानिंद्य हैं, यह ज्ञानी जीवों के भक्षण योग्य नहीं हैं, सोई समयसार नाटक में कहा है ॥

कवित्त—बोरा घोलबड़ा निशिभोजन बहुवीजा बैंगन संधान।
बड पीपल उमर कठूमर पाकरफल जो होय अजान॥
कंदमूल माटी विष आमिष मधु माखन अरु मदिरा पान।
फल अतितुच्छ तुषारचलित रस ये जिनमत बाइस अखान॥

और असंख्यात बादर सूक्ष्म जीवों की हिंसा का कारण अनछाणा जल धर्मात्मा जीवोंको कभी भी पीने योग्य नहीं है, कैसा है अनछाणा जल ? बहुत दुःख और पाप तिनका आकार कहिये खानि है, सोई प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में कहा है ॥

चौपाई—बिन छानो अंजुलि जलपान। इक घटतैं कीनो जिन न्हान॥
ता अघका हमको नहिं ग्यान। जानत हैं केवलि भगवान॥

इत्यादि पूर्वे कहे और बैंगण, मतीरा, (तरबूज) कोहला (मीठा कद्दू) (कांसीफल) आदि बडे

फल असंख्यात त्रसजीवों की हिंसाके कारण हैं सो धर्मात्मा जीवों को अहिंसाव्रत की रक्षाके वास्ते भक्षण करने योग्य नहीं हैं, अणुव्रती धर्मात्मा पुरुष हितकारी, प्रामाणिक सारभूत, पुण्य के मूल परजीवों के श्रवणों को अति मिष्ट, और धर्मकारक ऐसे सत्य वचन बोलें, और सत्पुरुषों कर निंदनीक ऐसा असत्य वचन नहीं बोलें, सत्यवचन के बोलनेसे सत्पुरुषों की कीर्ति लोक विषे फैले है, और तीनलोक की लक्ष्मी स्वयमेव प्राप्त होयहै, और विवेक काहये भेद विज्ञान तिसकर भली बुद्धि का प्रकाश होय है, और सकल लोक विषे वचनकी प्रमाणता होय है, और झूठ वचन के बोलने से बुद्धि का नाश होय है, अपयश फैले है, और सर्व जीवों के अविश्वासका पात्र होय है, और राजादिकों से होठ, पांव, नाक, कान, आदि का छेद रूप दंड पावे है, और अचौर्यव्रत की रक्षा के अर्थ बिना दी हुई और मार्ग में पडी भूली जाती रही पराई वस्तु को काला नाग समान जान ग्रहण नहीं करनी, हे पुत्रि परद्रव्य के चुराने से चोर जे हैं, वह इस भव विषे तो वध, बंधन, कर्ण नाशिका छेदनादिक दुःख पावे हैं, और पाप कर्मके उदय से परभवविषे नरकादि गति के असह्य दुःख भोगवे हैं ॥ भावार्थ–माता, पिता, पुत्र, स्त्री, बहिन, भाई, सज्जन, परिजन, नौकर आदि कोई भी चोर के सहाई नहीं होय हैं, चोर अकेलाही इस लोक परलोक संबंधी दुःख भोगवे हैं, अब चौथा अणुव्रत ब्रह्मचर्य का पालनवाला अपनी विवाहिता स्त्रीबिना समस्त परस्त्रियों को मन, वचन, काय

कृत, कारित, अनुमोदनाकी शुद्धता कर माता, बहिन पुत्री समान देखे है, और कुशील, परस्त्री लंपट पुरुष इस भव विषे तो वध बधन पीलन हस्त कर्ण नाशिकादि छेदन और धनका क्षय आदि दुःखोंको प्राप्त होय है और परभव विषे सातवें नरक जावे है, परिग्रह प्रमाण नामा पंचम अणुव्रत की प्राप्ति के अर्थ लोभरूप वैरीका नाश कर ज्ञानी जीवों ने क्षेत्रआदि दश प्रकार बाह्य परिग्रह की थोड़ी संख्या राखनी। भावार्थ--जितने परिग्रहसे अपना धर्म सधे,और परिणामों में आकुलता नहीं होय, ममत्व का अभाव होय उतनी तो अंगीकार करे,और अव शेष परिग्रहका परित्याग करे,हे पुत्रि,कहे जे यह पंच अणुव्रत उनको धर्म और सुखके अर्थ तू अंगीकार कर, ग्रहण कर, कैसे हैं,यह पंच अणुव्रत? इस पर्याय में तो देवलोक संबंधी सुखों के साधक हैं और परंपराय निर्वाण सुखके साधक हैं सो जे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष शोभायमान हैं वह सुख और गुणों के भंडार ऐसे जे पंच अणुव्रत तिन को मन, बचन काय की शुद्धता कर पाले हैं वह भव्य जीव अच्युत स्वर्गपर्यंत अनुपम सुखों को भोग कर निरंतर निराकुल सुखों की खानि जो पंचमगति कहिये निर्वाण उसको प्राप्त होय हैं॥

हे ज्ञानी पुरुष हो! इस भांति जान कर सारभूत परमोत्कृष्ट स्वर्गमोक्ष संबंधी सुखके कारण और जिनेंद्र भगवान कर कहे ऐसे पंच अणुव्रत तिनको सदाकाल आचरण करो, और धर्मरूप वृक्षके मूल-समान और तीन लोक संबंधी सारभूत सुखों के देनहारे ऐसे पंच अणुव्रतों के आचरण विना क्षणभंगुर

अपनी आयुविषे एक घड़ी मात्र भी अपने हित के अर्थी पुरुषों ने वृथा नहीं गुमावनी ॥

भावार्थ–आयु तो क्षणभंगुर है, इस लिये व्रत धारण कर आयु को व्यतीत करे, तो मनुष्यभव सफल होय देवलोकके सुखपाय कर्मों का क्षय कर निर्वाण को प्राप्त होय ॥

सो ये व्रतधारण कर मनुष्य पर्याय सफल करनी फिर यह अवसर मिलने का नहीं ऐसा उपदेश है ॥

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्यविरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथकी देशभाषामय वचनिका विषे नागश्रीके धर्म को लाभ वर्णन नाम प्रथम सर्ग समाप्त भया ॥

२ दूसरा अध्याय

(अणुव्रतों के विरुद्ध (वरखिलाफ) पापों की कथायें)

चौपाई–जे देहैं सांचो उपदेश। तिहुजगजन बंधव परमेश॥
ते सव साधु अमल गुणगेह। देहु मोहि निज गुणधर नेह॥

अथानंतर–सो नागशर्म ब्राह्मण की पुत्री नागश्री, सूर्यमित्रमुनि के चरणारविंद को नमस्कार कर, मुनिके उपदेश से सम्यग्दर्शन सहित श्रावक धर्म संबंधी पंच अणुव्रतों को अंगीकार करती भई, व्रतोंको ग्रहण कर नागश्री अपने घर जानेको सन्मुख भई, तब अवधि ज्ञानके बल से शुभाशुभ होनहारके जानने हारे ऐसे सूर्यमित्र मुनि नागश्रीको ऐसी शिक्षा देते भये, कि हे पुत्रि, यदि तेरा पिता बलात्कार सवथा व्रतों को छुडावेगा तौ भी मत छोडियो, कैसे हैं व्रत? देवों को भी दुर्लभ हैं॥

भावार्थ–देवों के किसी काल में भी व्रतों का ग्रहण होय नहीं सम्यग्दृष्टि जीवों के निरंतर यह विचार रहे है, कि हमारे देव पर्याय की थिति कब पूर्ण होवगी तब हम मनुष्य पर्याय पाय पंच

महाव्रत अथवा अणुव्रतों को धारें, यहां तो अव्रत संबंधी महान् घोर दुःख है, अथवा चार गति संबंधी चोरासी लाख योनि विषे भ्रमते देवों के सुख तो अनंतवार भोगे, और सम्यग्दर्शन सहित व्रतों का धारण एक वार भी नहीं भया, सो व्रतों का पावना महान दुर्लभ है जिस से व्रत धर्म के आचरण करने कर ज्ञानी जीवों के स्वर्ग मोक्ष की संपदा, और लोक विषे मान्यपणा, और निर्मल यश आदि मनोवांछित सुख पाइए हैं, और व्रत भंग संबंधी अति पाप के उदय कर अधम नीच मनुष्य इस भव विषे तो निंदा, क्लेश, आपदा को भोगे हैं, और परभव विषे नरक निगोद आदि दुर्गतिको प्राप्त होयहैं, हे पुत्रि ! जो तू पिता के हठ से व्रतों के धारण करने को असमर्थ होय तो यहां आय के व्रत मुझ को वापिस दे जाना मुझ को सौंपे बगैर अन्यथा व्रतों को मत छोड देना, नागश्री ने कहा, हे तात ! समस्त जीवों को हितकारी जे तुम्हारे बचन उनके अनुसार ही करूंगी। ऐसे कह मुनियों के चरणारविंद को नमस्कार कर अपने घर कों गमन किया। और वह जो ब्राह्मणों की पुत्री नागश्री के साथ नाग पूजने को आई थी सो नागश्री ने जब व्रत ग्रहण कर गमन किया तब उस के पहले शीघ्र ही जाय कर इस भांति निंद्य वचन कहे, हे नागशर्म, तेरी पुत्री नागश्री न दिगंबर मुनि के चरणारविन्द को नमस्कार कर उनके पास कितनेक जैनके व्रत अंगीकार किये हैं, सो उन कन्याओं के वचन सुनने मात्रसे ही क्रोध रूप अग्नि कर प्रज्वलित भया है मन जिसका ऐसा होकर नागशर्म ब्राह्मण व्रत ग्रहण कर अपने

घर आई जो नागश्री उसे ऐसे दुर्वचन कहता भया । हे पुत्रि तैंने बुद्धि कर दिगंबर मुनि को नमस्कार कर व्रतादि ग्रहण किया यह बड़ा विपरीत काम किया, अपने को तो यज्ञ कर्मादिक कर ये वेद विषे कहा और अपने कुलक्रम से आया ऐसा ब्राह्मणों का धर्म ही सदा अंगीकार करना योग्य है, हे भोरी, जीवों की दया है प्रधान जिस में ऐसा जिनेंद्र का भाषा धर्म तैं अंगीकार किया सो धर्म ब्राह्मणों के कुल विषे अयोग्य है जिनेंद्र का भाषा धर्म जैनी श्रावकों के ही करने योग्य है ब्राह्मणों को सर्वथा अंगीकार करना योग्य नहीं । इससे हे पुत्रि ! मेरे हठसे तिन व्रतों को तू छोंड दे यह व्रत स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ उस मुनि ही के करने योग्य हैं । हम ब्राह्मणों के कभी भी करने योग्य नहीं हैं । इस भाँति पिता के वचन सुन कर नागश्री बोली । हे तात ! अंगीकार किये जे व्रतादिक तिनको जे दुर्बुद्धि छोडे हैं उन का इसी भव विषे नीचपना निंद्यपना होय है, और महान् पाप कर्म का बंध होय है । और परभव विषे पाप के उदय से चिरकाल दुर्गति विषे भ्रमण होय है । इस से अंगीकार किये मुनि के दिये सारभूत और स्वर्ग मुक्ति के कारण ऐसे व्रतों को आत्मीक सुख की प्राप्ति के अर्थ कभी भी नहीं छोडूंगी । यह वचन सुन पापी नागशर्म महाक्रोध कर बोला, हे भोरी ! इन व्रतों को शीघ्र ही छोड़ दे, और जो नहीं छोड़ती तो मेरे घर से निकल जा । इस प्रकार पिता का खोटा हठ जान कर अत्यन्त दुखी होकर नागश्री बोली । हे तात ! व्रत ग्रहण कर जब मैं अपने घर को आने लगी

तब मुनि ने मुझे ऐसे कही थी, कि यदि तेरा पिता मेरे दिये व्रतों को छुड़ावेगा तो तू यहां आकर व्रतों को सौंप जाना। नागशर्म बोला ऐसे हो सहो। जो मुनि ने कही सोई करूंगा। ऐसे कह पुत्री को साथ लेकर मुनि की मुख से निंदा करता। दुर्वचन बोलता। व्रतों को सौंपने को घर से चला। नागशर्म के साथ जाती हुई नागश्री ने कोई जवान पुरुष को बन्धन से बांध मारने के अर्थ ले जाता देख पिता से पूछा। हे तात यह पुरुष कैसे बंधा है? और इस ने क्या अन्याय किया है? तब नागशर्म बोला। हे पुत्रि! मैं तो नहीं जानता यह कौन से अन्याय से बंधा है चलो कोतवाल से पूछें तब पुत्री सहित नागशर्म ब्राह्मण कोतवाल के समीप जाकर कोतवाल को पूछा। अहो कोतवाल! यह पुरुष कौनसा अपराध कर बंधन का दुःख भोग रहा है? कोतवाल बोला। इसही चंपापुरी विषे अठारह कोड दीनार का धनी देवदत्त सेठ तिस के समुद्रदत्ता नामा स्त्री। और वसुदत्त नामा एक ही यह पुत्र। जूवा आदि सप्त व्यसन का सेवन हारा सो आज धूर्तनामा जुवारिये से जूवा खेल शीघ्र ही लाख दीनार हारा। तब धूर्तनामा जुवारी हठथकी शीघ्रही इस दुरात्मा के निकट अपना जीता हुआ धन लक्ष दीनार मांगी तब इस निर्दयी वसुदत्तने क्रोधायमान होकर छुरी के प्रहारसे धूर्तनामा जुवारी को मारा। हे नागशर्म! इस वसुदत्त दुष्ट ने दो अपराध किये। प्रथम तो जूवा खेला दूसरे धूर्त नामा जुवारिये के प्राण हरे। तब राजा ने इस का सकल धन खोस कर मारने की आज्ञा दी है।

इस लिये यह वसुदत्त बंधन सें बंधा महा दुःख भोग रहा है। ऐसे कोतवाल के वचन सुन नागश्री बोली। हे तात! प्रत्यक्ष देख हिंसा के आचरण करने से इसी भव विषे यह बध कहिये प्राणों का घात, बंधन कहिये सांकल, बेड़ी जंजीरादिकों के तीक्ष्ण बंधन। और हाथ पांव कान नासिकादि का छेदन इत्यादि घोर दुःख पावे है और परभव विषे जो दुःख भोगेगा उस को कौन कह सके ? इस वास्ते मैंने मुनि के निकट हिंसा को त्याग कर अहिंसा व्रत ग्रहण किया है। सो इस व्रत को कैसे छोड़ूं कैसा है अहिंसा व्रत? तीन जगत विषे सारभूत जो इंद्र अहमिंद्र नरेंद्र आदि उच्चपद उनका देने वाला है। तब नागशर्म ब्राह्मण बोला। हे पुत्रि! एक यह अहिंसाव्रत तो रहने दे परन्तु बाकी के और व्रत सौंपने को तो मुनि के पास चलें तब आगे जाते कोई और स्थान विषे औंधे मुख लटकता कोई पुरुष देखा जिसके शरीर विषे सूलोंके प्रहार कर कोतवाल के किंकर मारते थे। तब नागश्री ने अपने पिता को पूछा। कि हे तात! यह पुरुष ऐसे महानघोर प्रचंड दुःखों को कैसे प्राप्त भया ? तब नागशर्म बोला। हे पुत्रि! एक वज्रवीर्य नामा राजा चतुरंग सेना सहित अंगदेश की सींव विषे आय मुकाम किया, और अपने इष्ट की सिद्धि के अर्थ जो वचनालाप विषे प्रवीण ऐसे विचक्षण अपने दूत को इस चंपापुरी के राजा चंद्रवाहन के समीप भेजा, सो दूत आय कर राजा को प्रणाम कर बिनती करता भया। कि हे राजन्! मेरे वचन सुनो, मेरा स्वामी राजा वज्रवीर्य कुशलक्षेम पूछ

तुम पर यह आज्ञा करे है कि मेरी सेवा करो, और यदि सेवा करनी तुझे मुनासिब नहीं है तो मुझ से युद्ध करो, और जो युद्ध करना भी तुझे कबूल नहीं तो सर्वस्व भंडार कर पूर्ण चंपापुर नगर देवो। यह वचन सुन राजा चंद्रवाहन बोला। रे दूत, जावो ! जावो !! आज ही रण भूमि विषे तेरे स्वामी का प्रताप देखने को तिष्ठू हूं। इस भांति कह कर दूत को विदा कर चतुरंग सेना सहित बलनामा सेनापति को वज्रवीर्य पर संग्राम के अर्थ पठाया सो बलनाम सेनापति प्रचंड पराक्रमी चंद्रवाहन राजा की आज्ञा से महान् चतुरंग सेना सहित जाय वज्रवीर्य नृप से भयानक संग्राम का आरंभ किया। कैसा है संग्राम ? कायर पुरुषों को भय का दायक है, वहां दोनों सेना का महा घोर संग्राम होता भया यह तक्षक नामा सुभट चंद्रवाहन का अंगरक्षक मरण के भय से भाग कर यहां आया और चंद्रवाहन नृप को ऐसे झूठे वचन कहे। हे देव, हे राजन् ! राजा वज्रवीर्य ने संग्राम विषे बलनामा सेनापति को हाथी घोड़े वस्त्र आदि समस्त वस्तु सहित पकड लिया है। यह वचन तक्षक नामा अंगरक्षक सुभट के सुन राजा हृदय विषे अत्यन्त खेद खिन्न भया। और उधर बलनामा चंद्रवाहन भूप के सेनापति ने महाघोर संग्राम विषे बलात्कार बरजोरी से वज्रवीर्य राजा को पकड़कर दृढ़ बंधनसे जकड़ बन्ध कर चंपापुर प्रति प्रयाण किया। उस अवसर विषे विजय कर आया जो सेनापति उस के वादित्रों के शब्द सुन और सेना के क्षोभ का आडंबर देख राजा ने यह जानी कि, वज्रवीर्य

राजा सेना सहित संग्राम करने को आया है । तब चंद्रवाहन नृप सेना को सजाय संग्राम के अर्थ उद्यमी भया । गढ़की रक्षा पर इतबारी बहुत सुभटों को राख और नगरके दरवाजे बंदकर आप हाथी पर सवार होय संग्राम के अर्थ सेनापति सहित नगर के बाहर तिष्ठा, बलनामा सेनापति चंद्रवाहन को खेद खिन्न स्वरूप देख आप अगाऊ आय राजा को प्रणाम कर नगर के द्वार खुलाये, उस पीछे भूपेंद्र सहित राजमंदिर आय चन्द्रवाहन को प्रणाम कर वज्रवीर्य सौंपा, तब राजा अत्यंत हर्षायमान होय सेनापति को बड़ी संपदा सहित नगर ग्राम दिये, और वज्रवीर्य को छोड़ वस्त्राभूषण दे अमृत समान मीठे वचनों से संतोष उपजाय उस को देशप्रति पठाया । हेपुत्री ! वज्रवीर्य नृप गये पीछे सुख से तिष्ठता राजा चंद्रवाहन इस तक्षकनाम सुभट ने पूर्व कहे जे झूठ वचन उन को चितार महान कोपायमान होय मारने को कोतवाल के तईं ऐसी दुष्कर आज्ञा दी है ॥

भावार्थ-इस सुभट ने झूठे वचन बोले इस से इस की ऐसी दशा भई है, यह वचन नागशर्म के मुख से सुन कर नागश्री बोली । हे तात ! जिस असत्य वचन कर इस ही भव विषे महा घोर दुःख पाइये है तो मैंने असत्य वचन बोलनेका त्याग और सत्यव्रत का अंगीकार योगीश्वर के पास किया है उस को मैं कैसे छोड़ूं ? कैसा है सत्यव्रत ? इस भव विषे तो पूजा, सत्कार, लोक विषे मान्यता, विश्वास यश, इत्यादि सुखों का कारण है, और पर भव विषे स्वर्ग मोक्ष का दाता है, सारभूत है, ऐसे नागश्री

के वचन सन कर नागशर्म पुरोहित बोला। हे पुत्रि ! यह सत्यव्रत भी रहने दे, परन्तु और बाकी के व्रत तो चल कर यता को सौंपें उस पीछे आगे जाते हुए एक और पुरुष सूली विषे परोया हुवा देख करुणाकर नागश्री ने अपने पिता से पूछा। हे तात ! यह पुरुष किस कारण से निग्रह योग्य भया है ? तब नागशर्म ब्राह्मण बोला। कि हे पुत्रि ! मुझे तो खबर नहीं चल कोतवाल से पूछें। इस भांति पुत्री को साथ ले कोतवाल के समीप जाय उस से पूछी। कि हे चंडकर्मन् ! इस पुरुष ने क्या अन्याय आचरण किया है ? तब नागशर्म के प्रश्न से कोतवाल बोला। इस ही चंपापुरी विषे महा धनवान वसुदत्तनामा राजश्रेष्ठी उस के वसुमती नामा सेठाणी उन के रूपादिक गुणों कर शोभायमान वसुकांता नामा पुत्री भई, एक दिन सर्प कर डसी वसुकांता महाविकराल विष कर व्याकुल मृतक समान मूर्छित भई, तब सेठ ने पुत्री को मरी हुई जान सज्जन परिजन सहित श्मसान भूमि विषे दग्ध करने को प्राप्त करी, वहां चिता विषे मेलने के अवसर विषे वसुकांता के पुण्य के उदय से कोई एक वणिक् पुत्र गरुडनाभि है नाम जिस का, रूपवान्, यौवनवान्, गरुड विद्या विषे महा प्रवीण नाना देशों विषे विहार करता वहां आया। वसुकांता को अति रूपवान देख, वसुदत्त सेठ को इस भांति कहता भया। हे श्रेष्ठिन् ! जो तू इस पुत्री को मुझे विवाह दे तो मैं वसुकांता को जिवाय दूं, तब गरुडनाभि का स्वरूप देख वसुदत्त सेठ उसे कहता भया। कि हे भद्र ! मैं अपनी पुत्री तुझे

परणाऊंगा,तू इसे शीघ्र ही जिवाय दे,तब गरुडनाभि बोला। इस रात्रि विषे तो हर्ष सहित बडे यत्न से चौकसी करो,प्रभात ही वसुकांता को मैं निर्विष कहिये विष रहित करूंगा। तब वसुदत्त सेठ हजार हजार दीनारों की चार पोटली बांध श्मसान विषे वसुकांता के विमान के समीप मेल कर चार सुभटों को बुला पुत्री की रक्षा के अर्थ कहता भया। कि हे सुभटो! तुम इस वसुकांता की बड़ी चौकसी और बहुत सावधानो से चार पहर रात्री पर्यंत रक्षा करो, प्रभात तुम को एक एक हजार दीनार दूंगा, इस में कछु भी संशय नहीं जानों इस भांति वह चारों सुभट हजार हजार दीनार के लोभ से वसुकांता के विमान की रक्षा करते रात्री विषे श्मसान में खडे रहे। और सेठ आदि समस्त जन आनंद से अपने अपने घर गये, दूसरे दिन प्रभात ही गरुडनाभि गारुडी ने शीघ्र आ कर मंत्र शक्ति के प्रयोगादि कर वसुकांता को विष रहित करी, तब वसुदत्त सेठ अति आनंद को प्राप्त हो कर अपनी पुत्री को विवाह की विधिकर प्रीति सहितगरुडनाभि को दी, और बहुत संपदा दी॥

अथानंतर-दीनारों की चारों थैलियोंमें से एक थैली चोरी गई, और तीन थैली बाकी रही, उनको देख मीठे वचनोंकर चारों सुभटों को सेठ कहता भया। कि विमान के समीप से जिस सुभट ने एक थैली ली उस ने तो हजार दीनार ले लिये, बाकी तीन थैली हजार हजार दीनार की हैं तिन को हेचारों सुभटो, अब तुम ग्रहण करो यह वचन सेठ के सुन चारों ही सुभट सेठ से

बोले कि हमने तो तुम्हारी थैली नहीं ली, ऐसे कह कर थैली लेने की हामी किसी ने भी नहीं भरी, तब सेठ शीघ्र ही चंद्रवाहन राजा के निकट जाय प्रगट कहता भया। हे राजन् ! एक हजार दीनारों की एक थैली हमारी चोरी में गई, यह वचन सुन राजा चंडकीर्ति कोतवाल को कहता भया रे दुरात्मन् ! रे चण्डकर्मन् ! मेरे समीप शीघ्र ही चोर को ला, और जो नहीं लावे तो तेरी गरदन काटूंगा। यह वचन सुन कोतवाल बोला। हे नाथ ! जो पांच दिन के अंदर चोर को नहीं पकडूं तो जो आप की इच्छा हो सोई करना। यह वचन सुन कर राजा चंद्रवाहन पांच दिन की मर्यादा चोर लाने को देता भया तब चण्डकीर्त्ति कोतवाल चोर के हेरणे के अर्थ चिंता को प्राप्त भया संता उन चारों सुभटों सहित अपने घर गया, वहां महारूपवान सुमति नामा कोतवाल की पुत्री पिता को चितातुर देख पूछती भई, कैसी है सुमति ? वेश्या से भी अत्यत प्रवीण है बुद्धि जिस की, हे तात ! तुम चित्त विषे चितातुर कैसे हो ? चिंता का कारण मुझे कहो। मैं समस्त चिंता को दूर करने को समर्थ हूं, तब चंडकीर्ति कहता भया। इन चारों सुभटों के मध्य काई एक ने हजार दीनार की एक थैली ली है, और राजा चंद्रवाहन मेरा निग्रह करे है, ऐसे पिता चंडकीर्ति कोतवाल के वचन सुन सुमति बोली। हे तात ! तुम तो चिंता रहित निश्चिन्त रहो, मैं आज ही चोर का निश्चय कर तुम्हें सोपूंगी, उस पीछे कोतवाल की पुत्री सुमति उन सुभटों को भोजनादिक दे बोली, अब तुम

चारों ही पांच दिन तो यहां तिष्ठो, ऐसे कह बन्दोबस्त के स्थान विषे मंचकादिक दे वचन की चातुर्यता से तिन के मन को भेदने लगी, चारों सुभटों को भूमिपर बैठाय विकार सहित चेष्टा कर इस भांति बोली। तुम चारों के मध्य काहू एक पर मैं मोहित भई हूं, परन्तु मेरे चित्त विषे यह संशय प्रवर्ते है, कि हे सुभट तुम्हारे निकट धरी थैली को चोर कैसे चुरा ले गया और वहां तुम क्या कर्तव्य करते तिष्ठे थे। यह मेरे सन्देह है, तब उन चारों के मध्य एक सुभट बोला। हे सुमते! मैं तो इन तीनों को कह कर पहिली रात्रि विषे हर्ष सहित वेश्या के घर गया, और पीछले पहर शीघ्र ही आया, तब दूजे ने कहा कि मैं भी इस के पीछे ही आया था। और एकली रंडी को छोड़ कर रात्रि विषे ही वहां आय गया, तब मेरे आये पहले वहां क्या वृत्तांत भया सो मैं नहीं जानता, कोई विश्वास घाती, दुराचारी, दुष्ट यह अकृत्य किया है, तब तीसरे सुभट ने कही हे वत्से, मैं तो मेढिका जो लिरडो उस को शिशित कहिये मांस करता थका वहां तिष्ठूं था, तब वहां क्या वृत्तांत भया सो मैं नहीं जानूं हूं तब चौथा पुरुष बोला। मैं तो नेत्रों कर मुरदे को देखता रहा, मेरी द्रव्य विषे कुछ भी चिन्ता नहीं थी॥

भावार्थ-मेरी दृष्टि तो केवल मुरदा पर ही रही, धन की मुझे खबर नहीं, इस भांति चारों पुरुषों के वचन सुन कर संशय सहित चोरों को जाने तब चोर के निश्चय के अर्थ ऐसे कहती भई

कैसी है सुमति कुटिल, कहिये वक्र मायाचार सहित है आशय कहिये अभिप्राय चित्त जिस का तुम में तो थैली का चोर कोई भी नहीं है, परन्तु, अब मेरे नेत्रों विषे निद्रा प्रवर्ते है इस लिये आलस्य निद्रा के विनाश के अर्थ तुम कोई कथा कहो, तब सुभट बोले। हे सुमते ! हम तो कोई भी कथा नहीं जाने हैं तुम ही कहो, तब सुमति बोली। हे सुभटो ! तुम सुनो मैं कथा कहूं हूं ॥

पटना विषे धनदत्त नामा वैश्यके सुदामा नामा कुमारी कन्या थी, सो एक दिन अपने घर के पिछाड़ी उद्यान विषे सरोवर में पांव धोने को गई थी वहां तुरत ही ग्राहने पांव पकडा तब अति भयभीत होय धनदेव, नामा, अपना जीजा को देख कर बोली, हे धनदेव, यहां बरजोरी से ग्राह मुझे पकड़े है सो तू शीघ्र ही छुड़ाय, तब धनदेव कौतूहल हास्य कर कही जो तू मेरा कहा करे तो मैं तुझे छुड़ाऊं, तब सुदामा बोली त क्या कहे है ? तब देव ने कही विवाहके दिन रात्री विषे लग्नकाले कहिये फेरों के अवसर वस्त्राभरण सहित मेरे पास आवे तो मैं तुझे छुडाऊं, अन्यथा नहीं छुडाऊं, तब सुदामा बोली, जैसे तू कही तैसेही करूंगी, तब धनदेव कन्याका बचन ले कन्याका दाहिना हाथ पकड़ बलात्कारे बरजोरी कर ग्राह से कन्या को छुड़ावता भया, सो अनुक्रम से सुदामा विवाह के अवसर को प्राप्त भई, तब अपने विवाह के दिन विषे धर्म हस्तमोचनाय कहिये बचन के छुड़ावने के अर्थ धनदेव की दुकान को अंधेरी रात्री विषे सुदामा कुमारी ने घरसे गमन किया, सुदामा को, जाती, देख

मार्ग में कोई चोर खड़ी कर कहता भया, हे कन्ये, अपने आभरणादिक मुझे दे दे, कन्या बोली, आभरणसहित मुझे कहीं जाना है, इस से आवने के अवसर पर समस्त आभूषण तुझे दूंगी, तू कुछ भी संशय मत करे इस भांति कह कर चोर को वचन दे आगे चली, और चोर अदृश्य होय कौतूहल से कन्याके साथ लागा आगे मार्ग विषे कोई एक राक्षस कन्या को देख बोला, हे कन्यके तू अपने इष्ट देवता का स्मरण कर क्योंकि अबही मैं तुझको निगलू हूं तब कन्या बोली, हे राक्षस, मैं प्रतिज्ञा ले कर कहीं जाऊ हूं इस से आगमन के काल विषे तेरी इच्छा होय सो करियो ऐसे राक्षस को भी धर्म देय कन्या आगे चली, और राक्षस भी प्रतिच्छन्न बृत्ति कर कन्या के खोजां खोजां चला आगे चलते कोई एक कोतवाल कन्या को खडी राखी, तब कोतवाल को भी धर्म देय सत्य वचन बोलने वाली कन्या ने आगे गमन किया, तब निर्विघ्नपने कर समस्त आभूषणों कर भूषित सुदामा कन्या अपना वचन छुडायवे के अर्थ अंधेरी रात्रि विषे धनदेव की दुकान पर पहुंचा सो रात्रि विषे अकेली आई जो सुदामा उसे देख महा प्रवीण बुद्धिवान धनदेव, जो मन वचन काय कर परदारा से पराङ्मुख है, सो बोला हे भोरी, अबार तू अंधेरी रात्री विषे क्यों आई है ? हे कन्या, त मेरी लघुसाली मेरी पुत्री है, और मेरे समस्त परदारा भगिनी कहिये बहन समान हैं ॥

भावार्थ–तू तो लघुसाली है, सो पुत्री समान है, परन्तु एक विवाहिता स्त्री टार समस्त स्त्री हैं सो मेरे माता, बहन, पुत्री समान हैं; किसी प्रकार भी पररमणी की वांछा नहीं है, और मैंने तो पहिले हास्य कौतूहल कर बचन कहा था, अन्यथा ऐसे पाप बंधके कारण निंदित वचन काहे को उचारता ? जो परदारा कर सहित आसक्तपना को प्राप्त भये ऐसे पापी दुराचारी मनुष्य पाप कर्म के उदय से इस भव विषे वध, बंधन,अपघात मरण आदि दुःखों को पाय कर सप्तम नरक विषे पडे हैं, वहां सागरों पर्यंत असंख्यात काल अति दारुण घोर दुःख सहे हैं, इस से हे कल्याणरूपिणी अब तू अपने घर जाय, ऐसी युक्ति कर धनदेव कर रहित भई सुदामा जिस मार्ग विषे गई थी उस ही मार्ग विषे उलटी आई तब वे चोर, राक्षस, कोतवाल तीनों पुरुष सुदामा की सांच देख बोले, हे कन्या तू महासती हमारे तो माता समान है, ऐसे कह कर हर्षसहित धर्मवचन छोडे, तब वह कन्या पुण्य के उदय से अपने घर आई, यह कथा कह कर कोतवाल की पुत्री सुमति उन चारो सुभटों को पूछती भई, हे सुभट हो, उन चारों पुरुषों के मध्य श्रेष्ठ कौन है सो मुझ को कहो, सुमति का बचन सुन लिरडीका चोर उस चोर की प्रशंसा करी, और मांस करने वाला सुभट तिस राक्षस की प्रशंसा करी, मृतक की रक्षा करने वाला सुभट कोतवाल के साहसकी प्रशंसा करी, वेश्याका पति धनदेवकी प्रशंसा करी, इस भांति चारों का अभिप्राय जान चोर का निश्चय कर हर्ष सहित उन चारों को

सीख देय आप हर्ष सहित अपनी सज्यातल पर निद्रा का सेवन करती भई, कैसी है सुमति ? निश्चय जाना जो चोर उस कर बहुत हर्ष सहित है अंतरंग जिसका ॥

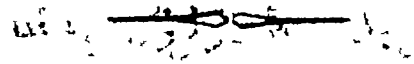
दूसरे दिन जिस दुरात्मा ने चोरकी बडाई करी थी, उसे बुलाय अपनी सय्यापर बैठाय कहती भई, हे सुभट, मैं तेरे ऊपर अनुरागिणी भई, परन्तु मेरा पिता एकाकी पुरुष सहित मुझे यहां नहीं रहने दे है इस लिये हम दोनों तुरतही देशांतर विषे चलें यह बैन सुन कर लिरडी के चोर सुभट ने कही बहुत अच्छा, तब सुमति बोली हे सुभट वहां देशांतर में भोग सामग्री विषे द्रव्य कर मनोर्थ सधेगा, ऐसे कह कर अपनी एक थैली दीनारों की चोर के आगे स्थापन कर अति प्रवीणता कर उसे पूछती भई, इतना द्रव्य तो मेरे पास था सो तुझे प्रकट दिखाया परन्तु तेरे पास भी कछु धन हैं कि नहीं ? तब चोर सुभट ने कहा धन तो मेरे घर बहुत है, यहां तो एक हजार दीनारों की थैली मे हाथ है, ऐसे कह कर उस ही समय जो अपने हाथ थैली थी, सो समति को प्रत्यक्ष दिखावता भया, तब सुमति थैली को लेय कर तस्कर सुभट को कही तुम अपने शयन के स्थान को जावो प्रातःकाल ही हम मनोहर पांचों ईंद्रियों के विषय सुख भोगने के अर्थ देशांतर चलेंगे इस भांति कह कर सुभट को सीख देय हर्षसहित अपने पिता को थैली सौंप वह कोतवाल की पुत्री सुमति तीसरे दिन प्रकट चोर को दिखावती भई, तब कोतवाल ने भी चोर को

हे नागशर्म वह राजा महाक्रोधायमान होय इस चोर के निग्रह करने की यह दुष्कर आज्ञा दी है, यह वचन कोतवाल के मुखसे सुन कर पाप कर्म से भयभीत ऐसी प्रोहित की पुत्री नागश्री अपने पिता को यह प्रकट वचन कहती भई, हे तात इस चोरी के आचरण कर जीव वध बंधन समस्त द्रव्य का नाश कुटुंब का क्षय आदि दारुण दुःख पावे है, इसी लिये योगीश्वर के निकट बिना दी हुई पराई वस्तु का है त्याग जिस में और सारभूत सुखों की खान, ऐसा अचौर्य व्रत मैंने अंगीकार किया है, उस को कैसे छोड़ूं ? तब नागशर्म ब्राह्मण बोला हे पुत्रि, एक यह भी सारभूत उत्तम व्रत तेरे रहो परन्तु और बाकी दो व्रत तो मुनिके दिये मुनि को सौंप देवें ॥

इस भांति जीवों की हिंसा करने से झूठ वचन बोलने से और चोरी के करने से धन का नाश, प्राणों का नाश अपयश का होना आदि नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त भये ऐसे पुरुषों को मार्ग विषे अवलोकन कर नागशर्म प्रोहितकी पुत्री दुःखों से भयभीत होय व्रतों को पालने करने विषे अत्यंत तत्पर भई ऐसे जान कर हे ज्ञानी जन हो, आत्मिक सुख की प्राप्ति के अर्थ अतिचार रहित निरंतर व्रतों को धारण करो व्रतों के धारने बिना अव्रत विषे एक घड़ी मात्र भी काल बृथा मति गमावो, ऐसा उपदेश है, सम्यक् ज्ञानी पुरुषों कर वंदनीक और शुद्धात्मा के अनुभव

से स्वर्ग मोक्ष के साधन करन हारे और तीन लोक में भव्य जीवों को संसार समुद्र से तारने विषे अत्यं ग ण और आप संसार समुद्रके पार को प्राप्त भये ऐसे जे मुनिपुंगव दिन दिन प्रति भव्य जीवों को स्वाधीन निराकुल सुख के अर्थ सारभूत पंच महाव्रत पंच अणुव्रत और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र सम्यक्तप इनका अमृतसमान मधुर वचन कर उपदेश दे हैं वह मुनिराजधन्य हैं ॥

इत्याचार्य श्रीसकल कीर्ति विरचिते सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ उस की देश भाषा मय वचनिका विषे हिंसा झूठ चोरी से उत्पन्नभये जे प्रत्यक्ष दुःख उनको प्राप्त भये ऐसे जे मनुष्य उनकी कथा का ह वर्णन जिस विषे ऐसा द्वितीयसर्ग समाप्त भया ॥



हे नागशर्म वह राजा महाक्रोधायमान होय इस चोर के निग्रह करने की यह दुष्कर आज्ञा दी है. यह वचन कोतवार के [illegible]

३ तीसरा अधिकार

(अणुव्रतों के विरुद्ध पापों की कथायें)

चौपाई-दरशन ज्ञानचरण तपसार। धरम अमोलिक मणिदातार ॥
संतनको सुरशिव सुख हेत। नर तपों धन भाव समेत ॥

अथानंतर-आगे गमन करती नागश्री, मार्गविषे कटे है कान नाक जिसके, और पुरुष के मस्तक के साथ बधा है कंठ जिस का महान दुःखित ऐसी नारी को [illegible] थान विषे देख पिता को पूछती भई कि,हे तात,इस नारी को ऐसो निंद्य अवस्था कौन से अपराध कर भई ? तब नागशर्म ने कहा-हे पुत्रि इसही चंपापुरी विषे मभस्य नामा वैश्य उस के जैनो नामा स्त्री उन के दो पुत्र भये बडे का नाम नंद छोटे का नाम सुनंद, और इस ही नगरी विषे जैनी का भाई सूरसेन वैश्य उस के मदाली नामा पुत्री थी, एक दिन नंदनामा वणिकपुत्र द्वीपांतर को गमन करता अपने सूरसेन मामा के निकट जाय ऐसे वचन कहे, हे मामा मैं द्वीपांतर को जाऊंगा सो यह महारूपशालिनी

तेरी पुत्री मदाली मुझे ही दीजियो और जो तू अन्य वणिक् पुत्र को देवेगा तो तुझे राजा की दुहाई है तब सूरसेन ने कही हे वत्स काल की मर्यादा करके द्वीपांतर को जाओ तब अपने आगमनके कालकी बारह वर्षकी मर्यादा कर नंदनामा वणिक् पुत्र ने द्वीपांतर को गमन किया और बारह वर्ष उपरांत छै महीने व्यतीत भये भी नंद नहीं आया तब सूरसेन ने नंद के छोटे भाई सुनंद के अर्थ अपनी पुत्री मदाली देनी करी, दोनों के रमणीक मन्दिरों विषे बड़ी विभूति कर विवाह संबंधी उत्सव होने लगे, और लग्नके पांच दिन अवशेष रहे तब वणिक्पुत्र नंद द्वीपांतर से आय मदालीका वृत्तांत जान मधुर बचन कर सज्जन परिजन को कहता भया, अहो सज्जनपरिजन हो, जो सूरसेन आदि तुम समस्त इस मदाली को सुनंद के अर्थ देनी करी सो छोटे भाई सुनंदकी स्त्री मदाली मेरी पुत्री समान है तुम भलेही सुनंद को परणाओ ऐसे आज्ञा देय बडा भाई नंद तो फिर द्वीपांतर को गया और नंदका छोटा भाई सुनंद मदाली को बडे भाई की वियोगिनी जान समस्त सज्जनपरिजन को प्रकट कही जो यह मदाली बडे भाई नंदकी नियोगिनी मेरी माता समान है इस र मैं इस को न परणूं तुम अन्य वणिक् पुत्र को भले ही परणाओ मेरे किसी से भी ईर्षा नहीं है इस भांति नंद सुनंद दोनों भाइयों कर तजी ऐसी मदाली कुंवारीही यौवन को पाय अपने घर विषे तिष्ठी, और सूरसेन के घरके नजीक अन्य घर विषे कुबुद्धी नागचंद्रनामा वश्य रहे उस के बारह स्त्री और वह बारह कोटि

हे नागशर्म वह राजा महाक्रोधायमान होय इस चोर के निग्रह करने की यह दुष्कर

दीनारका धनी सो पापी दुराचारी पाप कर्म के उदय से कुंवारी मदाली विषे अति आसक्त भया घने दिन उस दुराचारी का व्यभिचार गुप्त चलता था सो स्वयमेव प्रकट हो गया अहो नीच पुरुषों का छिपाया हुआ महान् पाप प्रकट हो जाय है ॥

भावार्थ–नीच पुरुष के मन में यह विचार रहे है क मेरा अकृत्य कोइ भी नहीं जानेंगे, परन्तु पाप कर्म के उदय कर स्वयमेव प्रकट होजाय है सो अत्यंत पाप कर्म के उदय कर समस्त लोगों के कहने से दुराचारी का व्यभिचार नगर में विख्यात भया यह पापी दुराचारी नागचद्र कुंवारी मदाली विषे आसक्त भया निरंतर तिष्ठे है, ऐसे सुन चण्डकर्म कोतवाल उन के कुकर्म की परीक्षा कर दोनों अनाचारियों को पकड़े तब राजा की आज्ञा से वध बंधन अंगछेदन प्राणहरण आदि घोर दुःखों को यह दोनों मदाली नागचद्र प्राप्त भये ह यह वचन पिताके सुन नागश्री बोली हे तात ! इस शीलव्रतविना इस भव विषे ऐसे घोर क्लेश पाइये हैं इस ही लिये महान् पुरुषों के समीप मैंने शीलव्रत अंगीकार किया है सो ऐसा शीलव्रत कैसे छोडिये ? कैसा है शीलव्रत ? समस्त दोषों कर रहित निष्कलंक है, और तीन जगत विषे पूज्य है ॥

भावार्थ–शीलवान् पुरुषों के चरणकमल को इन्द्र नरेंद्र नागेंद्रादि समस्त देव मनुष्य निरंतर पूजे हैं तब नागशर्मने कहा हे पुत्रि, इसलिये सारभूत यह शीलव्रत श्री रखो [illegible]

वहां से आगे आते हुए मार्ग विषे कोतवाल के किंक

वहां से आगे आते हुए मार्ग विषे कोतवाल के किंकरों कर मारने को प्राप्त किया और पांव से ले कंठ पर्यंत दृढ बंधन कर बंधा ऐसा जो कोई एक पुरुष उसे नागश्री देख अपने पिता को पूछा हे तात, यह दृढ बंधन से बंधा पुरुष कौन है ? और कौनसे निंद्य कर्म कर ऐसी घोर दुःख की अवस्था को प्राप्त भया है सो मुझे कहो तब नागशर्म बोला, हे पुत्रि, यह महालोभी और क्षीर भोजी ऐसा बीरपूर्णनामा मनुष्य नृपके पट घोडों के निमित्त घास की रक्षा करता था एकदिन घास के बीड विषे प्रवेश किया और किसी का गोधन (गौवें) वहांथा सो लाय कर राजा को नजर किया तब राजा ने हर्षायमान होय कर कहा, यह गोधन तू ही ग्रहण कर सो उस गोधन को ग्रहण कर पाप कर्म के उदय से इसने अति लोभ ग्रहण किया कि राजा ने मुझे यह वर दिया है जो मेरे देश विषे श्रेष्ठ गोधन है उस सर्व को तू ग्रहण कर ऐसे कह कर देशके समस्त लोगों के श्रेष्ठ गोधन ग्रहण कर अति लोभी भया संता पट्टराणी की भैंसों को भी ग्रहण करी तब महादेवी पटराणी ने इस दुराचारीका सकल देशका गोधन ग्रहण आदि अपनी भैंसे ग्रहण करने पर्यंत कुलोभ संबधी दुराचारी का समस्त वर्णन चंद्रवाहन से निवेदन किया, तब राजा महा क्रोधायमान होय अत्यंत लोभ से संचय कियाजो पाप कर्म उसके उदय के निमित्त से अतिलोभी इस पापी के मारने वास्ते कोतवाल

हे नागशर्म वह राजा महाक्रोधायमान होय इस चोर के निग्रह करने की यह दुष्कर

को आज्ञा दी है, यह बचन पिता के सुन नागश्री बोली हे तात परिग्रह के लोभ से लोभी जीवों के इस भव विषे ऐसे घोर दुःख पाइए हैं सो लोभरूप वैरीके जीतने को मैं दिगंवर मुनि के समीप परिग्रहका प्रमाण किया हैं इस से इस व्रत को मैं मरण होते भी तजूं नहीं तव नागशर्म बोला हे पुत्रि, यह भी सारभूत व्रत तेरे रहो, परंतु जाय कर उस दिगंबर मुनि का तिरस्कार कर हम दोनों शीघ्र ही आजावेंगे ऐसे कह कर नागशर्म ब्राह्मण नागश्री सहित वन में जाय मुनिपुंगव को देख दूर ही खडा रह कर इस भांति कठोर वचनों कर तिरस्कार करता भया । अरे दिगंबर तू मेरी पुत्री नागश्री को दया आदि पंच प्रकार के व्रत कैसे दिये ? हमारे कुल विषे ब्रह्मा, विष्णु महेश कर कह प्रदोषादिक व्रत प्रसिद्ध हैं अरे दिगंवर अरे मुझे कह तो सही; ब्राह्मणों की कन्या को व्रत देने का अधिकार तेरा कहा है ? यह नीके विचार ॥

भावार्थ-हम राजमान्य उत्तम ब्राह्मण हैं सर्व के गुरु हैं हमसे ऐसा कौन है जो हम को या हमारे पुत्रादिक को व्रत ग्रहण करने की शिक्षा देवे। तब योगीश्वर नागश्रीके हित के अर्थ मधुर स्वर से ब्राह्मण को कहते भये कैसे हैं योगीश्वर ? आगामी कालसंबंधी लाभ अलाभ सुख दुखादिकों के ज्ञाताहैं हे ब्राह्मण,हे नागशर्म, यह नागश्री मेरी पुत्री है मैंने सम्यक प्रकार विचार कर पंच अणुव्रत दिए हैं इस में तेरा क्या विगाड भया ? कैसे हैं पंच अणुव्रत ? दया है मूल जिन में और धर्म के बाज

हैं,सो सूर्य मित्र मुनिराज के वचनके सुनवे मात्र से ही महाक्रोध को प्राप्त होय कर नागशर्म ब्राह्मण कहता भया हे मुने, यह नागश्री तेरी पुत्री कैसे होय ॥

भावार्थ–नागश्री तो प्रकटपणें प्रसिद्ध मेरी पुत्री है, त्रिदेवीके गर्भसे उपजी है व्रतही के देने कर तू तेरी कैसे कहे है ? मुनि बोले हेब्राह्मण यह नागश्री हमारी पुत्री अवश्य है इसमें कछु भी संशय नहीं है, और तेरे संशय क्या है ? मैं असत्य नहीं कहू हू, सो नागश्री समभाव को प्राप्त भई व्रतों के पालने विषे तत्पर मुनिके चरण कमलों को प्रणाम कर, सूर्यमित्र मुनि के चरणारविंद के समीप तिष्ठी, तब नागशर्म अत्यंत क्रोध कर वेगही चंद्रवाहन नृपके समीप जाय अनेक वचनों कर इस भांति पुकार कर विज्ञप्ति करता भया हे देव, एक दिगंबर मुनि मेरी पुत्री नागश्री को असत्य वचन से अपनी पुत्री कह कर बलात्कार बरजोरी से ग्रहण करे है, उस समय नागशर्म प्रोहित कर कहे ऐसे असंभव वचन उन कर सभानिवासी समस्त लोगों के चित्त विषे बड़ा आश्चर्य भया और राजा चन्द्र-वाहन भी नागशर्म प्रोहितके वचन सुनकर अत्यत आश्चर्यको प्राप्त होय अपने चित्त विषे यह विचार करता भया। कैसा है राजा योग्य अयोग्य संभाव्य असंभाव्य के विचार विषे अत्यंत प्रवीण है बड़ी आश्चर्य्य की बात है जो कदाचित मेरुगिरि चलायमान होय और अग्नि शीतल होय तो होहू, परन्तु जैन के यती असत्य वचन कदाकाल भी नहीं कहें ॥

भावार्थ–निन्याणवें हजार योजन ऊंचा और हजार योजन की जिस का चित्रा पृथ्वी विषे जड़ है, ऐसा मेरुगिर अनादि काल से कभी भी चलायमान न भया, सो तो किसी दैव की विपरीतत से कदाचित चलायमान हो जाय और अग्नि भी अनादि से उष्ण है कभी भी शीतल भई नहीं, सो दैव योग से उष्ण स्वभाव को छोड़ कर शीतल हो जाय, परन्तु दिगम्बर मुनि असत्य बचन कभी भी न कहें, जिन निर्मोही जैन के यतियों ने बाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रह का त्याग किया तिन यतीश्वरों के झूठे बचन कर पृथिवी विषे कहा साध्य है कुछ भी साधने योग्य नहीं॥

सो नागश्री अब इस नागशर्म ब्राह्मण की पुत्री है यह सर्व लोक विषे विख्यात है, परन्तु यहां कुछ कारण विशेष है उसको मैं नहीं जानू हूं, इस भांति राजा चंद्रवाहन विचारकर बहुत लोकों सहित नागशर्म नागश्री संबंधी संशय के विनाश के अर्थ सूर्य्यमित्र मुनिराज के समीप गया और कई पुरवासी धर्मात्मा जैनी श्रावक धर्म के अर्थ परिवार सहित सूर्य्यमित्र मुनि की बंदना का वन में गये, कई लोग सूर्यमित्र मुनि और ब्राह्मण नागशर्म प्रोहित के जो नागश्री संबंधी विवाद था उस के सुनने को गये और कोई जन बिना प्रयोजन कौतुक देखने को ही बन में गये, वहां बन विषे प्रासुक शिलापर विराजमान और चंद्रमा समान कांति युक्त है मूर्त्ति जिन की, रागद्वेष रहित निर्विकार शांतमुद्रा के धारक षट् काय के जीवों के रक्षक पंच महाव्रत के परिपालक, मेरु समान थिर-

तावान ऐसे जो सूर्यमित्र मुनिराज उनको देखकर राजा चंद्रवाहन पंचांग नमस्कार कर अमृत समान मधुर बचन कह कर इस भांति पूछता भया ॥

हे स्वामिन् ! कदाचित् दैव योग से समुद्र अपनी मर्यादा को उलंघे तो उलंघो और कुलाचलों कर सहित भू पीठ चलायमान होय तो होहू, तथापि सत्यवादी निर्मोही यतियों के मुख से जैसे तैसे भी वचन कोई काल विषे भी चलायमान नहीं होय हैं, ऐसे हृदय विषे नीके जानूं हूं तो भी हे प्रभो तीन जगत्के नायक मैं मन के संदेह की हानि के अर्थ आपसे कछु एक पूछने का इच्छक हूं, हे देव आप के पास बैठी यह रूपवान् नागश्री कौन की पुत्री है सो आप मुझे सांच कहो कैसे हो तुम सत्य बचन रूप किरणों कर संदेह रूप तिमिर के नाश करने को भानु समान हो, तब समस्त सभाजनों के तिष्ठते हुए राजाको सूर्यमित्र मुनिराज प्रकट बचन कर कहते भये । हेराजन् ! यह नागश्री मेरी पुत्री है, यह वचन सूर्यमित्र मुनिराज के सुन नागशर्म ब्राह्मण लाल नेत्र कर कहता भया । हे राजन् ! मेरी भार्या त्रिदेवी नाग का आराधन कर और बड़ी भक्ति थकी पूजन कर नागश्री नामा कन्या को प्राप्त भई सो यह वार्ता समस्त नगर विषे प्रसिद्ध है, और यह आप के पास बैठे समस्त पुरवासी जन अथवा सज्जन परिजन क्या नहीं जाने हैं, अब यह नागश्री इस ब्रह्मचारी की पुत्री कैसे भई इस विचार विषे सकल परिजन सहित नीके चित्त धारण करो, तब मुनि राज बोले ।

हे राजन्! जो यह नागश्री इस नागशर्म की पुत्री है तो नागशर्म ने नागश्री को कुछ विद्या भी पढ़ाई है कि नहीं। व्याकरण, छंद, अलंकार, नाममाला, नाटक, राजनीति, कथा, पुराणादिक, लौकिक चमत्कारी शास्त्र, और आचार, गणित, न्याय आदि अध्यात्म शास्त्र शिक्षा विवेक धर्मादिक की सिद्धि के अर्थ और अज्ञान की हानि के अर्थ समस्त जन अपने पुत्रादिकों को पढावें हैं इस ने क्या पढ़ाया है, तब नागशर्म बोला मैंने तो कुछ भी शास्त्र नागश्री को नहीं पढ़ाया तब मुनि वोले तूने इस को कुछ भी शास्त्र नहीं पढ़ाया है तो यह नागश्री तेरी पुत्री कैसे होय, बालकों को जो शास्त्र पढ़ावे हैं उन ही के वह पुत्र पुत्री होते हैं, सो नागश्री को हमने शास्त्र पढ़ाया है इस से यह नागश्री हमारी पुत्री है फिर नागशर्म बोला। हे योगिन्! तैंने नागश्री को क्या शास्त्र पढाया है सो मुझे आदर थकी कहो, तब सूर्यमित्र मुनिराज प्रकट कहते भये मेरे पढाने से यह पुत्री नागश्री अनेक श्रुत सागर के पार को प्राप्त भई है, इस में कुछ भी संशय नहीं है यह बचन मुनिराज के सुन सकल सभाजन जब अत्यंत आश्चर्य को प्राप्त भये। तब राजा चंद्रवाहन हाथ जोड़ नमस्कार कर इस भांति सूर्यमित्र मुनिराज को पूछता भया। कैसा है राजा? आश्चर्य कर सहित है मन जिसका, हे मुनिराज जो इस कन्या को आप ने शास्त्र पढाया है, तो पाप की हानि के अर्थ इसकन्या की परीक्षा दिलावो, तब योगीश्वर विस्मयकारिणी बाणी कर श्रेष्ठ बचन कहते भये। हे राजन्! यहां ही में शास्त्रों की परीक्षा दिवावूं

हूं इस भांति कह कर पंडितों की सभा के मध्य नागश्री के मस्तक पर दहिना हाथ फेर सूर्यमित्र मुनिराज दिव्यवाणी कर प्रकट कहते भय हे वायुभत, राजगृह नगर विषे मैं सूर्यमित्र तुझ को बहुत शास्त्र पढ़ाये थे उन सकल शास्त्रों की नृप चन्द्रवाहन आदि समस्त पंडितों को अब परीक्षा देओ जिस कर के इन का संशय दूर होय, इस भांति सूर्यमित्र मुनिराज के कहने से नागश्री दिव्य वाणी कर सरस्वती समान अनेक शास्त्रों के अर्थ प्रकट कहवे को प्रारंभ करती भई, जो कोई पंडित जिस शास्त्र का जैसा स्थल जिस वाणी कर पूछे, उस पंडित को उस शास्त्र के वैसे स्थल का तिस वाणी कर नागश्री प्रकट उत्तर देवे है ॥

भावार्थ–जिन वाणी के चार अनुयोग हैं, जिन विषे किसी ने प्रथमानुयोग का स्वरूप पूछा। तब नागश्री ने कहा, जिस विषे तीर्थंकर आदि त्रेसठ श्लाका पुरुषों के पुराण और मोक्षगामी महंत पुरुषों के चरित्रोंका भवावली सहित पुण्य पापके फलका सब विस्तार कर कथन होय सो प्रथमानुयोग है, किसी ने पूछा करणानुयोग का स्वरूप क्या है, नागश्री ने कहा। जिस विषे गुणस्थान आदि बीस प्ररूपणा का और ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों का बंध उदय उदीर्णा और सत्ता का और तीनों योगों के द्वारे कर्म नौ कर्म के निमित्तभूत समय समय पुद्गल द्रव्य के आगमन का और औपशमिक आदि पंच भावों का और तीन लोक के संस्थान का और इक्कीस भेद संख्या प्रमाण का

आठ भेद उपमा प्रमाण का और इन प्रमाणोंके विशेष चोदह धारा आदि अनेक धारा का सविस्तर वर्णन होय सो करुणानुयोग है, किसी ने कहा । चरणानुयोग का क्या स्वरूप है, नागश्री ने उत्तर दिया । जिस विषे अठाईस मूल गुण, चौरासी लाख उत्तर गुण अठारह हजार शील के भेद, पांच प्रकार चारित्र और दीक्षा शिक्षा प्रायश्चित्तादि देने का विधान स्वरूप मुनि के आचार का, और सम्यक्त्वादि आठ मूल गुण, ग्यारह प्रतिमा रूप श्रावक धर्म का सविस्तर वर्णन होय सो चरणानुयोग है और किसी ने द्रव्यानुयोग का कथन पूछा। तब नागश्री उत्तर दिया कि, जिस विषे षट् द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय इन का और प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण और प्रमाणों के एक देशरूप नैगमादि सप्त नयका और सप्त भंगों कर चार निक्षेपों का वस्तु का यथावत् स्वरूप साधने का और बौद्धादिकों कर कल्पना किये छै प्रमाण, तहां बौद्धों के प्रत्यक्ष अनुमान दोय प्रमाण और सांख्य के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, यह तीन प्रमाण, और नैयायिकों के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमा, यह चार प्रमाण, और नैयायिकों के दूसरे मत विषे प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमा, अर्थापत्ति यह पांच प्रमाण और जैमिनी के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमा, अर्थापत्ति, अभाव यह छै प्रमाण इन के निराकरण का और नय निक्षेपों के प्रचार कर रहित केवल निज शुद्धात्म स्वरूप निज स्वभाव के अनुभव का सविस्तर वर्णन होय ,सो द्रव्यानुयोग है, ऐसे चारों अनुयोगों के स्वरूप और तिन

अनुयोगों के अधिकार और अधिकारों विषे अवांतर अधिकार, और सुखमा दुखमा आदि दुखमा दुखमा पर्यंत षट् काल की स्थिति का, और तीन काल विषे जीवों की जघन्य उत्कृष्ट आयु और शरीर की अवगाहना, शरीर के वर्ण, और सुख, दुःख, बल वीर्यादिकों की हानि बृद्धि का स्वरूप आदि समस्त प्रश्नो के अनुसार उत्तर रूप वचन नागश्री ने प्रकट कहे, इस भांति नागश्री के मुख से श्रुताध्ययन संबंधी परीक्षा दिवाने से समस्त ज्ञानी जनों के हृदय विषे अत्यंत आश्चर्य भया। तब राजा चंद्रवाहन सूर्यमित्र मुनिराज को नमस्कार कर प्रकट श्रेष्ठ वचन कहता भया। हे नाथ! यह नागश्री सर्वथा तुम्हारी ही पुत्री है, नागशर्म ब्राह्मण की नहीं, परन्तु मेरे वा और सज्जन पुरजनों के चित्त विषे एक कौतुक रूप संदेह प्रवर्ते है। कि हे प्रभो! परीक्षा देने के अर्थ तो नागश्री के सिर पर हाथ फेर वायुभूत का नाम उच्चारण किया और श्रुत की परीक्षा वायु भूत के नाम कर नागश्री के मुख से दिवाई सो यह समस्त लोगों के बड़ा कौतुक , तब राजा के प्रश्न से फिर सूर्यमित्र मुनि बोले। हे राजन्! जो भवांतर विषे वायुभूत था सो ही निश्चय कर यहां नागश्री भई है, यह वचन मुनि के सुन कर उपजा है आश्चर्य जिस को? ऐसा राजा चंद्रवाहन हाथ जोड़ सिर नवाय सूर्य मित्र मुनिराज को नमस्कार कर अमृत समान कोमल बाणी कर प्रार्थना करता भया। हे भगवन्! हम सबों पर कृपा कर नागश्री और वायुभूत सम्बन्धी पूर्व भवों का दिव्यबाणी

कर उपदेश करो, इस भांति चन्द्रवाहन के प्रश्न करने से सूर्यमित्र मुनिराज भव्य जीवों के हित की सिद्धि के अर्थ और सकल जीवों के उपकार के अर्थ और धर्मकी वृद्धिके अर्थ नागश्रीके पर्वभव कहत भये ॥

हे राजन् धर्म और धर्म के फल विषे प्रीति की बढावन हारी नागश्री की कथा और वायु भूत के भव विषे हमारे संबंध का कारण और पुण्य पाप के उपार्जन कर अनुभव किये भवांतर विषे सुख दुःख आदि समस्त कथन तुझे कहूं हूं, सो तू अपने चित्त को एकाग्र कर सकल सभाजन कर, सहित श्रवण कर ॥

महान पाप के उपार्जन से नागश्री के जीवने भवावली विषे नाना प्रकार दुःख भोगे और अघ की करन हारी अनेक दुर्गति पाई फिर व्रतधारणकर संचय किया जो पुण्य का लेश तिस के फल से नागशर्म ब्राह्मण के यह सती नागश्रीनामा पुत्री भई है सो समस्त संबंध प्रकट पणे कर कहूं हूं तिसको अहोभव्य जीव हो, तुम एकाग्रचित्त कर सुनो यह तीसरा अधिकार पूर्ण भया यहां तीसरे अधिकार के अंत में श्री सकल कीर्ति मुनि इस ग्रंथके रचिता अंत मंगल के अर्थ श्रीपंच परमेष्ठि को नमस्कार करे हैं, कैसे हैं पंचपरमेष्ठि अनुपम गुणों के समुद्र और साक्षात् धर्म के स्वरूपके दिखाने विषे दीपक समान पंच महाव्रत रूप आभूषण के धरन हारे स्वर्ग मुक्ति के कारण इंद्र नरेंद्र नागेंद्रों कर पूजनीक और कर्म रूप वैरियों के जीतन हारे पांचों इंद्रियों के विषयों से पराङ्मुख ऐसे परमपूज्य

पंच परमगुरु अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु उनको मैं नमस्कार करूं हूं ॥

इत्याचार्य सकल कीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृतग्रंथ उसकी देश भाषामय वचनिका विषे कुशील परिग्रह के संबंध कर जीवों के प्रत्यक्ष दुःख देखने का और नागश्री संबंधी भवांतर के प्रश्न का है वर्णन जिसमें ऐसा तृतीय अधिकार समाप्त भया ॥



४ चौथा अध्याय

(नागश्री के भवों का वर्णन)

**चौपाई—अर्हंत सिद्धसूर उवझाय। सकल साधु के प्रणमूं पाय।
जिननैं रागरोष निरजया। ते मुझ निजगुण दो कर दया॥**

अथानंतर—इसही जंबूद्वीप विषे भरतक्षेत्र वत्सदेश विषे कौशांबी नामानगरी उसका राजा अतिबल उसके प्राणों से भी प्यारी मनोहरी नामा पटराणी, और सकल शास्त्रों का ज्ञाता सोमशर्म नामा

ब्राह्मण पुरोहित, उसके काश्यपी नामा ब्राह्मणी उनके दो पुत्र थे, बडा अग्नि भूत छोटा वायु भूत दोनों भाईं बाल पणे से पिता के अति लाडले यथेच्छ क्रीडा करते थे बहुत उपायकर पिताने पढाये तो भी नहीं पढे, केवल मूर्ख ही रहे, किसी पाप के उदय कर उनका पिता सोमशर्म परलोक गया, तब राजा अति बल विना बिचारे अग्नि भूत वायु भूत को पुरोहित का पद दिया इस भांत वह दोनों भाई सोमशर्म के पुत्र शास्त्र के ज्ञान कर रहित विषय सुख भोगते तिष्ठते थे, उस समय अनेक देशों में भ्रमण करता और तर्क शास्त्र के विवाद कर अनेक वादियों के बाद के मद को दूर करता ऐसा एक विजय जिव्ह नामा वादी आय कर वादियों से वाद करने के अर्थ राजद्वार पर बाद पत्र (विज्ञापन) लगाया यहां बाद करने का अधिकार केवल पुरोहित का है अन्य का नहीं यह विचार कर अन्यबादियों ने बाद पत्र ग्रहण नहीं किया, तब राजा अतिबलने इन दोनों भाइयों को यह आज्ञा दी, कि हे द्विज पुत्र हो, तुम अपनी बुद्धिमानी से इस वादी को बाद पत्र का अच्छी तरह उत्तर दो । तब वह अग्निभूत वायु भूत दोनों भाई तिस वाद पत्र को लेय शीघ्रही फाड डाला तब राजाने उन दोनों भाइयों को बडे मूर्खजान अनेक दुर्वचन कह अपमानकर उनका दावेदार जो सोमिल ब्राह्मण था उसको शीघ्रही पुरोहित का पद दिया, तब वह दोनों भाई मान भंग के दुःख कर हृदय विषे अत्यंत खेद खिन्न और नष्ट भई है आजीविका जिनकी वह अपने घर विषे इस प्रकार विचार करते भये, अहो हम मंद भागी हैं,

पिता पढाय तो भी पाप के उदय कर नहीं पढे कुमार्गमें लीन भये अति मूर्ख ही रहे, पुरुषो के ज्ञान रूप नेत्र बिना धर्मादिक की परीक्षा कहां और ज्ञान बिना लोक में मान्यता कैसे होय, और परलोक विषे सुख कैसे होय, जिन जीवों ने गुरु के निकट कल्याण का दायक समस्त तत्त्वों का प्रकाशक ज्ञान रूप नेत्र नहीं पाया वह पुरुष इस लोक विषे अंधे ही हैं जे दुर्बुद्धि तात मात गुरु जनादिक की शिक्षा और हितोपदेशादिक नहीं माने हैं उन पापी जीवों के दोनों लोक बिगडे हैं, ज्ञानाभ्यास कर निर्मल ज्ञान की उत्पत्ति होय है ज्ञानाभ्यास करके ही सत्पुरुषों को मोक्ष का लाभ होय है इस भांति विचार कर वह दोनों भाई अग्निभूत और वायुभूत श्रुतज्ञान के पढ़ने के अर्थ देशांतर जाने को शीघ्र ही उद्यमी भये, तब उनकी माता काश्यपी उनका विद्याभ्यास विषे अत्यंत आग्रह जान हितके अर्थ अपने पुत्रों को इस भांति कहती भई, कि हे पुत्रो राजगृह नगर विषे राजा सुबल के सुप्रभा नामा पटराणी है और हमारा भाई सूर्य मित्र पुरोहित है, कैसा है सूर्यमित्र, ज्ञान विज्ञान कर सहित है, और अति प्रवीण सकल पडितों विषे अग्रगामी है, और तुम्हारा मामा है, सो राजगृह विषे विद्यमान है, जो तुम दोनों के विद्याध्ययन विषे आग्रह है तो तुम दोनों शीघ्र ही जायकर सूर्यमित्र के समीप विद्याध्ययन करो, इस भांति माता के वचन प्रमाण कर वह दोनों ब्राह्मण विद्याके अर्थ कौशांबी नगरी से निकलकर अनुक्रम से राजगृह नगर में पहुंचे, वहां सूर्य मित्र द्विजोत्तम को मस्तक नवाय

नमस्कारकर इस भांति अमृत समान वचन कहते भये,हेमातुल, पूर्व पिताने हठकर विद्या पढ़ाई,तो भी
हम कुछ नहीं पढे, केवल घर विषे मूर्खही रहे, अब पिता के मरे पीछे राजा अति बलने हमारा पुरो-
हित पद सोमिल ब्राह्मण को दे दिया, और हम पद भ्रष्ट भये, और आजीविका से . भी रहित भये
तब माता ने यहां तुम्हारे पास बहुत शास्त्र पढ़ने को हम को भेजे हैं और तुम हमारे हितकारी हो इस
भांति जानकर तुम हमको शास्त्र पढाओ ताकि नष्ट भया जो पुरोहितपद सो शास्त्रअभ्यासस हमारे
फिर होजायगा,यह वचन सुनकर बुद्धिवान सूर्यमित्र अपने चित्त विषे इसभांति विचार करता भया
अहो यह दोनों भाई यथेष्ट खान पानादि के लोभ से पिता के पास विद्या नहीं पढे सो यदि मैं भी
इन को यथेच्छ भोजन दूंगा तो यह दोनों शैलानी होजायेंगे, रंच मात्र भी विद्याध्ययन नहीं करेंगे,
और विद्याध्ययन बिना इनके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी,इसभांति विचारकर सूर्यमित्र पुरोहित प्रकट
कहता भया अहो द्विज पुत्र हो, मेरे तो कोई वहिन ही नहीं तब तुम दोनों विद्या हीन भाणजे कहां
से भये, बहिन होवे तो भाणजेका होना सभव है सो बहिण बिना तुम भाणजे कहां से भये इस लिये
तुम्हारी माता मेरी बहिन नहीं औरर तुम मेरे भाणजे नहीं पस यदि तुम अन्य ब्राह्मणोंके घर भिक्षा
वृत्ति से भोजनकर यहां अध्ययन करो तो विद्या पढ़ा दूंगा सो तुम विद्या के अर्थी हो तो मेरा कहना
मानो अन्यथा मैं विद्या नहीं पढ़ाऊंगा ऐसा कहने से वह दोनों भाई बोले हे उपाध्याय सूर्यमित्र

तुमने जैसे कही वैसे ही करेंगे, इस भांति कह कर सूर्यमित्र के समीप बडे आदर से विद्याध्ययन करने का प्रारंभ करते भये, आलस्य रहित वह दोनों ब्राह्मण के पुत्र अनुक्रम से गिनती के दिनों में ही अनेक शास्त्रों को पढ़ कर महान प्रवीण पंडित होगये अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर वह दोनों भाई अपने घर आने को उद्यमी भये, तब सूर्यमित्र ने उनको वस्त्राभरण देय हर्ष कर ऐसे कहा, हे सामशर्म ब्राह्मण के नंदन अग्निभूत वायुभूत हो, मैं तुम्हारा निश्चय से हितकारी मामा हू सा अगर मैं यहां तुम को सोमशर्म की तरह यथेच्छ रमणीक खान पानादि देता तो तुम पूर्ववत कौतक विषयाशक्त भये थके विद्याध्ययन न करते मूर्ख ही रहजाते यह विचारकर मैंने विद्याध्ययनकी सिद्धि के अर्थ भिक्षा बृत्ति से तुम को दुखित किये, कैसा हूं मैं तुम दोनों का हित का वांछक हूं, यह वचन सूय मित्र के सुन कर अति हर्षाय मान होय बडा भाई अग्निभूत सूर्यमित्र की प्रशंसा करता भया कि हे बुद्धिवान सूर्य मित्र, तुम तो हमारे पिता समान दूजे हितकारी पिता हो तुमने ज्ञान दान से यहां हमरा पंथ हितकारी अनुष्ठान किया, और यह मनुष्य जन्म सफल किया और जीव ने का उपाय दिया, विद्यादान के सिवाय और दान श्रेष्ठ नहीं है और विद्यादान के दातार के सिवाय पृथ्वी विषे और कोई श्रेष्ठ दातार नहीं है, सो जो कृतघ्नी मूर्ख विद्या दान का दातार जो उपाध्याय उस का किया कल्याण का कारण उपकार नहीं माने हैं उन पापियों की समस्त विद्या पाप से नष्ट होय है, और

मूर्खपन की प्राप्ति होय है और परभव विषे नरकादिक गति होय है उसी समय दूसरा भाई दुराचारी वायुभूत सूर्यमित्र गुरु पर कोपायमान होय अपनी दुर्गति की करणहारी गुरु की बड़ी निंदा करता भया, रे सूर्य मित्र! रे अधम! रे दरिद्री! तू चांडाल समान है, रे दुराचारी! तैंने बलात्कारे घर घर भिक्षा मंगा मंगा कर हम को विद्या पढाई ॥

"अब कारण पाय ग्रन्थ करता आचार्य यहां कहे हैं, अहो भव्य जीवहो, देखो एक माता के उदर से उत्पन्न भये जो अग्निभूत वायुभूत दोनों भाई उन विषे महान अंतर है देखो अग्निभूत ने तो गुरु की प्रशंसा करी और वायुभूत ने गुरु की निंदा करी इससे यह जानिये है कि प्राणियों के कर्मों की गति विचित्र है" ॥

अब वह दोनों भाई राजगृह नगरसे कौशांबीपुर आयकर राजा अतिबल को आशीर्वाद देय अमृत समान बचन कह कर अपने शास्त्राभ्यासकी कुशलता प्रकाशी, सो नृपने आदर पूर्वक उन को अपना पुरोहित पद फिर दुवारा दिया सो यह दोनों भाई अपना पुरोहित पद अंगीकार कर बडी संपदा सहित आनंद से कौशांबी पुर विषे तिष्ठते भये, यह कथा तो यहां ही रही ॥

अथानन्तर—एक दिन राजगृह नगर का राजा सुबल स्नान के अवसर विषे अपनी देदीप्यमान मणियों कर जडित स्वर्ण मई मुद्रिका तैल मर्दन के अवसर मंद कांति होने के भय से सूर्यमि

को दी, तब सूर्यमित्र उस मुद्रका को अंगुरी विषे धारण कर अपने घर आया। वहां ब्राह्मण के स्नान सन्ध्या तर्पणादि कर्म कर और भोजन कर फिर राज मंदिर जाय था, सो उस मुद्रिका को अंगुरी विषे नहीं देख कर अत्यंत खेद खिन्न भया, तब मुद्रिका के जानने निमित्त परमबोध नामा निमित्त ज्ञानी को बुलाय कर इस भांत पूछी अहो निमित्तज्ञानी हो रत्न जड़ित स्वर्ण मई मुद्रिका अंगुठी मेरे हाथ में से जाती रही सो कृपा करके यह बतलाइये कि पावेगी या नहीं। तब पुरोहित के प्रश्न से निमित्त ज्ञानी अपने निमित्त को विचार कर कहता भया। हे सूर्यमित्र ! तुझे उस मुद्रिका का अवश्य लाभ होगा, ऐसे कह कर निमित्त ज्ञानी तो अपने घर गया, परन्तु सूर्यमित्र पुरोहित शोक कर खेद खिन्न अपने महल में तिष्ठे था। उस समय उस नगर के बाहर उद्यान विषे चतुर्विध संघ सहित सुधर्म नामा आचार्य पधारे, यह सुन कर पुरोहित अपने चित्त विषे विचारी कि यह ज्ञानी मुनि ज्ञान नेत्र कर मुद्रिका को प्रत्यक्ष बता देंगे, इस से गुप्त रूप से एकाकी जाय कर इन को पूछूं, कैसे हैं सुधर्माचार्य ? अनेक भव्य जीवों को सम्बोधने वाले हैं, और इंद्र नरेन्द्र नागेन्द्रों कर सेवनीक हैं चरण युगल जिन के तीन ज्ञानादि अनेक गुणों के धारक समस्त जीवों के हितकारी हैं और जगत कर बन्दनीक जगत विषे श्रेष्ठ समस्त जगत के स्तुति करने योग्य हैं, सो पुरोहित सूर्यमित्र पुण्य के उदय कर काल लब्धि के योग से दिन के अस्त होने के अवसर मुद्रिका के पूछने के निमित्त शीघ्र ही बन विषे

सुधर्माचार्य के समीप गया, वहां ज्ञानवृद्धि आदि अनेक गुणों के आकर और शरीरादिक विषे निर्मोही
मोक्ष के साधन विषे लवलीन ऐसे योगीश्वर को देख कर लज्जा और अभिमान के योग से प्रश्नकर
करने को असमर्थ और कार्यका अर्थी ऐसा जो पुरोहित सो कार्य्य की सिद्धि के अर्थ मुनि के चहुंओर
भ्रमण करे। सो उसको वह परोपकारी योगीश्वर अवधि ज्ञान के योग कर अत्यंत निकट भव्य जान
इस भांति अमृतमय वचन कहते भये। कि हे सूर्यमित्र ! नृप की रमणीक मुद्रिका को कर की अंगुरी
से गेर कर चिंतातुर भया थका तू यहां मेरे पास आया है, तब सूर्यमित्र अपने मनमें यह विचारता भया
कि जो समस्त कार्य्य मेरे चित्त विषे थे सो सारे बिना कहे मुनि ने बतला दिये तब सूर्यमित्र अपने
हृदय विषे बहुत आश्चर्य को पायकर शीश नवाय मुनि को नमस्कार कर ऐसे पूछता भया। हे ज्ञानिन्
जहां मुद्रिका पड़ी होय सो मुझे कहो, तब वह ज्ञानरूप नेत्र के धारी सुधर्माचार्य इस भांति कहते भये।
हे धीमन (बुद्धिमान)! तेरे महल के पिछाड़ी बाग के मध्य सरोवर की पाल पर खड़ा रह कर तू सूर्य
को अर्घ देवे था तब तेरे कर की अंगुरी से निकस कर मुद्रिका सरोवर के जल में कमल की कर्णि
का विषे शीघ्र ही पड़ी, अबार अदृश्य विद्यमान है, इस से हे भद्र मुद्रिका संबंधी शोक छोड़, और
मेरे बचन विषे निश्चय कर इस भांति मुनि के बचन सुन कर जहां मुद्रिका बताई थी, वहां जाय
तैसे ही मुद्रिका कर्णिका विषे पड़ी देख मुद्रिका को ग्रहणकर हर्षायमान होय राजा की भेटकर विस्मय

को प्राप्त भया। सूर्यमित्र पुरोहित चित्त विषे इसभांति विचारता भया अहो यह मुनिराज प्रत्यक्ष सर्व के ज्ञाता ज्ञानी पुरुषों के मध्य अनुपम महा ज्ञानी हैं, और भूमि विषे समस्त निमित्त ज्ञानियों के मध्य सारभूत यह ही निमित्त ज्ञानी हैं, इस कारण से इस मुनीन्द्र का आराधन कर जिस निमित्त ज्ञान से प्रत्यक्ष मुद्रिका बताई तिस निमित्त ज्ञान की प्रार्थना करूं, उस निमित्त ज्ञान कर सत्पुरुषों और पंडितों के मध्य मेरी बड़ी विख्याततता होयगी, और महान् ऐश्वर्य का लाभ होयगा, लोक विषे मानता होयगी, और परम पद का लाभ होयगा। इस भांति विचार कर अति लोभी सूर्यमित्र सर्व से गुप्त रूप निमित्त ज्ञान सीखने को सुधर्माचार्य के समीप गया, वहां योगीराज को हाथ जोड़ सिर निवाय प्रणाम कर भले वचन से प्रार्थना करी। हे भगवन्! हे कृपानाथ !! प्रत्यक्ष अर्थ को प्रकाशिनी अति दुर्लभ यह विद्या मुझे देवो, तब वह सुधर्माचार्य अवधिज्ञानी सूर्यमित्र के हित के इच्छक सूर्यमित्र को बोले। हे भद्र ! यह प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी परम विद्या निर्ग्रंथ ज्ञानी मुनि बिना और के प्रकट परिणित को नहीं प्राप्त होय है। और पुरुष के सिद्ध नहीं होय, सो तू भी विद्या का अर्थी है तो मुझ समान निर्ग्रंथ होजा। यह वचन सुधर्माचार्य के सुन कर सूर्यमित्र अपने घर जाय समस्त परिवार को बुला निर्ग्रंथ भेष की सिद्धि के अर्थ इस प्रकार प्रार्थना करता भया। अहो सज्जन पुरुषो ! सुधर्माचार्य के निकट प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी प्रत्यक्ष चमत्कारिणी महा विद्या है, परन्तु निर्ग्रंथ भेष बिना

यह विद्या हम को देवे नहीं इस से विद्या के लाभ के अर्थ निर्ग्रंथ होकर छल से विद्या को ले अपना कार्य कर शीघ्र ही मैं वापिस आऊंगा, यहां मेरे वियोग से तुम को रंचमात्र भी शोक करना योग्य नहीं है, तब वह सज्जन विद्या के लोभ से सूर्यमित्र को बोले। हे सूर्यमित्र! जो तुम ने विचारी सोई नीकी है, परन्तु विद्या का लाभ भये पीछे अटकियो मत, तुरत ही आजाइयो॥

इस भांति विचारकर सूर्यमित्र पुरोहित तुरत ही मुनि के समीप जाय सिर नवाय प्रणाम कर केवल विद्या के लाभ के निमित्त इसभांति कहता भया। हे भगवन्! मेरे विद्यालाभ की सिद्धि के अर्थ निर्ग्रंथ मुनि का भेष आदि जो कर्तव्य हो सो करके मुझे शीघ्रही प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी कल्याण रूपणी विद्या देवो। तब उन सुधर्माचार्य भावीकाल संबंधी समस्त पदार्थों के ज्ञाता ने, वाह्याभ्यंतर चौबीस प्रकार परिग्रह का त्याग कराय सूर्यमित्र ब्राह्मण को सुरशिव संपदा के कारण सारभूत अठाईस मूल गुण सहित भगवती दीक्षा दीनी, कैसी है दीक्षा? तीन जगत के जीवों कर बंदनीक है, और तीन लोक के सुख की करणहारी है, उस ही समय वह सूर्यमित्र पुरोहित सुधर्माचार्य को नमस्कार कर यह प्रार्थना करता भया। हे भगवन्! कृपा करके अब मुझे प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी विद्या देवो। तब सुधर्माचार्य बोले। हे धीमन क्रिया! कलाप आदि अनुयोगों के अभ्यास किये बिना वह विद्या सत पुरुषों को भी सिद्ध नहीं होय है, यह बचन सुन कर सुबुद्धि सूर्यमित्र पुरोहित ने बड़े उद्यम कर

गुरु के पास चारों अनुयोग पढ़ना प्रारंभ किया, वहां प्रथम ही परम पुनीत जो त्रेसठ शलाका पुरुषोंके पूर्व भव और सुख,आयु,कायविभूति आदि का प्ररूपक और धर्मका कारण ऐसा जो प्रथमानुयोग उसको पुण्य पाप के फल की प्रकटता के अर्थ पढ़ता भया, और लोक अलोक के विभाग को तथा लोकालोक के आकार विशेष का प्ररूपक और सात नरक आदि चारों गति के दुःखादिक का प्ररूपक और स्वर्गादिक के सुख संपदा का प्ररूपक ऐसा जो सकल वस्तु तत्व के दिखाने को दीपक समान करुणानुयोग सिद्धांत सो गुरु के मुख से अध्ययन किया, फिर मुनि श्रावकों की क्रिया, आचार गुण और जघन्य मध्यम उत्कृष्ट श्रावक के तीन भेद, तथा महाव्रत, अणुव्रत, अठारह हजार शील के भेद चौरासी लाख उत्तर गुण तथा तीन गुण व्रतचार शिक्षा व्रतरूप श्रावक के सात शील भेद और इन के स्वर्ग मोक्षादिक फल आदि जिस विषे निरूपण किये ऐसा जो सिद्धांत सो चरणानुयोग श्रीगुरु के बचन कर नीके अभ्यास किया, फिर जिस विषे षट् द्रव्य, सप्ततत्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय आदि समस्त पदार्थों का संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहित सांचे लक्षण और जैन दर्शन कहिये सम्यक्दर्शन अथवा जिनमत का सांचा स्वरूप तथा एकांत, विपरीत, विनय, संशय, अज्ञान रूप पंच भेद मिथ्यात का निराकरण और सांचे झूठे मत के देव, गुरु धर्मादिक की परीक्षा ही हाय ऐसा परमोत्तम द्रव्यानुयोग श्रीगुरु के पास बहुत नीके अभ्यास किया, सो सूर्यमित्र मुनि द्रव्यानुयोग

के अभ्यास करने से उत्तम सम्यग्दृष्टि होकर हेय जो तजने योग्य और उपादेय जो ग्रहण करने योग्य जे अन्यमत कर कहे और जिनमत कर कहे पच्चीस सोलह और सात तत्व नव पदार्थ जिन के शुभाशुभ लक्षण धर्म अधर्म के भेद और जिनमत तथा अन्यमत के भेदों को भले प्रकार जान कर महा बुद्धिवान निर्मल चित्त विषे इस भांत प्रकट विचार करता भया। अहो, श्रीजिनेन्द्र देव के मुख से प्रकट भया। और स्वर्ग मुक्ति के सुख का कारण ऐसा जिनमत ही यह सारभूत जगत पूज्य सांचा दीखे है, और अन्य मतियों कर कल्पना किये बहुत निंदनीक जे अन्य मत वह हालाहल समान अनेक जन्म विषे प्राणों के घातक हैं, अब मुझ को नरक निगोद के कारण भाषे हैं और सर्वज्ञ देव कर कहे सम्यक्ज्ञानके कारणभूत यह जीवादि समस्त पदार्थ मुझको सार सहित भासे हैं, और कुमार्ग गामियों कर कहे कल्पित यह खोटे तत्व झूठे महान पाप के कारण मैंने अज्ञान से वृथा ही अभ्यास किये मति श्रुति है नाम जिनके ऐसे परोक्ष दो ज्ञान जगत के हितकारी केवल ज्ञानवत लोकालोक संबंधी समस्त पदार्थों को परोक्ष प्रकाशे हैं, और यहां ही जिसकर समस्त मूर्तीक द्रव्य और जीवोंके भवांतर प्रत्यक्षपणे साक्षात् देखिये हैं, ऐसा अवधि ज्ञान है, तिस देशावधि, परमावधि, सर्वावधि कर तीन भेद हैं, उन विषे देशावधि ज्ञान तो चारों ही गति विषे सम्यग्दृष्टि जीवों के भव प्रत्यय अथवा अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उपजे है, और परमावधि सर्वावधि ज्ञान तद्भवमोक्षगामी भावलिंगी

नोंही के उत्पन्न होय है, अन्य जीवों के नहीं होय हैं और रूपी द्रव्यों के सूक्ष्म तत्त्व के प्रत्यक्ष
ने को दीपक समान मनः पर्ययज्ञान भावलिंगी निर्ग्रंथ मुनीश्वरों क ही होय है और द्रव्यलिंगी
ों के कुमति कुश्रुत विभंग ज्ञान होय है सम्यग्ज्ञान कभी भी नहीं होय हैं और चार घातिया
के नाश से केवल ज्ञान प्रकट होय है, कैसा है केवल ज्ञान त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को
जाने है, यह केवल ज्ञान त्रिलोक दीपक आत्मा का निज स्वरूप है, यह पांच भेद सम्यक्ज्ञान
पदार्थों के प्रकाशक हैं, इन ज्ञानों के देने का लोक विषे कोई भी किसी को समर्थ नहीं हैं,
रण कर्म के क्षयोपशम से अथवा क्षय से योगीश्वरों के यह पांच ज्ञान स्वयमेव प्रकट होय हैं
ार ज्ञान तो ज्ञानावरण के क्षयोपशम से होय हं, और केवलज्ञान चार घातिया कर्मों के क्षय
है, यह मैंने आत्म हित के अर्थ भला उत्तम कार्य किया जो अवधि ज्ञान के लोभ कर
संयम ग्रहण किया, जैसे कंद मूल को हेरते हेरते निधि का लाभ होय तैसे ख्याति पूजा के
से मेरे दीक्षारूप निधिका लाभ भया, और यह सुधर्माचार्य जो समस्त जीवों के हित के वांछक
की आज्ञा रूप भला उपाय कर मुझ को भगवती दीक्षा दई, कैसी है भगवती दीक्षा समस्त
की हितकारिणी है, इस दीक्षा कर आज मैं कृत्य कृत्य हूं, और मोक्षमार्गी हूं और समस्त पापों
हित पवित्र मैं आज तीन जगत कर पूज्य भया इस संसार विषे अनादि काल से दुर्लभ ऐसी यह

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र की एकता रूप जो बोधि सो महान् उदय कर जिन शासन विषे मैंने पाई, हमारे भुक्ति मुक्ति के दायक निर्दोष अर्हंत देव हैं, अनन्त गुणों का आकर और तीन जगत का नाथ ऐसा अर्हंत देव मैंने काल लब्धि से पाया है और दुस्तर संसार समुद्र के तिरवे को अथवा भव्य जीवों को तारने को समर्थ ऐसा निर्ग्रंथ गुरु मैंने बडे पुण्य के उदय कर पाया है कैसा है निर्ग्रंथ गुरु ? धर्म रूप है बुद्धि जिसकी इस संसार विषे मिथ्यामार्ग में तिष्ठते थके मेरे इतने दिन वृथा ही भये, और स्नान संध्या तर्पणादि विषे मेरे केवल संक्लेश ही भया ये जीव मिथ्यादृष्टि जिन धर्म से पराङ्मुख देव कर ठगे थके धर्म के अर्थ कुमार्ग विषे वृथा ही खेद खिन्न होय हैं इससे तीन लोक विषे सारभूत ऐसा जिन शासन मैंने अति दुर्लभ पाया सो मैं आज महान पुण्य वान भया और आज मैं धन्य भया और आजही मैं मोक्ष मार्ग विषे गमन करण हारा भया, जैसे जोतिषी देवों विषे श्रेष्ठ सूर्य है और धातुओं के मध्य स्वर्ण की खानि श्रेष्ठ है और पाषाणों विषे चिंतामणि परम श्रेष्ठ है, वृक्षों में कल्प वृक्ष, स्त्री पुरुषों के मध्य शीलवान स्त्री पुरुष, धनवान पुरुषों में दातार, तपस्वियों में जितेंद्री पुरुष, और पंडितों में ज्ञानी जीव, उत्तम आचरण के धारी श्रेष्ठ हैं तैसे समस्त धर्मों के मध्य श्रीजिनेंद्र कर भाषित दया मई धर्म परमश्रेष्ठ है, और समस्त मार्गों में श्रीजिनेंद्र कर भाषित निर्ग्रंथ भेष रूप जिनेंद्रमार्ग ही उत्तम श्रेष्ठ है, जैसे गऊ के सींग से दूध और, सर्प के मुख से अमृत

और अनाचार (कुकर्म) से यश, मान से महंत पणा कदाचित् भी नहीं, पाइये है, तैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्मके सेवनसे कुमार्ग विषे प्रवर्तनेसे और खोटे शास्त्रों के अध्ययनसे श्रेय कहिये कल्याण और शुभ कहिये पुण्यकर्म और शिव कहिये मोक्ष कदाकाल भी नही पाइये ॥

इत्यादिक चिंतवन करने से सूर्यमित्र मुनिराज अत्यंत दृढ़ वैराग्य को पायकर और कर-तल की रेखा समान समस्त हेयोपादेय वस्तुओं को जान कर और सम्यग्ज्ञान के प्रभाव से बारह प्रकार संयम विषे लवलीन होय कर जिन शासन विषे कहे जे व्रत और तप उनके पालने को उद्यमी भये, इस भांति ज्ञानाभ्यास कर सूर्यमित्र मुनिराज इंद्र नरेंद्र नागेंद्रों कर पूजनीय भये, कैसे हैं, सूर्यमित्र मुनिराज ? सम्यग ज्ञानादि, अनेक गुणों की है, निरंतर बढवारी जिनके, और तीन लोक विषे विख्यात है कीर्ति जिन की और सम्यग् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र की एकता रूप जो मोक्ष मार्ग उस विषे अतिचार रहित हैं गमन जिनका ऐसे परमोत्कृष्ट भये ॥

इस लिये हे भव्य जीव हो, तुम भी ऐसे जानकर बड़े आदर से सकल शास्त्रों का अध्ययन करो, समस्त पापों का विनाश करनहारा और पुण्यका निवास यह सम्यग्ज्ञानहै, और ज्ञानवानपुरुषही ज्ञान का आश्रय करे हैं और शिवरमणीके चरणारविन्द ज्ञान करही अवलोकन करिये है इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्र, ज्ञान ही के अर्थ शीश नवाय नमस्कार करे हैं, समस्त जीवों के ज्ञान को टार अनुपम दूजा नेत्र नहीं

है, ज्ञान नेत्र से ही समस्त वस्तु यथावत जानी जाय हैं, और ज्ञान का फल समस्त कर्मों का अत्यंत क्षय रूप मोक्ष है, और मैं भी ज्ञानही विषे निरंतरमन लगाऊं हूं इस लिये हे ज्ञान तू मुझे ज्ञानी कर॥ इति श्री सकल कीर्ति आचार्य विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ उसकी देश भाषामय वचनिका विषे सूर्यमित्र पुरोहित के दीक्षा ग्रहण का वर्णन जिस में है ऐसा चौथा सर्ग समाप्त भया॥



५ पांचवां अधिकार

(नागश्री के भवों का वर्णन)

चौपाई—बाहिरभ्यंतर परिग्रह छार। गुणसंयुत धारी अविकार।
सकल शिरोमणि तिहुं जग बंद। प्रणमूं अध्यापक गुणवृन्द

अथानंतर—यह सूर्यमित्र मुनि सुधर्माचार्य सहित ग्राम, खेट, पुर, अटवी आदि अनेक दे में विहार करते अनुक्रम से इस चंपापुरी में आये, सो यह पुरी भगवान् वासपूज्य द्वादशम तीर्थं की निर्वाण भूमि है, इसके तीन प्रदक्षिणा देय स्तुति कर नमस्कार किया तब यहां निर्वाण भक्ति

सहित सुधर्माचार्य के साथ मोक्ष के अर्थ और मोक्ष को प्राप्त भये जो सिद्ध परमेष्ठी उनके गुणग्राम की भावना के अर्थ प्रदक्षिणा सहित भक्ति करनेके अवसर अंतरंग विषे परिणामों की विशुद्धता निमित्त अज्ञान रूप तिमिर का घातक और त्रिलोक विषे समस्त मूर्तीक द्रव्यों का प्रकाशक जगत विषे उत्तम ऐसा अवधिज्ञान सूर्यमित्र महामुनिके स्वयमेव प्रकट भया ॥ अहो भव्य जीव हो, निर्वान्छिक शांत परिणामी वीतरागी मुनियों के अवधिज्ञान तप के प्रभाव कर अनेक ऋद्धि स्वयमेव प्रकट होय है, इस में कुछ भी संशय नहीं ज्ञान विज्ञान कर परिपूर्ण अनेक गणों के सागर रत्नत्रय कर विशुद्ध है आत्मा जिनका, सकल संघ के भार विषे समर्थ, महातपस्वी, महाध्यानी अतिचार रहित पंच महाव्रत के धारक पांचों इन्द्रियों के विजई महाशीलवान योगियों में प्रधान शांत है परिणाम जिनके, समस्त जीवों के हित के बांछक सांसारिक सुख विषे वांछा रहित ऐसे सूर्यमित्र मुनिराज बड़े गुणों कर अनुक्रम से सकल शिष्यों के मध्य प्रधान शिष्य भये, तब पूर्वोक्त प्रकार गुणोंकर सहित सकल संघ विषे प्रधान सूर्यमित्र का अवलोकनकर और सघ के भार विषे समर्थ जान, सकल संघ की साख कर विधि पूर्वक सूर्यमित्र मुनि को आचार्य पद दे कर गुरु सुधर्माचार्य तो शिव सुख की सिद्धि के अर्थ आप एकाविहारी भये, सुधर्माचार्य एकाकी उग्रोग्र तप करते और ईर्यापथ कर अनेक देश पुर ग्रामादि विषे विहार करते, ध्यानाध्ययन विषे आसक्त, प्रमाद रहित, जितेन्द्रिय, मौन व्रत के

धारक महा धीर वीर अनुक्रम से वाणारसी आये, वहां वाणारसी के बाहर भूमि भाग विषे प्रासुक निर्जन्तु शुभ स्थान में आत्म ध्यान का अवलंबन कर सुधर्माचार्य मुनि योग धार तिष्टे, वहां आत्म ध्यान के योग कर शिव मंदिर की सीड़ी समान क्षपक श्रेणी विषे आरूढ होय निर्मल शांत परणामी योगराज चार घातिया कर्मों को निर्मूल कर नव केवल लब्धि सहित केवल ज्ञान को प्राप्त भये, कैसा है केवल ज्ञान ? शिवरमणी के मुख अवलोकन को दर्पण समान है, तब वह केवली भगवान इन्द्रादिक देवोंकर केवलज्ञान कल्याणककी पूजाको पाय वहां ही अन्तिम शुक्ल ध्यानके बलसे अब शेष चार घातिया कर्मों का निपात कर देह को त्याग निर्वाण को प्राप्त भये। कैसा है निर्वाण ? लोक शिखर पर स्थिरीभूत अनंत गुणों का सागर है, और अविनाशी अनुपम सुखों की खानि है ॥

अथानंतर-वह सूर्यमित्र मुनिराज सकल संघ के नायक धर्म की प्रभावना करते आत्मीक स्वाधीन अविनाशी सुख के अर्थ भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते पृथ्वी तल विषे विहार करते ईर्यापथ के पालक एक दिन भोजन के अर्थ कौशांबीपुरी विषे प्रवेश करते भये। वहां उन का भाणजा अग्नि भूत वायुभूत का बड़ा भाई सोमशर्म ब्राह्मणका पुत्र धर्मात्मा, परम निर्ग्रंथ अपने गुरु सूर्यमित्र मुनि-राज को दुर्लभ निधि समान देखअत्यंत हर्षायमान होय कहता भया ॥ हेभगवन्!यहां तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ, ऐसे तीन वार उच्चारण कर श्रीमुनि को पड़गाहता भया। दातार के सप्त गुण सहित

नवधाभक्ति कर सरस,मधुर,प्रासुक,ज्ञान ध्यानादिक की वृद्धिका दायक आहार दान अपने उपकार के अर्थ सूर्यमित्र मुनिराजको भाव सहित दिया,तब वह मुनिराज वीतराग परिणामोंसे भोजन कर आत्म ध्यान के अर्थ उलटे बन को चलने लगे, तब उस समय नमस्कार कर अग्निभूत ने ऐसे बचन कहे, हे भगवन् ! मेरा छोटा भाई वायुभूत क्रोध मायादि अनाचार कर और तुम सरीखे महंत पुरुषों की निंदा कर निरंतर पाप का उपार्जन करे है, इस लिये हे भगवन् ! उस दुराचारी के संबोधवे के अर्थ उस के घर पधारो, क्योंकि तीन जगत के जीवों को संबोधवे को आप ही समर्थ हो, यह वचन सुन कर मुनिराज बोले। हे अग्निभूत ! उस वायुभूत के निकट कभी भी जाना योग्य नहीं है, क्योंकि वायुभूत स्वभाव ही से रुद्र परिणामो है, और हमारे दर्शन मात्र से निंदादिक कर दुख दाई है महान पाप को अंगीकार करेगा, उस पाप कर उस का जीव चिरकाल दुर्गति विषे भ्रमण करेगा, यह बचन मुनि के सुन फिर अग्निभूत बोला। हे स्वामिन् ! मेरे ही आग्रह से आप पधारो आप के संबोधवे से उस का कुछ होनहार है सो होवेगा, इस भांति अग्निभूत के आग्रह से त्रिलोकवर्ती जीवोंके हित विषे उद्यमी और समस्त जीवों पर है समभाव जिन के,ऐसे सूर्यमित्र मुनिराज अग्निभूत की साथ वायु भूत के घर गये, वह पापी दुराचारी वायुभूत मुनि को देख कर सूर्यमित्र जान पाप के उदय से कोप थकी कटुक दुर्वचन कर मुनि की ऐसे निंदा करता भया। रे सूर्यमित्र ! पहले तू कृपण, दुष्ट, महान

कुटिल परिणामी था," और हम दोनों भाइयों को भिक्षा के अर्थ घर घर भ्रमावे था, सो अब तू पाप के उदयकर नग्न भया थका घर घर भ्रमण करे है, इत्यादिक कटुक दुर्वचन कहकर महामुनि की निंदा कर उस वायुभूत ने तिर्यंच गति का कारण निंद्य अशुभ पाप कर्म का बंध किया, सो जिसके जैसा शुभाशुभ गति होनहार है उसके वैसी ही सामग्री वहां मिल जाय है, उस के निवारण करने को कोई भी समर्थ नहीं है, वह योगी सूर्यमित्र मुनिराज उत्तमक्षमादिक गुणों कर सौम्यभाव की वृद्धि के अर्थ वायुभूत कृत आक्रोश परीषह को सहकर वहां से वनांतर को गये, तब धर्मात्मा अग्निभूत मुनि की निंदा सुन कर अत्यंत दुखी होय चित्त विषे संवेग को पाय कर समस्त विषयों विषे ऐसे चिंतवन करता भया। अहो यह अत्यन्त पापी, दुराचारी, पापबुद्धि, वायुभूत पाप कर्म के उदय से अपने दुर्गति की देनहारी इस सूर्यमित्र मुनि की निन्दा वृथा ही करी, अथवा इस वायुभूत का इस में क्या दोष है मैं पापी पापात्मा ही जो नहीं आवते भी मुनि को हठ से वायुभूत के घर लाया, कैसे हैं मुनि ? भावीकाल संबंधी समस्त शुभाशुभ होनहार के ज्ञाता हैं, इससे मुनि की निंदा कर उत्पन्न भया जो पाप कर्म का बंध सो निश्चय कर मेरे ही भया। क्योंकि कृत, कारित, अनुमोदना कर पाप कर्म का बंध होय है, सो इस पाप की शुद्धि ताके अर्थ बंदिग्रह समान घर का और अपने शत्रु समान बंधुजनों को त्याग कर संयम ग्रहण करूं मेरे उस भाई कर कहा कार्य है, जो बीतरागी गुरुओं

की निंदा करे, और इस घर कर अथवा कुटुंब कर कहा प्रयोजन सधेगा जिन कर नाना प्रकार के पाप कर्मों का आश्रय होय है अर्हंतदेव, निर्ग्रंथ गुरु और अर्हंत कर केहे, जो शास्त्र इन तीनों की भक्ति समान स्वर्ग मुक्ति का दायक संसार विषे और धर्म नहीं है और इन तीनों की निंदा समान नरक निगोद का दायक और दूसरा महान पाप नहीं है ॥

इस भांति विचार कर पुण्यात्मा अग्निभूत चित्त विषे दुगुणे वैराग्य को पाय कर संसार देह भोगों विषे उदास होय ग्रहवास का परित्याग कर बाह्याभ्यंतर चौबीस प्रकार के परिग्रह को छोड मन, वचन, कायकर, देवों को भी दुर्लभ ऐसा संयम, कर्मों की हानि के अर्थ पण्य के उदय से अंगीकार करता भया। अहो वह पाप भी यहां भला है, जिस पाप कर ज्ञानवान पुरुष संवेग को और मोह रूप बैरी के घातक महान तप संयम को प्राप्त होय ॥

अब अग्निभूत की स्त्री सोमदत्ता इस वृत्तांत को जान कर तुरत ही भर्तार के वियोग संबंधी शोक से मलिन मुख होय वायुभूत के समीप जाय शोक की शांति के अर्थ ऐसे कहती भई। हे वायुभूत! तैंने दुष्ट परिणाम से महामुनि की निंदा करी, तिस कर तेरा भाई अग्निभूत वैराग्य पाय कर मुनि भया। सो जब तक कोई न जाने तब तक अपन दोनों चल कर उसको समझाय कर ले आवें इस कार्य की सिद्धि के अर्थ तू मेरे साथ चल और जो हमारे चलने में दीर्घ काल लगेगा तो फिर तेरे भाई को

लाने को हम तुम दोनों समर्थ नहीं होंगे, इस भांति सोमदत्ता के बचन से महा क्रोधायमान होय कर क्रोधांध वायुभूत कोपकर अग्निभूत की स्त्री जो सोमदत्ता माता समान बडी भात्रज उसके मुख पर लात मारी, तब वायुभूत की लात की ताडना से सोमदत्ता स्वपर घातक क्रोध को पाय कर निंद्यकर्म का कारण जगत निंद्य इस भांति निदान करती भई, अरे दुराचारी, यहां तो मैं अबला कहिये निर्बल हूं, तेरे मुख पर उलटी लात देने को समर्थ नहीं, तथापि जन्मांतर विषे जैसी तैसी हूंगी तहां तेरी इस ही लात का स्तोक स्तोक खंडन करूंगी, भखूंगी ॥

अहो यह बडी आश्चर्य की वार्ता है, जो क्रोधकर आंधे दुराचारी पापी जीव हैं वह अपने और परके हिताहित को नहीं देखे हैं, ऐसे जानकर धर्म बुद्धि ज्ञानी पुरुषों को दोनों लोक का घातक और धर्म शर्म का विनाशक ऐसा शत्रु समान क्रोध, जो उसको क्षमारूप बाणों कर हनिवे योग्य है, ॥

अब वायुभूत के मुनिराजकी निंदा करने से सातवें दिन अनन्त पाप कर्म के उदय से सर्व शरीर विषे महाघोर दुखों का एक निधान उदंबरजाति का महान कोढ भया जिस से महान व्याधि घोर दुखों का भोग आर्तध्यान प्रकट भया आचार्य कहे हैं, अहो जीवहो, महान पाप कर्म के उपार्जन कर पापी जीव इस ही भव विषे तत्काल नाना प्रकार के क्लेशों कर दुख को पावे हैं, और परभव विषे जो नरकादि संबंधी दुःख भोगवे हैं तिनकी कथा कहने को कोई भी समर्थ नहीं है ॥

अब वह वायुभूत उदंबर कोढ़ आदि व्याधि कर घोर दुःख को भोग आर्तध्यान कर प्राण छोड़ पाप के उदय से उस ही कौशांबी पुरी विषे गधी भई अहो भव्य जीव हो परम पवित्र, परमपूज्य अर्हंत देव, निर्ग्रंथ गुरु दया मई धर्म के निंदक जीवों के पाप के उदय से इस ही भव विषे भूत, भावी वर्तमान पुण्य कर्म का और सुख का नाश होय है,इस भांति जान कर भव्य जीवों को प्राणों का अंत होते भी अर्हंत देव निर्ग्रंथ गुरु, दया मई धर्म और अर्हंत कर कहे शास्त्र और धर्मात्मा श्रावक इन की निंदा का त्याग करना योग्य है ॥

अब वह गधी पापके उदय कर अति दुःखी नाना प्रकार के सैंकडों क्लेशों के दुःख और क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण संबंधी तीव्र वेदना और लोकों विषे पैंड पैंड पर काष्ठ पाषाण की ताडना आदि अनेक प्रकार के दुखों को भोग अल्प आयु के अंत मरण कर वहां ही कौसांबी विषे महा दुखी सूरा भई, सो वह सूरी स्वामी रहित जिसका कोई रक्षक नहीं, पराधीन, क्षुधा, तृषा आदि तथा लोगों की ताड़ना आदि अनेक प्रकार दुख को भोग कर बडे कष्ट से प्राणों का त्याग कर पाप के उदय से इस ही चंपापुरी विषे चांडाल के वाडे में कूकरी (कुत्ती) भई,कैसी है कूकरी ? महान घोर दुःख कर व्याकुल है और विकराल कहिये महा भयंकर है, मुख जिसका अत्यंत क्रूर हैं परिणाम जिस के सो कूकरी पाप के उदय कर उस ही चांडाल के वाड़े में क्षुधा, तृषा,शीत, उष्ण संबन्धी नाना प्रकार के

दुखों को भोगती लोगों की ताड़ना कर अति कष्टसे प्राणछोड़ वहांही कौसांबीनामा चांडालीके जात्यंधा
नामा चांडाली (चुहड़ी) पुत्री भई,कैसी है चांडाली?पापके उदय से दुःख कर परिपूर्ण है, शरीर जिसका
और जन्महीसे आंधी और अत्यंत दुर्गंध भया है शरीर जिसका महा त्रिकराल कुरूपकी धरनहारी भई ॥

अथानंतर–उस अवसर विषे धर्म ध्यान में सावधान सूर्यमित्र अग्नि भूत दोनों मुनिराज
पृथ्वी विषे विहार करते जहां वायुभूत का जीव जात्यंधा चांडाली भई थी वहां आये, सो सूर्यमित्र मुनि
राज तो उपवासे थे सो वह तो बन विषे तिष्ठे, और अग्निभूत मुनि आहार के अर्थ उस नगरी में गये
सो वहां जाते हुये मार्ग में बहुत वृक्षों के वीच जामूण के दरखत के तले बैठी दुःख कर पीडित उस
चांडाली को देख उसके दुःखकर मुनि दुःखित भये और उस ही समय भवांतर के स्नेह से शोक कर
अग्निभूतमुनि के नेत्र में बलात्कार अश्रुपात भर आये तब वहां से उलटे शीघ्र ही जाय अपने
गुरु को नमस्कार कर इस भांति पूछते भये,हे महाज्ञानी एक चांडाली के दर्शन मात्र से मेरे नेत्रों विषे
अश्रुपात भर आये, और मेरे अतिशय कर दुःख भया, सो इस शोकादि दुःख का कारण क्या है सो
तुम कहो, तब सूर्यमित्र गुरु ऐसे कहते भये, हे धीमन, तेरा भाई कुबुद्धी वायुभूत हमारी निंदा संबंधी
पापके उदय कर निरंतर दुख भोग लोक निंद्य तिर्यंच गति विषे भ्रमणकर यह सुख का लेश कर भी
रहित जात्यन्ध चांडाली भई है, और पूर्व भव का स्नेह का संबंध से तेरे दुःख शोकादि भये हैं, इन

प्राणियों के भव भव विषे स्नेह और वैर पूर्व संबंध से प्रकट होय है, हे अग्निभूत इस चांडाली के कल्याण कारिणी अति निकट भव्यता आई है, सो सुन जो आज ही इसका मरण होयगा, इस लिये हे विचक्षण तुम शीघ्र ही जाकर न्यायके वचनसे उस चांडाली को पुण्यकी प्राप्ति के अर्थ श्रावक के व्रत पूर्वक संन्यास को ग्रहण कराओ। इस भांत सूर्यमित्र गुरु के वचन कर परोपकारी अग्निभूत शीघ्र ही जाकर जहां चांडाली तिष्ठे थी वहां प्राशुक भूमि पर तिष्ठ कर अमृत समान मधुर वचन कर ऐसे संबोधते भये हे पुत्रि,तू पाप कर्मके उदय से चांडाल संबंधी अत्यंत नीच कुल विषे घोर दुःख की भोगन हारी जन्मसे आंधी चांडालकी पुत्री चांडाली भई सो अब उस पाप कर्म की शांति के अर्थ और सुखकी प्राप्ति के अर्थ श्रावक का धर्म अंगीकार कर तिस धर्मकी सिद्धि के अर्थ मेरे कहनेसे मदिरा,मांस, मधु कहिये शहत और पंच उदंबर फल इन का त्यागकर और खाद्य स्वाद्य,लेय,पेय,आदि चतुर्विध आहार का त्याग करके पांच अणुव्रत,तीन गुणव्रत,चार शिक्षा व्रत पूर्वक संन्यास मरण अंगीकारकर क्योंकि यहां आज ही तेरा मरण होयगा इस से सुखकी प्राप्ति के अर्थ अनशन व्रत कर शीघ्र ही कल्याण का साधन कर इस भांत अग्निभूत मुनिराज का वचन सुन कर वह जात्यंधा चांडाली चार प्रकार आहार का त्याग कर शीघ्र ही श्रावक के व्रत धार कर संन्यास अंगीकार करती भई, यह कथा सूर्य मित्र मुनिराज चंद्र वाहन राजा से कहे हैं कि हे राजन, जिस अवसर चांडाली ने संन्यास ग्रहण किया तिस अवसर

को पूजने के नागों सहित उत्साह अर्थ के प्राप्ति की पुत्री, त्रिदेवी स्त्री की ब्राह्मण नागशर्म इस विषे

विषे इस नागशर्मं ब्राह्मण की स्त्री त्रिदेवी, पुत्री की प्राप्ति के अर्थ उत्साह सहित नागों के पूजने को
उसी रास्ते आरही थी, तब चांडाली मार्गके वशसे निकट आवती ब्राह्मण की स्त्री त्रिदेवी के वादित्रोंका
नाद सुन कर यह निदान करती भई, अहो, व्रत संन्यास के फल कर इस त्रिदेवी ब्राह्मणी के मैं उत्तम
पुत्री होऊं ऐसी प्रार्थना करूं हूं, इस सिवाय और शुभगति को नहीं याचूं हूं, जेसें कोऊ पृथिवी विषे
अज्ञानी कुबुद्धि मूर्ख रत्न के बदले काच खरीदे और हाथी से गर्दभ को लेवे, और स्वर्ण देय लोहा
लेवे, तैसे यह ज्ञान हीन जात्यंधा स्वर्ग संपदा का कारण जो व्रत संन्यास का फल पण्य कर्म ताकर
निंद्य स्त्री पर्याय की हर्ष कर जाचना करी, इस से उस निदान के दोष कर इस नागशर्म ब्राह्मण के
यह नागश्री नामा पुत्री भई है, कैसी है नागश्री! व्रत के संस्कार की है वासना जिसके, सो वह नागश्री
आज नागके पूजने को यहां आई थी, तब हम (सूर्यमित्र, अग्निभूत) ने पुत्री की बुद्धि कर इसको सम्यक्त
सहित श्रावक के व्रत ग्रहण कराये, सूर्यमित्र मुनिराज कहे हैं, हे राजा चंद्र वाहन साधु का निंदक
जो वायुभूत सोई पाप कर्म के उदय कर निंद्य तिर्यंच गति के चार भव विषे महाघोर दुख भोग कर
यहां यह नागश्री भई है, हे राजन्, पाप कर्म के उदय कर तो जीव दुर्गति विषे भ्रमण करे हैं, और पुन्य
कर्म के उदय कर शुभ गति को प्राप्त होय है, और पुण्य पाप रूप मिश्र भावकर मध्य गति जो मनुष्य
गति उसे प्राप्त होय है, धर्मात्मा जीव धर्म के फल से इंद्र अहमिंद्र चक्रवर्ति पद के सुख भोगवे हैं, और

पापी जीव पाप कर्म के फल से नरक तिर्यंच गति के घोर दुख पावे हैं धर्मात्मा पुरुष धर्म के फल इंद्र नरेंद्र नागेंद्र तीर्थंकरादिक की संपदा पावे हैं, और पापी जीव पाप से महा दारिद्र पावे हैं जो तीन लोक विषे सार भूत सुख हैं वह समस्त सुख धर्मात्मा जीवों के धर्म के प्रभाव से प्रगट होय हैं और जो जगत विषे नाना प्रकार के दुःखों के समूह हैं, वह पापी जीवों के पाप के फल से उदय होय हैं धर्म के सेवन कर तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रति वासुदेव आदि उत्तम पुरुष होय हैं और पाप के उपार्जन कर दूसरों के दास किंकर घर घर के भिखारी, दीन याचक होय हैं जो वस्तु तीन लोक विषे दुर्लभ है अथवा दूर द्वीपांतर देशांतर विषे वर्ते है, वह समस्त मनोवांछित वस्तु धर्मात्मा पुरुषों के धर्म कर स्वयमेव प्राप्त होय है और पापी जीवों के पाप के उदय से हाथ में तिष्ठी हुई वस्तु भी नष्ट होजाय है इस भांत धर्मात्मा पुरुष धर्म के प्रभावसे सर्व उत्तम गति को पावे हैं, और पापी जीव पापके उदयसे संपूर्ण दुख की खानि जो नरक निगोदगति उसको प्राप्त होय हैं, इस भांत जान कर अहो भव्य हो मन बचन काय की शुद्धता कर सकल पापों को छोड कर स्वर्ग मुक्ति के सुखकी प्राप्ति के अर्थ जिनेंद्र देव कर भाषित परमधर्म का सदा काल सेवन करो, धर्म है सो ब्रह्म कहिये लौकांतिक देव, नरेंद्र अमरेन्द्र पद का दायक है, और मैं भी शुभ गतिके अर्थ सदा काल धर्म ही को सेऊं हूं, और धर्म करही अनुपम आत्मीक धर्म को आचरण करूं हूं, इस लिये हे धर्म तू मेरे संसार के दुःख को दूर कर ॥

इत्याचार्य श्री सकल कीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ जिसकी देश भाषामय वचानका विषे नागश्री का भवांतर का है, वर्णन जिसमें ऐसा पंचमसर्ग समाप्त भया ॥



अथ छठा अध्याय

(नागश्री का दिक्षा ग्रहण स्वर्गवास)

चौपाई—श्रीमत तीन भुवन केईश। गुण सागर प्रणमूं नत शीश।
पंच परम गुरु शिव सुख हेत। जिन मंदिर जिन बिंब समेत ॥

अथानंतर सूर्य मित्र मुनिराजने अमृत समान मधुर बानी कर कहे जो पापकर्मसे प्रगट भये घोर दुखों कर सहित ऐसे नागश्रीके पूर्वभव उनको राजा चंद्रवाहन और समस्त ब्राह्मण समस्त पुर जन कर सहित नागशर्म ब्राह्मण सुन कर संसार देह भोगों विषे और ग्रहवास विषे वैराग्य को पाय धर्म का अद्भुत महात्म्य जान कर चित्त विषे ऐसे चिंतवन करता भया, अहो इस लोक विषे जिनेंद्र भगवान कर कहा दयाभई

जैन धर्म ही सराहिवे योग्य पुण्य कर्म का कारण है और मूर्ख मिथ्या दृष्टियों करकल्पित समस्त जीवों का घातक ऐसा यज्ञादिक अन्य धर्म, कल्याण का कारण नहीं भुक्ति कहिये इंद्रादिकों के भोग और मुक्ति कहिये समस्त कर्म क्षय स्वरूप शुद्धात्मा का है,लाभ जिस विषे ऐसा परम निर्वाण इन दोनों के कारण अठारह दोष रहित छियालीस गुण कर विराजमान सर्वज्ञ वीतराग जिनेंद्र देव ही महादेव हैं, और अन्य नहीं, और सर्वज्ञ भगवान कर कहे ग्यारह अंग चतुर्दश पूर्वगत ही धर्म के मूल सांचे शास्त्र हैं, और सारवज्ञता रहित अज्ञानी पुरूषों कर कल्पना किये वेदादि शास्त्र महान पाप के मूल हैं सांचे नहीं, और लोका लोकके ज्ञायक महा प्रवीण समस्त जीवों के विना कारण बांधव निर्ग्रन्थ ही जैन के यति परम पूज्य गुरू हैं,और पांचों इद्रियोंके विषयों कर आकुल और मिथ्यादृष्टि कभी भीं गुरू नहीं, और भूत, भविष्यत्, वर्तमान, त्रिकाल वर्ति समस्त वस्तु स्वरूप का सूचक तीन जगत विषे दीपक समान जैसा ज्ञान निर्ग्रन्थ योगीश्वरों का है तैसा ज्ञान अन्य मिथ्या दृष्टियों को स्वप्न में भी नहीं, जैसे कोई मूर्ख हालाहल विषको भक्षण कर दीर्घ काल जीवने की बांछा करे तैसे ही कुमार्गी मिथ्यादृष्टि जीव घात कर कल्याण की वांछा करे हैं, जैसे कोई अज्ञानी बावला अपने कंठ विषे पुष्प माल की भ्रांति कर सर्प को धारण करे, तैसे कुमार्ग गामी मिथ्या दृष्टी पुरुष जीववध यज्ञादिक को, धर्म बुद्धि से पाप का आचरण करे हैं अहो, यह कुमार्गगामी मिथ्या दृष्टि जीव मदिरा के घट समान केवल बहिरंग मल

का किंचित् अभाव से अंतरंग विषे शुद्धताको नहीं प्राप्त होय हैं जैसे मदिरा कर भरे घट को जल से बाहर सैंकडों वार धोवते धोवते भी अंतर्गत मदिरा के दोष से दुर्गंध रहित शुद्ध नहीं होय है तैसे ही अंतर्गत कषाय मल कर व्याप्त मिथ्या दृष्टि जीव बाह्य स्नानादि कर शुद्ध नहीं होय है, केवल नरक निगोद का दायक पाप कर्म ही का बंध करे है, मिथ्यात्व कषाय रूप प्रचुर मोह के मल कर लिप्त कहिये अत्यंत मलीन ऐसे मिथ्या दृष्टि जीव यहां गंगा, जमना, त्रिवेणी, गोदावरी, आदि नदी और पुष्कर, लोहागर आदि तलाव कूवे, कुंड, वावडी, और समुद्र आदि जल के निवाणों विषे स्नान से अपने शुद्धता की वांछा करे हैं वह अज्ञानी जीव बुद्धि के भ्रमण से तृषा की शांति के अर्थ भाडली के जल को पीवे हैं जैसे जेष्ठमास विषे अत्यंत तृषातुर मृगदूर से फूले कांस को देख जल के भ्रम से दौर कर तहां जाय हैं सो कांस से प्यास कैसे मिटे, केवल खेद खिन्न ही होय, तैसे मिथ्यात्व कर मलीन मिथ्यादृष्टि जीव गंगादिक तीर्थों विषे इतने दिन वृथा ही गमावे है, स्नान कर शुद्ध भया चाहे है सो केवल घोर पाप का बंध करे है शुद्ध नही होय है, शुद्धता तो मिथ्यात्वकषाय मल के अभाव भये ही होय है जल विषे स्नान किये से कदाचित् शुद्धता नहीं होय ऐसा तात्पर्य जानना हाय हाय ! मैं कुबुद्धि कर मिथ्या मार्ग विषे इतने दिन वृथा ही गमाये, अब मेरे कुमति का अभाव भया, सुमति की प्रगटता भई, तिससे पुण्य के उदय कर भले मार्ग को प्राप्त भया हूं और अब ही मैं पुण्यवान

भया हूं, धन्य भया हूं, जिससे इस सूर्य मित्र मुनिराज के प्रशाद से अनादि काल से अति दुर्लभ अमोलिक ऐसा जैन धर्म मुझे प्राप्त भया है, इत्यादि नाना प्रकार चिंतवन के उपाय कर चित्त विषे द्विगुणित संवेदनिर्वेद,को पाय सूर्य मित्र मुनिराजके बचन रूप अमृतके पानसे बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह कर सहित मिथ्यात्व रूप विषको वमन कर नागश्री का पिता नागशर्म प्रोहित भगवती दीक्षा ग्रहण करता भया और उसही समय और बहुत ब्राह्मण सूर्य मित्र मुनिराज के बचन से जिन धर्म का अद्भुत महात्म्य जान कर संसार देह भोगादि विषे परम वैराग्य को पायकर शीघ्र ही कुमार्ग को और बाह्य अभ्यंतर परिग्रहको त्याग कर मोक्षके अर्थ मुनीका संयम ग्रहण किया, और वह नागश्री अपने पूर्वभव सुन कर अनाचार के पाप से भयभीत होय और संवेगरूप आभूषण को पाय कर उसही समय एक सुपेद साडी बिना समस्त परिग्रहका त्यागकर बाल्यपणे में ही अति प्रवीण अर्जिका भई और नागशर्म प्रोहित की स्त्री त्रीदेवी आदि बहुत ब्राह्मणी भी जैन धर्म को सुनकर संसार देह भोग विषे वैराग्य को पाय मोहरूप वैरी का घात कर शीघ्र ही स्वर्ग मोक्षादिक की प्राप्ति के अर्थ परिग्रह का त्याग कर सार भूत सुखों की खान और मुक्ति की माता समान ऐसी भगवती दीक्षा अंगीकार करती भई और चंपापुरी का राजा चंद्रबाहन भी नागश्री की कथा के श्रवण मात्र से विषय भोगादि विषे उदास होय लोक पाल पुत्र को राज देय बहुत भव्य जीवों सहित मन, बचन कायकी शुद्धता कर मोक्ष के

अर्थ जिन मुद्रा को हर्ष से धारण करी और राजा चन्द्र वाहन की बहुत राणियां भी वैराग्य को पाय भरतार की साथ मोक्ष सुख के अर्थ शीघ्र ही आर्यका के व्रत आचारण किये, और अन्य भी पुरवासी बहुत लोक नागश्री की कथा रूप अमृत पान से मिथ्यात्व रूप विष का वमन कर और परम सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर कितनों ने तो मोक्ष की सिद्धि के अर्थ महाव्रत धारण किये, और कितनों ने अणुव्रत ग्रहण किये, और केईयों ने धर्म विषे महान श्रद्धा ही ग्रहण करी ॥

अथानन्तर-तिस पीछे वोह सूर्यमित्र मुनिराज बडे संघ सहित धर्म की प्रभावनाके अर्थ शीघ्र ही विहार करने को गमन किया और सूर्यमित्र गुरूके वचन कर वह समस्त नवीन दीक्षित शिष्य निरन्तर सावधान यत्ना चार से अग पूर्वादि समस्त श्रुत को पढ़ते भये, वह समस्त मुनिराज सूर्य मित्र गुरु कर सहित कर्म रूप बन विषे दावानल समान ऐसा बारह प्रकार घोर तप भव भोगरूप वैरी की शांति के अर्थ करते भये, और सूने घर, पर्वत की गुफा, पर्वत के शिखर पर्वतके दराडे और निर्जन गहन बन आदि स्थानों विषे ध्यान और अध्ययन की सिद्धि के अर्थ वह मुनि प्रमाद रहित निवास करते भये, और गमन करते वन पर्वत आदि स्थानों विषे जहां सूर्य अस्त होय तहां ही वह मुनि जीव दया के अर्थ कायोत्सर्ग कर तिष्ठते भये, और वह मुनि एकाग्रचित्त कर यत्न से निरंतर धर्म शुक्ल ध्यान को चिंतवे हैं, और आर्तरौद्रध्यान को कदे भी नहीं विचारे हैं और वह मुनि सदाकाल

भव्य जीवों को धर्म का उपदेश स्वाध्याय षट आदि शुभ कर्मों को कहे हैं और भोजन कथा स्त्री कथा आदि विकथाओं को कभी नहीं करे हैं ॥

और वह मुनि सारभूत अठाईस मूलगुण और चौरासी लाख उत्तर गुण और चंद्रमा समान उज्वल चारित्र को यत्न सहित मन, बचन, काय की शुद्धता कर अतिचार रहित पाले हैं और वह मुनि कलह, युद्ध, और स्त्रियों के रूप और मिथ्या दृष्टियों के स्थान, आदि के देखने विषे तो अन्ध समान हैं और अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, और अरहंत के प्रतिबिंब, निर्वाण भूमि आदि धर्म के स्थानों को अवलोकन करे हैं और वह ज्ञानी मुनि खोटे तीर्थ, खोटे स्थान, और खोटे मार्ग इन के गमन विषे पांगुला समान हैं, और निर्वाण भूमि आदि भले तीर्थ और भले गुरु यात्रा आदि धर्म कार्यों विषे गमन करन हार हैं, और वह मुनि स्त्री कथा आदि विकथा और पराई निन्दा आदि के करने विषे गूंगा समान हैं, और उत्तम पुरुषों की समीचीन कथा सिद्धांत और जीवादिक तत्वोंका स्वरूप आदि कहने विषे उत्साह सहित हैं, और खोटे शास्त्र, खोटी कथा, खोटे बचन, तिनके सुनने विषे बहरे समान हैं और सरवज्ञ कर कहे आगम और आत्म तत्वादि धर्म आदि के सुनने विषे सदा सावधान हैं, और वह मुनिराज परनिंदा कर रहित हैं और स्वाध्याय ध्यानादिक विषे निरंतर चित्त को लगावे हैं और पाप के लेशमात्र से अति भयभीत केवल मोक्ष ही के बांछक हैं, और वह मुनि घोरवीर उपसर्ग विषे निर्भय समस्त विकार

हैं और पाप कर्म का बन्ध होने विषे बड़े कायर हैं, कर रहित परिषहों के सहने विषे महाधीर वीर जीते हैं मोह रूप वैरी के सावंत जिन्होंने, बाह्य इत्यादि नाना प्रकार शुभ आचरण कर शोभायमान ह धन जिन के, ऐसे वह मुनिराज अभ्यंतर परिग्रह कर रहित सारभूत गुणों कर सहित तप ही करे हैं, और वह नागश्री आदि सूर्यमित्र गुरु कर सहित यत्न से नाना देश पुरग्रामादिक विषे विहार हैं वह आर्यका शुभ है आशय समस्त आर्यका अनेक देश पुर ग्रामादिकन में विहार करती भई, कैसी जिन के, और हता जिनका और धर्म ध्यान विषे तत्पर सदा कालसिद्धांत के पढ़ने विषे है उद्यम के साधन है मोह, प्रमाद, और इंद्रियों की वांछा जिन्होंने, और व्रत शीलादि कर भूषित, आत्म कार्य भेस अंग जिनके, विषे उद्यमी, पाप से भयभीत, सरल हैं परिणाम जिनके, और विकार रहित है नाना प्रकार तपश्चरण विषे तत्पर अत्यंत निर्मल हैं ॥

अब सूर्यमित्र मुनिराज के दुद्धर तपश्चरण कर और परिणामों की अत्यंत विशुद्धता कर और अति निर्मल आचार संयम कर और धर्म शुक्लादि समीचीन भावों कर उग्र दीप्त आदिक सार भूत नाना प्रकार की रिद्धि स्वयमेव प्रगट होती भई, सो वह सूर्यमित्र मुनिराज संघ सहित पृथिवी विषे विहार करते और अनेक [illegible] जीवों को मोक्ष मार्ग विषे स्थापन करते धर्मोपदेश रूप अमृत की वरषा कर समस्त जीवों को [illegible] करते महन्त पुरुषों के गुरु एक दिन धर्म की प्रभावना के अर्थ

राजगृह नगर के समीप आय कर प्राशुक बन की भूमि विषे विराजे, उस अवसर विषे कौशांबी पुरी का राजा अतिबल सो राजगृह नगर का सुबल नामा राजा उस का काका सुबल के मिलाप को आय कर सुबल कर सन्मानित भया थका प्रीत कर उस ही राजगृह नगर विषे तिष्ठे था, तब वह सुबल अतिबल दोनों राजा धर्म के वांछक बनपाल के मुख से सूर्यमित्र मुनिराज का आगमन जान कर शीघ्र ही धर्म के अर्थ मुनिराज की बंदना को बन में गये, वहां तिष्ठते दीप्त ऋद्धि कर प्रकाश मान सूर्यमित्र मुनिराज को शीस नवाय प्रणाम कर हर्ष सहित प्रासुक अष्टद्रव्य कर भक्ति भाव से पूजन करी और उपमा रहित और समस्त दिशाओं के अंधकार के विनाशक ऐसे सूर्यमित्र मुनि के देह की देदीप्यमान क्रांति देख कर राजगृह नगर का राजा सुबल बहुत विस्मय को प्राप्त भया और तपश्चरण का अतिशय देख हरषाय मान होय अपने हृदय विषे ऐसे चितवन करता भया। अहो ! यह सूर्यमित्र पुरोहित सर्व विप्रों में प्रधान मेरा दास समान शुभ चिंतक किंकर था, सो भगवती दीक्षा, और तपश्चरण के अनुपम फल से अनेक सूर्य समान देदीप्यमान रूपवान महातेजस्वी महाम ज्ञाना कांति कर प्रकाशमान सकल संघ विषे प्रधान ऐसा गुणवान सूरपद का धारक भया है, अहो इन पुण्यवंत महंत पुरुषों के इस तप संयम ध्यानादिक कर इस ही लोक विषे सत्कार और पूज्यपना और नाना प्रकार के चमत्कारों की प्रत्यक्ष दिखावनहारी अनेक महान ऋद्धि प्रगट होय

हैं परलोक विषे कैसी सारभूत विभूति संपदा और कौनसा उत्तम उच्च पद होयगा, इससे मैं अपने चित्त विषे ऐसी जानूं हूं कि इस तपश्चरण के फल से परलोक विषे इस से भी अधिक ऋद्धि संपदा पाइये है ऐसा मेरे निश्चय है। और जिस राज्य संपदाके त्यागन कर इस भव विषे और परभव विषे परम संपदा पाईये है, तो उस राज्य संपदा के छोड़ने में ज्ञानवंत पुरुषों के काल का विलम्ब कहां ? अर्थात् कुछ भी काल का विलंब नहीं है, इस भांत चित्त विषे विचार कर राजगृह नगर का राजा सुबल धर्म विषे और धर्म के फल विषे परमसंवेग को पाय और संसार देह भोगादि विषे अत्यंत उदास होय राज्य का अत्यंत पाप रूप भार को, और गृह बंधन के छोड़ने को और कल्याण रूप निर्मल तपश्चरण अंगीकार करने को उद्यमी भया, और उसी समय तप की प्राप्ति के अर्थ कौशांबी का राजा जो अतिबल उसे कहता भया। कि हे धीमन नृप ! अतिबल मगधदेश राजगृह नगर का परिपूर्ण राज्य त ग्रहण कर, मैं संयम अंगीकार करूं हूं, तब धर्मात्मा राजा अतिबल सुबल को कहता भया। हे राजन् ! जो महान दोष राज का तुम को दीखा सोई महान दोष विशेष सहित अब मुझे भी दिखाई दिया है और तप धर्म चारित्र के जो गुण तुम को दीखे वैसे ही गुण भेद विज्ञान रूप निर्मल नेत्र कर निश्चय सेती मुझे अधिक दीखे हैं॥ इससे तप संयमादिक गुणोंकी प्राप्ति के अर्थ मैं भी यह राज्य रूप पाप का भार छोड़ कर मुक्ति के राज्य के अर्थ तुम्हारे साथ ही तप संयम अंगीकार करूंगा।

ऐसे बचन कर अतिबल को राज्य सुख से पराङ्मुख जान राजा सुबल मीनध्वज पुत्र को राज्य संपदा देकर आत्महित के अर्थ अतिबलादिक बहुत राजाओं सहित राजा सुबल सर्व परिग्रह का त्याग कर शीघ्र ही सूर्यमित्र मुनिराज के समीप महामुनि भया, उस पीछे उन सर्व मुनियों कर सहित सूर्यमित्र मुनिराज धर्म की प्रभावना विषे उद्यमी जगत के बंधु सब के हित कारी, परमप्रवीण, मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति के अर्थ, भव्य जीवों के संबोधने के अर्थ पुरग्राम, बनादिक के विषे विहार करने को गमन करते भये ॥

अथानंतर-नागश्री आर्यका निज शक्ति प्रमाण यावज्जीव निर्दोष तप कर और अतिचार रहित भलीभांत संयम को पाल कर अंत विषे एक महीने की आयु शेष जान समाधिमरण की सिद्धि के अर्थ समस्त आहार का त्याग कर और शरीर से नेह का त्याग कर आनंद सहित संन्यास अंगीकार किया, और उस समय क्षुधा, तृषाआदि समस्त परीषहों को जीन और उपवास रूपअग्नि के संयोग कर शीघ्र ही शरीर को सुकाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इन चार आराधना का आराधन कर धर्म ध्यान विषे तत्पर यत्नाचार से समाधि मरण कर प्राणों का त्याग किया, निर्दोष तप संयम के प्रभाव कर सुखों की खान सोलवां जो अच्युत स्वर्ग उस विषे आकाश स्फाटिक मणि मई मनोहर पद्मगुल्म विमान विषे वह नागश्री का जीव दिव्यरूपवान पद्मनाभ

नामा महर्द्धिकदेव भया, कैसा है देव अनेक देवों कर सेवनीक हैं चरणारविन्द जिस के, और नागश्री का पिता नागशर्म ब्राह्मण जो मुनि भया था सो भी निज शक्ति प्रमाण मरण पर्यंत निर्दोष महान तप कर आयु के अंत में संन्यास धार समाधिमरण से प्राणों का त्याग कर तप संयम के प्रभाव से उसही अच्युत स्वर्ग विषे उस ही पद्मगुल्म विमान में दिव्य देह का धारी महर्द्धिक देव भया, और नागश्री की माता त्रिदेवी नामा आर्यिका निज शक्ति प्रमाण व्रत सम्यक्त सहित तप कर अंत विषे संन्यास धार आत्मीक शुद्धि से देह का त्याग कर अपने तपश्चरण से उपार्जन किया जो पुण्य उस के फल से अच्युत स्वर्ग विषे ही जो नागश्री का जीव पद्मनाभ देव भया था, उस के दिव्य देह का धारक अंगरक्षक देव भया, और चंपा पुर का राजा चंद्रवाहन, राजगृह नगर का राजा सुबल, कौशाम्बी का राजा अतिबल यह तीनों उत्तम मुनि उत्तम तपश्चरण कर आयु के अंत समाधि सहित पंडित मरण से प्राणों का त्याग कर तप धर्म के प्रभाव से सुखों की खान जो पन्द्रवां आरण स्वर्ग उस विषे बड़ी विभूति संपदा कर शोभायमान महर्द्धिक देव भये, और अन्य भी मुनिराज यावज्जीव चमत्कारी तपश्चरण कर धर्म ध्यान सहित अंत विषे समाधि मरण से प्राणों का त्याग कर पुण्य के उदय से अपने अपने तप के योग्य सौधर्मादि अच्युत स्वर्ग पर्यंत सोलह स्वर्गों विषे दिव्य विभूति और दिव्य सुख के भोगने हारे बड़ी ऋद्धि के धारी महर्द्धिक देव भये, और कईएक अर्जिका शुद्ध सम्यग्दर्शन के प्रभाव से स्त्रीलिंग को छेद कर अपने अपने तप के अनु-

सार स्वर्ग विषे महर्द्धिकदेव भये,और कईएक अर्जिका तप कर पुण्य के प्रभाव से स्वर्गों में देवी भई ॥

अब वह पद्मनाभादिक देव अंतर्मुहूर्त काल कर संपूर्ण यौवन को पाय सहजोत्पन्न दिव्य श्रेष्ठ वस्त्राभरण कर मंडित शिलासंपुट के मध्य दिव्य कोमल सेज पर तिष्ठते विस्मयवंत चित्त कर सहित उस देव लोक संबंधी परम संपदा को देख क्षणमात्र में अवधि ज्ञान को पाय कर उस अवधि ज्ञान से तप का फल जान और समस्त पूर्व भव का वृत्तांत जान कर धर्म के विषे दृढ़ बुद्धि को धारते भये, उस पीछे वह देव परमधर्म की सिद्धि के अर्थ अपने परवार सहित स्फाटिक मणिमई रमणीक श्रीजिनेंद्र के मंदिर में गये, वहां कोटि सूर्य से अधिक है तेज जिन के ऐसे जे अर्हंत परमेष्ठी के प्रति बिम्ब उनकी नमस्कार स्तुति पूर्वक बड़ी पूजा करते भये,फिर उस देव ने चैत्य वृक्षों विषे बड़ी विभूत कर भक्ति सहित देव लोक संबंधी आठ प्रकार उत्तम प्रासुक पूजन द्रव्य से अर्हंत भगवान की प्रतिमा की पूजा करी फिर पंचमेरु नंदीश्वर आदि कुंडल रुचकद्वीप संबंधी तथा अढाई द्वीप संबंधी जिन मंदिरों विषे जाय कर अर्हंत देव के प्रतिबिम्बों की परमपूजा करते भये, उस पीछे विदेह क्षेत्र आदि भरत ऐरावत क्षेत्र विषे तीर्थंकर सामान्य केवली गणधर देव तथा आचार्य उपाध्याय सर्व साधुओं के चरणारविन्दों का भक्ति सहित पूजन कर शीस नवाय नमस्कार कर उन पंच परमगुरुओं से सत्यार्थ धर्म रूप अमृत का पान कर महान श्रेष्ठ पुण्य का उपार्जन कर वह देव अपने अपने स्थान आये तब

वह देव तप संयम से उपार्जन करी जो समस्त दिव्य सुखों की खानि ऐसी परम विमान संपदा को अंगीकार करते भये, यह देव सदा काल धर्म विषे तत्पर एक सौ सत्तर क्षेत्रों विषे, जाय कर धर्म के अर्थ तीर्थंकरों के पंचकल्याणक विषे समीचीन पूजा करे हैं, और अवशेष केवलियों की भक्ति कर ज्ञान और निर्वाण कल्याणक विषे पूजन करे हैं, तथा गणधर आचार्य उपाध्याय परमसाधु आदि समस्त मुनिराजों की पुण्य की उपजावन हारी पूजा करे हैं इत्यादिक अनेक शुभ आचरण कर पुण्य का उपार्जन करते वह देव पुण्य के प्रभाव से हजारों देवांगना कर सहित नाना प्रकार के भोगों को भोगते हैं, और देव लोक विषे रात दिन का विभाग नहीं है, और दुखदाई ऋतु नहीं हैं, सुखदाई सास्वता सुखमा सुखमा काल प्रवर्ते है, देव लोक विषे दीन, दरिद्री, निर्धन, रोगी, दुर्भागी, दुखी और जिस का वचन किसी को भी नहीं सुहावे ऐसा दुःखारी उन्मत्त कहिये मदोन्मत्त और विकलांग इत्यादि और भी अशुभ सामग्री स्वप्न विषे भी कदाकाल नहीं दीखे है, सो वह देव कैसे हैं, देवलोक विषे सर्व ही देव दिव्य लक्ष्मी मनोहर कांति अनुपम दिव्यधैर्य कर शोभायमान समस्त दुःखों कर रहित सुख रूप अमृत के समुद्र के मध्य प्राप्त भये हैं और वह पद्मनाभादि समस्त देव कैसे हैं, समस्त दुःखों कर रहित हैं और नेत्र नहीं टिमकारे हैं, महा प्रवीण सास्वत जिनेंद्र देव की पूजा विषे तत्पर हैं, सात धातु, सात उपधातु, मलमूत्र, पसेव, खेद कर रहित दिव्य देह के धारी हैं, और तीन

यहां सत् पुरुषों के तीर्थंकरादि कल्याण रूप पदवी होवे है, इस धर्म के अर्थ निरंतर मेरा नमस्कार हो, और जैन धर्म के सिवाय और कोई तीन जगत विषे सुखकारी वस्तु नहीं है, और इस धर्म का बीज सम्यग्दर्शन है, और धर्म विषे निरंतर परिणामों को धारण करता ऐसा जो मैं सकलकीर्त मुनि तिस के, हे धीमन्! चारघातिया कर्मों का घात कर ॥ ऐसी सप्त विभक्तों कर संबोधन सहित धर्म की महिमा वर्णन कर धर्म से अर्हंत पद की प्रार्थना करी, ऐसा यहां भावार्थ है ॥

इत्याचार्य सकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ तिसकी देश भाषा मय वचन का विषे नागश्री नागशर्म आदि का दीक्षा ग्रहण और स्वर्ग गमन का है वर्णन जिस में ऐसा षष्टम सर्ग समाप्त भया ॥



हस्त प्रमाण ऊंचा है सुन्दर शरीर जिन का और बाईस सागर की है आयु जिन की और बाईस हज़ार वर्ष व्यतीत भये मानसिक अहार का सेवन करे हैं ग्यारह मास गये एक श्वास लेवे हैं और अनेक गुणों के भाजन अवधि ज्ञान के योग कर छटे नरक की पृथिवी पर्यंत शुभाशुभ रूपी द्रव्यों को जाने हैं, और वह शुभ परिणामों के धारक देव षष्टम नरक पर्यंत विक्रिया ऋद्धि के बल से गमनादि करने को समर्थ हैं, देवांगनाओं के दिव्य रूप सुन्दरता मनोहर शृंगार सहित नाना प्रकार नृत्य देखते और अपसराओं के मुख से मनोहर गान सुनते और रत्न मई यह महल, भद्रशालादि, बन मेरु, कुलाचल आदि पर्वत और असंख्यात द्वीप समुद्रों विषे देवों कर सहित क्रीड़ा करते इच्छा पूर्वक हर्ष सहित गमन करते पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के फल से पूर्वोक्त नाना प्रकार भोगों को भोगते सुख सागर के मध्य प्राप्य भये, गये काल को नहीं जानते संते उस अच्युत स्वर्ग विषे बाईस सागर पर्यंत वह पद्मनाभादि देव सुख से तिष्ठते भये, इस भांत वह पद्मनाभादि देव पुण्य के उदय से परम सुख की करण हारी देव लोक की विभूति को पाय कर तिस अच्युत स्वर्ग विषे सागरों पर्यंत उपमा रहित भोग सुखों को भोगे हैं, ऐसे जान कर भो ज्ञानी जन हो, सुख की प्राप्ति के अर्थ सकल शक्ति कर एक भगवान् भाषित जैन धर्म का सेवन करो, ऐसा उपदेश है धर्म है सो समस्त मनोरथादिक का उपजावन हारा है, और धर्मात्मा पुरुष धर्म को ही आश्रय करे हैं, और इस धर्म कर ही

सप्तम अध्याय

(सुकुमाल का जन्म)

चौपाई—सकल तीरथसिद्ध महेश। गणनायक पाठक परमेश ॥
सब साधुन के प्रणमों पाय। जैनधर्म निहचे उरलाय ॥१॥

अथानंतर—सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक् चारित्र की परम विशुद्धता को प्राप्त भये और निरअतिचार चारित्र कर परम शोभायमान ऐसे वह दोनों सूर्यमित्र अग्निभूत महामुनि मोक्ष मार्ग को प्रवर्तावते अनेक देशों विषे यथेच्छ विहार करते एक दिन वाणारसी नगरी के बाहिर बन विषे आये, तहां वह दोनों मुनि आत्म ध्यान विषे अत्यंत निश्चल, चित्त को स्थापन कर, चार घातिया के घातने निमित्त अद्भुत योग धारते भये, मुक्ति रूप महल की सीढ़ी समान क्षपकश्रेणी पर आरूढ होय प्रथम शुक्ल ध्यान रूप खड्ग कर आदि विषे मोह रूप वैरी का घात किया, उस पीछे वह मुनि जय भूमि को पाय कर शेष घातिया जिस ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय रूप वैरियों का द्वितीय

शुक्ल ध्यान रूप शस्त्र कर घात करते भये, कैसे हैं वह मुनि मोहनी के विजय कर पाया है महान उदय जिन्हों ने उसी समय समस्त घातियों के घात से तिन दोनों मुनियों के लोकालोक प्रकाशी निज स्वभाव क्षायक नवलब्धि आदि अनुपम सारभूत समस्त क्षायक गुणों कर सहित केवल ज्ञान प्रगट भया, तब इंद्रादिक देव आय कर गंधकुटी की रचना रचाय बड़ी विभूति से त्रिलोकाधिपति तिन केवली भगवान् को धर्म के अर्थ महोत्सव सहित पूजन करते भये, उस पीछे केवली भगवान् नरेन्द्र, सुरेंद्र, नागेंद्रों कर सेवनीक दिव्य ध्वनि कर सत पुरुषों को मुक्ति का मार्ग प्रकाश कर धर्म की प्रभावना के अर्थ अनेक नगर, ग्राम, देश, वन, पर्वतादिक विषे विहार कर निर्वाण सुख की प्राप्ती के अर्थ अग्नि मंदिर नामा पर्वत पर आये, तहां चतुर्थ शुल्क ध्यान के योग कर अवशेष चार अघातिया कर्मों को नाश कर वह मुनिराज संसार के गमना गमन की क्रिया रहित निर्वाण साम्राज को प्राप्त भये, तहां अनंत अविनाशी अनुपम वाधा रहित हानि वृद्धि रहित सारभूत अतींद्रिय अक्षय सिद्ध सुख को प्राप्त भये, सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों कर भूषित ज्ञान मूर्ति वह सूर्यमित्र अग्निभूत केवली भगवान मुक्ति लक्ष्मी सहित आत्मीक सुख को, भोगते भये, तिस समय सौधर्मादि इंद्र और वह पद्मनाभादि देव आय कर निर्वाण के अर्थ तिन सूर्यमित्र अग्निभूत मुनिराज के निर्वाण कल्याणक की परम पूजा करके अपने स्थानक गये॥

अथानंतर-इस जंबूद्वीप में भरत क्षेत्र विषे विनयवान, धर्मात्माज्ञानी जीवों कर भरा अवंती नामा देश शोभे है, जिस देश विषे केवली भगवान और चतुर्विध संघ सहित अवधि मनः पर्ययज्ञानी गणनायक आचार्य और चरम शरीरी एकाविहारी मुनिराज मोक्ष मार्गकी प्रवर्ती के अर्थ निरन्तर विहार करे हैं, जिस देश विषे ग्राम-खेट, पुर, द्रोण पत्तन, आदि वडे वडे नगर जिन मंदिरों कर और धर्मात्मा महन्त पुरुषों कर सोहे हैं, जिस देश विषे वन में पर्वतोंमें नदी के तटन पर तथा पर्वतों की कन्दरा विषे सर्वत्र महा धीर वीर ध्यानी मुनिराज ध्यान सहित दीखे हैं, जहां कईएक वीतरागी जीव वन में जाय कर श्रीगुरु के उपदेश से तप ग्रहण करे हैं, और कई धर्मात्मा धर्म के अर्थ सम्यग्दर्शन सहित श्रावक के व्रत अंगीकार करे हैं जिस देश विषे केईक मुनि तप कर निर्वाण जाय हैं और कई एक अहमिंद्रपद को पावे हैं और कई एक सौधर्मादि कल्पों विषें उपजे हैं, कई एक सम्यग्द्रष्टी जीव देव पूजा, गुरु सेवा शास्त्राभ्यास, संयम, तप, दान आदि श्रावक धर्म के प्रभाव कर स्वर्ग विषे इंद्र होय हैं, और कई एक सुपात्र दान से भोग भूमि को प्राप्त होय हैं, जिस अवंती देश विषे स्वर्गवासी देव भी मोक्ष की सिद्धि के अर्थ अपना जन्म चाहे हैं तिस देश का और वर्णन कहां करिये ? कैसा है वह देश ? स्वर्ग मोक्ष का कारण है, इत्यादि पूर्वोक्त प्रकार वर्णन सहित उस देश के मध्य भूतल विषे सुख संपदा की खानि परम रमणीक उज्जयनी नामा पुरी है, सो पुरी बहुत ऊंचे दरवाजे, कोट खाई, पडकोटादिकों कर

अति दुर्गम अनेक सूरबीर सुभटों कर भरी अयोध्यापुरी समान सोहे है, जिस नगरी विषे नाना वर्ण मई अति उत्तंग जिनेंद्र भगवान के मंदिरों की पंक्ती सोहे हैं सो मानो उत्तंग धर्म की खान ही है, कैसे हैं जिन मंदिर ? स्वर्ण रत्न मई नाना प्रकार शिखर विषे धुजानि कर और आवते जावतें भव्य जीवों के समूह और गीत नृत्य, बादित्रों कर और स्तवन, पूजन, स्वाध्यायादि कर मानो मूर्तिवान धर्म ही है, तिस उज्जयनी पुरी विषे पुण्यवंत पुरुष प्रातःकाल उठ कर आदि विषे तो सामायक और पंच नमस्कार का जाप आदि धर्म कार्य करे हैं, और तिस पीछे गृह कार्य करें, जिनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार सत्पुरूषों के पुरुषार्थ हैं, जिनकी आदि विषे सर्व अर्थ सिद्धका दायक भगवान भाषित धर्म ही है, और जिन मंदिरों विषे अथवा अपने घर विषे चैत्यालयन विषे तीर्थंकरों के प्रतिबिंब का पूजन कर और मध्यान्ह समय ज्ञानी जीव पात्र दान के अर्थ बारंवार घर की द्वारा प्रेक्षण करे हैं और अपराह्न समय विषे दिन में उपार्जन किये जो पाप तिन की हानि के अर्थ और पुण्य की प्राप्ति के अर्थ अपनी शक्ति प्रमाण हमेशां कायोत्सर्गादि शुभ क्रिया करे हैं, और पुत्रों के जन्म तथा विवाहादिक शुभ मंगलीक कार्यों विषे बड़ी विभूत कर दीक्षा और मंगलीक कार्य की वृद्धि के अर्थ जिनेंद्र भगवान का ही पूजन करे हैं, देवी, दिहाडी, क्षेत्र पाल, गजानन, देहली पूजन, राती जगा, सीतला आदि कुदेवों को स्वप्न विषे भी नहीं पूजे हैं, इत्यादि पूर्वोक्त शुभ कर्म के समुदाय कर और व्रत आचार शील दान पूजनादि

कर उस उज्जयनी पुरी की प्रजा रात दिन धर्म का उपार्जन करे है, उस धर्म का उपार्जन कर उन पुण्य वान जीवों के उतंग महलों विषे अनेक संपदा और सारभूत सुख पैंड पैंड पर प्रगट होय है ॥

इत्यादि पूर्वोक्त वर्णन कर सहित उस उज्जयनी पुरी का पति श्रीमान् धर्मात्मा वृषभांक नामा राजा भया, सो वृषभांक राजा सारभूत जिन धर्म के आचरण कर और सारभूत क्रांति कीर्ति शुभ लक्षणों कर, और देवगुरु धर्म के सेवन कर मानो साक्षात् मूर्तिमान् धर्म का चिन्हही है, और उस ही उज्जयनी पुरी विषे महान धनवान और शुभ लक्षणों कर पूर्ण, धर्मकार्य विषे अगवाणी, और शील व्रत उपवासादिक कर और सुपात्रों के अर्थ दान देने कर और जिनेंद्र भगवान की पूजनादिक कर विभूति संपदा कर मानो मूर्तिवान पुण्य ही है ऐसा परम श्रावक सुरेंद्रदत्त नाम सेठ, उसके मनोहर दिव्य रूप की खान, कल्याण की मूर्ति, पति में परम अनुरागिणि पांचों इंद्रियों के आनंद की कारण ऐसी यशोभद्रा नामा सेठाणी भई, उस के घर विषे पुण्य के उदय से बडी विभूत संपदा भई, और स्वजन पर जन सारभूत सुख, और अनेक कोटि सुवर्ण रत्नादिक भये, वह यशोभद्रा सेठाणी हृदय विषे ऐसे विचार कर निरंतर विखाद करे, जो मेरे घर में पूर्वोपार्जित पुण्य के फल से सकल संपदा है और स्वजन परिजन भी वहुत हैं, परन्तु कुल का दीपक पुत्र नहीं एक पुत्र विना निरफल वेलि समान पुष्प ने धारण करती ऐसी पुत्रवंती कुलवंती नायकान के मध्य शोभा को नहीं पाऊं हूं धन्य हैं वह

नायका जो पुत्र के मुख रूप चंद्रमा का अवलोकन कर सदा प्रसन्न रहे हैं, ऐसे वह सेठाणी विषाद करे, एक दिन तीन ज्ञान आदि अनेक गुण रत्नों के सागर, जगत के हितकारी, मुनि श्रावक देवन कर वंदित, कल्याण रूप संघ कर सहित, ऐसे वर्द्धमान नामा मुनिराज धर्मात्मा जीवों के पुण्य कर प्रेरे भव्य जीवों के संबोधने को उज्जयनी के बन में आये, उन के आगमन को जान कर राजा वृषभांक आनंद घोषणादिवाय चतुरंग सेना कर वेष्टित मुनिराज के बन्दने को निकला, राजा की भेरी का शब्द सुन कर यशोभद्रा सेठाणी अपनी सखी से ऐसे पूछी जो यह भेरी का शब्द आज किस कारण से भया तब सखी ने कही, आज बन के मध्य महामुनी पधारे हैं और उन की बंदना को अनेक वादित्रों के नाद कर महोत्सव सहित राजा वृषभांक जाय हैं, यह वचन सुन कर वह सेठाणी यशोभद्रा धर्म की सिद्धि के अर्थ और मनोवांछित फल की प्राप्ति के अर्थ पूजन की सामग्री लेय मुनि के समीप गई, तहां संघ सहित विराजमान वर्द्धमान मुनिराज को नमस्कार कर. पूजन कर यशोभद्रा सेठाणी मुनिराज के समीप बैठी; कैसे हैं मुनीराज ? इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्रादिकों कर बंदनीक पूजनीक हैं, मुनिराज के मुख की बानी स्वर्ग मुक्ति का कारण, इंद्र नरेंद्र नागेंद्रादिको की संपदा की दायक और समस्त कल्याणों का कारण जिनेंद्र भगवान कर भाषित, दया मई, मुनिश्रावक के भेद से दो प्रकार धर्म श्रवण कर सेठाणी यशोभद्रा हाथ जोड़ सिर नवाय नमस्कार कर मुनिराज को ऐसे पूछती भई, हे भगवन्,

मेरे पुत्र होयगा कि नहीं सो आप कृपा कर कहो, तब मुनिराज इस भांत कहते भये, हे भद्रे, महा-धीर, वीर, दिव्य, रूपवान, गुणों का सागर महान पुण्य के फल का भोक्ता, समस्त जगत में मान्य, सकल कार्य के करने विषे महान् सामर्थ्यवान् ऐसा पुत्र तेरे होगा, परन्तु तेरा पति सुरेंद्रदत्त संसार के सुखों विषे अत्यंत उदास है और तपोवन प्रति जाने की वांछा करे है, सोई पुत्र के अभाव से नहीं जाय है, सो धर्मात्मा सुबुद्धि जबलग अपने पुत्र का मुख नहीं देखेगा तब लग धन संपदा के मोहसे घर में तिष्टेगा, पीछे पुत्र का मुख देख कर उत्तम गुणों का आकर सेठ सुरेंद्रदत्त सकल संपदा का और तुम्हारा त्याग कर निर्दोष तप ग्रहण करेगा, और तेरा पुत्र भी अति धर्मात्मा धर्म का सेवन हारा जब लग दिगंबर मुनि के बचनादिक प्रगट नहीं सुनेगा तब लग अपने घर में रहेगा, और मुनि के दर्शन मात्र कर अथवा मुनि के प्रत्यक्ष बचन के सुनबे कर सो तेरा पुत्र धीर बीरों के गोचर दुर्द्धर तप अवश्य ग्रहण करेगा, इस भांत वर्द्धमान मुनिराज के बचन सुन कर वह सेठानी यशोभद्रा आपके इष्ट अनिष्टादि के संयोगसे मन विषे हर्ष और विषाद सहित भई ॥ भावार्थ-पुत्र होयगा यह तो हर्ष भया और पुत्र का मुख देखते ही सेठ दीक्षा ग्रहण करेगा यह विषाद भया ॥

सुकमाल का जन्म ।

अथानन्तर-तब कितनेक दिनोंकर पुण्य के उदय से सेठानीके गर्भाधान भया, वह नागश्री

का जीव पद्मगुल्म नामा देव आयु पूर्ण कर इस सेठानी यशोभद्रा के गर्भ में आया तब यह यशोभद्रा सेठाणी अपने मन में ऐसे विचार करती भई कि जो सेठ मेरे गर्भाधान जानेगा तो अवश्य तप ग्रहण करेगा, ऐसे जान कर सेठ के तप ग्रहण के भय कर वह सेठानी यशोभद्रा सेठ आदि समस्त स्वजनों से अतिप्रछन्न वृत्ती कर एकान्त गृह में तिष्ठती अपने गर्भ को बढाया, भावार्थ— किसी को भी गर्भ नहीं जनाया, अनुक्रम से नव मास पूर्ण भये पीछे सेठानी रमणीक भूमि ग्रह विषे प्रवेस कर देदीप्यमान कांती का पुंज ऐसा पुत्र जनती भई, तब प्रसूत के वस्त्र और तिस बालक के मलकर भरे वस्त्रों को घर से बाहिर सरोवर की पाल पर दासी धोवे थी उसे देख कर एक ब्राह्मण चित विषे ऐसे विचारता भया, अहो यहां यह सुरेंद्रदत्त सेठ ही पुत्र रहित था सो आज इस सेठ के अवश्य पुत्र भया है, ऐसे वस्त्र प्रक्षालन रूप अनुमान ज्ञान कर पुत्र की उत्पति जान सो वह ब्राह्मण हर्ष सहित सेठ के समीप आय कर आश्चर्यकारी वचन ऐसे कहता भया, कैसा है ब्राह्मण। वेणु (वीणा) कर रुक रहा है दाहिणा कर जिसका भावार्थ—आशीर्वाद देने का दक्षिण हाथ वीणा कर रुका था इससे आशीर्वाद दिये विना ही आनंद से कहता भया, हे श्रेष्ठिन् तेरे अखंड पुण्य के प्रभाव कर आज अवश्य पुत्र जन्मा है, यह बचन ब्राह्मण के सुन सेठ हृदय विषे परम आनंद को प्राप्त भया, ब्राह्मण के वचन से सुरेंद्रदत्त सेठ अत्यंत आश्चर्य को प्राप्त होय कर, और हर्ष सहित अपने पुत्र का मुख अवलोकन कर

और ब्राह्मण को बहुत संपदा देय,और गृह पुत्रदारादिकों कर सहित सकल संपदा को त्याग कर और संसार देह भोगादि विषे सर्वत्र वैराग्य को पायकर तप के अर्थ वन विषे गया,तहाँ श्रीगुरु के चरणारबिंद को नमस्कार कर सुरेंद्रदत्त सेठ समस्त परिग्रह का त्याग कर मन वचन काय की विशुद्धता कर हर्ष सहित मुक्तिके अर्थ दीक्षा ग्रहण करता भया, उस पीछे सुख बुद्धि सुरेंद्रदत्त मुनि अपनी शक्ति को प्रगट कर स्वर्गादि मुक्ति पर्यंत सुखका दायक संयम सहित दुर्द्धर घोर तप करते भये ॥

अथानंतर यशोभद्रा सेठानी जिनालय विषे जिनेंद्र देवों का पूजनादि महोत्सव कर और वस्त्रा भरणके दानकर समस्त सुजनोंको संतोषितकर और नाना प्रकार गीत वादित्र नृत्यनादिकों कर सकल कुटुंब सहित पुत्रके जन्मका बड़ा उत्सव करती भई उस पीछे अन्य दिन विषे बालककी माता यशोभद्रा अपने स्वजनोंकर सहित अत्यन्त कोमल शरीरका अवयवपणासे बालक का सुकुमाल ऐसा नाम प्रगटकिया,अपने पुत्रका सुकुमाल ऐसा नाम प्रसिद्ध कर पुण्य की प्राप्ति के अर्थ जिनेंद्र भगवान के मंदिर विषे और अपने घर के चैत्यालय विषे बडी विभूतिकर पूजनादि महोत्सव करावतीभई बाल चंद्र समान अत्यंत सुन्दर सो बालक समस्त परिजन के नैनों के परमानंद कारी स्फुरायमान कांति और मनोहर आलापन कर और शुभ अंगोपांग अवयवों सहित मधुर गुणोंकर और अपनी अवस्था के योग्य मधुर पयपानादिकोंकर अनुक्रमसे सारभूत वस्त्राभरण कर जगतमें अत्यंत प्यारा ऐसा सुकुमाल

दोयज के चंद्रमा समान क्रमसे बढता भया, उस पीछे वह सुकुमाल अत्यंत मनोहर अंग और स्वभाव
से सुंदर आकृति का धारक, मंद मुलकन कर और बालवने की शुभ चेष्टा कर माता आदि समस्त
परिजनों को अत्यंत हर्ष उपजावता, बालपने को उल्लंघ और कुमारपने को पाय कर, दिव्य आभूषण
शुभ लक्षणों कर तथा समीचीन कांति दीप्त तेज आदि गुणोंकर सो सुकुमाल कुमारदेव कुमार समान
अत्यंत सोहे है, उस समय सेठाणी विचारे है जो मेरा पुत्र सुकुमाल यहां दिगंबर मुनि को कभी भी
नहीं देखे वैसा उपाय शीघ्र ही करूं ऐसे विचार कर सुकुमाल की माता यशोभद्राने नाना रत्नादिकों कर
जडित एक सुवर्ण मई सर्वतोभद्र नामा उत्तंग महल बनवाया, और उस सर्वतोभद्र महल के चहुं ओर
बड़ी सपदाकर संयुक्त सुवर्ण मई रूपा मई बत्तीस महल और बनवाये, फिर मोह कर आंधी भई ऐसी
यशोभद्रा सेठानी सुकुमाल की माता द्वारपाल जनादिकों कर अपने घर विषे दिगंबर मुनिराजों का
आगमन मने कराया, भावार्थ–द्वारपाल से ऐसे कहो जो दिगम्बर मुनिराजों को मेरे महलों विषे
मत आने दो, यह मेरी आज्ञा है, अहो मोह कर अंध भया है चेत कहिये ज्ञान जिन के ऐसे मोही
जीवों के यहां विचार कहां है! भावार्थ–मोही जीवों के मोह के उदय से विचार नहीं ॥
और कार्य अकार्य विचार किये बिना धर्म कैसे प्रगट होय? जिस के परमार्थ स्वरूप कार्य अकार्य
का विचार नहीं उस के धर्म का लेश हू नहीं है, अब उन महलों विषे यथेच्छ क्रीड़ा करता ऐसा

सुकुमाल कुमार दिनरात संबंधी काल भेद और मनुष्यादिकों के जात भेद और शीत आताप को कदेभी नहीं जानता, समस्त दुःखों कर रहित, महान रूपवान, जैसे विमान विषे धरनेंद्र, इंद्र, वृद्धि को प्राप्त होय वैसे अनुक्रम से महलों विषे ही वृद्धि को प्राप्त भया, तब योवन अवस्था को पाय कर मनोहर सुगंधायमान पुष्पों की माला सुंदर वस्त्राभरण कर और कांत तेज मधुर बचन और शंख चक्रादि शुभ लक्षण तथा तिलमुसआदि शुभ लक्षणों कर महान् भोग उपभोग की सामग्री कर शुभ आकृति, शुभ ही है गुणों के समुदायों कर तथा परम लावण्यता सौंदर्यता आदि गुणों कर निरंतर देव समान शाभा को धारण करे है, तब यशोभद्रा सेठानी बड़े बड़े श्रेष्ठियों से चतुरिका, चित्रा, रेवती पद्मनी, मणिमाला, सुशीला, रोहिणी, सुलोचना, सुदामा, आदि बत्तीस कन्याओं की याचना कर कन्याओं को अपने घर लायकर और महल विषे रमणीक विवाह मंडपकी रचनाकराय शुभ लग्न विषे बड़ी विभूति कर सहित उन कन्याओं से अपने पुत्र सुकुमाल का विधि पूर्वक महल के ऊपर भली भांत से विवाह करनी भई, और महल के बाहर आये ऐसे अपने बंधुजन तिन कर सहित गीत वादित्रों कर विवाह का बड़ा उत्सव किया, और उस ही समय यशोभद्रा सेठाणी सुकुमाल की बत्तीस वनिताओं को भोग सुख की प्राप्ति के अर्थ जे सर्वतोभद्र महलके चहूं ओर बत्तीस महल पहले बणवाये थे उन एक एक को एक एक महल दिये, तिस सर्वतोभद्र महल विषे पुण्य रूप

लावण्यता की खान ऐसे जोड़े बत्तीस स्त्रियों कर सहित महान पुण्य के उदय से निरतर इंद्र समान भोग भोगता ऐसा सुकुमाल कुमार चिंता रहित निश्चिन्त सुख सागर के मध्य तिष्ठता गये काल कों नहीं जाने है, एक दिन कोई एक व्योपारी देशान्तर से आय राजा वृषभांक को एक अमोलक रत्न कंबल दिखाया, सो राजा वृषभांक उस रत्नकंबल को देख बहुत मोल का जान बहुत द्रव्य देने की शक्ति के अभाव से उस ही समय व्योपारी को वापिस देदिया ॥

भावार्थ–रत्नकंबल के मोल योग्य राजा के घर में द्रव्य नहीं था तब वह व्योपारी नृप से रत्नकंबल को ले शीघ्र ही जाय कर यशोभद्रा सेठानी को दिखाया, और द्रव्य लेने के अर्थ मोल कहा सेठानी रत्नकंबल को अपने पुत्र के योग्य जान उस व्योपारी को यथा योग्य बहुत द्रव्य देय शीघ्र ही महल विषे अपने पुत्र के पास भेजा, सुकुमाल कुमार रत्नकंबल को भारा और कठिन देख कही यह तो मेरे योग्य नहीं, ऐसे कह कर हाथ से डार दिया, तब यशोभद्रा रत्नकंबल के खंड खंड कर सुकुमाल की बत्तीस वनिताओं की सुंदर पगरखीयां (जूतीयें) कराय दई, एक दिन सुकुमाल की स्त्री सुदामा, पावों से पगरखी खोल अपने महल के शिखर पर बैठो कितनेक काल दिशा अवलोकन करती पश्चिम द्वार के मंडप विषे तिष्ठे थो, उस ही समय गृध्र पक्षी महल में प्रवेश कर मांस के भास से एक पगरखी को चौंच से उठाय फिर आकाश से उड़कर वृषभांक राजा

के महल के शिखर पर खाने के अर्थ बैठा अति कोप से अपनी चोंच कर पगरखी को घात करता संता खाने को असमर्थ होय कर राज मंदिर विषे गेरता भया, तब राजा वृषभांक रत्नकंवल की पगरखी देख अचरजवान हुआ संता कहता भया कि यह रमणीक पगरखी कौन की है, ऐसे किसी निकटवर्ती पुरुष से पूछी, राजा के बचन सुन कर निकटवर्ती पुरुष कही, हे राजन्! यह रमणीक पगरखी सुकुमाल की कांता (स्त्री) की है, कैसा है सुकुमाल? महान लक्ष्मीवान, महान सुख संपदा कर इंद्र समान शोभायमान है, ऐसे निकटवर्ती पुरुषों के बचन श्रवणमात्र से कौतुक कर पाया है कौतुक जाने ऐसा नृप वृषभांक सुरेंद्रदत्त सेठ का पुत्र महा लक्ष्मीवान ऐसे सुकुमाल के देखने को शीघ्र ही चला। तब यशोभद्रा सेठानी सुकुमाल की माता, नृप को आवता जान कर नृप के सन्मुख जाय बड़ी विभूति कर अपने घर के मध्य नृप को प्रवेश करावती भई, वहां नृप को रत्न जड़ित स्वर्ण के सिंहासन पर बैठाय बहुत भेट नृप के आगे धर सुकुमाल की माता यशोभद्रा सेठानी नृप को ऐसे पूछती भई, हे देव! आप अपने आगमन कर आज मेरा घर पवित्र किया, परन्तु अबार तुम्हारे आगमन विषे कारण कहा है, सो कृपा कर कहो। तब वृषभांक नृप से ऐसे कही, हे भद्रे! मैं केवल तेरे पुत्र के देखने के अर्थ आया हूं, और कुछ भी कारण नहीं, तब वह यशोभद्रा सेठानी महल के मध्य खण विषे नृप को बठाय हर्ष सहित अपने पुत्र को लाय दिखावती भई, राजा वृषभांक सुकुमाल के विस्मयं

कारी रूप को अतिशय कर देख कर प्रसन्न होय अत्यंत सन्मान कर सुकमाल को आधे सिंहासन पर बैठाय लिया,तब यशोभद्रा सेठानी महीपति से ऐसी प्रार्थना करती भई,हे देव! आज हमारे घर भोजन कर अपने महलों में पधारना योग्य है,अन्यथा कहिये भोजन किये विना आप का पधारना योग्य नहीं है, ऐसी सेठानी की प्रार्थना पर राजा वृषभांक सुकुमाल सहित वहां स्वर्ण के थाल में परम मनोह भोजन किया, भोजन किये पीछे नृप सेठानी को ऐसे कहता भया, हे कल्याणरूपणी ! इस सुकुमाल के निद्यनीक तीन व्याधी कैसी हैं, तिन के मिटने के उपाय विषे तू क्यों मंद है? तब सेठानीने कहो इस के व्याधि कौनसी हैं, तब नृप कहता भया, एक तो आसन की दृढता नहीं चलायमानपना है, दूजे प्रकाश विषे नेत्र से जलस्रवे है, तीजे भोजन विषे एक एक चांवल खाय है, यह बचन सुन कर सेठानी सुकुमाल की माता यशोभद्रा ने कही। हे राजन ! जो आपने तीन व्याधि कही सो व्याधि इस सुकुमाल के कदे भी नहीं हैं, यह सुकुमाल अत्यंत कोमल दिव्य शय्या विषे शयन करे है, और अत्यन्त कोमल गद्दी तथा गालीचों पर सदा काल सुख से बैठे है, और आज आप की साथ सिंहासन पर बैठा, और हमने मंगल के अर्थ इस सुकुमाल के मस्तक पर बहुत सिरसों क्षेपी, वह सिरसों के कण यहां अबार इस के सुखासन विषे पडे हैं, सो तिस सिरसों का कर्कशपना कर यह सुकुमाल चलायमान भया, और इस पुण्यात्मा ने देदीप्यमान मणिमई मंदिरोंके मध्य एक रत्न की

प्रभा के सिवाय और प्रभा कभी भी नहीं देखी है, और आज हमने आपकी दीपक कर आरती उतारी सो आरती के प्रताप रूप प्रभा के देखने से इस अत्यंत सुखिया के दुःख की उत्पत्ति का कारण नेत्रों से शीघ्र ही जल स्रवता भया, और दिन के अस्त विषे सरोवर विषे मुकुलित कमल की कर्णिका में धोये हुये भीजे मनोग्य तंडुल धर देवें हैं फिर प्रभात समय तिन तंडुलों का मनोहर अति कोमल सुगंधायमान भात, यह कुमार केवल भोजन करे है, सो उन तंडुलों के अल्प भात कर भोजन विषे दोनों के तृप्त पना नहीं जान कर आज हमने तिन तंडुलों के मध्य सुंदर और तंडुल क्षेपे हैं, सो सुंदर मिले हुये तंडुलों का भी भोजन इस कुमार ने आज अरुचि से किया है, इस सुकुमाल की वार्ता के श्रवण मात्र से राजा वृषभांक हृदय विषे, अत्यंत अचरजवान भया, और सेठानीमे जो रत्न आभरण मनोग्य वस्त्र भेट किये तिस कर के सुकुमाल की प्रतिष्ठा कर और समीचीन श्लाघा योग्य वचनों से प्रशसा कर और यह अवंती सुकुमाल है ऐसा और दूजा नाम सत्पुरुषों के मध्य प्रसिद्ध कर राजा वृषभांक अत्यंत आनंद सहित अपने राजमंदिर को गया ॥

अथानन्तर—तीन जगत विषे विख्यात है कीर्ति जिस की ऐसा अवंती सुकुमाल पुण्य के उदय से परम मनोहर भोग भोगता तिस सर्वतोभद्र महल ही विषे सुख से तिष्ठता भया, इस भांत पुण्य के उदय से यहां अनुपम परम संपदा को पाय कर सुरेंद्रदत्त, सेठ का पुत्र यह अवंती सुकु-

माल दुःख रहित अनुपम सारभूत महान् सुखों को और मनोहर दिव्य भोगोपभोगों को भोगे है, कैसा है अवंती सुकुमाल ? बड़े बड़े राजादिकों करके पूजनीक प्रशंसा योग्य है, ऐसे जान कर विभव सुख के अर्थ निपुण ज्ञानी जन हो, तुम यहां अपनी शक्ति प्रमाण मन वचन काय की शुद्धता कर बड़े यत्न से निरंतर सर्वज्ञ भाषित परम धर्म का सेवन करो, जिन धर्म को सेवन कर ज्ञानी पुरुष तीन जगत विषे सारभूत सुखों को पाय कर तीर्थंकरादिकों के परम कल्याण को पावें हैं, और क्रम से अनुपम अविनाशी सुखों की खान ऐसा जो निर्वाण पद उसको पावे हैं ॥

इत्याचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथ उस की देश भाषामय वचनिका विषे सुकुमाल की उत्पत्ति और सुखानुभव का है वर्णन जिस में ऐसा सप्तम सर्ग समाप्त भया ॥



अथ आठवां अध्याय

(सुकुमाल का तप कर के सर्वार्थसिद्धि में गमन करना)

चौपाई--तीन जगतपति पूज्य अनूप। श्रीमत तीन जगत गुरु भूप ॥
तीन भुवनपति सेवत पाय। प्रणमूं परम इष्ट शिर नाय ॥

अथानंतर–एक दिन इस सुकुमाल का मामा धर्मात्मा जगत का हितकारी अवधि ज्ञानी यशोभद्र नामा महामुनि अपने अवधि ज्ञान कर पुण्यवान् सुकुमाल की अत्यंत अल्प आयु जान पूर्व भव से आया जो संबंध उस के स्नेह कर के ऐसे चिंतन करते भये, अहो इस सुकुमाल की अति दुर्लभ संपूर्ण आयु तो धर्म के सेवन से रहित ऐसे ही गई, और तप धर्म का कारण किंचित अति अल्प आयु अवशेष रही है, और अब उसके घर विषे सकल संयमी का गमन भी नहीं पाइये है इसलिये और कोई सांचा उपायकर उस सुकुमाल को संयम दीक्षा दूंगा, इस भांत विचार कर यशोभद्र नामा मुनि उस सुकुमाल के संबोधन के निमित्त चतुर्मास संबंधी भले योग के ग्रहण के शुभ दिन विषे

सुकुमाल के निकट उपवन के मध्य शोभायमाम उत्तंगत्रिजगद्वंद्य ऐसा चैत्यालय विषे आये, उस ही समय बनपाल जाय कर सुकुमाल की माता से ऐसे कही, हे मात ! उपवन के चैत्यालय विषे योगी राज आये हैं, यह बचन माली के सुन कर उस जिनालय विषे शीघ्र ही जाय वहां पुण्य रूप अर्हंत देव के प्रतिबिम्बों का और अपना भाई यशोभद्र मुनिराज का पूजन कर, प्रणाम कर वह यशोभद्रा सेठानी ऐसे कहती भई, हे नाथ, यहां मेरे प्राण समान एक ही पुत्र है सो तुम्हारे वचन श्रवणमात्र कर के ही तुरत संयम ग्रहण करेगा, तब मरण का कारण आर्तध्यान मेरे अवश्य होयगा, ऐसे जान हे दया निधान ! मुझ पर दयाकर यहां से और स्थान प्रति शीघ्र ही जावो, तब मुनिराज ने ऐसे कही, हे भद्रे ! आज योग्र का दिन वर्ते है, इस लिये हमें कोई भी स्थानक गमन करने योग्य नहीं, कैसे हैं हम ? जीवों की दया ही है अर्थ कहिये प्रयोजन जिन के उस से चतुर्मास के योग कर यहां ही तिष्ठूं हू इसमें और तरह नहीं, ऐसे कह कर शीघ्रही अंतरंग वहिरंग उपाधि सहित देह का ममत्व का त्याग कर सर्वत्र ही समतारूप हैं भाव जिनके ऐसे यशोभद्र मुनिराज सूकेठूठ समान अडिग होय ध्यान का अवलंबनकर कायोत्सर्गकर सहित खडे तिष्ठे उस जिन मंदिर विषेही धर्म ध्यानकर आत्मतत्वके विचार से कायोत्सर्ग सहित चार महीने व्यतीत करे, सो धीर बुद्धि यशोभद्र मुनि कार्तिक शुदि १५ के दिन रात्री के चौथे पहर चतुर्मासकीक्रियाकर योगका त्याग किया, उस समय अवधि ज्ञानरूप नेत्रकर सुकुमालको

निद्रा रहित जान उसके संबोधन के अर्थ वह यशोभद्रमुनिराज ने अमृत समान मधुरवाणी कर समस्त त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति का वर्णन करने का प्रारम्भ किया, उस पीछे प्रथम ही वैराग्य के निमित्त अधोलोक का वर्णन कर उस पीछे मध्य लोक का कथन कर अनंतर स्वर्गों का वर्णन कर फिर अच्युत स्वर्ग विषे पद्मगुल्म विमान में पद्मनाभ देव की बड़ी विभूति संपदाका मधुरवाणी करके वर्णन करने को वह यशोभद्र मुनिराज उद्यमी भये, तब उस पद्मनाभ देव की विभूति संपदा के श्रवण मात्र से वह अवन्ती सुकुमाल जाति स्मरण को प्राप्त भया, सो उस जाति स्मरण से अपने समस्त पूर्व भव जान कर और संसार शरीर भोग सुखों विषे परम वैराग्य को पाय कर अत्यंत विरक्त भया, सुकुमाल इस भांत चिंतवन करता भया, अहो जो मेरा जीव अनुपम परम रमणीक स्वर्ग संबंधी भोग सुख सागरों पर्यंत चिरकाल भोगे। तिन करके भी तृप्ति को नहीं प्राप्त भया, सो, अब मेरा जीव दुःख से मिले जो निन्दनीक पराधीन और शरीरके पीड़ाके उपजावन हारे ऐसे मनुष्य पर्यायके भोग सुख, तिन कर कहां तृप्तिको प्राप्त होयहै ? भावार्थ–तृप्तिको नहीं प्राप्त होय है, कदा काल दैवयोग से इन्धन कर अग्नि तृप्त को प्राप्त होय, अथवा नदी के प्रवाह कर समुद्र तृप्ति होय, और धन संग्रह कर लोभ शांति होय तो होय, परन्तु यह आत्मा, अनन्त जन्म कर भोगे जो त्रैलोक्य संबधी नाना प्रकार के मनोहर विषय सुख, तिन कर किसी काल विषे भी तृप्ति नही भये, इस से जे अत्यंत कामी पुरुष सुखों कर तृप्ति

को वांछे हैं वह अज्ञानी अपथ्य सेवन कर रोग की शान्ति चाहे हैं अथवा तेल से अग्नि का शांत करा चाहे हैं, जिस शरीर करके काम संबंधी पीडा की शांति के अर्थ यहां विषय सुख भोगिये हैं सोई शरीर मल, मूत्र, मांस, रुधिर मज्जादिक से भरा सार रहित क्षण भंगुर ह, हाय हाय मैं मूढ अज्ञानी तपश्चरण बिना अतिशयपणा कर इसदेह को इतने काल पर्यन्त निरन्तर विषय सुखों कर वृथा ही पोखा। यह शरीर यद्यपि वसन भूषणादिकों कर वाहर सुन्दराकार दीखे है, तथापि अभ्यन्तर विषे मल मूत्रादि धातु उपधातुओं से भरा अत्यन्त घृणावणा है, और आज मैं सम्यग्ज्ञान को प्राप्त भया हूं सो जगत निन्द्य इस कलेवर को तप रूप अग्नि से शोषण कर शिव रमणी का साधन करूं, और यह क्षण भंगुर रामा स्त्री समस्त पापों की खान मनुष्य के भक्षण विषे काली नागणी समान हैं, अथवा पुरुषों के बंधन को पावों विषे सांकल वा बेड़ी समान हैं, कैसी हैं रामा? अत्यंत अपवित्र महा निन्दनीय नरक धरा के प्रवेश करने को गैली [रास्ता] समान हैं, और ज्ञानी पुरुषों करके निंदनीय बंदीखाना समान ब्रह्मादि धर्म का विनाशक अनंत दुःख और अनेक पापों की खान है, और यह अत्यंत विनाशी आपदा समान संपदा मोहकी उपजावनहारी समस्त अनर्थ की कारण पाप की मूल है, और महानिंद्य विषय यह कुटुंब कंठ विषे सांकल समान पुरुषों को पापादिक कार्य के प्रेरक, धर्म का विध्वंस करने वाला है, और यह जोवन जरा करके ग्रसित है, और यह अपनी आयु यमराज के मुख विषे तिष्ठे है

और सुख है सो दुःख के, भार कर व्याप्त है और समस्त संसार क्षण भंगुर है, और पांचों इंद्रिय रूप तस्कर मनुष्यों के धर्मरूप रत्न के चोर हैं और समस्त वैराग्य के कारण आत्मा के असाध्य शत्रु हैं, हाय हाय संपदा रूप फांसी कर वेष्टित और स्त्रीरूप सांकल कर सर्वाङ्ग बन्धा घर रूप बन्दीखाने में तिष्ठता ऐसा जो मैं सो यहां इतने दिन बृथा ही खोये। आज मैं योगीराज के परमार्थ रूप बचन श्रवण से शीघ्र ही प्रबुद्ध भया, सो मोह रूप फांसी को शीघ्र ही छेदन कर यति का संयम ग्रहण करूं, जब लग देह में जरा नहीं व्यापे, और आयुक्षीण नहीं होवे, और सकल इंद्रियों की मंदता नहीं होय, तब लग मनुष्यों को तप का करना ही हितकारी है, जब लग बुद्धि की प्रवीणता है, और यौवन विषे शरीर की दृढता है, तब लग तपश्चरण कर स्वर्ग मोक्ष का साधन का उद्यम करना योग्य है, और जो मोही जीव ऐसा विचार करे हैं, कि जे आज वा प्रभात स्वर्ग मुक्ति का साधन आत्म हित करूंगा ऐसे विचार करते तो बहुत दिन बीत जांय, केवल विचार ही से कार्य सिद्ध नहीं होय, बिना कार्य किये ही कालरूप वैरी कर के कंठ विषे बंधनको प्राप्त भये वह मोही जीव पाप कर्म के बससे क्षण मात्र करके दुर्गति रूप समुद्र विषे पडे हैं। इत्यादिक चिंतवन से तिस सुकुमाल के हृदय विषे काम भोगादिक से और घर दारादि वस्तुओं से दुगना वैराग्य भया, अहो इस उतुंङ्ग महल से कोई भी उपाय निकसने का दीखे नहीं, कैसा है महल दृढ़ हैं द्वारों विषे कपाट जिसके, ऐसे चिंतवन करता वैराग्य विषे तत्पर भया

तपश्चरण के अर्थ उद्यमी ऐसा बुद्धिमान् सुकुमाल महल से निकलने का उपाय देखता हुआ एक वस्त्रों का वींटा (गठडी) देखता भया उस में से वस्त्रों को खैंच परस्पर एक एक वस्त्र को रज्जू (रस्सी) समान दृढ़ बांध महल के थंभ से दृढ़ बंधन कर, फिर तिस वस्त्र को लुबाय भूमि पर्यंत लम्बा क्षेपण कर उसे पकड़ कर पुण्य के उदय से पृथ्वी विषे उतर यशोभद्र मुनिराज के समीप गया, तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड नमस्कार कर आनन्द सहित सुकुमाल कुमार श्री मुनिराज को ऐसे कहता भया, हे भगवन्, इस लोक विषे विषयासक्ति पनेकर के जे दिन गये वह संयम के आचरण विना वृथा ही गये। अब आपकी कृपा कर आपके बचन रूप अमृत के पान से मोह रूप दुर्विष का वमन कर आज मैं अत्यंत सचेत भया हूं। इस से अब ही दया कर मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ मुझे भगवती दीक्षा देवो, कैसी है दीक्षा ? समस्त सुखों की खान है और मुक्ति की उपजावन हारी है। तब यशोभद्र मुनिराज बोले, हे भद्र, तैंने बहुत भला विचार किया, क्योंकि तेरी आयु सिर्फ तीन दिन प्रमाण बाकी रही है, तब सुबुद्धि सुकुमाल ने बाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रह का और चार प्रकार आहार का मन बचन काय की शुद्धता से त्याग कर यशोभद्र गुरु के बचन से शीघ्र ही जिनमुद्रा ग्रहण करी। प्रायोग गमन संन्यास सहित ध्यान की सिद्धि के अर्थ धर्म ध्यान का अवलंबन कर बन के मध्य गमन करता भया, वहां भयानक निर्जन प्रदेश विषे जाय देह से ममत्व का त्याग कर पृथ्वी विषे एक पार्श्व से शरीर को

निश्चल स्थापन कर धर्म ध्यान से समाधि मरण के अर्थ महा प्रवीण सुकुमाल मुनिराज प्रायोग गमन नामा संन्यास को अंगीकार करता भया। भावार्थः-संन्यास के तीन भेद हैं, भक्ति प्रत्याख्यान, इङ्गिरी, प्रायोग गमन, तहां चतुर्विध आहार का त्याग तो तीनों ही विषे होय है, और भक्ति प्रत्याख्यान संन्यास विषे स्वपर कृत देह का उपचार है अर्थात् आप और दूसरे दोनों टहल कर सक्ते हैं और इंगिरी विषे स्वकृत ही उपचार है (अपनी टहल आप ही करसक्ता है दूसरा नहीं) परकृत नहींहै, और प्रायोग गमन विषे स्वपर कृत दोनों ही उपचार नहीं है अपने शरीर की टहल न आप कर सकता है न दूसरा, जैसा का तैसा रहे। सो सुकुमाल मुनि ने प्रायोग गमन संन्यास अंगीकार किया। और यशोभद्र मुनिराज भी तिस जिन मंदिर से निकस कर संक्लेश परिणामों में आकुलता की हानि के अर्थ कोई और जिन मंदिर विषे जाय तिष्ठे। कैसे हैं यशोभद्र मुनि? अत्यंत विशुद्ध है बुद्धि जिनकी। अब यह तो कथन यहां ही रहा, अब आगे और कथन सुनो, वह सुकुमाल की बत्तीस स्त्रियां सुकुमाल को नहीं देख कर शोककर आकुलभई हुई शीघ्र ही यशोभद्र के निकट आय बत्तीस सुन्दरी गद्गद बाणाकर ऐसे कहती भई-हे मात.हम बत्तीस वनिताओं को प्राण वल्लभ तेरा पुत्र आज नहीं दीखे है, सो नहीं जानिये हैं वह धर्मात्मा कहां गया इस भांत उन सुकुमाल की स्त्रियों के वचन सुन कर बडे शोक का भार कर शीघ्र ही यशोभद्रा मूर्च्छा को प्राप्त भई,

सो मानो निश्चल जिनवानी ही है, और उसी समय सकल स्वजन परजन हाहाकार शब्द करते भये, और शोक कर पीडित सुकुमाल की समस्त वनिता बडा रुदन करती भई, उस पीछे अपने अपने बंधुजनों कर शीतोपचारादिकों से सहज सहज कहिये मंद मंद धीरे धीरे चेतना को पाय कर यशोभद्रा सुकुमाल के हेरने (ढूंढने) को उद्यमी भई, परिवार सहित शोक कर पीडित वह यशोभद्रा यहां वहां अपने पुत्रको देखती हुई जिस वस्त्र माला से सुकुमाल महल से उतरा था उस वस्त्र को देखती भई। तब सुकुमाल की माता यशोभद्रा उस वस्त्र मालाकर के चित्त विषे अपने पुत्र का गमन जान शीघ्रही श्रीजिनेंद्र के मंदिर गई, वहां उस यशोभद्र मुनिराज को भी नहीं देख करके उसही समय प्रकट यह निश्चय किया जो इस वस्त्रमाला का उपाय कर और यहां चतुर्मास के योग धारण के उपाय कर निश्चय से मेरे पुत्र को यशोभद्र मुनि ही लेगया है, उस पीछे परमशोक कर व्याकुल ऐसी वह यशोभद्रा समस्त बंधुजनों के सहित बडे आग्रह से भूतल विषे अतिशय पने कर सुकुमाल को हेरने लगी, और वृषभांक नृप आदि समस्त राजलोक और समस्त पुरीवासी लोक सुकुमाल के हेरने को प्रवृत्त हुए २ अपने घर से वन विषे गये, यह राजादिक वा यशोभद्रादिक बडे यत्न से वन विषे निरंतर सुकुमाल को हेरते हुए जिस गूढ प्रदेश विषे सुकुमाल मुनि प्रायोग गमन संन्यास धार तिष्ठे था, उस उज्जयिनी पुरी विषे सुकुमाल का शोकादि करके समस्त पुरवासी

Digambra Jain Religious Grantha Series No. 6

मूल ग्रन्थ रचिता श्री सकलकीर्ति आचार्य

भाषा वचनिका रचिता पण्डित नाथूलाल जी

इति सुकुमालचरित्र

संवत् १९६७। सन् १९११। वीर संवत् २४३७।

बाबू ज्ञानचन्द्रजैनी लाहौर निवासीने छपवाया]

[मूल्य १) रुपया

[illegible] जैनी लाहौर] [पञ्जाब [illegible] लाहौर में प्रिन्टर लाला [illegible] छपा।

लागा न भोजन नहीं किया, और पशुओं ने घास नहीं खाया और पक्षियों ने चोगा नहीं चुगा, उस समय सुकुमालकी माताके और बंधुजनोंके और सुकुमाल की बत्तीसों वनिताओं के जो दुःसह आतापकारी तीव्रशोक भया उसके वर्णन करने को कौन समर्थ है? भावार्थः–कोई भी समर्थ नहीं ॥

अथानंतर–आगे वह सुकुमाल मुनि भी निश्चल निर्मल परिणामों सहित महा प्रवीण निज और परकृत उपचार की वांछा रहित अशुभ कर्म के क्षयको उद्यमी सम्यग्दर्शन सम्यक् ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक्तप इनचार आराधनाओंविषे तल्लीन शुद्ध भावना विषे लगायाहैचित्तजाने स्नेह रहित निद्रा रहित धर्मबुद्धि धर्म ध्यानका जब लग चिंतवन करे था तब लग वह पूर्व भवकी भौजाई अग्नि भूत ब्राह्मण की स्त्री सोमदत्ता जिस के मुख पर सुकुमाल के जीव ने वायुभूत के भव में लात मारीथी(दईथी)उसने असमर्थपने करके इसका पाद भखनेका निदान कियाथा,सोसोमदत्ता संसार रूप वन विषे त्रिस्थावर की अनेक योनि में चिरकाल भ्रमण कर भय रूप है आत्मा जिसका, पराधीन सर्व ऋतु के दुःख कर पीडित पाप कर्मके उदय कर उसही वन विषे स्यालनी(गीदड़ी)भई,सो वन विषे आगमनके अवसर सुकुमालके कोमल पावोंसे भूतल विषे रुधिरकी धारा पडती गई थी उसे आस्वादन करती चाटती थकी आय कर निश्चल ध्यानारूढ सुकुमाल मुनि को देखती भई। तब पूर्व वैर संबंधी कोप कर निदान वैर के देखते महा क्रोधायमान होयकर वह स्यालनी स्वयमेव सुकुमाल के दाहिने

पैरको खाने लगी और उस स्यालनी की पिल्ली, बच्चा क्षुधातुर उस स्यालनी के साथ ही सुकुमाल मुनि का बांमा पांवखाने को मुख से उसही समय प्रारम्भ किया ॥

अथ श्री सुकुमाल मुनि बारह भावना भावे हैं।

अथानंतर–उन श्रीसुकुमाल मुनिके उन दोनों स्यालनियोंकेअतिस्तोक स्तोक भक्षण करने से अत्यंत कोमल अंग विषे वडी वेदना भई। उस समय इस वेदना के जीतने के अर्थ और परम वैराग्य की वृद्धि के अर्थ, उन धीर बीर श्रीसुकुमाल मुनिने अपने हृदय विषे बारहभावना के चिन्तन का प्रारंभ किया। तिन के नाम सुनो, प्रथम अनित्य भावना, दूजी अशरण भावना, तीजी संसार भावना, चौथी एकत्व भावना, पंचमी अन्यत्व भावना, छठी अशुचि भावना, सातमी आश्रव भावना, आठवीं संवर भावना, नवमी निर्जरा भावना, उस पीछे दशमी लोक भावना, ग्यारमी बोध दुर्लभ भावना, और बारवीं धर्म भावना, यह बारह भावना संवेग की उपजावन हारी उपसर्ग के विजय के अर्थ चिन्तवन करते भये ॥

१ अथानंतर–श्रीसुकुमाल महामुनि गिदडी करके पैर भक्षण करनेकी परीषह सहते हुए। तहां प्रथमही अनित्य भावनाका चितवन इस प्रकार करे हैंकि यह देह काल रूपबैरी से क्षण मात्र मेंविध्वंसित

हो जायगी और यह यौवन बिजली समान क्षण भंगुर है,और समस्त भोग संपदा बादल समान क्षण स्थाई है,जैसे इस संसार विषे भ्रमण करते पूर्वतन मेरे अनंतानंत शरीर विलाय गये, तैसे यहां यह भी शरीर कर्मरूप वैरीकी हानिके अर्थ जाओ,इस देह के जाने में मेरा कुछ भी विगाड़ नहीं;मेरुसमानप्रचुर पाप कर्मके वसभया मैं नर्क विषे उपजा,वहां नारकियोंने अनंतानंत तिल तिल प्रमाण मेरी देहकेखण्ड खण्ड किये। और तिर्यंच गति विषे भ्रमते मेरे अनंत शरीरोंको निर्दई सिंह व्याघ्रादि क्रूर जीवोंने अनंत बारभक्षण किया,अब यह मेरा शरीर यहां कर्मों के नाश के अर्थ जाए है,तो इस उपसर्गके विजय होते हुए मुझे परम लाभहै॥यहां ग्रंथ रचिता आचार्य कहेहैंकि संसार रूप वैरी से भयभीत जे ज्ञानी जीव हैं उन करके दुष्करतप किया जाए है,और ज्ञानी जीव उप सर्गके विजय को परमतपकहेहैं,और तीन लोक विषे जीवों के शुभ कर्म से उपजे जो राज्य भोग शरीर दारादिक और संपदा सुख धनादिक वस्तु कुछ एक सुंदर दीखे है, सो सर्व वस्तु गिणता के दिनों में काल रूप अग्नि से खाककी राशि हो जायगी, इस भांत समस्त जगत को विनाशी जान कर, हे ज्ञानी पुरुष हो, सुखकी प्राप्ति के अर्थ उग्रोग्र तप के समुदायकर के अविनाशी परम पदका साधन करो, इति अनित्यभावना ॥

२ श्री सुकुमाल मुनि अशरण भावनाका चिंतवन करें हैं कि जैसे मृगारि(सिंह)करके पकडे गये बन विषे मृगको कोई शरण नहीं तैसेही मनुष्योंको जन्म मरणके दुःखों से बचाने को कोई भी रक्षक नहीं है,

जब इस जीव को यमराज आय कर पकडे हैं तब इंद्रादिक देव और समस्त विद्याधर चक्रवर्त्यादिक मनुष्य क्षण मात्र भी राखने को समर्थ नहीं हैं, संसार रूप बन विषे भ्रमण करते अशरण पने से मैंने छेदन भेदनादिक अत्यंत तीव्र कोटिक दुःख भोगे हैं अब यहां यह पशु स्यालनी मेरे पांवको भक्षण करे है सो अशुभ कर्म की हानि के अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ, और संसार के विनाश के अर्थ यह बहुत भला काज भया है,और तरह नहीं, जहां कोई भी रक्षक नहीं ऐसे इन तीनों लोकों विषे संसारी जीवों के रक्षक पंचपरम गुरु ही हैं और केवल प्रणीत धर्म रक्षक है, जिस से इस लोक विषे यह पंचपरमेष्ठी मुक्ति के दायक सत्पुरुषोंका उपकार करने को समर्थ हैं इन सिवाय और ब्रह्मा, विष्णु महेशादिक तथा देवी दिहाडी, क्षेत्र पाल, भैरवादिक मंत्र तंत्रादिक कोई भी उपकार करने को समर्थ नहीं, उस से इस से इस दुर्द्धर उपसर्ग विषे अशुभ कर्मके विजयकी सिद्धि के अर्थ और मुक्तिके अर्थ मेरे अर्हंतादि पंच परमेष्ठी तथा जिन धर्म ही शरणाधार होऊ । यहां ग्रंथ कर्त्ता आचार्य कहे हैं कि इस भांत तीन लोक को शरण रहित जान कर हे चतुर विचारज्ञ पुरुष हो, तप संयम कर शाश्वत नर्वाण के शरणे जाओ ॥ इति अशरण भावना ॥

३ संसार भावना का श्री सुकुमाल मुनि इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि यह आदि अंत रहित पाप रूप दुःखोंका समुद्र महा भयानक पंडितों करके निन्दा योग्य ऐसा पंच प्रकार संसार

सत्पुरुषों के स्थिरता के अर्थ कैसे होय.? इस अनादि संसार विषे भ्रमण करते नरक तिर्यंच दुर्गति विषे समस्त जीवों करके चिरकाल पर्यंत मैंने अनंती वेदना पाई,इस स्यालनी के भक्षणादिक से उत्पन्न भया, ऐसा यह दुःख मेरे कितनाक है अर्थात् कुछ भी नहीं,यह दुःखतो अशुभ कर्म के नाश से मेरे निःसंदेह मुक्ति के सुख के अर्थ है, इस भांत बारंबार संसार के विचित्रपने का चिंतवन करता ऐसा वह सुकुमाल मुनि मेरुगिर समान अत्यंत निश्चलांग कहियेनिष्कंप भया। यहां ग्रंथ रचिता आचार्य कहे हैं कि तुम सुख के अर्थ ज्ञानी पुरुष हो, अनंत दुखों कर परिपूर्ण संसार के स्वरूप को जान कर इस देह से स्नेह का त्याग कर, दर्शन, ज्ञान चारित्रादिक के आचरण में अनंत सुखों की खान ऐसे मोक्ष का साधन करो, इति संसार भावना ॥

४ श्री सुकुमाल मुनिचौथी एकत्वभावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि जन्म, जरा, मरणादिक के दुखों कर रहित और एकाकी निर्मल अमूर्तिक चिरंजीव ऐसा मैं आत्माराम निश्चय कर अनंत गुणों का भाजन हूं यह दोनों (स्यालनी और स्यालनी की पिल्लो) इस दुर्गंधित कलेवर को भले ही खावो,मेरे अमूर्तिक निजस्वरूप को नहीं खाय हैं। इस भांत विचार वह सुकुमाल मुनि रंच मात्र भी कलुष परिणाम नहीं करे है। यहां ग्रंथ कर्त्ता आचार्य कहे हैं कि हे ज्ञानी पंडित जन हो, जन्म जरामरण रोग शोक दुःखादिकों विषे अपना एकाकीपना देखकर मुक्ति के अर्थ एक चिदानंद

आत्मा ही का चितवन करो ॥ इति एकत्व भावना ॥

५ श्री सुकुमाल मुनि पांचमी अन्यत्व भावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं। कि यह घिनावना क्षणभंगुर शरीर मेरे से जुदा है और निश्चय से मन वचन तथा सकल इन्द्रियां भी मेरे से जुदी हैं। यह दोनों पशु केवल काय को भखे हैं और काय रहित मेरे आत्माको नहीं भखे हैं। इससे मेरे दुःख कहां से होय? ऐसे वह मुनि हृदय विषे चिंतवन करे हैं। यहां ग्रंथ कर्त्ता आचार्य कहे हैं कि इस भांत शरीरादिक से अपना अन्यपणा जान कर भोअन्यत्व वेदी भव्य जीव हो, इस अशुचि अंग से जुदा कर मुक्तिके अर्थ एक अपने निज स्वरूप का ध्यान करो ॥ इति अन्यत्व भावना ॥

६ श्री सुकुमाल मुनि छठी अशुचि भावना का चिन्तवन इस प्रकार करे हैं। कि क्षुधा तृषा रूप अग्नि का घर और काम क्रोध रोग रूप नागों कर व्याकुल सप्तधातु उपधातु मलादिकोंकरकेपरिपूर्ण ऐसी यह काय ज्ञानी पुरुषोंकर कहा सराहिये है ? अर्थात् जैसे जिस घर में मूत्रादिक भरे और जिस में सांप गोहरे न्योल क्रीडा करें, और जिस के चारों ओर अग्नि प्रज्वलित भई उस घर की पंडित जन सराहना नहीं करें, वैसे इस अशुचि कलेवर की ज्ञानी जन सराहना नहीं करे हैं। अहो यह स्यालनी बंदीगृह समान मेरे अशुभ अंगको भखे है और इस अंग से मुझे मुक्त कहिये रहित करे है सो यह ही मेरे शिवदायक परम लाभ है, इत्यादिक भेद विज्ञान के चिंतवन कर, अति धीर वीर वह सुकुमाल मुनि

...कर के पावों को खात सतभी मन वचनकायकी शुद्धताकर रंच मात्र भी क्लेश को नहीं प्राप्त होय हैं। यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्यजीव हो,सर्व प्रकार इस काय को अशुचिमय जान कर सयम विषे वा महा घोर उग्रोग्र तप विषे लगाय कर परम पवित्र मोक्षका साधन करो॥ इतिअशुचि भावना॥

७ श्री सुकुमाल मुनि सातमी आश्रव भावना का इस प्रकार चिंतवन करें हैं कि—यह संसारीजीव पांच मिथ्यात्व, बारह अव्रत,पच्चीसकषाय, पद्रह योग,इन सत्तावन प्रत्ययन कर के संचय रूप भये ऐसे जे अशुभ कर्म के आश्रव, तिन कर छिद्र सहित नावकी नाईं संसार समुद्र विषे डूबे हैं, जिस भव्य जीवने तप, ध्यान और क्षमादिकों कर कर्माश्रवका निरोध किया, उस भव्य जीव के मनो वांछित संयम, संवर, निर्जरा और मोक्ष सिद्ध भये, और उपसर्ग के दुःख कर जो मेरा मनआज मलीन होय तो मलीन मन कर के पाप ही का आश्रव होय, और फिर उस पापाश्रव से अनंत संसार होय, और उस संसार विषे बडे बडे पंडितों से भी नहीं कहा जाय ऐसा अत्यंत तीव्र घोर दुःख है। ऐसा विचार कर वह सुकुमाल मुनि मोक्ष का अर्थी उत्कट कष्टको सहे है। यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत आश्रव के महान दोष जान भोज्ञानी पंडित जन हो, मन बचन काय से कर्म रूप वैरी का विरोध कर आश्रव का अवरोध करो ॥ इति आश्रव भावना ॥

८ श्री सुकुमाल मुनि सम्वर भावना का इस प्रकार चिन्तवन करे हैं कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान

चारित्र, तप कर और मन बचन काय के योग को निरोध कर, और धर्म शुक्ल ध्यान कर जो महंत पुरुष के कर्माश्रव का निरोध होय सो संवर है। कैसा है संवर? अनंत गुण रत्नों का समुद्र है, और संवर कर सहित किये हुये अल्प तप व्रतादिक भी भव्य जीवों के सर्व काल विषे महान फल को फलें हैं, और संवर बिना घोर तप व्रतादिक कुछ भी फलदाई नहीं, उलटे अशुभ कर्म के बंध के कारण होय हैं, और ऐसा दुस्सह घोर उपसर्ग होते हुए धीर बीर पुरुष एकाग्र चित्त कर शुभ ध्यानों से जो संवर करे है सो संवर सकल अर्थ की सिद्धि का दायक है, और संसार के कारण जे घोर पाप रूप वैरी उनका घात करे है, ऐसे विचार कर संवर के अर्थ ऐसा वह सुकुमाल मुनि आत्मध्यान से रंचमात्र भी नहीं चलायमान होय है। यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत संवर से प्रकट भये जे ऐसे सारभूत गुण उन को जानकर भो भव्य जन हो, उत्तम अनुपम गुणों की प्राप्ति के अर्थ मन बचन काय के निग्रह से सदा-काल संवर करो ॥ इति संवर भावना ॥

९ श्रीसुकुमाल मुनि नवमी निर्जरा भावना का चिंतवन इस प्रकार करे हैं कि सर्वज्ञ देवने सविपाक और अविपाक के भेदकर निर्जरा दो प्रकार की कही हैं, सो सविपाक निर्जरा तो सर्व संसारी जीवों के होय है, और अविपाक निर्जरा ध्यानी मुनिराजों के ही होय है, वीतरागी आत्मध्यानी मुनिराजों करके उग्रोग्र तपश्चरण कर संवर सहित जो निर्जरा यहां करिये है सो अविपाक निर्जरा है,

कैसी है अविपाक निर्जरा? दया कहिये आत्मा की रक्षा, और मुक्ति कहिये समस्त कर्मों का अभाव आदि गुण रत्नों की खान है, और कर्मों को स्वयमेव उदय में लाकर क्षय करनेहारी है। ऐसी अविपाक निर्जरा सत्पुरुषों के सदाकाल होय है। अथवा संवर सहित मुक्ति के अर्थ सविपाक निर्जरा भी करिये है। भावार्थः-संवर सहित दोनों ही निर्जरा मुक्ति की कारण हैं, अहा यह सविपाक निर्जरा अपने कर्मके उदयसे स्वयमेव मेरे भाग्य से उदय भई, कैसी है सविपाक निर्जरा? पूर्वकाल में संचय किये जो अशुभ कर्म रूप वैरी तिनको नाश करन हारी है, वह निर्जरा का अर्थ सुकुमाल मुनि इस भांत विचार समस्त मन वांछित का दायक ऐसी परीषह कर सहित मेरु समान निश्चल भया। यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्यजीव हो, सार भूत मुक्ति आदि समस्त गुणों की उपजावन हारी ऐसी निर्जरा को जान कर मोक्ष सुख के अर्थ सुकुमाल मुनि की तरह उग्रोग्र तपश्चरण कर निरंतर अविपाक निर्जरा का उपाय करो॥ इति निर्जरा भावना॥

१० श्रीसुकुमाल मुनि लोक भावना का चिंतवन इस प्रकार करे हैं कि-अधोलोक, मध्य लोक, उर्ध्वलोकके भेदकर तीन प्रकार यह लोक जिनेंद्र देव ने अकृत्रिम और शाश्वत कहा है, कैसा है लोक? दुःख और सुख और उभय कहिये सुख दुःख दोनोंकर आश्रित है, तहां अधो लोक विषे सात नरक धरामें तो सर्वथा महान घोर दुःखही है, सुख का लेश भी नहीं। और मध्य लोक विषे किसी जगह सुख

है, किसी जगह दुख है, किसी जगह सुख दुःख दोनों मिश्रित हैं, और इस लोक के उर्ध्वभाग विषे स्वर्गादिकों में सुख है, और तीन लोक के शिखर पर नित्य अविनाशी अनंत गुण और अनंत सुखों का सागर ऐसा शिवालय है। और परमार्थ जो शुद्ध निश्चय उस कर ज्ञानी जीवों के चित्त विषे मोक्ष विना यह समस्त लोक दुखों का भाजन ही भासे है, और इस लोक विषे अधोगति में तथा तिर्यंच की बासठ लाख योनि विषे कर्मों के बस से मैंने छेदन भेदनादि संबंधी महान घोर दुःख भोगे सो यह दुःख कितना है ? कुछ भी नहीं, इस दुःख को कौनसा धीरवीर दुःख मानें ? कोई भी ज्ञानी दुख नहीं मानें। ऐसे विचार कर वह सुकुमाल मुनि आकुलता रहित ध्यान विषे एकाग्रचित्त भया॥ यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत परमागम से इस लोक को दुःखदायी जान कर हे भव्यजीव हो, यम नियमादिकों कर लोक के शिखर पर शिवालय का साधन करो। इति लोकभावना॥

११ श्रीसुकुमाल मुनि ग्यारवीं बोधि दुर्लभ भावना को इस प्रकार भावते भये कि–चार गति चौरासी लाख योनि रूप संसार विषे भ्रमण करते ऐसे मिथ्या दृष्टि पापी जीवों को निश्चयकर यह मनुष्य जन्म का लाभ निधि समान अति दुर्लभ है। और इस मनुष्य जन्मके भाल से भी आर्य्य खंड का लाभ दुर्लभ है, और आर्य खंड के लाभ से भी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य संबंधी उत्तम कुल विषे जन्म का लाभ महान् दुर्लभ है, और उच्च कुल विषे जन्म पाने से भी दीर्घ आयु का पाना बहुत

दुर्लभ है, और दीर्घ आयु के लाभ से भी निर्मल सम्यक् ज्ञानमयी बुद्धि का पावना अत्यंत दुर्लभ है, और निर्मल बुद्धि के लाभ से भी पाचों इंद्रियों की परिपूर्ण सामग्री का पाना महान् कठिन है, और इन समस्त सामग्री का लाभ होते हुए भी सम्यग् दर्शन, सम्यक् ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक् तप और बीतरागी निर्ग्रंथ गुरु का सेवन आद सामग्री का लाभ निधि समान उत्तरोत्तर अति दुर्लभ है, इत्यादिक उत्तरोत्तर दुर्लभ पने से अत्यंत दुष्प्राप्य ऐसी जा सम्यग्दर्शनादिक की एकता रूप बोधि, उसे पाय कर जो भव्य जीव बडे यत्न से मोक्ष का साधन करे हैं उनही भव्य जीवों के यहां बोधि का लाभ सफल होय है, और मनुष्य जन्म का लाभ होते हुए भी जो मूर्ख मिथ्या दृष्टि पापी जीव सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रादिक विषे प्रमाद करे हैं सो पापी जीव संसार रूप गहन अटवी विषे अनंतानंत काल पर्यंत परिभ्रमण करे है, कैसी है बोधि ? परलोक विषे मनोवांछित अर्थ की साधन हारी है, अब इस घोर उपद्रव से जो मैं सम्यग् दर्शनादि गुणोंसे गिर(ड़) जांऊ तो आगामी काल में मेरा दीर्घ संसार विषे परिभ्रमण होय । ऐसे विचार वह सुकुमाल मुनि मेरु समान अचल होता भया । यहां आचार्य कहे हैं कि हे भव्य जीव हो, मनुष्य पर्याय सम्यग् दर्शन आदि मोक्ष मार्ग की सामग्री पाय कर तप योगादिकों से निर्वाण का साधन करो ॥ इति बोधिदुर्लभ भावना ॥

१२ श्रीसुकुमाल मुनि धर्म भावना का इस प्रकार चिंतवन करे हैं कि–जो अपार संसार के

दुःख समुद्र से उद्धार कर संसारी जीवोंको शिवालय विषे अथवा सौधर्मादि सर्वार्थ सिद्धि पर्यंत शुभ स्थानक विषे धारण करे हैं। सो सर्वज्ञ भाषित महान् धर्म है। उसके भेद१०हैं। एक उत्तम क्षमा,२उत्तम मार्दव, ३उत्तम आर्जव, ४उत्तम सत्य, ५उत्तम शौच, ६उत्तम संयम,७उत्तम तप, ८उत्तम त्याग,९उत्तम आकिंचन्य १० उत्तम ब्रह्मचर्य। यह १०लक्षण धर्म भव्यजीवोंके परम धर्मके कारण हैं इस उत्तमक्षमादि दश लक्षण धर्म के सेवन करने से मुनिराज के महाव्रतादिक के पालन रूप परम धर्म मोक्ष का दायक होय है। और इस दश लक्षण धर्म के सेवन विना और दुर्द्धरकाय क्लेशादिक कर मोक्ष का लाभ कभी भी नहीं होय है। और तीनलोक विषे सख संपदा निवास आदि जो कुछ सुन्दर सुहावणी वस्तु दीखे हैं सो समस्त धर्म रूप कल्प वृक्षका फल हैं। और इस परीषह के प्राप्त होते हुए जो मेरा मन विकार पनाको प्राप्त होय तो मेरे उत्तम क्षमा धर्म कहां रहा? ऐसे विचार सो सुकुमाल मुनि उस स्यालनी कृत उपसर्ग को समभाव से सहे हैं॥ यहां आचार्य कहे हैं कि इस भांत समस्त धर्म का फल जान कर हे धर्मात्मा भव्य जीव हो, उत्तम क्षमादि दश लक्षणों करके बडे यत्न से एक केवल सर्वज्ञभाषित धर्म ही का सेवन करो॥ इति धर्म भावना॥

सो जो भव्य जीव इन बारह अनुप्रेक्षाओं को निरंतर चिंतवन करे हैं तिन भव्य जीवों के रागादिक वैरी क्षीण होय हैं। और धर्म विषे और धर्म के फल विषे अत्यंत प्रीति बढे है, इस भांत जान

कर हे बुध जन हो! अशुभ कर्म के नाश के अर्थ इन बारह शुभ भावनाओं के चित्तन विषे निरंतर चित्त करो, कैसीहैं यह बारह भावना? अनंत गुणों की उपजावन हारी हैं, ऐसे इन बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतवन कर उस समय उस सुकुमाल के हृदय विषे तुरत ही परम वैराग्य प्रकट भया, तब इस वैराग्य भाव करके निज आत्मा को अपने देह से भिन्न जान कर वह धीर बीर सुकुमाल मुनिराज, शुद्ध आत्मा को निर्विकल्प एकाग्रचित्त कर अतरंग बिषे निरंतर चितवन करता भया। और स्यालनी कृत अत्यंत तीव्र वेदना को जानता हुआ भी यह सुकुमाल मुनि उस आत्म ध्यान के प्रभाव करके चित्त विषे कदाचित् भी रंचमात्र खेद को नहीं प्राप्त होय है, उस पीछे वह धीरबुद्धि सुकुमाल मुनि स्यालनी कृत प्रचण्ड वेदना को जीत कर इसी उपसर्ग से वज्र समान अभेद्य भया, कैसा सुकुमाल मुनि? मेरु समान अचल है, आकृति जिसकी, अथवा महापापिनी दुर्दलस्यालनी पिल्ली सहित प्रथम दिन विषे तो क्रम से इस सुकुमाल के गोडे तक पग खाये, और दूजे दिन जांघतक भक्षणकरी। तीजे दिन अर्द्धरात्रीके समय विषे बलात्कार सुकुमालके उदर को विदारण कर वह पापिनी स्यालनी ने अपने मुख करके उसके उदर के मध्यसे आंतडीयोंके समूह को खेंचकर आहिस्ता आहिस्ता खाने का प्रारम्भ किया, उस समय उदरके विदारण से लगाय प्राणों का अंत पर्यंत भले प्रकार चार आराधना का आराधन कर उस सुकुमाल मुनिने धर्म ध्यान विषे तल्लीन होय बहुत सावधान पने से प्रायोग गमन संन्यास मरण कर प्राणों का त्याग किया, उस पीछे आत्म ध्यान के प्रभाव से

बहुत पाप कर्मों का घातकर प्रचुर पुण्यके उदय से वह अवंती सुकुमालमहा मुनिराज सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त भये । कैसी है वह सर्वार्थसिद्धि? समस्त मनो वांछित कार्यों की सिद्धि की देने हारी है, और महा रमणीक परमपवित्र है, और शिवालय के अधोभाग विषे बारह योजन नीचे तिष्टे है और मुक्ति रूपी कामिनी की सारभूत निकट वासिनी सखी है ॥ भावार्थ–एक भवमें ही मुक्ति कामिनि से मिलावन हारा परम प्रवीण सखी है, इस भांत यह सुकुमाल पूर्व पुण्य के प्रभाव से परम अनुपम भोग संपदा को भोग कर, और राग के अभाव से विधि पूर्वक परम पुनीत भगवती दीक्षा अंगीकार कर, और स्यालनी कृत महान घोर परिषहको सहकर परम उत्कृष्ट सुखों की खान ऐसी सर्वार्थ सिद्धि का प्राप्त भये । ऐसे जान कर हे भव्यजीव हो, शिवालय के अर्थ धीरपना अंगीकार करो । ऐसा उपदेश है, और जो बाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रहसे रहित मोक्षमार्गकेसन्मुख सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि अनेक गुणोंके भाजन समस्त परीषहरूप वैरीके जीतन हारे परमधीर वीर तीन लोकविषे पूजनीक संसार सागरके पारको प्राप्त भये ऐसे जो सुकुमालादि समस्त महामुनि, तिनकी स्तवन तिनके ही गुणानुवाद कर मैं सकलकीर्ति नामाचार्य करूं हूं । इत्याचार्य सकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथ उसकी देश भाषामें वचनिका विषे सुकुमाल मुनि के स्यालनी कृत उपसर्ग को विजय, और बारह भावनाको चितवन कर सर्वार्थसिद्धि विषे गमन का है वर्णन जिसमें ऐसा अष्टम सर्ग समाप्त भया ॥

नवम अध्याय

(यशोभद्रा सेठानी आदि का तप कर स्वर्ग में जाना)

चौपाई--चार घात घातक अरहंत। वसुविधि रहित सिद्ध शिवकंत॥
रत्नत्रयधारक सवसाध। मंगलकार नमं तह बाद॥ १॥

अथानंतर-जिस समय सुकुमाल मुनि सर्वार्थ सिद्धी को पधारे उसही समय इस सुकुमाल मुनिके घोर उपसर्ग के विजय के माहात्म्य से इंद्रादिक देवन के आसन कंपायमान भये, तब इंद्रादिक देव अवधिज्ञान के बलकर के उस सुकुमाल मुनिराज का परम उत्कृष्ट मरण जानकर आश्चर्य सहित हुए हुए हर्ष कर भक्ति के अनुराग से ऐसे स्तुति करते भये, अहो, यह सुकुमाल महामुनि धीरपना कर शोभायमान, अनेक गुण रत्नों का आकार, तीनलोक विषे वंदनीय, पूजनीय, महा ज्ञानी समस्त भव्य जीवों के अग्रेश्वर, महागुणवान् ऐसा वह मुनि अत्यंत कोमल कायका धारक था। सो ऐसे अत्यंत दुर्द्धर घोर उपसर्ग को समभाव से जीतता भया, इस भांत तिस धीर वीर सुकुमाल

मुनिकी परमस्तुति कर और समस्त देवों कर सहित अपने अपने वाहन पर चढे, और नाना जाति के वादित्रों के नाद कर, और जय जिनेंद्र,जय जिनेंद्र, इत्यादि घोषणा कर दिशाओं को पूर्ण करते ऐसे इंद्रादि महर्द्धिक देव हर्ष सहित पुण्य की प्राप्ति के अर्थ बड़ी विभूति कर सुकुमाल मुनि के पूजन के निमित्त महीतल विषे आये, उस वनविषे सुकुमाल मुनि के शरीर की इंद्रादिक देव बड़ी विभूति कर देवलोक संबंधी पूजन के द्रव्य कर उत्सव सहित महान् पूजाकर अपने स्थानक को गए ॥

अथानंतर–उस समय वन विषे देवों के किये जय जय आदि शब्दों और वादित्रों के परम रमणीकनाद को सुनकर वह सुकुमाल की माता सुकुमाल मुनि के तप और परीषह और परलोक गमन का वृतांत सुन समस्त कुटुंब आदि स्वपरजन सहित समस्त सज्जन परजन को बुलाय वह यशोभद्रा सेठानी वृषभांक नृप सहित जहां सुकुमाल का कलेवर था उस वनस्थल में गई, वहां सुकुमाल के अर्ध भक्षित देह को देख कर अंतःकरण विषे शोक कर आकुल भई हुई वह यशोभद्रा दुःख करके विव्हल वहां मूर्छावाकर भूमि में पड़ी, और सुकुमाल की बत्तीस प्राण वल्लभा भरतार के देह के दर्शन मात्र से परम शोक को पायकर हा हा कार सहित रुदन करता भई, और समस्त बांधव भी हाहाकार सहित रुदन करते भये, और वृषभांक नृप आदि राजा लोक और अन्य पुरवासी लोक सुकुमाल का धीरपना देखने से सुकुमाल की परम

प्रशंसा करते हुए हृदय विषे बडे आश्चर्य को प्राप्त भये, उस पीछे वह सुकुमाल की माता यशोभद्रा स्वजन परजनों के संबोधने करके आहिस्ता आहिस्ता चेतना को पाय कर सकल जनों से सुकुमाल की प्रशंसा सुन वह सेठानी संतुष्ट होय कर सुकुमाल के शरीर का पूजन कर अगर चंदन से उस का संस्कार करती भई, तिस पीछे जिस जिनालय विषे यशोभद्र मुनिराज तिष्ठे थे उस मंदिर विषे धर्म की सिद्धि के अर्थ समस्त बंधुजन और वृषभांक राजा सहित मुनि के पास गई। और यशोभद्र मुनिराज को प्रणाम कर हर्ष सहित कोमल वाणी कर के ऐसे पूछती भई। हे भगवन् यहां सुकुमाल के ऊपर मेरा अत्यंत स्नेह कैसे भया ? सो आप कृपाकर स्नेह का कारण कहो, इस भांत यशोभद्रा के प्रश्न से वायुभूत के भव से लगाय अच्युत स्वर्ग विषे गमन पर्यंत समस्त जीवों की पूर्व भव संबंधी कथा को पूर्वोक्त प्रकार वर्णन कर और अशेष पुण्य के उदय से इन का यहां आगमन संबंधी समीचीन कथा को वह यशोभद्र मुनिराज अवधि ज्ञान से इस भांत कहते भये ॥

अथानंतर–सुकुमाल का पूर्वभव विषे जो नागश्री का पिता नागशर्म ब्राह्मण उसका जीव देव भया था, सो तो अच्युत स्वर्गसे चयकर इंद्रदत्त सेठ और गुणवती सेठानी का सुरेंद्रदत्त नामा पुत्र, महा धर्मात्मा, विषय भोगसे अत्यंत विरक्त, महाधनवान्, राजश्रेष्ठी तेरा भर्त्तार भया, और चंपापुरी का चंद्रवाहन राजाका जीव जो देव भया था सो आरण स्वर्गसे चयकर सर्वयशा नामा वैश्य और यशोमती नामा

स्त्री उनके मैं यशोभद्रनामा पुत्र होता भया,सो मैंने कुमार अवस्था विषे ही संसार देह भोगोंसे उदासीन श्रीगुरुके पास भगवती दीक्षा धारणकरी, समीचीन तपके बल से अवधि मन पर्यय दोही ज्ञानको प्राप्त भया,और त्रिदेवी ब्राह्मणी का जीव जो देव भयाथा सो अच्युत स्वर्गसे चयकर सम्यग्दर्शनके अभाव से सुकुमाल विषे अत्यंत स्नेहवती ऐसी तू मेरी बहण यशोभद्रा भई। और नागश्री का जीव पद्मनाभ देव भया था सो अच्युत स्वर्ग से चयकर यहां पुण्य के प्रभाव से जगत विषे विख्यात ऐसा धर्मात्मा सुकुमाल भया, और राजगृह नगर का राजा सुबल का जीव जो देव भयाथा सो अच्युत स्वर्ग से चय कर पुण्य के उदय से यहां यह वृषभांक राजा भया। और कौशांबी का राजा अतिबल का जीव जो देव भया था सो भी आरण स्वर्ग से चय कर यहां इस वृषभांक राजा के यह कनक ध्वज नामा पुत्र भया, इस भांत यशोभद्र मुनिराज के मुखरूप चंद्रमा से उत्पन्न भया जो सत्यार्थ बचन रूप अमृत उसका नृपादिक सहित पानकर, और आयु के अंत समय सम भावों से सुकुमाल की सर्वार्थ सिद्धि विमान विषे भली शुभगति जान कर सो आरत को छोड़ आनंद सहित संवेग को प्राप्त होय सुकुमाल का इस भांत प्रशंसा करती भई अहो, इस अत्यंत धर्मात्मा सुकुमाल ने यह देवों को भी दुर्लभ ऐसी भोग संपदा का शीघ्र ही त्याग किया, और भगवती दीक्षा अंगीकार कर ऐसा घोर तप किया जो किसी से बन न आवे, और तीन दिन पर्यंत स्यालनी कृत ऐसे घोर उपसर्ग को जीत कर समभावों

से प्राण छोड सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त भया, ऐसे सुकुमाल की अत्यंत प्रशंसा कर वह सुकुमाल की माता मोहरूपी विष का वमन कर, संसार सपदा गृह आदिक विषे परम संवेग को पाय कर और पुत्र संबंधी अपने मोहकी निंदाकर, यह यशोभद्रा तप ग्रहण करने को उद्यमी भई। उस समय सुकुमालकी चार प्राण प्रिया जो गर्भवतीं थीं उनको सर्व घर संपदादिक सौंप कर अवशेष अठाईस पुत्र वधु और और बहुत बंधु जनों सहित सेठानी यशोभद्रा तुरत ही बाह्य अभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर मुक्ति के अर्थ दीक्षाग्रहण करती भई। और राजा वृषभांक ने भी इस यशोभद्र मुनिराजके समीप अपने पूर्व भव को सुनकर परम वैराग्यकी सामर्थ्यसे अपनेछोटे पुत्रके अर्थ राज संपदा देकर संसार देहभोगोंसे विरक्त ऐसे बहुत राज पुत्रों सहित और कनकध्वज सहित समस्त संपदाको त्यागकर मन वचनकाय की विशुद्धता से मोक्ष के अर्थ मुक्ति की मातासमान जो भगवती दीक्षा वह अंगीकार करी॥

अथानंतर-वह समस्त मुनि राज परम तप करते और श्रुति का अध्ययन करते और पर का विचार करते और नाना देशों में विहार करते और निर्जन वन विषे निवास करते, और परमदीक्षा को पालते हुए, मोक्ष मार्ग विषे स्थित होते भये। सो इन समस्त योगी मुनिराजों में १ सुकुमाल का पिता सेठ सुरेंद्रदत्त, २ सुकुमाल का मामा यशोभद्र ३ उज्जयिनी का राजा वृषभांक ४ और वृषभांक का पुत्र कनकध्वज यह चार महामुनि चरम शरीरी तद्भव मोक्ष

गामी थे। सो शुक्ल ध्यान रूपी खड्ग से बलात्कार समस्त कर्म रूप. वैरी का घात कर इंद्रादिक देवों से पूज्यता पाय, क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक ज्ञान, क्षायक दर्शन, अनंत वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व अगुरु लघुत्व, और अव्याबाधत्व इन आठ गुणों को पाय कर अनुपम अनंत सुख कर परिपूर्ण ऐसे परमधाम को प्राप्त भये, और शेष समस्त मुनिराज अपने अपने तपश्चरण के अनुसार सौधर्म स्वर्ग आदि सर्वार्थ सिद्धि पर्यंत उत्तम पद को प्राप्त भये और सुकुमाल की माता यशोभद्रा आर्यिका तीव्र तप के प्रभाव से अच्युत कल्प को प्राप्त भई, और कई एक आर्यिका दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन के प्रभाव से सौधर्मादि अच्युत स्वर्ग पर्यंत युगल विषे बडी ऋद्धि के धारक महर्द्धिक देव भये, और कई एक आर्यिका तप के प्रभाव से सौधर्मादि अच्युत स्वर्ग पर्यंत कल्पविषे अत्यंत रूपवती मनोहर देवांगना भई ॥

अथानंतर–सो सुकुमाल मुनिराज का जीव पुण्य के उदय से सर्वार्थ सिद्धि विमान विषे उपपाद शिला के मध्य रत्न मयी कोमल शय्या विषे अंतर मुहूर्त कर संपूर्ण नवयौबन को पाय दिव्य वसन भूषण और पुष्पमालादीप्त कांत आदि कर विभूषित कहिये शोभायमान ऐसा अहमिंद्रदेव उस उपपाद शय्या से उठकर मानो साक्षात् पुण्य का पुंज ही है। वहां ऐसे अहमिंद्र देवों को नैनों से अवलोकन कर अवधि ज्ञान के प्रभाव से पूर्व भव संबंधी समस्त प्रचुर तप का फल जानकर और साक्षात् तप

का फल देख कर धर्म विषे दृढ बुद्धि धारण करता भया, उस पीछे अत्यंत पुण्यात्मा वह अहमिंद्रदेव धर्म की सिद्धी के अर्थ उत्तंग, दिव्य रत्नमणिमय सुवर्णमय जिन मंदिर विषे गया, वहां अद्भुत तेज के पुञ्ज जो श्रीजिनदेव के प्रतिबिंब उनको प्रणाम कर और परम पुनीत पूजाके द्रव्य करके भक्ति युक्त आठ प्रकार पूजन विधान कर अहमिंद्रों कर सहित सो पुण्यात्मा पुण्यका उपार्जन करता भया, उस पीछे वह अहमिंद्र देव अपने निवास विषे जायकर पूर्वभव विषे उग्र उग्र तपकर उपार्जन करी ऐसी जो समीचीन विमान आदि समस्त अपनी संपदा तिसको अंगीकार करता भया। और अपने निवास विषे तिष्ठता यह अहमिंद्र देव त्रैलोक्यवर्ती समस्त जिनबिंब और जिन मंदिरों को अपने अवधिज्ञान से अवलोकन कर प्रणाम करता भया, और अपने स्थान में तिष्ठता ही यह अहमिन्द्र सदाकाल पंचकल्याणक विषे श्री जिनेंद्रतीर्थंकर देवों को सिर नवाय भक्ति सहित स्तुति नमस्कारादि करे है, और गणधरादि महंत केवलियों के केवल ज्ञान निर्वाण कल्याण के काल में यह अहमिंद्र देव प्रणामादि करे हैं, और वहां कोई अवसर विषे बिना बुलाये स्वयमेव अपनी इच्छा से आये ऐसे जो अहमिंद्र देव तिन कर सहित सो अहमिन्द्र धर्म की करणहारी समीचीन धर्म गोष्टी करे है, इत्यादिक नाना प्रकार पुण्यका उपार्जन करता ऐसा वह अहमिंद्र देव पूर्व पुण्य के उदय से प्रविचार रहित अनुपम सुखों को निरंतर भोगवे है, और स्फाटिक मणी मय विमान विषे स्वभाव ही कर परम सुंदर अति मनोहर ऐसे महल बन पर्वता-

दिक विषे प्रीति से अहमिंद्रों कर सहित यथेच्छ क्रीडा करता और सदाकाल धर्मध्यान का चिंतवन करता वह अहमिंद्र देव सुख सागर के मध्य मग्न रहे है। इन अहमिंद्र देवों के स्वभाव ही कर परम रमणीक ऐसा अपना मनोहर शुभ स्थान विषे जो रति होय है सो रति और स्थान विषे कहीं ठौर कदाकाल भी नहीं होय है, इससे अपने परम उत्तम मनोहर स्थान को छोड कर अन्य स्थान विषे अहमिंद्र देवोंका गमन कभी भी नहीं होय है, और वह समस्त अहमिंद्र देव कैसे हैं समान ऋद्धि कर शोभायमान हैं, और जिन के हीनाधिक पना नहीं, सब ही समान पद कर सहित हैं। और जिन के लेश्या की विशुद्धता अवधिज्ञानका प्रमाण पांचों इंद्रियोंके सुख और भोगोप भोग संपदा समानहै, सर्वही अहमिंद्र देव मंदरागी धर्मध्यान विषे सावधान परमस्नेह कर संयुक्त हैं। और जिनके परस्पर ईर्ष्या नहीं, मान बडाई नहीं और विकार कर रहित, सरल परिणाम के धारक, परम प्रवीण परम सौम्यरूप, सादृश्य धर्म के फल से सर्व ही अहमिंद्र देव समान हैं, यहां मैं ही इंद्र हूं, मैं ही अहमिंद्र हूं, यहां मेरे सिवाय और कोई दूजा इंद्र नहीं है, ऐसे वह समस्त ही अहमिंद्र देव अपने उत्तम पद संबंधी महान सुख को अपने अपने हृदय विषे प्राप्त होय हैं, और स्वर्गविषे अनेक अप्सराओं के सहित केलि करते जो सुख होय है उस से असंख्यात गुण सुख अहमिंद्र देवों के पैंड पैंड में है, कैसा है अहमिंद्र देवों का सुख बाधा रहित है, और उपमा रहित है, और स्वात्मज कहिये अपने आधीन है, पराधीनता रहित है, और

प्रविचारता कर रहित है अर्थात् प्रविचार नामपांचो इंद्रियों के वियोग का है। सो भवनवासी,व्यन्तर, ज्योतिषी देव, यह भवनत्रिक और पहला सौधर्म स्वर्ग दूसरा ईशान इन चार स्थान के देवों के तो मनुष्य स्त्री के समान मैथुन के रतिकाल विषे काम सेवन है,और तीसरा स्वर्ग सनत्कुमार चौथा महेंद्र स्वर्ग के देवों के देवांगना के स्पर्शमात्र ही भोग सुख है, और पांचवां ब्रह्मा, छठा ब्रह्मोत्तर, सातवां लांतव, आंठवां कापिष्ट इन चारस्वर्ग के देवों के देवांगना का रूप के अवलोकन मात्र ही भोगसुख है। और नवमा शुक्र,दशवां महाशुक्र, ग्यारवां सतार, बारवां सहस्रार इन चार स्वर्ग के देवो के देवांगना का वचन श्रवणमात्र ही भोग सुख है, और तेरवां आनत चौदवां प्राणत, पंद्रवां आरण सोलवां अच्युत इन चार स्वर्गों विषे देवों के केवल मन विषे विचार मात्र ही भोग सुख है, और नवग्रैवेयक, नव अनुदिश, पांच अनुत्तर विषे देवांगना नहीं, उस से समस्त अहमिंद्रों के मनका भी विकल्प नहीं। परम ब्रह्मचारी सदा प्रविचार रहित अप्रविचार हैं,कैसे हैं अहमिंद्र देव कामज्वर करके रहित हैं, संसार विषे परिपूर्ण पुण्य के उदय से समस्त दुःख रहित जो सर्वोत्कृष्ट सुख हैं सो संपूर्ण सुख सर्वार्थ सिद्धि निवासी अहमिन्द्र देवों के हैं। इत्यादिक सुख विषे भले प्रकार तल्लीन वह अहमिंद्र देव कैसा है तेतीस सागर की है आयु जिसकी और दिव्य मनोहर लक्षणों कर लक्षित है, और तेतीस हजार वर्ष व्यतीत भये सर्व इन्द्रियों के सुखदायी अमृतमयी दिव्यमानसिक आहार को आस्वाद करे, और तेतीस पक्ष

के साढे सोला मास व्यतीत भये रंचमात्र एक स्वास लेवे है, और अपना अवधि ज्ञान कर त्रिलोक वर्ती समस्त मूर्तिक द्रव्यों को जाने है, और अपना अवधि ज्ञान का क्षेत्र पर्यंत विक्रिया करने विषेसमर्थ ऐसी जो विक्रिया रिद्धि उसकर शोभायमान है। और उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या कर सहित है। और निरंतर धर्म ध्यान विषे तल्लीन है। और सात धातु, सात उपधातु मैल पसेव रोगादिक कर रहित दिव्य स्फटिक मणि समान उज्वल है, विक्रिय देह को धारण करे है, और एक हाथ प्रमाण ऊंचा है मनोहर काय जिसका और नेत्रों को जो उन्मेख कहिये टिमकाव उस कर रहित है, अर्थात् नेत्र टिमकारे नहीं, और आदि शब्द से शरीर की छाया नहीं पड़े है, और सुख के समुद्र के मध्य तिष्ठे है और समस्त अनिष्ट के संयोग कर रहित है, और इष्ट के वियोग करके रहित है, और समस्त दुःख करके रहित ऐसा वह अहमिंद्र देव इस सर्वाथ सिद्धिविमान विषे सुख सहित स्थिति करता भया सो यह सुकुमाल का जीव अहमिंद्र देव इस सर्वार्थ सिद्धि विमान से चयकर इस ही जंबू द्वीप भरत क्षेत्र आर्यखंड विषे क्षत्रियादिक तीन उत्तम कुलों में जन्म पायकर और धर्म रत्न के प्रभाव से समस्त कर्मों का नाश कर निश्चय से मोक्ष जायगा, इस भांत शुद्ध निर्दोष चारित्र के प्रभाव से सो अहमिंद्र देव अनुपम सारभूत और दुःख के लेश मात्र कर भी रहित और समस्त विकार से रहित ऐसे परमसुख भोगवे है। यहां तक सुकुमाल मुनिका वर्णन संपूर्ण हुआ ॥

अथ धर्मोपदेश ॥

अब इस ग्रंथ के अंत विषे गृंथ रचिता श्री सकल कीर्ति आचार्य यह गृंथ रचने का तात्पर्य जो पाप का फल खोटी योनियों में महाघोर दुःख सहते हुए भ्रमण करना और धर्म का फल स्वर्गादिक में देवांगनाओं सहित महान सुख भोगना वर्णन कर जगत के जीवों पर दया भाव से उन के कल्याण के निमित्त धर्मोपदेश देवें हैं कि हे संसार में भ्रमण करने वाले जीव हो,इस धर्म के फल से वह नाग श्री का जीव श्री सुकुमाक होय सर्वार्थ सिद्धी को प्राप्त हुवा। और इस धर्म के सेवन से ही उसके माता पिता आदि को उत्तम सुखों की प्राप्ति हुई। सो तुम भी ऐसे जान कर उत्तम सुख की प्राप्तिके अर्थ यहां चारित्र की शुद्धता कर सर्वज्ञ भाषित धर्मका सेवन करो। धर्म जो है सो अनंत गुणों का दायक है और समस्त दोषों का नाशक है,और ध्यानी मुनिराज धर्म ही का आश्रय करे हैं,और धर्म कर ही मोक्ष का सुख भले प्रकार साधिये है और धर्म से ही धर्मात्मा जीव अत्यंत उत्तम विभूति को पावे है, और धर्म से ही शोभायमान रूप संपदा प्राप्त होय है, और धर्म से ही संयमका लाभ होय है, और धर्म से ही महाघोर उपसर्ग का विजय होय है,और धर्म से ही एक भव में निर्वाण संपदा की करणहारी ऐसी अनुपम परम उत्कृष्ट सर्वार्थ सिद्धि की संपदा पाइये है, इस संसार विषे धर्म बिना उत्तम संपदा कहां से होय और पांचों इंद्रियों के मनोज्ञ विषयों का लाभ धर्म बिना कहां से होय। और समस्त लोगों

के मध्य मानपना धर्म बिना कहां से होय,और धर्म बिना अति मनोग्य रमणी का लाभ कहां से होय, और धर्म बिना यहां अपने वांछित अर्थ का लाभ कैसे होय,और यहां धर्म बिना अपने मन की शुद्धता कहां से होय, और धर्म बिना उत्तम धर्म जो निजात्म शुद्ध धर्म उसका लाभ कहां से होय,और धर्मबिना यहां यथाख्यात, संयम का लाभ कहां से होय,और धर्म बिना इंद्र अहमिंद्र, तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव, प्रतिवासुदेव, काम देव आदि उत्तम पदों का लाभ कैसे होय, और धर्म बिना यहां सत्पुरुषों के बाह्य अभ्यंतर वैरियों का विजय कहां से होय,इस भांत जानकर भो बुध जन हो,तुम आत्म हित के अर्थ सर्वज्ञ भाषित अनुपम धर्म का सदाकाल बडे यत्न से मन वचन कायकी शुद्धता कर निरंतर सेवन करो,कैसा है धर्म ? समस्त संसार के दुःखों का घातक है और समस्त मनोवांछित अर्थ का प्रकट करन हारा है,और परमार्थ भूत आत्मिक सुख का अद्वितीय एक कारण है ऐसा जान कर मैं भी धर्म के तांई बारम्बार नमस्कार करूं हूं। और धर्म ही विषे निरंतर लगा हूं । धर्म के उपार्जनके वास्ते ही मैंने (सकलकीर्ति नामा आचार्यने) इस सारभूत चरित्र के रचनेका मिसकर अत्यंत धीर बीर श्रीसुकुमाल मुनि की यह स्तुतिकरी है कैसे हैं सुकुमाल महामुनि? तीन भवनोंकरके वंदनीय हैं। सो वह श्री सुकुमालमुनी मेरे कर्मरूप वैरीकेविजय विषयिकसमस्त उपद्रवोंका घात करो। अपना अद्भुत वीर्य मुझे भी दो, और समस्त अशुभ कर्मों का बिनाश कर ऐसा समाधि मरण और अपने समस्त उत्तम क्षमा

दिक गुणों के समुदाय मुझे दो, यही मेरी उनसे प्रार्थना है, और अल्प श्रुत का धारक ऐसा जो में सकल कीर्ति नामा मुनि मुझ कर किया जो यह सुकुमाल चरित्र इस में समस्त अज्ञान संबंधी दोषों के घातक ऐसे बहुज्ञानी मुनिराज शुद्ध करो और इस सुकुमाल चरित्र की रचना विषे जो मैं प्रमादके बस कर अक्षर, स्वर, संधि तथा मात्रा और पदों के जोड़ने विषेजो मैं कुछ चूककरी हो सो समस्त मेरा अपराध हे महा भगवती परमेश्वरी जिन बाणी तुम क्षमा करो, और इस सुकुमाल चरित्र को जो मुनिराज मोक्ष की सिद्धी के अर्थ पढे हैं, सो मुनिराज समस्त श्रुति समुद्र का पार को पायकर परम पद का आश्रय करे हैं और जो निपुण ज्ञानी जन इस सुकुमाल चरित्र को परम सुख के लाभ के अर्थ सुने हैं सो पुरुष तुरत ही रागदोष को नाश कर परमबीत रागधर्म का सेवन करे हैं। कैसा है यह चरित्र बृष कहिये मुनिधर्म और श्रावक धर्म इन दोनों का बीज कहिये मूल कारण है। और कैसा है यह चरित्र समस्त राग भाव का बिनाशक है। और निर्मल समस्त सुखों की खान हैं। और अब मैं पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करूं हूं। कैसे वह पंच परमेष्ठी भगवान् बृषभ देव आदि वर्धमान जिन राज पर्यंत चोबीस तीर्थंकर कर अनंत गुणों के निवास समस्त लोक के परमेश्वर महेश्वर ऐसे अर्हंत परमेष्ठी और समस्त कर्मों कर रहित परमपद को प्राप्त भये परमपूज्य ऐसे अनंत सिद्ध परमेष्ठी और शिव के अभिलाषी समस्त मुनिराजों के हितकारी ऐसे आचार्य परमेष्ठी और द्वादशांग श्रुति समुद्र के पारगामी पच्चीस

गुणों कर विराजमान ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी और आठबीस मूल गुण के धारक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता रूप मुक्ति मार्ग के साधक ऐसे सकल साधु परमेष्ठी ऐसे यह पंच परमेष्ठी परमोत्कृष्ट तपके फलको प्राप्त भये। सो पंच परम गुरु इस सुकुमाल चरित्र की परिपूर्णता विषे मुझ सकल कीर्ति मुनिराज का और तुम समस्त भव्य जीवों को पंचकल्याणक रूप परम मंगल प्रकर्षपने कर देवें ऐसे यह प्रार्थना रूप तथा आशीर्वाद रूप परम मंगल शास्त्र की समाप्ति विषे आचार्य ने किया है। और निर्मल गुण रत्नों का निधान, तीन लोक विषे अद्वितीय दीपक समान समस्त दोषों कर रहित कल्याण सुख की और कर्मक्षय की मूल कारण चार ज्ञान के धारक मुनिराज कर पूजनीक ऐसी यह जिनवाणी सम्यग्ज्ञान रूप परम, पवित्र तीर्थ भूतल विषे अद्वितीय अतिशय पने कर जयवंतो प्रवर्तो, अंत विषे ग्रंथ रचिता ने यह जिन वाणी की महिमा वर्णन कर अंत विषे यह मंगल किया है॥

इत्यचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ, उस की देश भाषामें वचनिका विषे सुकुमालकी माता यशोभद्रा के दीक्षा का ग्रहण और यशोभद्र, सुरेंद्रदत्त, वृषभांक कनकध्वज इन का मोक्ष गमन और अहमिंद्रदेव की विभूति का है वर्णन जिस में ऐसा नवम सर्ग समाप्त भया।

॥ इति सुकुमाल चरित्रं संपूर्णम् ॥

खंधप्पएसा परमाणुपोग्गला, ते समासतो पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा–वण्णपरिणया गंध० रस० फास० संठाणपरिणया, एवं ते ५ जहा पण्णवणाए, सेत्तं रूविअजीवाभिगमे, सेत्तं अजीवाभिगमे (सू० ५)

अथ कोऽसौ अजीवाभिगमः?, सूरिराह–अजीवाभिगमो द्विविधः प्रज्ञप्त, तद्यथा–रूप्यजीवाभिगमोऽरूप्यजीवाभिगमश्च, रूपमेषामस्तीति रूपिणः, रूपग्रहणं गन्धादीनामुपलक्षणं, तद्व्यतिरेकेण तस्यासम्भवात्, तथाहि–प्रतिपरमाणु रूपरसगन्धस्पर्शाः, उक्तं च—"कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः। एकरसगन्धवर्णो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥ १ ॥" एतेन यदुच्यते कैश्चित् 'भिन्ना एव रूपपरमाणवो भिन्नाश्च पृथक् पृथग् रसादिपरमाणव' इति, तदपास्तमवसेयं, प्रत्यक्षबाधितत्वात्, तथाहि–य एव नैरन्तर्येण कुचकलशोपरिनिविष्टा रूपपरमाणव उपलब्धिगोचरास्तेष्वेवाव्यवच्छेदेन सकलेष्वपि स्पर्शोऽप्युपलभ्यते, य एव च घृतादिरसपरमाणवः कर्पूरादिगन्धपरमाणवो वा तेष्वेव नैरन्तर्येण रूपं स्पर्शश्चोपलब्धिविषयः, अन्यथा सान्तरा रूपादयः प्रतीतिपथमियियुः, न च सान्तराः प्रतीयन्ते, तस्मादव्यतिरेक. परस्परं रूपादीनामिति, रूपिणश्च तेऽजीवाश्च रूप्यजीवास्तेषामभिगमो रूप्यजीवाभिगमः पुद्गलरूपाजीवाभिगम इतियावत्, पुद्गलानामेव रूपादिमत्त्वात्, रूपव्यतिरिक्ता अरूपिणो–धर्मास्तिकायादयस्ते च तेऽजीवाश्चारूप्यजीवास्तेपामभिगमोऽरूप्यजीवाभिगमः ॥३॥ तत्रारूपिणः प्रत्यक्षाद्यविपया. केवलमागमप्रमाणगम्यास्तत्त्वत इति प्रथमतस्तद्विपयं प्रश्नसूत्रमाह—सुगमं, सूरिराह—'अरुवी'त्यादि ॥ अरूप्यजीवाभिगमः 'दशविधः' दशप्रकारः प्रज्ञप्तः, तदेव दशविधत्वमाह–तंजहेत्यादि, 'तद्यथे'ति वक्ष्यमाणभेदकथनोपन्यासार्थः, धर्मास्तिकायः, **'एवं जहा पण्णवणाए'** इति **'एवम्'** उक्तेन प्रकारेण यथा **प्रज्ञापनायां** तथा

वक्तव्यं तावद् यावत् 'सेत्तं असंसारसमापन्नजीवाभिगमे' इति, तच्चैवम्——"धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे धम्मत्थिकायस्स पएसा अधम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकायस्स देसे अधम्मत्थिकायस्स पएसा आगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसे आगासत्थिकायस्स पएसा अद्धासमये" इति, तत्र जीवानां पुद्गलानां च स्वभावत एव गतिपरिणामपरिणतानां तत्स्वभावधारणात्पोषणाद्धर्मः अस्तयः—प्रदेशास्तेषां कायः—सङ्घातः "गण काए य निकाए खंधे वग्गे तहेव रासी य" इति वचनात् अस्तिकायः—प्रदेशसङ्घात इत्यर्थः, धर्मश्चासावस्तिकायश्च धर्मास्तिकायः, अनेन सकलधर्मास्तिकायरूपमवयविद्रव्यमाह, अवयवी च नाम अवयवानां तथारूपः सङ्घातपरिणामविशेष एव, न पुनरवयवद्रव्येभ्यः पृथगर्थान्तरद्रव्यं, तस्यानुपलम्भात्, तन्तव एव हि आतानवितानरूपसङ्घातपरिणामविशेषमापन्ना लोके पटव्यपदेशभाज उपलभ्यन्ते, न तदतिरिक्तं पटाख्यं नाम द्रव्यम्, उक्तं चान्यैरपि——"तन्त्वादिव्यतिरेकेण, न पटाद्युपलम्भनम्। तन्त्वादयोऽविशिष्टा हि, पटादिव्यपदेशिनः ॥ १ ॥" कृतं प्रसङ्गेन, अन्यत्र **धर्मसङ्ग्रहणिटीकादावेतद्वादस्य** चर्चितत्वात्, तथा तस्यैव बुद्धिपरिकल्पितो द्व्यादिप्रदेशात्मको विभागो धर्मास्तिकायस्य देशः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः—प्रकृष्टा देशाः प्रदेशाः, प्रदेशा निर्विभागा भागा इति, ते चासङ्ख्येयाः, लोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्तेषाम्, अत एव बहुवचनं, धर्मास्तिकायप्रतिपक्षभूतोऽधर्मास्तिकायः, किमुक्तं भवति ?—जीवानां पुद्गलानां च स्थितिपरिणामपरिणतानां तत्परिणामोपष्टम्भकोऽमूर्त्तोऽसङ्ख्यातप्रदेशात्मकोऽधर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि पूर्ववत्, तथा आ—समन्तात्सर्वाण्यपि द्रव्याणि काशन्ते—दीप्यन्तेऽत्र व्यवस्थितानीत्याकाशम्, अस्तयः—प्रदेशास्तेषां कायोऽस्तिकायः, आकाशं च तदस्तिकायश्चाकाशास्तिकायः, आकाशास्तिकायस्य देश इत्यादि प्राग्वत्, नवरमस्य प्रदेशा अनन्ताः, अलोकस्यानन्तत्वात्, 'अद्धासमय' इति, अद्धेति कालस्याख्या, अद्धा चासौ समयश्चाद्धासमयः, अथवाऽद्धायाः समयो—

निर्विभागो भागोऽद्धासमयः, अयं चैक एव वर्त्तमानः परमार्थतः सन् नातीतानागताः, तेपां यथाक्रमं विनष्टानुत्पन्नत्वात्, ततः कायत्वाभावादेशप्रदेशकल्पनाविरहः, अथाकाशकालौ लोकेऽपि प्रतीताविति तौ श्रद्धातुं शक्येते, धर्माधर्मास्तिकायौ तु कथं प्रत्येतव्यौ ? येन तद्विषया श्रद्धा भवेत्, उच्यते, गतिस्थितिकार्यदर्शनात्, तथाहि—यद् यदन्वयव्यतिरेकानुविधायि तत्तद्धेतुकमिति व्यवहर्त्तव्यं, यथा चक्षुरिन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधायि चाक्षुपं विज्ञानं, तथा च जीवानां पुद्गलानां च गतिस्थितिपरिणामपरिणतानामपि गतिस्थिती यथाक्रमं धर्माधर्मास्तिकायान्वयव्यतिरेकानुविधायिन्यौ, तस्मात्ते तद्धेतुके, न चायमसिद्धो हेतुः, तथाहि—जीवानां पुद्गलानां च गतिस्थितिपरिणामपरिणतानामपि गतिस्थिती न तत्परिणमनमात्रहेतुके, तन्मात्रहेतुकतायामलोकेऽपि तत्प्रसक्तेः, अथ न तत्परिणमनमात्रं हेतुः किन्तु विशिष्टः परिणामः, स चेत्थंभूतो यथा लोकमात्रक्षेत्रस्यान्तरेऽत्र गतिस्थितिभ्यां भवितव्यं न वहिः प्रदेशमात्रमप्यधिकं, ननु स एवेत्थम्भूतो विशिष्टपरिणाम आकालं जीवानां पुद्गलानां चोत्कर्पतोऽप्येतावत्प्रमाण एवाभूद् भवति भविष्यति वा न तु कदाचनाप्यधिकतर इत्यत्र किं नियामकं ?, यथा हि किल परमाणोर्जघन्यतः परमाणुमात्रक्षेत्रातिक्रममादिं कृत्वोत्कर्पतश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकमपि क्षेत्रं यावद् गतिरुपजायते तथा परतोऽपि प्रदेशमात्रमप्यधिका किं न भवति ?, तस्मादवश्यमत्र किञ्चिन्नियामकमपरं वक्तव्यं, तच्च धर्माधर्मास्तिकायावेव नाकाशमात्रम्, आकाशमात्रस्यालोकेऽपि सम्भवात्, नापि लोकपरिमितमाकाशम्, इतरेतराश्रयदोपप्रसङ्गात्, तथाहि—जीवाना पुद्गलानां चान्यत्र गतिस्थित्योरभावे सिद्धे सति विवक्षितस्य परिमितस्याकाशस्य लोकत्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ चान्यत्र जीवपुद्गलानां गतिस्थित्यभावसिद्धिरित्येकाभावेऽन्यतरस्याप्यभावः, अथ किमिदमसंवद्धमुच्यते ?, यत् लोकत्वेन सम्प्रति व्यवह्रियते क्षेत्रं, तावन्मात्रस्यैवाकाशखण्डस्य गतिस्थित्युपष्टम्भकस्वभावो न परस्य प्रदेशमात्रस्यापि ततो न कश्चिद्दोपः, ननु तावन्मात्रस्यैवाकाशस्य

स स्वभावो न परस्य प्रदेशमात्रस्यापीत्यत्रापि सुधियः कारणान्तरं मृगयन्ते, आकाशत्वमात्रस्योभयत्रापि तुल्यत्वात्, विशेषणमन्तरेण च वैशिष्ट्यायोगात्, कारणान्तरं धर्माधर्मास्तिकायभावाभाववेव नापरमिति स्थितम्, अन्यच्च—तावन्मात्रस्याकाशखण्डस्य स स्वभावो न परस्येत्यपि कुतः प्रमाणात्परिकल्प्यते?, आगमप्रमाणादिति चेत् तथाहि—तावत्येवाकाशखण्डे जीवानां च पुद्गलानां च गतिस्थितिमतां गतिस्थिती तत्र तत्र व्यावर्ण्येते न परत इति, यद्येवं तर्ह्यागमप्रामाण्यबलादेव धर्माधर्मास्तिकायावपि गतिस्थितिनिबन्धनमिष्येयातां किमाकाशखण्डस्य निर्मूलस्वभावान्तरपरिकल्पनाऽऽयासेनेति कृतं प्रसङ्गेन । अथामीषामित्थं क्रमोपन्यासे किं प्रयोजनम्?, उच्यते, इह धर्मास्तिकाय इति पदं मङ्गलभूतम्, आदौ धर्मशब्दान्वितत्वात्, पदार्थप्ररूपणा च सम्प्रत्युत्क्षिप्ता वर्त्तते, ततो मङ्गलार्थमादौ धर्मास्तिकायस्योपादानं, धर्मास्तिकायप्रतिपक्षभूतश्चाधर्मास्तिकाय इति तदनन्तरमधर्मास्तिकायस्य, द्वयोरपि चानयोराधारभूतमाकाशमिति तदनन्तरमाकाशास्तिकायस्य, ततः पुनरजीवसाधर्म्याद्द्धासमयस्य, अथवा इह धर्माधर्मास्तिकायौ विभू न भवतः, तद्विभुत्वेन तत्सामर्थ्यतो जीवपुद्गलानामस्खलितप्रचारप्रवृत्तेर्लोकव्यवस्थाऽनुपपत्तेः, अस्ति च लोकालोकव्यवस्था, तत एतावविभू सन्तौ यत्र क्षेत्रे समवगाढौ तावत्प्रमाणो लोकः, शेषस्त्वलोक इति सिद्धम्, उक्तं च—"धर्माधर्मविभुत्वात्सर्वत्र च जीवपुद्गलविचारात् । नालोकः कश्चित्स्यान्न च संमतमेतदार्याणाम् ॥ १ ॥ तस्माद्धर्माधर्माववगाढौ व्याप्य लोकखं सर्वम् । एवं हि परिच्छिन्नः सिद्ध्यति लोकस्तदविभुत्वात् ॥ २॥" तत एवं लोकालोकव्यवस्थाहेतू धर्माधर्मास्तिकायावित्यनयोरादावुपादानं, तत्रापि माङ्गलिकत्वात् प्रथमतो धर्मास्तिकायस्य, तत्प्रतिपक्षत्वात् ततोऽधर्मास्तिकायस्य, ततो लोकालोकव्यापित्वादाकाशास्तिकायस्य, तदनन्तरं लोके समयासमयक्षेत्रव्यवस्थाकारित्वादद्धासमयस्य, एवमागमानुसारेणान्यदपि युक्त्यनुपाति वक्तव्यमित्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, अत्रोपसंहारवाक्यं—'सेत्तं अरूविअजीवाभि-

गमे'। अत ऊर्द्ध्वमिदं सूत्रम्—'से किं तं रूविअजीवाभिगमे ?, रूविअजीवाभिगमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं०—खंधा खंधदेसा खंधपएसा परमाणुपुग्गला' इह स्कन्धा इत्यत्र बहुवचनं पुद्गलस्कन्धानामनन्तत्वख्यापनार्थं, तथा चोक्तम्—"दव्वतो णं पुग्गलत्थिकाए णं अनन्ते" इत्यादि, 'स्कन्धदेशाः' स्कन्धानामेव स्कन्धत्वपरिणाममजहतां बुद्धिपरिकल्पिता द्व्यादिप्रदेशात्मका विभागाः, अत्रापि बहुवचनमनन्तप्रदेशिकेषु स्कन्धेषु स्कन्धदेशानन्तत्वसंभावनार्थं, 'स्कन्धप्रदेशाः' स्कन्धानां स्कन्धत्वपरिणाममजहतां प्रकृष्टा देशाः—निर्विभागा भागाः परमाणव इत्यर्थः, 'परमाणुपुद्गलाः' स्कन्धत्वपरिणामरहिताः केवलाः परमाणवः॥ अत ऊर्द्ध्वं सूत्रमिदम्—'ते समासतो पंचविधा पन्नत्ता, तंजहा—वण्णपरिणया गंधपरिणता रसपरिणता फासपरिणता संठाणपरिणता, तत्थ णं जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पन्नत्ता, तंजहा—कालवण्णपरिणता नीलवण्णपरिणता इत्यादि तावद् यावत् 'सेत्तं रूविअजीवाभिगमे, सेत्तं अजीवाभिगमे॥

से किं तं जीवाभिगमे ?, जीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—संसारसमावण्णगजीवाभिगमे य असंसारसमावण्णगजीवाभिगमे य (सू० ६) से किं तं असंसारसमावण्णगजीवाभिगमे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—अणंतरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे य परंपरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे य। से किं तं अणंतरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे ?, २ पण्णरसविहे पण्णत्ते, तंजहा—तित्थसिद्धा जाव अणेगसिद्धा, सेत्तं अणंतरसिद्धा। से किं तं परंपरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा—पढमसमयसिद्धा दुसमय-

सिद्धा जाव अणंतसमयसिद्धा, से तं परंपरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे, सेत्तं असंसारसमावण्णगजीवाभिगमे (सू० ७)

संसरणं संसारो—नारकतिर्यङ्नरामरभवभ्रमणलक्षणस्तं सम्यग्—एकीभावेनापन्नाः—प्राप्ताः संसारसमापन्नाः—संसारवर्त्तिनस्ते च ते जीवाश्च तेषामभिगमः संसारसमापन्नजीवाभिगमः, तथा न संसारोऽसंसारः—संसारप्रतिपक्षभूतो मोक्ष इत्यर्थः तं समापन्ना असंसारसमापन्नास्ते च ते जीवाश्च तेषामभिगमोऽसंसारसमापन्नजीवाभिगमः, चशब्दौ उभयेषामपि जीवानां जीवत्वं प्रति तुल्यकक्षतासूचकौ, तेन ये विध्यातप्रदीपकल्पं निर्वाणमभ्युपगतवन्तः ये च नवानामात्मगुणानामत्यन्तोच्छेदेन ते निरस्ता द्रष्टव्याः, तथाभूतमोक्षाभ्युपगमे तदर्थं प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यनुपपत्तेः, न खलु सचेतनः स्ववधाय कण्ठे कुठारिकां व्यापारयति, दुःखितोऽपि हि जीवन् कदाचिद् भद्रमाप्नुयात् मृतेन तु निर्मूलमपि हस्तिताः सम्पद इति, इह केवलान् अजीवान् जीवांश्चानुच्चार्याभिगमशब्दसंवलितप्रश्नोऽभिगमव्यतिरेकेण प्रतिपत्तेरसम्भवतस्तेषामभिगमगम्यताधर्मख्यापनार्थः तेन 'सदेवेद'मित्यादि सदद्वैताद्यपोह उक्तो वेदितव्यः, सदद्वैताद्यभ्युपगमेऽभिगमगम्यतारूपधर्मायोगतः प्रतिपत्तेरेवासम्भवात् । तत्राल्पवक्तव्यत्वात्प्रथमतोऽसंसारसमापन्नजीवाभिगमसूत्रम्—'से किं तं असंसारसमावन्नजीवाभिगमे ?, २ दुविहे पं०, तं०—अनंतरसिद्धअसंसारसमावन्नजीवाभिगमे परंपरसिद्धअसंसारसमावन्नजीवाभिगमे य' इत्यादि तावद्वाच्यं यावदुपसंहारवाक्यं 'सेत्तं असंसारसमापन्नजीवाभिगमे' अस्य व्याख्यानं **प्रज्ञापनाटीकातो** वेदितव्यं, तत्र सविस्तरमुक्तत्वात् ॥ सम्प्रति संसारसमापन्नजीवाभिगममभिधित्सुस्तत्प्रश्नसूत्रमाह—

से किं तं संसारसमावन्नजीवाभिगमे ?, संसारसमावण्णएसु णं जीवेसु इमाओ णव पडिवत्तीओ

एवमाहिज्जंति, तं०—एगे एवमाहंसु—दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एगे एवमाहंसु—तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एगे एवमाहंसु—चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एगे एवमाहंसु—पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एतेणं अभिलावेणं जाव दसविहा संसार-समावण्णगा जीवा पण्णत्ता (सू० ८)

सूरिराह—संसारसमापन्नेषु णमिति वाक्यालङ्कारे जीवेषु 'इमाः' वक्ष्यमाणलक्षणा **'नव प्रतिपत्तयो'** द्विप्रत्यवतारमादौ कृत्वा दशप्रत्यवतारं यावद् ये नव प्रत्यवतारास्तद्रूपाणि प्रतिपादनानि संवित्तय इतियावत् **'एवं'** वक्ष्यमाणया रीत्याऽऽख्यायन्ते पूर्वसूरिभिः, इह प्रतिपत्त्याख्यानेन प्रणालिकयाऽर्थाख्यानं द्रष्टव्यं, प्रतिपत्तिभावेऽपि शब्दादर्थे प्रवृत्तिकरणात्, तेन यदुच्यते शब्दाद्वैतवादिभिः— 'शब्दमात्रं विश्व'मिति, तदपास्तं द्रष्टव्यं, तदपासने चेयमुपपत्तिः—एकान्तैकस्वरूपे वस्तुन्यभिधानद्वयासम्भवात् भिन्नप्रवृत्तिनिमित्ता-भावात्, ततश्च शब्दमात्रमित्येव स्यात् न विश्वमिति, प्रणालिकयाऽर्थाभिधानमेवोपदर्शयति, तद्यथा—एके आचार्या एवमाख्यातवन्तः— द्विविधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्ताः, एके आचार्या एवमाख्यातवन्तः—त्रिविधाः संसारसमापन्ना जीवाः, एवं यावद्दशविधा इति, इह एके इति न पृथग्मतावलम्बिनो दर्शनान्तरीया इव केचिदन्ये आचार्याः, किन्तु य एव पूर्वं द्विप्रत्यवतारविवक्षायां वर्त्तमाना एव-मुक्तवन्तः यथा द्विविधाः संसारसमापन्ना जीवा इति त एव त्रिप्रत्यवतारविवक्षायां वर्त्तमानाः, द्विप्रत्यवतारविवक्षामपेक्ष्य त्रिप्रत्यवतार-विवक्षाया अन्यत्वात्, विवक्षावतां तु कथञ्चिद् भेदादन्य इति वेदितव्याः, अत एव प्रतिपत्तय इति परमार्थतोऽनुयोगद्वाराणीति प्रतिपत्तव्यम्, इह य एव द्विविधास्त एव त्रिविधास्त एव चतुर्विधा यावद्दशविधा इति तेषामनेकस्वभावतायां तत्तद्धर्मभेदेन तथा

तथाऽभिधानता युज्यते, नान्यथा, एकान्तैकस्वभावतायां तेषां वैचित्र्यायोगतस्तथा तथाऽभिधानप्रवृत्तेरसम्भवात्, एवं सति "अष्टविकल्पं दैवं तिर्यग्योनं च पञ्चधा भवति । मानुष्यं चैकविधं समासतो भौतिकः सर्गः ॥ १ ॥" इति वाङ्मात्रमेव, अधिष्ठातृजीवानामेकरूपत्वाभ्युपगमेन तथारूपवैचित्र्यासम्भवादिति, एवमन्येऽपि प्रवादास्तथा तथा वस्तुवैचित्र्यप्रतिपादनपरा निरस्ता द्रष्टव्याः, सर्वथैकस्वभावत्वाभ्युपगतौ वैचित्र्यायोगात् ॥ सम्प्रत्येता एव प्रतिपत्तीः क्रमेण व्याचिख्यासुः प्रथमत आद्यां प्रतिपत्तिं विभावयिषुरिदमाह—

तत्थ(णं) जे एवमाहंसु 'दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०' ते एवमाहंसु–तं०–तसा चेव थावरा चेव ॥ (सू० ९)

'तत्र' तेषु नवसु प्रतिपत्तिषु मध्ये ये द्विप्रत्यवतारविवक्षायां वर्त्तमाना एवं व्याख्यातवन्तः—द्विविधाः संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ता इति ते 'णम्' इति वाक्यालङ्कारे 'एवं' वक्ष्यमाणरीत्या द्विविधत्वभावनार्थमाख्यातवन्तः, 'तद्यथे' त्युपन्यस्तद्वैविध्योपदर्शनार्थः, त्रसाश्चैव स्थावराश्चैव, तत्र त्रसन्ति—उष्णाद्यभितप्ताः सन्तो विवक्षितस्थानादुद्विजन्ति गच्छन्ति च छायाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसाः, अनया च व्युत्पत्त्या त्रसास्त्रसनामकर्मोदयवर्त्तिन एव परिगृह्यन्ते, न शेषाः, अथ शेषैरपीह प्रयोजनं, तेषामप्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, तत एवं व्युत्पत्तिः—त्रसन्ति—अभिसन्धिपूर्वकमनभिसन्धिपूर्वकं वा ऊर्द्ध्वमधस्तिर्यक् चलन्तीति त्रसाः—तेजोवायवो द्वीन्द्रियादयश्च, उष्णाद्यभितापेऽपि तत्स्थानपरिहारासमर्थाः सन्तस्तिष्ठन्तीत्येवंशीलाः स्थावराः—पृथिव्यादयः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसमुच्चयार्थौ, एवकारावधारणार्थौ, अत एव संसारसमापन्नका जीवाः, एतद्व्यतिरेकेण संसारिणामभावात् ॥ तत्रालपवक्तव्यत्वात्प्रथमतः स्थावरानभिधित्सुस्तत्प्रश्नसूत्रमाह—

से किं तं थावरा?, २ तिविहा पन्नत्ता, तंजहा—पुढविकाइया १ आउक्काइया २ वणस्सइकाइया ३ ॥ (सू० १०)

अथ के ते स्थावराः?, सूरिराह—स्थावरास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकाया एव पृथिवीकायिकाः, आर्षत्वात्स्वार्थे इकप्रत्ययः, आपो—द्रवास्ताश्च प्रतीताः ता एव कायः—शरीरं येषां ते अप्कायाः अप्काया एवाप्कायिकाः, वनस्पतिः—लतादिरूपः प्रतीतः स एव कायः—शरीरं येषां ते वनस्पतिकायाः वनस्पतिकाया एव वनस्पतिकायिकाः, सर्वत्र बहुवचनं बहुत्वख्यापनार्थं, तेन 'पृथिवी देवते'-त्यादिना यत्तदेकजीवत्वमात्रप्रतिपादनं तदपास्तमवसेयं, यदि पुनस्तदधिष्ठात्री काचनापि देवता परिकल्प्यते तदानीमेकत्वेऽप्यविरोधः। इह सर्वभूताधारः पृथिवीति प्रथमं पृथिवीकायिकानामुपादानं, तदनन्तरं तत्प्रतिष्ठितत्वादप्कायिकानां, तदनन्तरं "जत्थ जलं तत्थ वणं" इति सैद्धान्तिकवस्तुप्रतिपादनार्थं वनस्पतिकायिकानामिति, इह त्रिविधत्वं स्थावराणां तेजोवायूनां लब्ध्या स्थावराणामपि सतां गतित्रसेष्वन्तर्भावविवक्षणात्, तथा च तत्त्वार्थसूत्रमप्येवं व्यवस्थितं "पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः ॥ तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः" (तत्त्वा० अ० २ सू० १३–१४) इति, तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति प्रथमतः पृथिवीकायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं पुढविकाइया?, २ दुविहा पं०, तं०—सुहुमपुढविक्काइया य बायरपुढविक्काइया य ॥ (सू० ११)

अथ के ते पृथिवीकायिकाः?, सूरिराह—पृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मपृथिवीकायिकाश्च बदरपृथिवीकायिकाश्च, तत्र सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्मा वादरनामकर्मोदयात्तु वादराः, कर्मोदयजनिते खल्वेते सूक्ष्मवादरत्वे, नापेक्षिके वदरामलकयो-

रिव, सूक्ष्माश्च ते पृथिवीकायिकाश्च सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः, बादराश्च ते पृथिवीकायिकाश्च बादरपृथिवीकायिकाः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, सूक्ष्माः सकललोकवर्त्तिनो बादराः प्रतिनियतैकदेशधारिणः ॥ तत्र सूक्ष्मपृथिवीकायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं सुहुमपुढविक्काइया?, २ दुविहा पं०, तं०—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ॥ (सू० १२)

अथ के ते सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः?, सूरिराह—सूक्ष्मपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तकाश्चापर्याप्तकाश्च, तत्र पर्याप्तिर्नामाहारादिपुद्गलग्रहणपरिणमनहेतुरात्मनः शक्तिविशेषः, स च पुद्गलोपचयादुपजायते, किमुक्तं भवति?—उत्पत्तिदेशमागतेन प्रथमं ये गृहीताः पुद्गलास्तेषां तथाऽन्येषामपि प्रतिसमयं गृह्यमाणानां तत्संपर्कतस्तद्रूपतया जातानां यः शक्तिविशेष आहारादिपुद्गलखलरसरूपतापादनहेतुर्यथोदरान्तर्गतानां पुद्गलविशेषाणामाहारपुद्गलविशेषाणामाहारपुद्गलखलरसरूपतापरिणमनहेतुः सा पर्याप्तिः, सा च षोढा, तद्यथा—आहारपर्याप्तिः १ शरीरपर्याप्तिः २ इन्द्रियपर्याप्तिः ३ प्राणापानपर्याप्तिः ४ भाषापर्याप्तिः ५ मनःपर्याप्तिश्च ६, तत्र यया बाह्यमाहारमादाय खलरसरूपतया परिणमयति साऽऽहारपर्याप्तिः १, यया रसीभूतमाहारं रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रलक्षणसप्तधातुरूपतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः २, यया धातुरूपतया परिणमितमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रियपर्याप्तिः ३, यया पुनरुच्छ्वासप्रायोग्यवर्गणापुद्गलानादायोच्छ्वासरूपतया परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा उच्छ्वासपर्याप्तिः ४, यया तु भाषाप्रायोग्यान् पुद्गलानादाय भाषात्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः ५, यया पुनर्मनःप्रायोग्यवर्गणादलिकमादाय मनस्त्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः ६, एताश्च यथाक्रममेकेन्द्रियाणां सञ्ज्ञिवर्जानां द्वीन्द्रियादीनां संज्ञिनां च चतुष्पञ्चषट्सङ्ख्या भवन्ति, उत्पत्तिप्रथमसमये एव च एता यथायथं सर्वा अपि युगपन्निष्पादयितुमारभ्यन्ते क्रमेण च निष्ठामुपयान्ति,

तद्यथा—प्रथममाहारपर्याप्तिस्ततः शरीरपर्याप्तिस्तत इन्द्रियपर्याप्तिरित्यादि, आहारपर्याप्तिश्च प्रथमसमय एव निष्पत्तिमुपगच्छति, शेपास्तु प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तेन कालेन, अथाहारपर्याप्तिः प्रथमसमय एव निष्पद्यत इति कथमवसीयते?, उच्यते, इह भगवताऽऽर्यश्यामेन प्रज्ञापनायामाहारपदे द्वितीयोद्देशके सूत्रमिदमपाठि—"आहारपज्जत्तीए अपज्जत्तए णं भंते! किं आहारए अणाहारए?, गोयमा! नो आहारए अणाहारए" इति, तत आहारपर्याप्त्या अपर्याप्तो विग्रहगतावेवोपपद्यते नोपपातक्षेत्रमागतोऽपि, उपपातक्षेत्रसमागतस्य प्रथमसमय एवाहारकत्वात्, तत एकसामायिकी आहारपर्याप्तिनिर्वृत्तिः, यदि पुनरुपपातक्षेत्रसमागतोऽप्याहारपर्याप्त्या अपर्याप्तः स्यात्तत एवं व्याकरणसूत्रं पठेत्—"सिय आहारए सिय अणाहारए" यथा शरीरादिपर्याप्तिषु "सिय आहारए सिय अणाहारए" इति, सर्वासामपि च पर्याप्तीनां पर्याप्तिपरिसमाप्तिकालोऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणः, पर्याप्तयो विद्यन्ते येषां ते पर्याप्ताः, 'अभ्रादिभ्य' इति मत्वर्थीयोऽप्रत्ययः, पर्याप्ता एव पर्याप्तकाः, ये पुनः स्वयोग्यपर्याप्तिपरिसमाप्तिविकलास्तेऽपर्याप्ताः अपर्याप्ता एवापर्याप्तकाः, ते द्विधा—लब्ध्या करणैश्च, तत्र येऽपर्याप्तका एव म्रियन्ते ते लब्ध्याऽपर्याप्तकाः, ये पुनः करणानि—शरीरेन्द्रियादीनि न तावन्निर्वर्त्तयन्ति अथचावश्यं निर्वर्त्तयिष्यन्ति ते करणापर्याप्ताः संप्राप्ताः ॥ सम्प्रति विनेयजनानुग्रहाय शेपवक्तव्यतासङ्ग्रहार्थमिदं सङ्ग्रहणिगाथाद्वयमाह—सरीरोगाहणसंघयण संठाणकसाय तह य हुंति सन्नाओ । लेसिंदियसमुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती ॥ १ ॥ दिट्ठी दंसणनाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे । उववायठिई समुग्घाय चवणगइरागई चेव ॥ २ ॥ अस्य व्याख्या—प्रथमतः सूक्ष्मपृथिवीकायिकानां शरीराणि वक्तव्यानि, तदनन्तरमवगाहना, ततः संहननं, तदनन्तरं संस्थानं, ततः कपायाः, ततः कति भवन्ति सञ्ज्ञाः? इति वक्तव्यं, ततो लेश्याः, तदनन्तरमिन्द्रियाणि, ततः समुद्घाताः, ततः किं सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनो वा? इति वक्तव्यं, तदनन्तरं वेदो वक्तव्यः, ततः पर्याप्तयो

यथा कति पर्याप्तयः सूक्ष्मपृथिवीकायिकानाम्? इत्यादि, पर्याप्तिग्रहणमुपलक्षणं तेन तत्प्रतिपक्षभूता अपर्याप्तयोऽपि वक्तव्या इति द्रष्टव्यं, तदनन्तरं दृष्टिर्वक्तव्या, ततो दर्शनं, तदनन्तरं ज्ञानं, ततो योगः, तत उपयोगः, तथा किमाहारमाहारयन्ति सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः? इत्यादि वक्तव्यं, तदनन्तरमुपपातः, ततः स्थितिः, ततः समुद्घातः समुद्घातमधिकृत्य मरणं वक्तव्यमित्यर्थः, तदनन्तरं च्यवनं, ततो गत्यागती इति, इति सर्वसङ्ख्यया त्रयोविंशतिर्द्वाराणि, तत्र प्रथमद्वारव्याख्यानार्थमाह—

तेसि णं भंते! जीवाणं कतिसरीरया पण्णत्ता, गोयमा! तओ सरीरगा पं०, तं०—ओरालिए तेयए कम्मए॥ तेसि णं भंते! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पं०, गो०! जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जतिभागं उक्कोसेणवि अंगुलासंखेज्जतिभागं॥ तेसि णं भंते! जीवाणं सरीरा किंसंघयणा पण्णत्ता?, गोयमा! छेवट्ठसंघयणा पण्णत्ता॥ तेसि णं भंते! सरीरा किंसंठिया पं०?, गोयमा! मसूरचंदसंठिता पण्णत्ता॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति कसाया पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तंजहा—कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोहकसाए॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति सण्णा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि पण्णत्ता, तंजहा—आहारसण्णा जाव परिग्गहसन्ना॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिन्नि लेस्सा पन्नत्ता, तंजहा—किण्हलेस्सा नीललेसा काउलेसा॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति इंदियाइं पण्णत्ताइं?, गोयमा! एगे फासिंदिए पण्णत्ते॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति समुग्घाया पण्णत्ता?, गोयमा! तओ समुग्घाया पण्णत्ता, तंजहा—

वेयणासमुग्घाते कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सन्नी असन्नी ?, गोयमा ! नो सन्नी असन्नी ॥ ते णं भंते ! जीवा किं इत्थिवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया ?, गोयमा ! णो इत्थिवेया णो पुरिसवेया णपुंसगवेया ॥ तेसि णं भंते ! जीवाणं कति पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! चत्तारि पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–आहारपज्जत्ती सरीरपज्जत्ती इंदियपज्जत्ती आणपाणुपज्जत्ती । तेसि णं भंते ! जीवाणं कति अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! चत्तारि अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–आहारअपज्जत्ती जाव आणापाणुअपज्जत्ती ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ?, गोयमा ! णो सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी नो सम्ममिच्छादिट्ठी ॥ ते णं भंते ! जीवा किं चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी ?, गोयमा ! नो चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी नो ओहिदंसणी नो केवलदंसणी ॥ ते णं भंते ! जीवा किं नाणी अण्णाणी ?, गोयमा ! नो नाणी अण्णाणी, नियमा दुअण्णाणी, तंजहा–मतिअन्नाणी सुयअण्णाणी य ॥ ते णं भंते ! जीवा किं मणजोगी वयजोगी कायजोगी ?, गोयमा ! नो मणजोगी नो वयजोगी कायजोगी ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?, गोयमा ! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि ॥ ते णं भंते ! जीवा किमाहारमाहारेंति ?, गोयमा ! दव्वतो अणंतपदेसियाइं खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढाइं कालओ अन्नयर-

समयट्ठितीयाइं भावतो वण्णवं(मं)ताइं गंधवं(मं)ताइं रसवं(मं)ताइं फासवं(मं)ताइं ॥ जाइं भावओ वण्णमंताइं आ०, ताइं किं एगवण्णाइं आ० दुवण्णाइं आ० तिवण्णाइं आ० चउवण्णाइं आ० पंचवण्णाइं आ० ?, गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइंपि दुवण्णाइंपि तिवण्णाइंपि चउवण्णाइंपि पंचवण्णाइंपि आ०, विहाणमग्गणं पडुच्च कालाइंपि आ० जाव सुक्किलाइंपि आ०, जाइं वण्णओ कालाइं आ० ताइं किं एगगुणकालाइं आ० जाव अणंतगुणकालाइं आ० ?, गोयमा ! एगगुणकालाइंपि आ० जाव अणंतगुणकालाइंपि आ० एवं जाव सुक्किलाइं ॥ जाइं भावतो गंधमंताइं आ० ताइं किं एगगंधाइं आ० दुगंधाइं आ० ?, गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगगंधाइंपि आ० दुगंधाइंपि आ०, विहाणमग्गणं पडुच्च सुब्भिगंधाइंपि आ० दुब्भिगंधाइंपि आ०, जाइं गंधतो सुब्भिगंधाइं आ० ताइं किं एगगुणसुब्भिगंधाइं आ० जाव अणंतगुणसुरभिगंधाइं आ० ?, गोयमा ! एगगुणसुब्भिगंधाइंपि आ० जाव अणंतगुणसुब्भिगंधाइंपि, आ० एवं दुब्भिगंधाइंपि ॥ रसा जहा वण्णा ॥ जाइं भावतो फासवं(मं)ताइं आ० ताइं किं एगफासाइं आ० जाव अट्ठफासाइं आ० ?, गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च नो एगफासाइं आ० नो दुफासाइं आ० नो तिफासाइं आ० चउफासाइं आ० पंचफासाइंपि जाव अट्ठफासाइंपि आ०, विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइंपि आ० जाव लुक्खाइंपि आ०, जाइं फासतो कक्खडाइं आ०

ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आ० जाव अणंतगुणकक्खडाइं आ० ?, गोयमा ! एगगुणकक्खडाइंपि आ० जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आ० एवं जाव लुक्खा णेयव्वा ॥ ताइं भंते ! किं पुट्ठाइं आ० अपुट्ठाइं आ० ?, गोयमा ! पुट्ठाइं आ० नो अपुट्ठाइं आ०, ताइं भंते ! ओगाढाइं आ० अणोगाढाइं आ० ?, गोयमा ! ओगाढाइं आ० नो अणोगाढाइं आ०, ताइं भंते ! किमणंतरोगाढाइं आ० परंपरोगाढाइं आ० ?, गोयमा ! अणंतरोगाढाइं आ० नो परंपरोगाढाइं आ०, ताइं भंते ! किं अणूइं आ० बायराइं आ० ?, गोयमा ! अणूइंपि आ० बायराइंपि आहारेंति, ताइं भंते ! उड्ढं आ० अहे आ० तिरियं आहारेंति ?, गोयमा ! उड्ढंपि आ० अहेवि आ० तिरियंपि आ०, ताइं भंते ! किं आइं आ० मज्झे आ० पज्जवसाणे आहारेंति ?, गोयमा ! आदिंपि आ० मज्झेवि आ० पज्जवसाणेवि आ०, ताइं भंते ! किं सविसए आ० अविसए आ० ?, गोयमा ! सविसए आ० नो अविसए आ०, ताइं भंते ! किं आणुपुव्विं आ० अणाणुपुव्विं आहारेंति ?, गोयमा ! आणुपुव्विं आहारेंति नो अणाणुपुव्विं आहारेंति, ताइं भंते ! किं तिदिसिं आहारेंति चउदिसिं आहारेंति पंचदिसिं आहारेंति छदिसिं आहारेंति ?, गोयमा ! निव्वाघाएणं छदिसिं, वाघातं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, उस्सन्नकारणं पडुच्च वण्णतो काला नीला जाव सुक्किलाइं, गंधतो सुब्भिगंधाइं दुब्भिगंधाइं, रसतो जाव तित्तमहुराइं, फासतो

कक्खडमउयजाव निद्धलुक्खाइं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे विप्परिणामइत्ता परिपालइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता अण्णे अपुव्वे वण्णगुणे गंधगुणे जाव फासगुणे उप्पाइत्ता आतसरीरओगाढा पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति ॥ ते णं भंते! जीवा कतोहिंतो उववज्जंति? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति तिरिक्खमणुस्सदेवेहिंतो उववज्जंति?, गोयमा! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणियपज्जत्तापज्जत्तेहिंतो असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो अकम्मभूमिगअसंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति, वक्कंतीउववाओ भाणियव्वो ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं ॥ ते णं भंते! जीवा मारणंतियसमुग्घातेणं किं समोहया मरंति असमोहया मरंति?, गोयमा! समोहयावि मरंति असमोहयावि मरंति ॥ ते णं भंते! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति?—किं नेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उ० मणुस्सेसु उ० देवेसु उवव०?, गोयमा! नो नेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उ० मणुस्सेसु उ० णो देवेसु उवव०। किं एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदिएसु उ०?, गोयमा! एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, असंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उव०, मणुस्सेसु अ-

कम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उव० ॥ ते णं भंते! जीवा कतिगतिका कतिआगतिका पण्णत्ता?, गोयमा! दुगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो!, से त्तं सुहुमपुढविक्काइया ॥ (सू० १३)

'तेषां' सूक्ष्मपृथिवीकायिकानां णमिति वाक्यालङ्कारे 'भदन्त!' परमकल्याणयोगिन्! कति शरीराणि प्रज्ञप्तानि?, अथ कः कमेवमाह?, उच्यते, भगवान् गौतमो भगवन्तं श्रीमन्महावीरं, कथमेतद् विनिश्चीयते इति चेद्, उच्यते, निर्वचनसूत्रात्, ननु गौतमोऽपि भगवान् उपचितकुशलमूलो गणधरस्तीर्थकरभाषितमातृकापदत्रयश्रवणमात्रावाप्तप्रकृष्टश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमश्चतुर्दशपूर्वविद् विवक्षितार्थपरिज्ञानसमन्वित एव ततः किमर्थं पृच्छति?, तथाहि—न चतुर्दशपूर्वविदः प्रज्ञापनीयं किञ्चिदविदितमस्ति, विशेषतः सर्वाक्षरसंनिपातिनः संभिन्नश्रोतसो भगवतो गणभृतः सर्वोत्कृष्टश्रुतलब्धिसमन्वितस्य गौतमस्य, उक्तं च—"संखातीते वि भवे साहइ जं वा परो उ पुच्छेज्जा। न य णं अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो ॥ १ ॥" उच्यते, शिष्यसंप्रत्ययार्थं, तथाहि—जानन्नेव भगवान् अन्यत्र विनेयेभ्यः प्रतिपाद्य तत्संप्रत्ययनिमित्तं भूयोऽपि भगवन्तं पृच्छतीति, अथवा गणधरप्रश्नतीर्थकरनिर्वचनरूपं किञ्चित्सूत्रमितीत्थमधिकृतसूत्रकारः सूत्रं रचितवान्, यदिवा संभवति भगवतोऽपि स्वल्पोऽनाभोगः छद्मस्थत्वादिति पृच्छति, उक्तं च—"न हि नामानाभोगश्छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नास्ति। ज्ञानावरणीयं हि ज्ञानावरणप्रकृति कर्म ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन, प्रस्तुतमुच्यते, भगवानाह—गोयमेत्यादि, अनेन लोकप्रथितमहागोत्रविशिष्टाभिधायकेनामन्त्रणध्वनिनाऽऽमन्त्रयन्निदं ज्ञापयति—प्रधानासाधारणगुणेनोत्साह्य

१ संख्यातीतानपि भवान् साधयति यद्वा पर पृच्छेत्। न चानतिशायी विजानात्येष छद्मस्थ (इति) ॥ १ ॥

विनेयस्य धर्मः कथनीयः, इत्थमेव सम्यक्प्रतिपत्तियोगादिति, त्रीणि शरीराणि प्रज्ञप्तानि, इह शरीराणि पञ्च भवन्ति, तद्यथा—औदारिकं वैक्रियमाहारकं तैजसं कार्मणं च, तत्रोदारं—प्रधानं, प्राधान्यं चास्य तीर्थकरगणधरशरीराण्यधिकृत्य, ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्यापि अनन्तगुणहीनत्वात्, यद्वा उदारं सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वात् शेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रधानं, बृहत्ता चास्य वैक्रियं प्रति भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया द्रष्टव्या, अन्यथोत्तरवैक्रियं योजनलक्षमानमपि लभ्यते, उदारमेव औदारिकं, विनयादिपाठादिकण् १, तथा विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियं, तथाहि—तदेकं भूत्वाऽनेकं भवति अनेकं भूत्वा एकं तथाऽणु भूत्वा महद्भवति महच्च भूत्वाऽणु तथा खचरं भूत्वा भूमिचरं भवति भूमिचरं भूत्वा खचरं तथा दृश्यं भूत्वाऽदृश्यं भवति अदृश्यं भूत्वा दृश्यमिति, तच्च द्विविधम्—औपपातिकं लब्धिप्रत्ययं च, तत्रौपपातिकमुपपातजन्मनिमित्तं, तच्च देवनारकाणां, लब्धिप्रत्ययं तिर्यग्मनुष्याणां २, तथा चतुर्दशपूर्वविदां तीर्थकरस्फातिदर्शनादिकतथाविधप्रयोजनोत्पत्तौ सत्यां विशिष्टलब्धिवशादाह्रियते—निर्वर्त्यते इत्याहारकं, 'कृद्बहुलक'मिति वचनात्कर्मणि वुञ्, यथा पादहारक इत्यत्र, उक्तं च—"[1]कज्जंमि समुप्पन्ने सुयकेवलिणा विसिट्ठलद्धीए । जं एत्थ आहरिज्जइ भणंति आहारगं तं तु ॥ १ ॥" कार्यं चेदम्—"[2]पाणिदयरिद्धिदंसण सुहुमपयत्थावगाहहेउं वा । संसयवोच्छेयत्थं गमणं जिणपायमूलंमि ॥ १ ॥" एतच्चाहारकं कदाचनापि लोके सर्वथाऽपि न भवति, तच्चाभवनं जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः षण्मासान् यावत्, उक्तं च—"[3]आहारगाइ लोगे छम्मासा जा न होंतिवि कयाइं । उक्कोसेणं नियमा एक्कं समयं जहन्नेणं ॥ १ ॥" आहारकं च शरीरं

---

१ कार्ये समुत्पन्ने श्रुतकेवलिना विशिष्टलब्ध्या । यदत्राह्रियते भणन्त्याहारकं तत्तु ॥ १ ॥ २ प्राणिदयाऋद्धिदर्शनसूक्ष्मपदार्थावगाहहेतवे वा । संशयव्युच्छेदार्थं गमनं जिनपादमूले ॥ १ ॥ ३ आहारकादयो नियमाल्लोके षण्मासान् यावन्न भवन्त्यपि कदाचित् । उत्कृष्टतो नियमात् एकं समयं जघन्येन ॥ १ ॥

वैक्रियशरीरापेक्षयाऽत्यन्तशुभं स्वच्छस्फटिकशिलेव शुभ्रपुद्गलसमूहात्मकं ३, तथा तेजसां—तेजःपुद्गलानां विकारस्तैजसं 'विकार' इत्यण्, तत् औष्मलिङ्गं भुक्ताहारपरिणमनकारणं, ततश्च विशिष्टतपःसमुत्थलब्धिविशेषस्य पुंसस्तेजोलेश्याविनिर्गमः, उक्तं च—"सव्वस्स उम्हसिद्धं रसाइआहारपाकजणगं च । तेयगलद्धिनिमित्तं च तेयगं होइ नायव्वं ॥ १ ॥" ४, तथा कर्मणो जातं कर्मजं, किमुक्तं भवति ?—कर्मपरमाणव एवात्मप्रदेशैः सह क्षीरनीरवदन्योऽन्यानुगता. सन्तः शरीररूपतया परिणताः कर्मजं शरीरमिति, अत एवैतदन्यत्र कार्मणमित्युक्तं, कर्मणो विकारः कार्मणमिति, तथा चोक्तम्—"कम्मविकारो कम्मणमट्ठविहविचित्तकम्मनिप्फन्नं । सव्वेसिं सरीराणं कारणभूयं मुणेयव्वं ॥ १ ॥" अत्र 'सव्वेसिं'मिति सर्वेषामौदारिकादीनां शरीराणां कारणभूतं—बीजभूतं कार्मणं शरीरं, न खल्वामूलमुच्छिन्ने भवप्रपञ्चप्ररोहबीजभूते कार्मणे वपुषि शेषशरीरप्रादुर्भावः, इदं च कर्मजं शरीरं जन्तोर्गत्यन्तरसङ्क्रान्तौ साधकतमं कारणं, तथाहि—कर्मजेनैव वपुषा तैजससहितेन परिकरितो जन्तुर्मरणदेशमपहायोत्पत्तिदेशमभिसर्पति, ननु यदि तैजससहितकार्मणवपुःपरिकरितो गत्यन्तरं संक्रामति तर्हि स गच्छन्नागच्छन् कस्मान्न दृष्टिपथमवतरति ?, उच्यते, कर्मपुद्गलानां तैजसपुद्गलानां चातिसूक्ष्मतया चक्षुरादीन्द्रियागोचरत्वात्, तथा च परतीर्थिकैरप्युक्तम्—"अन्तरा भवदेहोऽपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते । निष्क्रामन् प्रविशन् वाऽपि, नाभावोऽनीक्षणादपि ॥ १ ॥" एतेषां पञ्चानां शरीराणां मध्ये यानि त्रीणि शरीराणि सूक्ष्मपृथिवीकायिकाना तानि नामग्राहमुपदर्शयति—तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, वैक्रियाहारके तु तेषां न संभवतो, भवस्वभावत एव तल्लब्धिशून्यत्वात् ।

---

१ सर्वस्यौष्म्यसिद्धं रसाद्याहारपाकजनकं च । तेजोलब्धिनिमित्तं च तैजसं भवति ज्ञातव्यम् ॥ १ ॥ २ कर्मविकारः कार्मणमष्टविधविचित्रकर्मनिष्पन्नम् । सर्वेषां शरीराणां कारणभूतं मुणितव्यं ॥ १ ॥

अधुनाऽवगाहनाद्वारमाह—'तेसिणं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरं जघन्यपदोत्कृष्टपदयोस्तुल्यश्रुतावपि जघन्यपदादुत्कृष्टपदमधिकमव-सातव्यम् ॥ संहननद्वारमाह—तेसिणमित्यादि, तेषां भदन्त! जीवानां शरीरकाणि किंसंहननानि प्रज्ञप्तानि?, संहननं नामास्थिनिचय-रूपं, तच्च षोढा, तद्यथा—वज्रऋषभनाराचं ऋषभनाराचं नाराचमर्द्धनाराचं कीलिका छेदवर्त्ति च, तत्र वज्रं—कीलिका ऋषभः—परि-वेष्टनपट्टः नाराचस्तूभयतो मर्कटबन्धः ततश्च द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिं गच्छता तृतीयेनास्थ्ना परिवेष्टितयो-रुपरि तदस्थित्रयभेदि कीलिकाख्यं वज्रनामकमस्थि यत्र भवति तद्वज्रऋषभनाराचसञ्ज्ञं प्रथमं संहननं १, यत्पुनः कीलिकारहितं संहननं तत् ऋषभनाराचं द्वितीयं संहननं २, तथा यत्रास्थ्नोर्मर्कटबन्ध एव केवलस्तन्नाराचसञ्ज्ञं तृतीयं संहननं ३, यत्र पुनरेक-पार्श्वे मर्कटबन्धो द्वितीये च पार्श्वे कीलिका तदर्द्धनाराचं चतुर्थं संहननं ४, तथा यत्रास्थीनि कीलिकामात्रबद्धानि तत्कीलिकाख्यं प-ञ्चमं संहननं ५, तथा यत्रास्थीनि परस्परं छेदेन वर्त्तन्ते न कीलिकामात्रेणापि बन्धस्तत् षष्ठं छेदवर्त्ति, तच्च प्रायो मनुष्यादीनां नित्यं स्नेहाभ्यङ्गादिरूपां परिशीलनामपेक्षते ६, इत्थं षोढा संहननसम्भवे संशयः—तेषां शरीराणि किंसंहननानि प्रज्ञप्तानि? इति, भगवानाह —गौतम! छेदवर्त्तिसंहननानि प्रज्ञप्तानि, अयमत्राभिप्रायः—यद्यपि सूक्ष्मपृथिवीकायिकानामस्थ्यभावस्तथाऽप्यौदारिकशरीरिणामस्थ्या-त्मकेन संहननेन यः शक्तिविशेष उपजायते सोऽप्युपचारात्संहननमिति व्यवह्रियते, शक्तिविशेषश्चात्यन्तमल्पीयान् सूक्ष्मपृथिवीकायि-कानामप्यस्त्यौदारिकशरीरित्वात्, जघन्यश्च शक्तिविशेषश्छेदवर्त्तिसंहननविषय इति तेषामपि छेदवर्त्तिसंहननमुक्तम् ॥ गतं संहननद्वारं, सम्प्रति संस्थानद्वारमाह—'तेसिणं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरं 'मसूरगचंदसंठिया' इति, मसूरकाख्यस्य—धान्यविशेषस्य यच्चन्द्राकृति दलं स मसूरकचन्द्रस्तद्वदनुसंस्थितानि मसूरकचंद्रसंस्थितानि, अत्रायं भावार्थः—इह जीवानां षट् संस्थानानि, तानि च समचतुरस्रादीनि

वक्ष्यमाणलक्षणानि, तेषामाद्यानि पञ्च संस्थानानि मसूरचन्द्रकाकारे न संभवन्ति, तल्लक्षणायोगात्, तत इदं मसूरचन्द्रकाकारं संस्थानं हुण्डं प्रतिपत्तव्यं, सर्वत्रासंस्थितत्वरूपस्य तल्लक्षणस्य योगात्, जीवानां संस्थानान्तराभावाच्च, आह च मूलटीकाकारः—"संस्थानं मसूरचन्द्रकसंस्थितमपि हुण्डं, सर्वत्रासंस्थितत्वेन तल्लक्षणयोगात्, जीवानां संस्थानान्तराभावाच्चे"ति ॥ गतं संस्थानद्वारमधुना कषायद्वारमाह—'तेसिणं भंते !' इत्यादि, तेषां भदन्त ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिकानां कति कषायाः प्रज्ञप्ताः ?, तत्र कषाया नाम कष्यन्ते—हिंस्यन्ते परस्परमस्मिन् प्राणिन इति कषः—संसारस्तमयन्ते—गच्छन्त्येभिर्जन्तव इति कषायाः—क्रोधादयः परिणामविशेषाः, तथा चाह—'गोयमे'त्यादि सुगमं, नवरं क्रोधः—अप्रीतिपरिणामः मानो—गर्वपरिणामः माया—निकृतिरूपा लोभो—गार्ध्यलक्षणः, एते च क्रोधादयोऽमीषां मन्दपरिणामतयाऽनुपदर्शितबाह्यशरीरविकारा एवानाभोगतस्तथा तथा वैचित्र्येण भवन्तः प्रतिपत्तव्याः ॥ गतं कषायद्वारं, सञ्ज्ञाद्वारमाह—'तेसिण'मित्यादि सुगमं, नवरं सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा, सा च द्विधा—ज्ञानरूपाऽनुभवरूपा च, तत्र ज्ञानरूपा मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलभेदात्पञ्चप्रकारा, तत्र केवलसञ्ज्ञा क्षायिकी शेषास्तु क्षायोपशमिक्यः, अनुभवसञ्ज्ञा—स्वकृतासातवेदनीयादिकर्मविपाकोदयसमुत्था, इह प्रयोजनमनुभवसञ्ज्ञया, ज्ञानसञ्ज्ञायास्तद्द्वारेण परिगृहीतत्वात्, तत्राहारसञ्ज्ञा नाम आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खल्वात्मपरिणामविशेषः, एषा चासातवेदनीयोदयादुपजायते, 'भयसञ्ज्ञा' भयवेदनीयोदयजनितत्रासपरिणामरूपा, 'परिग्रहसञ्ज्ञा' लोभविपाकोदयसमुत्थमूर्छापरिणामरूपा, 'मैथुनसञ्ज्ञा' वेदोदयजनिता मैथुनाभिलाषः, एताश्चतस्रोऽपि मोहनीयोदयप्रभवाः, एता अपि सूक्ष्मपृथ्वीकायिकानामव्यक्तरूपाः प्रतिपत्तव्याः ॥ गतं सञ्ज्ञाद्वारमधुना लेश्याद्वारमाह—'तेसिण'मित्यादि सुगमं, नवरं लिश्यति—श्लिष्यते आत्मा कर्मणा सहानयेति लेश्या—कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यादात्मनः शुभाशुभपरिणामः, उक्तं च—"कृष्णादि-

द्रव्यसाचिव्यात्परिणामो य आत्मनः । स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्याशब्दः प्रवर्त्तते ॥ १ ॥" सा च षोढा, तद्यथा—कृष्णलेश्या नीललेश्या कापोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या च, आसां च स्वरूपं जम्बूफलखादकषट्पुरुषदृष्टान्तेनैवावसातव्यम्—"पंथाओ परिभट्ठा छप्पुरिसा अडविमज्झयारंमि । जंबूतरुस्स हेट्ठा परोप्परं ते विचिंतेति ॥ १ ॥ निम्मूलखंधसाला गोच्छे पक्के य पडियसडियाइं । जह एएसिं भावा तह लेसाओवि नायव्वा ॥ २ ॥" अमीषां च सूक्ष्मपृथिवीकायिकानामतिसंक्लिष्टपरिणामत्वाद्देवेभ्यः सूक्ष्मेष्वनुत्पादाच्चाद्या एव तिस्रः कृष्णनीलकापोतरूपा लेश्याः, न शेषा इति ॥ गतं लेश्याद्वारमिदानीमिन्द्रियद्वारमाह—'तेसिण'मित्यादि, इन्द्रियं नाम 'इदु परमैश्वर्ये' 'उदितः' इति नम्, इन्दनादिन्द्रः—आत्मा सर्वोपलब्धिरूपपरमैश्वर्ययोगात् तस्य लिङ्गं—चिह्नमविनाभावि इन्द्रियम्, 'इन्द्रिय'मिति निपातनसूत्राद्रूपनिष्पत्तिः, तत्पञ्चधा, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रियं जिह्वेन्द्रियं घ्राणेन्द्रियं स्पर्शनेन्द्रियं च, एकैकमपि द्विधा—द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं च, द्रव्येन्द्रियं द्विधा—निर्वृत्तिरूपमुपकरणरूपं च, तत्र निर्वृत्तिर्नाम प्रतिविशिष्टः संस्थानविशेषः, साऽपि द्विधा—बाह्याऽभ्यन्तरा च, तत्र बाह्या कर्णपर्पटिकादिरूपा, सा च विचित्रा न प्रतिनियतरूपतया निर्देष्टुं शक्यते, तथाहि—मनुष्यस्य श्रोत्रे नेत्रयोरुभयपार्श्वतोभाविनी भ्रुवावुपरितनश्रवणबन्धापेक्षया समे, वाजिनो नेत्रयोरुपरि तीक्ष्णे चाग्रभागे इत्यादि, अभ्यन्तरा तु निर्वृत्तिः सर्वेषामप्येकरूपा, तामेवाधिकृत्य चामूनि सूत्राणि प्रावर्त्तिषत—"सोइंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?, गोयमा! कलंबुयासंठाणसंठिए पन्नत्ते, चक्खिदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते?, गोयमा! मसूरचंदसंठाणसंठिए पन्नत्ते,

---

१ पथ. परिभ्रष्टा. षट् पुरुषा अटवीमध्यभागे । जम्बूतरोरधस्तात् परस्पर ते विचिन्तयन्ति ॥ १ ॥ निर्मूलं स्कन्धं शाखा प्रशाखा गुच्छान् (छित्त्वा) पक्कानि पतितशटितानि (भक्षयाम) । यथैतेषा भावास्तथा लेश्या अपि ज्ञातव्या ॥ २ ॥

घाणिंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते?, गोयमा! अइमुत्तसंठाणसंठिए पन्नत्ते, जिब्भिंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते?, गोयमा! खुरप्पसंठाणसंठिए पन्नत्ते, फासिंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?, गोयमा! नाणासंठाणसंठिए पन्नत्ते ॥" इति, इह स्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तेः प्रायो न बाह्याभ्यन्तरभेदः, तत्त्वार्थमूलटीकायामनभ्युपगमात्, उपकरणं नाम खड्गस्थानीयाया बाह्यनिर्वृत्तेर्या खड्गधारास्थानीया स्वच्छतरपुद्गलसमूहात्मिकाऽभ्यन्तरा निर्वृत्तिस्तस्याः शक्तिविशेषः, इदं चोपकरणरूपं द्रव्येन्द्रियमान्तरनिर्वृत्तेः कथञ्चिदर्थान्तरं, शक्तिशक्तिमतोः कथञ्चिद्भेदात्, कथञ्चिद्भेदश्च सत्यामपि तस्यामान्तरनिर्वृत्तौ द्रव्यादिनोपकरणस्योपघातसम्भवात्, तथाहि—सत्यामपि कदम्बपुष्पाद्याकृतिरूपायामान्तरायां निर्वृत्तौ महाकठोरतरघनगर्जितादिना शक्त्युपघाते सति न परिच्छेत्तुमीशते जन्तवः शब्दादिकमिति, भावेन्द्रियमपि द्विधा—लब्धिरुपयोगश्च, तत्र लब्धिः श्रोत्रेन्द्रियादिविषयस्तदावरणक्षयोपशमः, उपयोगः स्वस्वविषये लब्ध्यनुसारेणात्मनः परिच्छेदव्यापारः, तत्र यद्यपि द्रव्यरूपं भावरूपं चेत्थमिन्द्रियमनेकप्रकारं तथाऽपीह बाह्यनिर्वृत्तिरूपमिन्द्रियं पृष्टमवगन्तव्यं, तदेवाधिकृत्य व्यवहारप्रवृत्तेः, तथाहि—बकुलादयः पञ्चेन्द्रिया इव भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानसमन्विता अनुमानतः प्रतीयन्ते तथाऽपि न ते पञ्चेन्द्रिया इति व्यवह्रियन्ते, बाह्येन्द्रियपञ्चकासम्भवात्, उक्तं च—"[1]पंचेंदिओ उ बउलो नरो व्व सव्वविसओवलंभाओ। तहवि न भण्णइ पंचिंदिउ त्ति बज्झिंदियाभावा ॥ १ ॥" ततो द्रव्येन्द्रियमधिकृत्य निर्वचनसूत्रमाह—'गोयमे'त्यादि सुगमम् ॥ गतमिन्द्रियद्वारमधुना समुद्घातद्वारं, तत्र समुद्घाताः सप्त, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः १ कषायसमुद्घातः २ मारणसमुद्घातः ३ वैक्रियसमुद्घातः ४ तैजससमुद्घातः ५ आहारकसमुद्घातः ६ केवलिसमुद्घातश्च ७, तत्र वेदनायाः समुद्घातो वेदनासमुद्घातः,

१ पञ्चेन्द्रिय एव बकुलो नर इव सर्वविषयोपलम्भात्। तथापि न भण्यते पञ्चेन्द्रिय इति बाह्येन्द्रियाभावात् ॥ १ ॥

स चासातवेदनीयकर्माश्रय: १, कषायेण—कषायोदयेन समुद्घात: कषायसमुद्घात:, स च कषायचारित्रमोहनीयकर्माश्रय: २, मरणे भवो मारण:, स चासौ समुद्घातश्च मारणसमुद्घात: ३, वैक्रिये प्रारभ्यमाणे समुद्घातो वैक्रियसमुद्घात:, स च वैक्रियशरीरनामकर्माश्रय: ४, (तैजसेन हेतुभूतेन समुद्घातस्तैजससमुद्घात: तैजसशरीरनामकर्माश्रय:) ५, आहारके प्रारभ्यमाणे समुद्घात आहारकसमुद्घात:, स चाहारकशरीरनामकर्माश्रय: ६, केवलिनि अन्तर्मुहूर्त्तभाविपरमपदे समुद्घात: केवलिसमुद्घात: ७। अथ समुद्घात इति क: शब्दार्थ: ?, उच्यते—समिति—एकीभावे उत्—प्राबल्ये एकीभावेन प्राबल्येन घात: समुद्घात:, केन सह एकीभावगमनम् ? इति चेद्, उच्यते, अर्थाद्वेदनादिभि:, तथाहि—यदा आत्मा वेदनादिसमुद्घातगतो भवति तदा वेदनाद्यनुभवज्ञानपरिणत एव भवति नान्यज्ञानपरिणत:, प्राबल्येन घात: कथम् ? इति चेद्, उच्यते, इह वेदनादिसमुद्घातपरिणतो बहून् वेदनीयादिकर्मपुद्गलान् कालान्तरानुभवयोग्यानुदीरणाकरणेनाकृष्योदयावलिकायां प्रक्षिप्यानुभूयानुभूय निर्जरयति, आत्मप्रदेशेभ्य: शातयतीति भाव:, तत्र वेदनासमुद्घातगत आत्मा वेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, तथाहि—वेदनाकरालितो जीव: स्वप्रदेशाननन्तानन्तकर्मपरमाणुवेष्टितान् शरीराद्बहिरपि विक्षिपति, तैश्च प्रदेशैर्वदनजघनादिरन्ध्राणि कर्णस्कन्धाद्यन्तरालानि चापूर्यायामतो विस्तरतश्च शरीरमात्रं क्षेत्रमभिव्याप्यान्तर्मुहूर्त्तं यावदवतिष्ठते, तस्मिंश्चान्तर्मुहूर्त्ते प्रभूतासातवेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, कषायसमुद्घातसमुद्धत: कषायाख्यचारित्रमोहनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, तथाहि—कषायोदयसमाकुलो जीव: स्वप्रदेशान् बहिर्विक्षिप्य तैर्वदनोदरादिरन्ध्राणि कर्णस्कन्धाद्यन्तरालानि चापूर्यायामविस्तराभ्यां देहमात्रं क्षेत्रमभिव्याप्य वर्त्तते, तथाभूतश्च प्रभूतकषायकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, एवं मरणसमुद्घातगत आयु:कर्मपुद्गलपरिशातं करोति, वैक्रियसमुद्घातगत: पुनर्जीव: स्वप्रदेशान् शरीराद्बहिर्निष्काश्य शरीरवि-

ष्कम्भबाहल्यमानमायामतः सङ्ख्येययोजनप्रमाणं दण्डं निसृजति, निसृज्य च यथास्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयति, तथा चोक्तम्—“वेउव्वियसमुग्घाए णं समोहणइ २ त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, निसिरित्ता अहावायरे पुग्गले परिसाडेइ ” इति, तैजसाहारकसमुद्घातौ वैक्रियसमुद्घातवदवसातव्यौ, केवलं तैजससमुद्घातगतस्तैजसशरीरनामकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, आहारकसमुद्घातगत आहारकशरीरनामकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, केवलिसमुद्घातसमुद्धतस्तु केवली सदसद्वेदनीयशुभाशुभनामोच्चनीचैर्गोत्रकर्मपुद्गलपरिशातं (करोति), केवलिसमुद्घातवर्जाः शेषाः षडपि समुद्घाताः प्रत्येकमान्तर्मौहूर्त्तिकाः, केवलिसमुद्घातः पुनरष्टसामयिकः, उक्तं च प्रज्ञापनायाम्—“वेयणासमुग्घाए णं कइसमइए पण्णत्ते ?, गोयमा ! असंखेज्जसमइए अंतमुहुत्ते, एवं जाव आहारगसमुग्घाए॥ केवलिसमुग्घाए णं भंते ! कइसमइए पण्णत्ते ?, गोयमा ! अट्ठसमइए पण्णत्ते ॥” इति, तदेवमनेकसमुद्घातसम्भवे सूक्ष्मपृथिवीकायिकानां तान् पृच्छति—‘तेसिणं भंते’ इत्यादि सुगमं, नवरं वैक्रियाहारकतैजसकेवलिसमुद्घाताभावो वैक्रियादिलब्ध्यभावात् ॥ गतं समुद्घातद्वारं, सम्प्रति सञ्ज्ञिद्वारमाह—‘ते णं भंते’ इत्यादि, ‘ते’ सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! किं सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनो वा ?, सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा—भूतभवद्भाविभावस्वभावपर्यालोचनं सा विद्यते येषां ते सञ्ज्ञिनः—विशिष्टस्मरणादिरूपमनोविज्ञानभाज इत्यर्थः, यथोक्तमनोविज्ञानविकला असञ्ज्ञिनः ?; अत्र भगवान्निर्वचनमाह—गौतम ! नो सञ्ज्ञिनः, किन्त्वसञ्ज्ञिनः, विशिष्टमनोलब्ध्यभावात्, हेतुवादोपदेशेनापि न सञ्ज्ञिनः, अभिसंधारणपूर्विकायाः करणशक्तेरभावात्, इहासञ्ज्ञिन इत्येव सिद्धे नो सञ्ज्ञिन इति प्रतिषेधः प्रतिषेधप्रधानो विधिरयमिति ज्ञापनार्थः, प्रतिपाद्यस्य प्रकृतिसावद्यत्वादिति । गतं सञ्ज्ञिद्वारं, वेदनाद्वारमाह—‘ते णं भंते!’ इत्यादि॥ ‘इत्थिवेयगा’ इति स्त्रियाः वेदो येषां ते स्त्रीवेदकाः, एवं पुरुषवेदका नपुंसकवेदका इत्यपि भावनीयं, तत्र

स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः स्त्रीवेदः, पुंसः स्त्रियामभिलाषः पुंवेदः, उभयोरप्यभिलाषो नपुंसकवेदः, भगवानाह—गौतम! न स्त्रीवेदका न पुरुषवेदकाः, नपुंसकवेदकाः संमूर्च्छिमत्वात्, 'नारकसंमूर्च्छिमा नपुंसका' इति भगवद्वचनम् ॥ पर्याप्तिद्वारमाह—"तेसि णं भंते' इत्यादि, सुगमं, पर्याप्तिप्रतिपक्षा अपर्याप्तिस्तन्निरूपणार्थमाह—'तेसि णं भंते!' इत्यादि पाठसिद्धं, नवरं चतस्रोऽप्यपर्याप्तयः करणापेक्षया द्रष्टव्याः, लब्ध्यपेक्षया त्वेकैव प्राणापानापर्याप्तिः, यस्मादेवमागमः—इह लब्ध्यपर्याप्तका अपि नियमादाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तिपरिसमाप्तावेव म्रियन्ते नार्वाक्, यत आगामिभवायुर्बद्ध्वा म्रियन्ते सर्वे एव देहिनः, तच्चाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तानामेव बन्धमायातीति ॥ सम्प्रति दृष्टिद्वारमाह—'ते णं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरं सम्यग्—अविपरीता दृष्टिः—जिनप्रणीतवस्तुतत्त्वप्रतिपत्तिर्येषां ते सम्यग्दृष्टयः, मिथ्या—विपर्यस्ता दृष्टिर्येषां भक्षितहृत्पूरपुरुषस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत् मिथ्यादृष्टयः, एकान्तसम्यग्रूपमिथ्यारूपप्रतिपत्तिविकलाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, निर्वचनसूत्रं—'गोयमे'त्यादि, सुगमं, नवरं सम्यग्दृष्टित्वप्रतिषेधः सासादनसम्यक्त्वस्यापि तेषामसम्भवात्, सासादनसम्यक्त्ववतां तन्मध्ये उत्पादाभावात्, ते ह्यतिसंक्लिष्टपरिणामाः, सास्वादनसम्यक्त्वपरिणामस्तु मनाक् शुभ इति तन्मध्ये सासादनसम्यक्त्ववतामुत्पादाभावः, अत एव सदा संक्लिष्टपरिणामत्वात्तेषां सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वपरिणामोऽपि न भवति, नापि सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सन् तन्मध्ये उत्पद्यते, "न सम्ममिच्छो कुणइ कालं" इति वचनात् ॥ गतं दृष्टिद्वारमधुना दर्शनद्वारमाह—दर्शनं नाम सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यावबोधः, तच्चतुर्धा, तद्यथा—चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनं च, तत्र सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि चक्षुषा दर्शनं—रूपसामान्यपरिच्छेदश्चक्षुर्दर्शनम्, अचक्षुषा—चक्षुर्वर्जशेषेन्द्रियमनोभिर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनम्, अवधिरेव दर्शनं—रूपिसामान्यग्रहणमवधिदर्शनं, केवलमेव दर्शनं—सकलजगद्भाविवस्तुसामान्यपरिच्छित्तिरूपं केवलदर्शनं, तत्र किमेषां दर्शनमिति

जिज्ञासुः पृच्छति—'ते णं भंते' इत्यादि पाठसिद्धं, नवरमचक्षुर्दर्शनित्वं स्पर्शनेन्द्रियापेक्षया, शेषदर्शनप्रतिषेधः सुज्ञानः ॥ गतं दर्शनद्वारं, ज्ञानद्वारमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि, अज्ञानत्वं मिथ्यादृष्टित्वात्, तदपि चाज्ञानत्वं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानापेक्षया, तथा चाह—'नियमा दुअण्णाणी' त्यादि पाठसिद्धं, नवरं तदपि मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च शेषजीवबादरादिराश्यपेक्षयाऽत्यन्तमल्पीयः प्रतिपत्तव्यं, यत उक्तम्—"सर्वनिकृष्टो जीवस्य दृष्ट उपयोग एष वीरेण । सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तानां स च भवति विज्ञेयः ॥ १ ॥ तस्मात्प्रभृति ज्ञानविवृद्धिर्दृष्टा जिनेन जीवानाम् । लब्धिनिमित्तैः करणैः कायेन्द्रियवाग्मनोदृग्भिः ॥ २ ॥" योगद्वारमाह—'ते णं भंते' इत्यादि पाठसिद्धम् ॥ गतं योगद्वारमधुनोपयोगद्वारं, तत्रोपयोगो द्विविधः—साकारोऽनाकारश्च, तत्राकारः—प्रतिवस्तु प्रतिनियतो ग्रहणपरिणामः "आगारो उ विसेसो" इति वचनात्, सह आकारो यस्य येन वा स साकारो—ज्ञानपञ्चकमज्ञानत्रिकं, यथोक्ताकारविकलोऽनाकारः, स चक्षुर्दर्शनादिको दर्शनचतुष्टयात्मकः, उक्तं च—"ज्ञानाज्ञाने पञ्च त्रिविकल्पे सोऽष्टधा तु साकारः । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदृग्विषयस्त्वनाकारः ॥ १ ॥" तत्र क एषामुपयोगः? इति जिज्ञासुः पृच्छति—'ते णं भंते!' इत्यादि निगदसिद्धं, नवरं साकारोपयोगोपयुक्ता मत्यज्ञानश्रुताज्ञानोपयोगापेक्षया, अनाकारोपयोगोपयुक्ता अचक्षुर्दर्शनोपयोगापेक्षयेति ॥ साम्प्रतमाहारद्वारमाह—'ते णं भंते इत्यादि, 'ते' सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! जीवाः किमाहारमाहारयन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'द्रव्यतो' द्रव्यस्वरूपपर्यालोचनायामनन्तप्रादेशिकानि द्रव्याणि, अन्यथा ग्रहणासम्भवात्, न हि सङ्ख्यातप्रदेशात्मका असङ्ख्यातप्रदेशात्मका वा स्कन्धा जीवस्य ग्रहणप्रायोग्या भवन्ति, क्षेत्रतोऽसङ्ख्यातप्रदेशावगाढानि, कालतोऽन्यतरस्थितिकानि—जघन्यस्थितिकानि मध्यमस्थितिकानि उत्कृष्टस्थितिकानि चेति भावार्थः, स्थितिरिति चाहारयोग्यस्कन्धपरिणामत्वेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम्, आह च मूलटीकाकारः—"काल-

तोऽन्यतरस्थितीनि तद्भावावस्थानेन जघन्यादिरूपां स्थितिमधिकृत्ये"ति, भावतो वर्णवन्ति गन्धवन्ति रसवन्ति स्पर्शवन्ति च, प्रति-परमाण्वेकैकवर्णगन्धरसद्विस्पर्शभावात्, "एवं जहा पण्णवणाए" इत्यादि, ''एवम्' उक्तेन प्रकारेण यथा प्रज्ञापनायामष्टाविंशतितमे आहारपदे प्रथमोद्देशके तावद्वक्तव्यं यावत् "सिय तिंदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसि"मिति, तच्चैवम्—"जाइं भावतो वण्णमंताइं आहारेंति ताइं किं एगवण्णाइं आहारेंति जाव पंचवण्णाइं आहारेंति?, गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइंपि आहारेंति जाव पंचवण्णाइं पि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कालवण्णाइंपि आहारेति जाव सुक्किल्लवण्णाइंपि आहारेंति, जाइं कालवण्णाइंपि आहारेंति ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति जाव दसगुणकालाइं आहारेंति संखिज्जगुणकालाइं आहारेति असंखेज्जगुणकालाइं आहारेंति अणंतगुणकालाइं आहारेंति?, गोयमा! एगगुणकालाइंपि आहारेति जाव अणंतगुणकालाइंपि आहारेंति एवं जाव सुक्किल्लाइंपि आहारेंति, एवं गंधतोवि रसतोवि ॥ जाइं भावतो फासमंताइं आहारेति ताइं किं एगफासाइं आहारेंति दुफासाइं आहारेंति जाव अट्ठफासाइं आहारेंति?, गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च नो एगफासाइं आहारेंति नो दुफासाइं आहारेंति नो तिफासाइंपि आहारेंति चउफासाइंपि आहारेंति जाव अट्ठफासाइंपि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइंपि आहारेंति जाव लुक्खाइंपि आहारेति ॥ जाइं फासतो कक्खडाइंपि आहारेति ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आहारेति जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आहारेंति?, गोयमा! एगगुणकक्खडाइंपि आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आहारेंति, एवं अट्ठवि फासा भाणियव्वा जाव अणंतगुणलुक्खाइंपि आहारेंति ॥ जाइं भंते! अणंतगुणलुक्खाइं आहारेंति ताइं भंते! किं पुट्ठाइं आहारेंति अपुट्ठाइं आहारेंति?, गोयमा! पुट्ठाइं आहारेंति नो अपुट्ठाइं आहारेंति, जाइं पुट्ठाइं आहारेंति ताइं भंते! किं ओगाढाइं आहारेंति अणोगाढाइं आहारेति?, गोयमा! ओगाढाइं आहारेंति नो

अणोगाढाइं आहारेंति, जाइं भंते! ओगाढाइं आहारेंति ताइं किं अणंतरोगाढाइं आहारेंति परंपरोगाढाइं आहारेंति?, गोयमा! अणंतरोगाढाइं आहारेंति नो परंपरोगाढाइं आहारेति, ताइं भंते! किं अणूइं आहारेंति बायराइं आहारेंति?, गोयमा! अणूइंपि आहारेंति वायराइंपि आहारेंति, जाइं भंते! अणूइं आहारेंति ताइं भंते! किं उड्ढं आहारेंति अहे आहारेंति तिरियं आहारेंति?, गोयमा! उड्ढंपि आहारेंति अहेवि आहारेंति तिरियंपि आहारेंति, जाइं भंते! उड्ढंपि आहारेंति अहेवि आहारेंति तिरियंपि आहारेति ताइं किं आइं आहारेंति मज्झे आहारेंति पज्जवसाणे आहारेंति?, गोयमा! आइंपि आहारेंति मज्झेवि आहारेंति पज्जवसाणे(वि)आहारेंति, जाइं भंते! आइंपि आहारेति जाव पज्जवसाणेवि आहारेंति ताइं किं सविसए आहारेति अविसए आहारेंति?, गोयमा! सविसए आहारेंति नो अविसए आहारेंति, जाइं भंते! सविसए आहारेंति ताइं किं आणुपुव्विं आहारेंति अणाणुपुव्विं आहारेंति?, गोयमा! आणुपुव्विं आहारेंति नो अणाणुपुव्विं आहारेंति, जाइं भंते! आणुपुव्विं आहारेंति ताइं किं तिदिसिं आहारेति चउदिसिं आहारेंति पंचदिसिं आहारेंति छद्दिसिं आहारेंति?, गोयमा! निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं(सिय)पंचदिसिमिति ॥" अस्य व्याख्या—"जाइं भावतो वण्णमंताइं" इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगम्, भगवानाह—गौतम! 'ठाणमग्गणं पडुच्चे'ति तिष्ठन्ति विशेषा अस्मिन्निति स्थानं—सामान्यमेकवर्णं द्विवर्णं त्रिवर्णमित्यादिरूपं तस्य मार्गणम्—अन्वेषणं तत्प्रतीत्य, सामान्यचिन्तामाश्रित्येति भावार्थः, एकवर्णान्यपि द्विवर्णान्यपीत्यादि सुगमं, नवरं तेषामनन्तप्रदेशिकानां स्कन्धानामेकवर्णत्वं द्विवर्णत्वमित्यादि व्यवहारनयमतापेक्षया, निश्चयनयमतापेक्षया त्वनन्तप्रादेशिकस्कन्धोऽल्पीयानपि पञ्चवर्ण एव प्रतिपत्तव्यः, 'विहाणमग्गणं पडुच्चे'त्यादि यावद् [विधानं—विशेषः,] विविक्तम्—इतरव्यवच्छिन्नं धानं—पोषणं स्वरूपस्य यत्तत्प्रतीत्य सामान्यचिन्तामाश्रित्येति शेषः, कृष्णो नील इत्यादि प्रति-

नियतो वर्णविशेष इतियावत्, तस्य मार्गणं तत्प्रतीत्य कालवर्णान्यप्याहारयन्तीत्यादि सुगमं, नवरमेतदपि व्यवहारतः प्रतिपत्तव्यं, निश्चयतः पुनरवश्यं तानि पञ्चवर्णान्येव ॥ 'जाइं वण्णतो कालवण्णाइं' इत्यादि सुगमं यावदनन्तगुणसुक्किलाइंपि आहारयन्ति, एवं गन्धरसस्पर्शविषयाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि ॥ 'जाइं भंते! अणंतगुणलुक्खाइं' इत्यादि, यानि भदन्त! अनन्तगुणरूक्षाणि, उपलक्षणमेतत्—एकगुणकालादीन्यप्याहारयन्ति तानि, स्पृष्टानि—आत्मप्रदेशस्पर्शविषयाण्याहारयन्ति उतास्पृष्टानि?, भगवानाह—स्पृष्टानि नो अस्पृष्टानि, तत्रात्मप्रदेशैः संस्पर्शनमात्मप्रदेशावगाढक्षेत्राद्बहिरपि संभवति ततः प्रश्नयति—'जाइं भंते' इत्यादि, यानि भदन्त! स्पृष्टान्याहारयन्ति तानि किमवगाढानि—आत्मप्रदेशैः सहैकक्षेत्रावस्थायीनि उतानवगाढानि—आत्मप्रदेशावगाहक्षेत्राद्बहिरवस्थितानि?, भगवानाह—गौतम! अवगाढान्याहारयन्ति नानवगाढानि। यानि भदन्त! अवगाढान्याहारयन्ति तानि किमनन्तरावगाढानि?, किमुक्तं भवति?—येष्वात्मप्रदेशेषु यान्यव्यवधानेनावगाढानि तैरात्मप्रदेशैस्तान्येवाहारयन्ति उत परम्परावगाढानि—एकद्वित्राद्यात्मप्रदेशैर्व्यवहितानि?, भगवानाह—गौतम! अनन्तरावगाढानि न परम्परावगाढानि। यानि भदन्त! अनन्तरावगाढान्याहारयन्ति तानि भदन्त! अनन्तप्रादेशिकानि द्रव्याणि किमणूनि—स्तोकान्याहारयन्ति उत बादराणि—प्रभूतप्रदेशोपचितानि?, भगवानाह—अणून्यप्याहारयन्ति बादराण्यप्याहारयन्ति, इहाणुत्वबादरत्वे तेषामेवाहारयोग्यानां स्कन्धानां प्रदेशस्तोकत्वबाहुल्यापेक्षया प्रज्ञापनामूलटीकाकारेणापि व्याख्याते इत्यस्माभिरपि तथैवाभिहिते। यानि भदन्त! अणून्यपि आहारयन्ति तानि किमूर्ध्वप्रदेशस्थितान्याहारयन्ति अधस्तिर्यग्वा?, इहोर्द्ध्वाधस्तिर्यक्त्वं यावति क्षेत्रे सूक्ष्मपृथिवीकायिकोऽवगाढस्तावत्येव क्षेत्रे तदपेक्षया परिभावनीयं, भगवानाह—ऊर्ध्वमप्याहारयन्ति—ऊर्ध्वप्रदेशावगाढान्यप्याहारयन्ति, एवमधोऽपि तिर्यगपि। यानि भदन्त! ऊर्ध्वमप्याहारयन्ति अधोऽप्याहारयन्ति तिर्य-

गप्याहारयन्ति तानि किमादावाहारयन्ति मध्ये आहारयन्ति पर्यवसाने आहारयन्ति?, अयमत्राभिप्रायः—सूक्ष्मपृथिवीकायिका अनन्तप्रादेशिकानि द्रव्याण्यन्तर्मुहूर्त्तं कालं यावदुपभोगोचितानि गृह्णन्ति, ततः संशय.—किमुपभोगोचितस्य कालस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणस्यादौ—प्रथमसमये आहारयन्ति उत मध्ये—मध्यसमयेषु आहोश्वित् पर्यवसाने—पर्यवसानसमये?, भगवानाह—गौतम! आदावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽप्याहारयन्ति, किमुक्तं भवति?—उपभोगोचितकालस्यान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणस्यादिमध्यावसानसमयेऽप्याहारयन्तीति । यानि भदन्त! आदावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽप्याहारयन्ति तानि भदन्त! किं स्वविषयानि—स्वोचिताहारयोग्यान्याहारयन्ति उताविषयानि—स्वोचिताहारायोग्यान्याहारयन्ति?, भगवानाह—गौतम! स्वविषयाण्याहारयन्ति नो अविषयाणि । यानि भदन्त! स्वविषयाण्याहारयन्ति तानि भदन्त! किमानुपूर्व्याऽऽहारयन्ति अनानुपूर्व्या?, आनुपूर्वी नाम यथाऽऽसन्नं, तद्विपरीताऽनानुपूर्वी, भगवानाह—गौतम! आनुपूर्व्या, सूत्रे द्वितीया तृतीयार्थे वेदितव्या प्राकृतत्वात्, यथाऽऽचाराङ्गे "अगणिं पुट्ठा" इत्यत्र, आहारयन्ति, नो अनानुपूर्व्या ऊर्ध्वमधस्तिर्यग्वा, यथाऽऽसन्नं नातिक्रम्याहारयन्तीति भाव. । यानि भदन्त! आनुपूर्व्याऽऽहारयन्ति तानि भदन्त! किं 'तिदिसं'ति तिस्रो दिशः समाहृतास्त्रिदिक् तस्मिन् व्यवस्थितान्याहारयन्ति चतुर्दिशि पञ्चदिशि षड्दिशि वा, इह लोकनिष्कुटपर्यन्ते जघन्यपदेऽपि [-जीवावगाहक्षेत्रं-] त्रिदिग्व्यवस्थितमेव प्राप्यते न द्विदिग्व्यवस्थितमेकदिग्व्यवस्थितं वा, अतस्त्रिदिश्यारभ्य प्रश्नः कृतः, भगवानाह—गौतम! 'निव्वाघाएणं छद्दिसिं'मित्यादि, व्याघातो नामालोकाकाशेन प्रतिस्खलनं व्याघातस्याभावो निर्व्याघातं 'शब्दप्रथादावव्ययं पूर्वपदार्थे नित्यमव्ययीभाव' इत्यव्ययीभावः 'तेन वा तृतीयाया' इति विकल्पेनाम्भावविधानात् पक्षेऽत्रामूभावः, नियमाद्—अवश्यंतया षड्दिशि व्यवस्थितानि, षड्भ्यो दिग्भ्य आगतानीति भावः, द्रव्याण्याहारयन्ति, व्याघातं पुनः प्रतीत्य लोकनिष्कुटादौ स्यात्कदाचित्त्रिदिशि—तिसृभ्यो दिग्भ्य

आगतानि, कदाचित् चतसृभ्य: कदाचित्पञ्चभ्य:, काऽत्र भावना? इति चेदुच्यते—इह लोकनिष्कुटे पर्यन्तेऽधस्त्यप्रतराग्नेयकोणावस्थितो यदा सूक्ष्मपृथिवीकायिको वर्त्तते तदा तस्याधस्तादलोकेन व्याप्तत्वात् अधोदिक्पुद्गलाभाव: आग्नेयकोणावस्थितत्वात् पूर्वदिक्पुद्गलाभावो दक्षिणदिक्पुद्गलाभावश्च, एवमध:पूर्वदक्षिणरूपाणां तिसृणां दिशामलोकेन व्यापनात् ता अपास्य या परिशिष्टा ऊर्ध्वाऽपरोत्तरा च दिगव्याहता वर्त्तते तत आगतान् पुद्गलानाहारयन्ति, यदा पुन: स एव पृथिवीकायिक: पश्चिमां दिशमनुसृत्य वर्त्तते तदा पूर्वा दिगभ्यधिका जाता, द्वे च दिशौ दक्षिणाधस्त्यरूपे अलोकेन व्याहते इति स चतुर्दिगागतान् पुद्गलानाहारयति, यदा पुनरूर्ध्वं द्वितीयादिप्रतरगतपश्चिमदिशमवलम्ब्य तिष्ठति तदाऽधस्त्यापि दिगभ्यधिका लभ्यते, केवला दक्षिणैवैका पर्यन्तवर्त्तिनी अलोकेन व्याहतेति पञ्चदिगागतान् पुद्गलानाहारयति। 'वण्णतो' इत्यादि वर्णत: कालनीललोहितहारिद्रशुक्लानि, गन्धत: सुरभिगन्धानि दुरभिगन्धानि वा, रसतस्तिक्तानि यावन्मधुराणि, स्पर्शत: कर्कशानि यावद्रूक्षाणि, तथा तेषामाहार्यमाणानां पुद्गलानां 'पुराणान्' अग्रेतनान् वर्णगुणान् गन्धगुणान् रसगुणान् स्पर्शगुणान् 'विपरिणामइत्ता परिपालइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता' एतानि चत्वार्यपि पदान्येकार्थिकानि विनाशार्थप्रतिपादकानि नानादेशजविनेयानुग्रहार्थमुपात्तानि, विनाश: किमित्याह—अन्यान् अपूर्वान् वर्णगुणान् गन्धगुणान् रसगुणान् स्पर्शगुणान् उत्पाद्यात्मशरीरक्षेत्रावगाढान् पुद्गलान् 'सव्वप्पणयाए' सर्वात्मना—सर्वैरेवात्मप्रदेशैराहारमाहाररूपान् पुद्गलानाहारयन्ति ॥ गतमाहारद्वारं, साम्प्रतमुपपातद्वारमाह—'ते णं भंते' इत्यादि, ते भदन्त! सूक्ष्मपृथिवीकायिका जीवा: 'कुत:' केभ्यो जीवेभ्य उद्वृत्योत्पद्यन्ते?, किं नैरयिकेभ्य:? इत्यादि प्रतीतं, भगवानाह—गौतम! नो नैरयिकेभ्य इत्यादि पाठसिद्धं, नवरं देवनैरयिकेभ्य उत्पादप्रतिषेधो देवनैरयिकाणां तथाभवस्वभावतया तन्मध्ये उत्पादासम्भवात्, 'जहा वक्कंतीए' इति, यथा प्रज्ञापनायां व्युत्क्रान्तिपदे तथा

वक्तव्यं, तच्चैवम्—तिर्यग्योनेभ्योऽप्युत्पादः पर्याप्तेभ्योऽपर्याप्तेभ्यो वा केवलमसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जितेभ्यः, मनुष्येभ्योऽप्यकर्मभूमिजान्तरद्वीपजासङ्ख्यातवर्षायुष्ककर्मभूमिजव्यतिरिक्तेभ्यः पर्याप्तेभ्योऽपर्याप्तेभ्यो वेति ॥ गतमुपपातद्वारमधुना स्थितिद्वारमाह—'तेसि णं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदमधिकमवसेयम् ॥ गतं स्थितिद्वारमधुना समुद्घातमधिकृत्य मरणं विचिन्तयिपुरिदमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि सुगमम्, उभयथाऽपि मरणसम्भवात् ॥ च्यवनद्वारमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि, 'ते' सूक्ष्मपृथ्वीकायिका भदन्त! जीवा अनन्तरमुद्वृत्य सूक्ष्मपृथिवीकायिकभवादानन्तर्येणोद्वृत्येति भावः क्व गच्छन्ति?—कोत्पद्यन्ते?, एतेनात्मनो गमनधर्मकता पर्यायान्तरमधिकृत्योत्पत्तिधर्मकता च प्रतिपादिता, तेन ये सर्वगतमनुत्पत्तिधर्मकं चात्मानं प्रतिपन्नास्ते निरस्ता द्रष्टव्याः, तथारूपे सत्यात्मनि यथोक्तप्रश्नार्थासम्भवात्, 'किं नेरइएसु गच्छन्ति'? इत्यादि सुप्रतीतं, भगवानाह—'नो नेरइएसु गच्छन्ति' इत्यादि पाठसिद्धं 'जहा वक्कंतीए' इति, यथा प्रज्ञापनायां व्युत्क्रान्तिपदे च्यवनमुक्तं तथाऽत्रापि वक्तव्यं, तच्चोत्पादवद् भावनीयमिति ॥ गतं च्यवनद्वारमधुना गत्यागतिद्वारमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि, ते भदन्त! जीवाः 'कतिगतिकाः?' कति गतयो येषां ते कतिगतिकाः, 'कत्यागतिकाः?' कतिभ्यो गतिभ्य आगतिर्येषां ते कत्यागतिकाः, भगवानाह—गौतम! द्व्यागतिका नरकगतेर्देवगतेश्च सूक्ष्मेषूत्पादाभावात्, द्विगतिका नरकगतौ देवगतौ च तत उद्वृत्तानामुत्पादाभावात्, 'परीत्ता' प्रत्येकशरीरिणः, असङ्ख्येया असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात् प्रज्ञप्ता मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, अनेन सर्वतीर्थकृतामविसंवादिवचनतामाह, हे श्रमण! हे आयुष्मन्! 'से त्तं सुहुमपुढविक्काइया' त एते सूक्ष्मपृथिवीकायिका उक्ताः ॥ उक्ताः सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः, अधुना बादरपृथिवीकायिकानभिधित्सुराह—

से किं तं बायरपुढविकाइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सण्हबायरपुढविक्काइया य खरबायरपुढविक्काइया य (सू० १४ ॥

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते बादरपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह—बादरपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाश्च खरबादरपृथिवीकायिकाश्च—श्लक्ष्णा नाम चूर्णितलोष्टकल्पा मृदुपृथवी तदात्मका जीवा अप्युपचारतः श्लक्ष्णाः ते च ते बादरपृथिवीकायिकाश्च श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः, अथवा श्लक्ष्णा चासौ बादरपृथिवी च सा कायः—शरीरं येषां ते श्लक्ष्णबादरपृथ्वीकायाः त एव स्वार्थिकेकप्रत्ययविधानात् श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः, खरा नाम पृथिवी सङ्घातविशेषं काठिन्यविशेषं वाऽऽपन्ना तदात्मका जीवा अपि खराः ते च ते बादरपृथिवीकायिकाश्च खरबादरपृथिवीकायिकाः, अथवा पूर्ववत्प्रकारान्तरेण समासः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ ॥

से किं तं सण्हबायरपुढविक्काइया ?, २ सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा—कण्हमत्तिया, भेओ जहा पण्णवणाए जाव ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ सरीरगा पं०, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, तं चेव सव्वं नवरं चत्तारि लेसाओ, अवसेसं जहा सुहुमपुढविक्काइयाणं आहारो जाव णियमा छद्दिसि, उववातो तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेहिंतो, देवेहिं जाव सोधम्मेसाणेहिंतो, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं । ते णं भंते ! जीवा मारणंतियसमु-

ग्घाएणं किं समोहया मरंति असमोहता मरंति ?, गोयमा ! समोहतावि मरंति असमोहतावि मरंति । ते णं भंते ! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ?–किं नेरइएसु उववज्जंति ?०, पुच्छा, नो नेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति मणुस्सेसु उव० नो देवेसु उव०, तं चेव जाव असंखेज्जवासाउवज्जेहिं । ते णं भंते ! जीवा कतिगतिया कतिआगतिया पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुगतिया तिआगतिया परित्ता असंखेज्जा य समणाउसो !, से तं बायरपुढविक्काइया । सेत्तं पुढविकाइया ॥ (सू० १५).

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह–श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तदेव सप्तविधत्वं दर्शयन्ति, तद्यथा–कृष्णमृत्तिका इत्यादि 'भेदो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए जाव तत्थ नियमा असंखिज्जा' इति, भेदो बादरपृथिवीकायिकानां द्विविधानामपि तथा भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स च तावद् यावत् "तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति पदं, स चैवम्—किण्हमत्तिया नीलमत्तिया लोहियमत्तिया हालिद्दमत्तिया सुकिलमत्तिया पंडुमत्तिया पणगमत्तिया, सेत्तं सण्हबायरपुढविकाइया । से किं तं खरबायरपुढविक्काइया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुढवी य सक्करा वालुया य उवले सिला य लोणूसे । तंबा य तउय सीसय रुप्प सुवण्णे य वइरे य ॥ १ ॥ हरियाले हिंगुलए मणोसिला सासगंजण पवाले । अब्भपडलब्भवालुय बायरकाये मणिविहाणा ॥ २ ॥ गोमेज्जए य रुयए अंके फलिहे य लोहियक्खे य । मरगयमसारगल्ले भुयमोयगइंदनीले य ॥ ३ ॥ चंदणगेरुयहंसे पुलए सोगंधिए य बोद्धव्वे । चंदप्पभवेरुलिए जलकंते सूरकंते य ॥ ४ ॥ जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा

पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसिणं वण्णादेसेणं गंधाएसेणं रसाएसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—कृष्णमृत्तिका—कृष्णमृत्तिकारूपा, एवं नीललोहितहारिद्रशुक्लभेदा अपि वाच्याः, पाण्डुमृत्तिका नाम देशविशेषे या धूलीरूपा सती पाण्डू इति प्रसिद्धा तदात्मका जीवा अप्यभेदोपचारात्पाण्डुमृत्तिकेत्युक्ताः, 'पणगमत्तिया' इति नद्यादिपूरप्लाविते देशे नद्यादि पूरेऽपगते यो भूमौ श्लक्ष्णमृदुरूपो जलमलोऽपरपर्यायपङ्कः स पनकमृत्तिका तदात्मका जीवा अप्यभेदोपचारात्पनकमृत्तिकाः, सेत्तमित्यादिनिगमनं सुगमम् ॥ 'से किं त'मित्यादि ॥ अथ के ते खरबादरपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह—खरबादरपृथिवीकायिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, चत्वारिंशद्भेदा मुख्यतः प्रज्ञप्ता इत्यर्थः, तानेव चत्वारिंशद्भेदानाह, तंजहा—'पुढवी'त्यादिगाथाचतुष्टयम्। पृथिवीति 'भामा सत्यभामावत्' शुद्धपृथिवी नदीतटभित्त्यादिरूपा १, चशब्द उत्तरापेक्षया समुच्चये, शर्करा—लघूपलशकलरूपा २, वालुका—सिकता ३, उपलः—टङ्काद्युपकरणपरिकर्मणायोग्यः पाषाणः ४, शिला—घटनयोग्या देवकुलपीठाद्युपयोगी महान् पाषाणविशेषः ५, लवणं—सामुद्रादि ६, ऊषो यद्वशादूषरं क्षेत्रम् ७, अयस्ताम्रत्रपुसीसकरूप्यसुवर्णानि—प्रतीतानि १३, वज्रो—हीरकः १४, हरितालहिङ्गुलमनःशिलाः प्रतीताः १७, सासगं—पारदः १८, अञ्जनं सौवीराञ्जनादि १९, प्रवालं—विद्रुमः २०, अभ्रपटलं—प्रसिद्धम् २१, अभ्रवालुका—अभ्रपटलमिश्रा वालुका २२, 'वायरकाए' इति वादरपृथिवीकायेऽमी भेदा इति शेषः, 'मणिविहाणा' इति चशब्दस्य गम्यमानत्वात् मणिविधानानि च—मणिभेदाश्च वादरपृथिवीकायभेदत्वेन ज्ञातव्याः, तान्येव मणिविधानानि दर्शयति—'गोमेज्जए य' इत्यादि, गोमेज्जकः २३, 'चः' समुच्चये, रुचकः २४ अङ्कः २५

स्फटिकः २६ 'चः' पूर्ववत्, लोहिताक्षः २७ मरकतः २८ मसारगल्लः २९ भुजमोचकः ३० इन्द्रनीलश्च ३१ चन्दन(:) ३२ गैरिकः ३३ हंसगर्भः ३४ पुलकः ३५ सौगन्धिकश्च ३६ चन्द्रप्रभः ३७ वैडूर्यः ३८ जलकान्तः ३९ सूर्यकान्तश्च ४०, तदेवमाद्यया गाथया पृथिव्यादयश्चतुर्दश भेदा उक्ताः द्वितीयगाथयाऽष्टौ हरितालादयः तृतीयगाथया गोमेज्जकादयो दश तुर्यगाथयाऽष्टाविति, सर्वसङ्ख्यया चत्वारिंशत्, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति येऽपि चान्ये तथाप्रकारा मणिभेदाः—पद्मरागादयस्तेऽपि खरबादरपृथिवीकायिकत्वेन वेदितव्याः। 'ते समासतो' इत्यादि, ते बादरपृथिवीकायिकाः 'समासतः' सङ्क्षेपेण द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, तत्र येऽपर्याप्तकास्ते स्वयोग्याः पर्याप्तीः साकल्येनासंप्राप्ताः अथवाऽसंप्राप्ता इति विशिष्टान् वर्णादीननुपगताः, तथाहि—वर्णादिभेदविवक्षायामेते न शक्यन्ते कृष्णादिना भेदेन व्यपदेष्टुं, किं कारणमिति—चेद्, उच्यते, इह शरीरादिपर्याप्तिषु परिपूर्णासु सतीषु बादराणां वर्णादिभेदः संप्रकटो भवति नापरिपूर्णासु, ते चापर्याप्ता उच्छ्वासपर्याप्त्या अपर्याप्ता एव म्रियन्ते, ततो न स्पष्टो वर्णादिविभाग इत्यसंप्राप्ता इत्युक्तम्, अन्ये तु व्याचक्षते—सामान्यतो वर्णादीनसंप्राप्ता इति, तच्च न युक्तं, यतः शरीरमात्रभाविनो वर्णादयः, शरीरं च शरीरपर्याप्त्या संजातमिति। 'तत्थ णं'मित्यादि, तत्र ये ते पर्याप्तकाः—परिसमाप्तसमस्तस्वयोग्यपर्याप्तयस्ते वर्णादेशेन—वर्णभेदविवक्षया एवं गन्धादेशेन रसादेशेन स्पर्शादेशेन सहस्राग्रशः—सहस्रसङ्ख्यया विधानानि—भेदाः, तद्यथा—वर्णाः कृष्णादिभेदात्पञ्च गन्धौ सुरभीतरभेदाद्वौ रसास्तिक्तादयः पञ्च स्पर्शा मृदुकर्कशादयोऽष्टौ, एकैकस्मिंश्च वर्णादौ तारतम्यभेदेनानेकेऽवान्तरभेदाः, तथाहि—भ्रमरकोकिलकज्जलादिषु तरतमभावात् कृष्णः कृष्णतरः कृष्णतम इत्यादिरूपतयाऽनेके कृष्णभेदाः, एवं नीलादिष्वप्यायोज्यं, तथा गन्धरसस्पर्शेष्वपि, तथा परस्परं वर्णानां संयोगतो धूसरकर्बुरत्वादयोऽनेकसङ्ख्याभेदाः, एवं गन्धादीनामपि परस्परं गन्धादिभिः

समायोगात्, ततो भवन्ति वर्णाद्यादेशैः सहस्राग्रशो भेदाः, 'संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं'ति सङ्ख्येयानि योनिप्रमुखाणि–योनिद्वाराणि शतसहस्राणि, तथाहि—एकैकस्मिन् वर्णे गन्धे रसे स्पर्शे च संवृता योनिः पृथिवीकायिकानां, सा पुनस्त्रिधा—सचित्ताऽचित्ता मिश्रा च, पुनरेकैका त्रिधा–शीता उष्णा शीतोष्णा, शीतादीनामपि प्रत्येकं तारतम्यभेदादनेकभेदत्वं, केवलमेकविशिष्टवर्णादियुक्ताः सङ्ख्यातीता अपि स्वस्थाने व्यक्तिभेदेन योनिजातिमधिकृत्यैकैव योनिर्गण्यते, ततः सङ्ख्येयानि पृथ्वीकायिकानां योनिशतसहस्राणि भवन्ति, तानि च सूक्ष्मबादरगतसर्वसङ्ख्यया सप्त, 'पज्जत्तगनिस्साए' इत्यादि, पर्याप्तकनिश्रयाऽपर्याप्तका व्युत्क्रामन्ति–उत्पद्यन्ते, कियन्तः? इत्याह–यत्रैकः पर्याप्तकस्तत्र नियमात्तन्निश्रया असङ्ख्येयाः–सङ्ख्यातीता अपर्याप्तकाः । 'एएसि णं भंते! जीवाण'मित्यादिना शरीरावगाहनादिद्वारकलापचिन्तां करोति, सा च पूर्ववत्, तथा चाह—'एवं जो चेव सुहुमपुढविकाइयाणं गमो सो चेव भाणियव्वो इति, 'नवर' मित्यादि, नवरमिदं नानात्वं लेश्याद्वारे चतस्रो लेश्या वक्तव्याः, तेजोलेश्याया अपि सम्भवात्, तथाहि—व्यन्तराद्य ईशानान्ता देवा भवनविमानादावतिमूर्च्छयाऽऽत्मीयरत्नकुण्डलादावप्युत्पद्यन्ते, ते च तेजोलेश्यावन्तोऽपि भवन्ति, यल्लेश्यश्च म्रियते अग्रेऽपि तल्लेश्य एवोपजायते "जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ" इति वचनात्, ततः कियत्कालमपर्याप्तावस्थायां तेजोलेश्यावन्तोऽप्यवाप्यन्ते इति चतस्रो वक्तव्याः, आहारो नियमात् षड्दिशि, बादराणां लोकमध्य एवोपपातभावात्, उपपातो देवेभ्योऽपि, बादरेषु तदुत्पादविधानात्, स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, देवेभ्योऽप्युत्पादात् त्र्यागतयो, द्विगतयः पूर्ववत्, एतेऽपि च 'परीत्ता' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, 'सेत्त'मित्याद्युपसंहारवाक्यम् ॥ उक्ताः पृथ्वीकायिकाः, अधुनाऽप्कायिकानभिधित्सुरिदमाह—

से किं तं आउक्काइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–सुहुमआउक्काइया य बायरआउक्काइया य, सुहुमआऊ० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरया पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा–ओरालिए तेयए कम्मए, जहेव सुहुमपुढविक्काइयाणं, णवरं थिवुगसंठिता पण्णत्ता, सेसं तं चेव जाव दुगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता। से तं सुहुमआउक्काइया॥ (सू० १६)

अथ के तेऽप्कायिकाः?, सूरिराह–अप्कायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–सूक्ष्माप्कायिकाश्च बादराप्कायिकाश्च, तत्र सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनो बादरा घनोदध्यादिभाविनः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ। 'से किं तं सुहुमआउक्काइया?' इत्यादि सूक्ष्मपृथिवीकायिकवन्निरवशेषं भावनीयं, नवरमिदं संस्थानद्वारे नानात्वं, तदेवोपदर्शयति—'ते सि णं भंते! जीवाणं सरीरया किं संठिया?' इत्यादि पाठसिद्धम्॥

से किं तं बायरआउक्काइया?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—ओसा हिमे जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तं चेव सव्वं णवरं थिवुगसंठिता, चत्तारि लेसाओ, आहारो नियमा छद्दिसिं, उववातो तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेहिं, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसं सत्तवाससहस्साइं, सेसं तं चेव जहा बायरपुढविकाइया जाव दुगतिया तिआगतिया परित्ता असंखेज्जा पन्नत्ता समणाउसो!, सेत्तं बायरआऊ, सेत्तं आउक्काइया॥ (सू० १७॥)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते वादराप्कायिका:?, सूरिराह–वादराप्कायिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"ओसा हिमे महिया जाव तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठो द्रष्टव्यः—"करगे हरतणू सुद्धोदए सीओदए खट्टोदए खारोदए अंबिलोदए लवणोदए वरुणोदए खीरोदए खोओदए रसोदए जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा एएसिणं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसाएसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या–अवश्यायः–त्रेहः, हिमं–स्त्यानोदकं, महिका–गर्भमासेषु सूक्ष्मवर्ष, करको–घनोपलः, हरतनुः यो भुवमुद्भिद्य गोधूमाङ्कुरतृणाग्रादिषु बद्धो विन्दुरुपजायते, शुद्धोदकम्–अन्तरिक्षसमुद्भवं नद्यादिगतं वा, तच्च स्पर्शरसादिभेदादनेकभेदं, तदेवानेकभेदत्वं दर्शयति–शीतोदकं–नदीतडागावटवापीपुष्करिण्यादिषु शीतपरिणामम्, उष्णोदकं–स्वभावत एव क्वचिन्निर्झरादावुष्णपरिणामं, क्षीरोदकम्–ईषल्लवणपरिणामं यथा लाटदेशादौ केषुचिदवटेषु, खट्टोदकम्–ईषदम्लपरिणामम्, आम्लोदकम्–अतीव स्वभावत एवाम्लपरिणामं काञ्जिकवत्, लवणोदकं लवणसमुद्रे, वारुणोदकं वारुणसमुद्रे, क्षीरोदकं क्षीरसमुद्रे, क्षोदोदकमिक्षुरससमुद्रे, रसोदकं पुष्करवरसमुद्रादिषु, येऽपि चान्ये तथाप्रकारा रसस्पर्शादिभेदाद् घृतोदकादयो वादराप्कायिकास्ते सर्वे वादराप्कायिकतया प्रतिपत्तव्याः, 'ते समासओ' इत्यादि प्राग्वत् नवरं सङ्ख्येयानि योनिप्रमुखाणि शतसहस्राणीत्यत्रापि सप्त वेदितव्यानि। 'तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा'? इत्यादिद्वारकलापचिन्तायामपि वादरपृथिवीकायिकगमोऽनुगन्तव्यो, नवरं संस्थानद्वारे शरीरकाणि स्तिबुकसंस्थानसंस्थितानि वक्तव्यानि,

स्थितिद्वारे अघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सप्त वर्षसहस्राणि, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि ॥ उक्ता अप्कायिकाः, सम्प्रति वनस्पतिकायिकानाह—

से किं तं वणस्सइकाइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमवणस्सइकाइया य बायरवणस्सइकाइया य ॥ (सू० १७) । से किं तं सुहुमवणस्सइकाइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य तहेव णवरं अणित्थंत्थ (संठाण) संठिया, दुगतिया दुआगतिया अपरित्ता अणंता, अवसेसं जहा पुढविक्काइयाणं, से तं सुहुमवणस्सइकाइया ॥ (सू० १८) ।

अथ के ते वनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह—वनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाश्च वादरवनस्पतिकायिकाश्च, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह—सूक्ष्मवनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः—पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, 'तेसि णं भंते ! कति सरीरगा' इत्यादिद्वारकलापचिन्तनं सूक्ष्मपृथिवीकायिकवद्भावनीयं, नवरं संस्थानद्वारे 'सरीरगा अणित्थंत्थसंठाणसंठिया पण्णत्ता' इति, इत्थं तिष्ठतीति इत्थंस्थं न इत्थंस्थमनित्थंस्थम्, अनियताकारमित्यर्थः, तच्च तत्संस्थानं तेन संस्थितानि—अनियतसंस्थानसंस्थितानि, गत्यागतिद्वारसूत्रपर्यन्ते 'अपरित्ता अणंता पन्नत्ता' इति वक्तव्यम्, 'अपरीत्ता' अप्रत्येकशरीरिणः अनन्तकायिका इत्यर्थः, अत एवानन्ताः प्रज्ञप्ता. हेश्रमण ! हे आयुष्मन् ! 'सेत्त'मित्यादि उपसंहारवाक्यम् ॥

से किं तं बायरवणस्सइकाइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पत्तेयसरीरबायरवणस्सतिकाइया

य साधारणसरीरबायरवणस्सइकाइया य ॥ (सू० १९)। से किं तं पत्तेयसरीरबादरवणस्सतिकाइया?, २ दुवालसविहा पण्णत्ता, तंजहा—रुक्खा गुच्छा गुम्मा लता य वल्ली य पव्वगा चेव। तणवलयहरितओसहिजलरुहकुहणा य बोद्धव्वा ॥ १ ॥ से किं तं रुक्खा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—एगट्ठिया य बहुबीया य। से किं तं एगट्ठिया?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—निंबंबजंबुजाव पुण्णागणागरुक्खे सीवण्णि तधा असोगे य, जे यावण्णे तहप्पगारा, एतेसि णं मूलावि असंखेज्जजीविया, एवं कंदा खंधा तया साला पवाला पत्ता पत्तेयजीवा पुप्फाइं अणेगजीवाइं फला एगट्ठिया, सेत्तं एगट्ठिया। से किं तं बहुबीया?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—अत्थियतेंदुयउंबरकविट्ठे आमलकफणसदाडिमणग्गोधकाउंबरीयतिलयलउयलोद्धे धवे, जे यावण्णे तहप्पगारा, एतेसि णं मूलावि असंखेज्जजीविया जाव फला बहुबीयगा, सेत्तं बहुबीयगा, सेत्तं रुक्खा, एवं जहा पण्णवणाए तहा भाणियव्वं, जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, सेत्तं कुहणा—नाणाविधसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता। खंधोवि एगजीवो तालसरलनालिएरीणं ॥ १ ॥ 'जह सगलसरिसवाणं पत्तेयसरीराणं' गाहा ॥ २ ॥ 'जह वा तिलसक्कुलिया' गाहा ॥ ३ ॥ सेत्तं पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया ॥ (सू० २०)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते बादरवनस्पतिकायिकाः?, सूरिराह—बादरवनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रत्येक-

शरीरबादरवनस्पतिकायिकाश्च साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिकाश्च, चशब्दौ पूर्ववत् ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह–प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिका द्वादशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'रुक्खा'इत्यादि, वृक्षाः-चूतादयः गुच्छा–वृन्ताकीप्रभृतयः गुल्मानि–नवमालिकाप्रभृतीनि लताः—चम्पकलतादयः, इह येषां स्कन्धप्रदेशे विवक्षितोर्ध्वशाखाव्यतिरेकेणान्यत् शाखान्तरं तथाविधं परिस्थूरं न निर्गच्छति ते लता इति व्यवह्रियन्ते, ते च चम्पकादय इति, वल्लयः–कूष्माण्डीत्रपुषीप्रभृतयः पर्वगा–इक्ष्वादयः तृणानि–कुशजुअकार्जुनादीनि वलयानि–केतकीकदल्यादीनि तेषां हि त्वग् वलयाकारेण व्यवस्थितेति हरितानि–तन्दुलीयकवस्तुलप्रभृतीनि औषधयः–फलपाकान्ताः ताश्च शाल्यादयः जले रुहन्तीति जलरुहाः–उदकावकपनकादयः कुहणा–भूमिस्फोटाभिधानास्ते चायकायप्रभृतयः, 'एवं भेदो भाणियव्वो जहा पन्नवणाए' इत्यादि, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण बादरप्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकानां भेदो वक्तव्यो यथा प्रज्ञापनायाम्, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते, स च किं यावद् वक्तव्यः ? इत्याह—'जह वा तिलसक्कुलिया' इत्यादि, अस्याश्च गाथाया अयं सम्बन्धः–इह यदि वृक्षादीनां मूलादयः प्रत्येकमनेकप्रत्येकशरीरजीवाधिष्ठितास्ततः कथमेकखण्डशरीराकारा उपलभ्यन्ते ?, तत्रेयमुत्तरगाथा—"जह सगलसरिसवाणं सिलेसमिस्साण वट्टिया वट्टी । पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया ॥ १ ॥" अस्या व्याख्या–यथा सकलसर्षपाणां श्लेपमिश्राणां—श्लेषद्रव्यविमिश्रितानां वलिता वर्त्तिरेकरूपा भवति, अथ च ते सकलसर्षपाः परिपूर्णशरीराः सन्तः पृथक् पृथक् स्वस्वावगाहनयाऽवतिष्ठन्ते, 'तथा' अनयैवोपमया प्रत्येकशरीरिणां जीवानां शरीरसङ्घाताः पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहना भवन्ति, इह श्लेषद्रव्यस्थानीयं रागद्वेषोपचितं तथाविधं स्वकर्म सकलसर्षपस्थानीयाः प्रत्येकशरीराः, सकलसर्षपग्रहणं वैविक्त्यप्रतिपत्त्या पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहप्रत्येकशरीरत्वे-

वित्तयप्रतिपत्त्यर्थम्, अत्रैव दृष्टान्तान्तरमाह—"जह वा तिलसक्कुलिया" इत्यादिरधिकृतगाथा, वाशब्दो दृष्टान्तान्तरसूचने, यथा 'तिलसक्कुलिका' तिलप्रधाना पिष्टमयी अपूपिका बहुभिस्तिलैर्मिश्रिता सती यथा पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहतिलासिका भवति कथ-ञ्चिदेकरूपा च 'तथा' अनयैवोपमया प्रत्येकशरीरिणां जीवानां शरीरसङ्घाताः कथञ्चिदेकरूपाः पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहनाश्च भवन्ति, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि सुगमम् ॥ सम्प्रति साधारणवनस्पतिकायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—आलुए मूलए सिंगबेर हिरिलि सिरिलि सिस्सिरिलि किट्टिया छिरिया छिरियविरालिया कण्हकंदे वज्जकंदे सूरणकंदे खल्लूडे किमिरासि भद्दे मोत्थापिंडे हलिद्दा लोहारी णीहु[ठिहु]थिभु अस्सकण्णी सीहकन्नी सीउंढी मूसंढी जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! तओ सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, तहेव जहा बायरपुढविकाइयाणं, णवरं सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं सातिरेगजोयणसहस्सं, सरीरगा अणित्थंत्थसंठिता, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं, जाव दुगतिया तिआगतिया परित्ता अणंता पण्णत्ता, सेत्तं बायरवणस्सइकाइया, सेत्तं थावरा ॥ (सू० २१)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः?, सूरिराह—साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिका अनेक-

विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'आलुए' इत्यादि, एते आलुकमूलकशृङ्गबेरहिरिलिसिरिलिसिस्सिरिलिकिट्टिकाक्षीरिकाक्षीरबिडालिकाकृष्णकन्दवज्रकन्दसूरणकन्दखल्लूट(कृमिराशि)भद्रमुस्तापिण्डहरिद्रालोहीस्नुहिस्तिभुअश्वकर्णीसिंहकर्णीसिकुंढीमुषण्ढीनामानः साधारणवनस्पतिकायिकभेदाः केचिदतिप्रसिद्धत्वात्केचिद्देशविशेषात्स्वयमवगन्तव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति येऽपि चान्ये तथाप्रकाराः—एवंप्रकारा अवकपनकसेवालादयस्तेऽपि साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः प्रतिपत्तव्याः, **'ते समासतो'** इत्यादि, 'ते' बादरवनस्पतिकायिकाः समासतो द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, **'जाव सिय संखेज्जा'** इति यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठो द्रष्टव्यः—"तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा तेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसाएसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ सिय संखिज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता" इति, एतत्प्राग्वत्, नवरं यत्रैको बादरपर्याप्तस्तत्र तन्निश्रयाऽपर्याप्ताः कदाचित्सङ्ख्येयाः कदाचिदसङ्ख्येयाः कदाचिदनन्ताः, प्रत्येकतरवः सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा, साधारणास्तु नियमादनन्ता इति भावः। **'तेसि णं भंते ! कइ सरीरगा ?'** इत्यादिद्वारकलापचिन्तनं बादरपृथिवीकायिकवत्, नवरं संस्थानद्वारे नानासंस्थानसंस्थितानीति वक्तव्यम्। अवगाहनाद्वारे **'उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्स'**मिति, तत्र सातिरेकं योजनसहस्रमवगाहनामानमेकस्य जीवस्य बाह्यद्वीपेषु वल्ल्यादीनां समुद्रगोतीर्थेषु च पद्मनालादीनां, तदधिकोच्छ्रयमानानि पद्मानि पृथिवीकायपरिणाम इति वृद्धाः। स्थितिद्वारे उत्कर्षतो दश वर्षसहस्राणि वक्तव्यानि, गत्यागतिसूत्रानन्तरं 'अपरीत्ता अणंता' इति वक्तव्यं, तत्र **'परीत्ताः'** प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः **'अपरीत्ताः'** अप्रत्येकशरीरि-

णोऽनन्ताः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं बादरवणस्सइकाइया, सेत्तं थावरा' इति सुगमम् ॥ उक्ताः स्थावराः, सम्प्रति त्रसप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं तसा ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—तेउक्काइया वाउक्काइया ओराला तसा पाणा ॥ (सू० २२) ।

अथ के ते त्रसाः ?, सूरिराह—त्रसास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तेजस्कायिका वायुकायिका औदारिकत्रसाः, तत्र तेजः—अग्निः कायः—शरीरं येषां ते तेजस्कायास्त एव स्वार्थिकेकप्रत्ययविधानात्तेजस्कायिकाः, वायुः—पवनः स कायो येषां ते वायुकायास्त एव वायुकायिकाः, उदाराः—स्फारा उदारा एव औदारिकाः प्रत्यक्षत एव स्पष्टत्रसत्वनिबन्धनाभिसन्धिपूर्वकगतिलिङ्गतयोपलभ्यमानत्वात्, तत्र त्रसा द्वीन्द्रियादयः 'औदारिकत्रसाः' स्थूरत्रसा इत्यर्थः ॥ तत्र तेजस्कायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं तेउक्काइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमतेउक्काइया य बादरतेउक्काइया य ॥ (सू० २३)

से किं तं सुहुमतेउक्काइया ?, २ जहा सुहुमपुढविक्काइया नवरं सरीरगा सूइकलावसंठिया, एगगइया दुआगइआ परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेसं तं चेव, सेत्तं सुहुमतेउक्काइया ॥ (सू० २४)

से किं तं बादरतेउक्काइया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—इंगाले जाले मुम्मुरे जाव सूरकंतमणिनिस्सिते, जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । तेसिणं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, सेसं तं चेव, सरीरगा सूइकलावसंठिता, तिन्नि लेस्सा, ठिती

जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदियाइं तिरियमणुस्सेहिंतो उववाओ, सेसं तं चेव एगगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेत्तं तेउक्काइया ॥ (सू० २५)

अथ के ते तेजस्कायिकाः ?, तेजस्कायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मतेजस्कायिकाश्च बादरतेजस्कायिकाश्च, चशब्दो पूर्ववत् ॥ अथ के ते सूक्ष्मतेजस्कायिकाः ?, सूरिराह—सूक्ष्मतेजस्कायिका इत्यादि सूत्रं सर्वं सूक्ष्मपृथिवीकायिकवद् वक्तव्यं, नवरं संस्थानद्वारे शरीराणि सूचीकलापसंस्थितानि वक्तव्यानि, च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्धृत्य तिर्यग्गतावेवोत्पद्यन्ते, न मनुष्यगतौ, तेजोवायुभ्योऽनन्तरोद्धृतानां मनुष्यगतावुत्पादप्रतिषेधात्, तथा चोक्तम्—"सत्तमिमहिनेरइया तेऊ वाऊ अणंतरुव्वट्टा[1] । नवि पावे माणुस्सं तहेवऽसंखाउया सव्वे ॥ १ ॥" गत्यागतिद्वारे द्व्यागतयः, तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्च तेषूत्पादात्, एकगतयोऽनन्तरमुद्धृत्तानां तिर्यग्गतावेव गमनात्, शेषं तथैव, उपसंहारवाक्यं 'सेत्तं सुहुमतेउक्काइया' ॥ बादरतेजस्कायिकानाह—अथ के ते बादरतेजस्कायिकाः ?, सूरिराह—बादरतेजस्कायिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"इंगाले जाव तत्थ नियमे"त्यादि यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठः—"इंगाले जाला मुम्मुरे अच्ची अलाए सुद्धागणी उक्का विज्जू असणि निग्घाए संघरिससमुट्ठिए सूरकंतमणिनिस्सिए, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसिणं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—'अङ्गारः'

[1] सप्तमीमहीनैरयिका· तेजो वायु अनन्तरोद्वृत्ता· । नैव प्राप्नुवन्ति मानुष्यं तथैवासंख्यायुष· सर्वे ॥ १ ॥

विगतधूमज्वालो जाज्वल्यमानः खदिरादिः, 'ज्वाला' अनलसंबद्धा दीपशिखेत्यन्ये, 'मुर्मुरः' फुम्फुकाग्नौ भस्मामिश्रितोऽग्नि-कणरूपः 'अर्चिः' अनलाप्रतिबद्धा ज्वाला, 'अलातम्' उल्मुकं, 'शुद्धाग्निः' अयःपिण्डादौ, 'उल्का' चुडुली 'विद्युत्' प्रतीता, 'अशनिः' आकाशे पतन्नग्निमयः कणः, 'निर्घातः' वैक्रियाशनिप्रपातः 'संघर्षसमुत्थितः' अरण्यादिकाष्ठनिर्मथनसमुत्थः, 'सूर्यकान्तमणिनिश्रितः' सूर्यखरकिरणसंपर्के सूर्यकान्तमणेर्यः समुपजायते, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' एवंप्रकारास्तेजस्कायिकास्तेऽपि बादरतेजस्कायिकतया वेदितव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि प्राग्वत्, शरीरादिद्वारकलापचिन्ताऽपि सूक्ष्मतेजस्कायिकवत्, नवरं स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि रात्रिन्दिवानि, आहारो यथा बादरपृथ्वीकायिकानां तथा वक्तव्यः, उपसंहारमाह—'सेत्तं तेउक्काइया' ॥ उक्तास्तेजस्कायिकाः, सम्प्रति वायुकायिकानाह—

से किं तं वाउक्काइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमवाउक्काइया य बादरवाउक्काइया य, सुहुमवाउक्काइया जहा तेउक्काइया णवरं सरीरा पडागसंठिता एगगतिया दुआगतिया परित्ता असंखिज्जा, सेत्तं सुहुमवाउक्काइया । से किं तं बादरवाउक्काइया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—पाईणवाए पडीणवाए, एवं जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । ते सि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! चत्तारि सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए, सरीरगा पडागसंठिता, चत्तारि समुग्घाता—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए,

आहारो णिव्वाघातेणं छद्दिसिं वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, उववातो देवमणुयनेरइएसु णत्थि, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं, सेसं तं चेव एगगतिया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो !, सेत्तं बायरवाऊ, सेत्तं वाउक्काइया ॥ (सू० २६)

अथ के ते वायुकायिकाः ?, सूरिराह—वायुकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मवायुकायिकाश्च बादरवायुकायिकाश्च, चशब्दौ प्राग्वत्, तत्र सूक्ष्मवायुकायिकाः सूक्ष्मतेजस्कायिकवद्वक्तव्याः, नवरं संस्थानद्वारे तेषां शरीराणि पताकासंस्थानसंस्थितानि वक्तव्यानि, शेषं तथैव, बादरवायुकायिका अपि एवं चैव—सूक्ष्मतेजस्कायिकवदेव, नवरं भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स चैवम्—"से किं तं बायरवाउक्काइया ?, बायरवाउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—पाईणवाए पडीणवाए दाहिणवाए उदीणवाए उड्ढवाए अहेवाए तिरियवाए विदिसिवाए वाउब्भामे वाउक्कलिया मंडलियावाए उक्कलियावाए गुंजावाए झंझावाए संवट्टगवाए घणवाए तणुवाए सुद्धवाए, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसिं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं, पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—'पाईणवाए' इति, यः प्राच्या दिशः समागच्छति वातः स प्राचीनवातः, एवमपाचीनो दक्षिणवात उदीचीनवातश्च वक्तव्यः, ऊर्ध्वमुद्गच्छन् यो वाति वातः स ऊर्ध्ववातः, एवमधोवाततिर्यग्वातावपि परिभावनीयौ, विदिग्वातो यो विदिग्भ्यो वाति, वातो-

भ्रमः—अनवस्थितो वातः, वातोत्कलिका समुद्रस्येव वातस्योत्कलिका वातमण्डलीवात उत्कलिकाभिः प्रचुरतराभिः सम्मिश्रो यो वातः, मण्डलिकावातो मण्डलिकाभिर्मूलत आरभ्य प्रचुरतराभिः सम्मिश्रो यो वातः, गुञ्जावातो यो गुञ्जन्—शब्दं कुर्वन् वाति, झञ्झावातः सवृष्टिः, अशुभनिष्ठुर इत्यन्ये, संवर्त्तकवातस्तृणादिसंवर्त्तनस्वभावः, घनवातो घनपरिणामो वातो रत्नप्रभापृथिव्याद्यधोवर्त्ती, तनुवातो—विरलपरिणामो घनवातस्याधःस्थायी, शुद्धवातो मन्दस्तिमितो, बस्तिदृत्यादिगत इत्यन्ये, 'ते समासतो' इत्यादि प्राग्वत्, तथा शरीरादिद्वारकलापचिन्तायां शरीरद्वारे चत्वारि शरीराणि औदारिकवैक्रियतैजसकार्मणानि, चत्वारः समुद्घाताः—वैक्रियवेदनाकषायमारणान्तिकरूपाः, स्थितिद्वारे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं वक्तव्यमुत्कर्षतस्त्रीणि वर्षसहस्राणि, आहारो निर्व्याघातेन षड्दिशि, व्याघातं प्रतीत्य स्यात्त्रिदिशि स्याच्चतुर्दिशि स्यात्पञ्चदिशि, लोकनिष्कुटादावपि बादरवातकायस्य सम्भवात्, शेषं सूक्ष्मवातकायवत्, उपसंहारमाह—'सेत्तं वाउक्काइया' इति ॥ उक्ता वातकायिकाः, सम्प्रत्यौदारिकत्रसानाह—

से किं तं ओराला तसा पाणा?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया ॥ (सू० २७)

अथ के ते औदारिकत्रसाः?, सूरिराह—औदारिकत्रसाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाः, तत्र द्वे स्पर्शनरसनरूपे इन्द्रिये येषां ते द्वीन्द्रियाः, त्रीणि स्पर्शनरसनघ्राणरूपाणि इन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः, चत्वारि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षूरूपाणि इन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः, पञ्च स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणि इन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रियाः ॥ तत्र द्वीन्द्रियप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं बेइंदिया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—पुलाकिमिया जाव समुद्दलिक्खा, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तेसिणं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए। तेसि णं भंते! जीवाणं के महालिया सरीरओगाहणा पण्णत्ता ?, जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जभागं उक्कोसेणं बारसजोयणाइं छेवट्ठसंघयणा हुंडसंठिता, चत्तारि कसाया, चत्तारि सण्णाओ, तिण्णि लेसाओ, दो इंदिया, तओ समुग्घाता—वेयणा कसाया मारणंतिया, नोसन्नी असन्नी, णपुंसकवेदगा, पंच पज्जत्तीओ, पंच अपज्जत्तीओ, सम्मदिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि नो सम्ममिच्छदिट्ठी, णो ओहिदंसणी णो चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी नो केवलदंसणी। ते णं भंते! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?, गोयमा! णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते नियमा दुण्णाणी, तंजहा—आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी य, जे अन्नाणी ते नियमा दुअण्णाणी—मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य, नो मणजोगी वइजोगी कायजोगी, सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि, आहारो नियमा छद्दिसिं, उववातो तिरियमणुस्सेसु नेरइयदेवअसंखेज्जवासाउयवज्जेसु, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि, समोहतावि मरंति असमोहतावि मरंति, कहिं

गच्छंति?, नेरइयदेवअसंखेज्जवासाउअवज्जेसु गच्छंति, दुगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा, सेत्तं बेइंदिया ॥ (सू० २८)

'से किं त' मित्यादि, अथ के ते द्वीन्द्रियाः ?, सूरिराह—द्वीन्द्रिया अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'पुलाकिमिया जाव समुद्दलिक्खा' इति यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठो द्रष्टव्यः—"पुलाकिमिया कुच्छिकिमिया गंडूयलगा गोलोमा नेउरा सोमंगलगा वंसीमुहा सूईमुहा गोजलोया जलोया जालायुसा संखा संखणगा घुल्ला खुल्ला वराडा सोत्तिया मोत्तिया कलुयावासा एगतोवत्ता दुहतोवत्ता नंदियावत्ता संबुक्का माइवाहा सिप्पिसंपुडा चंदणा समुद्दलिक्खा इति" अस्य व्याख्या—'पुलाकिमिया' नाम पायुप्रदेशोत्पन्नाः कृमयः 'कुक्षिकृमयः' कुक्षिप्रदेशोत्पन्नाः 'गण्डोयलकाः' प्रतीताः 'शङ्खाः' समुद्रोद्भवास्तेऽपि प्रतीताः 'शङ्खनकाः' त एव लघवः 'घुल्लाः' घुल्लिकाः 'खुल्लाः' लघवः शङ्खाः सामुद्रशङ्खाकाराः 'वराटाः' कपर्दाः 'मातृवाहाः' कोद्रवाकारतया ये कोद्रवा इति प्रतीताः 'सिप्पिसंपुडा' संपुटरूपाः शुक्तयः 'चन्दनकाः' अक्षाः, शेषास्तु यथासम्प्रदायं वाच्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति येऽपि चान्ये तथाप्रकाराः—एवंप्रकाराः मृतककलेवरसम्भूतकृम्यादयस्ते सर्वे द्वीन्द्रिया ज्ञातव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि, ते द्वीन्द्रियाः 'समासतः' सङ्क्षेपेण द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अपर्याप्ताः पर्याप्ताश्च । शरीरद्वारेऽमीषां त्रीणि शरीराणि—औदारिकं तैजसं कार्मणं च, अवगाहना जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कृष्टा द्वादश योजनानि, संहननद्वारे छेदवर्त्तिसंहननिनः, अत्र संहननं मुख्यमेव द्रष्टव्यम्, अस्थिनिचयभावात्, संस्थानद्वारे हुण्डसंस्थानाः, कषायद्वारे चत्वारः कषायाः, सञ्ज्ञाद्वारे चतस्र आहारादिकाः सञ्ज्ञाः, लेश्याद्वारे आद्यास्तिस्रो लेश्याः, इन्द्रियद्वारे द्वे इन्द्रिये, तद्यथा—स्पर्शनं रसनं च, समुद्घातद्वारे त्रयः समुद्घाताः, त-

यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातश्च, सञ्ज्ञाद्वारे नो सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनः, वेदद्वारे नपुंसकवेदाः, संमूर्च्छिमत्वात्, पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दृष्टिद्वारे सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयो वा, न सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, कथम्? इति चेत् उच्यते, इह घण्टाया वादितायां महान् शब्द उपजायते, तत उत्तरकालं हीयमानोऽवसाने लालामात्रं भवति, एवमसुना घण्टालालान्यायेन किञ्चित्सास्वादनसम्यक्त्वशेषाः केचिद् द्वीन्द्रियेषु मध्ये उत्पद्यन्ते, ततोऽपर्याप्तावस्थायां कियत्कालं सास्वादनसम्यक्त्वसम्भवात् सम्यग्दृष्टित्वं, शेषकालं मिथ्यादृष्टिता, यत्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वं तन्न संभवति, तथाभवस्वभावतया तथारूपपरिणामायोगात्, नापि सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सन् तत्रोत्पद्यते 'न सम्ममिच्छो कुणइ कालं' इति वचनात्, दर्शनद्वारं प्राग्वत्, ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽप्यज्ञानिनोऽपि, तत्र ज्ञानित्वं सास्वादनसम्यक्त्वापेक्षया, ते च ज्ञानिनो नियमाद् द्विज्ञानिनो, मतिश्रुतज्ञानमात्रभावात्, अज्ञानिनोऽपि नियमाद् द्व्यज्ञानिनो, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमात्रभावात्, योगद्वारे न मनोयोगिनो वाग्योगिनोऽपि काययोगिनोऽपि, उपयोगद्वारं पूर्ववत्, आहारो नियमात् षड्दिशि, त्रसनाड्या एवान्तर्द्वीन्द्रियादीनां भावात्, उपपातो देवनारकासङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यः शेषतिर्यग्मनुष्येभ्यः, स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि, समवहतद्वारं प्रागिव, च्यवनद्वारे देवनारकासङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जितेषु शेषेषु तिर्यग्मनुष्येष्वनन्तरमुद्धृत्य गमनम्, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकाः तिर्यग्मनुष्यगत्यपेक्षया, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणः, असङ्ख्येया घनीकृतस्य लोकस्य या ऊर्ध्वाध आयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयोऽसङ्ख्येययोजनकोटाकोटीप्रमाणाकाशसूचिगतप्रदेशराशिप्रमाणाः तावत्प्रमाणत्वात्, प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं बेइंदिया' ॥ उक्ता द्वीन्द्रियाः, अधुना त्रीन्द्रियानाह—

से किं तं तेइंदिया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—ओवइया रोहिणीया हत्थिसोंडा, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तहेव जहा बेइंदियाणं, नवरं सरीरोगाहणा उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं, तिन्नि इंदिया, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगूणपण्णराइंदिया, सेसं तहेव, दुगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं तेइंदिया ॥ (सू० २९)

अथ के ते त्रीन्द्रियाः ?, सूरिराह—त्रीन्द्रिया अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'भेदो जहा पण्णवणाए' भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स चैवम्—"उवयिया रोहिणिया कुंथूपिवीलिया उद्देसगा उद्देहिया उक्कलिया तणहारा कट्ठहारा पत्तहारा मालुया पत्तहारा तणबेंटका पत्तबेंटया फलबेंटया तेम्बुरुमिंजिया तउसमिंजिया कप्पासट्ठिमिंजिया झिल्लिया झिंगिरा झिगिरिडा बाहुया, [ग्रन्थाग्रम् १०००] मुरगा सोवत्थिया सुयबेंटा इंदकाइया इंदगोवया कोत्थलवाहगा हालाहला पिसुया तसवाइया गोम्ही हत्थिसोंडा ॥" इति, एते च केचिदतिप्रतीताः केचिद्देशविशेषतोऽवगन्तव्याः, नवरं 'गोम्ही' कण्हसियाली, **'जे यावण्णे तहप्पगारा'** इति येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' एवंप्रकारास्ते सर्वे त्रीन्द्रिया ज्ञातव्याः, **'ते समासतो'** इत्यादि समस्तमपि सूत्रं द्वीन्द्रियवत्परिभावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे उत्कर्षतोऽवगाहना त्रीणि गव्यूतानि । इन्द्रियद्वारे त्रीणि इन्द्रियाणि । स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत एकोनपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानि, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—**'सेत्तं तेइंदिया ॥'** उक्तास्त्रीन्द्रियाः, सम्प्रति चतुरिन्द्रियप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं चउरिंदिया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—अंधिया पुत्तिया जाव गोमयकीडा, जे

यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता तं चेव, णवरं सरीरोगाहणा उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं, इंदिया चत्तारि, चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी, ठिती उक्कोसेणं छम्मासा, सेसं जहा तेइंदियाणं जाव असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं चउरिंदिया ॥ (सू० ३०)

अथ के ते चतुरिन्द्रियाः?, सूरिराह—चतुरिन्द्रिया अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"अंधिया पुत्तिया मच्छिया मगसिरा कीडा पयंगा टेंकणा कुकुहा कुक्कुडा नंदावत्ता झिंगिरिडा किण्हपत्ता नीलपत्ता लोहियपत्ता हालिद्दपत्ता सुक्किलपत्ता चित्तपक्खा विचित्तपक्खा ओहंजलिया जलचारिया गंभीरा नीणिया तंतवा अच्छिरोडा अच्छिवेहा सारंगा नेउरा डोला भमरा भरिलि जरला विच्छुया पत्तविच्छुया छाणविच्छुया जलविच्छुया सेइंगाला कणगा गोमयकीडगा" एते लोकतः प्रत्येतव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' एवंप्रकारास्ते सर्वे चतुरिन्द्रिया विज्ञेयाः, 'ते समासतो' इत्यादि सकलमपि सूत्रं द्वीन्द्रियवद्भावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे उत्कर्षतोऽवगाहना चत्वारि गव्यूतानि। इन्द्रियद्वारे स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्लक्षणानि चत्वारीन्द्रियाणि। स्थितिद्वारे उत्कर्षतः स्थितिः षण्मासाः, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'सेत्तं चउरिंदिया'। सम्प्रति पञ्चेन्द्रियान् प्रतिपिपादयिषुराह—

से किं तं पंचेदिया?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—णेरतिया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा ॥ (सू० ३१)

अथ के ते पञ्चेन्द्रियाः?, सूरिराह—पञ्चेन्द्रियाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकास्तिर्यग्योनिका मनुष्या देवाः, तत्र अयम्—

इष्टफलं कर्म निर्गतमयं येभ्यस्ते निरया—नरकावासास्तेषु भवा नैरयिकाः, अध्यात्मादेराकृतिगणत्वादिकण्प्रत्ययः । तिर्यगिति प्रायस्तिर्यग्लोके योनयस्तिर्यग्योनयस्तत्र जातास्तिर्यग्योनिजाः, यदिवा तिर्यग्योनिका इति शब्दसंस्कारः, तत्र तिर्यगिति प्रायस्तिर्यग्लोके योनयः—उत्पत्तिस्थानानि येषां ते तिर्यग्योनिकाः । मनुरिति मनुष्यस्य सञ्ज्ञा, मनोरपत्यानि मनुष्याः, जातिशब्दोऽयं राजन्यादिशब्दवत् । दीव्यन्तीति देवाः ॥ तत्र नैरयिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं नेरइया ?, २ सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा—रयणप्पभापुढविनेरइया जाव अहे सत्तमपुढविनेरइया, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं०—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—वेउव्विए तेयए कम्मए । तेसि णं भंते ! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जो भागो उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं, तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जतिभागं उक्कोसेणं धणुसहस्सं । तेसिणं भंते ! जीवाणं सरीरा किंसंघयणी पण्णत्ता ?, गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी, णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारु णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया असुभा अमणुण्णा अमणामा ते तेसिं संघातत्ताए परिणमंति । तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरा किंसंठिता पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा

पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया तेवि हुंडसंठिता पण्णत्ता, चत्तारि कसाया चत्तारि सण्णाओ तिण्णि लेसाओ पंचेंदिया चत्तारि समुग्घाता आइल्ला, सन्नीवि असन्नीवि, नपुंसकवेदा, छप्पज्जत्तीओ छ अपज्जत्तीओ, तिविधा दिट्ठी, तिन्नि दंसणा, णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते नियमा तिन्नाणी, तंजहा—आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी ओहिनाणी, जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी अत्थेगतिया तिअण्णाणी, जे य दुअण्णाणी ते णियमा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य, जे तिअण्णाणी ते नियमा मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य विभंगणाणी य, तिविधे जोगे, दुविहे उवओगे, छद्दिसिं आहारो, ओसण्णं कारणं पडुच्च वण्णतो कालाइं जाव आहारमाहारेंति, उववाओ तिरियमणुस्सेसु, ठिती जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तित्तीसं सागरोवमाइं, दुविहा मरंति, उव्वट्टणा भाणियव्वा जतो आगता, णवरि संमुच्छिमेसु पडिसिद्धो, दुगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो!, से तं नेरइया ॥ (सू० ३२)

अथ के ते नैरयिकाः?, सूरिराह—नैरयिकाः सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका यावत्करणात् शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिकाः वालुकाप्रभापृथिवीनैरयिकाः पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकाः धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाः तमःप्रभापृथिवीनैरयिका इति परिग्रहः, अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकाः, 'ते समासतो' इत्यादिपर्याप्तापर्याप्तसूत्रं सुगमम् ॥ शरीरादिद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'तेसि णं भंते!' इत्यादि,

सुगमं नवरं भवप्रत्ययादेव तेषां शरीरं वैक्रियं नौदारिकमिति वैक्रियतैजसकार्मणानि त्रीणि शरीराण्युक्तानि । अवगाहना तेषां द्विधा—भवधारणीया उत्तरवैकुर्विकी च, तत्र यया भवो धार्यते सा भवधारणीया, बहुलवचनात्करणेऽनीयप्रत्ययः, अपरा भवान्तरवैरिनारकप्रतिघातनार्थमुत्तरकालं या विचित्ररूपा वैक्रयिकी अवगाहना सा उत्तरवैकुर्विकी, तत्र या सा भवधारणीया सा जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागः, स चोपपातकाले वेदितव्यः, तथाप्रयत्नभावात्, उत्कर्षतः पञ्चधनुःशतानि, इदं चोत्कर्षतः प्रमाणं सप्तमपृथिवीमधिकृत्य वेदितव्यं, प्रतिपृथिवि तूत्कर्षतः प्रमाणं सङ्ग्रहणिटीकातो भावनीयं, तत्र सविस्तरमुक्तत्वात्, उत्तरवैकुर्विकी जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागो न त्वसङ्ख्येयभागः, तथाप्रयत्नाभावात्, उत्कर्षतो धनुःसहस्रमिति, इदमप्युत्कर्षपरिमाणं सप्तमनरकपृथिवीमधिकृत्य वेदितव्यं, प्रतिपृथिवि तु सङ्ग्रहणिटीकातः परिभावनीयं, संहननद्वारे 'तेसि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम ! षण्णां संहननानामन्यतमेनापि संहननेन तेषां शरीराण्यसंहननानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, कस्मादसंहननानि ? इति चेद् अत आह—'नेवट्ठी' इत्यादि, नैव तेषां शरीराणामस्थीनि, नैव शिरा—धमनिनाड्यो, नापि स्नायूनि—शेषशिराः, अस्थिनिचयात्मकं च संहननमतोऽस्थ्याद्यभावादसंहननानि शरीराणि, इयमत्र भावना—इह तत्त्ववृत्त्या संहननमस्थिनिचयात्मकं, यत्तु प्रागेकेन्द्रियाणां सेवार्त्तसंहननमभ्यधायि तदौदारिकशरीरसम्बन्धमात्रमपेक्ष्यौपचारिकं, देवा अपि यदन्यत्र प्रज्ञापनादौ वज्रसंहननिन उच्यन्ते तेऽपि गौणवृत्त्या, तथाहि—इह यादृशी मनुष्यलोके चक्रवर्त्यादेर्विशिष्टवज्रर्षभनाराचसंहननिनः सकलशेषमनुष्यजनासाधारणा शक्तिः "दोसोला बत्तीसा सव्वबलेणं तु संकलनिबद्धं"मित्यादिका, ततोऽधिकतरा देवानां पर्वतोत्पाटनादिविषया शक्तिः श्रूयते न च शरीरपरिक्लेश इति तेऽपि वज्रसंहननिन इव वज्रसंहननिन उक्ता न पुनः परमार्थतस्ते संहननिनः, ततो नारकाणामस्थ्यभावात्संहननाभावः, एतेन योऽपरिणतभग-

वत्सिद्धान्तसारो वावदूकः सिद्धान्तवाहुल्यमात्मनः ख्यापयन्नेवं प्रललाप—"सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहऽट्ठिनिचयो"त्ति, इति सोऽपाकीर्णो द्रष्टव्यः, साक्षादत्रैव सूत्रे अस्थिनिचयात्मकस्य संहननस्याभिधानात्, अस्थ्यभावे संहननप्रतिषेधादिति । अपरस्त्वाह—नैरयिकाणामस्थ्यभावे कथं शरीरबन्धोपपत्तिः?, नैष दोषः, तथाविधपुद्गलस्कन्धवत् शरीरबन्धोपपत्तेः, अत एवाह—'जे पोग्गला अणिट्ठा' इत्यादि, ये पुद्गलाः 'अनिष्टाः' मनस इच्छामतिक्रान्ताः, तत्र किञ्चित्कमनीयमपि केषाञ्चिदनिष्टं भवति तत आह—न कान्ताः अकान्ता—अकमनीयाः, अत्यन्ताशुभवर्णोपेतत्वात्, अत एव न प्रियाः, दर्शनापातकालेऽपि न प्रियबुद्धिमात्मन्युत्पादयन्तीति भावः, 'अशुभाः' अशुभरसगन्धस्पर्शात्मकत्वात्, 'अमनोज्ञाः' न मनःप्रह्लादहेतवो, विपाकतो दुःखजनकत्वात्, अमनआपाः—न जातुचिदपि भोज्यतया जन्तूनां मनांस्याप्नुवन्तीति भावः, ते तेषां 'सङ्घातत्वेन' तथारूपशरीरपरिणतिभावेन परिणमन्ति । संस्थानद्वारे तेषां शरीराणि भवधारणीयानि उत्तरवैकुर्विकाणि च हुण्डसंस्थानानि वक्तव्यानि, तथाहि—भवधारणीयानि तेषां शरीराणि भवस्वभावत एव निर्मूलविलुप्तपक्षोत्पाटितसकलग्रीवादिरोमपक्षिशरीरकवदतिबीभत्सहुण्डसंस्थानोपेतानि, यान्यप्युत्तरवैक्रियाणि तानि यद्यपि शुभानि वयं विकुर्विष्याम इत्यभिसन्धिना विकुर्वितुमारभन्ते तथाऽपि तानि तेषामत्यन्ताशुभतथाविधनामकर्मोदयतोऽतीवाशुभतराण्युपजायन्ते इति तान्यपि हुण्डसंस्थानानि । कषायद्वारं सञ्ज्ञाद्वारं च प्राग्वत्, लेश्याद्वारे आद्यास्तिस्रो लेश्याः, तत्राद्ययोर्द्वयोः पृथिव्योः कापोतलेश्या, तृतीयस्यां पृथिव्यां केषुचिन्नरकावासेषु कापोतलेश्या शेषेषु नीललेश्या, चतुर्थ्यां नीललेश्या, पञ्चम्यां केषुचिन्नरकावासेषु नीललेश्या, शेषेषु कृष्णलेश्या, षष्ठ्यां कृष्णलेश्या, सप्तम्यां परमकृष्णलेश्या, उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ—"काऊ य दोसु तइ-

१ कापोती च द्वयोस्तृतीयस्यां मिश्रा नीला चतुर्थ्यां । पञ्चम्यां मिश्रा कृष्णा ततः परमकृष्णा ॥ १ ॥

याएँ मीसिया नीलिया चउत्थीए पंचमियाए। मीसा कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥ १ ॥" इन्द्रियद्वारे पञ्च इन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रलक्षणानि । समुद्घातद्वारे चत्वारः समुद्घाताः—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातश्च । सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनश्च, तत्र ये गर्भव्युत्क्रान्तिकेभ्य उत्पन्नास्ते सञ्ज्ञिन इति व्यपदिश्यन्ते, ये तु संमूर्च्छनजेभ्यस्तेऽसञ्ज्ञिनः, ते च रत्नप्रभायामेवोत्पद्यन्ते न परतः, अनाशयाशुभक्रियाया दारुणाया अप्यनन्तरविपाकिन्या एतावन्मात्रफलत्वात्, अत एवाहुर्वृद्धाः—"[1]अस्सन्नी खलु पढमं दोच्चं व सिरीसवा तइय पक्खी । सीहा जंति चउत्थि उरगा पुण पंचमिं पुढविं ॥ १ ॥ छट्ठिं य इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं । एसो परमोवाओ बोद्धव्वो नरयपुढवीसु ॥ २ ॥" वेदद्वारे नपुंसकवेदाः । पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः । दृष्टिद्वारे त्रिविधदृष्टयोऽपि, तद्यथा—मिथ्यादृष्टयः सम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च, दर्शनद्वारे त्रीणि दर्शनानि, तद्यथा—चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं च । ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्रिज्ञानिनः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, येऽत्राज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, एष चात्र भावार्थः—ये नारका असञ्ज्ञिनस्तेऽपर्याप्तावस्थायां द्व्यज्ञानिनः पर्याप्तावस्थायां तु त्र्यज्ञानिनः सञ्ज्ञिनस्तूभय्यामप्यवस्थायां त्र्यज्ञानिनः, असञ्ज्ञिभ्यो ह्युत्पद्यमानास्तथाबोधमान्द्यादपर्याप्तावस्थायां नाव्यक्तमप्यवधिमाप्नुवन्तीति । योगोपयोगाहारद्वाराणि प्रतीतानि । उपपातो यथा व्युत्क्रान्तिपदे **प्रज्ञापनायां** तथा वक्तव्यः, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येभ्योऽसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यो वक्तव्यो,

---

१ असञ्ज्ञिनः खलु प्रथमा द्वितीया च सरीसृपास्तृतीयां पक्षिणः । सिंहा यान्ति चतुर्थीं उरगाः पुनः पञ्चमीं पृथ्वीम् ॥ १ ॥ षष्ठीं च स्त्रियः मत्स्या मनुष्याश्च सप्तमीं पृथ्वीम् । एष परम उत्पादो बोद्धव्यो नरकपृथ्वीषु ॥ २ ॥

न शेषेभ्य इति भावः। स्थितिर्जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। समुद्घातमधिकृत्य मरणचिन्ता प्राग्वत्। उद्वर्त्तनाचिन्ता यथा व्युत्क्रान्तिपदे प्रज्ञापनायां कृता तथा वक्तव्या, अनन्तरमुद्वृत्य सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येष्वसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जितेष्वागच्छन्तीति भावः, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकाः, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं नेरइया' ॥ उक्ता नैरयिकाः, सम्प्रति तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानाह—

से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणिया य ॥ (सू० ३३)

अथ के ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च, तत्र संमूर्च्छनं संमूर्च्छो—गर्भोपपातव्यतिरेकेणैव यः प्राणिनामुत्पादस्तेन निर्वृत्ताः संमूर्च्छिमाः, 'भावादिम' इति इमप्रत्ययः, ते च ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, गर्भे व्युत्क्रान्तिः—उत्पत्तिर्येषां यदिवा गर्भाद्—गर्भवशाद् व्युत्क्रान्तिः—निष्क्रमणं येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, ते च ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चेति विशेषणसमासः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ ॥

से किं तं संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा ॥ (सू० ३४)। से किं तं जलयरा?, २ पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—मच्छगा कच्छभा मगरा गाहा सुसुमारा। से किं तं मच्छा?, एवं जहा पण्णवणाए जाव जे यावण्णे तहप्पगारा,

ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं जोयणसहस्सं छेवट्टसंघयणी हुंडसंठिता, चत्तारि कसाया, सण्णाओवि ४, लेसाओ ५, इंदिया पंच, समुग्घाता तिण्णि णो सण्णी असण्णी, णपुंसकवेदा, पज्जत्तीओ अपज्जत्तीओ य पंच, दो दिट्ठिओ, दो दंसणा, दो नाणा दो अन्नाणा, दुविधे जोगे, दुविधे उवओगे, आहारो छद्दिसिं, उववातो तिरियमणुस्सेहिंतो नो देवेहिंतो नो नेरइएहिंतो, तिरिएहिंतो असंखेज्जवासाउवज्जेसु, अकम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउअवज्जेसु मणुस्सेसु, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, मारणंतियसमुग्घातेणं दुविहावि मरंति, अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं ?, नेरइएसुवि तिरिक्खजोणिएसुवि मणुस्सेसुवि देवेसुवि, नेरइएसु रयणप्पहाए, सेसेसु पडिसेधो, तिरिएसु सव्वेसु उववज्जंति संखेज्जवासाउएसुवि असंखेज्जवासाउएसुवि चउप्पएसु पक्खीसुवि मणुस्सेसु सव्वेसु कम्मभूमीसु नो अकम्मभूमीएसु अंतरदीवएसुवि संखिज्जवासाउएसुवि असंखिज्जवासाउएसुवि देवेसु जाव वाणमंतरा, चउगइया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता । से तं जलयरसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खा ॥ (सू० ३५)

अथ के ते संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः

स्थलचराः खचराः, तत्र जले चरन्तीति जलचराः, एवं स्थलचरा खचरा अपि भावनीयाः ॥ अथ के ते जलचराः?, सूरिराह—जलचराः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मत्स्याः कच्छपा मकरा ग्राहाः शिशुमाराः, 'एवं भेओ भाणियव्वो जहा पण्णवणाए जाव सुसुमारा एगागारा पन्नत्ता' इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण मत्स्यादीनां भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स च तावद् यावत् 'सिसुमारा' एगागारा इतिपदं, स चैवम्—"से किं तं मच्छा?, मच्छा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—सण्हमच्छा खवल्लमच्छा जुगमच्छा भिब्भियमच्छा हेलियमच्छा मंजरियामच्छा रोहियमच्छा हलीसागारा मोगरावडा वडगरा तिमीतिमिंगिलामच्छा तंदुलमच्छा कणिक्कमच्छा सिलेच्छियामच्छा लंभणमच्छा पडागा पडागाइपडागा, जे यावण्णे तहप्पगारा, से तं मच्छा। से किं तं कच्छभा?, कच्छभा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—अट्ठिकच्छभा य मंसलकच्छभा य, से तं कच्छभा। से किं तं गाहा?, गाहा पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—दिली वेढगा मुदुगा पुलगा सीमागारा, सेत्तं गाहा। से किं तं मगरा?, मगरा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सोंडमगरा य मट्ठमगरा य, सेत्तं मगरा। से किं तं सुसुमारा?, २ एगागारा पण्णत्ता, सेत्तं सुसुमारा" इति, एते मत्स्यादिभेदा लोकतोऽवगन्तव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' उक्तप्रकारा मत्स्यादिरूपाः, ते सर्वे जलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्रष्टव्याः। 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं सुगमं, शरीरादिद्वारकदम्बकमपि चतुरिन्द्रियवद्भावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे जघन्यतोऽवगाहना अङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा, उत्कर्षतो योजनसहस्रम्। इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियाणि। सञ्ज्ञिद्वारे नो सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनः, संमूर्च्छिमतया समनस्कत्वायोगात्। उपपातो यथा व्युत्क्रान्तिपदे तथा वक्तव्य., तिर्यग्मनुष्येभ्योऽसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्ज्येभ्यो वाच्य इति भावः। स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी। च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्वृत्त्य चतसृष्वपि गतिषूत्पद्यन्ते, तत्र नरकेषु रत्नप्रभायामेव, तिर्यक्षु सर्वेष्वेव, मनु-

ष्येषु कर्मभूमिजेषु, देवेषु व्यन्तरभवनवासिषु, तदन्येष्वसङ्ख्यायुष्काभावात्, अत एव गत्यागतिद्वारे चतुर्गतिका द्व्यागतिकाः, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ उक्ताः संमूर्च्छिमजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, सम्प्रति संमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं थलयरसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पयथलयरसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया परिसप्पसंमु० ॥ से किं तं थलयरचउप्पयसंमुच्छिम०?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—एगखुरा दुखुरा गंडीपया सणप्फया जाव जे यावण्णे तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तओ सरीगा ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं चउरासीतिवाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेत्तं थलयरचउप्पदसंमु०। से किं तं थलयरपरिसप्पसंमुच्छिमा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरगपरिसप्पसंमुच्छिमा भुयगपरिसप्पसंमुच्छिमा। से किं तं उरगपरिसप्पसंमुच्छिमा?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—अही अयगरा आसालिया महोरगा। से किं तं अही?, अही दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—दव्वीकरा मउलिणो य। से किं तं दव्वीकरा?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—आसीविसा जाव से तं दव्वीकरा। से किं तं मउ-

लिणो?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—दिव्वा गोणसा जाव से तं मउलिणो, सेत्तं अही । से किं तं अयगरा?, २ एगागारा पण्णत्ता, से तं अयगरा । से किं तं आसालिया?, २ जहा पण्णवणाए, से तं आसालिया । से किं तं महोरगा?, २ जहा पण्णवणाए, से तं महोरगा । जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य तं चेव, णवरि सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्सऽसंखेज्ज० उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं, जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा, से तं उरगपरिसप्पा ॥ से किं तं भुयगपरिसप्पसंमुच्छिमथलयरा ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—गोहा णउला जाव जे यावन्ने तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जं उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं, ठिती उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं भुयपरिसप्पसंमुच्छिमा, से तं थलयरा ॥ से किं तं खहयरा ?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—चम्मपक्खी लोमपक्खी समुग्गपक्खी विततपक्खी । से किं तं चम्मपक्खी ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—वग्गुली जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, से तं चम्मपक्खी । से किं तं लोमपक्खी ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—ढंका कंका जे यावन्ने तहप्पकारा, से

तं लोमपक्खी । से किं तं समुग्गपक्खी ?, २ एगागारा पण्णत्ता जहा पण्णवणाए, एवं विततपक्खी जाव जे यावन्ने तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, णाणत्तं सरीरोगाहणा जह० अंगु० असं० उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं ठिती उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं खयरसंमुच्छिमतिरिक्खजोणिया, सेतं संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ॥ (सू० ३६)

अथ के ते संमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च परिसर्पस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च, तत्र चत्वारि पदानि येषां ते चतुष्पदाः—अश्वादयः ते च ते स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, उरसा भुजाभ्यां वा परिसर्पन्तीति परिसर्पाः—अहिनकुलादयस्ततः पूर्ववत्समासः, चशब्दौ स्वस्वगतानेकभेदसूचकौ, तदेवानेकविधत्वं क्रमेण प्रतिपिपादयिषुराह—अथ के ते चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'जहा पण्णवणाए' इति, यथा प्रज्ञापनायां प्रज्ञापनाख्ये प्रथमे पदे भेदास्तथा वक्तव्या यावत् 'ते समासतो दुविहा पण्णत्ता' इत्यादि, ते चैवम्—"एगखुरा दुखुरा गंडीपया सणप्फया । से किं तं एगखुरा ?, एगखुरा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—अस्सा अस्सतरा घोडा गद्दभा गोरखुरा कंदलगा सिरिकंदलगा आवत्ता जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं एगखुरा । से किं तं दुखुरा ?, दुखुरा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—उट्टा गोणा गवया महिसा संवरा वराहा अजा एलगा रुरू सरभा चमरी कुरंगा गोक-

णमाई, सेत्तं दुखुरा । से किं तं गंडीपया ?, गंडीपया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—हत्थी हत्थिपूयणा मंकुणहत्थी खग्गा गंडा, जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं गंडीपया । से किं तं सणप्फया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—सीहा वग्घा दीविया अच्छा तरच्छा परस्सरा सीयाला सुणगा कोकंतिया ससगा चित्तगा चित्तलगा, जे यावण्णे तहप्पकारा ॥" इति, तत्र प्रतिपदमेकः खुरो येषां ते एकखुराः—अश्वादयः, प्रतिपादं द्वौ खुरौ—शफौ येषां ते द्विखुरा—उष्ट्रादयः, तथा च तेषामेकैकस्मिन् पादे द्वौ द्वौ शफौ दृश्येते, गण्डीव पदं येषां ते गण्डीपदाः—हस्त्यादयः, सनखानि—दीर्घनखपरिकलितानि पदानि येषां ते सनखपदाः—श्वादयः, प्राकृतत्वाच 'सणप्फया' इति सूत्रे निर्देशः, अश्वादयस्त्वेतद्भेदाः केचिदतिप्रसिद्धत्वात्स्वयमन्ये च लोकतो वेदितव्याः, नवरं सनखपदाधिकारे द्वीपकाः—चित्रका अच्छाः—ऋक्षाः परासराः—सरभाः कोकन्तिका—लोमठिकाः चित्ता चित्तलगा आरण्यजीवविशेषाः, शेषास्तु सिंहव्याघ्रतरक्षश्रृगालशुन-ककोलशुनशशकाः प्रतीताः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं शरीरादिद्वारकलापसूत्रं च जलचरवद्भावनीयं, नवरमवगाहना-द्वारे जघन्यतोऽवगाहना अङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कृष्टा गव्यूतपृथक्त्वं स्थितिद्वारे जघन्यत. स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतश्चतुरशीति वर्षसहस्राणि, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'सेत्तं चउप्पयथलयरसंमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ अथ के ते परिसर्पस्थलचर-संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, २ द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'एवं भेदो भाणियव्वो' इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण यथा प्रज्ञा-पनायां तथा भेदो वक्तव्यो यावत् 'पज्जत्ता य अपज्जत्ता य' स चैवम्—'तंजहा—उरपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपंचेन्दियतिरिक्खजो-णिया य भुयपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया य ।" सुगमं, नवरम् उरसा परिसर्पन्तीत्युरःपरिसर्पाः—सर्पादयः, भुजाभ्यां परिसर्पन्तीति भुजपरिसर्पा—नकुलादयः, शेषपदसमासः प्राग्वत्, "से किं तं उरपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपंचिंदियतिरि-

क्खजोणिया ?, उरपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपञ्चिंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पन्नत्ता, तंजहा—अही अयगरा आसालिया महोरगा । से किं तं अही ?, अही दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—दव्वीकरा य मउलिणो य । से किं तं दव्वीकरा ?, दव्वीकरा अणेगविहा पन्नत्ता, तंजहा—आसीविसा दिट्ठीविसा उग्गविसा भोगविसा तयाविसा लालाविसा निस्सासविसा कण्हसप्पा सेयसप्पा काकोदरा दुब्भपुप्फा कोलाहा सेलेसिंदा, जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं अही । से किं तं अयगरा ?, अयगरा एगागारा पन्नत्ता, सेत्तं अयगरा । से किं तं आसालिया ?, कहि णं भंते ! आसालिगा संमुच्छइ ?, गोयमा ! अंतो मणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीवेसु निव्वाघाएणं पन्नरससु कम्मभूमीसु, वाघायं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु चक्कवट्टिखंधावारेसु बलदेवखंधावारेसु वासुदेवखंधावारेसु मंडलियखंधावारेसु महामण्डलियखंधावारेसु गामनिवेसेसु नगरनिवेसेसु खेडनिवेसेसु कब्बड० मडंबनिवेसेसु दोणमुहनिवेसेसु पट्टणनिवेसेसु आगरनिवेसेसु आसमनिवेसेसु रायहाणिनिवेसेसु, एएसि णं चेव विणासेसु, एत्थ णं आसालिया संमुच्छइ, जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमित्ताए ओगाहणाए, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं, तदाणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं भूमिं दालित्ता संमुच्छइ, असण्णी मिच्छदिट्ठी अन्नाणी अंतोमुहुत्तद्धाउया चेव कालं करेइ, सेत्तं आसालिया । से किं तं महोरगा ?, महोरगा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—अत्थेगइया अंगुलंपि अंगुलपुहुत्तियावि विहत्थिंपि विहत्थिपुहत्तियावि रयणिंपि रयणिपुहुत्तियावि कुच्छिंपि कुच्छिपुहत्तियावि धणुहंपि धणुहपुहत्तियावि गाउयंपि गाउयपुहत्तियावि जोयणंपि जोयणपुहत्तियावि जोयणसयंपि जोयणसयपुहत्तियावि, ते णं थले जाया जलेऽवि चरंति थलेऽवि चरंति, ते णत्थि इहं बाहिरएसु दीवसमुद्देसु हवंति, जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं महोरगा ।" इति । अस्य विषमपदव्याख्या—"'दव्वीकरा य मउलिणो य' इति, दर्वीव दर्वी—फणा तत्करणशीला दर्वीकराः, मुकुलं—फणाविरहयोग्या

शरीरावयवविशेषाकृतिः सा विद्यते येषां ते मुकुलिनः—स्फटाकरणशक्तिविकला इत्यर्थः, अत्रापि चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, 'आसीविसा' इत्यादि, आस्यो—दंष्ट्रास्तासु विषं येषां ते आसीविषाः, उक्तं च—"आसी दाढा तग्गयविसाऽऽसीविसा मुणेयव्वा" इति, दृष्टौ विषं येषां ते दृष्टिविषाः, उग्रं विषं येषां ते उग्रविषाः, भोगः—शरीरं तत्र सर्वत्र विषं येषां ते भोगविषाः, त्वचि विषं येषां ते त्वग्विषाः, प्राकृतत्वाच्च 'तयाविसा' इतिपाठः, लाला—मुखात् श्रावस्तत्र विषं येषां ते लालाविषाः, निश्वासे विषं येषां ते निश्वासविषाः कृष्णसर्पादयो जातिभेदा लोकतः प्रत्येतव्याः। 'से किं तं आसालिगा' इत्यादि, अथ का सा आसालिगा?, एवं शिष्येण प्रश्ने कृते सति सूत्रकृद् यदेवासालिकाप्रतिपादकं गौतमप्रश्नभगवन्निर्वचनरूपं सूत्रमस्ति तदेवागमबहुमानतः पठति—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! परमकल्याणयोगिन्! आसालिगा संमूर्छति, एषा हि गर्भजा न भवति किन्तु संमूर्च्छिमैव तत उक्तं संमूर्छति, भगवानाह—गौतम! अन्तः—मध्ये मनुष्यक्षेत्रस्य न बहिः, एतावता मनुष्यक्षेत्राद्बहिरस्या उत्पादो न भवतीति प्रतिपादितं, तत्रापि मनुष्यक्षेत्रे सर्वत्र न भवति किन्तु अर्द्धतृतीयेषु द्वीपेषु, अर्द्धं तृतीयं येषां तेऽर्द्धतृतीयाः, अवयवेन विग्रहः समुदायः समासार्थः तेषु, एतावता लवणसमुद्रे कालसमुद्रे वा न भवतीत्यावेदितं, 'निव्वाघातेन' व्याघातस्याभावो निर्व्याघातं तेन, यदि पञ्चसु भरतेषु पञ्चस्वैरावतेषु सुषमसुषमादिरूपोऽतिदुष्षमादिरूपश्च कालो व्याघातहेतुत्वाद् व्याघातो न भवति तदा पञ्चदशसु कर्मभूमिषु संमूर्च्छति, व्याघातं प्रतीत्य, किमुक्तं भवति?—यदि पञ्चसु भरतेषु पञ्चस्वैरावतेषु यथोक्तरूपो व्याघातो भवति ततः पञ्चसु महाविदेहेषु संमूर्च्छति, एतावता त्रिंशत्यप्यकर्मभूमिषु नोपजायत इति प्रतिपादितं, पञ्चदशसु कर्मभूमिषु पञ्चसु महाविदेहेषु सर्वत्र न संमूर्च्छति किन्तु चक्रवर्त्तिस्कन्धावारेषु बलदेवस्कन्धावारेषु वासुदेवस्कन्धावारेषु माण्डलिकः—सामान्यराजाऽल्पर्द्धिकः,

महामाण्डलिकः स एवानेकदेशाधिपतिस्तत्स्कन्धावारेषु, ग्रामनिवेशेषु इत्यादि, ग्रसति बुद्ध्यादीन् गुणानिति यदिवा गम्यः शास्त्रप्रसिद्धानामष्टादशानां कराणामिति ग्रामः, निगमः—प्रभूततरवणिग्वर्गावासः, पांसुप्राकारनिबद्धं खेटं, क्षुल्लप्राकारवेष्टितं कर्वटम्, अर्द्धतृतीयगव्यूतान्तर्ग्रामरहितं मडम्बं 'पट्टण'त्ति पट्टनं पत्तनं वा, उभयत्रापि प्राकृतत्वेन निर्देशस्य समानत्वात्, तत्र यन्नौभिरेव गम्यं तत्पट्टनं यत्पुनः शकटैर्घोटकैर्नौभिर्वा गम्यं तत्पत्तनं यथा भरुकच्छम्, उक्तं च—"पत्तनं शकटैर्गम्यं, घोटकैर्नौभिरेव च। नौभिरेव तु यद्गम्यं, पट्टनं तत्प्रचक्षते ॥ १ ॥" द्रोणमुखं—प्रायेण जलनिर्गमप्रवेशम्, आकरो—हिरण्याकरादिः आश्रमः—तापसावसथोपलक्षित आश्रयः, संबाधो—यात्रासमागतप्रभूतजननिवेशः, राजधानी—राजाधिष्ठानं नगरम्, 'एएसि ण' मित्यादि, एतेषां चक्रवर्त्तिस्कन्धावारादीनामेव विनाशेषूपस्थितेषु 'एत्थ णं'ति एतेषु चक्रवर्त्तिस्कन्धावारादिषु स्थानेष्वासालिका संमूर्च्छेति, सा च जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रयाऽवगाहनया समुत्तिष्ठतीति योगः, एतच्चोत्पादप्रथमसमये वेदितव्यम्, उत्कर्षतो द्वादश योजनानि—द्वादशयोजनप्रमाणयाऽवगाहनया 'तदनुरूपं' द्वादशयोजनप्रमाणदैर्घ्यानुरूपं 'विक्खंभबाहल्लेणं'ति विष्कम्भश्च बाहल्यं च विष्कम्भबाहल्यं, समाहारो द्वन्द्वः, तेन, विष्कम्भो—विस्तारो बाहल्यं च—स्थूलता, भूमिं 'दालित्ता णं' विदार्य समुत्तिष्ठति, चक्रवर्त्तिस्कन्धावारादीनामधस्ताद् भूमेरन्तरुत्पद्यत इति भावः, सा चासञ्ज्ञिनी—अमनस्का संमूर्च्छिमत्वात्, मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यक्त्वस्यापि तस्या असम्भवात्, अत एवाज्ञानिनी, अन्तर्मुहूर्त्तोद्धायुरेव कालं करोति। 'अत्थेगइया अंगुलंपी'त्यादि, अस्तीति निपातोऽत्र बहुवचनाभिधायी, ततोऽयमर्थः—सन्त्येकका: केचन महोरगा येऽङ्गुलमपि शरीरावगाहनया भवन्ति, इहाङ्गुलमुच्छ्रयाङ्गुलमवसातव्यं, शरीरप्रमाणस्य चिन्त्यमानत्वात्, सन्त्येकका येऽङ्गुलपृथक्त्विका अपि—पृथक्त्वं द्विप्रभृतिरानवभ्य इति परिभाषा अङ्गुलपृथक्त्वं शरीरावगाहनमानमे-

पामस्तीत्यङ्गुलपृथक्त्विकाः, 'अतोऽनेकस्वरादि' तीकप्रत्ययः, एवं शेषसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं द्वादशाङ्गुलप्रमाणा वितस्तिः, द्विवितस्तिप्रमाणा रत्निर्हस्तः, कुक्षिर्द्विहस्तमाना, धनुर्हस्तचतुष्टयप्रमाणं, गव्यूतं द्विधनुःसहस्रप्रमाणं, चत्वारि गव्यूतानि योजनम्, एतदपि वितस्त्यादिकमुच्छ्रयाङ्गुलापेक्षया प्रतिपत्तव्यं, 'ते ण'मित्यादि, 'ते' अनन्तरोदितस्वरूपा महोरगाः स्थलचरविशेषत्वात् स्थले जायन्ते स्थले च जाताः सन्तो जलेऽपि स्थल इव चरन्ति स्थलेऽपि चरन्ति, तथास्वाभाव्यात्, यद्येवं ते कस्मादिह न दृश्यन्ते? इत्याशङ्कायामाह—'ते नत्थि इहं' इत्यादि, 'ते' यथोदितस्वरूपा महोरगाः 'इह' मानुषक्षेत्रे 'नत्थि'त्ति न सन्ति, किन्तु बाह्येषु द्वीपसमुद्रेषु भवन्ति, समुद्रेष्वपि च पर्वतदेवनगर्यादिषु स्थलेषूत्पद्यन्ते न जलेषु, तत इह न दृश्यन्ते । 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये तथाप्रकारा अङ्गुलदशकादिशरीरावगाहमानास्तेऽपि महोरगा ज्ञातव्याः, उपसंहारमाह—'सेत्तं महोरगा, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये तथाप्रकाराः उक्तरूपाद्यादिरूपास्ते सर्वेऽपि उरःपरिसर्पस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्रष्टव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं शरीरादिद्वारकदम्बकं च जलचरवद्भावनीयं, नवरमवगाहना जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कर्षतो योजनपृथक्त्वं, स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रिपञ्चाशद्वर्षसहस्राणि, शेषं तथैव ॥ भुजपरिसर्पप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ के ते भुजपरिसर्पसंमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—भुजपरिसर्पसंमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, 'तह चेव भेओ भाणियव्वो' इति, यथा प्रज्ञापनायां तथैव भेदो वक्तव्यः, स चैवम्—"तंजहा—गोहा नउला सरडा सल्ला सरंठा सारा खारा घरोलिया विस्संभरा मुसा मंगुसा पयलाया छीरविरालिया जाहा चउप्पाइया" एते देशविशेषतो वेदितव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' उक्तप्रकारा गोधा-

दिस्वरूपास्ते सर्वे भुजपरिसर्पा अवसातव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि सूत्रकदम्बकं प्राग्वद्भावनीयं, नवरमवगाहना जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कर्षतो धनुःपृथक्त्वं, स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाचत्वारिंशद्वर्षसहस्राणि, शेषं जलचरवद्द्रष्टव्यम्, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि सुगमम् ॥ खचरप्रतिपादनार्थमाह—अथ के ते संमूर्च्छिमखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—संमूर्च्छिमखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'भेदो जहा पण्णवणाए' इति, भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स चैवम्—"चम्मपक्खी लोमपक्खी समुग्गपक्खी विततपक्खी । से किं तं चम्मपक्खी!, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—वग्गुली जलोया अडिला भारुंडपक्खी जीवंजीवा समुद्दवायसा कण्णत्तिया पक्खिविराली, जे यावण्णे तहप्पगारा, से त्तं चम्मपक्खी । से किं तं लोमपक्खी?, लोमपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—ढङ्का कंका कुरला वायसा चक्कवागा हंसा कलहंसा पोयहंसा रायहंसा अडा सेडीवडा वेलागया कोंचा सारसा मेसरा मयूरा सेयवगा गहरा पोंडरीया कामा कामेयगा वंजुलागा तित्तिरा वट्टगा लावगा कपोया कपिंजला पारेवया चिडगा वीसा कुक्कुडा सुगा वरहिगा मयणसलागा कोकिला सण्हावरण्णगमादी, से त्तं लोमपक्खी । से किं तं समुग्गपक्खी?, समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता, ते णं नत्थि इहं, बाहिरएसु दीवसमुद्देसु हवंति, से त्तं समुग्गपक्खी । से किं तं विततपक्खी ?, विततपक्खी एगागारा पण्णत्ता, ते णं नत्थि इहं, बाहिरएसु दीवसमुद्देसु भवंति, से त्तं विततपक्खी" इति पाठसिद्धं नवरं 'चम्मपक्खी' इत्यादि, चर्मरूपौ पक्षौ चर्मपक्षौ तौ विद्येते येषां ते चर्मपक्षिणः, लोमात्मकौ पक्षौ लोमपक्षौ तौ विद्येते येषां ते लोमपक्षिणः, तथा गच्छतामपि समुद्गवत्स्थितौ पक्षौ समुद्गकपक्षौ तद्वन्तः समुद्गकपक्षिणः, विततौ—नित्यमनाकुञ्चितौ पक्षौ विततपक्षौ तद्वन्तो विततपक्षिणः 'ते समासतो' इत्यादि सूत्रकदम्बकं जलचरवद्भावनीयं, नवरमवगाहना उत्क-

र्षतो धनुःपृथक्त्वं, स्थितिरुत्कर्षतो द्वासप्ततिवर्षसहस्राणि। तथा चात्र कचित्पुस्तकान्तरेऽवगाहनास्थित्योर्यथाक्रमं सङ्ग्रहणिगाथे—"जोयणसहस्सगाउयपुहुत्त तत्तो य जोयणपुहुत्तं। दोण्हंपि धणुपुहुत्तं संमुच्छिमवियगपक्खीणं ॥ १ ॥ संमुच्छ पुव्वकोडी चउरासीई भवे सहस्साइं। तेवण्णा बायाला बावत्तरिमेव पक्खीणं ॥ २ ॥" व्याख्या—संमूर्च्छिमानां जलचराणामुत्कृष्टाऽवगाहना योजनसहस्रं, चतुष्पदानां गव्यूतपृथक्त्वम्, उरःपरिसर्पाणां योजनपृथक्त्वं। 'दोण्हं तु'इत्यादि, द्वयानां संमूर्च्छिमभुजगपक्षिणां—संमूर्च्छिमभुजगपरिसर्पपक्षिरूपाणां प्रत्येकं धनुःपृथक्त्वं, तथा संमूर्च्छिमानां जलचराणामुत्कृष्टा स्थितिः पूर्वकोटी चतुष्पदानां चतुरशीतिर्वर्षसहस्राणि, उरःपरिसर्पाणां त्रिपञ्चाशद्वर्षसहस्राणि, भुजपरिसर्पाणां द्वाचत्वारिंशद्वर्षसहस्राणि, पक्षिणां द्वासप्ततिवर्षसहस्राणि, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिमखहयरपञ्चिंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ उक्ताः संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनयः, सम्प्रति गर्भव्युत्क्रान्तिकान् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाह—

से किं तं गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा ॥ (सू० ३७)

'से किं तं'मित्यादि, अथ के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः स्थलचराः खचराश्च। तत्र जलचरप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं जलयरा?, जलयरा पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—मच्छा कच्छभा मगरा गाहा सुंसुमारा,

सव्वेसिं भेदो भाणितव्वो तहेव जहा पण्णवणाए, जाव जे यावण्णे तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा—ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए, सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्ज० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं छव्विहसंघयणी पण्णत्ता, तंजहा—वइरोसभनारायसंघयणी उसभनारायसंघयणी नारायसंघयणी अद्धनारायसंघयणी कीलियासंघयणी सेवट्टसंघयणी, छव्विहा संठिता पण्णत्ता, तंजहा—समचउरंससंठिता णग्गोधपरिमंडल० साति० खुज्ज० वामण० हुंड०, कसाया सव्वे सण्णाओ ४ लेसाओ ६ पंच इंदिया पंच समुग्घाता आदिल्ला सण्णी नो असण्णी तिविधवेदा छप्पज्जत्तीओ छअपज्जत्तीओ दिट्ठी तिविधावि तिण्णि दंसणा णाणीवि अण्णाणीवि जे णाणी ते अत्थेगतिया दुणाणी अत्थेगतिया तिन्नाणी, जे दुन्नाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी य सुतणाणी य, जे तिन्नाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी सुत० ओहिणाणी, एवं अण्णाणीवि, जोगे तिविहे उवओगे दुविधे आहारो छद्दिसिं उववातो नेरइएहिं जाव अहे सत्तमा तिरिक्खजोणिएसु सव्वेसु असंखेज्जवासाउयवज्जेसु मणुस्सेसु अकम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउयवज्जेसु देवेसु जाव सहस्सारो, ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, दुविधावि मरंति, अणंतरं उव्वट्टित्ता नेरइएसु जाव अहे

सत्तमा तिरिक्खजोणिएसु मणुस्सेसु सव्वेसु देवेसु जाव सहस्सारो, चउगतिया चउआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं जलयरा ॥ (सू० ३८)

'भेदो भाणियव्वो तहेव जहा पण्णवणाए' इति भेदस्तथैव मत्स्यादीनां वक्तव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स च प्रागेवोपदर्शितः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं पाठसिद्धं, शरीरादिद्वारकदम्बकसूत्रं संमूर्च्छिमजलचरवद्भावनीयं, नवरमत्र शरीरद्वारे चत्वारि शरीराणि वक्तव्यानि, गर्भव्युत्क्रान्तिकानां तेषां वैक्रियस्यापि सम्भवात्, अवगाहनाद्वारे उत्कर्षतोऽवगाहना योजनसहस्रम् । संहननचिन्तायां षडपि संहननानि, तत्स्वरूपप्रतिपादकं चेदं गाथाद्वयम्—"वज्जरिसहनारायं पढमं बीयं च रिसहनारायं । नारायमद्धनाराय कीलिया तह य छेवट्ठं ॥ १ ॥ रिसहो य होइ पट्टो वज्जं पुण कीलिया मुणेयव्वा । उभयो मक्कडबंधो नारायं तं वियाणाहि ॥ २ ॥" संस्थानचिन्तायां षडपि संस्थानानि, तान्यमूनि—समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमण्डलं सादि वामनं कुब्जं हुण्डमिति, तत्र समाः—सामुद्रिकशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयः—चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा यत्र तत्समचतुरस्रं, समासान्तोऽत्प्रत्ययः, अत एवैतदन्यत्र तुल्यमिति व्यवह्रियते, तथा न्यग्रोधवत्परिमण्डलं यस्य, यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णप्रमाणोऽधस्तु हीनः तथा यत्संस्थानं नाभेरुपरि संपूर्णमधस्तु न तथा तन्न्यग्रोधपरिमण्डलम्, उपरि विस्तारबहुलमिति भावः, तथाऽऽदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, ततः सह आदिना—नाभेरधस्तनभागेन यथोक्तप्रमाणलक्षणेन वर्त्तत इति सादि, उत्सेधबहुलमिति भावः, इह यद्यपि

१ वज्रर्षभनाराचं प्रथमं द्वितीयं च ऋषभनाराचम् । नाराचमर्धनाराचं कीलिका तथा च सेवार्त्तम् ॥ १ ॥ ऋषभश्च भवति पट्टः वज्रं पुनः कीलिका ज्ञातव्या । उभयतो मर्कटबन्धो नाराचं तत् विजानीहि ॥ २ ॥

सर्वं शरीरेमादिना सह वर्त्तते तथाऽपि सादित्वविशेषणान्यथाऽनुपपत्त्या विशिष्ट एव प्रमाणलक्षणोपपन्न आदिरिह लभ्यते, तत उ-
क्तम्—उत्सेधबहुलमिति, इदमुक्तं भवति—यत्संस्थानं नाभेरधः प्रमाणोपपन्नमुपरि च हीनं तत्सादीति, अपरे तु साचीति पठन्ति, तत्र
साचीति प्रवचनवेदिनः शाल्मलीतरुमाचक्षते, ततः साचीव यत्संस्थानं, यथा शाल्मलीतरोः स्कन्धकाण्डमतिपुष्टमुपरि च न तदनु-
रूपा महाविशालता तद्वदस्यापि संस्थानस्याधोभागः परिपूर्णो भवति उपरितनभागस्तु नेति, तथा यत्र शिरोग्रीवं हस्तपादादिकं च
यथोक्तप्रमाणलक्षणोपेतं उरउदरादि च मण्डलं तत्कुब्जं संस्थानं, यत्र पुनरुदरादि प्रमाणलक्षणोपेतं हस्तपादादिकं च हीनं तद्वामनं,
यत्र सर्वेऽप्यवयवाः प्रमाणलक्षणपरिभ्रष्टास्तत् हुण्डम्, उक्तञ्च—"[1]समचउरंसे नग्गोहमंडले साई खुज्ज वामणए । हुंडेवि य संठाणे
जीवाणं छम्मुणेयव्वा ॥ १ ॥ तुल्लं वित्थडबहुलं उस्सेहबहुं च मडहकोट्ठं च । हेट्ठिल्लकायमडहं सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥ २ ॥" लेश्या-
द्वारे षडपि लेश्याः, शुक्ललेश्याया अपि सम्भवात्, समुद्घाताः पञ्च, वैक्रियसमुद्घातस्यापि सम्भवात्, सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनो नो अ-
सञ्ज्ञिनः, वेदद्वारे त्रिविधवेदा अपि, स्त्रीपुरुषयोर्वेदयोरप्यमीषां भावात्, पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयो, भाषामनःपर्याप्त्योरेकत्वेन वि-
वक्षणात्, अपर्याप्तिचिन्तायां पञ्चापर्याप्तयः, दृष्टिद्वारे त्रिविधदृष्टयोऽपि, तद्यथा—मिथ्यादृष्टयः सम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च,
दर्शनद्वारे त्रिविधदर्शना अपि, अवधिदर्शनस्यापि केषाञ्चिद्भावात्, ज्ञानद्वारे त्रिज्ञानिनोऽपि, अवधिज्ञानस्यापि केषाञ्चिद्भावात्, अ-
ज्ञानचिन्तायामज्ञानिनोऽपि, विभङ्गस्यापि केषाञ्चित्सम्भवात्, अवधिविभङ्गौ च सम्यग्मिथ्यादृष्टिभेदेन प्रतिपत्तव्यौ, उक्तञ्च—"स-

---

१ समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमण्डलं सादि कुब्जं वामनम् । हुण्डमपि च संस्थानं जीवाना षड् ज्ञातव्यानि ॥ १ ॥ तुल्यं वहुविस्तारं उत्सेधवहुलं च मडभकोष्ठं च ।
अधस्तनकायमडभं सर्वत्रासंस्थितं हुण्डम् ॥ २ ॥

म्यग्दृष्टेर्ज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्विपर्यासः” इति, उपपातद्वारे उपपातो नैरयिकेभ्यः सप्तपृथ्वीभाविभ्योऽपि, तिर्यग्योनिकेभ्योऽप्यसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यः सर्वेभ्योऽपि, मनुष्येभ्योऽकर्मभूमिजान्तरद्वीपजासङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जकर्मभूमिभ्यो, देवेभ्योऽपि यावत्सहस्रारात्, परतः प्रतिषेधः, स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्धृत्य सहस्रारात्परे ये देवास्तान् वर्जयित्वा शेषेषु सर्वेष्वपि जीवस्थानेषु गच्छन्ति, अत एव गत्यागतिद्वारे चतुरागतिकाश्चतुर्गतिकाः, ‘परीत्ताः’ प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—‘सेत्तं जलयरा गब्भवक्कंतियपञ्चिंदियतिरिक्खजोणिया’ ॥ सम्प्रति स्थलचरप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं थलयरा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पदा य परिसप्पा य। से किं तं चउप्पया?, २ चउव्विधा पण्णत्ता, तंजहा—एगक्खुरा सो चेव भेदो जाव जे यावन्ने तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, चत्तारि सरीरा ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्ज० उक्कोसेणं छ गाउयाइं, ठिती उक्कोसेणं तिन्नि पलिओमाइं नवरं उव्वट्टित्ता नेरइएसु चउत्थपुढविं गच्छंति, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया चउआगतिया परित्ता असंखिज्जा पण्णत्ता, से तं चउप्पया। से किं तं परिसप्पा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरपरिसप्पा य भुयगपरिसप्पा य, से किं तं उरपरिसप्पा?, २ तहेव आसालियवज्जो भेदो भाणियव्वो, (तिण्णि) सरीरा, ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखे० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, ठिती जहन्नेणं

अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी उव्वट्टित्ता नेरइएसु जाव पंचमं पुढविं ताव गच्छंति, तिरिक्खमणुस्सेसु सव्वेसु, देवेसु जाव सहस्सारा, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया चउआगइया परित्ता असंखेज्जा से तं उरपरिसप्पा। से किं तं भुयगपरिसप्पा?, २ भेदो तहेव, चत्तारि सरीरगा ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलासंखे० उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, सेसेसु ठाणेसु जहा उरपरिसप्पा, णवरं दोच्चं पुढविं गच्छंति, से तं भुयपरिसप्पा पण्णत्ता, से तं थलयरा॥ (सू० ३९)। से किं तं खहयरा?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—चम्मपक्खी तहेव भेदो, ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखे० उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो, सेसं जहा जलयराणं, नवरं जाव तच्चं पुढविं गच्छंति जाव से तं खहयरगब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया, से तं तिरिक्खजोणिया॥ (सू० ४०)

स्थलचरगर्भव्युत्क्रान्तिकानां भेदोपदर्शकं सूत्रं यथा संमूर्च्छिमस्थलचराणां, नवरमत्रासालिका न वक्तव्या, सा हि संमूर्च्छिमैव न गर्भव्युत्क्रान्तिका, तथा महोरगसूत्रे "जोयणसयंपि जोयणसयपुहुत्तियावि जोयणसहस्संपि" इत्येतदधिकं वक्तव्यं, शरीरादिद्वारकदम्बकसूत्रं तु सर्वत्रापि गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचराणामिव, नवरमवगाहनास्थित्युद्वर्त्तनासु नानात्वं, तत्र चतुष्पदानामुत्कृष्टाऽवगाहना षड् गव्यूतानि, स्थितिरुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, उद्वर्त्तना चतुर्थपृथिव्या आरभ्य यावत्सहस्रारः, एतेषु सर्वेष्वपि जीवस्थानेष्वनन्तरमुद्वृत्त्योत्पद्यन्ते, उरःपरिसर्पाणामुत्कृष्टावगाहना योजनसहस्रं, स्थितिरुत्कर्षतः पूर्वकोटी, उद्वर्त्तना पञ्चमपृथिव्या आरभ्य यावत्सह-

स्रारः, अत्रान्तरे सर्वेषु जीवस्थानेष्वनन्तरमुद्धृत्त्योत्पद्यन्ते । भुजपरिसर्पाणामुत्कृष्टाऽवगाहना गव्यूतपृथक्त्वं, स्थितिरुत्कर्षतः पूर्वकोटी, उद्वर्त्तनाचिन्तायां द्वितीयपृथिव्या आरभ्य यावत्सहस्रारः, अत्रान्तरे सर्वेषु जीवस्थानेषूत्पादः ॥ खचरगर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियभेदो यथा संमूर्च्छिमखचराणां, शरीरादिद्वारकलापचिन्तनं गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरवत्, नवरमवगाहनास्थित्युद्वर्त्तनासु नानात्वं, तत्रोत्कर्षतोऽवगाहना धनुष्पृथक्त्वं, जघन्यतः सर्वत्राप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा, स्थितिरपि जघन्यतः सर्वत्राप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽत्र पल्योपमासङ्ख्येयभागः, उद्वर्त्तना तृतीयपृथिव्या आरभ्य यावत्सहस्रारः, अत्रान्तरे सर्वेषु जीवस्थानेषूत्पादः, क्वचित्पुस्तकान्तरेऽवगाहनास्थित्योर्यथाक्रमं सङ्ग्रहणिगाथे—"जोयणसहस्स छग्गाउयाइं तत्तो य जोयणसहस्सं । गाउयपुहुत्त भुयगे धणुयपुहुत्तं च पक्खीसु ॥ १ ॥ गब्भंमि पुव्वकोडी तिन्नि य पलिओवमाइं परमाउं । उरभुयग पुव्वकोडी पलियअसंखेज्जभागो य ॥ २ ॥" अनयोर्व्याख्या—गर्भव्युत्क्रान्तिकानामेव जलचराणामुत्कृष्टावगाहना योजनसहस्रं, चतुष्पदानां षड् गव्यूतानि, उरःपरिसर्पाणां योजनसहस्रं, भुजपरिसर्पाणां गव्यूतपृथक्त्वं, पक्षिणां धनुष्पृथक्त्वं । तथा गर्भव्युत्क्रान्तिकानामेव जलचराणामुत्कृष्टा स्थितिः पूर्वकोटी, चतुष्पदानां त्रीणि पल्योपमानि, उरगाणां भुजगानां च पूर्वकोटी, पक्षिणां पल्योपमासङ्ख्येयभाग इति ॥ उत्पादविधिस्तु नरकेष्वस्माद्गाथाद्वयादवसेयः—"अस्सण्णी खलु पढमं दोच्चं च सरीसवा तइय पक्खी । सीहा जंति चउत्थि उरगा पुण पंचमिं पुढविं ॥ १ ॥ छट्ठिं च इत्थियाउ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं । एसो परमुववाओ बोद्धव्वो नरयपुढवीसु ॥ २ ॥" उक्ताः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः, सम्प्रति मनुष्यप्रतिपादनार्थमाह—

१ असंज्ञिन. खलु प्रथमां द्वितीयां च सरीसृपास्तृतीया पक्षिण । सिंहा यान्ति चतुर्थीमुरगा. पुन. पञ्चमीं पृथ्वीम् ॥ १ ॥ षष्ठीं च स्त्रिय मत्स्या मनुष्याश्च सप्तमीं पृथ्वीं यावत् । एष परम उत्पातो वोद्धव्यो नारकपृथ्वीषु ॥ २ ॥

से किं तं मणुस्सा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य॥ कहि णं भंते! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति?, गोयमा! अंतो मणुस्सखेत्ते जाव करेंति। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! तिन्नि सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, सेतं संमुच्छिममणुस्सा। से किं तं गब्भवक्कंतियमणुस्सा?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमया अकम्मभूमगा अंतरदीवजा, एवं माणुस्सभेदो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए तहा णिरवसेसं भाणियव्वं जाव छउमत्था य केवली य, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरा प०?, गोयमा! पंच सरीरया, तंजहा—ओरालिए जाव कम्मए। सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलअसंखेज्ज० उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं छच्चेव संघयणा छस्संठाणा। ते णं भंते! जीवा किं कोहकसाई जाव लोभकसाई अकसाई?, गोयमा! सव्वेवि। ते णं भंते! जीवा किं आहारसन्नोवउत्ता० लोभसन्नोवउत्ता नोसन्नोवउत्ता?, गोयमा! सव्वेवि। ते णं भंते! जीवा किं कण्हलेसा य जाव अलेसा?, गोयमा! सव्वेवि। सोइंदियोवउत्ता जाव नोइंदियोवउत्तावि, सव्वे समुग्घाता, तंजहा—वेयणासमुग्घाते जाव केवलिसमुग्घाए, सन्नीवि नोसन्नी असन्नीवि, इत्थिवेयावि जाव अवेदावि, पंच पज्जत्ती, तिविहावि दिट्ठी, चत्तारि दंसणा, णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते अत्थेगतिया दुणाणी

अत्थेगतिया तिणाणी अत्थेगइया चउणाणी अत्थेगतिया एगणाणी, जे दुण्णाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी य, जे तिणाणी ते आभिणियोहियणाणी सुतणाणी ओहिणाणी य, अहवा आभिणिबोहियणाणी सुयनाणी मणपज्जवणाणी य, जे चउणाणी ते णियमा आभिणिबोहियणाणी सुत० ओहि० मणपज्जवणाणी य, जे एगणाणी ते नियमा केवलनाणी, एवं अन्नाणीवि दुअन्नाणी तिअण्णाणी, मणजोगीवि वइकायजोगीवि अजोगीवि, दुविहउवओगे, आहारो छद्दिसिं, उववातो नेरइएहिं अहे सत्तमवज्जेहिं तिरिक्खजोणिएहिंतो, उववाओ असंखेज्जवासाउयवज्जेहिं मणुएहिं अकम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउयवज्जेहिं, देवेहिं सव्वेहिं, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, दुविधावि मरंति, उव्वट्टित्ता नेरइयादिसु जाव अणुत्तरोववाइएसु, अत्थेगतिया सिज्झंति जाव अंतं करेंति । ते णं भंते! जीवा कतिगतिया कइआगइया पण्णत्ता?, गोयमा! पंचगतिया चउआगतिया परित्ता संखिज्जा पण्णत्ता, सेत्तं मणुस्सा ॥ (सू० ४१)

अथ के ते मनुष्याः?, सूरिराह—मनुष्या द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—संमूर्च्छिममनुष्याश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याश्च, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ । तत्र संमूर्च्छिममनुष्यप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! संमूर्च्छिममनुष्याः संमूर्च्छन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'अंतो मणुस्सखेत्ते जाव करेंति' इति, अत्र यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठः—"अंतो मणुस्सखेत्ते पणयाली-

साए जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवेसु गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा कगयजीवकलेवरेसु वा थीपुरिससंजोगेसु वा नगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु, एत्थ णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्ताए ओगाहणाए असन्नी मिच्छादिट्ठी सव्वाहिं पज्जत्तीहिं अपज्जत्तगा अंतोमुहुत्ताउया चेव कालं करेंति " एतच्च निगदसिद्धम् ॥ सम्प्रति शरीरादिद्वारप्रतिपादनार्थमाह—**'तेसि णं भंते !'** शरीराणि त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, अवगाहना जघन्यत उत्कर्षतश्चाङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा, संहननसंस्थानकषायलेश्याद्वाराणि यथा द्वीन्द्रियाणां, इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियाणि, सञ्ज्ञिद्वारवेदद्वारे अपि द्वीन्द्रियवत्, पर्याप्तिद्वारेऽपर्याप्तयः पञ्च, दृष्टिदर्शनज्ञानयोगोपयोगद्वाराणि (यथा) पृथिवीकायिकानां, आहारो यथा द्वीन्द्रियाणां, उपपातो नैरयिकदेवतेजोवाय्वसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यः, स्थितिर्जघन्यत उत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणा, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टमधिकं वेदितव्यं, मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता अपि म्रियन्ते असमवहताश्च, अनन्तरमुद्वृत्य नैरयिकदेवासङ्ख्येयवर्षायुष्कवर्जेषु शेषेपु स्थानेषूत्पद्यन्ते, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकास्तिर्यग्मनुष्यगत्यपेक्षया, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—**'सेत्तं संमुच्छिममणुस्सा'**॥ उक्ताः संमूर्च्छिममनुष्याः, अधुना गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यानाह—अथ के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याः ?, सूरिराह—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमका अकर्मभूमका अन्तरद्वीपजाः, तत्र कर्म—कृषिवाणिज्यादि मोक्षानुष्ठानं वा कर्मप्रधाना भूमिर्येषां ते कर्मभूमाः आर्षत्वात्समासान्तोऽप्रत्ययः, कर्मभूमा एव कर्मभूमकाः, एवमकर्मा—यथोक्तकर्मविकला भूमिर्येषां तेऽ-

कर्मभूमास्त एवाकर्मभूमकाः, अन्तरशब्दो मध्यवाची, अन्तरे—लवणसमुद्रस्य मध्ये द्वीपा अन्तरद्वीपास्तद्गता अन्तरद्वीपगाः, **'एवं माणुस्सभेयो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए'** इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण मनुष्यभेदो भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स चातिबहुग्रन्थ इति तत एव परिभावनीयः, **'ते समासतो'** इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं पाठसिद्धं, शरीरादिद्वारकलापचिन्तायां शरीरद्वारे पञ्च शरीराणि, तद्यथा—औदारिकं वैक्रियमाहारकं तैजसं कार्मणं च, मनुष्येषु सर्वभावसम्भवात्, अवगाहनाद्वारे जघन्यतोऽवगाहना अङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतस्त्रीणि गव्यूतानि, संहननद्वारे षडपि संहननानि, संस्थानद्वारे षडपि संस्थानानि, कषायद्वारे क्रोधकषायिणोऽपि मानकषायिणोऽपि मायाकषायिणोऽपि लोभकषायिणोऽपि अकषायिणोऽपि, वीतरागमनुष्याणामकषायित्वात्, सञ्ज्ञाद्वारे आहारसञ्ज्ञोपयुक्ता भयसञ्ज्ञोपयुक्ता मैथुनसञ्ज्ञोपयुक्ता लोभसञ्ज्ञोपयुक्ताः, नोसंज्ञोपयुक्ताश्च निश्चयतो वीतरागमनुष्याः, व्यवहारतः सर्वे एव चारित्रिणो, लोकोत्तरचित्तलाभात्तस्य सञ्ज्ञादशकेनापि विप्रयुक्तत्वात्, उक्तञ्च—"निर्वाणसाधकं सर्वं, ज्ञेयं लोकोत्तराश्रयम्। सञ्ज्ञा लोकाश्रया सर्वाः, भवाङ्कुरजलं परम् ॥ १ ॥" लेश्याद्वारे कृष्णलेश्या नीललेश्याः कापोतलेश्यास्तेजोलेश्याः पद्मलेश्याः शुक्ललेश्या अलेश्याश्च, तत्रालेश्याः परमशुक्लध्यायिनोऽयोगिकेवलिनः। इन्द्रियद्वारे श्रोत्रेन्द्रियोपयुक्ता यावत्स्पर्शनेन्द्रियोपयुक्ता नोइन्द्रियोपयुक्ताश्च, तत्र नोइन्द्रियोपयुक्ताः केवलिनः, समुद्घातद्वारे सप्तापि समुद्घाताः, मनुष्येषु सर्वभावसम्भवात्, समुद्घातसङ्ग्राहिका चेमा गाथा—"वेयणकसायमरणंतिए य वेउव्विए य आहारे। केवलियसमुग्घाए सत्त समुग्घा इमे भणिया ॥ १ ॥" सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनोऽपि नोसञ्ज्ञिनोअसञ्ज्ञिनोऽपि, तत्र नोसञ्ज्ञिनोअसञ्ज्ञिनः केवलिनः। वेदद्वारे स्त्रीवेदा अपि पुरुषवेदा अपि नपुंसकवेदा

१ वेदनः कषाय मारणान्तिकश्च वैक्रयिकश्चाहारक। कैवलिकः समुद्घात. सप्त समुद्घाता इमे भणिता ॥ १ ॥

अपि अवेदाः—सूक्ष्मसम्परायादयः, पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, भाषामनःपर्याप्त्योरेकत्वेन विवक्षणात्, दृष्टिद्वारे त्रिविधदृष्टयः, तद्यथा—केचिन्मिथ्यादृष्टयः केचित्सम्यग्दृष्टयः केचित्सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, दर्शनद्वारे चतुर्विधदर्शनाः, तद्यथा—चक्षुर्दर्शना अचक्षुर्दर्शना अवधिदर्शनाः केवलदर्शनाः, ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च, तत्र मिथ्यादृष्टयोऽज्ञानिनः सम्यग्दृष्टयो ज्ञानिनः, 'नाणाणि पंच तिण्णि अण्णाणाणि भयणाते' इति, ज्ञानानि पञ्च मतिज्ञानादीनि, अज्ञानानि त्रीणि मत्यज्ञानादीनि, तानि भजनया वक्तव्यानि, सा च भजना एवम्—केचिद्द्विज्ञानिनः केचित्त्रिज्ञानिनः केचिच्चतुर्ज्ञानिनः केचिदेकज्ञानिनः, तत्र ये द्विज्ञानिनस्ते नियमादाभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च, ये त्रिज्ञानिनस्ते मतिज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, अथवाऽऽभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनश्च, अवधिज्ञानमन्तरेणापि मनःपर्यवज्ञानस्य सम्भवात्, **सिद्धप्राभृतादौ** तथाऽनेकशोऽभिधानात्, ये चतुर्ज्ञानिनस्ते आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनश्च, ये एकज्ञानिनस्ते केवलज्ञानिनः, केवलज्ञानसद्भावे शेषज्ञानापगमात्, "नट्ठंमि उ छाउमत्थिए नाणे"[1] इति वचनात्, ननु केवलज्ञानप्रादुर्भावे कथं शेषज्ञानापगमः?, यावता यानि शेषाणि मत्यादीनि ज्ञानानि स्वस्वावरणक्षयोपशमेन जायन्ते ततो निर्मूलस्वस्वावरणविलये तानि सुतरां भवेयुश्चारित्रपरिणामवत्, उक्तञ्च—"आवरणदेसविगमे जाइं विज्जंति मइसुयाईणि। आवरणसव्वविगमे कह ताइं न होंति जीवस्स? ॥ १ ॥"[2] उच्यते, इह यथा जात्यस्य मरकतादिमणेर्मलोपदिग्धस्य यावन्नाद्यापि समूलमलापगमस्तावद् यथा यथा देशतो मलविलयस्तथा तथा देशतोऽभिव्यक्तिरुपजायते, सा च क्वचित्कदाचित्कथञ्चिद्भवतीत्यनेकप्रकारा, तथाऽऽत्मनोऽपि सकलकालकलाकलापावलम्बिनिखिलपदार्थसार्थपरिच्छेदकरणैकपार-

---

१ नष्टे तु छाद्मस्थिके ज्ञाने. २ आवरणदेशविगमे यदि तानि भवन्ति मतिश्रुतादीनि। सर्वावरणविगमे कथं तानि न भवन्ति जीवस्य? ॥ १ ॥

मार्थिकस्वरूपस्याप्यावरणमलपटलतिरोहितस्य यावन्नाद्यापि निखिलकर्ममलापगमस्तावद् यथा यथा देशतः कर्ममलोच्छेदस्तथा तथा तस्य विज्ञप्तिरुज्जृम्भते, सा च कचित्कदाचित्कथञ्चिदनेकप्रकारा, उक्तञ्च—"मलविद्धमणेर्व्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारतः । कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथाऽनेकप्रकारतः ॥ १ ॥" सा चानेकप्रकारता मतिश्रुतादिभेदेनावसेया, ततो यथा मरकतादिमणेरशेषमलापगमसम्भवे समस्तास्पष्टदेशव्यक्तिव्यवच्छेदेन परिस्फुटरूपैकाभिव्यक्तिरुपजायते तद्वदात्मनोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रप्रभावतो निःशेषावरणप्रहाणावशेषदेशज्ञानव्यवच्छेदेनैकरूपाऽतिपरिस्फुटा सर्ववस्तुपर्यायप्रपञ्चसाक्षात्कारिणी विज्ञप्तिरुल्लसति, उक्तञ्च—"यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः । स्फुटैकरूपाऽभिव्यक्तिर्विज्ञप्तिस्तद्वदात्मनः ॥ १ ॥" इति, येऽज्ञानिनस्ते द्व्यज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनो वा, तत्र ये द्व्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, ये त्र्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च । योगद्वारे मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययोगिनोऽयोगिनश्च, तत्रायोगिनः शैलेशीमवस्थां प्रतिपन्नाः, उपयोगद्वारमाहारद्वारं च द्वीन्द्रियवत्, उपपात एतेष्वधःसप्तमनरकादिवर्जेभ्यः, उक्तञ्च—"[1]सत्तममहिनेरइया तेऊ वाऊ अणंतरुव्वट्टा । नवि पावे माणुस्सं तहेवऽसंखाउया सव्वे ॥ १ ॥" इति, स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, समुद्घातमधिकृत्य मरणचिन्तायां समवहता अपि म्रियन्ते असमवहता अपि, च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्वृत्य सर्वेषु नैरयिकेषु सर्वेषु च तिर्यग्योनिषु सर्वेषु मनुष्येषु सर्वेषु देवेष्वनुत्तरोपपातिकपर्यवसानेषु गच्छन्ति, '**अत्थेगइया सिज्झंति जाव अंतं करेंति**' इति, अस्तीति निपातोऽत्र बहुवचनार्थः, सन्त्येकका ये निष्ठितार्थाः भवन्ति यावत्करणात् "बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंती"ति द्रष्टव्यं, तत्राणिमाद्यैश्वर्याप्त्या तथाविधमनुष्यकृत्यापेक्षया निष्ठितार्था इति, अ-

१ सप्तममहीनैरयिका तेजस्कायिका वायुकायिका अनन्तरोद्वृत्ता । नैव प्राप्नुवन्ति मानुष्यं तथैवासंख्येयवर्षायुष्का. सर्वे ॥ १ ॥

सर्वविदोऽपि कैश्चित्सिद्धा इष्यन्ते ततो मा भूत्तेषु संप्रत्यय इति तदपोहायाह—'बुध्यन्ते' निरावरणत्वात्केवलाववोधेन समस्तं वस्तुजातम्, एते चासिद्धा अपि भवस्थकेवलिन एवंभूता वर्त्तन्ते तत्र मा भूदेतेष्वेव प्रतीतिरित्याह—'मुच्यन्ते' पुण्यापुण्यरूपेण कृच्छ्रेण कर्मणा, एतेऽपि चापरिनिर्वृत्ता एव परैरिष्यन्ते—'मुक्तिपदे प्राप्ता अपि तीर्थनिकारदर्शनादिहागच्छन्ती'ति वचनात्, ततो मा भूत्तद्गोचरा मन्दमतीनां धीरित्याह—'परिनिर्वान्ति' विध्यातसमस्तकर्महुतवहपरमाणवो भवन्तीति, किमुक्तं भवति?—सर्वदुःखानां शारीरमानसभेदानामन्तं—विनाशं कुर्वन्ति, अत एव गत्यागतिद्वारे चतुरागतिकाः पञ्चगतिकाः, सिद्धगतावपि गमनात्, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणः 'सङ्ख्येयाः' सङ्ख्येयकोटीप्रमाणत्वात् प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं मणुस्सा' ॥ अधुना देवानाह—

से किं तं देवा?, देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—भवणवासी वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया। से किं तं भवणवासी?, २ दसविधा पण्णत्ता, तंजहा—असुरा जाव थणिया, से तं भवणवासी। से किं तं वाणमंतरा?, २ देवभेदो सव्वो भाणियव्वो जाव ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तओ सरीरगा—वेउव्विए तेयए कम्मए। ओगाहणा दुविधा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जभागं उक्कोसेणं सत्त रयणीओ, उत्तरवेउव्विया जहन्नेणं अंगुलसंखेज्जति० उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं, सरीरगा छण्हं संघयणाणं असंघयणी णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारू नेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं संघायत्ताए परिणमंति, किंसंठिता?, गोयमा! दुविहा प-

पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्ञा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्ञा ते णं समचउरंससंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते णं नाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, चत्तारि कसाया चत्तारि सण्णा छ लेस्साओ पंच इंदिया पंच समुग्घाता सन्नीवि असन्नीवि इत्थियेदावि पुरिसवेदावि नो नपुंसगवेदा, पज्जत्ती अपज्जत्तीओ पंच, दिट्ठी तिन्नि तिण्णि दंसणा, णाणीवि अण्णाणीवि, जे नाणी ते नियमा तिण्णाणी अण्णाणी भयणाए, दुविहे उवओगे तिविहे जोगे आहारो णियमा छद्दिसिं, ओसन्नकारणं पडुच्च वण्णतो हालिद्दसुक्किल्लाइं जाव आहारमाहारेंति, उववातो तिरियमणुस्सेसु, ठिती जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, दुविधावि मरंति, उव्वट्टित्ता नो नेरइएसु गच्छंति तिरियमणुस्सेसु जहासंभवं, नो देवेसु गच्छंति, दुगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्ञा पण्णत्ता, से तं देवा, से तं पंचेंदिया, सेत्तं ओराला तसा पाणा ॥ (सू० ४२)

अथ के ते देवाः ?, सूरिराह—देवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवनवासिनो व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाश्च, 'एवं भेदो भाणियव्वो जहा पन्नवणाए' इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण भेदो भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स चैवम्—" से किं तं भवणवासी ?, भवणवासी दसविहा पन्नत्ता " इत्यादिरूपस्तत एव सव्याख्यानः परिभावनीयः, ' ते समासतो दुविहा पण्णत्ता—पज्जत्तगा य

अपजत्तगा य' एषामपर्याप्तत्वमुत्पत्तिकाल एव द्रष्टव्यं न त्वपर्याप्तिनामकर्मोदयतः, उक्तञ्च—"नारयदेवा तिरियमणुयगब्भजा जे असंखवासाऊ। एए उ अपजत्ता उववाए चेव बोद्धव्वा ॥ १॥" इति, शरीरादिद्वारचिन्तायां शरीरद्वारे त्रीणि शरीराणि वैक्रियं तैजसं कार्मणं च, अवगाहना भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतः सप्तहस्तप्रमाणा, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कर्षतो योजनशतसहस्रं, संहननद्वारे षण्णां संहनननामन्यतमेनापि संहननेनासंहननिनः, कुतः? इत्याह—'नेवट्ठी' इत्यादि, यतो नैव तेषां देवानां शरीरेष्वस्थीनि नैव शिरा नापि स्नायूनि संहननं चास्थिनिचयात्मकमतोऽस्थ्यादीनामभावात्संहननाभावः, किन्तु 'जे पोग्गला' इत्यादि, ये पुद्गला इष्टाः—मनस इच्छामापन्नाः, तत्र किञ्चिदकान्तमपि केषाञ्चिदिष्टं भवति तत आह—'कान्ताः' कमनीयाः शुभवर्णोपेतत्वात्, यावत्करणात् 'पिया मणुन्ना मणामा' इति द्रष्टव्यं, तत्र यत एव कान्ता अत एव प्रियाः—सदैवात्मनि प्रियबुद्धिमुत्पादयन्ति, तथा 'शुभाः' शुभरसगन्धस्पर्शात्मकत्वात् 'मनोज्ञाः' विपाकेऽपि सुखजनकतया मनःप्रह्लादहेतुत्वात् 'मनआपाः' सदैव भोज्यतया जन्तूनां मनांसि आप्नुवन्ति, इत्थम्भूताः पुद्गलास्तेषां शरीरसङ्घाताय परिणमन्ति। संस्थानद्वारे भवधारणीया तनुः सर्वेषामपि समचतुरस्रसंस्थाना उत्तरवैक्रिया नानासंस्थानसंस्थिता, तस्या इच्छावशतः प्रादुर्भावात्, कषायाश्चत्वारः, सञ्ज्ञाश्चतस्रो, लेश्याः षड्, इन्द्रियाणि पञ्च, समुद्घाताः पञ्च, वेदनाकषायमारणान्तिकवैक्रियतैजससमुद्घातसम्भवात्। सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनोऽपि असञ्ज्ञिनोऽपि, ते च नैरयिकवद्भावनीयाः, वेदद्वारे स्त्रीवेदा अपि पुरुषवेदा अपि नो नपुंसकवेदाः, पर्याप्तिद्वारं दृष्टिद्वारं दर्शनद्वारं च नैरयिकवत्। ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि चेति विकल्पोऽसञ्ज्ञिमध्यः, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्त्रिज्ञा-

१ नारका देवाः तिर्यङ्मनुजा गर्भव्युत्क्रान्ता येऽसङ्ख्येयवर्षायुष्काः। एते तु अपर्याप्ता उपपात एव बोद्धव्याः ॥ १ ॥

निनः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, तत्र येऽज्ञानिनस्ते सन्त्येकका ये द्व्यज्ञानिनः सन्त्येकका ये त्र्यज्ञानिनः, तत्र ये द्व्यज्ञानिनस्ते नियमान्मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, ये त्र्यज्ञानिनस्ते नियमान्मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, अयं च द्व्यज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनो वेति विकल्पः असञ्ज्ञिमध्याद् ये उत्पद्यन्ते तान् प्रति द्रष्टव्यः, स च नैरयिकवद्भावनीयः । उपयोगाहारद्वाराणि नैरयिकवत्, उपपातः सञ्ज्यसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्गर्भजमनुष्येभ्यो न शेषेभ्यः । स्थितिर्जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, समुद्घातमधिकृत्य मरणचिन्तायां समवहता अपि म्रियन्तेऽसमवहता अपि । च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्वृत्य पृथिव्यम्बुवनस्पतिकायिकगर्भव्युत्क्रान्तिकसङ्ख्यातवर्षायुष्कतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्येषु गच्छन्ति न शेषजीवस्थानेषु, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकाः, तिर्यग्मनुष्यगत्यपेक्षया, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं देवा,' सर्वोपसंहारमाह—'सेत्तं पंचेंदिया, सेत्तं ओराला तसा पाणा' सुगमम् ॥ सम्प्रति स्थावरभावस्य त्रसभावस्य च भवस्थितिकालमानप्रतिपादनार्थमाह—

थावरस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता॥ तसस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। थावरे णं भंते! थावरत्ति कालतो केवचिरं होति?, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंताओ उस्सप्पिणिओ (अवसप्पिणीओ) कालतो खेत्ततो अणंता लोया असंखेज्जा पुग्गलपरियट्टा, ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असं-

खेज्जतिभागो ॥ तसे णं भंते! तसत्ति कालतो केवचिरं होति?, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ (अवसप्पिणीओ) कालतो खेत्ततो असंखेज्जा लोगा॥ थावरस्स णं भंते! केवतिकालं अंतरं होति?, जहा तससंचिट्ठणाए॥ तसस्स णं भंते! केवतिकालं अंतरं होति?, अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सतिकाले॥ एएसि णं भंते! तसाणं थावराण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा तसा थावरा अणंतगुणा, सेतं दुविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥ दुविहपडिवत्ती समत्ता (सू०४३)

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, एतच्च पृथिवीकायमधिकृत्यावसातव्यम्, अन्यस्य स्थावरकायस्योत्कर्षत एतावत्या भवस्थितेरभावात्॥ त्रसकायस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, एतच्च देवनारकापेक्षया द्रष्टव्यम्, अन्यस्य त्रसकायस्योत्कर्षत एतावत्प्रमाणाया भवस्थितेरसम्भवात्॥ सम्प्रत्येतयोरेव कायस्थितिकालमानमाह—स्थावरे 'णम्' इति वाक्यालङ्कारे 'स्थावर इति' स्थावर इत्यनेन रूपेण स्थावरत्वेनेति भावः, कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, तमेवानन्तं कालं कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति—अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽनन्ता लोकाः, किमुक्तं भवति?—अनन्तलोकेषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तेषां प्रतिसमयमेकैकापहारेण यावत्योऽनन्ता अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यो भवन्ति तावत्य इति, एतासामेव पुद्गलपरावर्त्ततो मानमाह—असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, असङ्ख्येयेषु पुद्गलपरावर्त्तेषु क्षेत्रत इति पदसांनिध्यात्क्षेत्रपुद्गलपरा-

वर्त्तेपु यावत्यः संभवन्ति अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यस्तावत्य इति भावः, इहासङ्ख्येयमसङ्ख्येयभेदात्मकमतः पुद्गलपरावर्त्तगतमसङ्ख्येयत्वं निर्द्धारयति—'ते ण'मित्यादि, ते णमिति वाक्यालङ्कारे पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, आवलिकाया असङ्ख्येयतमे भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणा इत्यर्थः, एतच्च वनस्पतिकायस्थितिमङ्गीकृत्य वेदितव्यं, न पृथिव्यम्बुकायस्थितिव्यपेक्षया, तयोः कायस्थितेरुत्कर्षतोऽप्यसङ्ख्येयोत्सर्पिणीप्रमाणत्वात्, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायाम्—"पुढविकाइए णं भंते! पुढविक्काइयत्ति कालओ केवचिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तमुक्कोसेणं असंखिज्जं कालं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणिअवसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखिज्जा लोगा, एवं आउक्काएवि" इति, या तु वनस्पतिकायस्थितिः सा यथोक्तप्रमाणा तत्रोक्ता "वणस्सइकाइए णं भंते! वणस्सइकायत्ति कालओ कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खित्तओ अणंता लोगा असंखिज्जा पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखिज्जइभागो" इति । एषोऽपि च वनस्पतिकायस्थितिकालः सांव्यवहारिकजीवानधिकृत्य प्रोच्यते, असांव्यवहारिकजीवानां तु कायस्थितिरनादिरवसेया, तथा चोक्तं विशेषणवत्याम्—"[1]अत्थि अणंता जीवा जेहिं न पत्तो तसाइपरिणामो । तेवि अणंताणंता निगोयवासं अणुवसंति ॥ १ ॥" साऽपि तेषामसांव्यवहारिकजीवानामनादिः कायस्थितिः केषाञ्चिदनादिरपर्यवसाना, ये न जातुचिदसांव्यवहारिकराशेरुद्धृत्य सांव्यवहारिकराशौ निपतिष्यन्ति, केषाञ्चिदनादिः सपर्यवसाना, ये असांव्यवहारिकराशेरुद्धृत्य सांव्यवहारिकराशौ निपतिष्यन्ति । अथ किमसांव्यवहारिकराशेर्विनिर्गत्य सांव्यवहारिकराशावागच्छन्ति? येनैवं प्ररूपणा क्रियते, उच्यते, आगच्छन्ति, कथमवसीयते? इति चेदुच्यते—पूर्वाचार्योपदेशात्,

---

१ सन्त्यनन्ता जीवा यैर्न प्राप्तस्त्रसादिपरिणामः । तेऽप्यनन्तानन्ता निगोदवासमनुवसन्ति ॥ १ ॥

तथा चाह दुःषमान्धकारनिमग्नजनप्रवचनप्रदीपो भगवान् **जिनभद्रगणिः** क्षमाश्रमणो **विशेषणवत्याम्**—"सिज्झंति जत्तिया किर इह संववहारजीवरासिमज्झाओ। इंति अणाइवणस्सइरासीओ तत्तिया तंमि ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन। सम्प्रति त्रसकायस्य कायस्थितिमानमाह—'**तसे णं भंते**'इत्यादि, तसे'ण'मिति पूर्ववत् 'त्रस इति' त्रस इत्यनेन पर्यायेण कालतः 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालम्, एनमेवासङ्ख्येयं कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति—'**असंखिज्जाओ**'इत्यादि, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोका असङ्ख्येयेषु लोकेषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तेषां प्रतिसमयमेकैकापहारे यावत्योऽसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो भवन्ति तावत्य इति भावः, इयं चैतावती कायस्थितिर्गतित्रसं तेजस्कायिकं वायुकायिकं चाधिकृत्यावसेया न तु लब्धित्रसं, लब्धित्रसस्य कायस्थितेरुत्कर्षतोऽपि कतिपयवर्षाधिकसागरोपमसहस्रद्वयप्रमाणत्वात्, तथा चोक्तं **प्रज्ञापनायाम्**—"तसकाए णं भंते! तसकायत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं" तथा "तेउक्काइए णं भंते! तेउक्काइएत्ति कालतो केवच्चिरं होति?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा, एवं वाउक्काइयावि" इति॥ सम्प्रति स्थावरत्वस्यान्तरं विचिन्तयिषुराह—'**थावरस्स णं भंते! अंतर**'मित्यादि सुगमं नवरमसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, इत्येतावत्प्रमाणमन्तरं तेजस्कायिकवायुकायिकमध्यगमनेनावसातव्यम्, अन्यत्र गतावेतावत्प्रमाणस्यान्तरस्यासम्भवात्॥ '**तसस्स णं भंते! अंतर**'मित्यादि सुगमं नवरम् 'उक्कोसेणं वणस्सइकालो' इति, उत्कर्षतो वनस्पतिकालो वक्तव्यः, स चै-

---

१ सिध्यन्ति यावन्तः किलेह सव्यवहारराशिमध्यात्। आयान्ति अनादिवनस्पतिराशेः तावन्तस्तस्मिन् ॥ १ ॥

वम्—“उक्कोसेणं अणंतमणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो” इति, एतावत्प्रमाणं चान्तरं वनस्पतिकायमध्यगमनेन प्रतिपत्तव्यम्, अन्यत्र गतावेतावतोऽन्तरस्यालभ्यमानत्वात् ॥ सम्प्रत्यल्पबहुत्वमाह—एतेषां भदन्त! जीवानां त्रसानां स्थावराणां च मध्ये कतरे कतमेभ्योऽल्पा वा बहवो वा कतरे कतरैस्तुल्या वा?, अत्र सूत्रे विभक्तिपरिणामेन तृतीया व्याख्येया, तथा कतरे कतरेभ्यो (ऽल्पा बहुकास्तुल्या) विशेषाधिका वा?, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकास्त्रसाः, असङ्ख्यातत्वमात्रप्रमाणत्वात्, स्थावरा अनन्तगुणाः, अजघन्योत्कृष्टानन्तानन्तसङ्ख्यापरिमाणत्वात्, उपसंहारमाह—‘सेत्तं दुविहा संसारसमावन्ना जीवा’ इति ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाजीवाभिगमटीकायां द्विविधा प्रतिपत्तिः समाप्ता ॥

१ प्रतिपत्तौ
त्रसादेः-
स्थित्यादि
सू० ४३

अथ त्रिविधाख्या द्वितीया प्रतिपत्तिः

तदेवमुक्ता द्विविधा प्रतिपत्तिः, सम्प्रति त्रिविधा प्रतिपत्तिरारभ्यते, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

तत्थ जे ते एवमाहंसु तिविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—इत्थि पुरिसा णपुंसका ॥ (सू० ४४)। से किं तं इत्थीओ ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—तिरिक्खजोणियाओ मणुस्सित्थीओ देवित्थीओ। से किं तं तिरिक्खजोणिणित्थीओ ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—जलयरीओ थलयरीओ, खहयरीओ। से किं तं जलयरीओ ?, २ पंचविधाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—मच्छीओ जाव सुंसुमारीओ। से किं तं थलयरीओ ?, २ दुविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पदीओ य परिसप्पीओ य। से किं तं चउप्पदीओ ?, २ चउव्विधाओ पण्णत्ता, तंजहा—एगखुरीओ जाव सणप्फईओ। से किं तं परिसप्पीओ ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरपरिसप्पीओ य भुजपरिसप्पीओ य। से किं तं उरगपरिसप्पीओ ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—अहीओ अहिगरीओ महोरगाओ, सेत्तं उरपरिसप्पीओ। से किं तं भुयपरिसप्पीओ ?, २ अणेगविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—सेरडीओ सेरंधीओ गोहीओ णउलीओ सेधाओ

सण्णाओ सरडीओ सेरंधीओ भावाओ खाराओ पञ्चणाइयाओ चउप्पइयाओ मूसियाओ मुगुसिओ घरोलियाओ गोव्हियाओ, जोव्हियाओ थिरचिरालियाओ, सेत्तं भुयगपरिसप्पीओ। से किं तं खहयरीओ?, २ चउव्विधाओ पण्णत्ता, तंजहा—चम्मपक्खीओ, जाव सेत्तं खहयरीओ, सेत्तं तिरिक्खजोणिओ॥ से किं तं मणुस्सिओ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमियाओ अकम्मभूमियाओ अंतरदीवियाओ। से किं तं अंतरदीवियाओ ?, २ अट्ठावीसतिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—एगूरूइयाओ आभासियाओ जाव सुद्धदंतीओ, सेत्तं अंतरदी०॥ से किं तं अकम्मभूमियाओ ?, २ तीसविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—पंचसु हेमवएसु पंचसु एरण्णवएसु पंचसु हरिवंसेसु पंचसु रम्मगवासेसु पंचसु देवकुरासु पंचसु उत्तरकुरासु, सेत्तं अकम्मा०। से किं तं कम्मभूमिया ?, २ पण्णरसविधाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—पंचसु भरहेसु पंचसु एरवएसु पंचसु महाविदेहेसु, सेत्तं कम्मभूमगमणुस्सीओ, सेत्तं मणुस्सित्थीओ॥ से किं तं देवित्थियाओ ?, २ चउव्विधा पण्णत्ता, तंजहा—भवणवासिदेवित्थियाओ वाणमंतरदेवित्थियाओ जोतिसियदेवित्थियाओ वेमाणियदेवित्थियाओ। से किं तं भवणवासिदेवित्थियाओ ?, २ दसविहा पण्णत्ता, तंजहा—असुरकुमारभवणवासिदेवित्थियाओ जाव थणितकुमारभवणवासिदेवित्थियाओ, से तं भवणवासिदेवित्थियाओ। से किं तं वाणमंतरदेवित्थियाओ ?, २ अट्ठ-

२ प्रतिपत्तौ
जीवाभिभेदाः
सू० ४४
स्त्रीभेदाः
सू० ४५

विधाओ पण्णत्ता, तंजहा—पिसायवाणमंतरदेवित्थियाओ जाव से तं वाणमंतरदेवित्थियाओ। से किं तं जोतिसियदेवित्थियाओ?, २ पंचविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—चंदविमाणजोतिसियदेवित्थियाओ सूर०गह०नक्खत्त०ताराविमाणजोतिसियदेवित्थियाओ, से त्तं जोतिसियाओ। से किं तं वेमाणियदेवित्थियाओ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सोहम्मकप्पवेमाणियदेवित्थियाओ ईसाणकप्पवेमाणियदेवित्थियाओ, सेत्तं वेमाणित्थीओ ॥ (सू० ४५)

'तत्र' तेषु नवसु प्रतिपत्तिषु मध्ये ये आचार्या एवमाख्यातवन्तः—त्रिविधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्तास्त एवमाख्यातवन्तः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकानि, इह स्त्र्यादिवेदोदयाद् योन्यादिसङ्गताः स्त्र्यादयो गृह्यन्ते, तथा चोक्तम्—"योनिर्मृदुत्वमस्थैर्यं, मुग्धताऽऽबलता स्तनौ। पुंस्कामितेति लिङ्गानि, सप्त स्त्रीत्वे प्रचक्षते ॥ १ ॥ मेहनं खरता दार्ढ्यं, शौण्डीर्यं श्मश्रु धृष्टता । स्त्रीकामितेति लिङ्गानि, सप्त पुंस्त्वे प्रचक्षते ॥ २ ॥ स्तनादिश्मश्रुकेशादिभावाभावसमन्वितम् । नपुंसकं बुधाः प्राहुर्मोहानलसुदीपितम् ॥ ३ ॥" तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति स्त्रीवक्तव्यतामाह—'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ताः स्त्रियः?, सूरिराह—स्त्रियस्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तिर्यग्योनिस्त्रियो मनुष्यस्त्रियो देवस्त्रियश्च । 'से किं त'मित्यादि, तिर्यग्योनिस्त्रियस्त्रिविधाः, तद्यथा—जलचर्यः स्थलचर्यः खचर्यश्च । 'से किं त'मित्यादि । मनुष्यस्त्रियोऽपि त्रिविधास्तद्यथा—कर्मभूमिका अकर्मभूमिका अन्तरद्वीपिकाश्च । 'से किं त'मित्यादि, देवस्त्रियश्चतुर्विधास्तद्यथा—भवनवासिन्यो व्यन्तर्यो ज्योतिष्क्यो वैमानिक्यश्च ॥ सम्प्रति स्त्रिया भवस्थितिमानप्रतिपादनार्थमाह—

इत्थी णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा ! एगेणं आएसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं

उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं एक्केणं आदेसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं एगेणं आदेसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं एगेणं आदेसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पन्नासं पलिओवमाइं ॥ (सू० ४६)

'इत्थी णं भंते' इत्यादि, स्त्रिया भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! 'एकेनादेशेन' आदेशशब्द इह प्रकारवाची "आदेसो त्ति पगारो" इति वचनात्, एकेन प्रकारेण, एकं प्रकारमधिकृत्येति भावार्थः, जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, एतत्तिर्यग्मनुष्यस्त्र्यपेक्षया द्रष्टव्यम्, अन्यत्रैतावतो जघन्यस्यासम्भवात्, उत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतदीशानकल्पापरिगृहीतदेव्यपेक्षम्। तथैकेनादेशेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम् एतत्तथैवोत्कर्षतो नव पल्योपमानि, एतदीशानकल्प एव परिगृहीतदेव्यपेक्षम्। तथा एकेनादेशेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, एतत्प्राग्वत्, उत्कर्षतः सप्त पल्योपमानि, एतत्सौधर्मकल्पे परिगृहीतदेवीरधिकृत्य। तथा एकेनादेशेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पञ्चाशत्पल्योपमानि, एतत्सौधर्मकल्प एवापरिगृहीतदेव्यपेक्षम्, उक्तञ्च सङ्ग्रहण्याम्—"[1]सपरिग्गहेयराणं सोहम्मीसाण पलियसाहीयं। उक्कोस सत्त पन्ना नव पणपन्ना य देवीणं ॥ १ ॥" तदेवं सामान्यतः स्त्रीणां जघन्यत उत्कर्षतश्च स्थितिमानमुक्तं, सम्प्रति तिर्यक्स्त्र्यादिभेदानधिकृत्याह—

तिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गो० जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं। जलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं

[1] परिगृहीतेतराणां सौधर्मेशानानां पल्योपमं साधिकम्। उत्कृष्टतः सप्त पञ्चाशत् नव पञ्चपञ्चाशत् पल्योपमानि देवीनाम् ॥ १ ॥

अंतो० उक्को० पुव्वकोडी। चउप्पद्थलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गो० जहा तिरिक्खजोणित्थीओ। उरगपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसं पुव्वकोडी। एवं भुयपरिसप्प०। एवं खहयरतिरिक्खित्थीणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो॥ मणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। कम्मभूमयमणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खित्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। भरहेरवयकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं, धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमु० उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतो० उक्कोसेणं पुव्वकोडी, धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागऊणगं उक्को-

सेणं तिन्नि पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी । हेमवएरण्णवए जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं पलिओवमं संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी । हरिवासरम्मयवासअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणयाइं उक्को० दो पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी । देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणयाइं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहु० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी । अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतिकालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणयं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमु० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी ॥ देवित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं । भवणवासिदेवित्थीणं भंते!, जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं । एवं असुरकु-

मारभवणवासिदेवित्थियाए, नागकुमारभवणवासिदेवित्थियाएवि जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणाइं पलिओवमाइं, एवं सेसाणवि जाव थणियकुमाराणं। वाणमंतरीणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसं अद्धपलिओवमं। जोइसियदेवित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अट्ठभागं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, चंदविमाणजोतिसियदेवित्थियाए जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं तं चेव, सूरविमाणजोतिसियदेवित्थियाए जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिमब्भहियं, गहविमाणजोतिसियदेवित्थीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं, णक्खत्तविमाणजोतिसियदेवित्थीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं साइरेगं, ताराविमाणजोतिसियदेवित्थियाए जहन्नेणं अट्ठभागं पलिओवमं उक्को० सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं। वेमाणियदेवित्थियाए जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं, सोहम्मकप्पवेमाणियदेवित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती प०?, जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं, ईसाणदेवित्थीणं जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं ॥ (सू० ४७)

'तिरिक्खजोणिइत्थियाणं भंते!' इत्यादि, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, देवकुर्वादिषु चतुष्पदस्त्रीरधिकृत्य, जलचरस्त्री-

णामुत्कर्षतः पूर्वकोटी, स्थलचरस्त्रीणां यथा औघिकी, त्रीणि पल्योपमानीत्यर्थः । खचरीणामुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, मनुष्यस्त्रीषु क्षेत्रं प्रतीत्य—क्षेत्राश्रयणेनेतिभावः, जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देवकुर्वादिषु भरतादिष्वपि एकान्तसुषमादिकाले त्रीणि पल्योपमानि, 'धर्मचरणं' चरणधर्मसेवनं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, एतच्च तद्भवस्थितताया एव परिणामवशतः प्रतिपातापेक्षया द्रष्टव्यं, चरणधर्मस्य मरणमन्तरेण सर्वस्तोकतयाऽप्येतावन्मात्रकालावस्थानभावात्, तथाहि—काचित्स्त्री तथाविधक्षयोपशमभावतः सर्वविरतिं प्रतिपन्ना तावन्मात्रक्षयोपशमभावादन्तर्मुहूर्त्तानन्तरं भूयोऽपि अविरतसम्यग्दृष्टित्वं मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्यते इति, अथवा धर्मचरणमिह देशचरणं प्रतिपत्तव्यं न सर्वचरणं, देशचरणप्रतिपत्तिस्तु जघन्यतोऽप्यान्तर्मुहूर्तिकी, तस्या भङ्गबहुलत्वात्, अथोभयचरणसम्भवे किमर्थमिह देशचरणं परिगृह्यते ?, उच्यते, देशचरणपूर्वकं प्रायः सर्वचरणमिति ख्यापनार्थम्, अत एवोक्तं वृद्धैः—"सम्मत्तंमि उ लद्धे पलियपुहुत्तेण सावओ होइ। चरणोवसमखयाणं सागरसंखंतरा होंति ॥ १ ॥" एवं "अप्परिवडिए" इत्यादि, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अष्टसांवत्सरिकस्याष्टवर्षप्रमाणस्योर्ध्वं चरमान्तर्मुहूर्त्तं यावदप्रतिपतितपरिणामभावात्, पूर्वपरिमाणं चेदम्—"पुव्वस्स उ परिमाणं सयरिं खलु होंति कोडिलक्खाओ । छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वासकोडीणं ॥ १ ॥ (७०५६०००००००००) सम्प्रति कर्मभूमिकादिविशेषस्त्रीणां वक्तव्यतामाह—अक्षरगमनिका सुगमा, भावार्थस्त्वयम्—कर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीणां क्षेत्रं कर्मभूमिकासामान्यभवनमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च भरतैरावतेषु सुषमसुषमालक्षणेऽरके वेदितव्यानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना चात्र प्रागिव द्रष्टव्या, एवमुत्तरसूत्रद्वयेऽपि ॥ अत्रैव विशे-

१ सम्यक्त्वे तु लब्धे पल्योपमपृथक्त्वेन श्रावको भवति । चारित्रमोहोपशमक्षयाणां सागराः संख्याता अन्तरं भवति ॥ १ ॥

षचिन्तां चिकीर्षुराह–सुगमं, नवरं भरतैरावतेषु त्रीणि पल्योपमानि सुषमसुषमायां, पूर्वविदेहेषु क्षेत्रतः पूर्वकोटी, तत ऊर्ध्वं तत्र तथा-
क्षेत्रस्वाभाव्यादायुषोऽसम्भवात्, अकम्मभूमिगेत्यादि, जन्म प्रतीत्येति–अकर्मभूमिषूत्पत्तिमाश्रित्य जघन्यतो देशोनं पल्योपमं, तच्चा-
ष्टभागाद्यूनमपि देशोनं भवति ततो विशेषस्थापनायाह–पल्योपमस्यासङ्ख्येयभागेनोनं, एतच्च हैमवतहैरण्यवतक्षेत्रापेक्षया द्रष्टव्यं, तत्र
जघन्यतः स्थितेरेतावत्प्रमाणायाः सम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च देवकुरूत्तरकुर्वपेक्षया, 'संहरणं पडुच्चे'त्यादि, संह-
रणं नाम कर्मभूमिजायाः स्त्रियोऽकर्मभूमिषु नयनं 'तत्प्रतीत्य' तदाश्रित्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, इयमत्र भावना
–इह कर्मभूमिकाऽप्यकर्मभूमिषु संहृता अकर्मभूमिकेति व्यवह्रियते, तत्क्षेत्रसम्बन्धभावात्, यथा लोके कश्चिन्मगधादिदेशात्सुरा-
ष्ट्रान् प्रति प्रस्थितो गिरिनगरेषु निवासं कल्पयितुकामः सुराष्ट्रपर्यन्तग्रामप्राप्तः सन् समुत्पद्यमानेषु तथाविधेषु प्रयोजनेषु सौराष्ट्र इति
व्यवह्रियते, तद्वदधिकृताऽपि, तत्र च संहृता सती काचिदन्तर्मुहूर्त्तं जीवति ततोऽपि वा भूयोऽपि संह्रियते काचित्पूर्वकोट्यायुष्का
यावज्जीवमपि तत्रावतिष्ठते ततो जघन्यतोऽन्तर्मूहूर्त्तमुक्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति, आह–भरतैरावतान्यपि कर्मभूमौ वर्त्तन्ते तत्र
चैकान्तसुषमादौ त्रीण्यपि पल्योपमानि स्थितिरस्या भवति संहरणं च संभवति तत्कथं देशोना पूर्वकोटी भण्यते? इति, अत्रोच्यते,
कर्मकालविवक्षयाऽभिधानात्, तस्य चैतावन्मात्रत्वादिति। हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीणां जन्मतो जघन्येन देशोनं पल्योपमं
पल्योपमासङ्ख्येयभागेन न्यूनमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना
प्राग्वि ॥ एवं 'हरिवासरम्मए' इत्याद्यपि सूत्रत्रयं भावनीयं, नवरं हरिवर्षरम्यकयोर्जन्मतो जघन्येन द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येय-
भागन्यूने उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे। देवकुरूत्तरकुरुषु जन्मतो जघन्येन त्रीणि पल्योपमानि पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनानि उ-

त्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, अन्तरद्वीपेषु जन्मतो जघन्येन देशोनः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, कियता देशेनोनः पल्योपमासङ्ख्येयभाग? इति चेदत आह—पल्योपमासङ्ख्येयभागेनोनः, किमुक्तं भवति?—उत्कृष्टपल्योपमासङ्ख्येयभागप्रमाणादायुषो जघन्यमायुः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं, नवरमूनताहेतुः पल्योपमासङ्ख्येयो भागोऽतीव स्तोको द्रष्टव्यः, संहरणमधिकृत्य सर्वत्रापि जघन्यत उत्कर्षतश्च तावदेव प्रमाणम् ॥ सम्प्रति देवस्त्रीवक्तव्यतामाह—अक्षरगमनिका सुगमा तात्पर्यमात्रमुच्यते—देवस्त्रीणां सामान्यतो जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि, तानि च भवनपतिव्यन्तरीरधिकृत्य वेदितव्यानि, उत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतानि चेशानदेवीरधिकृत्य प्रतिपत्तव्यानि। विशेपचिन्तायां भवनवासिदेव्यः सामान्यतो दश वर्षसहस्राणि, उत्कर्षतोऽर्द्धपञ्चमानि—सार्द्धानि चत्वारि पल्योपमानि, एतानि च भवनवासिविशेषासुरकुमारदेवीरधिकृत्य, अत्रापि विशेपचिन्तायामसुरकुमारदेवीनां सामान्यतो जघन्येन दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतोऽर्द्धपञ्चमानि पल्योपमानि, नागकुमारभवनवासिदेवस्त्रीणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतो देशोनं पल्योपमम्, एवं शेषाणां यावत्स्तनितकुमारीणां, व्यन्तरीणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतोऽर्द्धं पल्योपमं, ज्योतिषस्त्रीणां जघन्येनाष्टभागपल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धं पल्योपमं पञ्चाशता वर्षसहस्रैरभ्यधिकम्, अत्रापि विशेपचिन्तायां चन्द्रविमानवासिज्योतिषस्त्रीणां जघन्यतश्चतुर्भागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं पञ्चाशता वर्षसहस्रैरधिकं, सूर्यविमानवासिज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतश्चतुर्भागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं वर्षशतपञ्चकाभ्यधिकं, ग्रहविमानवासिज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतश्चतुर्भागमात्रं पल्योपमं उत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं, नक्षत्रविमानज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतश्चतुर्थभागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतः सातिरेकं चतुर्थभागमात्रं पल्योपमं, ताराविमानज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतोऽष्टभागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतस्तदेवाष्टभागमात्रं पल्योपमं सातिरेकं। सामान्यतो वैमानिकदेवस्त्रीणां जघन्यतः

पल्योपममुत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, विशेषचिन्तायां सौधर्मकल्पवैमानिकदेवीनां जघन्यतः पल्योपममुत्कर्षतः सप्त पल्योपमानि, अत्रापीदं स्थितिपरिमाणं परिगृहीतदेवीनामवगन्तव्यं, अपरिगृहीतदेवीनां जघन्यतः पल्योपममुत्कर्षतः पञ्चाशत्पल्योपमानि, ईशानकल्पवैमानिकदेवीनां जघन्यतः सातिरेकं पल्योपममुत्कर्षतो नव पल्योपमानि, अत्रापीदं स्थितिपरिमाणं परिगृहीतदेवीनामवगन्तव्यं, अपरिगृहीतदेवीनां जघन्यतः सातिरेकं पल्योपममुत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतच्च सूत्रं समस्तमपि क्वापि साक्षाद् दृश्यते क्वचिच्चैवमतिदेशः—"एवं देवीणं ठिई भाणियव्वा जहा पण्णवणाए जाव ईसाणदेवीण"मिति ॥ सम्प्रति स्त्री नैरन्तर्येण स्त्रीत्वममुञ्चन्ती कियन्तं कालमवतिष्ठते? इति जिज्ञासायां सूत्रकृत्तत्कालापेक्षया ये पञ्चादेशाः प्रवर्त्तन्ते तानुपदर्शयितुमाह—

इत्थी णं भंते! इत्थित्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसं दसुत्तरं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं। एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अट्ठारस पलिओवमाइं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियाइं। एक्केणादेसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं चउद्दस पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं। एक्केणादेसेणं जह० एक्कं समयं उक्को० पलिओवमसयं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियं। एक्केणादेसेणं जहण्णं एक्कं समयं उक्को० पलिओवमपुहुत्तं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियं॥ तिरिक्खजोणित्थी णं भंते! तिरिक्खजोणित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होति?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडी पुहुत्तमब्भहियाइं, जलयरीए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं। चउप्पदथलयरतिरिक्खजो० जहा ओहिता ति-

रिक्ख०, उरगपरिसप्पीभुयगपरिसप्पित्थी णं जधा जलयरीणं, खहयरि० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं
उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं ॥ मणुस्सित्थी णं भंते! कालओ
केवचिरं होति?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वको-
डिपुहुत्तमब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, एवं कम्म-
भूमियावि भरहेरवयावि, णवरं खेत्तं पडुच्च जह० अंतो उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं देसूणपुव्व-
कोडीअब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। पुव्वविदेहअवर-
विदेहित्थी णं खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडीपुहुत्तं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं
उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी ॥ अकम्मभूमिकमणुस्सित्थी णं भंते! अकम्मभूम० कालओ केव-
चिरं होइ? गोयमा! जम्मणं पडुच्च जह० देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणं
उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए
पुव्वकोडिए अब्भहियाइं। हिमवतेरण्णवते अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! हेम० कालतो
केवचिरं होइ?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जह० देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जति-
भागेणं ऊणगं, उक्को० पलिओवमं। साहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० पलिओवमं देसूणाए
पुव्वकोडीए अब्भहियं। हरिवासरम्मयअकम्मभूमगमणुस्सित्थी णं भंते!, जम्मणं पडुच्च जह०

देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणगाइं, उक्को० दो पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० दो पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडिमब्भहियाइं। उत्तरकुरुदेवकुरूणं०, जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं तिन्नि पलिओवमाइं पलितोवमस्स असंखेज्जभागेणं ऊणगाइं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडिए अब्भहियाइं। अंतरदीवाकम्मभूमकमणुस्सित्थी?, २ जम्मणं पडुच्च जह० देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं। साहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं ॥ देवित्थी णं भंते! देवित्थित्ति काल०, जच्चेव संचिट्ठणा ॥ (सू० ४८)

एकेनादेशेन जघन्यत एकं समयं यावदवस्थानमुत्कर्षतो दशोत्तरं पल्योपमशतं पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकम्, एकसमयं कथम्? इति चेदुच्यते—काचिद् युवतिरुपशमश्रेण्यां वेदत्रयोपशमनादवेदकत्वमनुभूय ततः श्रेणेः प्रतिपतन्ती स्त्रीवेदोदयमेकं समयमनुभवति, ततो द्वितीये समये कालं कृत्वा देवेषूत्पद्यते तत्र च तस्याः पुंस्त्वमेव न स्त्रीत्वं, तत एवं जघन्यतः स्त्रीत्वं समयमात्रं, सम्प्रति पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकदशोत्तरपल्योपमशतभावना क्रियते—कश्चिज्जन्तुर्नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्वकोट्यायुष्कासु मध्ये पञ्चषान् भवाननुभूय ईशाने कल्पे पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कास्वपरिगृहीतदेवीषु मध्ये देवीत्वेनोत्पद्यते ततः स्वायुः-

क्षये तस्मात्स्थानाद् भूयोऽपि नारीषु तिरश्चीषु वा मध्ये पूर्वकोट्यायुष्षुरुत्पन्नस्ततो भूयो द्वितीयं वारमीशानदेवलोके पञ्चपञ्चाशत्पल्यो-
पमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कास्वपरिगृहीतदेवीषु मध्ये देवीत्वेनोपजातस्ततः परमवश्यं वेदान्तरमवगच्छति, एवं दशोत्तरं पल्योपमशतं पूर्वको-
टिपृथक्त्वाभ्यधिकं प्राप्यते, अत्र पर आह—ननु यदि देवकुरूत्तरकुर्वादिषु पल्योपमत्रयस्थितिकासु स्त्रीषु मध्ये समुत्पद्यते ततोऽधि-
काऽपि स्त्रीवेदस्यावस्थितिर्लभ्यते, ततः किमित्येतावदेवोपदिष्टा ?, तदयुक्तम्, अभिप्रायापरिज्ञानात्, तथाहि—न तावद्देवीभ्यश्च्युत्वाऽसङ्ख्ये-
यवर्षायुष्कासु स्त्रीषु मध्ये स्त्रीत्वेनोत्पद्यते, देवयोनेश्च्युतानामसङ्ख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये उत्पादप्रतिषेधात्, नाप्यसङ्ख्येयवर्षायुष्का सती
उत्कृष्टायुष्कासु देवीषु जायते, यत उक्तं **प्रज्ञापनामूलटीकायाम्**—"जतो असंखेज्जवासाउया उक्कोसियं ठिइं न पावेइ" इति, ततो
यथोक्तप्रमाणैव स्त्रीवेदस्योत्कृष्टाऽवस्थितिरवाप्यते । द्वितीयेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कृष्टतोऽष्टादश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वा-
भ्यधिकानि, तत्र समयभावना सर्वत्रापि प्राग्वत्, अष्टादश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि एवं—नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्व-
कोटीप्रमाणायुष्कासु मध्ये कश्चिज्जन्तुः पञ्चषान् भवाननुभूय पूर्वप्रकारेणेशानदेवलोके वारद्वयमुत्कृष्टस्थितिकासु देवीषु मध्ये समुत्प-
द्यमानो नियमतः परिगृहीतास्वेवोत्पद्यते नापरिगृहीतासु, तत एवं द्वितीयादेशवादिमतेन स्त्रीवेदस्योत्कृष्टमवस्थानमष्टादश पल्योपमानि
पूर्वकोटिपृथक्त्वं च । तृतीयेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतश्चतुर्दश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि चैवं—पूर्व-
प्रकारेण सौधर्मदेवलोके परिगृहीतदेवीषु सप्तपल्योपमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कासु मध्ये वारद्वयं समुत्पद्यते तत्र(त) एवं तृतीयादेशवादिमतेन
स्त्रीवेदस्योत्कृष्टमवस्थानं चतुर्दश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वं च । चतुर्थेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः पल्योपमशतं पूर्वको-
टिपृथक्त्वाभ्यधिकं, कथम् ? इति चेदुच्यते, नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्वकोट्यायुष्कासु पञ्चषान् भवाननुभूय पूर्वप्रकारेण सौधर्मदेवलोके

पञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कास्वपरिगृहीतदेवीषु मध्ये देवीत्वेनोत्पद्यते, तत एवं चतुर्थादेशवादिमतेन पल्योपमशतं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकं भवति । पञ्चमेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः पल्योपमपृथक्त्वं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकं, तथैवं—नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्वकोट्यायुष्कासु मध्ये सप्त भवाननुभूयाष्टमभवे देवकुर्वादिषु त्रिपल्योपमस्थितिकासु स्त्रीषु मध्ये स्त्रीत्वेन समुत्पद्यते, ततो मृत्वा सौधर्मदेवलोके जघन्यस्थितिकासु देवीषु मध्ये देवीत्वेनोपजायते, तदनन्तरं चावश्यं वेदान्तरमधिगच्छति, ततः पञ्चमादेशवादिमतेन स्त्रीवेदस्यावस्थानं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकं पल्योपमपृथक्त्वं, ते ह्येवमाहुर्नानाभवप्रमाणद्वारे—यदि स्त्रीवेदस्योत्कृष्टमवस्थानं चिन्त्यते तत इत्थमेतावदेव लभ्यते, नाधिकमन्यथा चेति । अमीषां च पञ्चानामादेशानामन्यतमादेशसमीचीनतानिर्णयोऽतिशयज्ञानिभिः सर्वोत्कृष्टश्रुतलब्धिसंपन्नैर्वा कर्तुं शक्यते, ते च सूत्रकृत्प्रतिपत्तिकाले नासीरन्निति सूत्रकृन्न निर्णयं कृतवानिति । तदेवं सामान्यतः स्त्री स्त्रीत्वं नैरन्तर्येणामुञ्चन्ती यावन्तं कालमवतिष्ठते तावत्कालप्रमाणमुक्तम् ॥ इदानीं तिर्यक्स्त्रियास्तिर्यक्स्त्रीत्वमजहत्याः कालमानं विचिन्तयिषुरिदमाह—'**तिरिक्खजोणिइत्थिए णं भंते !**, इत्यादि, तिर्यक्स्त्री णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! तिर्यक्स्त्रीति कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्रान्तर्मुहूर्त्तं कस्याश्चित्तावत्प्रमाणायुष्कतया तदनन्तरं मृत्वा वेदान्तराधिगमाद्विलक्षणमनुष्यभवान्तराधिगमाद्वा, कथमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकाटीपृथक्त्वाभ्यधिकानि ? इति चेदुच्यते—इह नराणां तिरश्चां चोत्कर्षतोऽष्टौ भवाः प्राप्यन्ते नाधिकाः, "नरतिरियाणं सत्तट्ठभवा" इति वचनात्, तत्र सप्त भवाः सङ्ख्येयवर्षायुषोऽष्टमस्त्वसङ्ख्येयवर्षायुरेव, तथाहि—पर्याप्तमनुष्याः पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो वा निरन्तरं यथासङ्ख्यं सप्त पर्याप्तमनुष्यभवान् सप्त पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भवान् वाऽनुभूय यद्यष्टमे भवे भूयः पर्याप्तमनुष्याः पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियति-

येभ्यो वा समुत्पद्यन्ते ततो नियमादसङ्ख्येयवर्षायुष एव न सङ्ख्येयवर्षायुषः, असङ्ख्येयवर्षायुषश्च मृत्वा नियमतो देवलोकेषूत्पद्यन्ते, ततो नवमोऽपि मनुष्यभवः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भवो वा निरन्तरं न लभ्यते, अत एव च पाश्चात्याः सप्त भवा निरन्तरं भवन्तः सङ्ख्येयवर्षायुष एवोपपद्यन्ते नैकोऽप्यसङ्ख्येयवर्षायुः, असङ्ख्येयवर्षायुर्भवानन्तरं भूयो मनुष्यभवस्य तिर्यग्भवस्य वाऽसम्भवात्, तत्र यदा उत्कर्षतस्तिर्यक्स्त्रीवेदसहिताः पाश्चात्याः सप्तापि भवा पूर्वकोट्यायुषो लभ्यन्ते अष्टमस्तु भवो देवकुर्वादिषु तदा भवन्त्युत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि तिर्यक्स्त्रीत्वस्यावस्थानम् । अत्रैव विशेषचिन्तां चिकीर्षुराह—'जलयरीए' इत्यादि, जलचर्याः स्त्रिया जलचरस्त्रीत्वेन निरन्तरं भवन्त्या जघन्यतोऽवस्थानमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, सप्तपूर्वकोट्यायुर्भवानन्तरं जलचरस्त्रीणामवश्यं जलचरस्त्रीत्वच्युतिभावात्, 'चउप्पयथलयरीए जहा ओहियाए' इति, चतुष्पदस्थलचरस्त्रिया यथा औधिक्यास्तिर्यक्स्त्रिया उक्तं तथा द्रष्टव्यं, तच्चैवम्—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्ध्वं तद्भावपरित्यागसम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि च प्रागिव भावनीयानि । उरःपरिसर्पस्थलचरस्त्रिया भुजपरिसर्पस्थलचरस्त्रियाश्च यथा जलचरस्त्रियास्तथा वक्तव्यं, तच्चैवं—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं तच्च पूर्ववद्भावनीयम् । खचरस्त्रिया जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिक उत्कर्षतोऽवस्थानमिति ॥ तदेवमुक्तं तिर्यक्स्त्रियाः सामान्यतो विशेषतश्च अवस्थानमानं, सम्प्रति मनुष्यस्त्रिया आह—'मणुस्सित्थियाए' इत्यादि, मनुष्यस्त्रियाः सामान्यतो यथा औधिक्यास्तिर्यक्स्त्रियाः, तच्चैवं—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि च सामान्यतस्तिर्यक्स्त्रीवद्भावनीयानि । कर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः क्षेत्रं प्रतीत्य सामान्यतः कर्मक्षेत्रमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं तद्भावपरित्यागसम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वा-

भ्यधिकानि, तत्र सप्त भवा महाविदेहेषु अष्टमो भवो भरतैरावतेष्वेकान्तसुषमादौ त्रिपल्योपमप्रमाण इति, 'धर्मचरणं प्रतीत्य' चा-
रित्रासेवनमाश्रित्य जघन्येनैकं समयं, सर्वविरतिपरिणामस्य तदावरणकर्मक्षयोपशमवैचित्र्यतः समयमेकं सम्भवात्, तत ऊर्ध्वं मर-
णतः प्रतिपातभावात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, समग्रचरणकालस्योत्कर्षतोऽप्येतावन्मात्रप्रमाणत्वात् । भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्य-
स्त्रियाः स्त्रीत्वं 'क्षेत्रं प्रतीत्य' भरताद्येवाश्रित्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं तच्च प्राग्वद्भावनीयम्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वको-
ट्याऽभ्यधिकानि, तानि चैवं–पूर्वविदेहमनुष्यस्त्री अपरविदेहमनुष्यस्त्री वा पूर्वकोट्यायुष्का केनापि भरतादावेकान्तसुषमादौ संहृता,
सा च यद्यपि महाविदेहक्षेत्रोत्पन्ना तथाऽपि प्रागुक्तमागधपुरुषदृष्टान्तबलेन भारतैरावतीया वेति व्यपदिश्यते, ततः सा भारत्यादि-
व्यपदेशं प्राप्ता पूर्वकोटिं जीवित्वा स्वायुःक्षयतस्तत्रैव भरतादावेकान्तसुषमाप्रारम्भे समुत्पन्ना, तत एवं देशोनपूर्वकोट्यभ्यधिकं पल्यो-
पमत्रयमिति । धर्मचरणं प्रतीत्य कर्मभूमिजस्त्रिया इव भावनीयं, जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोनां पूर्वकोटीं यावत्, पूर्वविदेहापर-
विदेहकर्मभूमिजमनुष्यस्त्रियास्तु क्षेत्रमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च सुप्रतीतं, प्राग्भावितत्वात्, उत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तत्रैव
भूय उत्पत्त्या, धर्मचरणं प्रतीत्य समागतकर्मभूमिजस्त्रिया इव वक्तव्यं, जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोनां पूर्वकोटिं यावदिति
भावार्थः ॥ उक्ता सामान्यतो विशेषतश्च कर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीवक्तव्यता, साम्प्रतमकर्मभूमकमनुष्यस्त्रीवक्तव्यतां चिकीर्षुः प्रथमतः सामा-
न्येनाह—'**अकम्मभूमिगमणुस्सित्थी णं भंते !**' इत्यादि, अकर्मभूमकमनुष्यस्त्री, णमिति वाक्यालङ्कारे, अकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीति
कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! 'जन्म' तत्रैव सम्भूतिलक्षणं 'प्रतीत्य' आश्रित्य जघन्येन पल्योपमं देशोनं, अष्टभागा-
न्यूनमपि देशोनं भवति ततो विशेषस्थापनायाह—पल्योपमस्यासङ्ख्येयभागोनं जघन्यतः उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणं प्रतीत्य

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमन्तर्मुहूर्त्तायुःशेषायाः संहृतिभावात्, उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि, कथम्? इति चेदुच्यते—काचित्पूर्वविदेहमनुष्यस्त्री अपरविदेहमनुष्यस्त्री वा देशोनपूर्वकोट्यायुःसमन्विता देवकुर्वादौ संहृता, सा च पूर्वदृष्टान्तबलेन देवकुर्वादिका जाता, ततः सा देशोनां पूर्वकोटिं जीवित्वा मृत्वा च तत्रैव त्रिपल्योपमायुष्का समजनि, तत एवं देशोनपूर्वकोट्यधिकं पल्योपमत्रयमिति, अनेन संहरणतो जघन्योत्कृष्टावस्थानकालमानप्रदर्शनेन न्यूनान्तर्मुहूर्त्तायुःशेषाया गर्भस्त्रिया वा न संहरणमिति प्रतिपादितम्, अन्यथा जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षचिन्तायां पूर्वकोट्या देशोनता न स्यादिति। अकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीविषयामेव विशेषचिन्तां करोति—'हेमवये'त्यादि, हैमवतैरण्यवतहरिवर्षरम्यकवर्षदेवकुरूत्तरकुर्वन्तरद्वीपिकाणां जन्म प्रतीत्य या यस्याः स्थितिस्ततस्तस्या अवस्थानं वाच्यं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो या यस्या उत्कृष्टा स्थितिः सा तस्या देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिका वक्तव्या, सा चैवं—हैमवतैरण्यवतयोर्मनुष्यस्त्री जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनम्, उत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, अन्तर्मुहूर्त्तायुःशेषाया एव संहरणभावात्, उत्कर्षतः पल्योपमं देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकं, तच्च देशोनपूर्वकोट्यायुःसमन्वितायास्तत्र संहरणे तत्रैव च मृत्वोत्पन्नाया भावनीयम्। हरिवर्षरम्यकयोर्जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने द्वे पल्योपमे, उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे। संहरणं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिके द्वे पल्योपमे, भावना प्रागिव। देवकुरूत्तरकुरुषु जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासंख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि। संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि। अन्तरद्वीपेषु जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं पल्योपमासङ्ख्येयभागं यावत् उत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागम्,

एतावत्प्रमाणस्य तत्र जघन्यत उत्कर्षतश्च मनुष्याणामायुषः सम्भवात्, मरणानन्तरं च देवयोनावुत्पादात् । संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकं पल्योपमासङ्ख्येयभागं यावत्, भावनाऽत्र प्रागिव ॥ उक्ता सामस्त्येन मनुष्यस्त्रीवक्तव्यता, सम्प्रति देवस्त्रीवक्तव्यतामाह—'देवित्थीण'मित्यादि, देवीनां तथाभवस्वभावतया कायस्थितेरसम्भवात् यैव प्राक् सामान्यतो विशेषतश्च भवस्थितिरुक्ता 'सेव संचिट्ठणा भाणियव्वा' तदेवावस्थानं वक्तव्यम्, अभिलापश्च 'देवित्थी णं भंते! देवित्थीति कालतो केवच्चिरं होइ?' इत्यादिरूपः सुधिया परिभावनीयः ॥ तदेवमुक्तं सामान्यतो विशेषतश्च स्त्रीत्वस्यावस्थानकालमानम्, इदानीमन्तरद्वारमाह—

इत्थीणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होति?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० अणंतं कालं, वणस्सतिकालो, एवं सव्वासिं तिरिक्खित्थीणं। मणुस्सित्थीए खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं जाव पुव्वविदेहअवरविदेहियाओ, अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होति?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्को० वणस्सतिकालो, संहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो, एवं जाव अंतरदीवियाओ। देवित्थियाणं सव्वासिं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो ॥ (सू० ४९)

स्त्रिया भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, स्त्री भूत्वा स्त्रीत्वाद् भ्रष्टा सती पुनः कियता कालेन स्त्री भवतीत्यर्थः, एवं

गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कथमिति चेदुच्यते—इह काचित्स्त्री स्त्रीत्वान्मरणेन च्युत्वा भवान्तरे पुरुषवेदं नपुंसकवेदं वाऽन्तर्मुहूर्त्तमनुभूय ततो मृत्वा भूयः स्त्रीत्वेनोत्पद्यते तत एव जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं भवति, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः—असङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्तांख्यो वक्तव्यः, तावता कालेनामुक्तौ सत्यां नियोगतः स्त्रीत्वयोगात्, स च वनस्पतिकाल एवं वक्तव्यः —"अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो" इति, एवमौघिकतिर्यक्स्त्रीणां जलचरस्थलचरखचरस्त्रीणामौघिकमनुष्यस्त्रीणां च जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यम्, अभिलापोऽपि सुगमत्वात्स्वयं परिभावनीयः । कर्मभूमिकमनुष्यस्त्रियाः क्षेत्रं—कर्मभूमिक्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं वनस्पतिकालप्रमाणं यावत्, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्येनैकं समयं, सर्वजघन्यस्य समयत्वात्, उत्कर्षेणानन्तं कालं, देशोनमपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं यावत्, नातो ह्यधिकतरश्चरणलब्धिपातकालः, संपूर्णस्याप्यपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तस्य दर्शनलब्धिपातकालस्य तत्र तत्र प्रदेशे प्रतिषेधात् । एवं भरतैरावतमनुष्यस्त्रियाः पूर्वविदेहापरविदेहस्त्रियाश्च क्षेत्रतो धर्मचरणं चाश्रित्य वक्तव्यम् । अकर्मभूमकमनुष्यस्त्रिया जन्म प्रतीत्यान्तरं जघन्येन दश वर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, कथमिति चेदुच्यते—इह काचिदकर्मभूमिका स्त्री मृत्वा जघन्यस्थितिषु देवेषूत्पन्ना, तत्र दश वर्षसहस्राण्यायुः परिपाल्य तत्क्षये च्युत्वा कर्मभूमिषु मनुष्यपुरुषत्वेन मनुष्यस्त्रीत्वेन वोत्पद्यते, देवेभ्योऽनन्तरमकर्मभूमिषूत्पादाभावात्, अन्तर्मुहूर्त्तेन मृत्वा भूयोऽप्यकर्मभूमिजस्त्रीत्वेन जायत इति भवन्ति जघन्यतो दश वर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, अकर्मभूमिजस्त्रियाः कर्मभूमिषु संहृत्य तावता कालेन तथाविधबुद्धिपरावृत्त्या भूयस्तत्रैव नयनात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, तावता कालेन कर्मभूम्यु-

त्पत्तिवत् संहरणस्यापि नियोगतो भावात्, तथाहि—काचिदकर्मभूमिका कर्मभूमौ संहृता, सा च स्वायुःक्षयानन्तरमनन्तकालं वनस्पत्यादिषु संसृत्य भूयोऽप्यकर्मभूमौ समुत्पन्ना ततः केनापि संहृतेति यथोक्तं संहरणस्योत्कृष्टकालमानम् । एवं हैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्यकवर्षदेवकुरूत्तरकुर्वन्तरभूमिकानामपि जन्मतः संहरणतश्च प्रत्येकं जघन्यमुत्कृष्टं चान्तरं वक्तव्यम्, सूत्रपाठोऽपि सुगमत्वात्स्वयं परिभावनीयः ॥ सम्प्रति देवस्त्रीणामन्तरप्रतिपादनार्थमाह—'देवित्थियाणं भंते !' इत्यादि, देवस्त्रिया भदन्त ! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कस्याश्चिद्देवस्त्रिया देवीभवाच्च्युताया गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्येषूत्पद्य पर्याप्तिपरिसमाप्तिसमनन्तरं तथाऽध्यवसायमरणेन पुनर्देवीत्वेनोत्पत्तिसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स च सुप्रतीत एव । एवमसुरकुमारदेव्या आरभ्य यावदीशानदेवस्त्रियामुत्कृष्टमन्तरं वक्तव्यं, पाठोऽपि सुगमत्वात्स्वयं परिभावनीयः ॥ सम्प्रत्यल्पबहुत्वं वक्तव्यं, तानि च पञ्च, तद्यथा—प्रथमं सामान्येनाल्पबहुत्वं विशेषचिन्तायां द्वितीयं त्रिविधतिर्यक्स्त्रीणां तृतीयं त्रिविधमनुष्यस्त्रीणां चतुर्थं चतुर्विधदेवस्त्रीणां पञ्चमं मिश्रस्त्रीणां, तत्र प्रथममल्पबहुत्वमभिधित्सुराह—

एतासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थियाणं मणुस्सित्थियाणं देवित्थियाणं कतरा २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सित्थियाओ तिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ देवित्थियाओ असंखिज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थियाणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीण य कतरा २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवाओ खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ थलयरतिरिक्ख-

जोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जलयरतिरिक्ख० संखेज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते ! मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाण य कतरा २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा ! सव्वत्थोवाओ अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ देवकुरूत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखेज्जगु०, हरिवासरम्मयवासअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखेज्जगु०, हेमवतेरण्णवासअकम्मभूमिगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखिज्जगु०, भरतेरवतवासकम्मभूमगमणुस्सि० दोवि तुल्लाओ संखिज्जगुणाओ, पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते ! देवित्थियाणं भवणवासीणं वाणमंतरीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीण य कयरा २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवाओ वेमाणियदेवित्थियाओ भवणवासिदेवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ वाणमंतरदेवीयाओ असंखेज्जगुणाओ जोतिसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थियाणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं मणुस्सित्थीयाणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं देवित्थीणं भवणवासियाणं वाणमंतरीणं जोतिसियाणं वेमाणिणीण य कयराओ २ हिंतो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसे० ?, गोयमा! सव्वत्थोवा अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सितिथयाओ देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि संखे-

ज्जगुणाओ, हरिवासरम्मगवासअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोऽवि संखेज्जगु०, हेमवतेरण्णवयवासअकम्मभूमग० दोऽवि संखेज्जगु०, भरहेरवतवासकम्मभूमगमणुस्सित्थीओ दोऽवि तुल्लाओ संखेज्जगु०, पुव्वविदेहअवरविदेहवासकम्मभूमगमणुस्सित्थि० दोऽवि संखेज्जगु०, वेमाणियदेवित्थियाओ असंखेज्जगु०, भवणवासिदेवित्थियाओ असंखेज्जगु०, खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगु०, थलयरतिरिक्खजोणित्थियाउ संखिज्जगु०, जलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जोइसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ ॥ (सू० ५०)

सर्वस्तोका मनुष्यस्त्रियः, सङ्ख्यातकोटाकोटीप्रमाणत्वात्, ताभ्यस्तिर्यग्योनिकस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं तिर्यक्स्त्रीणामतिबहुतया सम्भवात्, द्वीपसमुद्राणां चासङ्ख्येयत्वात्, ताभ्योऽपि देवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानदेवीनां प्रत्येकमसङ्ख्येयश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् । द्वितीयमल्पबहुत्वमाह—सर्वस्तोकाः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः, ताभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, खचरेभ्यः स्थलचराणां स्वभावत एव प्राचुर्येण भावात्, ताभ्यो जलचरस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, लवणे कालोदे स्वयम्भूरमणे च समुद्रे मत्स्यानामतिप्राचुर्येण भावात्, स्वयम्भूरमणसमुद्रस्य च शेषसमस्तद्वीपसमुद्रापेक्षयाऽतिप्रभूतत्वात् ॥ उक्तं द्वितीयमल्पबहुत्वम्, अधुना तृतीयमाह—सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकाकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रियः, क्षेत्रस्याल्पत्वात्, ताभ्यो देवकुरूत्तरकुरुस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्य सङ्ख्येयगुणत्वात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, समानप्रमाणक्षेत्रत्वात्, ताभ्यो

हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, देवकुरूत्तरकुरुक्षेत्रापेक्षया हरिवर्षरम्यकक्षेत्रस्यातिप्रचुरत्वात्, स्वस्थानेऽपि द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, क्षेत्रस्य समानत्वात्, ताभ्योऽपि हैमवतैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्याल्पत्वेऽप्यल्पस्थितिकतया बहूनां तत्र तासां सम्भवात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, ताभ्योऽपि भरतैरावतकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणा., कर्मभूमितया स्वभावत एव तत्र प्राचुर्येण सम्भवात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, ताभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रबाहुल्यादजितस्वामिकाल इव च स्वभावत एव तत्र प्राचुर्येण भावात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः ॥ उक्तं तृतीयमल्पबहुत्वम्, अधुना चतुर्थमाह—सर्वस्तोका वैमानिकदेवस्त्रियः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेर्यद् द्वितीयं वर्गमूलं तस्मिन् तृतीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावत्प्र(वान् प्र)देशराशिस्तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशा द्वात्रिंशत्तमभागहीनास्तावत्प्रमाणत्वात्प्रत्येकं सौधर्मेशानदेवस्त्रीणां, ताभ्यो भवनवासिदेवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेर्यत्प्रथमं वर्गमूलं तस्मिन् द्वितीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणासु श्रेणिषु यावान् प्रदेशराशिर्द्वात्रिंशत्तमभागहीनस्तावत्प्रमाणत्वात्, ताभ्यो व्यन्तरदेवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेभ्योऽपि द्वात्रिंशत्तमे भागेऽपनीते यच्छेषमवतिष्ठते तावत्प्रमाणत्वात्तासां, ताभ्यः सङ्ख्येयगुणा ज्योतिष्कदेवस्त्रियः, षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयाङ्गुलप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेभ्यो द्वात्रिंशत्तमे भागेऽपसारिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणत्वात् ॥ उक्तं चतुर्थमल्पबहुत्वम्, इदानीं समस्तस्त्रीविषयं पञ्चममल्पबहुत्वमाह—सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः, ताभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि हरिवर्षर-

न्यकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि हैमवतहैरण्यवतस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, अत्र भावना प्राग्वत्, ताभ्यो वैमानिकदेवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्तासां ताभ्यो भवनवासिदेवस्त्रियोऽसङ्ख्यातगुणाः, अत्र युक्तिः प्रागेवोक्ता, ताभ्यः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्तासां ताभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः, सङ्ख्येयगुणबृहत्तरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, ताभ्यो जलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तमप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, ताभ्यो व्यन्तरदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनकोटाकोटीप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेभ्यो द्वात्रिंशत्तमे भागेऽपहृते यावान् राशिरवतिष्ठते तावत्प्रमाणत्वात्, ताभ्योऽपि ज्योतिष्कदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, एतच्च प्रागेव भावितम् ॥ इह स्त्रीत्वानुभावः स्त्रीवेदकर्मोदय इति स्त्रीवेदकर्मणो जघन्यत उत्कर्षतश्च स्थितिमानमाह—

इत्थिवेदस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं सागरोवमस्स दिवड्ढो सत्तभागो [उ] पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणो उक्को० पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस वाससयाइं अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेओ ॥ इत्थिवेदे णं भंते! किंपगारे पण्णत्ते?, गोयमा! फुंफुअग्गिसमाणे पण्णत्ते, सेत्तं इत्थियाओ ॥ (सू० ५१)

'स्त्रीवेदस्य' स्त्रीवेदनाम्नो णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! कर्मणः कियन्तं कालं बन्धस्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्येन

सागरोपमस्य सार्द्धः सप्तभागः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनः, कथमिति चेदुच्यते—इह स्त्रीवेदादीनां कर्मणां स्वस्मात् २ उत्कृष्टस्थितिबन्धात् मिथ्यात्वसत्कया उत्कृष्टया स्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणया भागे हृते यल्लभ्यते तत्पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं जघन्यस्थितिः "सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तुक्कोसएण जं लद्ध"मित्यादिवचनप्रामाण्यात्, तत्र स्त्रीवेदस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धः पञ्चदशसागरोपमकोटीकोट्यः, तासां मिथ्यात्वस्थित्या भागो ह्रियते, शून्यं शून्येन पातयेत् जाता उपरि पञ्चदश अधस्तात्सप्ततिः, अनयोश्च छेद्यच्छेदकराश्योर्दशभिरपवर्त्तना जात उपर्येकः सार्द्धः अधस्तात्सप्त आगतमेकसागरोपमस्य सार्द्धः सप्तभागः, पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनः क्रियते, इयं च व्याख्या **मूलटीका**ऽनुसारेण कृता, **पञ्चसङ्ग्रह**मतेनापीदमेव जघन्यस्थितिपरिमाणं केवलं पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनं (न) वक्तव्यं, तन्मतेन "सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिईए जं लद्धं" इत्येतावन्मात्रस्यैव जघन्यस्थित्यानयनस्य करणस्य विद्यमानत्वात्, **कर्मप्रकृतिसङ्ग्रहणी**कारस्त्वित्थं जघन्यस्थित्यानयनाय करणसूत्रमाह—"वग्गुक्कोसठिईणं मिच्छत्तुक्कोसगेण जं लद्धं । सेसाणं तु जहण्णं पलियासंखेज्जगेणूणं ॥ १ ॥" अस्याक्षरगमनिका—इह ज्ञानावरणीयप्रकृतिसमुदायो ज्ञानावरणीयवर्ग इत्युच्यते, दर्शनावरणीयप्रकृतिसमुदायो दर्शनावरणीयवर्गः, वेदनीयप्रकृतिसमुदायो वेदनीयवर्गः, दर्शनमोहनीयप्रकृतिसमुदायो दर्शनमोहनीयवर्गः, चारित्रमोहनीयप्रकृतिसमुदायश्चारित्रमोहनीयवर्गः, नोकषायमोहनीयप्रकृतिसमुदायो नोकषायमोहनीयवर्गः, नामप्रकृतिसमुदायो नामवर्गः, गोत्रप्रकृतिसमुदायो गोत्रवर्गः, अन्तरायप्रकृतिसमुदायोऽन्तरायवर्गः, एतेषां (च) वर्गाणां या आत्मीया आत्मीया उत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिका तस्या मिथ्यात्वसत्कया उत्कृष्टया स्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे हृते सति यल्लभ्यते तत्पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं सत् उक्तशेषाणां निद्रादीनां प्रकृतीनां जघन्यस्थितेः परिमाणमिति, ततस्तन्मतेन स्त्रीवेदस्य ज-

घन्या स्थितिर्द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ, तथाहि—नोकषायमोहनीयस्योत्कृष्टा स्थितिर्विंशतिसागरोपम-
कोटीकोट्यः, तासां मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे ह्रियमाणे शून्यं शून्येन पातयेत् लब्धौ द्वौ साग-
रोपमस्य सप्तभागौ तौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ क्रियेते इति । उत्कृष्टा स्थितिः पञ्चदशसागरोपमकोटीकोट्यः, इह स्थितिर्द्विधा—
कर्मरूपताऽवस्थानलक्षणा अनुभवयोग्या च, तत्रेयं कर्मरूपताऽवस्थानलक्षणा द्रष्टव्या, अनुभवयोग्या पुनरबाधाहीना, (गा) च शेषां कर्मणां
यावत्यः सागरोपमकोटीकोट्यस्तेषां तावन्ति वर्षशतान्यबाधा, स्त्रीवेदस्य चाधिकृतस्योत्कृष्टा स्थितिः पञ्चदश सागरोपमकोटीकोट्य-
स्ततः पञ्चदश वर्षशतान्यबाधा, तथा चाह—“पण्णरस वाससयाइं अबाहा”इति, किमुक्तं भवति ?—स्त्रीवेदकर्म उत्कृष्टस्थितिकं बद्धं
सत्स्वरूपेण पञ्चदश वर्षशतानि यावन्न जीवस्य स्वविपाकोदयमादर्शयति तावत्कालमध्ये दलिकनिषेकस्याभावात्, तथा चाह—“अ-
बाहूणिया” इत्यादि, ‘अबाधोना’ अबाधाकालपरिहीना कर्मस्थितिरनुभवयोग्येति गम्यते, यतः ‘अबाधोनः’ अबाधाकालपरिहीनः
कर्मनिषेकः—कर्मदलिकरचनेति ॥ सम्प्रति स्त्रीवेदकर्मोदयजनितो यः स्त्रीवेदः स किंस्वरूपः ? इत्यावेदयन्नाह—‘इत्थिवेए णं भंते !’
इत्यादि, स्त्रीवेदो णमिति पूर्ववत् भगवन्त ! ‘किंप्रकारः’ किंस्वरूपः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम ! फुम्फुकाग्निसमानः, फुम्फुकशब्दो
देशीत्वात्कारीषवचनस्ततः कारीषाग्निसमानः परिमलनमदनदाहरूप इत्यर्थः, प्रज्ञप्तः, उपसंहारमाह—‘सेत्तं इत्थियाओ’ ॥ तदे-
वमुक्ताः स्त्रियः, सम्प्रति पुरुषप्रतिपादनार्थमाह—

**से किं तं पुरिसा ?, पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—तिरिक्खजोणियपुरिसा मणुस्सपुरिसा देवपु-
रिसा ॥ से किं तं तिरिक्खजोणियपुरिसा ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा,**

इत्थिभेदो भाणितव्वो, जाव खहयरा, सेत्तं खहयरा सेत्तं खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा ॥ से किं तं मणुस्सपुरिसा ?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा, सेत्तं मणुस्सपुरिसा ॥ से किं तं देवपुरिसा ?, देवपुरिसा चउव्विहा पण्णत्ता, इत्थीभेदो भाणितव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धा (सू० ५२)

'से किं तं पुरिसा' इत्यादि, अथ के ते पुरुषाः ?, पुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तिर्यग्योनिकपुरुषा मनुष्यपुरुषा देवपुरुषाश्च ॥ से किं तमित्यादि, अथ के ते तिर्यग्योनिकपुरुषाः ?, तिर्यग्योनिकपुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—जलचरपुरुषाः स्थलचरपुरुषाः खचरपुरुषाश्च । मनुष्यपुरुषा अपि त्रिविधास्तद्यथा—कर्मभूमका अकर्मभूमका अन्तरद्वीपकाश्च ॥ देवसूत्रमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ के ते देवपुरुषाः ?, देवपुरुषाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवनवासिनो वानमन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाश्च, भवनपतयोऽसुरादिभेदेन दशविधा वक्तव्याः, वानमन्तराः पिशाचादिभेदेनाष्टविधाः, ज्योतिष्काश्चन्द्रादिभेदेन पञ्चविधाः, वैमानिकाः कल्पोपपन्नकल्पातीतभेदेन द्विविधाः, कल्पोपपन्नाः सौधर्मादिभेदेन द्वादशविधाः, कल्पातीता ग्रैवेयकानुत्तरोपपातिकभेदेन द्विविधाः, तथा चाह—"जाव अणुत्तरोववाइया" इति ॥ उक्तो भेदः, सम्प्रति स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

पुरिसस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं । तिरिक्खजोणियपुरिसाणं मणुस्साणं जा चेव इत्थीणं ठिती सा चेव भणियव्वा ॥ देवपुरिसाणवि जाव सव्वट्ठसिद्धाणं ति। ताव ठिती जहा पण्णवणाए तहा भाणियव्वा ॥ (सू० ५३)

'पुरिसस्स णं भंते' इत्यादि, पुरुषस्य स्वस्वभवमजहतो भदन्त! कियन्तं कालं यावत्स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं मरणभावात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, तान्यनुत्तरसुरापेक्षया द्रष्टव्यानि, अन्यस्यैतावत्याः स्थितेरभावात् । तिर्यग्योनिकानामौधिकानां जलचराणां स्थलचराणां खचराणां स्त्रिया या स्थितिरुक्ता तथा वक्तव्या, मनुष्यपुरुषस्याप्यौधिकस्य कर्मभूमिकस्य सामान्यतो विशेषतो भरतैरावतकस्य पूर्वविदेहापरविदेहकस्य अकर्मभूमस्य सामान्यतो विशेषतो हैमवतैरण्यवतकस्य हरिवर्षरम्यकस्य देवकुरूत्तरकुरुकस्यान्तरद्वीपकस्य यैवात्मीये आत्मीये स्थाने स्त्रियाः स्थितिः सैव पुरुषस्यापि वक्तव्या, तद्यथा—सामानिकतिर्यग्योनिकपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, जलचरपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, चतुष्पदस्थलचरपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, उरःपरिसर्पस्थलचरपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, एवं भुजपरिसर्पस्थलचरपुरुषाणां खचरपुरुषाणामपि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, सामान्यतो मनुष्यपुरुषाणां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतच्च बाह्यलिङ्गप्रव्रज्याप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य वेदितव्यं, अन्यथा चरणपरिणामस्यैकसामायिकस्यापि सम्भवादेकं समयमिति ब्रूयात्, अथवा देशचरणमधिकृत्येदं वक्तव्यं, देशचरणप्रतिपत्तेर्बहुलभङ्गतया जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तसम्भवात्, तत्र सर्वचरणसम्भवेऽपि यदिदं देशचरणमधिकृत्योक्तं तद्देशचरणपूर्वकं प्रायः सर्वचरणमिति प्रतिपत्त्यर्थं, तथा चोक्तम्—"[1]सम्मत्तंमि उ लद्धे पलियपुहुत्तेण सावओ होइ । चरणोवसमखयाणं सागर संखंतरा होंति ॥ १ ॥" इति, अत्र यदाद्यं व्याख्यानं तत्स्त्रीवेदचिन्तायामपि द्रष्टव्यं, यच्च स्त्रीवेदचिन्तायां व्याख्यातं तदत्रापीति, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी

---

१ सम्यक्त्वे तु लब्धे पल्योपमपृथक्त्वेनैव श्रावको भवति । चरणोपशमक्षयाणा सागरोपमाणि संख्यातानि अन्तरं भवन्ति ॥ १ ॥

वर्षाष्टकादूर्ध्वमुत्कर्षतोऽपि पूर्वकोट्यायुष एव चरणप्रतिपत्तिसम्भवात्, कर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि प-
ल्योपमानि, चरणप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य
जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च सुषमसुषमारके वेदितव्यानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो
देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, धर्मचरणं
प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमास-
ङ्ख्येयभागन्यूनमेकं पल्योपममुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहकस्या-
परविदेहकस्य वाऽकर्म्मभूमौ संहृतस्य जघन्येनोत्कर्षत एतावदायुःप्रमाणसम्भवात्, हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म
प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो दे-
शोना पूर्वकोटी, भावना प्रागिव, हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतो द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येय-
भागन्यूने उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, देवकुरूत्तरकुरुकर्मभूमकमनु-
ष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि,
संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन देशोन-
पल्योपमासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः परिपूर्णपल्योपमासङ्ख्येयभागः, संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति ॥
देवपुरिसाणमित्यादि, देवपुरुषाणां सामान्यतो जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विशेषचिन्तायाम-

सुरकुमारपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षत: सातिरेकमेकं सागरोपमं, नागकुमारादिपुरुषाणां सर्वेषामपि जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतो देशोने द्वे पल्योपमे, व्यन्तरपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षत: पल्योपमं, ज्योतिष्कदेवपुरुषाणां जघन्यत: पल्योपमस्याष्टमो भाग उत्कर्षत: परिपूर्णं पल्योपमं वर्षशतसहस्राभ्यधिकं, सौधर्मकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यत: पल्योपममुत्कर्षत: द्वे सागरोपमे ईशान–[ग्रन्थाग्रम् २०००] कल्पदेवपुरुषाणां जघन्यत: साधिकं पल्योपममुत्कर्षतो द्वे सागरोपमे सातिरेके सनत्कुमारकल्पदेवपुरुषाणां च जघन्यतो द्वे सागरोपमे उत्कर्षत: सप्त सागरोपमाणि माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यत: सातिरेके द्वे सागरोपमे उत्कर्षत: सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि ब्रह्मलोकदेवानां जघन्यत: सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश लान्तककल्पदेवानां जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्दश महाशुक्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतश्चतुर्दश सागरोपमाणि उत्कर्षत: सप्तदश सहस्रारकल्पदेवानां जघन्येन सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टादश आनतकल्पदेवानां जघन्यतोऽष्टादश सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनविंशति: प्राणतकल्पदेवानां जघन्यत एकोनविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतो विंशति: आरणकल्पदेवानां जघन्यतो विंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत एकविंशति: अच्युतकल्पदेवानां जघन्यत एकविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशति: अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतो द्वाविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयोविंशति: अधस्तनमध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतस्त्रयोविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्विंशति: अधस्तनोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतश्चतुर्विंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत: पञ्चविंशति: मध्यमाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन पञ्चविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत: षड्विंशति: मध्यममध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यत: षड्विंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत: सप्तविंशति: मध्यमोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन सप्तविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टाविंशति: उपरितनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघ-

वर्षाष्टकादूर्ध्वमुत्कर्षतोऽपि पूर्वकोट्यायुष एव चरणप्रतिपत्तिसम्भवात्, कर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, चरणप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च सुषमसुषमारके वेदितव्यानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमेकं पल्योपममुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहकस्यापरविदेहकस्य वाऽकर्म्मभूमौ संहृतस्य जघन्येनोत्कर्षेत एतावदायुःप्रमाणसम्भवात्, हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना प्रागिव, हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतो द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन देशोनपल्योपमासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः परिपूर्णपल्योपमासङ्ख्येयभागः, संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति ॥ देवपुरिसाणमित्यादि, देवपुरुषाणां सामान्यतो जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विशेषचिन्तायाम-

सुरकुमारपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः सातिरेकमेकं सागरोपमं, नागकुमारादिपुरुषाणां सर्वेषामपि जघन्यतो दश
वर्षसहस्राणि उत्कर्षतो देशोने द्वे पल्योपमे, व्यन्तरपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः पल्योपमं, ज्योतिष्कदेवपुरुषाणां
जघन्यतः पल्योपमस्याष्टमो भाग उत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं वर्षशतसहस्राभ्यधिकं, सौधर्मकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः पल्योपममुत्क-
र्षतः द्वे सागरोपमे ईशान–[ग्रन्थाग्रम् २०००] कल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः साधिकं पल्योपममुत्कर्षतो द्वे सागरोपमे सातिरेके सन-
त्कुमारकल्पदेवपुरुषाणां च जघन्यतो द्वे सागरोपमे उत्कर्षतः सप्त सागरोपमाणि माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः सातिरेके द्वे साग-
रोपमे उत्कर्षतः सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि ब्रह्मलोकदेवानां जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश लान्तककल्पदेवानां
जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्दश महाशुक्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतश्चतुर्दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश सहस्रारक-
ल्पदेवानां जघन्येन सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टादश आनतकल्पदेवानां जघन्यतोऽष्टादश सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनविं-
शतिः प्राणतकल्पदेवानां जघन्यत एकोनविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो विंशतिः आरणकल्पदेवानां जघन्यतो विंशतिः सागरोप-
माणि उत्कर्षत एकविंशतिः अच्युतकल्पदेवानां जघन्यत एकविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशतिः अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां
जघन्यतो द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयोविंशतिः अधस्तनमध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतस्त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षत-
श्चतुर्विंशतिः अधस्तनोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतश्चतुर्विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः पञ्चविंशतिः मध्यमाधस्तनग्रैवेयकदेवानां
जघन्येन पञ्चविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः षड्विंशतिः मध्यममध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतः षड्विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः
सप्तविंशतिः मध्यमोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन सप्तविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टाविंशतिः उपरितनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघ-

न्येनाष्टाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनत्रिंशत् उपरितनमध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्येनैकोनत्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रिंशत् उपरितनोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षत एकत्रिंशत् सागरोपमाणि विजयवैजयन्तजयन्तापराजितविमानदेवानां जघन्येनैकत्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि सर्वार्थसिद्धमहाविमानदेवानामजघन्योत्कृष्टं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । क्वचिदेवं सूत्रपाठः—"देवपुरिसाण ठिई जहा पण्णवणाए ठिइपए तहा भाणियव्वा" इति, तत्र स्थितिपदेऽप्येवमेवोक्ता स्थितिरिति ॥ उक्तं पुरुषस्य भवस्थितिमानमधुना पुरुषः पुरुषत्वममुञ्चन् कियन्तं कालं निरन्तरमवतिष्ठते इति निरूपणार्थमाह—

पुरिसे णं भंते ! पुरिसे त्ति कालतो केवच्चिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतो० उक्को० सागरोवमसतपुहुत्तं सातिरेगं । तिरिक्खजोणियपुरिसे णं भंते ! कालतो केवच्चिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतो० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, एवं तं चेव, संचिट्ठणा जहा इत्थीणं जाव खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसस्स संचिट्ठणा । मणुस्सपुरिसाणं भंते ! कालतो केवच्चिरं होइ ?, गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्ने० अंतो० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी एवं सव्वत्थ जाव पुव्वविदेहअवरविदेह, अकम्मभूमगमणुस्सपुरिसाण जहा अकम्मभूमकमणुस्सित्थीणं जाव अंतरदीवगाणं जच्चेव ठिती सच्चेव संचिट्ठणा जाव सव्वट्ठसिद्धगाणं ॥ (सू० ५४)

पुरुषो णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त ! पुरुष इति पुरुषभावापरित्यागेन 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम !

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तावतः कालादूर्ध्वं मृत्वा स्त्र्यादिभावगमनाद्, उत्कर्षतः सातिरेकं सागरोपमशतपृथक्त्वं, सामान्येन तिर्यङ्नराम-रभवेष्वेतावन्तं कालं पुरुषेष्वेव भावसम्भवात्, सातिरेकता कतिपयमनुष्यभवैर्वेदितव्या, अत ऊर्ध्वं पुरुषनामकर्मोदयाभावतो नियमत एव स्त्र्यादिभावगमनात् । तिर्यग्योनिकपुरुषाणां यथा तिर्यग्योनिकस्त्रीणां तथा वक्तव्यं, तच्चैवम्—तिर्यग्योनिकपुरुषस्तिर्यग्योनिकपुरुषत्व-मजहत् जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मृत्वा गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्र पूर्वकोटिपृथक्त्वं सप्त भवाः पूर्वकोट्यायुषः पूर्वविदेहादौ (यतः) त्रीणि पल्योपमान्यष्टमे भवे देवकुरूत्तरकुरुषु, (यतः) विशेषचिन्तायां जलचरपुरुषो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं मरणभावेन तिर्यग्योन्यन्तरे गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, पूर्वकोट्यायुःसमन्वितस्य भूयो भूयस्तत्रैव द्व्यादिवारोत्पत्तिसम्भवात् । चतुष्पदस्थलचरपुरुषो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्यो-पमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि सामान्यतिर्यक्पुरुषस्येव भावनीयानि । उरःपरिसर्पस्थलचरपुरुषो भुजपरिसर्पस्थलचरपु-रुषश्च जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तच्च जलचरपुरुषस्येव भावनीयं । खचरपुरुषो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, अन्तर्मुहूर्त्त-भावना सर्वत्रापि प्रागिव, उत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, स च सप्त वारान् पूर्वकोटिस्थितिपूत्पद्याष्टम-वारमन्तरद्वीपादिखचरपुरुषेषु पल्योपमासङ्ख्येयभागस्थितिषूत्पद्यमानस्य वेदितव्यः । 'मणुस्सपुरिसाणं जहा मणुस्सित्थीण'मिति, मनुष्यपुरुषाणां यथा मनुष्यस्त्रीणां तथा वक्तव्यं, तच्चैवं—सामान्यतो मनुष्यपुरुषस्य क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं मृत्वा गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्र सप्त भवाः पूर्वकोट्यायुषो महाविदेहेषु अष्टमस्तु देवकुर्वादिषु, धर्मचरणं प्रतीत्य समयमेकं, द्वितीयसमये मरणभावात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, उत्कर्षतोऽपि पूर्वकोट्यायुष

एव वर्षाष्टकादूर्द्ध्वं चरणप्रतिपत्तिभावात्, विशेषचिन्तायां सामान्यतः कर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषः कर्मभूमिरूपं क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्रान्तर्मुहूर्त्तभावना प्रागिव, त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि सप्त वारान् पूर्वकोट्यायुःसमन्वितेषूत्पद्याष्टमं वारमेकान्तसुषमायां भरतैरावतयोस्त्रिपल्योपमस्थितिपूत्पद्यमानस्य वेदितव्यानि, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयं, सर्वविरतिपरिणामस्यैकसामयिकस्यापि सम्भवात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, समप्रचरणकालस्याप्येतावत एव भावात्। भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषोऽपि भरतैरावतक्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनपूर्वकोट्यभ्यधिकानि, तानि च पूर्वकोट्यायुःसमन्वितस्य विदेहपुरुषस्य भरतादौ संहृत्यानीतस्य भरतादिवासयोगाद् भरतादिप्रवृत्तव्यपदेशस्य भवायुःक्षये एकान्तसुषमाप्रारम्भे समुत्पन्नस्य वेदितव्यानि, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, एतच्च द्वयमपि प्रागिव भावनीयं, पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषः क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तच्च भूयो भूयस्तत्रैव सप्तवारानुत्पत्त्या भावनीयं, अत ऊर्द्ध्वं त्ववश्यं गत्यन्तरे योन्यन्तरे वा संक्रमभावात्, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी। तथा सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषस्तद्भावमपरित्यजन् जन्म प्रतीत्य जघन्यत एकं पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तच्चान्तर्मुहूर्त्तायुःशेषस्याकर्म्मभूमिषु संहृतस्य वेदितव्यं, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि, तानि च देशोनपूर्वकोट्यायुःसमन्वितस्योत्तरकुर्वादौ संहृतस्य तत्रैव मृत्वोत्पन्नस्य वेदितव्यानि, देशोनता च पूर्वकोट्या गर्भकालेन न्यूनत्वाद्, गर्भस्थितस्य संहरणप्रतिषेधात्। हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषो जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं पल्योपममुत्कर्षतः परिपूर्णं

पल्योपमं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकमेकं पल्योपमं, अत्र भावना प्रागुक्तानुसारेण स्वयं कर्त्तव्या । हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषो जन्म प्रतीत्य जघन्यतो द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने, उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे, जघन्यत उत्कर्षतश्च तत्रैतावत आयुषः सम्भवात्, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं न्यूनान्तर्मुहूर्त्तायुषः संहरणाऽसम्भवात्, उत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिके द्वे पल्योपमे, भावनाऽत्र प्राग्वत् । देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यपुरुषः क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनपूर्वकोट्यधिकानि । अन्तरद्वीपकमनुष्यपुरुषो जन्म प्रतीत्य देशोनं पल्योपमासङ्ख्येयभागमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमासङ्ख्येयभागं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिसमभ्यधिकः पल्योपमासङ्ख्येयभागः । 'देवाणं जा चेव ठिई सा चेव संचिट्ठणा भाणियव्वा' देवानां यैव स्थितिः प्रागभिहिता सैव 'संचिट्ठणा' इति कायस्थितिर्भणितव्या, नन्वनेकभवभावाश्रया कायस्थितिः सा कथमेकस्मिन् भवे भवति ?, नैष दोषः, देवपुरुषो देवपुरुषत्वापरित्यागेन कियन्तं कालं यावन्निरन्तरं भवति ? इत्येतावदेवात्र विवक्षितं, तत्र देवो मृत्वाऽऽनन्तर्येण भूयो देवो न भवति ततः 'देवाणं जा ठिई सा चेव संचिट्ठणा भाणियव्वा' इत्यतिदेशः कृतः ॥ तदेवमुक्तं सातत्येनावस्थानमिदानीमन्तरमाह—

पुरिसस्स णं भंते ! केवतियं कालं अंतरं होइ ?, गोयमा ! जह० एक्कं समयं उक्को० वणस्सतिकालो तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो एवं जाव खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसाणं ॥ मणुस्सपुरिसाणं भंते ! केवतियं कालं अंतरं होइ ?, गोयमा ! खेत्तं

पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० अणंतं कालं अणंताओ उस्स० जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, कम्मभूमकाणं जाव विदेहो जाव धम्मचरणे एक्को समओ सेसं जहित्थीणं जाव अंतरदीवकाणं ॥ देवपुरिसाणं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, भवणवासिदेवपुरिसाणं ताव जाव सहस्सारो, जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो । आणतदेवपुरिसाणं भंते ! केवतियं कालं अंतरं होइ ?, गोयमा ! जह० वासपुहुत्तं उक्को० वणस्सतिकालो, एवं जाव गेवेज्जदेवपुरिसस्सवि । अणुत्तरोववातियदेवपुरिसस्स जह० वासपुहुत्तं उक्को० संखेज्जाइं सागरोवमाइं साइरेगाइं ॥ (सू० ५५)

'पुरिसस्सणं' इत्यादि, पुरुषस्य णमिति वाक्यालङ्कारे पूर्ववत् भदन्त ! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ?, पुरुषः पुरुषत्वात्परिभ्रष्टः सन् पुनः कियता कालेन तदवाप्नोतीत्यर्थः, तत्र भगवानाह—गौतम ! जघन्येनैकं समयं—समयादनन्तरं भूयोऽपि पुरुषत्वमवाप्नोतीति भावः, इयमत्र भावना—यदा कश्चित्पुरुष उपशमश्रेणिगत उपशान्ते पुरुषवेदे समयमेकं जीवित्वा तदनन्तरं म्रियते तदाऽसौ नियमाद्देवपुरुषेपूत्पद्यते इति समयमेकमन्तरं पुरुषत्वस्य, ननु स्त्रीनपुंसकयोरपि श्रेणिलाभो भवति तत्कस्मादनयोरप्येवमेकः समयोऽन्तरं न भवति ?, उच्यते, स्त्रिया नपुंसकस्य च श्रेण्यारूढाववेदकभावानन्तरं मरणेन तथाविधशुभाध्यवसायतो नियमेन देवपुरुषत्वेनोत्पादात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स चैवमभिलपनीयः—"अणंताओ उस्सप्पिणीओ ओसप्पिणीओ कालतो खेत्तओ अणंता लोगा असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइ भागो" इति ॥ तदेवं सामान्यतः पुरुषत्वस्यान्तरमभिधाय सम्प्रति तिर्यक्पुरुषविष-

यमतिदेशमाह—'**जं तिरिक्खजोणित्थीणमंतर**'मित्यादि, यत्तिर्यग्योनिकस्त्रीणामन्तरं प्रागभिहितं तदेव तिर्यग्योनिकपुरुषाणामप्यविशेषितं वक्तव्यं, तच्चैवम्—सामान्यतस्तिर्यक्पुरुषस्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं तावत्कालस्थितिना मनुष्यादिभवेन व्यवधानात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽसङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्ताख्यः, तावता कालेनामुक्तौ सत्यां नियोगतः पुरुषत्वयोगात्, एवं विशेषचिन्तायां जलचरपुरुषस्य स्थलचरपुरुषस्य खचरपुरुषस्यापि प्रत्येकं जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं ॥ सम्प्रति मनुष्यपुरुषत्वविषयान्तरप्रतिपादनार्थमतिदेशमाह—'**जं मणुस्सइत्थीणमंतरं तं मणुस्सपुरिसाण**'मिति, यन्मनुष्यस्त्रीणामन्तरं प्रागभिहितं तदेव मनुष्यपुरुषाणामपि वक्तव्यं, तच्चैवम्—सामान्यतो मनुष्यपुरुषस्य जघन्यतः क्षेत्रमधिकृत्यान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च प्रागिव भावनीयं, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यत एकं समयं, चरणपरिणामात्परिभ्रष्टस्य समयानन्तरं भूयोऽपि कस्यचिच्चरणप्रतिपत्तिसम्भवात्, उत्कर्षतो देशोनापार्द्धपुद्गलपरावर्त्तः, एवं भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषस्य पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषस्य जन्म प्रतीत्य चरणमधिकृत्य च प्रत्येकं जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं । सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषस्य जन्म प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तरं दश वर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, अकर्मभूमकमनुष्यपुरुषत्वेन मृतस्य जघन्यस्थितिषु देवेषूत्पद्य[ते], ततोऽपि च्युत्वा कर्मभूमिषु स्त्रीत्वेन पुरुषत्वेन वोत्पद्य कस्याप्यकर्मभूमित्वेन भूयोऽप्युत्पादात्, देवभवाच्च्युत्वाऽनन्तरमकर्म्मभूमिषु मनुष्यत्वेन तिर्यक्सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियत्वेन वा उत्पादाभावादपान्तराले कर्म्मभूमिकेषु मृत्लोत्पादाभिधानं, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, अकर्म्मभूमेः कर्म्मभूमिषु संहृत्यान्तर्मुहूर्त्तानन्तरं तथाविधबुद्धिपरावर्त्तादिभावतो भूयस्तत्रैव नयनसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एतावतः कालादूर्द्ध्वमकर्मभूमिषूत्पत्तिवत् संहरणस्यापि नियोगतो भावात् । एवं हैमवतैरण्यवतादिष्वप्यकर्म्मभूमिषु जन्मतः संहरणतश्च जघन्यत

उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं यावदन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषवक्तव्यता ॥ सम्प्रति देवपुरुषाणामन्तरप्रतिपादनार्थमाह—'देवपुरिसस्स णं भंते!' इत्यादि, देवपुरुषस्य भदन्त! कालतः कियच्चिरमन्तरं भवति ?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, देवभवाच्च्युत्वा गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्येषूत्पद्य पर्याप्तिसमाप्त्यनन्तरं तथाविधाध्यवसायमरणेन भूयोऽपि कस्यापि देवत्वेनोत्पादसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एवमसुरकुमारादारभ्य निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावत्सहस्रारकल्पदेवपुरुषस्यान्तरं, आनतकल्पदेवस्यान्तरं जघन्येन वर्षपृथक्त्वं, कस्मादेतावदिहान्तरमिति चेदुच्यते इह यो गर्भस्थः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः स शुभाध्यवसायोपेतो मृतः सन् आनतकल्पादारतो ये देवास्तेषूत्पद्यते नानतादिषु, तावन्मात्रकालस्य तद्योग्याध्यवसायविशुद्ध्यभावात्, ततो य आनतादिभ्यश्च्युतः सन् भूयोऽप्यानतादिषूत्पत्स्यते स नियमाच्चारित्रमवाप्य, चारित्रं चाष्टमे वर्षे, तत उक्तं जघन्यतो वर्षपृथक्त्वम्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एवं प्राणतारणाच्युतकल्पग्रैवेयकदेवपुरुषाणामपि प्रत्येकमन्तरं जघन्यत उत्कर्षतश्च वक्तव्यम्, अनुत्तरोपपातिककल्पातीतदेवपुरुषस्य जघन्यतोऽन्तरं वर्षपृथक्त्वमुत्कर्षतः सङ्ख्येयानि सागरोपमाणि सातिरेकाणि, तत्र सङ्ख्येयानि सागरोपमाणि तदन्यवैमानिकेषु सङ्ख्येयवारोत्पत्त्या, सातिरेकाणि मनुष्यभवैः, तत्र सामान्याभिधानेऽप्येतदपराजितान्तमवगन्तव्यं, सर्वार्थसिद्धे सकृद्देवोत्पादतस्तत्रान्तरासम्भवात्, अन्ये त्वभिदधति—भवनवासिन आरभ्य आईशानादमरस्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, सनत्कुमारादारभ्यासहस्राराच्च नव दिनानि, आनतकल्पादारभ्याच्युतकल्पं यावच्च नव मासाः, नवसु ग्रैवेयकेषु सर्वार्थसिद्धमहाविमानवर्जेष्वनुत्तरविमानेषु च नव वर्षाणि, ग्रैवेयकान् यावत् सर्वत्राप्युत्कर्षतो वनस्पतिकालः, विजयादिषु चतुर्षु महाविमानेषु द्वे सागरोपमे, उक्तञ्च—"[1]आईसाणादमरस्स

१ आईशानादन्तरममराणां हीनं मुहूर्त्तान्त· । आ सहस्रारात् अच्युतात् अनुत्तरात् दिनमासवर्षनवकम् ॥ १ ॥ स्थावरकाल उत्कृष्ट. सर्वार्थे द्वितीयो नोत्पादः । द्वे सागरोपमे विजयादिषु.

अंतरं हीणयं मुहुत्तंतो । आसहसारे अच्चुयणुत्तरदिणमासवासनव ॥ १ ॥ थावरकालुक्कोसो सव्वट्ठे बीयओ न उववाओ । दो अ-यरा विजयादिसु" इति ॥ तदेवमुक्तमन्तरं, साम्प्रतमल्पबहुत्वं वक्तव्यं, तानि च पञ्च, तद्यथा—प्रथमं सामान्याल्पबहुत्वं, द्वितीयं त्रिविधतिर्यक्पुरुषविषयं, तृतीयं त्रिविधमनुष्यपुरुषविषयं, चतुर्थं चतुर्विधदेवपुरुषविषयं, पञ्चमं मिश्रपुरुषविषयं, तत्र प्रथमं ताव-दभिधित्सुराह—

अप्पाबहुयाणि जहेवित्थीणं जाव एतेसि णं भंते ! देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमंतराणं जोतिसियाणं वेमाणियाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणियदेवपुरिसा भवणवइदेवपुरिसा असंखे० वाणमंतरदेवपुरिसा असंखे० जोतिसिया देवपुरिसा संखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमकाणं अकम्मभूमकाणं अंतरदिव० देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमन्तराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं सोधम्माणं जाव सव्वट्ठसिद्धगाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा बहुगा वा जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा अंतरदीवगमणुस्सपुरिसा देवकुरूत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखेज्ज० हरिवासरम्मगवासअक० दोवि संखेज्जगुणा हेमवतहेरण्णवतवासअकम्म० दोवि संखि० भरहेरवतवासकम्मभूमगमणु० दोवि संखे० पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभू० दोवि संखे० अणुत्तरोववा-

तियदेवपुरिसा असंखि० उवरिमगेविज्जदेवपुरिसा संखेज्ज० मज्झिमगेविज्जदेवपुरिसा संखेज्ज० हेट्ठि-मगेविज्जदेवपुरिसा संखे० अच्चुयकप्पे देवपुरिसा संखे०, जाव आणतकप्पे देवपुरिसा संखेज्ज० सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखे० महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखे० जाव माहिंदे कप्पे देव-पुरिसा असंखे० सणंकुमारकप्पे देवपुरिसा असं० ईसाणकप्पे देवपुरिसा असंखे० सोधम्मे कप्पे देवपुरिसा संखे० भवणवासिदेवपुरिसा असंखे० खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा असंखे० थलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखे० जलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा असंखे० वाणमंतरदेव-पुरिसा संखे०, जोतिसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा ॥ (सू० ५६)

'पुरिसाणं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका मनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यो देवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तिर्यग्योनिकपुरुषाणां यथा तिर्यग्योनिकस्त्रीणां मनुष्यपुरुषाणां यथा मनुष्यस्त्रीणामल्पबहुत्वं (तथा) वक्तव्यं। सम्प्रति देवपुरुषाणामल्पबहुत्वमाह—सर्वस्तोका अनुत्तरोपपातिकदेवपुरुषाः, क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्य उपरितनग्रैवेयकदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरक्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्तिनभःप्रदेशराशिमानत्वात्, कथमेतदवसेयमिति चेदुच्यते—विमानबाहुल्यात्, तथाहि—अनुत्तरदेवानां पञ्च विमानानि, विमानशतं तूपरितनग्रैवेयकप्रस्तटे, प्रतिविमानं चासङ्ख्येया देवाः, यथा चाधोऽधोवर्तीनि विमानानि तथा तथा देवा अपि प्राचुर्येण लभ्यन्ते, ततोऽवसी-

यते—अनुत्तरविमानवासिदेवपुरुषापेक्षया बृहत्तरक्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणा उपरितनग्रैवेयकप्रस्तटे देवपुरुषाः (संख्येयगुणा) एवमुत्तरत्रापि भावना विधेया, तेभ्यो मध्यमग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यच्युतकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यारणकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, यद्यप्यारणाच्युतकल्पौ समश्रेणीकौ समविमानसङ्ख्याकौ च तथाऽपि कृष्णपाक्षिकास्तथास्वाभाव्यात्प्राचुर्येण दक्षिणस्यां दिशि समुत्पद्यन्ते । अथ के ते कृष्णपाक्षिकाः ?, उच्यते; इह द्वये जीवाः, तद्यथा—कृष्णपाक्षिकाः शुक्लपाक्षिकाश्च, तत्र येषां किञ्चिदूनोऽपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तः संसारस्ते शुक्लपाक्षिकाः, इतरे दीर्घसंसारभाजिनः कृष्णपाक्षिकाः, उक्तञ्च—"जेसिमवड्ढो पुग्गलपरियट्टो सेसओ य संसारो । ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण कण्हपक्खीया ॥ १ ॥" अत एव स्तोकाः शुक्लपाक्षिकाः, अल्पसंसाराणां स्तोकानामेव सम्भवात्, बहवः कृष्णपाक्षिकाः, दीर्घसंसाराणामनन्तानन्तानां भावात्, अथ कथमेतदवसातव्यं यथा कृष्णपाक्षिकाः प्राचुर्येण दक्षिणस्यां दिशि समुत्पद्यन्ते, उच्यते, तथास्वाभाव्यात्, तच्च तथास्वाभाव्यमेवं पूर्वाचार्यैर्युक्तिभिरुपबृंहितं—कृष्णपाक्षिकाः खलु दीर्घसंसारभाजिन उच्यन्ते, दीर्घसंसारभाजिनश्च बहुपापोदयात्, बहुपापोदयाश्च क्रूरकर्माणः, क्रूरकर्माणश्च प्रायस्तथास्वाभाव्याद् तद्भवसिद्धिका अपि दक्षिणस्यां दिशि समुत्पद्यन्ते; यत उक्तम्—"पायमिह कूरकम्मा भवसिद्धीयावि दाहिणिल्लेसु । नेरइयतिरियमणुयासुराइठाणेसु गच्छंति ॥ १ ॥" ततो दक्षिणस्यां दिशि प्राचुर्येण कृष्णपाक्षिकाणां सम्भवादुपपद्यते—अच्युतकल्पदेवपुरुषापेक्षयाऽऽर-

---

१ येषामपार्धः पुद्गलपरावर्त्तः शेष एव संसारः । ते शुक्लपाक्षिकाः खलु अधिके पुनः कृष्णपाक्षिकाः ॥ १ ॥ २ प्राय इह क्रूरकर्माणो भवसिद्धिका अपि दाक्षिणात्येषु । नैरयिकतिर्यङ्मनुजासुरादिस्थानेषु गच्छन्ति ॥ १ ॥

णकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि प्राणतकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यानतकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, अत्रापि प्राणतकल्पापेक्षया सङ्ख्येयगुणत्वं कृष्णपाक्षिकाणां दक्षिणस्यां दिशि प्राचुर्येण भावात्, एते च सर्वेऽप्यनुत्तरविमानवास्यादय आनतकल्पवासिपर्यन्तदेवपुरुषाः प्रत्येकं क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणा द्रष्टव्याः, "[1]आणयपाणयमाई पल्लस्सासंखभागो उ" इति वचनात्, केवलमसङ्ख्येयो भागो विचित्र इति परस्परं यथोक्तं सङ्ख्येयगुणत्वं न विरुध्यते, आनतकल्पदेवपुरुषेभ्यः सहस्रारकल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिक्याः श्रेणेरसङ्ख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्योऽपि महाशुक्रकल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरश्रेण्यसङ्ख्येयभागाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, कथमेतत्प्रत्येयमिति चेदुच्यते—विमानबाहुल्यात्, तथाहि—षट् सहस्राणि विमानानां सहस्रारकल्पे चत्वारिंशत्सहस्राणि महाशुक्रे, अन्यच्चाधोविमानवासिनो देवा बहुबहुतराः स्तोकस्तोकतरा उपरितनोपरितनविमानवासिनस्तत उपपद्यन्ते सहस्रारकल्पदेवपुरुषेभ्यो महाशुक्रकल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि लान्तककल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तमश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि ब्रह्मलोककल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, भूयोबृहत्तमश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्त्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, भूयस्तरबृहत्तमनभःश्रेण्यसङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशमानत्वात्, तेभ्यः सनत्कुमारकल्पदेवा असङ्ख्येयगुणाः, विमानबाहुल्यात्, तथाहि—द्वादश शतसहस्राणि सनत्कुमारकल्पे विमानानामष्टौ शतसहस्राणि माहेन्द्रकल्पे अन्यच्च दक्षिणदिग्भागवर्त्ती सनत्कुमारकल्पो माहेन्द्रकल्पश्चोत्तरदिग्वर्त्ती दक्षिणस्यां च दिशि बहवः

1 आनतप्राणतादय: पल्योपमस्यासङ्ख्यो भागस्तु

समुत्पद्यन्ते कृष्णपाक्षिकाः, तत उपपद्यन्ते माहेन्द्रकल्पात्सनत्कुमारकल्पे देवा असङ्ख्येयगुणाः, एते च सर्वेऽपि सहस्रारकल्पवासिदे-
वादयः सनत्कुमारकल्पवासिदेवपर्यन्ताः प्रत्येकं स्वस्थाने चिन्त्यमाना घनीकृतलोकैकश्रेण्यसङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणा द्र-
ष्टव्याः, केवलं श्रेण्यसङ्ख्येयभागोऽसङ्ख्येयभेदभिन्नस्तत इत्थमसङ्ख्येयगुणतयाऽल्पबहुत्वमभिधीयमानं न विरोधभाक्, सनत्कुमार-
कल्पदेवपुरुषेभ्य ईशानकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिसम्बन्धिनि द्वितीये वर्गमूले तृतीयेन वर्गमूलेन
गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्सङ्ख्याकासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो
भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यः सौधर्मकल्पवासिदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, विमानबाहुल्यात्, तथाहि—अष्टाविंशतिः शतसहस्राणि
विमानानामीशानकल्पे द्वात्रिंशच्छतसहस्राणि सौधर्म्मकल्पे, अपि च दक्षिणदिग्वर्त्ती सौधर्म्मकल्प ईशानकल्पश्चोत्तरदिग्वर्त्ती, दक्षि-
णस्यां च दिशि बहवः कृष्णपाक्षिका उत्पद्यन्ते, तत ईशानकल्पवासिदेवपुरुषेभ्यः सौधर्मकल्पवासिदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, नन्वियं
युक्तिः सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोरप्युक्ता, परं तत्र माहेन्द्रकल्पापेक्षया सनत्कुमारकल्पे देवा असङ्ख्येयगुणा उक्ता इह तु सौधर्मे कल्पे
सङ्ख्येयगुणास्तदेतत्कथम्?, उच्यते, तथावस्तुस्वाभाव्यात्, एतच्चावसीयते प्रज्ञापनादौ सर्वत्र तथाभणनात्, तेभ्योऽपि भवनवासि-
देवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेः सम्बन्धिनि प्रथमे वर्गमूले द्वितीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिरुप-
जायते तावत्सङ्ख्याकासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाण-
त्वात्, तेभ्यो व्यन्तरदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन्
प्रतरे भवन्ति तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यः सङ्ख्येयगुणा ज्योतिष्कदेवपुरुषाः, षट्पञ्चाशदधिकशतद्वया-

ङ्गुलप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात् ॥ सम्प्रति पञ्चममल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकमनुष्यपुरुषाः, क्षेत्रस्य स्तोकत्वात्, तेभ्योऽपि देवकुरूत्तरकुरुमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्य बहुत्वात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्यातिबहुत्वात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, क्षेत्रस्य समानत्वात्, तेभ्योऽपि हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्याल्पत्वेऽप्यल्पस्थितिकतया प्राचुर्येण लभ्यमानत्वात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, अजितस्वामिकाले उत्कृष्टपदे (इव) स्वभावत एव भरतैरावतेषु [च] मनुष्यपुरुषाणामतिप्राचुर्येण सम्भवात्, स्वस्थाने च द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, क्षेत्रस्य तुल्यत्वात्, तेभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रबाहुल्यादजितस्वामिकाले इव स्वभावत एव मनुष्यपुरुषाणां प्राचुर्येण सम्भवात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽनुत्तरोपपातिकदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तदनन्तरमुपरितनग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषा मध्यमग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषा अधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषा अच्युतकल्पदेवपुरुषा आरणकल्पदेवपुरुषाः प्राणतकल्पदेवपुरुषा आनतकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, भावना प्रागिव, तदनन्तरं सहस्रारकल्पदेवपुरुषा लान्तककल्पदेवपुरुषा ब्रह्मलोककल्पदेवपुरुषा माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषाः सनत्कुमारकल्पदेवपुरुषा ईशानकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, सौधर्म्मकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, सौधर्म्मकल्पदेवपुरुषेभ्यो भवनवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, भावना सर्वत्रापि प्रागिव, तेभ्यः खचरतिर्यग्योनिकपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्,

तेभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि जलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिरत्रापि प्रागिव, तेभ्योऽपि वानमन्तरदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनकोटीप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो ज्योतिष्कदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिः प्रागेवोक्ता ॥

पुरिसवेदस्स णं भंते! कम्मस्स केवतियं कालं बंधट्ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अट्ठ संवच्छराणि, उक्को० दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दसवाससयाइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेओ ॥ पुरिसवेदे णं भंते! किंपकारे पण्णत्ते?, गोयमा! वणदवग्गिजालसमाणे पण्णत्ते, सेत्तं पुरिसा ॥ (सू० ५७)

पुरुषवेदस्थितिर्जघन्यतोऽष्टौ संवत्सराणि, एतन्न्यूनस्य तन्निबन्धनविशिष्टाध्यवसायाभावतो जघन्यत्वेनासम्भवात्, उत्कर्षतो दश सागरोपमकोटीकोटयः, दश वर्षशतान्यबाधा, अबाधोना कर्म्मस्थितिः कर्मनिषेकः, अस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ तथा पुरुषवेदो भदन्त! किंप्रकारः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! दवाग्निज्वालासमानः, प्रारम्भे तीव्रमदनदाह इति भावः, प्रज्ञप्तः ॥ व्याख्यातः पुरुषाधिकारः, सम्प्रति नपुंसकाधिकारप्रस्तावः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

से किं तं णपुंसका?, णपुंसका तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—नेरइयनपुंसका तिरिक्खजोणियनपुंसका मणुस्सजोणियणपुंसका ॥ से किं तं नेरइयनपुंसका?, नेरइयनपुंसका सत्तविधा पण्णत्ता, तंजहा—रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसका सक्करप्पभापुढविनेरइयनपुंसका जाव अधेसत्तमपुढविनेरइयणपुं-

सका, से तं नेरइयनपुंसका ॥ से किं तं तिरिक्खजोणियणपुंसका ?, २ पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा— एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका, बेइंदि० तेइंदि० चउ० पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ॥ से किं तं एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका ?, २ पञ्चविधा पण्णत्ता, तं० पु० आ० ते० वा० व० से तं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ॥ से किं तं बेइंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता०, से तं बेइंदियतिरिक्खजोणिया, एवं तेइंदियावि, चउरिंदियावि ॥ से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा । से किं तं जलयरा ?, २ सो चेव पुव्वुत्तभेदो आसालियवज्जितो भाणियव्वो, से तं पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका॥ सो किं तं मणुस्सनपुंसका ?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवका, भेदो जाव भा० ॥ (सू० ५८)

'से किं तं नपुंसगा' इत्यादि, अथ के ते नपुंसका ?, नपुंसकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकनपुंसकास्तिर्यग्योनिकनपुंसका मनुष्यनपुंसकाश्च ॥ नैरयिकनपुंसकप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ के ते नैरयिकनपुंसकाः ?, पृथ्वीभेदेन सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकनपुंसकाः शर्कराप्रभापृथ्वीनैरयिकनपुंसकाः यावदधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकाः, उपसंहारमाह—'से तं नेरइयनपुंसका' ॥ सम्प्रति तिर्यग्योनिकनपुंसकप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम्, भगवानाह—तिर्यग्योनिकनपुंसकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यावत्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः ॥

२प्रतिपत्तौ पुरुषवेद स्थिति-प्रकारौ सू० ५७ नपुंसक-भेदाः सू० ५८

एकेन्द्रियनपुंसकप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अप्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकास्तेजस्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका वायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः, उपसंहारमाह—'सेत्तं एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका' ॥ द्वीन्द्रियनपुंसकप्रतिपादनार्थमाह—'बेइंदिए'त्यादि, द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका भदन्त! कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! अनेकविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—"पुलाकिमिया" इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावच्चतुरिन्द्रियभेदपरिसमाप्तिः ॥ पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका भदन्त! कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः स्थलचराः खचराश्च, एवं च प्राग्वत्सप्रभेदा वक्तव्याः, उपसंहारमाह—'से तं पंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसगा'। 'से किं तं'मित्यादि, अथ के ते मनुष्यनपुंसकाः?, मनुष्यनपुंसकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमका अकर्मभूमका अन्तरद्वीपकाश्च, एतेऽपि प्राग्वत्सप्रभेदा वक्तव्याः ॥ उक्तो भेदः, सम्प्रति स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

णपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं ॥ नेरइयनपुंसगस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० दसवाससहस्साइं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं, सव्वेसिं ठिती भाणियव्वा जाव अधेसत्तमापुढविनेरइया। तिरिक्खजोणियणपुंसकस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिती प०, गोयमा!, जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी। एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसक० जह० अंतो० उक्को० बावीसं वाससह-

स्साइं, पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता?, जह० अंतो० उक्को० बावीसं वाससहस्साइं, सव्वेसिं एगिंदियणपुंसकाणं ठिती भाणियव्वा, बेइंदियतेइंदियचउरिंदियणपुंसकाणं ठिती भाणितव्वा। पंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, एवं जलयरतिरिक्खचउप्पदथलयरउरगपरिसप्पभुयगपरिसप्पखहयरतिरिक्ख० सव्वेसिं जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी। मणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, धम्मचरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। कम्मभूमगभरहेरवयपुव्वविदेहअवरविदेहमणुस्सणपुंसकस्सवि तहेव, अकम्मभूमगमणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० अंतोमु० साहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, एवं जाव अंतरदीवकाणं॥ णपुंसए णं भंते! णपुंसए त्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्को० तरुकालो। णेरइयणपुंसए णं भंते!, २ गोयमा! जह० दस वाससहस्साइं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं, एवं पुढवीए ठिती भाणियव्वा। तिरिक्खजोणियणपुंसए णं भंते! ति०?, २ गोयमा! जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, एवं एगिंदियणपुंसकस्स णं, वणस्सतिकाइयस्सवि एवमेव,

सेसाणं जह० अंतो० उक्को० असंखिज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणिओसप्पिणीओ कालतो, खेत्तओ असंखेज्जा लोया । बेइंदियतेइंदियचउरिंदियनपुंसकाण य जह० अंतो० उक्को० संखेज्जं कालं । पंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसए णं भंते!?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडिपुहुत्तं । एवं जलयरतिरिक्खचउप्पदथलचरउरगपरिसप्पभुयगपरिसप्पमहोरगाणवि । मणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडिपुहुत्तं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी । एवं कम्मभूमगभरहेरवयपुव्वविदेहअवरविदेहेसुवि भाणियव्वं । अकम्मभूमकमणुस्सणपुंसए णं भंते! जम्मणं (पडुच्च) जह० अंतो० उक्को० मुहुत्तपुहुत्तं, साहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी । एवं सव्वेसिं जाव अंतरदीवगाणं ॥ णपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं । णेरइयणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, जह० अंतो० उक्को० तरुकालो, रयणप्पभापुढवीनेरइयणपुंसकस्स जह० अंतो० उक्को० तरुकालो, एवं सव्वेसिं जाव अधेसत्तमा । तिरिक्खजोणियणपुंसकस्स जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं । एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकस्स जह० अंतो० उक्को० दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं, पुढविआउतेउवाऊणं जह० अंतो० उक्को० वणस्सइकालो ।

वणस्सतिकाइयाणं जह० अंतो० उक्को० असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोया, सेसाणं बेइंदियादीणं जाव खहयराणं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो। मणुस्सणपुंसकस्स खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, धम्मचरणं पडुच्च जह० एगं समयं उक्को० अणंतं कालं जावअवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं कम्मभूमकस्सवि भरतेरवतस्स पुव्वविदेहअवरविदेहकस्सवि। अकम्मभूमकमणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं० ?, जम्मणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, संहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो एवं जाव अंतरदीवगत्ति॥ (सू० ५९)

'नपुंसगस्स णं भंते !' इत्यादि सुगमं, नवरमन्तर्मुहूर्त्तं तिर्यग्मनुष्यापेक्षया द्रष्टव्यं, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सप्तमपृथिवीनारकापेक्षया ॥ तदेवं सामान्यतः स्थितिरुक्ता, सम्प्रति विशेषतस्तां विचिचिन्तयिषुः प्रथमतः सामान्यतो विशेषतश्च नैरयिकनपुंसकविषयामाह—'नेरइयनपुंसगस्स ण'मित्यादि, सामान्यतो नैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विशेषचिन्तायां रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षत एकं सागरोपमं शर्करापृथिवीनैरयिकनपुंकसस्य जघन्यत एकं सागरोपममुत्कर्षतस्त्रीणि सागरोपमाणि वालुकाप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतस्त्रीणि सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्त पङ्कप्रभापृथवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश धूमप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश तमःप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वावि-

शतिः अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतो द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्, क्वचिदतिदेशसूत्रं 'जहा पण्णवणाए ठिइपदे तहे' त्यादि, तत्राप्येवमेवातिदेशव्याख्याऽपि कर्त्तव्या। सामान्यतस्तिर्यग्योनिकनपुंसकस्य स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, सामान्यत एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि, विशेषचिन्तायां पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि अप्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सप्त वर्षसहस्राणि तेजःकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि रात्रिन्दिवानि वातकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि वर्षसहस्राणि वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो दश वर्षसहस्राणि। द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि। त्रीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत एकोनपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानि। चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः षण्मासाः। सामान्यतः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, विशेषचिन्तायां जलचरस्य स्थलचरस्य खचरस्यापि पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी॥ सामान्यतो मनुष्यनपुंसकस्यापि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, कर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, '**धर्मचरणं**' बाह्यवेषपरिकरितप्रव्रज्याप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्द्ध्वं मरणादिभावात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, संवत्सराष्टकादूर्द्ध्वं प्रतिपद्याजन्मपालनात्, भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य च क्षेत्रं धर्म्मचरणं च प्रतीत्य जघन्यत उत्कर्षतश्चैवमेव वक्तव्यम्। अकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य

जन्म प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेणाप्यन्तर्मुहूर्त्तम्, अकर्म्मभूमौ हि मनुष्या नपुंसकाः संमूर्च्छिमा एव भवन्ति, न गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, युगलधर्मिणां नपुंसकत्वाभावात्, संमूर्च्छिमाश्च जघन्यत उत्कर्षतो वाऽन्तर्मुहूर्त्तायुषः, केवलं जघन्यादुत्कृष्टमन्तर्मुहूर्त्तं बृहत्तरमवसेयं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, संहरणादूर्ध्वमामरणान्तमवस्थानसम्भवात्, उत्कर्षतो देशोनता च पूर्वकोट्या गर्भान्निर्गतस्य संहरणसम्भवात्, एवं विशेषचिन्तायां हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य अन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसकस्य च जन्म संहरणं च प्रतीत्यैवमेव वक्तव्यम् ॥ सम्प्रति कायस्थितिमाह—'णपुंसगे णं भंते !' इत्यादि, नपुंसको भदन्त ! नपुंसक इत्यादि, सामान्यतस्तद्भेदापरित्यागेन कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो वनस्पतिकालं, तत्रैकसमयता उपशमश्रेणिसमाप्तौ सत्यामवेदकत्वे सति उपशमश्रेणीतः प्रतिपततो नपुंसकवेदोदयसमयानन्तरं कस्यचिन्मरणात्, तथा मृतस्य चावश्यं देवोत्पादे पुंवेदोदयभावात्, वनस्पतिकालः—आवलिकासङ्ख्येयभागगतसमयराशिप्रमाणासङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्तप्रमाणः । नैरयिकनपुंसककायस्थितिचिन्तायां यदेव सामान्यतो विशेषतश्च स्थितिमानं जघन्यत उत्कर्षतश्चोक्तं तदेवावसातव्यं, भवस्थितिव्यतिरेकेण तत्रान्यस्याः कायस्थितेरसम्भवात् । सामान्यतस्तिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितिचिन्तायां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मृत्वा गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, विशेषचिन्तायामेकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितावपि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं भावना प्राग्वत्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालो यथोदितरूपः, तत्रापि विशेषचिन्तायां पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयकालोऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीप्रमाणः, तथा चाह—"उक्कोसेणमसंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पि-

णीओसप्पिणीओ कालतो, खेत्ततो असंखिज्जा लोगा” एवमप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिककायस्थितिष्वपि वक्तव्यं, वनस्पतिकायि-
ककायस्थितौ तथा वक्तव्यं यथा सामान्यत एकेन्द्रियकायस्थितौ । द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्क-
र्षतः सङ्ख्येयः कालः, स च सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि प्रतिपत्तव्यः । एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थित्योरपि वक्त-
व्यम् । पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तच्च निरन्तरं सप्तभवान् पूर्वकोट्यायुषो
नपुंसकत्वेनानुभवतो वेदितव्यं, तत उर्ध्व त्ववश्यं वेदान्तरे विलक्षणभवान्तरे वा संक्रमात्, एवं जलचरस्थलचरखचरसामान्यतो मनु-
ष्यनपुंसककायस्थितिष्वपि वेदितव्यं, कर्मभूमकमनुष्यनपुंसककायस्थितौ क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षतः पूर्वकोटीपृथक्त्वं
भावना प्रागिव, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अत्रापि भावना पूर्ववत् । एवं भरतैरावतकर्म्मभूम-
कमनुष्यनपुंसककायस्थितौ पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसककायस्थितौ च वाच्यं, सामान्यतोऽकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसककाय-
स्थितिचिन्तायां जन्म प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावत्यपि कालेऽसकृदुत्पादात्, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तपृथक्त्वं, तत ऊर्द्ध्वं तत्र तथोत्पादा-
भावात्, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्द्ध्वं मरणादिभावात् उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी । एवं हैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्य-
कवर्षदेवकुरूत्तरकुर्वन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसककायस्थितिष्वपि वक्तव्यम् ॥ तदेवमुक्ता कायस्थितिः, साम्प्रतमन्तरमभिधित्सुरिदमाह—
‘नपुंसगस्स ण’मित्यादि, नपुंसकस्य णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, नपुंसको भूत्वा नपुंसकत्वात्प-
रिभ्रष्टः पुनः कियता कालेन नपुंसको भवतीत्यर्थः, भगवानाह—गौतम! जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावता पुरुषादिकालेन व्यवधानात्,
उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, पुरुषादिकालस्यैतावत एव सम्भवात्, तथा चात्र सङ्ग्रहणिगाथा—“इत्थिनपुंसा संचि-

ट्ठणेसु-पुरिसंतरे य समओ उ। पुरिसनपुंसा संचिट्ठणंतरे सागर पुहुत्तं ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका—संचिट्ठणा नाम सातत्येनावस्थानं, तत्र स्त्रिया नपुंसकस्य च सातत्येनावस्थाने पुरुपान्तरे च जघन्यत एकः समय. तथा यथा प्रागभिहितम्—"इत्थीए णं भंते! इत्थीत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! एगेणं आदेसेणं जह० एगं समयं" इत्यादि, तथा—नपुंसगे णं भंते! नपुंसगत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जह० एक्कं समयं" इत्यादि, तथा—"पुरिसस्स णं भंते! अंतरं कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं" इत्यादि। तथा पुरुपस्य नपुंसकस्य यथाक्रमं संचिट्ठणा—सातत्येनावस्थानमन्तरं चोत्कर्पतः 'सागरपृथक्त्वं' पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् सागरोपमशतपृथक्त्वं, तथा च प्रागभिहितम्—"पुरिसे णं भंते! पुरिसेत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं" नपुंसकान्तरोत्कर्पप्रतिपादकं चेदमेवाधिकृतं तत्सूत्रमिति। तथा सामान्यतो नैरयिकनपुंसकस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, सप्तमनरकपृथिव्या उद्धृत्य तन्दुलमत्स्यादिभवेष्वन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः सप्तमनरकपृथिवीगमनस्य श्रवणात्, उत्कर्पतो वनस्पतिकालः, नरकभवादुद्धृत्य पारम्पर्येण निगोदेषु मध्ये गत्वाऽनन्तं कालमवस्थानात्, एवं विशेषचिन्तायां प्रतिपृथिव्यपि वक्तव्यं। तथा सामान्यचिन्तायां तिर्यग्योनिकनपुंसकस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं, सातिरेकत्वभावना प्रागिव, विशेपचिन्तायां सामान्यत एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्यान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं तावता द्वीन्द्रियादिकालेन व्यवधानात्, उत्कर्षतो द्वे सागरोपमसहस्रे, सङ्ख्येयवर्षाणि त्रसकायस्थितिकालस्य एकेन्द्रियत्वव्यवधायकस्योत्कर्षतोऽप्येतावत एव सम्भवात्। पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः। एवमप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकानामपि वक्तव्यं। वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्य-

तोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं यावत्, स चासङ्ख्येयः कालोऽसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, किमुक्तं भवति ?—असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशानां प्रतिसमयमेकैकापहारे यावत्य उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो भवन्ति तावन्त इत्यर्थः, वनस्पति-भवात्प्रच्युतस्यान्यत्रोत्कर्षत एतावन्तं कालमवस्थानसम्भवात्, तदनन्तरं संसारिणो नियमेन भूयो वनस्पतिकायिकत्वेनोत्पादसम्भवात् । द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकानां जलचरस्थलचरखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकानां सामान्यतो मनु-ष्यनपुंसकस्य च जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालो वनस्पतिकालो यथोक्तस्वरूपः प्रतिपत्तव्यः, कर्म-भूमकमनुष्यनपुंसकस्यान्तरं क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयं यावत्, लब्धिपातस्य सर्वजघन्यस्यैकसामयिकत्वात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, तमेवानन्तं कालं निर्द्धारयति—"अणंताओ उस्सप्पिणीओस-प्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं"मिति, एवं भरतैरावतपूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्य-नपुंसकानामपि क्षेत्रं धर्म्मचरणं च प्रतीत्य जघन्यमुत्कृष्टं चान्तरं प्रत्येकं वक्तव्यम् । अकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य जन्म प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावता गत्यन्तरादिकालेन व्यवधानभावात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तथैवं—कोऽपि कर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकः केनाप्यकर्म्मभूमौ संहृतः, स च मागधपुरुषस्थानत्वादकर्म्मभूमक इति व्यपदिश्यते, ततः कियत्कालानन्तरं तथाविधबुद्धिपरावर्त्तनभावतो भूयोऽपि कर्म्मभूमौ संहृतः, तत्र चान्तर्मुहूर्त्तं धृत्वा पुनरप्यकर्म्मभूमावानीतः, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः। एवं विशेषचिन्तायां हैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्यकदेवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकानामन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसकस्य च जन्म संहरणं च प्रतीत्य जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यम् ॥ तदेवमुक्तमन्तरमधुनाऽल्पबहुत्वमाह—

एतेसि णं भंते! णेरइयणपुंसकाणं तिरिक्खजोणियनपुंसकाणं मणुस्सणपुंसकाण य कयरे कयरे-हिन्तो जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा! सव्वथोवा मणुस्सणपुंसका नेरइयनपुंसगा असंखेज्जगुणा तिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! रयणप्पहापुढविणेरइयणपुंसकाणं जाव अहेसत्तमपुढविणेरइयणपुंसकाण य कयरे २ हिंतो जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा! सव्वत्थोवा अहेसत्तमपुढविनेरइयणपुंसका छट्ठपुढविणेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा जाव दोचपुढविणेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं पुढविकाइय जाव वणस्सतिकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं बेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराण य कतरे२हिन्तो जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा! सव्वथोवा खहयरतिरिक्खजोणियणपुंसका, थलयरतिरिक्खजोणियनपुंसका संखेज्ज० जलयरतिरिक्खजोणियनपुंसका संखेज्ज० चतुरिंदियतिरि० विसेसाहिया तेइंदियति० विसेसाहिया बेइंदियति० विसेसा० तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खा असंखेज्जगुणा पुढविक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया, एवं आउवाउवणस्सतिकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमिणपुंसकाणं अकम्मभूमिणपुंसकाणं अंत-

२प्रतिपत्तौ नपुंसका-नामल्प-बहुत्वं सू० ६०

रदीवकाण य कतरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा अंतरदीवगअकम्मभूमग-मणुस्सणपुंसका देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगा दोवि संखेज्जगुणा एवं जाव पुव्वविदेहअवरवि-देहकम्म० दोवि संखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते ! णेरइयणपुंसकाणं रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंस-काणं जाव अधेसत्तमापुढविणेरइयणपुंसकाणं तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्ख-जोणियाणं पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जाव वणस्सतिकाइय० वेइंदियतेइं-दियचतुरिंदियपंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सणपुंस-काणं कम्मभूमिकाणं अकम्मभूमिकाणं अंतरदीवकाण य कतरे २ हिंतो अप्पा ४, गोयमा ! सव्व-त्थोवा अधेसत्तमपुढविणेरइयणपुंसका छट्ठपुढविनेरइयनपुंसका असंखेज्ज० जाव दोच्चपुढविणे-रइयणपुं० असंखे० अंतरदीवगमणुस्सणपुंसका असंखेज्जगुणा, देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभू-मिक० दोवि संखेज्जगुणा जाव पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका दोवि संखेज्ज-गुणा, रयणप्पभापुढविणेरइयणपुंसका असंखे० खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका असं० थलयर० संखिज्ज० जलयर० संखिज्जगुणा चतुरिंदियतिरिक्खजोणिय० विसेसाहिया तेइंदिय० विसे० बेइंदिय० विसे० तेउक्काइयएगिंदिय० असं० पुढविकाइयएगिंदिय० विसेसाहिया

आउक्काइय० विसे० वाउकाइय० विसेसा० वणस्सइकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा ॥ (सू० ६०)

'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम ! सर्वस्तोका मनुष्यनपुंसकाः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशौ तद्गतप्रथमवर्गमूले द्वितीयवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तत्वात् ॥ सम्प्रति नैरयिकनपुंसकविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकाः, अभ्यन्तरश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि षष्ठपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि पञ्चमपृथ्वीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि चतुर्थपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि तृतीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि द्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, सर्वेषामप्येतेषां पूर्वपूर्वनैरयिकपरिमाणहेतुश्रेण्यसङ्ख्येयभागापेक्षयाऽसङ्ख्येयगुणासङ्ख्येयगुणश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, द्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकेभ्योऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशौ तद्गतप्रथमवर्गमूले द्वितीयवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, प्रतिपृथिवि च पूर्वोत्तरपश्चिमदिग्भाविनो नैरयिकाः सर्वस्तोकाः, तेभ्यो दक्षिणदिग्भाविनोऽसङ्ख्येयगुणाः, पूर्वपूर्वपृथिवीगतदक्षिणदिग्भाविभ्योऽप्युत्तरस्यामुत्तरस्यां पृथिव्यामसङ्ख्येयगुणाः पूर्वोत्तरपश्चिमदिग्भाविनः, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायाम्—"दिसाणुवाएणं सव्व-

थोवा अहेसत्तमपुढविनेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणेहिंतो अहेसत्तमपुढविनेरइएहिंतो छट्ठाए तमाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो तमापुढविनेरइएहिंतो पंचमाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो धूमप्पभापुढविनेरइएहिंतो चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो पंकप्पभापुढविनेरइएहिंतो तइयाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा,दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो वालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो दुइयाए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो सक्करप्पभापुढवीनेरइएहितो इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा"। सम्प्रति तिर्यग्योनिकनपुंसकविषयमल्पबहुत्वमाह—**'एएसि णं'**मित्यादि, सर्वस्तोकाः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरप्रतरासंङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगतनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि जलचरतिर्यग्योनिकनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तमप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिमानत्वात्, तेभ्योऽपि चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, असङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणाकाशप्रदेशराशिप्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यस्त्रीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततरश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततमश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिमानत्वात्, तेभ्यस्तेजस्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अस-

ङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मबादरभेदभिन्नानां तेषामसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणत्वात्, तेभ्यः पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूतासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽप्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततरासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशमानत्वात्, तेभ्योऽपि वायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततमासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, अनन्तलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् ॥ अधुना मनुष्यनपुंसकविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं'मित्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपजमनुष्यनपुंसकाः, एते च संमूर्च्छनजा द्रष्टव्याः, गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यनपुंसकानां तत्रासम्भवात्, संहृतास्तु कर्म्मभूमिजास्तत्र भवेयुरपि, तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, तद्गतगर्भजमनुष्याणामन्तरद्वीपजगर्भजमनुष्येभ्यः सङ्ख्येयगुणत्वात्, गर्भजमनुष्योच्चाराद्याश्रयेण च संमूर्च्छिममनुष्याणामुत्पादात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, एवं तेभ्यो हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः तेभ्योऽपि हैमवतहैरण्यवतवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतवर्षकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, युक्तिः सर्वत्रापि तथैवानुसर्त्तव्या ॥ सम्प्रति नैरयिकतिर्यग्मनुष्यविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकाः, तेभ्यः षष्ठपञ्चमचतुर्थतृतीयद्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, द्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकेभ्योऽन्तरद्वीपजमनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, एतदसङ्ख्येयगुणत्वं संमूर्च्छनजमनुष्यापेक्षं, तेषां नपुंसकत्वादेतावतां च तत्र संमूर्च्छनसम्भवात्,

तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थानचिन्तायां तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकेभ्योऽस्यां प्रत्यक्षत उपलभ्यमानायां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका जलचर-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, जलचरपञ्चेन्द्रियनपुंसकेभ्यश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकेभ्यस्तेजस्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः पृथिव्यम्बुवायुतिर्यग्यो-निकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, वाय्वेकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकेभ्यो वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, युक्तिः सर्वत्रापि प्रागुक्तानुसारेण स्वयं भावनीया ॥ सम्प्रति नपुंसकवेदकर्म्मणो बन्धस्थितिं नपुंसकवेदस्य प्रकारं चाह—

णपुंसकवेदस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिई पन्नत्ता?, गोयमा! जह० सागरोवमस्स दोन्नि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणगा उक्को० वीसं सागरोवमकोडाको-डीओ, दोण्णि य वाससहस्साइं अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेगो। णपुंसकवेदे णं भंते! किंपगारे पण्णत्ते?, गोयमा! महाणगरदाहसमाणे पण्णत्ते समणाउसो!, से तं णपुंसका ॥ (सू० ६१)

'नपुंसकवेयस्स णं भंते! कम्मस्स' इत्यादि, प्राग्वद्भावनीयं, नवरं महानगरदाहसमानमिति सर्वावस्थासु सर्वप्रकारं, मदनदाह(:समान)

इत्यर्थः ॥ सम्प्रत्यष्टावल्पबहुत्वानि वक्तव्यानि, तद्यथा—प्रथमं सामान्येन तिर्यक्स्त्रीपुरुषनपुंसकप्रतिबद्धम्, एवमेव मनुष्यप्रतिबद्धं द्वितीयं, देवस्त्रीपुरुषनारकनपुंसकप्रतिबद्धं तृतीयं, सकलसम्मिश्रं चतुर्थं, जलचर्यादिविभागतः पञ्चमं, कर्म्मभूमिजादिमनुष्यस्त्र्यादिविभागतः पष्ठं, भवनवास्यादिदेव्यादिविभागतः सप्तमं, जलचर्यादिविजातीयव्यक्तिव्यापकमष्टमं, तत्र प्रथममभिधित्सुराह—

एतेसि णं भंते! इत्थीणं पुरिसाणं नपुंसकाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा पुरिसा इत्थीओ संखि० णपुंसका अणंत०। एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणिइत्थीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं तिरिक्खजोणियणपुंसकाण य कयरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणियपुरिसा तिरिक्खजोणिइत्थीओ असंखे० तिरिक्खजो० णपुंसगा अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! मणुस्सित्थीणं मणुस्सपुरिसाणं मणुस्सणपुंसकाण य कयरे २हिन्तो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्व० मणुस्सपुरिसा मणुस्सित्थीओ संखे० मणुस्सणपुंसका असंखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते! देवित्थीणं देवपुरिसाणं णेरइयणपुंसकाण य कयरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा णेरइयणपुंसका देवपुरिसा असं० देवित्थीओ संखेज्जगुणाओ ॥ एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं तिरिक्खजो० णपुंसकाणं मणुस्सित्थीणं मणुस्सपुरिसाणं मणुस्सनपुंसकाणं देवित्थीणं देवपुरिसाणं णेरइयणपुंसकाण य कतरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सपुरिसा मणुस्सित्थीओ संखे० मणुस्सणपुंसका असं० णेरइयणपुंसका असं० तिरि-

क्खजोणियपुरिसा असं० तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्ज० देवपुरिसा असं० देवित्थियाओ संखि० तिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजो० णपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजो० णपुंसकाणं जाव वणस्सतिकाइय० बेइंदियतिरिक्खजोणिणपुंसकाणं तेइंदिय० चउरिंदिय० पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं कतरे २ हिंतो जाव विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्ज० थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियपुरिसा संखे० थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणित्थियाओ संखे० जलयरतिरिक्खजो० पुरिसा संखि० जलयरतिरिक्खजोणित्थीयाओ संखेज्जगु० खहयरपंचिंदियतिरिक्खजो० णपुंसका असंखे० थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणि० नपुंसगा संखि० जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका संखे० चउरिंदियतिरि० विसेसाहिया तेइंदियणपुंसका विसेसाहिया बेइंदियनपुंसका विसेसा० तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका असं० पुढवि० णपुंसका० विसेसाहिया आउ० विसेसाहिया वाउ० विसेसा० वणप्फति० एगिन्दियणपुंसका अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमगाणं अंतरदीवियाणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमकाणं

अकम्मभूमकाणं अंतरदीवकाणं मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमाणं अकम्म० अंतरदीविकाण य कयरे २ हिन्तो अप्पा वा ४?, गोयमा! अंतरदीवगा मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा[ण] य एते णं दुन्नि य तुल्लावि सव्वत्थोवा देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा एते णं दोन्निवि तुल्ला संखे० हरिवासरम्मवासअकम्मभूमकमणुस्सित्थियाउ मणुस्सपुरिसा य एते[सि] णं दोन्निवि तुल्ला संखे० हेमवतहेरण्णवतअकम्मभूमकमणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा[ण] य दोवि तुल्ला संखे० भरहेरवतकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखे० भरहेरवतकम्ममणुस्सित्थियाओ दोवि संखे० । पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखे० पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि संखे० । अंतरदीवगमणुस्सणपुंसका असंखे० देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमकमणुस्सणपुंसका दोवि संखेज्जगुणा [ए] तहेव जाव पुव्वविदेहकम्मभूमकमणुस्सणपुंसका दोवि संखेज्जगुणा ॥ एतासि णं भंते! देवित्थीणं भवणवासीणीणं वाणमन्तरीणीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीणं देवपुरिसाणं भवणवासिणं जाव वेमाणियाणं सोधम्मकाणं जाव गेवेज्जकाणं अणुत्तरोववातियाणं णेरइयणपुंसकाणं रयणप्पभापुढविणेरइयणपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढविनेरइय० कतरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा अणुत्तरोववातियदेवपुरिसा उवरिमगेवेज्जदेवपुरिसा संखेज्जगुणा तं चेव जाव आणते कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,

२प्रतिपत्तौ नपुंसके वन्ध-स्थितिः प्रकारश्च सू० ६१ वेदानामल्पबहुत्वं सू० ६२

अहेसत्तमाए पुढवीए णेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा, छट्ठीए पुढवीए नेरइय० असंखेज्जगुणा सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा महासुक्के कप्पे देवा असंखेज्जगुणा पंचमाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा लंतए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा चउत्थीए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा तच्चाए पुढवीए नेरइय० असंखेज्जगुणा माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा सणंकुमारकप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा दोच्चाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा, इसाणे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा ईसाणे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, सोधम्मे(कप्पे) देवपुरिसा संखेज्ज० सोधम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखे० भवणवासिदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा भवणवासिदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ इमीसे रयणप्पभापुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा वाणमंतरदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जोतिसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा जोतिसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणा ॥ एतासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं पुढविक्काइयएगिंदियति० जो० णपुंसकाणं आउक्काइयएगिंदिय० जो० णपुंसकाणं जाव वणस्सतिकाइयएगिंदियति० जो० णपुंसकाणं बेइंदियति० जो० णपुंसकाणं तेइंदियति० जो० णपुंसकाणं चउरिंदियति० जो० नपुंसकाणं पंचेंदियति०

जो० णपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमियाणं अकम्म० अंतरदीवयाणं मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमिकाणं अकम्मभूमिकाणं अंतरदीवकाणं देवित्थीणं भवणवासिणीणं वाणमंतरीणीणं जोतिसिणीणं वेमाणिणीणं देवपुरिसाणं भवणवासिणीणं वाणमंतराणं जोतिसियाणं वेमाणियाणं सोधम्मकाणं जाव गेवेज्जकाणं अणुत्तरोववातियाणं नेरइयणपुंसकाणं रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसकाणं जाव अहेसत्तमपुढविणेरइयणपुंसकाण य कयरे २ हिन्तो अप्पा वा ४?, गोयमा! अंतरदीवअकम्मभूमकमणुस्सित्थीओ मणुस्सपुरिसा य, एते णं दोवि तुल्ला सव्वत्थोवा, देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सइत्थीओ पुरिसा य एते णं दोवि तुल्ला संखे० एवं हरिवासरम्मगवास० एवं हेमवतहेरण्णवयभरहेरवयकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखे० भरहेरवतकम्म० मणुस्सित्थीओ दोवि संखे० पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमकमणुस्सपुरिसा दोवि संखे०, पुव्वविदेहअवरविदेहकम्म० मणुस्सित्थियाओ दोवि संखे० अणुत्तरोववातियदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा उवरिमगेवेज्जा देवपुरिसा संखे० जाव आणते कप्पे देवपुरिसा संखे० अधेसत्तमाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असं० छट्टीए पुढवीए नेरइयनपुंसका असं० सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखे० महासुक्के कप्पे देव० असं० पंचमाए पुढवीए नेरइयनपुंसका असं० लंतए कप्पे देवपु० असं० चउत्थीए पुढवीए नेरइ-

२ प्रतिपत्तौ नपुंसके बन्धस्थितिः प्रकारश्च सू० ६१ वेदानामल्पबहुत्वं सू० ६२

यनपुंसका असं० बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असं० तच्चाए पुढवीए नेरइयण० असं० माहिंदे कप्पे देवपु० असंखे० सणंकुमारे कप्पे देवपुरिसा असं० दोच्चाए पुढवीए नेरइयनपुंसका असं० अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका असंखे० देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका दोवि संखे० एवं जाव विदेहत्ति, ईसाणे कप्पे देवपुरिसा असं० ईसाणकप्पे देवित्थियाओ संखे० सोधम्मे कप्पे देवपुरिसा संखे० सोहम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्ज० भवणवासिदेवपुरिसा असंखे० भवणवासिदेवित्थियाओ संखिज्जगुणाओ इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असं० खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखेज्जगुणा खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखे० थलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखे० थलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखे० जलयरतिरिक्खपुरिसा संखे० जलयरतिरिक्खजोणित्थियाउ संखे०, वाणमंतरदेवपुरिसा संखे० वाणमंतरदेवित्थियाओ संखे० जोतिसियदेवपुरिसा संखे० जोतिसियदेवित्थियाओ संखे० खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसा संखे० थलयरणपुंसका संखे० जलयरणपुंसका संखे० चतुरिंदियणपुंसका विसेसाहिया तेइंदिय० विसेसा० बेइंदिय० विसेसा० तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका असं० पुढवी० विसेसा० आऊ० विसेसा० वाऊ० विसेसा० वणप्फतिकाइयएगिंदियतिरिक्खजो० णपुंसका अणंतगुणा ॥ (सू० ६२)

'एयासि णं भंते ! तिरिक्खजोणियइत्थीणं' इत्यादि, सर्वस्तोकास्तिर्यक्पुरुषाः, तेभ्यस्तिर्यक्स्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यस्तिर्यग्नपुंसका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तानन्तत्वात् ॥ सम्प्रति द्वितीयमल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं भंते !'** इत्यादि, सर्वस्तोका मनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्यो मनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः सप्तविंशतिगुणत्वात्, ताभ्यो मनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः श्रेण्यसङ्ख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् ॥ सम्प्रति तृतीयमल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं भंते ! देवित्थीण'**मित्यादि, सर्वस्तोका नैरयिकनपुंसका अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशौ स्वप्रथमवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवपुरुषा असङ्ख्येयगुणा असङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणायां सूचौ यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणा द्वात्रिंशद्गुणत्वात् ॥ सम्प्रति सकलसन्मिश्रं चतुर्थमल्पबहुत्वमाह—**'एयासि ण'**मित्यादि, सर्वस्तोका मनुष्यपुरुषास्तेभ्यो मनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो मनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, अत्र युक्तिः प्रागुक्ता, तेभ्यो नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणा असङ्ख्येयश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यो देवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः प्रभूततरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणा द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, ताभ्यस्तिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणा निगोदजीवानामनन्तानन्तत्वात् ॥ सम्प्रति जलचर्यादिविभागतः पञ्चममल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं भंते !'** इत्यादि, सर्वस्तोकाः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकपुरुषाः, तेभ्यः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यः स्थल-

चरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यस्तत्स्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यो जलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो जलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असंख्येयगुणाः, तेभ्यः स्थलचरजलचरतिर्यग्योनिकनपुंसका यथाक्रमं सङ्ख्येयगुणाः, ततश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रिया यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततस्तेजःकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः पृथिव्यम्बुवायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततो वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः ॥ सम्प्रति कर्म्मभूमिजादिमनुष्यस्त्र्यादिविभागतः षष्ठमल्पबहुत्वमाह—'एयासि णं भंते !' इत्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकमनुष्यस्त्रियोऽन्तरद्वीपकमनुष्यपुरुषाश्च, एते च द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तत्रत्यस्त्रीपुंसानां युगलधर्मोपेतत्वात्, तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो मनुष्यपुरुषाश्च सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिरत्र प्रागेवोक्ता, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, एवं हरिवर्षरम्यकपुरुषस्त्रियो हैमवतहैरण्यवतमनुष्यपुरुषस्त्रियश्च यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ततो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्या द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, सप्तविंशतिगुणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ताभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषा द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने परस्परं तुल्याः, तेभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, सप्तविंशतिगुणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ततो हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका

द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः ॥ सम्प्रति भवनवास्यादिदेव्यादिविभागतः सप्तममल्पबहुत्वमाह—'एयासि णं भंते! देवित्थीणं भवणवासिणीणं'मित्यादि, सर्वस्तोका अनुत्तरोपपातिका देवपुरुषाः, तत उपरितनग्रैवेयकमध्यमग्रैवेयकाधस्तनग्रैवेयकाच्युतारणप्राणतानतकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकसहस्रारमहाशुक्रकल्पदेवपुरुषपञ्चमपृथिवीनैरयिकनपुंसकलान्तककल्पदेवपुरुषचतुर्थपृथिवीनैरयिकनपुंसकब्रह्मलोककल्पदेवपुरुषतृतीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकमाहेन्द्रसनत्कुमारकल्पदेवपुरुषद्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, तत ईशानकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्य ईशानकल्पदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, ततः सौधर्म्मकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि सौधर्म्मकल्पदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, तेभ्यो भवनवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो भवनवासिदेव्यः सङ्ख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, ताभ्यो रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो वानमन्तरदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो वानमन्तरदेव्यः सङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो ज्योतिष्काः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो ज्योतिष्कदेवस्त्रियः संख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात् ॥ सम्प्रति विजातीयव्यक्तिव्यापकमष्टममल्पबहुत्वमाह—'एयासि णं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपका मनुष्यस्त्रियो मनुष्यपुरुषाश्च, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि तुल्याः, युगलधर्मोपेतत्वात्, एवं देवकुरूत्तरकुरुकर्म्मभूमकहरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकहैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रीपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषा द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि

सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ताभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषा द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, सप्तविंशतिगुणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ताभ्योऽनुत्तरोपपातिकोपरितनग्रैवेयकमध्यमग्रैवेयकाधस्तनग्रैवेयकाच्युतारणप्राणतानतकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽधः-सप्तमषष्ठपृथिवीनैरयिक(न०) सहस्रारकल्पदेवपुरुषमहाशुक्रकल्पदेवपुरुषपञ्चमपृथिवीनैरयिक(न०) लान्तककल्पदेवपुरुषचतुर्थपृथवीनैरयिकनपुंसकब्रह्मलोककल्पदेवपुरुषतृतीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकमाहेन्द्रकल्पसनत्कुमारकल्पदेवपुरुषद्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकान्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसका यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, ततो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकहरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकहैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकभरतैरावतकर्म्मभूमकपूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्वस्थानेषु तु द्वये परस्परं तुल्याः, तत ईशानकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तत ईशानकल्पदेवस्त्रियः सौधर्मकल्पदेवपुरुषाः सौधर्म्मकल्पदेवस्त्रियो यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततो भवनवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो भवनवासिदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः खचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः स्थलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः स्थलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियो जलचरतिर्यग्योनिकपुरुषा जलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियो वानमन्तरा देवपुरुषा वानमन्तरदेवस्त्रियो ज्योतिष्कदेवपुरुषा ज्योतिष्कदेवस्त्रियो यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः स्थलचरजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः क्रमेण सङ्ख्येयगुणाः, ततश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततस्तेजःकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः पृथिव्यव्वायुकायिकतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततो वनस्पति-

कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तत्वात् ॥ सम्प्रति स्त्रीपुरुषनपुंसकानां भवस्थितिमानं कायस्थितिमानं च क्रमेणाभिधातुकाम आह—

इत्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! एगेणं आएसेणं जहा पुव्विं भणियं, एवं पुरिसस्सवि नपुंसकस्सवि, संचिट्ठणा पुनरवि तिण्हंपि जहापुव्विं भणिया, अंतरंपि तिण्हंपि जहा-पुव्विं भणियं तहा नेयव्वं ॥ (सू० ६३)

'इत्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?, इत्यादि, एतत्सर्वं प्रागुक्तवद्भावनीयम्, अपुनरुक्तता च प्राक् स्त्र्यादीनां पृथक् स्वस्वाधिकारे स्थित्यादि प्रतिपादितमिदानीं तु समुदायेनेति ॥ सम्प्रति स्त्रीपुरुषनपुंसकानामल्पबहुत्वमाह—(एयासि णं भंते! इत्थीणं पुरिसाणं नपुंसकाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ?, सव्वथोवा पुरिसा इत्थीओ संखेज्जगुणा नपुंसका अणंतगुणा) 'एयासि णं भंते! इत्थीण'मित्यादि, सर्वस्तोकाः पुरुषाः स्त्र्यादिभ्यो हीनसङ्ख्याकत्वात्, तेभ्यः स्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो नपुंसका अनन्तगुणाः, एकेन्द्रियाणामनन्तानन्तसङ्ख्योपेतत्वात् । इह पुरुषेभ्यः स्त्रियः सङ्ख्येयगुणा इत्युक्तं, तत्र काः स्त्रियः स्वजातिपुरुषापेक्षया कतिगुणा इति प्रश्नावकाशमाशङ्क्य तन्निरूपणार्थमाह—

तिरिक्खजोणित्थियाओ तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिगुणाउ तिरूवाधियाओ मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसेहिंतो सत्तावीसतिगुणाओ सत्तावीसयरूवाहियाओ देवित्थियाओ देवपुरिसेहिंतो बत्तीसइगुणाओ बत्तीसइरूवाहियाओ सेत्तं तिविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता

२ प्रतिपत्तौ वेदानां-स्थित्यादिः सू० ६३ अल्पबहुत्वं सू० ६४

॥ तिविहेसु होइ भेयो ठिई य संचिट्ठणंतरऽप्पबहुं । वेदाण य बंधठिई वेओ तह किंपगारो उ ॥ १ ॥ से तं तिविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता ॥ (सू० ६४)

'**तिरिक्खजोणित्थीओ तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो**' इत्यादि, तिर्यग्योनिकस्त्रियस्तिर्यग्योनिकपुरुषेभ्यस्त्रिगुणास्त्रिरूपाधिकाः, मनुष्यस्त्रियो मनुष्यपुरुषेभ्यः सप्तविंशतिगुणाः सप्तविंशतिरूपाधिकाः, देवपुरुषेभ्यो देवस्त्रियो द्वात्रिंशद्गुणा द्वात्रिंशद्रूपाधिकाः, उक्तं च वृद्धाचार्यैरपि—"तिगुणा तिरूवअहिया तिरियाणं इत्थिया मुणेयव्वा । सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिया चेव ॥ १ ॥ बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया उ होंति देवाणं । देवीओ पण्णत्ता जिणेहिं जियरागदोसेहिं ॥ २ ॥" प्रतिपत्त्युपसंहारमाह—'**सेत्तं तिविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता**' इति ॥ सम्प्रत्यधिकृतप्रतिपत्त्यर्थाधिकारसंग्रहगाथामाह—'**तिविहेसु होइ भेओ**' इत्यादि, त्रिविधेषु वेदेषु वक्तव्येषु भवति प्रथमोऽधिकारो भेदः ततः स्थितिः तदनन्तरं '**संचिट्ठणं**'ति सातत्येनावस्थानं तदनन्तरमन्तरं ततोऽल्पबहुत्वं ततो वेदानां बन्धस्थितिः तदनन्तरं किंप्रकारो वेद इति ॥

इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाजीवाभिगमटीकायां द्वितीया प्रतिपत्तिः समाप्ता ॥ २ ॥

इति वेदत्रैविध्यनिरूपिका द्वितीया प्रतिपत्तिः ॥

तदेवमुक्ता द्वितीया प्रतिपत्तिः, सम्प्रति तृतीयप्रतिपत्त्यवसरः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

तत्थ जे ते एवमाहंसु चउव्विधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—नेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा ॥ (सू० ६५)। से किं तं नेरइया ?, २ सत्तविधा पण्णत्ता, तंजहा—पढमापुढविनेरइया दोच्चापुढविनेरइया तच्चापुढविनेर० चउत्थापुढवीनेर० पंचमापु० नेरइ० छट्ठापु० नेर० सत्तमापु० नेरइया ॥ (सू० ६६)। पढमा णं भंते! पुढवी किंनामा किंगोत्ता पण्णत्ता ?, गोयमा! णामेणं घम्मा गोत्तेणं रयणप्पभा। दोच्चा णं भंते! पुढवी किंनामा किंगोत्ता पण्णत्ता ?, गोयमा! णामेणं वंसा गोत्तेणं सक्करप्पभा, एवं एतेणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा, णामाणि इमाणि से लातव्वा(णि), (सेला तईया) अंजणा चउत्थी रिट्ठा पंचमी मघा छट्ठी माघवती सत्तमा, (जाव) तमतमागोत्तेणं पण्णत्ता। (सू० ६७)। इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी केवतिया वाहल्लेणं पण्णत्ता ?, गोयमा! इमा णं रयणप्पभापुढवी असिउत्तरं जोयणसयसहस्सं वाहल्लेणं पण्णत्ता, एवं एतेणं अभिलावेणं इमा गाहा अणुगंतव्वा—आसीतं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च। अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव हिट्ठिमिया ॥ १ ॥ (सू० ६८)

'तत्थ जे ते एवमाहंसु चउव्विहा' इत्यादि, 'तत्र' तेपु दशसु प्रतिपत्तिमत्सु मध्ये ये ते आचार्या एवमाख्यातवन्तश्चतुर्विधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमाख्यातवन्तस्तद्यथा—नैरयिकास्तिर्यग्योनिका मनुष्या देवाः ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते

३ प्रतिपत्तौ चतुर्धा जीवाः सप्तधा नारकाः पृथ्वीनां नामगोत्रे वाहल्यं च सू० ६५-६६-६७ ६८

नैरयिकाः?, सूरिराह—नैरयिकाः सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमायां पृथिव्यां नैरयिकाः प्रथमपृथिवीनैरयिका इत्यर्थः, एवं सर्वत्र भावनीयम् ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवि नामगोत्रं वक्तव्यं, तत्र नामगोत्रयोरयं विशेषः—अनादिकालसिद्धमन्वर्थरहितं नाम सान्वर्थं तु नाम गोत्रमिति, तत्र नामगोत्रप्रतिपादनार्थमाह—'**इमा णं (पढमा णं) भंते!**' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी 'किंनामा' किमनादिकालप्रसिद्धान्वर्थरहितनामा? 'किंगोत्रा?' किमन्वर्थयुक्तनामा?, भगवानाह—गौतम! नाम्ना घर्म्मेति प्रज्ञप्ता गोत्रेण रत्नप्रभा, तथा चान्वर्थमुपदर्शयन्ति पूर्वसूरयः—रत्नानां प्रभा—बाहुल्यं यत्र सा रत्नप्रभा रत्नबहुलेति भावः, एवं शेषसूत्राण्यपि प्रतिपृथिवि प्रश्ननिर्वचनरूपाणि भावनीयानि, नवरं शर्कराप्रभादीनामियमन्वर्थभावना—शर्कराणां प्रभा—बाहुल्यं यत्र सा शर्कराप्रभा, एवं वालुका प्रभा पङ्कप्रभा इत्यपि भावनीयं, तथा धूमस्येव प्रभा यस्याः सा धूमप्रभा, तथा तमसः प्रभा—बाहुल्यं यत्र सा तमःप्रभा, तमस्तमस्य—प्रकृष्टतमसः प्रभा—बाहुल्यं यत्र सा तमस्तमप्रभा, अत्र केपुचित्पुस्तकेषु सङ्ग्रहणिगाथे—"घम्मा वंसा सेला अंजण रिट्ठा मघा य माघवती। सत्तण्हं पुढवीणं एए नामा उ नायव्वा ॥ १ ॥ रयणा सक्कर वालुय पंका धूमा तमा [य] तमतमा य। सत्तण्हं पुढवीणं एए गोत्ता मुणेयव्वा ॥ २ ॥" अधुना प्रतिपृथिवि बाहुल्यमभिधित्सुराह—'**इमा णं भंते!**' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी कियद्बाहुल्येन प्रज्ञप्ता?, अत्र गोत्रेण प्रश्नो नाम्नो गोत्रं प्रधानतरं प्रधानेन च प्रश्नाद्युपपन्नमिति न्यायप्रदर्शनार्थः, उक्तञ्च—"न हीना वाक् सदा सता"मिति, भगवानाह—'अशीत्युत्तरम्' अशीतियोजनसहस्राभ्यधिकं योजनशतसहस्रं बाहुल्येन प्रज्ञप्ता। एवं सर्वाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा—"आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं च होइ वीसं च। अट्ठारस सोलसगं अट्ठोत्तरमेव हिट्ठिमिया ॥ १ ॥"

इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी कतिविधा पण्णत्ता?, गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—खरकंडे पंकबहुले कंडे आवबहुले कंडे ॥ इमीसे णं भंते! रय० पुढ० खरकंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! सोलसविधे पण्णत्ते, तंजहा—रयणकंडे १ वइरे २ वेरुलिए ३ लोहितक्खे ४ मसारगल्ले ५ हंसगब्भे ६ पुलए ७ सोयंधिए ८ जोतिरसे ९ अंजणे १० अंजणपुलए ११ रयते १२ जातरूवे १३ अंके १४ फलिहे १५ रिट्ठे १६ कंडे ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभापुढवीए रयणकंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! एगागारे पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठे। इमीसे णं भंते! रयणप्पभापुढवीए पंकबहुले कंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! एकागारे पण्णत्ते। एवं आवबहुले कंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! एकागारे पण्णत्ते। सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवी कतिविधा पण्णत्ता?, गोयमा! एकागारा पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमा ॥ (सू० ६९)

'इमा णं भंते' इत्यादि इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी 'कतिविधा' कतिप्रकारा कतिविभागा प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! 'त्रिविधा' त्रिविभागा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—'खरकाण्ड'मित्यादि, काण्डं नाम विशिष्टो भूभागः, खरं—कठिनं, पङ्कबहुलं ततोऽब्बहुलं चान्वर्थतः प्रतिपत्तव्यं, क्रमश्चैतेपामेवमेव, तद्यथा—प्रथमं खरकाण्डं तदनन्तरं पङ्कबहुलं ततोऽब्बहुलमिति ॥ 'इमीसे णं भंते' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां खरकाण्डं कतिविधं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! 'पोडशविधं' पोडशविभागं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—'रयणे' इति, पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद् रत्नकाण्डं तच्च प्रथमं, द्वितीयं वज्रकाण्डं, तृतीयं वैडूर्यकाण्डं, चतुर्थं लोहितकाण्डं,

पञ्चमं मसारगल्लकाण्डं, षष्ठं हंसगर्भकाण्डं, सप्तमं पुलककाण्डम्, अष्टमं सौगन्धिककाण्डं, नवमं ज्योतीरसकाण्डं, दशममञ्जनकाण्डम्, एकादशमञ्जनपुलककाण्डं, द्वादशं रजतकाण्डं, त्रयोदशं जातरूपकाण्डं, चतुर्दशमङ्ककाण्डं, पञ्चदशं स्फटिककाण्डं षोडशं रिष्टरत्नकाण्डं, तत्र रत्नानि—कर्केतनादीनि तत्प्रधानं काण्डं रत्नकाण्डं, वज्ररत्नप्रधानं काण्डं वज्रकाण्डम्, एवं शेषाण्यपि, एकैकं च काण्डं योजनसहस्रबाहल्यम् ॥ 'इमीसे णं भंते' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां रत्नकाण्डं 'कतिविधं' कतिप्रकारं कतिविभागमिति भावः प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—एकाकारं प्रज्ञप्तं। एवं शेषकाण्डविषयाण्यपि प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि क्रमेण भावनीयानि। एवं पङ्कबहुलाब्बहुलविषयाण्यपि। 'दोच्चा णं भंते' इत्यादि, द्वितीयादिपृथिवीविषयाणि सूत्राणि पाठसिद्धानि ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवि नरकावाससङ्ख्याप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! तीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं एतेणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा, इमा गाहा अणुगंतव्वा—तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दसेव तिण्णि य हवंति। पंचूणसयसहस्सं पंचेव अणुत्तरा णरगा ॥ १ ॥ जाव अहेसत्तमाए पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणरगा पण्णत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अपतिट्ठाणे ॥ (सू० ७०) । अत्थि णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे घणोदधीति वा घणवातेति वा तणुवातेति वा ओवासंतरेति वा?, हंता अत्थि, एवं जाव अहे सत्तमाए ॥ (सू० ७१)

'इमीसे णं भंते' इत्यादि, सुगमं, नवरमियमत्र सङ्ग्रहणिगाथा—"तीसा य पण्णवीसा पणरस दस चेव सयसहस्साइं। तिण्णेगं पंचूणं पंचेव अणुत्तरा निरया ॥ १ ॥" अधःसप्तम्यां च पृथिव्यां कालादयो महानरका अप्रतिष्ठानाभिधस्य नरकस्य पूर्वादिक्रमेण, उक्तञ्च—"पुव्वेण होइ कालो अवरेणं अप्पइट्ठ महकालो। रोरू दाहिणपासे उत्तरपासे महारोरू ॥ १ ॥" रत्नप्रभादिषु च तमःप्रभापर्यन्तासु षट्सु पृथिवीषु प्रत्येकं नरकावासा द्विविधाः, तद्यथा—आवलिकाप्रविष्टाः प्रकीर्णकरूपाश्च, तत्र रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रयोदश प्रस्तटाः, प्रस्तटा नाम वेश्मभूमिकाकल्पा., तत्र प्रथमप्रस्तटे पूर्वादिषु चतसृषु दिक्षु प्रत्येकमेकोनपञ्चाशत् नरकावासाः, चतसृषु विदिक्षु प्रत्येकमष्टचत्वारिंशत्, मध्ये च सीमन्तकाख्यो नरकेन्द्रक, सर्वसङ्ख्यया प्रथमप्रस्तटे नरकावासानामावलिकाप्रविष्टानामेकोननवत्यधिकानि त्रीणि शतानि ३८९, शेषेषु च द्वादशसु प्रस्तटेषु प्रत्येकं यथोत्तरं दिक्षु विदिक्षु चैकैकनरकावासहानिभावाद् अष्टकाष्टकहीना नरकावासा द्रष्टव्याः, ततः सर्वसङ्ख्यया रत्नप्रभायां पृथिव्यामावलिकाप्रविष्टा नरकावासाश्चतुश्चत्वारिंशच्छतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि ४४३३, शेषास्त्वेकोनत्रिंशल्लक्षाणि पञ्चनवतिसहस्राणि पञ्च शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि २९९५५६७ प्रकीर्णकाः, तथा चोक्तम्—"सत्तट्ठी पंचसया पणनउइसहस्स लक्खगुणतीसं। रयणाए सेढिगया चोयालसया उ तित्तीसं ॥ १ ॥" उभयमीलने त्रिंशल्लक्षा नरकावासानां भवन्ति ३०००००० । शर्कराप्रभायामेकादश प्रस्तटाः, "नरकपटलान्यधोऽधो द्वन्द्वहीनानी"ति वचनात्, तत्र प्रथमे प्रस्तटे चतसृषु दिक्षु षट्त्रिंशद् आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः, विदिक्षु पञ्चत्रिंशत्, मध्ये चैको नरकेन्द्रकः, सर्वसङ्ख्यया द्वे शते पञ्चाशीत्यधिके २८५, शेषेषु तु दशसु प्रस्तटेषु प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, प्रतिदिक्प्रतिविदिक्षु(क् च) एकैकनरकावासहानेः, ततस्तत्र सर्वसङ्ख्ययाऽऽवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः षड्विंशतिशतानि पञ्चनवत्यधिकानि २६९५, शेषाश्चतुर्विंश-

३ प्रतिपत्तौ निरयावासंसंख्या सू० ७० अधो घनोदध्यादिः सू० ७१

तिलक्षाः सप्तनवतिः सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि २४९७३०५ पुष्पावकीर्णकाः, उक्तञ्च—"सत्ताणउइ सहस्सा चउवीसं लक्ख तिसय पंचऽहिया । बीयाए सेढिगया छव्वीससया उ पणनउया ॥ १ ॥" उभयमीलने पञ्चविंशतिर्लक्षा नरकावासानाम् २५००००० । वालुकाप्रभायां नव प्रस्तटाः, प्रथमे च प्रस्तटे एकैकस्यां दिशि आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः पञ्चविंशतिः विदिशि चतुर्विंशतिः मध्ये चैको नरकेन्द्रक इति सर्वसङ्ख्यया सप्तनवतं शतं १९७, शेषेषु चाष्टसु प्रस्तटेषु प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकहानिः, तत्र च कारणं प्रागेवोक्तं, ततः सर्वसङ्ख्यया तत्रावलिकाप्रविष्टा नरकावासाश्चतुर्दश शतानि पञ्चाशीत्यधिकानि १४८५, शेषास्तु पुष्पावकीर्णकाश्चतुर्दश लक्षा अष्टनवतिः सहस्राणि पञ्च शतानि पञ्चदशाधिकानि १४९८५१५, उक्तञ्च—"पंचसया पन्नारा अडनवइसहस्स लक्ख चोद्दस य । तइयाए सेढिगया पणसीया चोद्दससया उ ॥ १ ॥" उभयमीलने पञ्चदश लक्षा नरकावासानाम् १५००००० । पङ्कप्रभायां सप्त प्रस्तटाः, प्रथमे च प्रस्तटे प्रत्येकं दिशि षोडश षोडश आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः विदिशि पञ्चदश पञ्चदश मध्ये चैको नरकेन्द्रकः सर्वसङ्ख्यया पञ्चविंशतिशतं १२५, शेषेषु षट्सु प्रस्तटेषु पूर्ववत् प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, ततः सर्वसङ्ख्यया तत्रावलिकाप्रविष्टा नरकावासाः सप्त शतानि सप्तोत्तराणि ७०७, शेषास्तु पुष्पावकीर्णका नव लक्षा नवनवतिः सहस्राणि द्वे शते त्रिनवत्यधिके ९९९२९३, उक्तञ्च—"तेणउया दोण्णि सया नवनउइसहस्स नव य लक्खा य । पंकाए सेढिगया सत्त सया हुंति सत्तहिया ॥ १ ॥" उभयमीलने नरकावासानां दश लक्षाः १०००००० । धूमप्रभायां पञ्च प्रस्तटाः, प्रथमे च प्रस्तटे एकैकस्यां दिशि नव नव आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः, विदिशि अष्टौ अष्टौ मध्ये चैको नरकेन्द्रक इति सर्वसङ्ख्यया एकोनसप्ततिः ६९, शेषेषु चतुर्षु प्रस्तटेषु पूर्ववत्प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, ततः सर्वसङ्ख्यया तत्रावलिकाप्रविष्टा नरकावासा द्वे शते पञ्चषष्ट्य-

धिके २६५, शेषाः पुष्पावकीर्णका द्वे लक्षे नवनवतिः सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि २९९७३५, उक्तञ्च—"सत्तसया पणतीसा नवनवइ [य] सहस्स दो य लक्खा य । धूमाए सेढिगया पणसट्ठा दो सया होंति ॥ १ ॥" सर्वसङ्ख्यया तिस्रो लक्षाः ३००००० नरकावासानाम् । तमःप्रभायां त्रयः प्रस्तटाः, तत्र प्रथमे प्रस्तटे प्रत्येकं दिशि चत्वारश्चत्वार आवलिकाप्रविष्टा नरकावासा विदिशि त्रयस्त्रयो मध्ये चैको नरकेन्द्रक इति सर्वसङ्ख्यया एकोनत्रिंशत् २९, शेषयोस्तु प्रस्तटयोः प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, ततः सर्वसङ्ख्ययाऽऽवलिकाप्रविष्टा नरकावासास्त्रिषष्टिः ६३, शेषास्तु नवनवतिः सहस्राणि नव शतानि द्वात्रिंशदधिकानि पुष्पावकीर्णकाः ९९९३२, उक्तञ्च—"नवनउई य सहस्सा नव चेव सया हवंति वत्तीसा । पुढवीए छट्ठीए पइण्णगाणेस संखेवो ॥ १ ॥" उभयमीलने पञ्चोनं नरकावासानां लक्षम् ९९९९५ ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवि घनोदध्याद्यस्तित्वप्रतिपादनार्थमाह—'अत्थि णं भंते !' इत्यादि, अस्ति भदन्त ! अस्याः प्रत्यक्षत उपलभ्यमानाया रत्नप्रभायाः पृथिव्या अधो घनः—स्त्यानीभूतोदक उदधिर्घनोदधिरिति वा घनः—पिण्डीभूतो वातः घनवात इति वा तनुवात इति वा अवकाशान्तरमिति वा ?, अवकाशान्तरं नाम शुद्धमाकाशं, भगवानाह—हन्त ! अस्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वाच्यं यावदधःसप्तम्याः ॥

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! सोलस जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! एक्कं जोयणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठे । इमीसे णं भंते! रय० पु० पंकबहुले कंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! चतुरसीतिजोयणसहस्साइं बाहल्लेणं प-

पण्णत्ते। इमीसे णं भंते! रय० पु० आवबहुले कंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! असीतिजोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते। इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पु० घणोदही केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। इमीसे णं भंते! रय० पु० घणवाए केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं तणुवातेऽवि ओवासंतरेऽवि। सक्करप्प० भंते! पु० घणोदही केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। सक्करप्प० पु० घणवाते केवइए बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! असंखे० जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं तणुवातेवि, ओवासंतरेवि जहा सक्करप्प० पु० एवं जाव अधेसत्तमा॥ (सू० ७२)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः सम्बन्धि यत्प्रथमं खरं—खराभिधानं काण्डं तत् कियद्वाहल्येन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! षोडश योजनसहस्राणि॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नं—रत्नाभिधानं काण्डं तत् कियद्वाहल्येन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! एकं योजनसहस्रं। एवं शेषाण्यपि काण्डानि वक्तव्यानि यावद् रिष्टं—रिष्टाभिधानं काण्डम्। एवं पङ्कबहुलाऽब्बहुलकाण्डसूत्रे अपि व्याख्येये, पङ्कबहुलं काण्डं चतुरशीतिर्योजनसहस्राणि बाहल्येन, अब्बहुलं काण्डमशीतिर्योजनसहस्राणि, सर्वसङ्ख्यया रत्नप्रभाया बाहल्यमशीतिसहस्राधिकं लक्षं, तस्या अधो घनोदधिः विंशतिर्योजनसहस्राणि बाहल्येन, तस्याप्यधो घनवातोऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि बाहल्येन, तस्याप्यधोऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि

तनुवातो बाहल्येन, तस्याप्यधोऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि बाहल्येनावकाशान्तरम्। एवं शेषाणामपि पृथिवीनां घनोदध्यादयः प्रत्येकं तावद्वक्तव्या यावदधःसप्तम्याः ॥

इमीसेणं भंते! रयणप्प० पु० असीउत्तरजोयण(सय)सहस्सबाहल्लाए खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णतो कालनीललोहितहालिद्दसुक्किल्लाइं गंधतो सुरभिगंधाइं दुब्भिगंधाइं रसतो तित्तकडुयकसायअंबिलमहुराइं फासतो कक्खडमउयगरुयलहुसीतउसिणणिद्धलुक्खाइं संठाणतो परिमंडलवट्टतंसचउरंसआययसंठाणपरिणयाइं अन्नमन्नबद्धाइं ॥ अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णओगाढाइं अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?, हंता अत्थि। इमीसेणं भंते! रयणप्प भाए पु० खरकंडस्स सोलसजोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ काल जाव परिणयाइं?, हंता अत्थि। इमीसे णं रयणप्प० पु० रयणनामंगस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्ज० तं चेव जाव हंता अत्थि, एवं जाव रिट्ठस्स, इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० पंकबहुलस्स कंडस्स चउरासीतिजोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्ते तं चेव, एवं आवबहुलस्सवि असीतिजोयणसहस्सबाहल्लस्स। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० घणोदधिस्स वीसं जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेदेण तहेव। एवं घणवातस्स असंखेज्जजोयणसहस्सबाहल्लस्स तहेव, ओवासंतरस्सवि तं चेव ॥ सक्करप्पभाए णं भंते! पु० बत्तीसुत्तरजोयणसतस-

हस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णतो जाव घडत्ताए चिट्ठंति?, हंता अत्थि, एवं घणोदहिस्स वीसजोयणसहस्सबाहल्लस्स घणवातस्स असंखेज्जजोयणसहस्सबाहल्लस्स, एवं जाव ओवासंतरस्स, जहा सक्करप्पभाए एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ७३)

'इमीसे णं भंते' इत्यादि, अस्यां भदन्त ! रत्नप्रभायां पृथिव्यामशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यायां क्षेत्रच्छेदेन—बुद्ध्या प्रतरकाण्डविभागेन छिद्यमानायाम्, अस्तीति निपातोऽत्र बहुलवचनार्थगर्भः, सन्ति द्रव्याणि वर्णतः कालानि नीलानि लोहितानि हारिद्राणि शुक्लानि, गन्धतः सुरभिगन्धीनि दुरभिगन्धीनि च, रसतस्तिक्तरसानि कटुकानि कषायाणि अम्लानि मधुराणि, स्पर्शतः कर्कशानि मृदूनि गुरुकाणि लघूनि शीतानि उष्णानि स्निग्धानि रूक्षाणि, संस्थानतः परिमण्डलानि वृत्तानि त्र्यस्राणि चतुरस्राणि आयतानि, कथम्भूतान्येतानि सर्वाण्यपि ? इत्यत आह—'अन्नमन्नपुट्ठाइं' इत्यादि, अन्योऽन्यं—परस्परं स्पृष्टानि—स्पर्शमात्रोपेतानि, तथाऽन्योऽन्यं—परस्परमवगाढानि यत्रैकं द्रव्यमवगाढं तत्रान्यदपि देशतः क्वचित्सर्वतोऽवगाढमित्यर्थः, तथाऽन्योऽन्यं—परस्परं स्नेहेन प्रतिबद्धानि येनैकस्मिन् चाल्यमाने गृह्यमाणे वाऽपरमपि चलनादिधर्मोपेतं भवति, एवम् 'अन्नोन्नघडत्ताए चिट्ठंति' इति, अन्योऽन्यं—परस्परं घटन्ते—संबध्नन्तीति अन्योऽन्यघटास्तद्भावोऽन्योऽन्यघटता तया—परस्परसंबद्धतया तिष्ठन्ति, भगवानाह—'हंता अत्थि' 'हन्त !' इति प्रत्यवधारणे सन्त्येवेत्यर्थः । एवमस्यामेव रत्नप्रभायां पृथिव्यां खरकाण्डस्य षोडशयोजनसहस्रप्रमाणबाहल्यस्य, तदनन्तरं रत्नकाण्डस्य योजनसहस्रबाहल्यस्य, ततो वज्रकाण्डस्य यावद्रिष्टकाण्डस्य, तदनन्तरमस्यामेव रत्नप्रभायां पृथिव्यां पङ्कबहुलकाण्डस्य चतुरशीतियोजनसहस्रबाहल्यस्य, तदनन्तरमब्बहुलकाण्डस्याशीतियोजनसहस्रबाहल्यस्य, तदनन्तरमस्या एव रत्नप्रभाया घ-

नोदधेर्योजनविंशतिसहस्रप्रमाणवाहल्यस्य, ततोऽसङ्ख्यातयोजनसहस्रप्रमाणवाहल्यस्य घनवातस्य, तत एतावत्प्रमाणवाहल्यस्य तनुवातस्य, ततोऽवकाशान्तरस्य तावत्प्रमाणस्य। ततः शर्कराप्रभायाः पृथिव्या द्वात्रिंशत्सहस्रोत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यपरिमाणायाः, तस्या एवाधस्ताद्यथोक्तप्रमाणवाहल्यानां घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणाम्, एवं यावदधःसप्तम्याः पृथिव्या अष्टसहस्राधिकयोजनशतसहस्रपरिमाणवाहल्यायाः, ततस्तस्या एवाधःसप्तमपृथिव्या अधस्तात्क्रमेण घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणां प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि यथोक्तद्रव्यविषयाणि भावनीयानि ॥ सम्प्रति संस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

इमा णं भंते! रयणप्प० पु० किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! झल्लरिसंठिता पण्णत्ता। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० खरकंडे किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते। इमीसे णं भंते! रयणप० पु० रयणकंडे किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! झल्लरिसंठिए पण्णत्ते। एवं जाव-रिट्ठे। एवं पंकबहुलेवि, एवं आवबहुलेवि घणोदधीवि घणवाएवि तणुवाएवि ओवासंतरेवि, सव्वे झल्लरिसंठिते पण्णत्ते। सक्करप्पभा णं भंते! पुढवी किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! झल्लरिसंठिता पण्णत्ता, सक्करप्पभापुढवीए घणोदधी किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते, एवं जाव ओवासंतरे, जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया एवं जाव अहेसत्तमाएवि ॥ (सू० ७४)

'इमा णं भंते' इत्यादि, 'इयं' प्रत्यक्षत उपलभ्यमाना णमिति वाक्यालङ्कृतौ रत्नप्रभापृथिवी किमिव संस्थिता किंसंस्थिता प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! झल्लरीव संस्थिता झल्लरीसंस्थिता प्रज्ञप्ता, विस्तीर्णवलयाकारत्वात्। एवमस्यामेव रत्नप्रभायां पृथिव्यां खरकाण्डं, तत्रापि

रत्नकाण्डं, ततो वज्रकाण्डं, ततो यावद् रिष्टकाण्डं, तदनन्तरं पङ्कबहुलकाण्डं, ततो जलकाण्डं, तदनन्तरमस्या एव रत्नप्रभायाः पृथिव्या अधस्तात्क्रमेण घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणि यावदधःसप्तमीपृथिवी, तस्याश्चाधस्तात्क्रमेण घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणि झल्लरीसंस्थानानि वक्तव्यानि ॥ ननु चैताः सप्तापि पृथिव्यः सर्वासु दिक्षु किमलोकस्पर्शिन्य उत न? इति, उच्यते, नेति ब्रूमः, यद्येवं ततः—

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पुढवीएं पुरत्थिमिल्लातो उवरिमंताओ केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते?, गोयमा! दुवालसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं दाहिणिल्लातो पच्चत्थिमिल्लातो उत्तरिल्लातो। सक्करप्प० पु० पुरत्थिमिल्लातो चरिमंतातो केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते?, गोयमा! तिभागूणेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं चउद्दिसिंपि। वालुयप्प० पु० पुरत्थिमिल्लातो पुच्छा, गोयमा! सतिभागेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं चउदिसिंपि, एवं सव्वासिं चउसुवि दिसासु पुच्छितव्वं। पंकप्प० चोद्दसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते। पंचमाए तिभागूणेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते। छट्ठीए सतिभागेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते। सत्तमीए सोलसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं जाव उत्तरिल्लातो ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० पुरत्थिमिल्ले चरिमंते कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—घणोदधिवलए

घणवायवलए तणुवायवलए। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० दाहिणिल्ले चरिमंते कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविधे पण्णत्ते, तंजहा,—एवं जाव उत्तरिल्ले, एवं सव्वासिं जाव अधेसत्तमाए उत्तरिल्ले॥ (सू० ७९)

'**इमी से णं भंते**' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः '**पुरत्थिमिल्लाओ**' इति पूर्वदिग्भाविनश्चरमान्तात् '**केवइयाए**' इति कियत्याऽबाधया—अपान्तरालरूपया लोकान्तोऽलोकावधिपरिच्छिन्नः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—द्वादश योजनानि, द्वादशयोजनप्रमाणयेत्यर्थः, अबाधया लोकान्तः प्रज्ञप्तः, किमुक्तं भवति ?—रत्नप्रभायाः पृथिव्याः पूर्वस्यां दिशि चरमपर्यन्तात्परतोऽलोकादर्वाग् अपान्तरालं द्वादश योजनानि, एवं दक्षिणस्यामपरस्यामुत्तरस्यां चापान्तरालं वक्तव्यं, दिग्ग्रहणं चोपलक्षणं तेन सर्वासु विदिक्ष्वपि यथोक्तमपान्तरालमवसातव्यं, शेषाणां तु पृथिवीनां सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च चरमपर्यन्तादलोकः क्रमेणाधोऽधस्त्रिभागोनेन योजनेनाधिकैर्द्वादशभिर्योजनैरवगन्तव्यः, तद्यथा—शर्कराप्रभायाः पृथिव्याः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च चरमपर्यन्तादलोकादर्वागपान्तरालं त्रिभागोनानि त्रयोदश योजनानि, वालुकाप्रभायाः सत्रिभागानि त्रयोदश योजनानि, पङ्कप्रभायाः परिपूर्णानि चतुर्दश योजनानि, धूमप्रभायास्त्रिभागोनानि पञ्चदश योजनानि, तमःप्रभायाः सत्रिभागानि पञ्चदश योजनानि, अधःसप्तमपृथिव्याः परिपूर्णानि षोडश योजनानि, सूत्राक्षराणि पूर्ववद्योजनीयानि॥ अथामूनि रत्नप्रभादीनां द्वादशयोजनप्रमाणादीनि अपान्तरालानि किमाकाशरूपाणि उत घनोदध्यादिव्याप्तानि ?, उच्यते, घनोदध्यादिव्याप्तानि, तत्र कस्मिन्नपान्तराले कियान् घनोदध्यादिः ? इति प्रतिपादनार्थमाह—'**इमी से णं भंते**' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः पूर्वदिग्भावी '**चरमान्तः**' अपान्तराललक्षणः '**कतिविधः**' कतिप्रकारः

कतिविभाग इत्यर्थः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'घनोदधिवलयः' वलयाकारघनोदधिरूप इत्यर्थः, एवं घनवातवलयस्तनुवातवलयश्च, इयमत्र भावना—सर्वासां पृथिवीनामधो यत्प्राग् बाहल्येन घनोदध्यादीनां परिमाणमुक्तं तन्मध्यभागे द्रष्टव्यं, ते हि मध्यभागे यथोक्तप्रमाणबाहल्यास्ततः प्रदेशहान्या प्रदेशहान्या हीयमानाः स्वस्वपृथिवीपर्यन्तेषु तनुतरा भूत्वा स्वां स्वां पृथिवीं वलयाकारेण वेष्टयित्वा स्थिताः, अत एवामूनि वलयान्युच्यन्ते, तेषां च वलयानामुच्चैस्त्वं सर्वत्र स्वस्वपृथिव्यनुसारेण परिभावनीयं, तिर्यग्बाहल्यं पुनरग्रे वक्ष्यते, इदानीं तु विभागमात्रमेवापान्तरालस्य प्रतिपादयितुमिष्टमिति तदेवोक्तं, एवमस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्याः शेषासु दिक्षु, एवं शेषाणामपि पृथिवीनां चतसृष्वपि दिक्षु प्रत्येकं २ विभागसूत्रं भणितव्यम् ॥ सम्प्रति घनोदधिवलयस्य तिर्यग्बाहल्यमानमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पुढवीए घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! छ जोयणाणि बाहल्लेणं पण्णत्ते। सक्करप्प० पु० घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! सतिभागाइं छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। वालुयप्पभाए पुच्छा गोयमा! तिभागूणाइं सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं प०। एवं एतेणं अभिलावेणं पंकप्पभाए सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। धूमप्पभाए सतिभागाइं सत्त जोयणाइं पण्णत्ते। तमप्पभाए तिभागूणाइं अट्ठ जोयणाइं। तमतमप्पभाए अट्ठ जोयणाइं॥ इमीसे णं रयणप्प० पु० घणवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! अद्धपंचमाइं जोयणाइं बाहल्लेणं। सक्करप्पभाए पुच्छा, गोयमा! कोसूणाइं पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं,

एवं एतेणं अभिलावेणं वालुयप्पभाए पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं, पंकप्पभाए सक्कोसाइं पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं। धूमप्पभाए अद्धछट्ठाइं जोयणाइं बाहल्लेणं पन्नत्ताइं, तमप्पभाए कोसूणाइं छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, अहेसत्तमाए छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० तणुवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! छक्कोसेणं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं एतेणं अभिलावेणं सक्करप्पभाए सतिभागे छक्कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते। वालुयप्पभाए तिभागूणे सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। पंकप्पभाए पुढवीए सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। धूमप्पभाए सतिभागे सत्तकोसे। तमप्पभाए तिभागूणे अट्ठकोसे बाहल्लेणं पन्नत्ते। अधेसत्तमाए पुढवीए अट्ठकोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० घणोदधिवलयस्स छज्जोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णतो काल जाव हंता अत्थि। सक्करप्पभाए णं भंते! पु० घणोदधिवलयस्स सतिभागछजोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेदेणं छिज्जमाणस्स जाव हंता अत्थि, एवं जाव अधेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० घणवातवलयस्स अद्धपंचमजोयणबाहल्लस्स खेत्तछेदेणं छि० जाव हंता अत्थि, एवं जाव अहेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं। एवं तणुवायवलयस्सवि जाव अधेसत्तमा जं जस्स बाहल्लं ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते

पण्णत्ते ॥ जे णं इमं रयणप्पभं पुढविं सव्वतो संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठति, एवं जाव अधेसत्तमाए पु० घणोदधिवलए, णवरं अप्पणप्पणं पुढविं संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठति। इमीसे णं रयणप्प० पु० घणवातवलए किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! वट्टे वलयागारे तहेव जाव जे णं इमीसे णं रयणप्प० पु० घणोदधिवलयं सव्वतो समंता संपरिक्खिवित्ताणं चिट्ठइ एवं जाव अहेसत्तमाए घणवातवलए । इमीसे णं रयणप्प० पु० तणुवातवलए किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव जेणं इमीसे रयणप्प० पु० घणवातवलयं सव्वतो समंता संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठइ, एवं जाव अधेसत्तमाए तणुवातवलए ॥ इमा णं भंते! रयणप्प० पु० केवतिआयामविक्खंभेणं? पं० गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमा णं भंते! रयणप्प० पु० अंते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेणं पण्णत्ता?, हंता गोयमा! इमा णं रयण० पु० अंते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेणं, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ७६)

'इमीसे ण' मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च चरमान्ते घनोदधिवलयः कियद्बाहल्येन—तिर्यग्बाहल्येन प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! षड् योजनानि बाहल्येन—तिर्यग्बाहल्येन प्रज्ञप्तः, तत ऊर्ध्वं प्रतिपृथिवि योजनस्य त्रिभागो वक्तव्यः, तद्यथा—शर्कराप्रभायाः सत्रिभागानि षड् योजनानि वालुकाप्रभायास्त्रिभागोनानि सप्त योजनानि पङ्कप्रभायाः परि-

पूर्णानि सप्त योजनानि धूमप्रभायाः सत्रिभागानि सप्त योजनानि तमःप्रभायास्त्रिभागोनान्यष्टौ योजनानि अधःसप्तमपृथिव्याः परिपूर्णान्यष्टौ योजनानि, सूत्राक्षराणि तु सर्वत्र पूर्ववद्योजनीयानि ॥ सम्प्रति घनवातवलयस्य तिर्यग्बाहल्यपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या घनवातवलयस्तिर्यग्बाहल्येनार्द्धपञ्चमानि—सार्द्धानि चत्वारि योजनानि प्रज्ञप्तः, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिपृथिवि गव्यूतं वर्द्धनीयं, तथा चाह—द्वितीयस्याः पृथिव्याः क्रोशोनानि पञ्च योजनानि, तृतीयस्याः पृथिव्याः परिपूर्णानि पञ्च योजनानि, चतुर्थ्याः पृथिव्याः सक्रोशानि पञ्च योजनानि, पञ्चम्याः पृथिव्या अर्द्धषष्ठानि—सार्द्धानि पञ्च योजनानि, षष्ठ्याः पृथिव्याः क्रोशोनानि षड् योजनानि, सप्तम्याः पृथिव्याः परिपूर्णानि षड् योजनानि ॥ सम्प्रति तनुवातवलयस्य तिर्यग्बाहल्यपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्यास्तनुवातवलयः 'कियत्' किंप्रमाणं 'बाहल्येन' तिर्यग्बाहल्येन प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—षट्क्रोशबाहल्येन प्रज्ञप्तः, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिपृथिवि क्रोशस्य त्रिभागो वर्द्धनीयः, तथा चाह—द्वितीयस्याः पृथिव्याः सत्रिभागान् षट् क्रोशान् बाहल्येन प्रज्ञप्तः, तृतीयस्याः पृथिव्यास्त्रिभागोनान् सप्त क्रोशान् चतुर्थ्याः पृथिव्याः परिपूर्णान् सप्त क्रोशान् पञ्चम्याः पृथिव्याः सत्रिभागान् सप्त क्रोशान् षष्ठ्याः पृथिव्यास्त्रिभागोनान् अष्टौ क्रोशान्, अधःसप्तम्याः परिपूर्णान् अष्टौ क्रोशान्, उक्तञ्च—"छच्चेव अद्धपंचमजोयणसड्ढं च होइ रयणाए। उदही घणतणुवाया (उ)जहासंखेण निद्दिट्ठा ॥ १ ॥ सतिभागगाउगाउयं च तिभागो गाउयस्स बोद्धव्वो। आइधुवे पक्खेवो अहो अहो जाव सत्तमिया ॥ २ ॥" एतेषां च त्रयाणामपि घनोदध्यादिविभागानामेकत्र मीलने प्रतिपृथिवि यथोक्तमपान्तरालमानं भवति ॥ सम्प्रत्येतेष्वेव घनोदध्यादिवलयेषु क्षेत्रच्छेदेन कृष्णवर्णाद्युपेतद्रव्यास्तित्वप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, पूर्ववद्भावनीयं,

वाहल्यपरिमाणमपि घनोदध्यादीनां प्रतिपृथिवि प्रागुक्तमुपयुज्य वक्तव्यम् ॥ सम्प्रति घनोदध्यादिसंस्थानप्रतिपादनार्थमाह—'**इमीसे णं भंते!**' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या घनोदधिवलयः किमिव संस्थितः किंसंस्थितः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! 'वृत्तः' चक्रवालतया परिवर्त्तुलो वलयस्य—मध्यशुषिरस्य वृत्तविशेषस्याकारः—आकृतिर्वलयाकारः स इव संस्थानं वलयाकारसंस्थानं तेन संस्थितो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः ॥ कथमेवमवगम्यते वलयाकारसंस्थानसंस्थित इति?, तत आह—'**जेण**' मित्यादि, येन कारणेनेमां रत्नप्रभां पृथिवीं '**सर्वतः**' सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च '**संपरिक्षिप्य**' सामस्त्येन वेष्टयित्वा '**तिष्ठति**' वर्त्तते तेन कारणेन वलयाकारसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः । एवं घनवातवलयसूत्रं तनुवातवलयसूत्रं च परिभावनीयं, नवरं घनवातवलयो घनोदधिवलयं संपरिक्षिप्येति वक्तव्यः, तनुवातवलयो घनवातवलयं संपरिक्षिप्येति । एवं शेपास्वपि पृथिवीषु प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि सूत्राणि भावनीयानि ॥ '**इमा णं भंते!**' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी कियद् 'आयामविष्कम्भेन' समाहारो द्वन्द्वः, आयामविष्कम्भाभ्यां प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि आयामविष्कम्भेन, किमुक्तं भवति?—असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि आयामेन, असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि विष्कम्भेन च, आयामविष्कम्भयोस्तु परस्परमल्पबहुत्वचिन्तने तुल्यत्वं, तथाऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि 'परिक्षेपेण' परिधिना प्रज्ञप्ता, एवमेकैका पृथिवी तावद्वक्तव्या यावदधःसप्तमी पृथिवी ॥ '**इमा णं भंते!**' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी अन्ते मध्ये च सर्वत्र समा 'बाहल्येन' पिण्डभावेन प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतमेत्यादि सुगमम् । एवं क्रमेणैकैका पृथिवी तावद्वक्तव्या यावत्सप्तमी ॥

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० सव्वजीवा उववण्णपुव्वा? सव्वजीवा उववण्णा?, गोयमा!

इमीसे णं रय० पु० सव्वजीवा उववण्णपुव्वा नो चेव णं सव्वजीवा उववण्णा, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमा णं भंते ! रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा? सव्वजीवेहिं विजढा ?, गोयमा ! इमा णं रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा नो चेव णं सव्वजीवविजढा, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमीसे णं भंते ! रयण० पु० सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा? सव्वपोग्गला पविट्ठा ? गोयमा ! इमीसे णं रयण० पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गला पविट्ठा, एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा ? सव्वपोग्गला विजढा ?, गोयमा ! इमा णं रयणप्पभा पु० सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गलेहिं विजढा, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ७७)

'इमीसे णं भंते !' इत्यादि, अस्यां भदन्त ! रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः सामान्येन उपपन्नपूर्वा इति—उत्पन्नपूर्वाः कालक्रमेण, तथा सर्वजीवाः 'उपपन्नाः' उत्पन्ना युगपद् ?, भगवानाह—गौतम ! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः सांव्यवहारिकजीवराश्यन्तर्गताः प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सामान्येन 'उपपन्नपूर्वाः' उत्पन्नपूर्वाः कालक्रमेण, संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वजीवाः 'उपपन्ना' उत्पन्ना युगपत्, सकलजीवानामेककालं रत्नप्रभापृथिवीत्वेनोत्पादे सकलदेवनारकादिभेदाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात्, एवमेकैकस्याः पृथिव्यास्तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याः ॥ 'इमा णं भंते !' इत्यादि, इयं च भदन्त ! रत्नप्रभापृथिवी 'सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा' इति सर्वजीवैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, तथा सर्वजीवैर्युगपद् 'विजढा' परित्यक्ता ?, भगवानाह—गौतम !

इयं रत्नप्रभा पृथिवी प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सर्वजीवैः सांव्यवहारिकैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, न तु युगपत्परित्यक्ता, सर्वजीवैः एककालपरित्यागस्यासम्भवात् तथानिमित्ताभावात्, एवं तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी पृथ्वी ॥ 'इमीसे णं' मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे पुद्गला लोकोदरविवरवर्त्तिनः कालक्रमेण 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वाः, तथा सर्वे पुद्गलाः 'प्रविष्टाः' एककालं तद्भावेन परिणताः ?, भगवानाह—गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे पुद्गलाः लोकवर्त्तिनः 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वाः, संसारस्यानादित्वात्, न पुनरेककालं सर्वपुद्गलाः 'प्रविष्टाः' तद्भावेन परिणताः, सर्वपुद्गलानां तद्भावेन परिणतौ रत्नप्रभाव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्रापि पुद्गलाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात् । एवं सर्वासु पृथिवीषु क्रमेण वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां पृथिव्यामिति ॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण 'विजढपुव्वा' इति परित्यक्तपूर्वा तथैव सर्वैः पुद्गलैरेककालं परित्यक्ता ?, भगवानाह—गौतम! इयं रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वपुद्गलैरेककालं परित्यक्ता, सर्वपुद्गलैरेककालपरित्यागे तस्याः सर्वथा स्वरूपाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यतः शाश्वतत्वात्, एतच्चानन्तरमेव वक्ष्यति । एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वाच्या यावदधःसप्तमी पृथिवी ॥

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं सासया असासया?, गोयमा! सिय सासता सिय असासया ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—सिय सासया सिय असासया?, गोयमा! दव्वट्ठयाए सासता, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुचति—तं चेव जाव सिय असासता, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमा णं भंते! रयणप्पभापु० कालतो

केवचिरं होइ?, गोयमा! न कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सति ॥ भुविं च भवइ य भविस्सति य धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिता णिच्चा एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ७८)

'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी किं शाश्वती अशाश्वती ?, भगवानाह—गौतम! स्यात्—कथञ्चिच्छाश्वती, स्यात्—कथञ्चिदशाश्वती ॥ एतदेव सविशेषं जिज्ञासुः पृच्छति—'से केणट्ठेण'मित्यादि, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स च प्रश्ने, केन 'अर्थेन' कारणेन भदन्त! एवमुच्यते यथा स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वतीति ?, भगवानाह—गौतम! 'दव्वट्ठयाए' इत्यादि, द्रव्यार्थतया शाश्वतीति, तत्र द्रव्यं सर्वत्रापि सामान्यमुच्यते, द्रवति—गच्छति तान् तान् पर्यायान् विशेषानिति वा द्रव्यमितिव्युत्पत्तेर्द्रव्यमेवार्थः—तात्त्विकः पदार्थो यस्य न तु पर्यायाः स द्रव्यार्थः—द्रव्यमात्रास्तित्वप्रतिपादको नयविशेषस्तद्भावो द्रव्यार्थता तया द्रव्यमात्रास्तित्वप्रतिपादकनयाभिप्रायेणेतियावत् शाश्वती, द्रव्यार्थिकनयमतपर्यालोचनायामेवंविधस्य रत्नप्रभायाः पृथिव्या आकारस्य सदा भावात्, 'वर्णपर्यायैः' कृष्णादिभिः 'गन्धपर्यायैः' सुरभ्यादिभिः 'रसपर्यायैः' तिक्तादिभिः 'स्पर्शपर्यायैः' कठिनत्वादिभिः 'अशाश्वती' अनित्या, तेषां वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत्कालानन्तरं वाऽन्यथाभवनात्, अतादवस्थ्यस्य चानित्यत्वात्, न चैवमपि भिन्नाधिकरणे नित्यत्वानित्यत्वे, द्रव्यपर्याययोर्भेदाभेदोपगमात्, अन्यथोभयोरप्यसत्त्वापत्तेः, तथाहि—शक्यते वक्तुं परपरिकल्पितं द्रव्यमसत्, पर्यायव्यतिरिक्तत्वात्, बालत्वादिपर्यायशून्यवन्ध्यासुतवत्, तथा परपरिकल्पिताः पर्याया असन्तः, द्रव्यव्यतिरिक्तत्वात्, वन्ध्यासुतगतबालत्वादिपर्यायवत्, उक्तञ्च—"द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः। क कदा केन किंरूपा?,

३ प्रतिपत्तौ उद्देशः १ रत्नप्रभायाः शाश्वतेतरत्वे सू० ७८

दृष्टा मानेन केन वा ? ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन, विस्तरार्थिना च **धर्मसङ्ग्रहणिटी**का निरूपणीया । '**से तेणट्ठेण**'मित्याद्युपसंहारमाह, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स चात्र वाक्योपन्यासे अथ '**एतेन**' अनन्तरोदितेन कारणेन गौतम! एवमुच्यते—स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी पृथिवी, इह यद् यावत्सम्भवास्पदं तच्चेत्तावन्तं कालं शश्वद्भवति तदा तदपि शाश्वतमुच्यते यथा तन्त्रान्तरेषु 'आकप्पट्ठाई पुढवी सासया' इत्यादि, ततः संशयः—किमेषा रत्नप्रभा पृथवी सकलकालावस्थायितया शाश्वती उतान्यथा यथा तन्त्रान्तरीयैरुच्यत इति ?, ततस्तदपनोदार्थं पृच्छति—'**इमा णं भंते**' इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी कालतः '**कियच्चिरं**' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्नासीत्, सदैवासीदिति भावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः, अत्रापि स एव हेतुः, सदा भावादिति, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति भावः, अपर्यवसितत्वात् । तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—'**भुविं चे**'त्यादि, अभूत् भवति भविष्यति च, एवं त्रिकालभावित्वेन '**ध्रुवा**' ध्रुवत्वादेव '**नियता**' नियतावस्थाना, धर्म्मास्तिकायादिवत्, नियतत्वादेव च शाश्वती, शश्वद्भावः प्रलयाभावात्, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पद्मपौण्डरीकह्रद इवान्यतरपुद्गलविचटनेऽप्यन्यतरपुद्गलोपचयभावात्, अक्षया अक्षयत्वादेव च अव्यया, मानुषोत्तराद्बहिः समुद्रवत्, अव्ययत्वादेव '**अवस्थिता**' स्वप्रमाणावस्थिता, सूर्यमण्डलादिवत्, एवं सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या जीवस्वरूपवत्, यदिवा ध्रुवादयः शब्दा इन्द्रशक्रादिवत्पर्यायशब्दा नानादेशजविनेयानुग्रहार्थमुपन्यस्ता इत्यदोषः, एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वक्तव्या यावदधःसप्तमी ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवीषु(वि)विभागतोऽन्तरं विचिन्तयिषुरिदमाह—

[इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंतातो हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! असिउत्तरं जोयणसतसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते । इमी से णं भंते ! रयण० पु० उवरिल्लातो चरिमंताओ खरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लातो चरमंताओ रयणस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते ! रयण० पु० उवरिल्लातो चरिमंतातो वइरस्स कण्डस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते, ?, गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे प० ॥ इमीसे णं रयण० पु० उवरिल्लाओ चरिमंताओ वइरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं भंते ! केवतियं अबाधाए अंतरे प०?, गोयमा ! दो जोयणसहस्साइं इमीसे णं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठस्स उवरिल्ले पन्नरस जोयणसहस्साइं, हेट्ठिल्ले चरिमंते सोलस जोयणसहस्साइं ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पु० उवरिल्लाओ चरिमंताओ पंकबहुलस्स कंडस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं अबाधाए केवतियं अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते । हेट्ठिल्ले चरिमंते एक्कं जोयणसयसहस्सं आवबहुलस्स उवरि एक्कं जोयणसयसहस्सं हेट्ठिल्ले

३ प्रतिपत्तौ
उद्देशः १
काण्डा-
द्यन्तरं
सू० ७९

॥ ९९ ॥

चरिमंते असीउत्तरं जोयणसयसहस्सं । घणोदहि उवरिल्ले असिउत्तरजोयणसयसहस्सं हेट्ठिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं । इमीसे णं भंते! रयण० पुढ० घणवातस्स उवरिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं । हेट्ठिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं । इमीसे णं भंते! रयण० पु० तणुवातस्स उवरिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाधाए अंतरे हेट्ठिल्लेवि असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं, एवं ओवासंतरेवि ॥ दोच्चाए णं भंते! पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंताओ हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! बत्तीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । सक्करप्प० पु० उवरि घणोदधिस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते बावण्णुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाधाए । घणवातस्स असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं पण्णत्ताइं । एवं जाव उवासंतरस्सवि जावऽधेसत्तमाए, णवरं जीसे जं बाहल्लं तेण घणोदधी संबंधेतव्वो बुद्धीए । सक्करप्पभाए अणुसारेणं घणोदहिसहिताणं इमं पमाणं ॥ तच्चाए णं भंते! अडयालीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं । पंकप्पभाए पुढवीए चत्तालीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं । धूमप्पभाए पु० अट्ठतीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं । तमाए पु० छत्तीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं । अधेसत्तमाए पु० अट्ठावीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं जाव अधेसत्तमाए । एस णं भंते!

पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंतातो उवासंतरस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ॥ (सू० ७९)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्य प्रथमस्य खरकाण्डस्य विभागस्य 'उवरिल्लात्' इति उपरितनाच्चरमान्तात्परतो योऽधस्तनः 'चरमान्तः' चरमपर्यन्तः 'एस ण'मिति एतत्, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, अन्तरं 'कियत्' कियद्योजनप्रमाणम् 'अबाधया' अन्तरत्वव्याघातरूपया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! 'एकं योजनसहस्रम्' एकं योजनसहस्रप्रमाणमन्तरं प्रज्ञप्तम् ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या 'रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतो यो वज्रकाण्डस्योपरितनश्चरमान्त एतदन्तरं 'कियत्' किंप्रमाणमबाधया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! एकं योजनसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, रत्नकाण्डाधस्तनचरमान्तस्य वज्रकाण्डोपरितनचरमान्तस्य च परस्परसंलग्नतया उभयत्रापि तुल्यप्रमाणत्वभावात् ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्ताद् वज्रकाण्डस्य योऽधस्तनश्चरमान्तः एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! द्वे योजनसहस्रे अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, एवं काण्डे काण्डे द्वौ द्वावालापकौ वक्तव्यौ, काण्डस्य चाधस्तने चरमान्ते चिन्त्यमाने योजनसहस्रपरिवृद्धिः कर्त्तव्या यावद् रिष्टस्य काण्डस्याधस्तने चरमान्ते चिन्त्यमाने षोडश योजनसहस्राणि अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति वक्तव्यम् ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतो यः पङ्कबहुलस्य काण्डस्योपरितनश्चरमान्तः एतत् 'कियत्' किंप्रमाणमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! षोडश योजनसहस्राणि अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम्। 'इमीसे ण'मित्यादि, तस्यैव पङ्कबहुलस्य काण्डस्याधस्तनश्चरमान्त एकं यो-

जनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं । 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्य भदन्त ! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतो-ऽब्बहुलस्य काण्डस्य य उपरितनश्चरमान्त एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! एकं योजनशतसहस्रमबाधया-ऽन्तरं प्रज्ञप्तं । 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त ! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतोऽब्बहुलस्य काण्डस्य योऽधस्तनश्चरमान्त एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! अशीत्युत्तरं योजनशतसहस्रम् । घनोदधेरुपरितने चरमान्ते पृष्टे एतदेव निर्वचनमशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रम्, अधस्तने पृष्टे इदं निर्वचनं—द्वे योजनशतसहस्रे अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । घनवातस्योपरितने चरमान्ते पृष्टे इदमेव निर्वचनं, घनोदध्यधस्तनचरमान्तस्य घनवातोपरितनचरमान्तस्य च परस्परं संलग्नत्वात् । घनवातस्याधस्तने चरमान्ते पृष्टे एतन्निर्वचनम्—असङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । एवं तनुवातस्योपरितने चर-मान्ते अधस्तने चरमान्ते अवकाशान्तरस्याप्युपरितनेऽधस्तने च चरमान्ते इत्थमेव निर्वचनं वक्तव्यम्, असङ्ख्येयानि योजनशतस-हस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति, सूत्रपाठस्तु प्रत्येकं सर्वत्रापि पूर्वानुसारेण स्वयं परिभावनीयः सुगमत्वात् ॥ 'दोच्चाए णं' इत्यादि, द्वितीयस्या भदन्त ! पृथिव्या उपरितनाच्चरमान्तात्परतो योऽधस्तनश्चरमान्त एतत् 'कियत्' किंप्रमाणमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् ?, भग-वानाह—गौतम ! 'द्वात्रिंशदुत्तरं' द्वात्रिंशत्सहस्राधिकं योजनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । घनोदधेरुपरितने चरमान्ते पृष्टे एत-देव निर्वचनं द्वात्रिंशदुत्तरं योजनशतसहस्रम्, अधस्तने चरमान्ते पृष्टे इदं निर्वचनं—द्विपञ्चाशदुत्तरं योजनशतसहस्रम् । एतदेव घनवातस्योपरितनचरमान्तपृच्छायामपि, घनवातस्याधस्तनचरमान्तपृच्छायां तनुवातावकाशान्तरयोरुपरितनाधस्तनचरमान्तपृच्छासु च यथा रत्नप्रभायां तथा वक्तव्यम्, असङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति वक्तव्यमिति भावः ॥ 'तच्चाए णं

भंते !' इत्यादि, तृतीयस्या भदन्त ! पृथिव्या उपरितनाश्चरमान्ताद् अधस्तनश्चरमान्त एतदन्तरं कियद् अवाधया प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! अष्टाविंशत्युत्तरं शत(सहस्र)म्—अष्टाविंशतिसहस्राधिकं योजनशतसहस्रमवाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । एतदेव घनोदधेरुपरितनचरमान्तपृच्छायामपि निर्वचनम् । अधस्तनचरमान्तपृच्छायामष्टाचत्वारिंशदुत्तरं योजनशतसहस्रमवाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति वक्तव्यम् । एतदेव घनवातस्योपरितनचरमान्तपृच्छायामपि । अधस्तनचरमान्तपृच्छायां तनुवातावकाशान्तरयोरुपरितनाधस्तनचरमान्तपृच्छासु च यथा रत्नप्रभायां तथा वक्तव्यम् । एवं चतुर्थपञ्चमपष्ठसप्तमपृथिवीविपयाणि सूत्राण्यपि भावनीयानि ॥

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी दोचं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला विसेसाहिया संखेज्जगुणा? वित्थरेणं किं तुल्ला विसेसहीणा संखेज्जगुणहीणा?, गोयमा! इमा णं रयण० पु० दोचं पुढवीं पणिहाय बाहल्लेणं नो तुल्ला विसेसाहिया नो संखेज्जगुणा, वित्थारेणं नो तुल्ला विसेसहीणा णो संखेज्जगुणहीणा । दोचा णं भंते! पुढवी तचं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला? एवं चेव भाणितव्वं। एवं तचा चउत्थी पंचमी छट्ठी । छट्ठी णं भंते! पुढवी सत्तमं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला विसेसाहिया संखेज्जगुणा?, एवं चेव भाणियव्वं। सेवं भंते! २। नेरइयउद्देसओ पढमो ॥ (सू० ८०)

'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभापृथिवी द्वितीयां पृथिवीं शर्कराप्रभां 'प्रणिधाय' आश्रित्य 'बाहल्येन' पिण्डभावेन किं तुल्या विशेपाधिका सङ्ख्येयगुणा ?, बाहल्यमधिकृत्येदं प्रश्नत्रयम्, ननु एका अशीत्युत्तरयोजनलक्षमाना अपरा द्वात्रिंशदु-

त्तरयोजनलक्षमानेत्युक्तं ततस्तदर्थावगमे सत्युक्तलक्षणं प्रश्नत्रयमयुक्तं, विशेषाधिकेति स्वयमेवार्थपरिज्ञानात्, सत्यमेतत्, केवलं श्रप्रश्नोऽयं तदन्यमोहापोहार्थः, एतदपि कथमवसीयते ? इति चेत्स्वाववोधाय प्रश्नान्तरोपन्यासात्, तथा चाह—विस्तरेण—विष्कम्भेन किं ? तुल्या विशेपहीना सङ्ख्येयगुणहीना ? इति, भगवानाह—गौतम ! इयं रत्नप्रभा पृथिवी द्वितीयां शर्कराप्रभापृथिवीं प्रणिधाय बाहल्येन न [च] तुल्या किन्तु विशेषाधिका नापि सङ्ख्येयगुणा, कथमेतदेवम् ? इति चेदुच्यते—इह रत्नप्रभा पृथिवी अशीत्युत्तरयोजनलक्षमाना, शर्कराप्रभा द्वात्रिंशदुत्तरयोजनलक्षमाना, तदत्रान्तरमष्टाचत्वारिंशद् योजनसहस्राणि ततो विशेपाधिका घटते न तुल्या नापि सङ्ख्येयगुणा, विस्तरेण न तुल्या किन्तु विशेपहीना नापि सङ्ख्येयगुणहीना, प्रदेशादिवृद्ध्या प्रवर्द्धमाने तावति क्षेत्रे शर्कराप्रभाया एवं [च] वृद्धिसम्भवात्, एवं सर्वत्र भावनीयम् ॥ [तृतीयप्रतिपत्तौ समाप्तः प्रथमोद्देशकः, साम्प्रतं द्वितीयः प्रारभ्यते, तस्य चेदमादिसूत्रम्—] सम्प्रति कस्यां पृथिव्यां कस्मिन् प्रदेशे नरकावासाः ? इत्येतत्प्रतिपादनार्थं प्रथमं तावदिदमाह—

कइ णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा ॥ इमीसे णं रयणप्प० पु० असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवतियं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवतिए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! इमीसे णं रयण० पु० असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अडसत्तरी जोयणसयसहस्सा, एत्थ णं रयणप्पभाए पु० नेरइयाणं तीसं निरयावाससयसहस्साइं भवंतित्तिमक्खाया ॥

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा जाव असुभा णरएसु वेयणा, एवं एएणं अभिलावेणं उवजुंजिऊण भाणियव्वं ठाणप्पयाणुसारेणं, जत्थ जं बाहल्लं जत्थ जत्तिया वा नरयावाससयसहस्सा जाव अहेसत्तमाए पुढवीए, अहेसत्तमाए मज्झिमं केवतिए कति अणुत्तरा महइ महालता महाणिरया पण्णत्ता एवं पुच्छितव्वं वागरेयव्वंपि तहेव ॥ (सू० ८१)

'कइ णं भंते!' इत्यादि, कति भदन्त! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः ? इति, विशेषाभिधानार्थमेतदभिहितम्, उक्तञ्च—"पुव्वभणियंपि जं पुण भन्नई तत्थ कारणं अत्थि । पडिसेहो य अणुण्णा कारण(हेउ)विसेसोवलंभो वा ॥ १ ॥" भगवानाह—गौतम! सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रत्नप्रभा यावत्तमस्तमप्रभा ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरि 'कियत्' किंप्रमाणमवगाह्य—उपरितनभागात् कियद् अतिक्रम्येत्यर्थः अधस्तात् 'कियत्' किंप्रमाणं वर्जयित्वा मध्ये 'कियति' किंप्रमाणे कियन्ति नरकावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या अशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्याया उपर्येकं योजनसहस्रमवगाह्याधस्तादेकं योजनसहस्रं वर्जयित्वा 'मध्ये' मध्यभागे 'अट्ठसत्तरे' अष्टसप्ततिसहस्राधिके योजनशतसहस्रे 'अत्र' एतस्मिन् रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां योग्यानि त्रिंशन्नरकावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, अनेन सर्वतीर्थकृतामविसंवादिवचनता प्रवेदिता॥ 'ते णं नरगा' इत्यादि, ते नरका 'अन्तः' मध्यभागे 'वृत्ताः' वृत्ताकाराः 'वहिः' वहिर्भागे 'चतुरस्राः' चतुरस्राकाराः, इदं च पीठोपरिवर्त्तिनं मध्यभागमधिकृत्य प्रोच्यते, सकलपीठाद्यपेक्षया तु आवलिकाप्रविष्टा वृत्तत्र्यस्रच-

१ पूर्वभणितमपि यत् पुनर्भण्यते तत्र कारणमस्ति । प्रतिषेधोऽनुज्ञा कारणविशेषोपलम्भश्च ॥ १ ॥

तुरस्रसंस्थानाः पुष्पावकीर्णास्तु नानासंस्थानाः प्रतिपत्तव्याः, एतच्चाग्रे स्वयमेव वक्ष्यति, "अहे खुरप्पसंठाणसंठिया" इति, 'अधः' भूमितले क्षुरप्रस्येव—प्रहरणविशेषस्य(इव) यत् संस्थानम्—आकारविशेषस्तीक्ष्णतालक्षणस्तेन संस्थिताः क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिताः, तथाहि—तेषु नरकावासेषु भूमितले मसृणत्वाभावतः शर्करिले पादेषु न्यस्यमानेषु शर्करामात्रसंस्पर्शेऽपि क्षुरप्रेणेव पादाः कृत्यन्ते, तथा "**निच्चंधयारतमसा**" नित्यान्धकाराः उद्द्योताभावतो यत्तमस्तेन—तमसा नित्यं—सर्वकालमन्धकारो येषु ते नित्यान्धकाराः, तत्रापवरकादिष्वपि तमोऽन्धकारोऽस्ति केवलं स बहिः सूर्यप्रकाशे मन्दतमो भवति नरकेषु तु तीर्थकरजन्मदीक्षादिकालव्यतिरेकेणान्यदा सर्वकालमप्युद्द्योतलेशस्याप्यभावतो जात्यन्धस्येव मेघच्छन्नकालार्द्धरात्र इवातीव बहलतरो भवति, तत उक्तं तमसानित्यान्धकाराः, तमश्च तत्र सदाऽवस्थितमुद्द्योतकारिणामभावात्, तथा चाह—"**ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइसपहा**" व्यपगतः—परिभ्रष्टो ग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्ररूपाणाम् उपलक्षणमेतत्तारारूपाणां च ज्योतिष्काणां पन्था—मार्गो यत्र ते व्यपगतग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्रज्योतिष्कपथाः, तथा "**मेयवसापूयरुहिरमंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला**" इति स्वभावतः संपन्नैर्मेदोवसापूतिरुधिरमांसैर्यश्चिक्खिल्लः—कर्दमस्तेन लिप्तम्—उपदिग्धम् अनुलेपनेन—सकृल्लिप्तस्य पुनः पुनरुपलेपनेन तलं—भूमिका येषां ते मेदोवशापूतिरुधिरमांसचिक्खिल्ललिप्तानुलेपनतला अत एवाशुचयः—अपवित्रा बीभत्सा दर्शनेऽप्यतिजुगुप्सोत्पत्तेः परमदुरभिगन्धाः—मृतगवादिकडेवरेभ्योऽप्यतीवानिष्टदुरभिगन्धाः, "**काऊअगणिवन्नाभा**" इति लोहे धम्यमाने यादृक् कपोतो—बहुकृष्णरूपोऽग्नेर्वर्णः, किमुक्तं भवति?—यादृशी बहुकृष्णवर्णरूपाऽग्निज्वाला विनिर्गच्छतीति, तादृशी आभा—वर्णस्वरूपं येषां ते कपोताग्निवर्णाभाः, तथा कर्कशः—अतिदुस्सहोऽसिपत्रस्येव स्पर्शो येषां ते कर्कशस्पर्शाः, अत एव '**दुरहियासा**' इति दुःखेनाध्यास्यन्ते—सह्यन्ते इति दुरध्यासा अशुभा दर्शनतो नरकाः, तथा गन्ध-

रसस्पर्शशब्दैरशुभा—अतीवासातरूपा नरकेषु वेदना । एवं सर्वास्वपि पृथिवीष्वालापको वक्तव्यः, स चैवम्—"सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जेत्ता मज्झे चेव केवइए केवइया णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! सक्करप्पभाए णं पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहित्ता हेट्ठा एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे तीसुत्तरजोयणसयसहस्से एत्थ णं सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पणवीसा नरयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं णरगा अंतो वट्टा जाव असुभा नरएसु वेयणा । वालुयप्पभाए णं भंते! पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! वालुयप्पभाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठं एगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता, मज्झे छव्वीसुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पण्णरस निरयावाससयसहस्सा भवन्तीति मक्खायं, ते णं नरगा जाव असुभा नरगेसु वेयणा । पंकप्पभाए णं भंते! पुढवीए वीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! पंकप्पभाए णं पुढवीए वीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठारसुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं पंकप्पभा पुढविणेरइयाणं दस निरयावाससयसहस्सा निरयावासा भवंतीति मक्खायं, ते णं णरगा जाव असुभा नरगेसु वेयणा । धूमप्पभाए णं भंते! पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि केवइयं ओगाहेत्ता, हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! धूमप्पभाए णं पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसह-

स्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हेट्ठा एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे सोलसुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं धूमप्पभापुढविनेरइयाणं तिन्नि नेरइयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं णरगा अंतो वट्टा जाव असुभा नरगेसु वेयणा इति, [ग्रन्थाग्रम् ३०००]। तमप्पभाए णं भंते! पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि केवतियं ओगाहेत्ता हेट्ठा केवतियं वज्जेत्ता मज्झे केवतिए केवतिया नरगावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! तमप्पभाए णं पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हेट्ठा एगं जोयणसयसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे चोद्दसुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं तमापुढविनेरइयाणं एगे पंचूणे नरगावाससयसहस्से भवन्तीति मक्खायं, ते णं णरगा अंतो वट्टा जाव असुभा नरगेसु वेयणा। अहेसत्तमाए णं भंते! पुढवीए अट्ठोत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहेत्ता हेट्ठा केवइयं वज्जेत्ता मज्झे केवइए केवइया अणुत्तरा महइमहालया महानरगावासा पण्णत्ता?, गोयमा! अहेसत्तमाए पुढवीए अट्ठुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता हेट्ठावि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं वज्जित्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु एत्थ णं अहेसत्तमपुढविनेरइयाणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया पण्णत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए मज्झे अप्पइट्ठाणे, ते णं महानरगा अंतो वट्टा जाव असुभा महानरगेसु वेयणा" इति। इदं च सकलमपि सूत्रं सुगमं, तत्र बाहल्यपरिमाणनरकावासयोग्यमध्यभागपरिमाणनरकावाससङ्ख्यानामिमाः सङ्ग्रहणिगाथाः—"आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च। अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव हेट्ठिमया॥ १॥ अट्ठुत्तरं च तीसं छव्वीसं चेव सयसहस्सं तु। अट्ठारस सोलसगं चोद्दसमहियं तु छट्ठीए॥ २॥ अद्धतिवण्णसहस्सा उवरिमहे वज्जिऊण तो भणिया।

मज्झे तिसु सहस्सेसु होंति निरया तमतमाए ॥ ३ ॥ तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दस चेव मयसहस्साइं । तिन्नि य पंचूणेगं पंचेव अणुत्तरा निरया ॥ ४ ॥" पाठसिद्धाः ॥ सम्प्रति नरकावाससंस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरका किंसंठिया पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आवलियपविट्ठा य आवलियबाहिरा य, तत्थ णं जे ते आवलियपविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—वट्टा तंसा चउरंसा, तत्थ णं जे ते आवलियबाहिरा ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, तंजहा—अयकोट्ठसंठिता पिट्ठपयणगसंठिता कंडूसंठिता लोहीसंठिता कडाहसंठिता थालीसंठिता पिहडगसंठिता किमियडसंठिता किन्नपुडगसंठिआ उडवसंठिया मुरवसंठिता मुयंगसंठिया नंदिमुयंगसंठिया आलिंगकसंठिता सुघोससंठिया दद्दरयसंठिता पणवसंठिया पडहसंठिया भेरिसंठिआ झल्लरीसंठिया कुतुंवकसंठिया नालिसंठिया, एवं जाव तमाए ॥ अहेसत्तमाए णं भंते! पुढवीए णरका किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—वट्टे य तंसा य ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ता?, गोयमा! तिण्णि जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, तंजहा—हेट्ठा घणा सहस्सं मज्झे झुसिरा सहस्सं उप्पिं संकुइया सहस्सं, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसेणं भंते! रयणप्प० पु० नरगा केवतियं आयामविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता,

३ प्रतिपत्तौ उद्देशः १ नरकावासानां संस्थानं तद्बाहल्यं च सू० ८२

तंजहा—संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडा ते णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एवं जाव तमाए, अहेसत्तमाए णं भंते! पुच्छा, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडे से णं एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे य अट्ठावीसं च धणुसतं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलयं च किंचिविसेसाधिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ता (सू० ८२)

'इमीसे णं भंते'! इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः किमिव संस्थिताः किंसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! नरका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आवलिकाप्रविष्टाश्च आवलिकाबाह्याश्च, चशब्दावुभयेषामप्यशुभतातुल्यतासूचकौ, आवलिकाप्रविष्टा नामाष्टासु दिक्षु समश्रेण्यवस्थिताः, आवलिकासु—श्रेणिषु प्रविष्टा—व्यवस्थिता आवलिकाप्रविष्टाः, ते संस्थानमधिकृत्य त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वृत्तास्त्र्यस्राश्चतुरस्राः, तत्र ये ते आवलिकाबाह्यास्ते नानासंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अयःकोष्ठो—लोहमयः कोष्ठस्तद्वत्संस्थिता अयःकोष्ठसंस्थिताः, 'पिट्ठपयणगसंठिया' इति यत्र सुरासंधानाय पिष्टं पच्यते तत्पिष्टपचनकं तद्व-

त्संस्थिताः 'पिट्ठपयणगसंठिया' अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"अयकोट्ठपिट्ठपयणगकंडूलोहीकडाहसंठाणा । थाली पिहडग किण्ह(ग) उडए मुरवे मुयंगे य ॥ १ ॥ नंदिमुइंगे आलिंग सुघोसे दद्दरे य पणवे य । पडहगझल्लरिभेरीकुत्तुंबगनाडिसंठाणा ॥ २ ॥" कण्डुः—पाकस्थानं लोहीकटाहौ प्रतीतौ तद्वत्संस्थानाः स्थाली—उषा पिहडं—यत्र प्रभूतजनयोग्यं धान्यं पच्यते उटजः—तापसाश्रमो मुरजो—मर्दलविशेषः नन्दीमृदङ्गो—द्वादशविधतूर्यान्तर्गतो मृदङ्गः, स च द्विधा, तद्यथा—मुकुन्दो मर्दलश्च, तत्रोपरि सङ्कुचितोऽधो विस्तीर्णो मुकुन्दः उपर्यधश्च समो मर्दलः आलिङ्गो—मृन्मयो मुरजः सुघोषो—देवलोकप्रसिद्धो घण्टाविशेष आतोद्यविशेषो वा दर्दरो—वाद्यविशेषः पणवो—भाण्डानां पटहः पटहः—प्रतीतः, भेरी—ढक्का, झल्लरी—चर्मावनद्धा विस्तीर्णवलयाकारा, कुस्तुम्बकः—संप्रदायगम्यः, नाडी—घटिका, एवं शेषास्वपि पृथिवीषु तावद्वक्तव्यं यावत्षष्ठ्यां, सूत्रपाठोऽप्येवम्—"सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए नरका किंसंठिया पन्नत्ता?, गोयमा! दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—आवलिकापविट्ठा य आवलियाबाहिरा य" इत्यादि ॥ अधःसप्तमीविषयं सूत्रं साक्षादुपदर्शयति—'अहेसत्तमाए णं भंते!' इत्यादि, अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां नरकाः 'किंसंस्थिताः' किमिव संस्थिताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'वट्टे य तंसा य' इति, अधःसप्तम्यां हि पृथिव्यां नरका आवलिकाप्रविष्टा एव न आवलिकाबाह्याः, आवलिकाप्रविष्टा अपि पञ्च, नाधिकाः, तत्र मध्येऽप्रतिष्ठानाभिधानो नरकेन्द्रो वृत्तः, सर्वेषामपि नरकेन्द्राणां वृत्तत्वात्, शेषास्तु चत्वारः पूर्वादिषु दिक्षु, ते च त्र्यस्राः, तत उक्तं वृत्तश्च त्र्यस्राश्च ॥ सम्प्रति नरकावासानां बाहल्यप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः कियद्बाहल्येन—बहलस्य भावो बाहल्यं—पिण्डभाव उत्सेध इत्यर्थः तेन प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! त्रीणि योजनसहस्राणि बाहल्येन प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अधस्तने पादपीठे घना—निचिताः

सहस्रं—योजनसहस्रं, मध्ये—पीठस्योपरि मध्यभागे सुषिराः सहस्रं—योजनसहस्रं, तत 'उप्पिं'ति उपरि सङ्कुचिताः शिखराकृत्या सङ्कोचमुपगता योजनसहस्रं, तत एवं सर्वसङ्ख्यया नरकावासानां त्रीणि योजनसहस्राणि बाहल्यतो भवन्ति, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां, तथा चोक्तमन्यत्रापि—हेट्ठा घणा सहस्सं उप्पिं संकोचतो सहस्सं तु । मज्झे सहस्स सुसिरा तिन्नि सहस्सूसिया नरया ॥ १ ॥" सम्प्रति नरकावासानामायामविष्कम्भप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः किंप्रमाणमायामविष्कम्भेन, समाहारो द्वन्द्वस्तेनायामविष्कम्भाभ्यामित्यर्थः, कियत् 'परिक्षेपेण' परिरयेण प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सङ्ख्येयविस्तृताश्च असङ्ख्येयविस्तृताश्च, सङ्ख्येययोजनप्रमाणं विस्तृतं—विस्तरो येषां ते सङ्ख्येयविस्तृताः, एवमसङ्ख्येयं विस्तृतं येषां ते असङ्ख्येयविस्तृताः, चशब्दौ स्वगतानेकसङ्ख्याभेदप्रकाशनपरौ, तत्र ये ते सङ्ख्येयविस्तृतास्ते सङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि आयामविष्कम्भेन सङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण, तत्र ये तेऽसङ्ख्येयविस्तृतास्तेऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भेन असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावत्षष्ठी पृथिवी, सूत्रपाठस्त्वेवम्—सक्करप्पभाए णं भन्ते! पुढवीए नरगा केवइयं आयामविक्खंभेणं केवइयं परिरयेणं पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संखेज्जवित्थडा य, असंखेज्जवित्थडा य" इत्यादि ॥ 'अहेसत्तमाए णं भंते!' इत्यादि, अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां नरकाः कियदायामविष्कम्भेन कियत्परिक्षेपेण प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सङ्ख्येयविस्तृत एकः, स चाप्रतिष्ठानाभिधानो नरकेन्द्रकोऽवसातव्यः, असङ्ख्येयविस्तृताः शेषाश्चत्वारः, तत्र योऽसौ सङ्ख्येयविस्तृतोऽप्रतिष्ठानाभिधानो नरकेन्द्रकः स एकं योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे योजनशते सप्तविंशत्यधिके त्रयः

क्रोशा अष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदश अङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम्, इदं च परिक्षेपपरिमाणं गणितभावनया जम्बूद्वीपपरिक्षेपपरिमाणवद्भावनीयं, तत्र ये ते शेषाश्चत्वारोऽसङ्ख्येयविस्तृतास्तेऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भेनासङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि ॥ सम्प्रति नरकावासानां वर्णप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरया केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता?, गोयमा! काला कालावभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरका केरिसका गंधेणं पण्णत्ता?, गोयमा! से जहाणामए अहिमडेति वा गोमडेति वा सुणगमडेति वा मज्जारमडेति वा मणुस्समडेति वा महिसमडेति वा मूसगमडेति वा आसमडेति वा हत्थिमडेति वा सीहमडेति वा वग्घमडेति वा विगमडेति वा दीवियमडेति वा मयकुहियचिरविणट्ठकुणिमवावण्णदुब्भिगंधे असुइविलीणविगयबीभत्थदरिसणिज्जे किमिजालाउलसंसत्ते, भवेयारूवे सिया?, णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरका चेव अकंततरका चेव जाव अमणामतरा चेव गंधेणं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णरया केरिसया फासेणं पण्णत्ता?, गोयमा! से जहानामए असिपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा कलंबचीरियापत्तेइ वा सत्तग्गेइ वा कुंतग्गेइ वा तोमरग्गेति वा नारायग्गेति वा सूलग्गेति वा लउ-

लग्गेति वा भिंडिमालग्गेति वा सूचिकलावेति वा कवियच्छूति वा विंचुयकंटएति वा इंगालेति वा जालेति वा मुम्मुरेति वा, अच्चिति वा अलाएति वा सुद्धागणीइ वा, भवे एतारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरा चेव जाव अमणामतरका चेव फासे णं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए ॥ (सू० ८३)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः कीदृशा वर्णेन प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! कालाः, तत्र कोऽपि निष्प्रतिभतया मन्दकालोऽप्याशङ्क्येत ततस्तदाशङ्काव्यवच्छेदार्थं विशेषणान्तरमाह—'कालावभासाः' कालः—कृष्णोऽवभासः—प्रतिभाविनिर्गमो येभ्यस्ते कालावभासाः, कृष्णप्रभापटलोपचिता इति भावः, अत एव 'गम्भीररोमहर्षाः' गम्भीरः—अतीवोत्कटो रोमहर्षो—रोमोद्धर्षो भयवशाद् येभ्यस्ते गम्भीररोमहर्षाः, किमुक्तं भवति?—एवं नाम ते कृष्णावभासा यद्दर्शनमात्रेणापि नारकजन्तूनां भयसम्पादनेन अनर्गलं रोमहर्षमुत्पादयन्तीति, अत एव भीमा—भयानका भीमत्वादेव उत्रासनकाः, उत्रास्यन्ते नारका जन्तव एभिरिति उत्रासना उत्रासना एव उत्रासनकाः, किं वहुना?—'वर्णेन' वर्णमधिकृत्य परमकृष्णाः प्रज्ञप्ताः, यत ऊर्ध्वं न किमपि भयानकं कृष्णमस्तीति भावः, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ गन्धमधिकृत्याह—'**इमीसे णं भंते!**' इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! तद्यथा नाम—'**अहिमृत इति वा**' अहिमृतो नाम मृताहिदेहः, एवं सर्वत्र भावनीयं, गोमृत इति वा अश्वमृत इति वा मार्जारमृत इति वा हस्तिमृत इति वा सिंहमृत इति वा व्याघ्रमृत इति वा द्वीपः—चित्रकः, सर्वत्र अहिश्चासौ मृतश्च अहिमृत इत्येवं विशेषणसमासः, इह मृतकं सद्यःसंपन्नं न विगन्धि भवति तत आह—'**मयकुहियविणट्ठ-**

कुणिमवावण्णे'त्यादि, मृतः सन् कुथितः—पूतिभावमुपगतो मृतकुथितः, स चोच्छूनावस्थामात्रगतोऽपि भवति, न च स तथा विगन्धस्तत आह—विनष्टः—उच्छूनावस्थां प्राप्य स्फुटित इति भावः, सोऽपि तथा दुरभिगन्धो न भवति तत आह—'कुणिमवावण्ण'त्ति व्यापन्नं—विशरारुभूतं कुणिमं—मांसं यस्य स तथा, ततो विशेषणसमासः, 'दुरभिगन्धः' इति दुरभिः—सर्वेषामाभिमुख्येन दुष्टो गन्धो यस्यासौ दुरभिगन्धः, अशुचिश्च विलीनो—मनसः कलिमलपरिणामहेतुः 'विगय' इति विगतं प्रनष्टं यदभिमुखतया प्राणिनां गतं—गमनं यस्मिन्, तथा बीभत्सया—निन्दया दर्शनीयो बीभत्सादर्शनीयः ततो विशेषणसमासः अशुचिविगतबीभत्सादर्शनीयः 'किमिजालाउलसंसत्ते' इति संसक्तः सन् कृमिजालाकुलो जातः कृमिजालाकुलसंसक्तः, मयूरव्यंसकादित्वात्समासः संसक्तशब्दस्य च परनिपातः, एतावत्युक्ते गौतम आह—'भवे एयारूवे सिया?' इति, स्याद् भवेद्—भवेयुरेतद्रूपाः—यथोक्तविशेषणविशिष्टा अहिमृतादिरूपा गन्धेनाधिकृता नरकाः, सूत्रे च बहुवचनेऽप्येकवचनं प्राकृतत्वात्, भगवानाह—गौतम! 'नायमर्थः समर्थो' नायमर्थ उपपन्नो, यतोऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरका इतो—यथोक्तविशेषणविशिष्टाहिमृतादेरनिष्टतरा एव, तत्र किञ्चिद्रम्यमपि कस्याप्यनिष्टतरं भवति तत आह—अकान्ततरा एव—स्वरूपतोऽप्यकमनीयतरा एव, अभव्या एवेति भावः, तत्राकान्तमपि कस्यापि प्रियं भवति यथा गर्त्ताशूकरस्याशुचिः, तत आह—अप्रियतरा एव न कस्यापि प्रिया इति भावः, अत एवामनोज्ञतरा एव, अमनआपतरा एव गन्धमधिकृत्य प्रज्ञप्ताः, तत्र मनोज्ञं—मनोऽनुकूलमात्रं यत्पुनः स्वविषये मनोऽत्यन्तमासक्तं करोति तन्मनआपम्, एकार्थिका वा एते सर्वे शब्दाः शक्रेन्द्रपुरन्दरादिवत् नानादेशजविनेयजनानुग्रहार्थमुपात्ताः, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ स्पर्शमधिकृत्याह—'इमीसे ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! तद्यथा नाम—'असिपत्रमिति वा' असिः—खड्गं तस्य पत्रमसिपत्रं क्षुरप्रमिति वा

कदम्बचीरिकापत्रमिति वा, कदम्बचीरिका—तृणविशेषः, स च दर्भादप्यतीव छेदकः, शक्तिः—प्रहरणविशेषस्तदग्रमिति वा, कुन्ताग्रमिति वा, तोमराग्रमिति वा, भिण्डिमालः—प्रहरणविशेषस्तदग्रमिति वा, सूचीकलाप इति वा, वृश्चिकदंश इति वा, कपिकच्छूरिति वा, कपिकच्छूः—कण्डूविजनको वल्लीविशेषः, अङ्गार इति वा, अङ्गारो—निर्धूमाग्निः, ज्वालेति वा, ज्वाला—अनलसंबद्धा, मुर्मुर इति वा, मुर्मुरः—फुम्फुकादौ मसृणोऽग्निः, अर्चिरिति वा, अर्चिः—अनलविच्छिन्ना ज्वाला, अलातम्—उल्मुकं, शुद्धाग्निः—अयस्पिण्डाद्यनुगतोऽग्निर्विद्युदादिर्वा, इतिशब्दः सर्वत्रापि उपमाभूतवस्तुस्वरूपपरिसमाप्तिद्योतकः, वाशब्दः परस्परसमुच्चये, इह कस्यापि नरकस्य स्पर्शः शरीरावयवच्छेदकोऽपरस्य भेदकोऽन्यस्य व्यथाजनकोऽपरस्य दाहक इत्यादि ततः साम्यप्रतिपत्त्यर्थमसिपत्रादीनां नानाविधानामुपमानानामुपादानं, 'भवे एयारूवे सिया?' इत्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नरकावासानां महत्त्वमभिधित्सुराह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केमहालिया पण्णत्ता?, गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे २ सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतरए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूवसंठाणसंठिते वट्टे रथचक्कवालसंठाणसंठिते वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिते वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिते एक्कं जोयणसतसहस्सं आयामविक्खंभेणं जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभागे जाव इणामेव इणामेवत्तिकट्टु इमं केवलकप्पं जंबूद्दीवं २ तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा, से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरिताए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जयणाए [छेगाए] दिव्वाए दिव्वगतीए वीतिवयमाणे २ जहण्णेणं एगाहं वा दुयाहं वा

तिआहं वा उक्कोसेणं छम्मासेणं वीतिवएज्जा, अत्थेगतिए वीइवएज्जा अत्थेगतिए नो वीतिवएज्जा, एमहालता णं गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए, णवरं अधेसत्तमाए अत्थेगतियं नरगं वीइवइज्जा, अत्थेगइए नरगे नो वीतिवएज्जा ॥ (सू० ८४)

'इमीसे ण'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः **'किंमहान्तः'** किंप्रमाणा महान्तः प्रज्ञप्ताः ?, पूर्वं ह्यसङ्ख्येयविस्तृता इति कथितं, तच्चासङ्ख्येयत्वं नावगम्यत इति भूयः प्रश्नः, अत एवात्र निर्वचनं भगवानुपमयाऽभिधत्ते, गौतम! अयमिति यत्र संस्थिता वयं णमिति वाक्यालङ्कारे अष्टयोजनोच्छ्रितया रत्नमय्या जम्व्वा उपलक्षितो द्वीपो जम्बूद्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां—धातकीखण्डलवणादीनां सर्वाभ्यन्तरः—आदिभूतः **'सर्वक्षुल्लकः'** सर्वेभ्यो द्वीपसमुद्रेभ्यः क्षुल्लको—ह्रस्वः सर्वक्षुल्लकः, तथाहि—सर्वे लवणादयः समुद्राः सर्वे धातकीखण्डादयो द्वीपा अस्माज्जम्बूद्वीपादारभ्य प्रवचनोक्तेन क्रमेण द्विगुणद्विगुणायामविष्कम्भपरिधयः ततोऽयं शेषसर्वद्वीपसमुद्रापेक्षया सर्वलघुरिति, तथा वृत्तो यतः **'तैलापूपसंस्थानसंस्थितः'** तैलेन पक्वोऽपूपस्तैलापूपः, तैलेन हि पक्वोऽपूपः प्रायः परिपूर्णवृत्तो भवति न घृतेन पक्व इति तैलविशेषणं, तस्येव संस्थानं तैलापूपसंस्थानं तेन संस्थितस्तैलापूपसंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो यतः पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो यतो रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो यतः परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितः, अनेकधोपमानोपमेयभावो नानादेशजविनेयप्रतिपत्त्यर्थः, एकं योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे योजनशते सप्तविंशे त्रयः क्रोशा अष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदश अङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, परिक्षेपपरिमाणगणितभावना क्षेत्रसमासटीकातो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीकातो वा वेदितव्या। **'देवे ण'**मित्यादि, देवश्च णमिति वाक्याल-

ङ्कारे, 'महर्द्धिकः' महती ऋद्धिर्विमानपरिवारादिका यस्य स महर्द्धिकः, महती द्युतिः शरीराभरणविषया यस्य स महाद्युतिकः, महद् बलं–शारीरः प्राणो यस्य स महाबलः, महद् यशः–ख्यातिर्यस्य स महायशाः, तथा 'महेसक्खे' इति महेश इति महान् ईश्वर इत्याख्या यस्य स महेशाख्यः, अथवा ईशनमीशो भावे घञ्प्रत्यय ऐश्वर्यमित्यर्थः, 'ईशं ऐश्वर्ये' इति वचनात्, तत ईशम्–ऐश्वर्यमात्मनः ख्याति–अन्तर्भूतण्यर्थतया ख्यापयति–प्रथयति ईशाख्यः, महांश्चासावीशाख्यश्च महेशाख्यः, कचित् 'महासोक्खे' इति पाठः, तत्र महत् सौख्यं यस्य प्रभूतसद्वेदोदयवशात्स महासौख्यः, अन्ये पठन्ति—'महासक्खे' इति तत्रायं शब्दसंस्कारो–महाश्वाक्षः, इयं चात्र पूर्वाचार्यप्रदर्शिता व्युत्पत्तिः–आशुगमनादश्वो–मनः अक्षाणि–इन्द्रियाणि स्वविषयव्यापकत्वात् अश्वश्चाक्षाणि च अश्वाक्षाणि महान्ति अश्वाक्षाणि यस्यासौ महाश्वाक्षः, तथा 'महाणुभागे' इति अनुभागो–विशिष्टवैक्रियादिकरणविषयाऽचिन्त्या शक्तिः 'भागोऽचिंता सत्ती' इति वचनात्, महान् अनुभागो यस्य स महानुभागः, अमूनि महर्द्धिक इत्यादीनि विशेषणानि तत्सामर्थ्यातिशयप्रतिपादकानि यावदिति चप्पुटिकात्रयकरणकालावधिप्रदर्शनपरम् 'इणामेव इणामेवेतिकट्टु' एवमेव मुधिकया एवमेव 'मोरकुल्ला मुहा य मुहियत्ति नायव्वा' इति वचनाद् अवज्ञयेति भावः, उक्तञ्च मूलटीकायाम् "इणामेव इणामेवेति कट्टु एवमेव मुधिकयाऽवज्ञयेति" 'इतिकृत्वे'ति हस्तदर्शितचप्पुटिकात्रयकरणसूचकं केवलकल्पं–परिपूर्णं जम्बूद्वीपं त्रिभिरप्सरोनिपातैः, अप्सरोनिपातो नाम चप्पुटिका, तत्र तिसृभिश्चप्पुटिकाभिरिति द्रष्टव्यं, चप्पुटिकाश्च कालोपलक्षणं, ततो यावता कालेन तिस्रश्चप्पुटिकाः पूर्यन्ते तावत्कालमध्य इत्यर्थः, त्रिसप्तकृत्वः–एकविंशतिवारान् अनुपरिवर्त्य–सामस्त्येन परिभ्रम्य 'हव्वं' शीघ्रमागच्छेत्, स इत्थम्भूतगमनशक्तियोग्यो देवः तया देवजनप्रसिद्धया उत्कृष्टया प्रशस्तविहायोगतिनामोदयात्प्रशस्तया शीघ्रसंचरणात्त्वरितया त्वरा संजाताऽस्यामिति

त्वरिता तया त्वरितया शीघ्रतरमेव तया प्रदेशान्तराक्रमणमिति, चपलेव चपला तया, क्रोधाविष्टस्येव श्रमासंवेदनात् चण्डेव चण्डा तया, निरन्तरं शीघ्रत्वगुणयोगात् शीघ्रा तया शीघ्रया, परमोत्कृष्टवेगपरिणामोपेता जवना तया, अन्ये तु जितया विपक्षजेतृत्वेनेति व्याचक्षते, 'छेकया' निपुणया, वातोद्धूतस्य दिगन्तव्यापिनो रजस इव या गतिः सा उद्धूता तया, अन्ये त्वाहुः—उद्धतया दर्पातिशयेनेति, 'दिव्यया' दिवि—देवलोके भवा दिव्या तया देवगत्या व्यतिव्रजन् जघन्यतः 'एकाहं वा' एकमहर्यावत्, एवं द्व्यहं त्र्यहमुत्कर्षतः षण्मासान् यावद् व्यतिव्रजेत्, तत्रास्त्येतद् यदुत एककान् कांश्चन नरकान् 'व्यतिव्रजेत्' उल्लङ्घ्य परतो गच्छेत्, तथाऽस्त्येतद् यदुत इत्थंभूतयापि गत्या षण्मासानपि यावन्निरन्तरं गच्छन् एककान् कांश्चन नरकान् 'न व्यतिव्रजेत्' नोल्लङ्घ्य परतो गच्छेत्, अतिप्रभूताऽऽयामतया तेषामन्तस्य प्राप्तुमशक्यत्वात्, एतावन्तो महान्तो गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः प्रज्ञप्ताः, एवमेकैकस्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां, नवरमधःसप्तम्यामेवं वक्तव्यम्—"अत्थेगइयं नरगं वीइवएज्जा अत्थेगइए नरगे नो वीइवएज्जा" अप्रतिष्ठानाभिधस्यैकस्य नरकस्य लक्षयोजनायामविष्कम्भतयाऽन्तस्य प्राप्तुं शक्यत्वात् शेषाणां च चतुर्णामतिप्रभूतासङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणत्वेनान्तस्य प्राप्तुमशक्यत्वात् ॥ सम्प्रति किंमया नरका इति निरूपणार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा किंमया पण्णत्ता?, गोयमा! सव्ववइरामया पण्णत्ता, तत्थ णं नरएसु बहवे जीवा य पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति, सासता णं ते णरगा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ८५)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः 'किंमयाः' किंविकाराः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! 'सव्ववइरामया' इति सर्वात्मना वज्रमयाः प्रज्ञप्ताः, वज्रशब्दस्य सूत्रे दीर्घान्तता प्राकृतत्वात्, 'तत्र च' तेषु नरकेषु णमिति वाक्यालङ्कारे वहवो जीवाश्च खरबादरपृथिवीकायिकरूपाः पुद्गलाश्च 'अपक्रामन्ति' च्यवन्ते 'व्युत्क्रामन्ति' उत्पद्यन्ते, एतदेव शब्दद्वयं यथाक्रमं पर्यायद्वयेन व्याचष्टे—'चयंति उववज्जंति' च्यवन्ते उत्पद्यन्ते, किमुक्तं भवति?—एके जीवाः पुद्गलाश्च यथायोगं गच्छन्ति अपरे त्वागच्छन्ति, यस्तु प्रतिनियतसंस्थानादिरूप आकारः स तदवस्थ एवेति, अत एवाह—शाश्वता णमिति पूर्ववत् ते नरका द्रव्यार्थतया तथाविधप्रतिनियतसंस्थानादिरूपतया वर्णपर्यायैर्गन्धपर्यायै रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः पुनरशाश्वताः, वर्णादीनामन्यथाऽन्यथाभवनात्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी पृथिवी ॥ साम्प्रतमुपपातं विचिचिन्तयिषुराह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया कतोहिंतो उववज्जंति किं असण्णीहिंतो उववज्जंति सरीसिवेहिंतो उववज्जंति पक्खीहिंतो उववज्जंति चउप्पएहिंतो उववज्जंति उरगेहिंतो उववज्जंति इत्थियाहिंतो उववज्जंति मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति?, गोयमा! असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतोवि उववज्जंति[1],—असण्णी खलु पढमं दोच्चं च सरीसिवा ततिय पक्खी। सीहा जंति चउत्थीं उरगा पुण पंचमीं जंति ॥ १ ॥ छट्ठिं च इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं जंति। जाव अधेसत्तमाए पुढवीए नेरइया णो असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव णो इत्थियाहिंतो उवव-

१ (सेसासु इमाए गाहाए अणुगंतव्वा, एवं एतेणं अभिलावेणं इमा गाथा घोसेयव्वा).

ज्जंति मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरतिया एक्कसमएणं केवतिया उववज्जंति?, गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखिज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पुढवीए णेरतिया समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा केवतिकालेणं अवहिता सिता?, गोयमा! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति नो चेव णं अवहिता सिता जाव अधेसत्तमा ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरतियाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं सत्त धणूइं तिण्णि य रयणीओ छच्च अंगुलाइं, तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से जह० अंगुलस्स संखेज्जतिभागं उक्को० पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ, दोचाए भवधारणिज्जे जहण्णओ अंगुलासंखेज्जभागं उक्को० पण्णरस धणू अड्ढाइज्जातो रयणीओ उत्तरवेउव्विया जह० अंगुलस्स संखेज्जभागं उक्को० एक्कतीसं धणूइं एक्का रयणी, तच्चाए भवधारणिज्जे एक्कतीसं धणू एक्का रयणी, उत्तरवेउव्विया बासट्ठिं धणूइं दोण्णि रयणीओ, चउत्थीए भवधारणिज्जे बासट्ठ धणूइं दोण्णि य रयणीओ, उत्तरवेउव्विया पणवीसं धणुसयं, पंचमीए भवधारणिज्जे पणवीसं ध-

णुसयं, उत्तरवे० अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं, छट्ठीए भवधारणिज्जा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं, उत्तरवेउव्विया पंचधणुसयाइं, सत्तमाए भवधारणिज्जा पंचधणुसयाइं उत्तरवेउव्विए धणुसहस्सं ॥

(सू० ८६)

'**इमीसे ण**'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकाः कुत उत्पद्यन्ते?, किमसञ्ज्ञिभ्य उत्पद्यन्ते सरीसृपेभ्य उत्पद्यन्ते पक्षिभ्य उत्पद्यन्ते चतुष्पदेभ्य उत्पद्यन्ते उरगेभ्य उत्पद्यन्ते स्त्रीभ्य उत्पद्यन्ते मत्स्यमनुष्येभ्य उत्पद्यन्ते?, भगवानाह—गौतम! असञ्ज्ञिभ्योऽप्युत्पद्यन्ते यावन्मत्स्यमनुष्येभ्योऽप्युत्पद्यन्ते, '**सेसासु इमाए गाहाए अणुगंतव्वा**' इति, '**शेषासु**' शर्कराप्रभादिषु पृथिवीष्वनया गाथया, जातावेकवचनं गाथाद्विकेनेत्यर्थः, उत्पद्यमाना अनुगन्तव्याः, तदेव गाथाद्विकमाह—'**अस्सण्णी खलु पढम**'मित्यादि, असञ्ज्ञिनः—संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियाः खलु प्रथमां नरकपृथिवीं गच्छन्ति, खलुशब्दोऽवधारणे, तथा अवधारणमेवम्—असञ्ज्ञिनः प्रथमामेव यावद् गच्छन्ति न परत इति, नतु त एव प्रथमामिति गर्भजसरीसृपादीनामपि उत्तरपृथिवीषट्कगामिनां तत्र गमनात्, एवमुत्तरत्राप्यवधारणं भावनीयम्। '**दोच्चं च सरीसिवा**' इति द्वितीयामेव शर्कराप्रभाख्यां पृथिवीं यावद्गच्छन्ति सरीसृपाः—गोधानकुलादयो गर्भव्युत्क्रान्ता न परतः, तृतीयामेव गर्भजाः पक्षिणो गृध्रादयः, चतुर्थीमेव सिंहाः, पञ्चमीमेव गर्भजा उरगाः, षष्ठीमेव स्त्रियः स्त्रीरत्नाद्या महाक्रूराध्यवसायिन्यः, सप्तमीं यावद् गर्भजा मत्स्या मनुजा अतिक्रूराध्यवसायिनो महापापकारिणः, आलापकश्च प्रतिपृथिवि एवम्—"सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए नेरइया किं असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति?, गोयमा! नो असन्नीहिंतो उववज्जंति सरीसिवेहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति। वालुयप्पभाए णं भंते!

पुढवीए नेरइया किं असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति ?, गोयमा! नो असण्णीहिंतो उववज्जंति नो सरीसिवेहिंतो उववज्जंति पक्खीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति" एवमुत्तरोत्तरपृथिव्यां पूर्वपूर्वप्रतिषेधसहितोत्तरप्रतिषेधस्तावद्वक्तव्यो यावदधःसप्तम्यां स्त्रीभ्योऽपि प्रतिषेधः, तत्सूत्रं चैवम्—"अहेसत्तमाए णं भंते! पुढवीए नेरइया किं असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?, गोयमा! नो असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव नो इत्थीहिंतो उववज्जंति, मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति" ॥ सम्प्रत्येकस्मिन् समये कियन्तोऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नारका उत्पद्यन्ते ? इति निरूपणार्थमाह । (इमीसे णं) 'रयणप्पभापुढविए नेरइया णं भंते!' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! एकसमयेन कियन्त उत्पद्यन्ते ?, भगवानाह—गौतम! जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति प्रतिसमयमेकैकनारकापहारे सकलनारकापहारकालमानं विचिचिन्तयिषुरिदमाह—'रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते!' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! समये समये एकैकसङ्ख्यया अपह्रियमाणाः २ कियता कालेन सर्वात्मनाऽपह्रियन्ते ?, भगवानाह—गौतम! 'ते णं असंखेज्जा समए २ अवहीरमाणा' इत्यादि, ते रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका असङ्ख्येयास्ततः समये समये एकैकसङ्ख्यया अपह्रियमाणा असङ्ख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपह्रियन्ते, इदं च नारकपरिमाणप्रतिपत्त्यर्थं कल्पनामात्रं, 'नो चेव णं अवहिया सिया' इति न पुनरपहृताः स्युः, किमुक्तं भवति ?—न पुनरेवं कदाचनाप्यपहृता अभवन् नाप्यपह्रियन्ते नाप्यपहरिष्यन्त इति, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति शरीरपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभापुढवी' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! 'किंमहती' किंप्रमाणा महती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता ?, 'जहा पण्णवणाए ओगाहणसंठाणपदे'

इति, यथा प्रज्ञापनायामवगाहनासंस्थानाख्यपदे तथा वक्तव्या, सा चैवं—द्विविधा रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां शरीरावगाहना—भवधारणीया उत्तरवैक्रिया च, तत्र या सा भवधारणीया सा जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् परिपूर्णान्यङ्गुलानि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तावेका वितस्तिः, शर्कराप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तावेका वितस्तिः, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षत एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, वालुकाप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षत एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः सार्द्धानि द्वाषष्टिधनूंषि, पङ्कप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः सार्द्धानि द्वाषष्टिधनूंषि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चविंशं धनुःशतं, धूमप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चविंशं धनुःशतं, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतोऽर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, तमःप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतोऽर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चधनुःशतानि, तमस्तमःप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्च धनुःशतानि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग, उत्कर्षतो धनुःसहस्रमिति । यदि पुनः प्रतिप्रस्तटे चिन्ता क्रियते तदैवमवगन्तव्या—तत्र जघन्या भवधारणीया सर्वत्राप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागः, उत्तरवैक्रिया तु अङ्गुलसङ्ख्येयभागः, उक्तं च मूलटीकाकारेणान्यत्र—"उत्तरवैक्रिया तु तथाविधप्रयत्नाभावादाद्यसमयेऽप्यङ्गुलसङ्ख्येयभागमात्रैवे"ति, उत्कृष्टा तु भवधारणीयाया रत्नप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे त्रयो हस्ता अत ऊर्ध्वं क्रमेण प्रतिप्रस्तटं सार्द्धानि षट्पञ्चाशदङ्गुलानि प्रक्षिप्यन्ते, तत एवं परिमाणं भवति, द्वितीये प्रस्तटे धनुरेकमेको हस्तः सार्द्धानि चाष्टावङ्गुलानि, तृतीये धनुरेकं

त्रयो हस्ताः सप्तदशाङ्गुलानि, चतुर्थे द्वे धनुषी द्वौ हस्तौ सार्द्धमेकमङ्गुलं, पञ्चमे त्रीणि धनूंषि दशाङ्गुलानि, षष्ठे त्रीणि धनूंषि द्वौ हस्तौ सार्द्धान्यष्टादशाङ्गुलानि, सप्तमे चत्वारि धनूंषि एको हस्तस्त्रीणि चाङ्गुलानि, अष्टमे चत्वारि धनूंषि त्रयो हस्ताः सार्द्धान्येकादशाङ्गुलानि, नवमे पञ्च धनूंषि एको हस्तो विंशतिरङ्गुलानि, दशमे षड् धनूंषि सार्द्धानि चत्वार्यङ्गुलानि, एकादशे षड् धनूंषि द्वौ हस्तौ त्रयोदशाङ्गुलानि, द्वादशे सप्त धनूंषि सार्द्धान्येकविंशतिरङ्गुलानि, त्रयोदशे सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् च परिपूर्णान्यङ्गुलानि, उक्तञ्च—"रयणाए पढमपयरे हत्थतियं देह उस्सए भणियं । छप्पन्नंगुलसड्ढा पयरे पयरे हवइ वुड्ढी ॥ १ ॥"

प्र.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
ध.	०	१	१	२	३	३	४	४	५	६	६	७	७
ह.	३	१	३	२	०	२	१	३	१	०	२	०	३
अं.	०	८॥	१७	१॥	१०	१८॥	३	११॥	२०	४॥	१३	२१॥	६

शर्कराप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् चाङ्गुलानि, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं त्रयो हस्तास्त्रीणि चाङ्गुलानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटेऽष्ट धनूंषि द्वौ हस्तौ नव चाङ्गुलानि, तृतीये नव धनूंषि एको हस्तो द्वादश चाङ्गुलानि, चतुर्थे दश धनूंषि पञ्चदशाङ्गुलानि, पञ्चमे दश धनूंषि त्रयो हस्ता अष्टादशाङ्गुलानि, षष्ठे एकादश धनूंषि द्वौ हस्तावेकविंशतिरङ्गुलानि, सप्तमे द्वादश धनूंषि द्वौ हस्तौ, अष्टमे त्रयोदश धनूंषि एको हस्तस्त्रीणि चाङ्गुलानि, नवमे चतुर्दश धनूंषि षट् चाङ्गुलानि, दशमे चतुर्दश धनूंषि त्रयो हस्ता नव चाङ्गुलानि, एकादशे पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तौ एका वितस्तिः, उक्तञ्च—"सो चेव य बीयाए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । हत्थ तिय तिन्नि अङ्गुल पयरे पयरे य वुड्ढी य ॥ १ ॥ एक्कारसमे पयरे पन्नरस धणूणि दोण्णि रयणीओ । बारस य अंगुलाइं देहपमाणं तु विन्नेयं ॥ २ ॥" अत्र **'सो चेव य बीयाए'** इति य एव प्रथमपृथिव्यां त्रयोदशे प्रस्तटे उत्सेधो भणितो

यथा सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् चाङ्गुलानीति स एव द्वितीयस्यां शर्कराप्रभायां पृथिव्यां प्रथमे प्रस्तटे उत्सेधो भवति, शेषं सुगमम् ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	प्र.
७	८	९	१०	१०	११	१२	१३	१४	१४	१५	ध.
३	२	१	०	३	२	२	१	०	३	२	ह.
६	९	१	१५	१८	२१	०	३	६	९	१२	अं.

वालुकाप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तौ द्वादश चाङ्गुलानि, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं सप्त हस्ताः सार्द्धानि चैकोनविंशतिरङ्गुलानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटे सप्तदश धनूंषि द्वौ हस्तौ सार्द्धानि सप्ताङ्गुलानि, तृतीये एकोनविंशतिर्धनूंषि द्वौ हस्तौ त्रीण्यङ्गुलानि, चतुर्थे एकविंशतिर्धनूंषि एको हस्तः सार्द्धानि च द्वाविंशतिरङ्गुलानि, पञ्चमे त्रयोविंशतिर्धनूंषि एको हस्तोऽष्टादश चाङ्गुलानि, षष्ठे पञ्चविंशतिर्धनूंषि एको हस्तः सार्द्धानि त्रयोदशाङ्गुलानि, सप्तमे सप्तविंशतिर्धनूंषि एको हस्तो नव चाङ्गुलानि, अष्टमे एकोनत्रिंशद् धनूंषि एको हस्तः सार्द्धानि चत्वार्यङ्गुलानि, नवमे एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, उक्तञ्च—"सो चेव य तइयाए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । सत्त य रयणी अंगुल गुणवीसं सड्ढ वुड्ढी य ॥ १ ॥ पयरे पयरे य तहा नवमे पयरंमि होइ उस्सेहो । धणुयाणि एगतीसं एक्का रयणी य नायव्वा ॥ २ ॥" अत्रापि **'सो चेव य तइयाए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो'** इति य एव द्वितीयस्यां शर्कराप्रभायामेकादशे प्रस्तटे उत्सेधः स एव तृतीयस्यां वालुकाप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे भवति, शेषं सुगमं । पङ्कप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, तत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं पञ्च धनूंषि विंशतिरङ्गुलानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटे षट्त्रिंशद्धनूंषि एको हस्तो विंशतिरङ्गुलानि, तृतीये एकचत्वारिंशद्धनूंषि द्वौ हस्तौ षोडशाङ्गुलानि, चतुर्थे षट्चत्वारिंशद्धनूंषि त्रयो हस्ता द्वादशाङ्गुलानि, पञ्चमे द्विपञ्चाशद्धनूंषि अष्टावङ्गुलानि, षष्ठे सप्तपञ्चाशद्धनूंषि

एको हस्तश्चत्वार्यङ्गुलानि, सप्तमे द्वाषष्टिः धनूंषि द्वौ हस्तौ, उक्तञ्च—"सो चेव चउत्थीए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । पञ्च धणु वीस अंगुल पयरे पयरे य वुड्ढी य ॥ १ ॥ जा सत्तमए पयरे नेरइयाणं तु होइ उस्सेहो । बासट्ठी धणुयाइं दोण्णि य रयणी य बोद्धव्वा ॥ १ ॥" अत्रापि 'सो चेवे'त्यस्यार्थः पूर्वानुसारेण भावनीयः । धूमप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे द्वाषष्टिर्धनूंषि द्वौ हस्तौ, तत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं पञ्चदश धनूंषि सार्द्धहस्तद्वयाधिकानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तेनेदं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटेऽष्टसप्ततिर्धनूंषि एका वितस्तिः, तृतीये त्रिनवतिर्धनूंषि त्रयो हस्ताः, चतुर्थे नवोत्तरं धनुःशतमेको हस्त एका वितस्तिः, पञ्चमे पञ्चविंशं धनुःशतं, उक्तञ्च—"सो चेव पंचमीए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । पनरस धणूणि दो हत्थ सड्ढ पयरेसु वुड्ढी य ॥ १ ॥ तह पंचमए पयरे उस्सेहो धणुसयं तु पणवीसं ।" 'सो चेव य' इत्यस्यार्थोऽत्रापि पूर्ववत् । तमःप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे पञ्चविंशं धनुःशतं ततः परतरे तु प्रस्तटद्वये क्रमेण प्रत्येकं सार्द्धानि द्वाषष्टिर्धनूंषि प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये सार्द्धसप्ताशीत्यधिकं धनुःशतं, तृतीयेऽर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, उक्तञ्च—"सो चेव य छट्ठीए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । वासट्ठि धणु य सड्ढा पयरे पयरे य वुड्ढी य ॥१॥ (सड्ढा य सत्तसीइ बीए पयरंमि होइ धणुयसयं) छट्ठीएँ तइयपयरे दो सय पण्णासया होंति ॥ २ ॥" सप्तमपृथिव्यां पञ्च धनुःशतानि, उत्तरवैक्रिया तु सर्वत्रापि भवधारणीयापेक्षया द्विगुणप्रमाणाऽवसातव्या ॥ सम्प्रति संहननप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरइयाणं सरीरया किंसंघयणी पण्णत्ता?, गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणा, णेवट्ठी णेव छिरा णवि ण्हारू णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं सरीरसंघायत्ताए परिणमंति, एवं जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयण०

पु० नेरतियाणं सरीरा किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया तेवि हुंडसंठिता पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० णेरतियाणं सरीरगा केरिसता वण्णेणं पण्णत्ता?, गोयमा! काला कालोभासा जाव परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए॥ इमीसे णं भंते रयण० पु० नेरइयाणं सरीरया केरिसया गंधेणं पण्णत्ता?, गोयमा! से जहानामए अहिमडे इ वा तं चेव जाव अहेसत्तमा॥ इमीसे णं रयण० पु० नेरइयाणं सरीरया केरिसया फासेणं पण्णत्ता?, गोयमा! फुडितच्छविविच्छविया खरफरुसझामझुसिरा फासेणं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमा॥ (सू० ८७)

'**रयणप्पभे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! '**किंसंहननिनः**' केन संहननेन संहननवन्तः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! '**छण्हं संघयणाण**' मित्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी॥ सम्प्रति संस्थानप्रतिपादनार्थमाह—'**रयणप्पभे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि '**किंसंस्थितानि**' केन संस्थानेन संस्थानवन्ति प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां शरीराणि द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भवधारणीयानि उत्तरवैक्रियाणि च, तत्र यानि भवधारणीयानि तानि तथाभवस्वाभाव्यादवश्यं हुण्डनामकर्मोदयतो हुण्डसंस्थानानि, यान्यपि चोत्तरवैक्रियरूपाणि तान्यपि यद्यपि शुभमहं वैक्रियं करिष्यामीति चिन्तयति तथाऽपि तथाभवस्वाभाव्यतो हुण्डसंस्थाननामकर्मोदयत उत्पाटितसकलरोमपिच्छकपोतपक्षिण इव हु-

ण्डसंस्थानानि भवन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति नारकाणां शरीरेषु वर्णप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि कीदृशानि वर्णेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! 'काला कालोभासा' इत्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमपृथिव्याम् ॥ अधुना गन्धप्रतिपादनार्थमाह—रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि कीदृशानि गन्धेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! 'से जहानामए अहिमडे इ वा' इत्यादि प्राग्वत्, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति स्पर्शप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते!' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि कीदृशानि स्पर्शेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! स्फटितच्छविविच्छवयः, इहैकत्र छविशब्दस्त्वग्वाची अपरत्र छायावाची, ततोऽयमर्थः—स्फटितया—राजिशतसङ्कुलया त्वचा विच्छवयो—विगतच्छायाः स्फटितच्छविविच्छवयः, तथा खरम्(राणि)—अतिशयेन परुषाणि खरपरुषाणि ध्यामानि—दग्धच्छायानि शुषिराणि—शुषिरशतकलितानि, ततः पदत्रयस्यापि पदद्वयपदद्वयमीलनेन विशेषणसमासः, सुपक्वेष्टकाध्यामतुल्यानीतिभावः, स्पर्शेन प्रज्ञप्तानि, एवं प्रतिपृथिवि तावद् यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रत्युच्छ्वासप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरतियाणं केरिसया पोग्गला ऊसासत्ताए परिणमंति?, गोयमा! जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं ऊसासत्ताए परिणमंति, एवं जाव अहेसत्तमाए, एवं आहारस्सवि सत्तसुवि ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरतियाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! एक्का काउलेसा पण्णत्ता, एवं सक्करप्पभाएऽवि, वालुयप्पभाए पुच्छा, दो

लेसाओ पण्णत्ताओ तं०—नीललेसा कापोतलेसा य, तत्थ जे काउलेसा ते बहुतरा जे णीललेस्सा पण्णत्ता ते थोवा, पंकप्पभाए पुच्छा, एक्का नीललेसा पण्णत्ता, धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा! दो लेस्साओ पण्णत्ताओ, तंजहा—किण्हलेस्सा य नीललेस्सा य, ते बहुतरका जे नीललेस्सा, ते थोवतरका जे किण्हलेसा, तमाए पुच्छा, गोयमा! एक्का किण्हलेस्सा, अधेसत्तमाए एक्का परमकिण्हलेस्सा ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरइया किं सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी?, गोयमा! सम्मदिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि सम्मामिच्छदिट्ठीवि, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० णेरतिया किं नाणी अण्णाणी?, गोयमा! णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते णियमा तिणाणी, तंजहा—आभिणिबोधितणाणी सुयणाणी अवधिणाणी, जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी अत्थेगइया तिअन्नाणी, जे दुअन्नाणी ते णियमा मतिअन्नाणी य सुयअण्णाणी य, जे तिअन्नाणी ते नियमा मतिअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगणाणीवि, सेसा णं णाणीवि अण्णाणीवि तिण्णि जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयण० किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी?, तिण्णिवि, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभापु० नेरइया किं सागारोवउत्ता अणा-

---

१ टीकाकृद्भिः अत्र 'सक्करपभापुढवीनेरइया कि नाणी अन्नाणी?, गोयमा! नाणीवि अन्नाणीवि, जे नाणी ते नियमा तिन्नाणी आभि० सुय० ओहि०, जे अन्नाणी ते नियमा तिअन्नाणी मतिअन्नाणी सुअअ० विभंगनाणी, एवं' इति पाठ इतः प्राक् वाचनान्तरगतोऽनुसृत·

गारोवउत्ता?, गोयमा! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ॥ [इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० नेरइया ओहिणा केवतियं खेत्तं जाणंति पासंति?, गोयमा! जहण्णेणं अद्धुट्ठगाउताइं उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं । सक्करप्पभापु० जह० तिन्नि गाउयाइं उक्को० अद्धुट्ठाइं, एवं अद्धद्धगाउयं परिहायति जाव अधेसत्तमाए जह० अद्धगाउयं उक्कोसेणं गाउयं] ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरतियाणं कति समुग्घाता पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि समुग्घाता पण्णत्ता, तंजहा—वेदणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्विय-समुग्घाए, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ८८)

'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कीदृशाः पुद्गला उच्छ्वासतया परिणमन्ति?, भगवानाह—गौतम! ये पुद्गला अनिष्टा अकान्ता अप्रिया अशुभा अमनोज्ञा अमनआपाः, अमीषां पदानां व्याख्यानं प्राग्वत्, ते तेषां रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणामुच्छ्वासतया परिणमन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ साम्प्रतमाहारप्रतिपादनार्थमाह—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कीदृशाः पुद्गला आहारतया परिणमन्ति?, भगवानाह—गौतम! ये पुद्गला अनिष्टा अकान्ता अप्रिया अशुभा अमनोज्ञा अमनआपास्ते तेषामाहारतया परिणमन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् । इह पुस्तकेषु बहुधाऽन्यथापाठो दृश्यते, अत एव वाचनाभेदोऽपि समग्रो दर्शयितुं न शक्यते, केवलं बहुषु पुस्तकेषु योऽविसंवादी पाठस्तत्प्रतिपत्त्यर्थं सुगमान्यप्यक्षराणि संस्कारमात्रेण विव्रियन्तेऽन्यथा सर्वमेतदुत्तानार्थं सूत्रमिति ॥ सम्प्रति लेश्याप्रतिपादनार्थमाह—'रयणे'त्यादि,

रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! कापोतलेश्या प्रज्ञप्ता, एवं शर्कराप्रभानैरयिकाणामपि, नवरं तेषां कापोतलेश्या सङ्क्लिष्टतरा वेदितव्या, वालुकाप्रभानैरयिकाणां द्वे लेश्ये, तद्यथा—नीललेश्या च कापोतलेश्या च, तत्र ते बहुतरा ये कापोतलेश्याः, उपरितनप्रस्तटवर्त्तिनां नारकाणां कापोतलेश्याकत्वात् तेषां चातिभूयस्कत्वात्, ते स्तोकतरा ये नीललेश्याकाः, पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकाणामेका नीललेश्या, सा च तृतीयपृथिवीगतनीललेश्याऽपेक्षयाऽविशुद्धतरा, धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाणां द्वे लेश्ये, तद्यथा—कृष्णलेश्या च नीललेश्या च, तत्र ते बहुतरा ये नीललेश्याकाः, ते स्तोकतरा ये कृष्णलेश्याकाः, भावनाऽत्रापि प्राग्वत्, तमःप्रभापृथिवीनैरयिकाणां कृष्णलेश्या, सा च पञ्चमपृथिवीगतकृष्णलेश्याऽपेक्षयाऽविशुद्धतरा, अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकाणामेका परमकृष्णलेश्या, उक्तं च **व्याख्याप्रज्ञप्तौ**—"काऊ दोसु तइयाएँ मीसिया नीलिया चउत्थीए । पंचमियाए मीसा कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥ १ ॥" सम्प्रति सम्यग्दृष्टित्वादिविशेषप्रतिपादनार्थमाह—**'रयणे'**त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो वा?, भगवानाह—गौतम! सम्यग्दृष्टयोऽपि मिथ्यादृष्टयोऽपि सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽपि, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वाच्यं यावत्तमस्तमायाम् ॥ सम्प्रति ज्ञान्यज्ञानिचिन्तां कुर्वन्नाह—**'रयणे'**त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं ज्ञानिनोऽज्ञानिनः?, भगवानाह—गौतम! ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि, सम्यग्दृशां ज्ञानित्वान्मिथ्यादृशामज्ञानित्वात्, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्त्रिज्ञानिनः, अपर्याप्तावस्थायामपि तेषामवधिज्ञानसम्भवात्, सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्यस्तेषामुत्पादात्, त्रिज्ञानित्वमेव भावयति, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनः, येऽज्ञानिनस्ते **'अत्थेगइया'** इति अस्तीतिनिपातोऽत्र बहुवचनगर्भः सन्त्येकका द्व्यज्ञानिनः सन्त्येककास्त्र्यज्ञानिनः, तत्र येऽसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य उत्पद्यन्ते तेषामपर्याप्तावस्थायां विभङ्गा-

सम्भवाद् द्व्यज्ञानिनः, शेषकालं तु तेषामपि त्र्यज्ञानिता, सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य उत्पन्नानां तु सर्वकालमपि त्र्यज्ञानितेव, अपर्याप्तावस्थायामपि तेषां विभङ्गभावात्, तत्र ये द्व्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, ये त्र्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च। 'सक्करप्पभापुढवी'त्यादि, शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं ज्ञानिनोऽज्ञानिनः?, भगवानाह—गौतम! ज्ञानिनोऽप्यज्ञानिनोऽपि, तत्रापि सम्यग्दृशां मिथ्यादृशां च भावात्, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्रिज्ञानिनः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, येऽज्ञानिनस्ते नियमात्त्र्यज्ञानिनः, सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य एव तत्रोत्पादात्, त्र्यज्ञानित्वमेव दर्शय[ती]ति, तद्यथा—मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, एवं शेषास्वपि पृथिवीषु वक्तव्यं, तत्रापि सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य एवोत्पादात् ॥ सम्प्रति योगप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययोगिनः?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधा अपि, एवं प्रतिपृथिवि तावद् यावदधःसप्तम्याम् ॥ अधुना साकारानाकारोपयोगचिन्तां कुर्वन्नाह—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ताः?, भगवानाह—साकारोपयुक्ता अपि अनाकारोपयुक्ता अपि, एवं तावद् यावदधःसप्तम्याम् ॥ अधुना समुद्घातचिन्तां करोति—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कति समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! चत्वारः समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातश्च, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति क्षुत्पिपासे चिन्तयति—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभा० पु० नेरतिया केरिसयं खुहप्पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! एगमेगस्स णं रयणप्पभापुढविनेरतियस्स असब्भावपट्ठवणाए सव्वोदधी वा सव्वपोग्गले वा

आसगंसि पक्खिवेज्जा णो चेव णं से रयणप्प० पु० णेरतिए तित्ते वा सिता वितण्हे वा सिता, एरिसया णं गोयमा! रयणप्पभाए णेरतिया खुधप्पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, एवं जाव अधेसत्तमाए॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पु० नेरतिया किं एकत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तंपि पभू विउव्वित्तए?, गोयमा! एगत्तंपि पभू पुहुत्तंपि पभू विउव्वित्तए, एगत्तं विउव्वेमाणा एगं महं मोग्गररूवं वा एवं मुसुंढिकरवत्तअसिसत्तीहलगतामुसलचक्कणारायकुंततोमरसूललउड-भिंडमाला य जाव भिंडमालरूवं वा पुहुत्तं विउव्वेमाणा मोग्गररूवाणि वा जाव भिंडमालरूवाणि वा ताइं संखेज्जाइं णो असंखेज्जाइं संबद्धाइं नो असंबद्धाइं सरिसाइं नो असरिसाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं अभिहणमाणा अभिहणमाणा वेयणं उदीरेंति उज्जलं विउलं पगाढं कक्कसं कडुयं फरुसं निट्ठुरं चंडं तिव्वं दुक्खं दुग्गं दुरहियासं, एवं जाव धूमप्पभाए पुढवीए। छट्ठसत्तमासु णं पुढवीसु नेरइया बहू महंताइं लोहियकुंथूरूवाइं वइरामइतुंडाइं गोमयकीडसमाणाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अन्नमन्नस्स कायं समतुरंगेमाणा खायमाणा खायमाणा सयपोरागकिमिया विव चालेमाणा २ अंतो अंतो अणुप्पविसमाणा २ वेदणं उदीरंति उज्जलं जाव दुरहियासं॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० नेरइया किं सीतवेदणं वेइंति उसिणवेदणं वेइंति सीउसिणवेदणं वेदेंति?, गोयमा! णो सीयं वेदणं वेदेंति उसिणं वेदणं

वेदेंति नो सीतोसिणं, [ते अप्पयरा उण्हजोणिया वेदेंति,] एवं जाव वालुयप्पभाए, पंकप्पभाए पुच्छा, गोयमा! सीयंपि वेदणं वेदेंति, उसिणंपि वेयणं वेयंति, नो सीओसिणवेयणं वेयंति, ते बहुतरगा जे उसिणं वेदणं वेदेंति, ते थोवयरगा जे सीतं वेदणं वेइंति । धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा! सीतंपि वेदणं वेदेंति उसिणंपि वेदणं वेदेंति णो सीतो०, ते बहुतरगा जे सीयवेदणं वेदेंति ते थोवयरका जे उसिणवेदणं वेदेंति । तमाए पुच्छा, गोयमा! सीयं वेदणं वेदेंति नो उसिणं (वेदणं) वेदेंति नो सीतोसिणं वेदणं वेदेंति, एवं अहेसत्तमाए णवरं परमसीयं ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरइया केरिसयं णिरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति?, गोयमा! ते णं तत्थ णिच्चं भीता णिच्चं तसिता णिच्चं छुहिया णिच्चं उव्विग्गा निच्चं उपप्पुआ णिच्चं वहिया निच्चं परममसुभमउलमणुबद्धं निरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति, एवं जाव अधेसत्तमाए णं पुढवीए पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणरगा पण्णत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अप्पतिट्ठाणे, तत्थ इमे पंच महापुरिसा अणुत्तरेहिं दंडसमादाणेहिं कालमासे कालं किच्चा अप्पतिट्ठाणे णरए णेरति(य)त्ताए उववण्णा, तंजहा—रामे १, जमदग्गिपुत्ते, दढाउ २, लच्छतिपुत्ते, वसु ३, उवरिचरे, सुभूमे कोरव्वे ४, बंभ ५, दत्ते चुलणिसुते ६, ते णं तत्थ नेरतिया जाया काला कालो० जाव परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, तंजहा–ते णं तत्थ वेदणं वेदेंति उज्जलं विउलं जाव दुरहि-

यासं ॥ उसिण वेदणिज्जेसु णं भंते! णेरतिएसु णेरतिया केरिसयं उसिणवेदणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति? गोयमा! से जहाणामए कम्मारदारए सिता तरुणे बलवं जुगवं अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपादपासपिट्ठंतरोरु [संघाय] परिणए लंघणपवणजवणवग्गणपमद्दणसमत्थे तलजमलजुयलबहुफलिहणिभबाहू घणणिचितवलियवट्टखंधे चम्मेट्ठगदुहणमुट्ठियसमाहयणिचितगत्तगत्ते उरस्सबलसमण्णागए छेए दक्खे पट्ठे कुसले णिउणे मेहावी णिउणसिप्पोवगए एगं महं अयपिंडं उदगवारसमाणं गहाय तं ताविय ताविय कोट्टित कोट्टित उब्भिदिय उब्भिदिय चुण्णिय चुण्णिय जाव एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं अद्धमासं संहणेज्जा, से णं तं सीतं सीतीभूतं अओमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेदणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, से णं तं उम्मिसियणिमिसियंतरेणं पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्तिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा पविलीणमेव पासेज्जा पविद्धत्थमेव पासेज्जा णो चेव णं संचाएति अविरायं वा अविलीणं वा अविद्धत्थं वा पुणरवि पच्चुद्धरित्तए ॥ से जहा वा मत्तमातंगे [पाए] कुंजरे सट्ठिहायणे पढमसरयकालसमतंसि वा चरमनिदाघकालसमयंसि वा उण्हाभिहए तण्हाभिहए दवग्गिजालाभिहए आउरे सुसिए पिवासिए दुब्बले किलंते एक्कं महं पुक्खरिणिं पासेज्जा चाउक्कोणं समतीरं अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीतलजलं संछण्णपमत्ताभिसमुणालं बहुउप्पलकुमुद-

णलिणसुभगसोगंधियपुंडरीय (महापुंडरीय) सयपत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवचियं छप्पयपरिभुज्ज-
माणकमलं अच्छविमलसलिलपुण्णं परिहत्थभमंतमच्छकच्छभं अणेगसउणगणमिहुणयविरइ-
यसद्दुन्नइयमहुरसरनाइयं तं पासइ, तं पासित्ता तं ओगाहइ, ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हंपि
पविणेज्जा तिण्हंपि पविणेज्जा खुहंपि पविणिज्जा जरंपि पवि० दाहंपि पवि० णिद्दाएज्ज वा पयला-
एज्ज वा सतिं वा रतिं वा धितिं वा मतिं वा उवलभेज्जा, सीए सीयभूए संकसमाणे संकस-
माणे सायासोक्खबहुले यावि विहरिज्जा, एवामेव गोयमा! असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेयणि-
ज्जेहिंतो णरएहिंतो कुंभारागणी इ वा णेरइए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं मणुस्सलोयंसि
भवंति (गोलियालिंगाणि वा सोंडियालिंगाणि वा भिंडियालिंगाणि वा) अयागराणि वा तंबाग-
राणि वा तउयागरा० सीसाग० रुप्पागरा० सुवन्नागराणि वा हिरण्णागरा० कुंभारागणी इ वा
मुसागणी वा इट्टयागणी वा कवेल्लुयागणी वा लोहारंबरिसे इ वा जंतवाडचुल्ली वा हंडियलि-
त्थाणि वा सोंडियलि० णलागणी ति वा, तिलागणी वा तुसागणी ति वा, तत्ताइं समज्जोती-
भूयाइं फुल्लकिंसुयसमाणाइं उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं जालासहस्साइं पमुचमाणाइं
इंगालसहस्साइं पविक्खरमाणाइं अंतो २ हुहुयमाणाइं चिट्ठंति ताइं पासइ, ताइं पासित्ता
ताइं ओगाहइ ताइं ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हंपि पविणेज्जा तण्हंपि पविणेज्जा खुहंपि पविणेज्जा

जरंपि पविणेज्जा दाहंपि पविणेज्जा णिद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा सतिं वा रतिं वा धिइं वा मतिं वा उवलभेज्जा, सीए सीयभूयए संकसमाणे संकसमाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा, भवेयारूवे सिया ?, णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! उसिणवेदणिज्जेसु णरएसु नेरतिया एत्तो अणिट्ठतरियं चेव उसिणवेदणं पच्चणुभवमाणा विहरंति॥ सीयवेदणिज्जेसु णं भंते णिरएसु णेरतिया केरिसयं सीयवेदणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?, गोयमा ! से जहाणामए कम्मारदारए सिया तरुणे जुगवं बलवं जाव सिप्पोवगते एगं महं अयपिंडं दगवारसमाणं गहाय ताविय ताविय कोट्टिय कोट्टिय जह० एक्काहं वा दुआहं वा तियाहं वा उक्कोसे णं मासं हणेज्जा, से णं तं उसिणं उसिणभूतं अयोमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए सीयवेदणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, से तं [उमिसियनिमिसियंतरेण पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामीतिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा, तं चेव णं जाव णो चेव णं संचाएज्जा पुणरवि पच्चुद्धरित्तए, से णं से जहाणामए मत्तमायंगे तहेव जाव सोक्खबहुले यावि विहरेज्जा] एवामेव गोयमा ! असब्भावपट्ठवणाए सीतवेदणेहिंतो णरएहिंतो नेरतिए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं इहं माणुस्सलोए हवंति, तंजहा—हिमाणि वा हिमपुंजाणि वा हिमपडलाणि वा हिमपडलपुंजाणि वा तुसाराणि वा तुसारपुंजाणि वा हिमकुंडाणि वा हिमकुंडपुंजाणि वा सीताणि वा ताइं पासति पासित्ता ताइं ओगाहति ओगाहित्ता से णं तत्थ

सीतंपि पविणेज्जा तण्हंपि प० खुहंपि प० जरंपि प० दाहंपि प० निद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा जाव उसिणे उसिणभूए संकसमाणे संकसमाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा, गोयमा! सीयवेयणिज्जेसु नरएसु नेरतिया एत्तो अणिट्ठयरियं चेव सीतवेदणं पच्चणुभवमाणा विहरंति ॥ (सू० ८९)

'**रयणे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशी क्षुधं पिपासां (च) प्रत्यनुभवन्तः प्रत्येकं वेदयमानाः '**विहरन्ति**' अवतिष्ठन्ति?, भगवानाह—गौतम! '**एगमेगस्स ण**'मित्यादि, एकैकस्य रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकस्य '**असब्भाव(प्र)स्थापनया**' असद्भावकल्पनया ये केचन पुद्गला उदधयश्चेति शेषः तान् '**आस्यके**' मुखे सर्वपुद्गलान् सर्वोदधीन् प्रक्षिपेत्, तथाऽपि '**नो चेव ण**'मित्यादि, नैव रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकः **तृसो वा** वितृष्णो वा स्यात् लेशतः अत्र प्रबलभस्मकव्याध्युपेतः पुरुषो दृष्टान्तः। '**एरिसिया ण**'मित्यादि, ईदृशी णमिति वाक्यालङ्कृतौ गौतम! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाः क्षुधं पिपासां प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी॥ सम्प्रति वैक्रियशक्तिं विचिचिन्तयिषुरिदमाह—'**रयणप्पभे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! प्रत्येकं किम् '**एकत्वम्**' एकं रूपं विकुर्वितुं प्रभवः उत '**पृथक्त्वं**' पृथक्त्वशब्दो बहुवाची, आह च **कर्मप्रकृतिसङ्ग्रहणिचूर्णिकारो**ऽपि—"पुहुत्तशब्दो बहुत्तवाई" इति, प्रभूतानि रूपाणि विकुर्वितुं प्रभवः?, '**विकुर्व विक्रियायाम्**' इत्यागमप्रसिद्धो धातुरस्ति यस्य विकुर्वाण इति प्रयोगस्ततो विकुर्वितुमित्युक्तं, भगवानाह—एकत्वमपि प्रभवो विकुर्वितुं पृथक्त्वमपि प्रभवो विकुर्वितुं, तत्रैकं रूपं विकुर्वतो मुद्गररूपं वा मुद्गरः—प्रतीतः मुषण्ढिरूपं वा मुषण्ढिः—प्रहरणविशेषः, करपत्ररूपं वा असिरूपं वा शक्तिरूपं वा हलरूपं वा गदारूपं वा मुशलरूपं वा चक्ररूपं वा नाराचरूपं वा कुन्तरूपं वा तोमररूपं वा शूलरूपं वा लकुटरूपं वा भिण्डमालरूपं वा विकुर्वन्ति, करपत्रादयः

प्रतीताः, भिण्डमालः–शस्त्रजातिविशेषः, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा क्वचित्पुस्तकेषु—"मुग्गरमुसुंढिकरकयअसिसत्ति हलं गयामुसलचक्का। नारायकुंततोमरसूललउडभिंडिमाला य ॥१॥" गतार्था, नवरं 'करकय'त्ति क्रकचं करपत्रमित्यर्थः, पृथक्त्वं विकुर्वन्तो मुद्गररूपाणि वा यावत् भिण्डमालरूपाणि वा, तान्यपि **सदृशानि**, (समानरूपाणि) 'नोऽसदृशानि'(अ) समानरूपाणि, तथा '**सङ्ख्येयानि**' परिमितानि न 'असङ्ख्येयानि' सङ्ख्यातीतानि, विसदृशकरणेऽसङ्ख्येयकरणे वा शक्त्यभावात्, तथा '**संबद्धानि**' स्वात्मनः शरीरसंलग्नानि '**नासंबद्धानि**' न स्वशरीरात्पृथग्भूतानि, स्वशरीरात्पृथग्भूतकरणे शक्त्यभावात्, विकुर्वन्ति, विकुर्वित्वाऽन्योऽन्यस्य कायमभिघ्नन्तो वेदनामुदीरयन्ति, किंविशिष्टामित्याह—'**उज्ज्वलां**' दुःखरूपतया जाज्वल्यमानां सुखलेशेनाप्यकलङ्कितामिति भावः, '**विपुलां**' सकलशरीरव्यापितया विस्तीर्णां '**प्रगाढां**' प्रकर्षेण मर्मप्रदेशव्यापितयाऽतीवसमवगाढां कर्कशामिव कर्कशां, किमुक्तं भवति?—यथा कर्कशः पाषाणसंघर्षः शरीरस्य खण्डानि त्रोटयति एवमात्मप्रदेशान् त्रोटयन्तीव या वेदनोपजायते सा कर्कशा तां, कटुकामिव कटुकां पित्तप्रकोपपरिकलितवपुषो रोहिणी–कटुद्रव्यमिवोपभुज्यमानमतिशयेनाप्रीतिजनिकामिति भावः, तथा '**परुषां**' मनसोऽतीव रौक्ष्यजनिकां '**निष्ठुराम्**' अशक्यप्रतीकारतया दुर्भेदां '**चण्डां**' रुद्रां रौद्राध्यवसायहेतुत्वात् '**तीव्राम्**' अतिशायिनीं '**दुःखां**' दुःखरूपां '**दुर्गां**' दुर्लङ्घ्यामत एव दुरधिसह्याम्, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावत्पञ्चम्याम्। '**छट्ठसत्तमीसु ण**'मित्यादि, षष्ठसप्तम्योः पुनः पृथिव्योर्नैरयिकाः बहूनि महान्ति गोमयकीटप्रमाणत्वात्, '**लोहितकुन्थुरूपाणि**' आरक्तकुन्थुरूपाणि वज्रमयतुण्डानि, गोमयकीटसमानानि विकुर्वन्ति, विकुर्वित्वा '**अन्योऽन्यस्य**' परस्परस्य '**कायं**' शरीरं समतुरङ्गा इवाचरन्तः समतुरङ्गायमाणाः, अश्वा इवान्योऽन्यमारुहन्त इत्यर्थः, '**खायमाणा खायमाणा**' भक्षयन्तो भक्षयन्तोऽन्तरन्तः '**अनुप्रवेशयन्तः**' अनुप्रविशन्तः '**सयपोरागकिमिया इव**' शतपर्वकृमय

इव इक्षुपर्वक्रमय इव 'चालेमाणा चालेमाणा' शरीरस्य मध्यभागेन संचरन्तः संचरन्तो वेदनामुदीरयन्त्युज्ज्वलामित्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति क्षेत्रस्वभावजां वेदनां प्रतिपादयति—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं शीतां वेदनां वेदयन्ते उष्णां वेदनां वेदयन्ते शीतोष्णां वा?, भगवानाह—गौतम! न शीतां वेदनां वेदयन्ते किन्तु उष्णां वेदनां वेदयन्ते, ते हि शीतयोनिका योनिस्थानानां केवलहिमानीप्रख्यशीतप्रदेशात्मकत्वात्, योनिस्थानव्यतिरेकेण चान्यत् सर्वमपि भूम्यादि खादिराङ्गारादपि महाप्रतप्तमतस्ते उष्णवेदनामनुभवन्ति, नापि शीतोष्णां वेदनां वेदयन्ते, शीतोष्णस्वभावतया वेदनाया नरकेषु मूलतोऽप्यसम्भवात्, एवं शर्कराप्रभावालुकाप्रभानैरयिका अपि वक्तव्याः, पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकपृच्छायाम् भगवानाह—गौतम! शीतामपि वेदनां वेदयन्ते नरकावासभेदेनोष्णामपि वेदनां वेदयन्ते नरकावासभेदेनैव, न तु शीतोष्णां, तत्र ते बहुतरा ये उष्णां वेदनां वेदयन्ते, प्रभूततराणां शीतयोनित्वात्, ते स्तोकतरा ये शीतां वेदनां वेदयन्ते, अल्पतराणामुष्णयोनित्वात्, एवं धूमप्रभायामपि वक्तव्यं, नवरं ते बहुतरा ये शीतवेदनां वेदयन्ते, बहूनामुष्णयोनित्वात्, ते स्तोकतरा ये उष्णवेदनां वेदयन्ते, अल्पतराणां शीतयोनित्वात्, तमःप्रभापृथिवीनैरयिकपृच्छायां भगवानाह—गौतम! शीतां वेदनां वेदयन्ते नोष्णां नापि शीतोष्णां, तत्रत्यानां सर्वेषामुष्णयोनित्वात्, योनिस्थानव्यतिरेकेण चान्यस्य सर्वस्यापि नरकभूम्यादेर्महाहिमानीप्रख्यत्वात्, एवं तमस्तमाप्रभापृथिवीनैरयिका अपि वक्तव्या, नवरं परमां शीतवेदनां वेदयन्ते इति वक्तव्यं, तमःप्रभापृथिवीतः तमस्तमप्रभापृथिव्यां शीतवेदनाया अतिप्रबलत्वात् ॥ सम्प्रति भवानुभवप्रतिपादनार्थमाह—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं नरकभवं प्रत्यनुभवन्तः प्रत्येकं वेदयमानाः 'विहरन्ति' अवतिष्ठन्ते?, भगवानाह—गौतम! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका 'नित्यं' सर्वकालं क्षेत्रस्वभावजमहानिविडान्धकारदर्शनतो भीताः, सर्वत उपजातशङ्कत्वात्,

तथा **'नित्यं'** सर्वकालं स्वत एवाग्रेऽपि **'त्रस्ताः'** परमाधार्मिकदेवपरस्परोदीरितदुःखसंपातभयात्रासमुपपन्नाः, तथा **'नित्यं'** सर्वकालं परमाधार्मिकैः परस्परं वा **'त्रासिताः'** त्रासं ग्राहिताः, तथा **'नित्यमुद्विग्नाः'** यथोक्तरूपदुःखानुभवतस्तद्गतावासपराङ्मुखचित्ताः, तथा **'नित्यं'** सर्वकालम् **'उपप्लुताः'** उपप्लवेनोपेता न तु मनागपि रतिमासादयन्ति, एवं **'नित्यं'** सर्वकालं परममशुभम् **'अतुलम्'** अशुभत्वेनानन्यसदृशम् **'अनुबद्धम्'** अशुभत्वेन निरन्तरमुपचितं निरयभवं **'प्रत्यनुभवन्तः'** प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, अस्यां चाधःसप्तम्यां क्रूरकर्माणः पुरुषा उत्पद्यन्ते नान्ये, तथा चास्यैवार्थस्य प्रदर्शनार्थं पञ्च पुरुषान् उपन्यस्यति—**'अहेसत्तमाए ण'**मित्यादि, अधःसप्तम्यां पृथिव्यामप्रतिष्ठाने नरके **'इमे'** अनन्तरं वक्ष्यमाणस्वरूपाः पञ्च महापुरुषाः **'अनुत्तरैः'** सर्वोत्तमप्रकर्षप्राप्तैः **'दण्डसमादानैः'** समादीयते कर्म्म एभिरिति समादानानि—कर्म्मोपादानहेतवः दण्डा एव—मनोदण्डादयः प्राणव्यपरोपणाध्यवसायरूपाः समादानानि दण्डसमादानानि तैः कालमासे कालं कृत्वोत्पन्नाः, तद्यथा—रामो जामदग्निसुतः परशुराम इत्यर्थः, दाढादालः छातीसुतः, वसू राजा उपरिचरः, स हि देवताऽधिष्ठिताकाशस्फटिकसिंहासनोपविष्टः सन्नाकाशस्फटिकमयस्य सिंहासनस्यादर्शनतो लोकेष्वेवं प्रसिद्धिमगमत्—सत्यवादी किलैष वसुराजा न प्राणात्ययेऽप्यलीकं भाषते ततः सत्त्वावर्जितदेवताकृतप्रातिहार्य एवमुपर्याकाशे चरतीति, स चान्यदा हिंस्रवेदार्थप्ररूपकस्य पर्वतस्य पक्षमभिगृह्य सम्यग्दृष्टेर्नारदस्य पक्षमनभिगृह्णन्नलीकवादित्वात्प्रकुपितदेवताचपेटाहतः सिंहासनात्परिभ्रष्टो रौद्रध्यानमभिरूढः सप्तमपृथिव्यामप्रतिष्ठाननरकमयासीत्, सुभूमोऽष्टमश्चक्रवर्त्ती कौरव्यः कौरव्यगोत्रो ब्रह्मदत्तश्चुलनीसुतः **'ते णं तत्थ वेयणं वेयंती'** त्यादि, 'ते' परशुरामादयस्तत्र—अप्रतिष्ठाने नरके वेदनां वेदयन्ते उज्ज्वलां यावद् दुरध्यासामिति प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नरकेपूष्णवेदनायाः स्वरूपमभिधित्सुराह—**'उसिणवेदणिज्जेसु णं**

भंते !' इत्यादि, उष्णवेदनेषु णमिति पूर्ववत् भदन्त ! नरकेषु नैरयिकाः कीदृशीमुष्णवेदनां प्रत्यनुभवन्तः-प्रत्येकं वेदयमाना विह-रन्ति ?, भगवानाह-गौतम ! स 'यथानामकः' अनिर्दिष्टनामकः कश्चित् 'कम्मारदारकः' लोहकारदारकः स्यात्, किंविशिष्टः ? इत्याह—'तरुणः' प्रवर्द्धमानवयाः, आह-दारकः प्रवर्द्धमानवया एव भवति तत. किमनेन विशेषणेन ?, न, आसन्नमृत्योः प्रवर्द्धमा-नवयस्त्वाभावात्, न ह्यासन्नमृत्युः प्रवर्द्धमानवया भवति, न च तस्य विशिष्टसामर्थ्यसम्भवः, आसन्नमृत्युत्वादेव, विशिष्टसामर्थ्यप्र-तिपादनार्थश्चैष आरम्भस्ततोऽर्थवद्विशेषणम्, अन्ये तु व्याचक्षते-इह यद्द्रव्यं विशिष्टवर्णादिगुणोपेतमभिनवं च तत्तरुणमिति लोके प्रसिद्धं, यथा तरुणमिदमश्वत्थपत्रमिति, ततः स कर्मारदारकस्तरुण इति किमुक्तं भवति ?-अभिनवो विशिष्टवर्णादिगुणोपेतश्चेति, बलं-सामर्थ्यं तदस्यास्तीति बलवान्, तथा युगं-सुषमदुष्षमादिकालः स स्वेन रूपेण यस्यास्ति न दोषदुष्टः स युगवान्, किमुक्तं भवति ?-कालोपद्रवोऽपि सामर्थ्यविघ्नहेतुः स चास्य नास्तीति प्रतिपत्त्यर्थमेतद्विशेषणं, युवा-यौवनस्थः, युवावस्थायां हि बलातिशय इत्येतदुपादानम्, 'अप्पायंके' इति अल्पशब्दोऽभाववाची अल्पः-सर्वथाऽविद्यमान आतङ्को-ज्वरादिर्यस्यासावल्पातङ्कः, 'थिरग्गहत्थे' स्थिरौ अग्रहस्तौ यस्य स स्थिराग्रहस्तः, 'दढपाणिपायपासपिट्ठंतरोरुपरिणए' इति दृढानि-अतिनिविडचयापन्नानि पाणिपादपार्श्व-पृष्ठान्तरोरूणि परिणतानि यस्य स दृढपाणिपादपार्श्वपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, सुखादिदर्शनात्पाक्षिको निष्ठान्तस्य परनिपातः, तथा घ-नम्-अतिशयेन निचितौ-निविडतरचयमापन्नौ वलिताविव वलितौ वृत्तौ स्कन्धौ यस्य स घननिचितवलितवृत्तस्कन्धः, 'चम्मेट्ठगदु-घणमुट्ठियसमाहयनिचियगायगत्ते' चर्मेष्टकेन द्रुघणेन मुष्टिकया च-मुष्ट्या च समाहत्य ये निचितीकृतगात्रास्ते चर्मेष्टकद्रुघणमुष्टि-कसमाहतनिचितगात्रास्तेषामिव गात्रं यस्य स चर्मेष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहतनिचितगात्रगात्रः, 'उरस्सबलसमन्नागए' इति उरसि

भवमुरस्यं तत्र तद्बलं च उरस्यबलं तत्र समन्वागतः—समनुप्राप्त उरस्यबलसमन्वागतः, आन्तरोत्साहवीर्ययुक्त इति भावः, 'तलजमलजुयलबाहू' इति, तलौ—तालवृक्षौ तयोर्यमलयुगलं—समश्रेणीकं युगलं तलयमलयुगलं, तद्वदतिसरलौ पीवरौ च बाहू यस्य स तलयमलयुगलबाहुः, 'लंघणपवणजवणपमद्दणसमत्थे' इति, लङ्घने—अतिक्रमणे प्लवने—मनाक् पृथुतरविक्रमगतिगमने जवने—अतिशीघ्रगतौ प्रमर्दने—कठिनस्यापि वस्तुनश्चूर्णनकरणे समर्थः लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः, कचित् 'लंघणपवणजवणवायामणसमत्थे' इति पाठस्तत्र व्यायामने—व्यायामकरणे इति व्याख्येयं, 'छेकः' द्वासप्ततिकलापण्डितः 'दक्षः' कार्याणामविलम्बितकारी, 'प्रष्ठः' वाग्मी 'कुशलः' सम्यक्क्रियापरिज्ञानवान् 'मेधावी' परस्पराव्याहतपूर्वापरानुसन्धानदक्षः, अत एव 'निपुणसिप्पोवगए' इति निपुणं यथा भवति एवं शिल्पं—क्रियासु कौशलमुपगतः—प्राप्तो निपुणशिल्पोपगतः, एकं महान्तमयस्पिण्डम् 'उदकवारकसमानं' लघुपानीयघटसमानं गृहीत्वा 'तम्' अयस्पिण्डं तापयित्वा तापयित्वा ततो घनेन कुट्टयित्वा कुट्टयित्वा यावदेकाहं वा द्व्यहं वा यावदुत्कर्षतोऽर्द्धमासं संहन्यात्, ततो णमिति वाक्यालङ्कारे 'तम्' अयस्पिण्डं शीतं, स च शीतो वह्निर्मनाग्मात्रेणापि स्यादत आह——'शीतीभूतं' सर्वात्मना शीतत्वेन परिणतं अयोमयेन संदंशकेन गृहीत्वा 'असद्भावस्थापनया' असद्भावकल्पनया नैतद्भूत् न भवति भविष्यति वा केवलमसद्भूतमिदं कल्प्यत इति, उष्णवेदनेषु नरकेषु प्रक्षिपेत्, प्रक्षिप्य च स पुरुषो णमिति वाक्यालङ्कारे 'उम्मिसियनिमिसियंतरेण' उन्मिषितनिमिषितान्तरेण यावताऽन्तरेण—यावता व्यवधानेन उन्मेषनिमेषौ क्रियेते तावदन्तरप्रमाणेन कालेनातिक्रान्तेन पुनरपि प्रत्युद्धरिष्यामीतिकृत्वा यावद् द्रष्टुं प्रवर्त्तते तावत् 'प्रवितरमेव' प्रस्फुटितमेव, यदिवा 'प्रविलीनमेव' नवनीतमिव सर्वथा गलितमेव, यदिवा 'प्रविध्वस्तमेव' सर्वथा भस्मसाद्भूतमेव पश्येत्, न पुनः शक्नुयाद् अचिरात्तं अप्रस्फुटितं अविलीनं

वा अविध्वस्तं वा पुनरपि प्रत्युद्धर्त्तुम्, एवंरूपा नाम तत्रोष्णवेदना ॥ अस्यैवार्थस्य स्पष्टतरभावनार्थं दृष्टान्तान्तरमाह—'से जहा-नामए' इत्यादि, 'से' सकलजनप्रसिद्धो यथेति दृष्टान्तत्वोपदर्शने वाशब्दो विकल्पने, अयं वा दृष्टान्तो विवक्षितार्थप्रतिपत्तये बोद्धव्य इति विकल्पनभावना, 'मत्तः' मदकलितः 'मातङ्गः' हस्ती, इह मातङ्गोऽन्त्यजोऽपि संभवति ततस्तदाशङ्काव्युदासार्थं नानादेशजविनेय-जनानुग्रहाय (वा) पर्यायद्वयमाह—'द्विपः' द्वाभ्यां मुखेन करेण चेत्यर्थः पिबतीति द्विपः, 'मूलविभुजादय' इति कप्रत्ययः, कौ जीर्यतीति कुञ्जरः, यदिवा कुञ्जे—वनगहने रमति—रतिमाबध्नातीति कुञ्जरः 'कचिदि'ति डप्रत्ययः, षष्टिहायनाः—संवत्सरा यस्य स षष्टिहायनः 'प्रथमशरत्कालसमये' कार्त्तिकमाससमये, इह प्राय ऋतवः सूर्यर्त्तवो गृह्यन्ते ते चाषाढादयो द्विद्विमासप्रमाणाः, प्रवचने च क्रमेणैवंनामानः, तद्यथा—प्रथमः प्रावृट् द्वितीयो वर्षारात्रः तृतीयः शरत् चतुर्थो हेमन्तः पञ्चमो वसन्तः षष्ठो ग्रीष्मः, तथा चाह पादलिप्तसूरिः—"पाउस वासारत्तो, सरओ हेमंत वसन्त गिम्हो य। एए खलु छप्पि रिऊ, जिणवरदिट्ठा मए सिट्ठा ॥१॥" ततः प्रथमशरत्कालसमयः कार्त्तिकसमय इति विवृत्तम्, आह च मूलटीकाकृत्—"प्रथमशरत्—कार्त्तिकमासः" तस्मिन् वाशब्दो वि-कल्पने 'चरमनिदाघकालसमये वा' चरमनिदाघकालसमयो—ज्येष्ठमासपर्यन्तस्तस्मिन्, वाशब्दो विकल्पने, 'उष्णाभिहतः' सूर्य-खरकिरणप्रतापाभिभूतः, अत एवोष्णैः सूर्यकिरणैः सर्वतः प्रतप्ताङ्गतया शोषभावतस्तृषाभिहतः, तत्रापि पानीयगवेषणार्थमितस्ततः स्वेच्छया परिभ्रमतः कथञ्चिद्दवाग्निप्रत्यासत्तौ गमनतो दवाग्निज्वालाभिहतः अत एव 'आतुरः' कचिदपि स्वास्थ्यमलभमानः सन् आकुलः, सर्वाङ्गपरितापसम्भवेन गलतालुशोषभावात् शुषितः, कचित् 'झिज्झिए' इति पाठस्तत्र 'क्षितः' क्षीणशरीर इति व्या-ख्येयम्, असाधारणतृड्वेदनासमुच्छलनात्पिपासितः, अत एव दुर्बलः शारीरमानसावष्टम्भरहितत्वात्, 'क्लान्तः' ग्लानिमुपगतः

'क्लमू ग्लानौ' इति वचनात्, एकां महतीं **'पुष्करिणीं'** पुष्कराण्यस्यां विद्यन्ते इति पुष्करिणी तां, किंविशिष्टामित्याह—**'चतुष्कोणां'** चत्वारः कोणा—अश्रयो यस्याः सा तथा तां, समं—विषमोन्नतिवर्जितं सुखावतारं तीरं—तटं यस्याः सा समतीरा ताम्, आनुपूर्व्येण—नीचैर्नीचैस्तरभावरूपेण न त्वेकहेलयैव कचिद्गर्त्तारूपा कचिदुन्नतिरूपा इति भावः, सुष्ठु—अतिशयेन यो जातो वप्रः—केदारो जलस्थानं तत्र गम्भीरम्—अलब्धस्ताघं शीतलं जलं यस्यां सा आनुपूर्व्यसुजातवप्रगम्भीरशीतलजला ताम्, **'संछण्णपत्तभिसमुणाल'**मिति संछन्नानि—जलेनान्तरितानि पत्रबिसमृणालानि यस्यां सा संछन्नपत्रबिसमृणाला ताम्, इह बिसमृणालसाहचर्यात् पत्राणि—पद्मिनीपत्राणि द्रष्टव्यानि, बिसानि—कन्दाः मृणालानि—पद्मनालाः, तथा बहुभिरुत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रैः केसरैः—केसरप्रधानैः फुल्लैः—विकसितैरुपचिता बहूत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रकेसरफुल्लोपचिता तां, तथा षट्पदैः—भ्रमरैः परिभुज्यमानानि कमलानि उपलक्षणमेतत् कुमुदादीनि यस्याः सा षट्पदपरिभुज्यमानकमला तां, तथाऽच्छेन—स्वरूपतः स्फटिकवच्छुद्धेन विमलेन—आगन्तुकमलरहितेन सलिलेन पूर्णा अच्छविमलसलिलपूर्णा तां, तथा **पडिहत्था**—अतिरेकता (तः) अतिप्रभूता इत्यर्थः भ्रमन्तो मत्स्यकच्छपा यस्यां सा पडिहत्थभ्रमन्मत्स्यकच्छपा, तथा अनेकैः शकुनिगणमिथुनकैः गणशब्दस्य प्राकृतत्वादस्थानेऽप्युपनिपातः, शकुनिमिथुनकैर्विचरितैः—इतस्ततः स्वेच्छया प्रवृत्तैः शब्दोन्नतिकम्—उन्नतशब्दं मधुरस्वरं नादितं यस्यां सा अनेकशकुनिगणमिथुनकविचरितशब्दोन्नतिकमधुरस्वरनादिता, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तां दृष्ट्वाऽवगाहेत, अवगाह्य च **'उष्णमपि'** परिदाहमपि शरीरस्य तत्र **'प्रविनयेत्'** प्रकर्षेण सर्वात्मना स्फोटयेत्, तथा क्षुधामपि प्रविनयेत् प्रत्यासन्नतटवर्त्तिशल्लक्यादिकिसलयभक्षणात्, तृषमपि प्रविनयेत् जलपानात्, ज्वरमपि परिसंतापसमुत्थं प्रवि-

नयेत् परिदाघक्षुत्पिपासाऽपगमात्, एवं सकलक्षुदादिदोषापगमतः सुखासिकाभावेन निद्रायेत प्रचलायेत, तत्र अनिद्रावान् निद्रावान् भवतीति च्व्यर्थविवक्षायां निद्रादिभ्यो धर्मिणि क्यचिति कर्म्मणि क्यप्प्रत्ययः, एवं प्रचलाशब्दादपि निद्रादेराकृतिगणत्वात्, निद्राप्रचलयोस्त्वयं विशेषः—सुखप्रबोधा स्वापावस्था निद्रा, ऊर्द्ध्वस्थितस्यापि या पुनश्चैतन्यमस्फुटीकुर्वती समुपजायते निद्रा सा प्रचला, एवं च क्षणमात्रनिद्रालाभतोऽतिस्वस्थीभूतः 'स्मृतिं वा' पूर्वानुभूतस्मरणं 'रतिं वा' तदवस्थाऽऽसक्तिरूपां 'धृतिं वा' चित्तस्वास्थ्यं 'मतिं वा' सम्यगीहापोहरूपाम् 'उपलभेत' प्राप्नुयात्, ततः 'शीतः' बाह्यशरीरप्रदेशशीतीभावात्, 'शीतीभूतः' शरीरान्तरपि निर्वृतीभूतः सन् 'संकसमाणे' इति सम्—एकीभावेन कसन्—गच्छन् 'सातसौख्यबहुलश्चापि' सातम्—आह्लादस्तत्प्रधानं सौख्यं सातसौख्यं न त्वभिमानमात्रजनितमाह्लादविरहितं सातसौख्येन बहुलो—व्याप्तः सातसौख्यबहुलश्चापि 'विहरेत्' स्वेच्छया परिभ्रमेत्, 'एवमेव' अनेनैवानन्तरोदितदृष्टान्तप्रकारेण हे गौतम! 'असद्भावप्रस्थापनया' असद्भावकल्पनया नेदं वक्ष्यमाणमभूत् केवलं नरकगतोष्णवेदनायाथात्म्यप्रतिपत्तयेऽसत्कल्प्यत इति भावः, उष्णवेदनेभ्यो नरकेभ्यो नैरयिकोऽनन्तरमुद्वर्त्तितो विनिर्गतः सन् 'यानि' इमानि प्रत्यक्षत उपलभ्यमानानि 'इह' मनुष्यलोके स्थानानि भवन्ति, तद्यथा—"गोलियालिंगाणि वा, सोंडियालिंगाणि वा, भिंडियालिंगाणि वा, एते अग्नेराश्रयविशेषाः, अन्ये तु देशभेदनीत्या विष्टपाचनकाग्न्यादिभेदैनैतेषां स्वरूपं कथयन्ति, तदप्यविरुद्धमेवेति, तैलाग्निरिति वा तुषाग्निरिति वा बुसाग्निरिति वा नडाग्निरिति वा, नडः—तृणविशेषः, 'अयागराणीति वा' आर्षत्वान्नपुंसकनिर्देशः अयआकरा इति वा, येषु निरन्तरं महामूषास्वयोदलं प्रक्षिप्याऽय उत्पाट्यते ते अयआकराः, एवं ताम्राकरा इति वा त्रपुआकरा इति वा सीसकाकरा इति वा रूप्याकरा इति वा सुवर्णाकरा इति वा हिरण्याकरा इति वा, सुवर्णहिरण्ययोरत्र विशेषो वर्णा-

दिकृतो वेदितव्यः, इष्टकापाक इति वा कुम्भकारापाक इति वा कवेल्लुकापाक इति वा लोहकाराम्बरीष इति वा, अम्बरीषः—कोष्टकः, यन्त्रवाडचुल्ली इवेति, यन्त्रम्—इक्षुपीडनयन्त्रं तत्प्रधानः पाटको यन्त्रपाटकः तत्र चुल्ली यत्रेक्षुरसः पच्यते, इत्थम्भूतानि यानि मनुष्यलोके स्थानानि 'तप्तानि' वह्निसंपर्कतस्तप्तीभूतानि, तानि च कानिचिद् अयआकरप्रभृतीनि कदाचिदुष्णस्पर्शमात्राण्यपि संभवन्ति ततो विशेषप्रतिपादनार्थमाह—'समजोईभूयाइ' प्राकृतत्वात्समशब्दस्य पूर्वनिपातः, 'ज्योतिःसमभूतानि' साक्षादग्निवर्णानि जातानीति भावः, एतदेवोपमया स्पष्टयति—'फुल्लकिंशुकसमानानि' प्रफुल्लपलाशकुसुमकल्पानि 'उक्कासहस्साइं' इति ये मूलाग्नितो विश्रुट्य विश्रुट्याग्निकणाः प्रसर्पन्ति ते उल्का इत्युच्यन्ते तासां सहस्राणि उल्कासहस्राणि मुञ्चन्ति ज्वालासहस्राणि विनिर्मुञ्चन्ति अङ्गारसहस्राणि प्रविक्षरन्ति 'अन्तरन्तर्हूहूयमानानि' अतिशयेन जाज्वल्यमानानि, क्वचित् 'अंतो अंतो सुहुयहुयासणा' इति पाठः, 'अन्तरन्तः सुहुतहुताशनानि' सुष्ठु हुतो हुताशनो येषु तानि तथा तिष्ठन्ति तानि पश्येत् दृष्ट्वा चावगाहेत, अवगाह्य च 'उष्णमपि' नरकोष्णवेदनाजनितं बहिःशरीरस्य परितापमपि प्रविनयेत्, नरकगताद्दुष्णस्पर्शादयआकरादिपूष्णस्पर्शस्यातीव मन्दत्वात्, एवं च सुखासिकाभावतस्तृषामपि क्षुधमपि दाहमपि अन्तःशरीरसमुत्थं प्रविनयेत्, तथा च सति तृडादिदोषापगमतो निद्रायेत वा प्रचलायेत वा स्मृतिं वा रतिं वा धृतिं वा उपलभेत, ततः शीतः शीतीभूतः सन् 'संकसन् संकसन्' संक्रामन् संक्रामन् सातसौख्यबहुलो विहरेत्, अमीषां पदानामर्थः प्राग्वद्भावनीयः । एतावत्युक्ते भगवान् गौतमः पृच्छति—'भवे एयारूवे सिया ?' 'स्यात्' संभाव्यते एतद् यथा भवेद् उष्णवेदनीयेषु नरकेषु एतद्रूपा उष्णवेदना ?, भगवानाह—गौतम ! नायमर्थः समर्थो यदुष्णवेदनीयेषु नरकेषु नैरयिका इति, अनन्तरं प्रतिपादितस्वरूपाया उष्णवेदनायाः अनिष्टतरिकामेव अप्रियतरिकामेव अमनोज्ञत-

रिकामेव अमनआपतरिकामेव वेदनां 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति ॥ सम्प्रति शीतवेदनीयेषु नरकेषु शीतवेदना-स्वरूपं प्रतिपादयति—'सीयवेयणिज्जेसु ण'मित्यादि, शीतवेदनीयेषु भदन्त ! निरयेषु नैरयिकाः कीदृशीं शीतवेदनां प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति ?, स यथानामकः कर्म्मकरदारकः स्यात् तरुण इत्यादिविशेषणकदम्बकं प्राग्वत्तावद् यावत्संहन्यात् नवरमुत्कर्षतो मासमित्यत्र ब्रूयात्, ततः 'सः' कर्म्मकरदारकः 'तम्' अयस्पिण्डमुष्णं स चोष्णो बाह्यप्रदेशमात्रापेक्षयाऽपि स्यादत आह—'उष्णीभूतं' सर्वात्मनाऽग्निवर्णीभूतमिति भावः, अयोमयेन संदंशकेन गृहीत्वाऽसद्भावप्रस्थापनया शीतवेदनीयेषु नरकेषु प्रक्षिपेत्, ततः 'स' पुरुषः 'तम्' अयस्पिण्डमित्यादि प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावद्विहरति, तच्चैवम्—'से णं तं उम्मिसियनिमिसियंतरेण पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्तिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा पविलीणमेव पासेज्जा पविद्धत्थमेव पासेज्जा नो चेव णं संचाएइ अविरायं अविलीणं अविद्धत्थं पुणरवि पच्चुद्धरित्तए से जहानामए मत्तमायंगे जाव सायासोक्खबहुलेयावि विहरइत्ति' 'एवामेवे'त्यादि, अनेनैवाधिकृतदृष्टान्तोक्तेन प्रकारेण गौतम ! असद्भावप्रस्थापनया शीतवेदनीयेभ्यो नरकेभ्योऽनन्तरमुद्वृत्तः सन् यानीमानि मनुष्यलोके स्थानानि भवन्ति, तद्यथा—हिमानि वा हिमपुञ्जानि वा, सूत्रे नपुंसकनिर्देशः प्राकृतत्वात्, हिमपटलानि वा हिमकूटानि वा, एतान्येव पदानि नानादेशजविनेयानुग्रहाय पर्यायैर्व्याचष्टे—'सीयाणि वा सीयपुंजाणि वा' इत्यादि, तानि पश्येत्, दृष्ट्वा तान्यवगाहेत, अवगाह्य 'शीतमपि' नरकजनितं शीतलमपि प्रविनयेत्, ततः सुखासिकाभावतस्तृषमपि क्षुधमपि ज्वरमपि नरकवेदनीयनरकसंपर्कसमुत्थं जाड्यमपि प्रविनयेत्, ततः शीतत्वादिदोषापगमतोऽनुत्तरं स्वास्थ्यं लभमानो निद्रायेत वा प्रचलायेत वा स्मृतिं वा रतिं वा धृतिं वा लभेत, ततो नरकगतजाड्यापगमाद् उष्णः, स च बहिःप्रदेशमात्रतोऽपि स्यात्तत आह—'उष्णीभूतः' अन्तरपि नरकगतजा-

ड्यापगमात् जातोत्साह इत्यर्थः, स एवंभूतः सन् यथासुखं (संकसन्) संक्रामन् सातसौख्यबहुलो विहरेत्, एवमुक्ते गौतम आह—'भवेयारूवे सिया ?' इत्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नैरयिकाणां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पु० णेरतियाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! जहण्णेणवि उक्कोसेणवि ठिती भाणितव्वा जाव अधेसत्तमाए ॥ (सू० ९०) ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए णेरतिया अणंतरं उव्वट्टिय कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरतिएसु उववज्जंति ? किं तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ?, एवं उव्वट्टणा भाणितव्वा जहा वक्कंतीए तहा इहवि जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ९१)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त ! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येन दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः सागरोपमं, एवं शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यत एकं सागरोपममुत्कर्षतस्त्रीणि सागरोपमाणि, वालुकाप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतस्त्रीणि सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्त, पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश, धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश, तमःप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशतिः, तमस्तमःप्रभायां जघन्यतो द्वाविंशतिसागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्, क्वचित् 'जहा पण्णवणाए ठिइपदे' इत्यतिदेशः सोऽप्येवमेवार्थतो भावनीयः, तदेवं प्रतिपृथिवि स्थितिपरिमाणमुक्तं, यदा तु प्रतिप्रस्तटं स्थितिपरिमाणं चिन्त्यते तदैवमवगन्तव्यम्—रत्नप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिर्दशवर्षसहस्राणि १०००० उत्कृष्टा नवतिः ९००००,

द्वितीये प्रस्तटे एषैव शतगुणिता जघन्या उत्कृष्टा च वेदितव्या, तद्यथा—जघन्या दशवर्षलक्षा १०००००० उत्कृष्टा नवतिवर्षलक्षाः
९००००००, तृतीये प्रस्तटे जघन्यतो नवतिवर्षलक्षा उत्कृष्टा पूर्वकोटी, चतुर्थे जघन्या पूर्वकोटी उत्कृष्टा सागरोपमस्य दशमो भागः,
पञ्चमे जघन्या सागरोपमस्यैको दशभाग उत्कृष्टा द्वौ दशभागौ, षष्ठे जघन्या सागरोपमस्य द्वौ दशभागावुत्कृष्टा त्रयः, सप्तमे ज-
घन्या त्रयः सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टाश्चत्वारः, अष्टमे जघन्या चत्वारः सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा पञ्च, नवमे जघन्या
पञ्च सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा षट्, दशमे जघन्या षट् सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा सप्त, एकादशे जघन्या सप्त उत्कृ-
ष्टाऽष्टौ, द्वादशे जघन्याऽष्टौ उत्कृष्टा नव, त्रयोदशे जघन्या नव सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा दश, परिपूर्णमेकं सागरोपममिति
भावः । शर्कराप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या एकं सागरोपमं उत्कृष्टा एकं सागरोपमं द्वौ च सागरोपमस्यैकादशभागौ, द्वितीये प्र-
स्तटे जघन्या एकं सागरोपमं द्वौ सागरोपमस्यैकादशभागौ उत्कृष्टा एकं सागरोपमं चत्वारः सागरोपमस्यैकादशभागाः, तृतीये
जघन्या एकं सागरोपमं चत्वारः सागरोपमस्यैकादशभागा उत्कृष्टा एकं सागरोपमं षट् सागरोपमस्यैकादशभागाः, चतुर्थे जघन्या
एकं सागरोपमं षट् सागरोपमस्यैकादशभागा उत्कृष्टा एकं सागरोपमम् अष्टौ सागरोपमस्यैकादशभागाः, पञ्चमे जघन्या एकं
सागरोपमं अष्टौ सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा एकं सागरोपमं दश सागरोपमस्यैकादश भागाः, षष्ठे जघन्या एकं सागरोपमं
दश सागरोपमस्यैकादशभागा उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे एकः सागरोपमस्यैकादशभागः, सप्तमे जघन्या द्वे सागरोपमे एकः सागरोपम-
स्यैकादशभाग उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे त्रयः सागरोपमस्यैकादशभागाः, अष्टमे जघन्या द्वे सागरोपमे त्रयः सागरोपमस्यैकादशभागाः
उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे पञ्च सागरोपमस्यैकादशभागाः, नवमे जघन्या द्वे सागरोपमे पञ्च सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा द्वे साग-

रोपमे सप्त सागरोपमस्यैकादशभागाः, दशमे जघन्या द्वे सागरोपमे सप्त सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे नव सागरोपमस्यैकादशभागाः, एकादशे जघन्या द्वे सागरोपमे नव सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टानि परिपूर्णानि त्रीणि सागरोपमाणि । वालुकाप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि उत्कृष्टा त्रीणि सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य नवभागाः, द्वितीये जघन्या त्रीणि सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा त्रीणि सागरोपमाणि अष्टौ सागरोपमस्य नवभागाः, तृतीये जघन्या त्रीणि सागरोपमाणि अष्टौ सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा चत्वारः सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य नवभागाः, चतुर्थे जघन्या चत्वारि सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा चत्वारि सागरोपमाणि सप्त सागरोपमस्य नवभागाः, पञ्चमे जघन्या चत्वारि सागरोपमाणि सप्त सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा पञ्च सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य नवभागौ, षष्ठे जघन्येन पञ्च सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य नवभागौ उत्कृष्टा पञ्च सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य नवभागाः, सप्तमे जघन्या पञ्च सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा षट् सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य नवभागः, अष्टमे जघन्या षट् सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य नवभागः उत्कृष्टा षट् सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य नवभागाः, नवमे जघन्या षट् सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा परिपूर्णानि सप्त सागरोपमाणि, एषोऽत्र तात्पर्यार्थः—सागरोपमत्रयस्योपरि प्रतिप्रस्तटं क्रमेण चत्वारः सागरोपमस्य नवभागा वर्द्धयितव्यास्ततो यथोक्तपरिमाणं भवति । पङ्कप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिः सप्त सागरोपमाणि उत्कृष्टा सप्त सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः, द्वितीये जघन्या सप्त सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टा सप्त सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य सप्तभागाः, तृतीये जघन्या सप्त सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टाऽष्टौ सागरोप-

माणि द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ, चतुर्थे जघन्याऽष्टौ सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ उत्कृष्टाऽष्टौ सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य सप्तभागाः, पञ्चमे जघन्याऽष्टौ सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टा नव सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य सप्तभागः, षष्ठे जघन्या नव सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य सप्तभागः उत्कृष्टा नव सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य सप्तभागाः सप्तमे जघन्या नव सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टा परिपूर्णानि दश सागरोपमाणि, अत्रापीयं भावना—सागरोपमसप्तकस्योपरि त्रयस्त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः प्रतिप्रस्तटं क्रमेण वर्द्धयितव्यास्ततो भवति यथोक्तं परिमाणमिति। धूमप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिर्दश सागरोपमाणि उत्कृष्टा एकादश सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य पञ्चभागौ, द्वितीये जघन्या एकादश सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य पञ्चभागौ उत्कृष्टा द्वादश सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य पञ्चभागाः, तृतीये जघन्या द्वादश सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य पञ्चभागाः उत्कृष्टा चतुर्दश सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य पञ्चभागः, चतुर्थे जघन्या चतुर्दश सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य पञ्चभागः उत्कृष्टा पञ्चदश सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य पञ्चभागाः, पञ्चमे जघन्या पञ्चदश सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य पञ्चभागाः उत्कृष्टा परिपूर्णानि सप्तदश सागरोपमाणि, एष चात्र भावार्थः—सागरोपमदशकस्योपरि प्रतिप्रस्तटं क्रमेणैकं सागरोपमं द्वौ च सागरोपमस्य पञ्चभागाविति वर्द्धयितव्यं ततो यथोक्तं परिमाणं भवति। तमःप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कृष्टाऽष्टादश सागरोपमाणि द्वौ च सागरोपमस्य त्रिभागौ, द्वितीये जघन्याऽष्टादश सागरोपमाणि द्वौ च सागरोपमस्य त्रिभागौ उत्कृष्टा विंशतिः सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य त्रिभागः, तृतीये जघन्या विंशतिः सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य त्रिभागः उत्कृष्टा द्वाविंशतिः सागरोपमाणि, अत्राप्येष तात्पर्यार्थः—सप्तदश साग-

राणामुपरि प्रतिप्रस्तटं क्रमेणैकं सागरोपमं द्वौ च सागरोपमस्य त्रिभागाविति वर्द्धयितव्यं, ततो यथोक्तं परिमाणं भवति। सप्तम्यां तु पृथिव्यामेक एव प्रस्तट इति तत्र पूर्वोक्तमेव परिमाणं द्रष्टव्यम् ॥ सम्प्रति नैरयिकाणामुद्वर्त्तनामाह—'रयणप्पभापुढवि'इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! अनन्तरमुद्धृत्त्य क्व गच्छन्ति?, एतदेव व्याचष्टे—क्वोत्पद्यन्ते इत्यादि, यथा प्रज्ञापनायां [यथा] व्युत्क्रान्तिपदे तथा वक्तव्यं यावत्तमस्तमायां, तच्चातिप्रभूतमिति तत एवावधार्यम्, एष च सङ्क्षेपार्थः रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका यावत्तमः-प्रभापृथिवीनैरयिका अनन्तरमुद्धृत्ता नैरयिकदेवैकेन्द्रियविकलेन्द्रियसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियासङ्ख्येयवर्षायुष्कवर्जेषु शेषेषु तिर्यङ्मनुष्येषूत्पद्यन्ते, सप्तमपृथिवीनैरयिकास्तु गर्भजतिर्यक्पञ्चेन्द्रियेष्वेव न शेषेषु ॥ सम्प्रति नरकेषु पृथिव्यादिस्पर्शस्वरूपमाह—

इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरतिया केरिसयं पुढविफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए, इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरइया केरिसयं आउफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए, एवं जाव वणप्फतिफासं अधेसत्तमाए पुढवीए। इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु?, हंता! गोयमा! इमा णं रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय जाव सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु, दोच्चा णं भंते! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं पुच्छा, हंता गोयमा! दोच्चा णं पुढवी जाव सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु, एवं एएणं अभिलावेणं जाव छट्ठिता पुढवी अहेसत्तमं पुढविं पणिहाय सव्वक्खुड्डिया

सव्वंतेसु (सू० ९२) इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० तीसाए नरयावाससयसहस्सेसु इक्कमिक्कंसि निरयावासंसि सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वा?, हंता गोयमा! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए णवरं जत्थ जत्तिया णरका। [इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पु० निरयपरिसामंतेसु जे पुढविक्काइया जाव वणप्फतिकाइया ते णं भंते! जीवा महाकम्मतरा चेव महाकिरियतरा चेव महाआसवतरा चेव महावेयणतरा चेव?, हंता गोयमा! इमीसे णं [भंते!] रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु तं चेव जाव महावेदणतरका चेव, एवं जाव अधेसत्तमा] (सू० ९३)। पुढवीं ओगाहित्ता, नरगा संठाणमेव बाहल्लं। विक्खंभपरिक्खेवे वण्णो गंधो य फासो य ॥ १ ॥ तेसिं महालयाए उवमा देवेण होइ कायव्वा। जीवा य पोग्गला वक्कमंति तह सासया निरया ॥ २ ॥ उववायपरीमाणं अवहारुच्चत्तमेव संघयणं। संठाणवण्णगंधा फासा ऊसासमाहारे ॥ ३ ॥ लेसा दिट्ठी नाणे जोगुवओगे तहा समुग्घाया। तत्तो खुहापिवासा विउव्वणा वेयणा य भए ॥ ४ ॥ उववाओ पुरिसाणं ओवम्मं वेयणाएँ दुविहाए। उव्वट्टणपुढवी उ, उववाओ सव्वजीवाणं ॥ ५ ॥ एयाओ संगहणिगाहाओ ॥ (सू० ९४) ॥ बीओ उद्देसओ समत्तो ॥

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं पृथिवीस्पर्शं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'अणिट्ठं

अकंतं अप्पियं अमणुन्नं अमणामं' अस्यार्थः प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावत्तमस्तमायाम्, एवमप्तेजोवायुवनस्पति-स्पर्शसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं तेजःस्पर्शः—उष्णरूपतापरिणतनरककुड्यादिस्पर्शः परोदीरितवैक्रियरूपो वा वेदितव्यो न तु सा-क्षाद् बादराग्निकायस्पर्शः, तत्रासम्भवात् ॥ **'इमीसे णं'**मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति नरकावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् नरकावासे **'सर्वे प्राणाः'** द्वीन्द्रिया **'सर्वे भूताः'** वनस्पतिकायिकाः **'सर्वे सत्त्वाः'** पृथिव्यादयः **'सर्वे जीवाः'** पञ्चे-न्द्रियाः, उक्तञ्च—"प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ता, भूताश्च तरवः स्मृताः। जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः ॥ १ ॥" पृथिवीकायिकतया अप्कायिकतया वायुकायिकतया वनस्पतिकायिकतया नैरयिकतया उत्पन्नाः उत्पन्नपूर्वाः?, भगवानाह—**'हंते'**त्यादि, हन्तेति प्रत्यवधारणे गौतम! **'असकृत्'** अनेकवारम्, अथवा **'अनन्तकृत्वः'** अनन्तान् वारान्, संसारस्यानादित्वात्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, नवरं यत्र यावन्तो नरकास्तत्र तावन्त उपयुज्य वक्तव्याः। क्वचिदिदमपि सूत्रं दृश्यते—"इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु णं जे बायरपुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया ते णं भंते! जीवा! महाकम्मतरा चेव महाकिरियतरा चेव महासवतरा चेव महावेयणतरा चेव, हंता गोयमा! जाव महावेयणतरा चेव, एवं जाव अहेसत्तमा ॥" अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां **नरकपरिसमन्तेषु**—नरकावासपर्यन्तवर्त्तिषु प्रदेशेषु बादरपृथिवीकायिकाः **'जाव वणप्फइकाइय'**त्ति बादराप्कायिका बादरवायुकायिका बादरवनस्पतिकायिकास्ते भदन्त! जीवाः **'महाकम्मतरा चेव'** महत्—प्रभूतमसातवेदनीयं कर्म्म येषां ते महाकर्म्माणः, अतिशयेन महाकर्म्माणो महाकर्म्मतराः, **'चेवे'** त्यवधारणे, महाकर्म्मतरा एव कुतः? इत्याह—**'महाकिरियतरा चेव'** महती क्रिया—प्राणातिपातादिकाऽऽसीत् प्राग् जन्मनि तद्भवेषु तदध्यवसायानिवृत्त्या येषां ते महाक्रियाः, अतिशयेन महाक्रिया

महाक्रियतराः, 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति न्यायाद्धेतावत्र प्रथमा, ततोऽयमर्थः—यतो महाक्रियतरा
एव ततो महाकर्म्मतरा एव, महाक्रियतरत्वमपि कुतः ? इत्याह—'महाश्रवतरा एव' महान्त आश्रवाः—पापोपादानहेतव आरम्भा-
दयो येषामासीरन् ते महाश्रवाः, अतिशयेन महाश्रवा महाश्रवतराः, 'चेवे'ति पूर्ववत्, तदेवं यतो महाकर्म्मतरा एव ततो महावेदन-
तरा एव, नरकेषु क्षेत्रस्वभावजाया अपि वेदनाया अतिदुःसहत्वात्, भगवानाह—हंता गौतम ! 'ते णं जीवा महाकम्मतरा चेवे'त्यादि
प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी ॥ सम्प्रत्युद्देशकार्थसङ्ग्रहणिगाथाः प्राह—आसामक्षरमात्रगमनिका—प्रथमं 'पुढ-
वीओ' इति पृथिव्योऽभिधेयास्तद्यथा—"कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?" इत्यादि । तदनन्तरम् 'ओगाहित्ता नरगा' इति,
यस्यां पृथिव्यां यदवगाह्य यादृशाश्च नरकास्तदभिधेयं, यथा—"इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्स-
बाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता" इत्यादि । ततो नरकाणां संस्थानं ततो बाहल्यं तदनन्तरं विष्कम्भपरिक्षेपौ ततो वर्णस्ततो गन्ध-
स्तदन्तरं स्पर्शस्ततस्तेषां नरकाणां महत्तायामुपमा देवेन भवति कर्त्तव्या, ततो जीवाः पुद्गलाश्च तेषु नरकेषु व्युत्क्रामन्तीति, तथा शा-
श्वताशाश्वता नरका इति वक्तव्यं, तत उपपातो वक्तव्यः, तद्यथा—"इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए कतो उववज्जंति ?" इ-
त्यादि, तत एकसमयेनोत्पद्यमानानां परिमाणं ततोऽपहारस्तत उच्चत्वं तदनन्तरं संहननं ततः संस्थानं ततो वर्णस्तदनन्तरं गन्धस्ततः
स्पर्शस्तत उच्छ्वासवक्तव्यता तदनन्तरमाहारस्ततो लेश्या ततो दृष्टिस्तदनन्तरं ज्ञानं ततो योगस्ततोऽप्युपयोगस्तदनन्तरं समुद्घातस्ततः
क्षुत्पिपासे ततो विकुर्वणा, तद्यथा—"रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पहू विउव्वित्तए" इत्यादि,
ततो वेदना ततो भयं तदनन्तरं पञ्चानां पुरुषाणामधःसप्तम्यामुपपातस्तत औपम्यं वेदनाया द्विविधायाः, उष्णवेदनायाः शीतवेदना-

याश्चेत्यर्थः, ततः स्थितिर्वक्तव्या तदनन्तरमुद्वर्त्तना ततः स्पर्शः पृथिव्यादिस्पर्शो वक्तव्यः, ततः सर्वजीवानामुपपातः, तद्यथा—"इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि सव्वे पाणा सव्वे भूया" इत्यादि॥ तृतीयप्रतिपत्तौ समाप्तो द्वितीयो नरकोद्देशकः॥ सम्प्रति तृतीय आरभ्यते, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरतिया केरिसयं पोग्गलपरिणामं पच्चणुभवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए [एवं नेयव्वं]॥ एत्थ किर अतिवयंती नरवसभा केसवा जलचरा य। मंडलिया रायाणो जे य महारंभकोडुंबी॥ १॥ भिन्नमुहुत्तो नरएसु होति तिरियमणुएसु चत्तारि। देवेसु अद्धमासो उक्कोस विउव्वणा भणिया॥ २॥ जे पोग्गला अणिट्ठा नियमा सो तेसि होइ आहारो। संठाणं तु जहण्णं नियमा हुंडं तु नायव्वं॥ ३॥ असुभा विउव्वणा खलु नेरइयाणं तु होइ सव्वेसिं। वेउव्वियं सरीरं असंघयण हुंडसंठाणं॥ ४॥ अस्साओ उववण्णो अस्साओ चेव चयइ निरयभवं। सव्वपुढवीसु जीवो सव्वेसु ठिइविसेसेसुं॥५॥ उववाएण व सायं नेरइओ देवकम्मुणा वावि। अज्झवसाणनिमित्तं अहवा कम्माणुभावेणं॥ ६॥ नेरइयाणुप्पाओ उक्कोसं पंचजोयणसयाइं। दुक्खेणभिद्दुयाणं वेयणसयसंपगाढाणं॥ ७॥ अच्छिनिमीलियमेत्तं नत्थि सुहं दुक्खमेव पडिबद्धं। नरए नेरइयाणं अहोनिसं पच्चमाणाणं॥ ८॥ तेयाकम्मसरीरा सुहुमसरीरा य जे अपज्जत्ता। जीवेण मुक्कमेत्ता

वधंति सहस्ससो भेयं ॥ ९ ॥ अतिसीतं अतिउण्हं अतितण्हा अतिखुहा अतिभयं वा । निरए नेरइयाणं दुक्खसयाइं अविस्सामं ॥ १० ॥ एत्थ य भिन्नमुहुत्तो पोग्गल असुहा य होइ अस्साओ । उववाओ उप्पाओ अच्छि सरीरा उ बोद्धव्वा ॥ ११ ॥ नारयउद्देसओ तइओ ॥ से तं नेरतिया ॥ (सू० ९५)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं 'पुद्गलपरिणामं' आहारादिपुद्गलविपाकं 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति?, भगवानाह–गौतम! अनिष्टमित्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, एवं वेदनालेश्यानामगोत्रारतिभयशोकक्षुत्पिपासाव्याधिउच्छ्वासानुतापक्रोधमानमायालोभाहारभयमैथुनपरिग्रहसञ्ज्ञासूत्राणि वक्तव्यानि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"पोग्गलपरिणामे वेयणा य लेसा य नाम गोए य । अरई भए य सोगे खुहा पिवासा य वाही य ॥ १ ॥ उस्सासे अणुतावे कोहे माणे य मायलोभे य । चत्तारि य सण्णाओ नेरइयाणं तु परिणामे ॥ २ ॥" सम्प्रति सप्तमनरकपृथिव्यां ये गच्छन्ति तान् प्रतिपादयति–इह परिग्रहसञ्ज्ञापरिणामवक्तव्यतायां चरमसूत्रं सप्तमनरकपृथ्वीविषयं तदनन्तरं चेयं गाथा ततः 'एत्थे' त्यनन्तरमुक्ताऽधःसप्तमी पृथिवी परामृश्यते, 'अत्र' अधःसप्तमनरकपृथिव्यां 'किल' इत्याप्तवादसूचने आप्तवचनमेतदिति भावः, 'अतिव्रजन्ति' अतिशयेन–बाहुल्येन गच्छन्ति नरवृषभाः 'केशवाः' वासुदेवाः 'जलचराश्च' तन्दुलमत्स्यप्रभृतयः 'माण्डलिकाः' वसुप्रभृतय इव 'राजानः' चक्रवर्त्तिनः सुभूमादय इव ये च महारम्भाः कुटुम्बिनः–कालसौकरिकादय इव ॥ सम्प्रति नरकेषु प्रस्ताव-

त्तिर्यगादिषु चोत्तरवैक्रियावस्थानकालमानमाह—भिन्नः—खण्डो मुहूर्त्तो भिन्नमुहूर्त्तः अन्तर्मुहूर्त्तमित्यर्थः, नरकेपूत्कर्षतो विकुर्वणास्थितिकालः, तिर्यङ्मनुष्येषु चत्वार्यन्तर्मुहूर्त्तानि, देवेष्वर्द्धमास उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालः भणितः एष उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालो भणितस्तीर्थकरगणधरैः ॥ सम्प्रति नरकेष्वाहारादिस्वरूपमाह—ये पुद्गला अनिष्टा नियमात्स तेषां भवत्याहारः, **'संस्थानं तु'** संस्थानं पुनस्तेषां हुण्डं हुण्डमपि जघन्यमतिनिकृष्टमनिष्टं वेदितव्यं, एतच्च भवधारणीयशरीरमधिकृत्य वेदितव्यम्, उत्तरवैक्रियसंस्थानस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, इयं च प्रागुक्तार्थसङ्ग्रहगाथा ततो न पुनरुक्तदोषः ॥ सम्प्रति विकुर्वणास्वरूपमाह—सर्वेषां नैरयिकाणां विकुर्वणा **'खलु'** निश्चितमशुभा भवति, यद्यपि शुभं विकुर्विष्याम इति ते चिन्तयन्ति तथाऽपि तथाविधप्रतिकूलकर्मोदयतस्तेषामशुभैव विकुर्वणा भवति, तदपि च वैक्रियं—उत्तरवैक्रियशरीरमसंहननम्, अस्थ्यभावात्, उपलक्षणमेतत् भवधारणीयं च वैक्रियशरीरमसंहननं, तथा हुण्डसंस्थानं तत् उत्तरवैक्रियशरीरं, हुण्डसंस्थाननाम्न एव भवप्रत्ययत उदयभावात् ॥ कश्चित् जीवः **'सर्वास्वपि पृथिवीषु'** रत्नप्रभादिषु तमस्तमापर्यन्तासु सर्वेष्वपि च **'स्थितिविशेषेषु'** जघन्यादिरूपेषु **'असातः'** असातोदयकलित उपपन्नः, उत्पत्तिकालेऽपि प्राग्भवमरणकालानुभूतमहादुःखानुवृत्तिभावात्, उत्पत्त्यनन्तरमपि **'असात एव'** असातोदयकलित एव सकलमपि निरयभवं **'त्यजति'** क्षपयति, न तु जातुचिदपि सुखलेशमप्यास्वादयति ॥ आह—किं तत्र कदाचित्सातोदयोऽपि भवति येनेदमुच्यते ?, उच्यते, भवति, तथा चाह—**'उववाएण'** इत्यत्र सप्तम्यर्थे तृतीया, उपपातकाले **'सातं'** सातवेदनीयकर्मोदयं कश्चिद्वेदयते, यः प्राग्भवे दाघच्छेदादिव्यतिरेकेण मरणमुपगतोऽनतिसङ्क्लिष्टाध्यवसायी समुत्पद्यते, तदानीं हि न तस्य प्राग्भवानुबद्धमाधिरूपं दुःखं नापि क्षेत्रस्वभावजं नापि परमाधार्म्मिककृतं नापि परस्परोदीरितं तत एवंविधदुःखाभावादसौ सातं कश्चित् वेदयते इत्युच्यते, **'देवकम्मुणा वावि'** इति देवकर्म्मणा

वयंति सहस्ससो भेयं ॥ ९ ॥ अतिसीतं अतिउण्हं अतितण्हा अतिखुहा अतिभयं वा । निरए नेरइयाणं दुक्खसयाइं अविस्सामं ॥ १० ॥ एत्थ य भिन्नमुहुत्तो पोग्गल असुहा य होइ अस्साओ । उववाओ उप्पाओ अच्छि सरीरा उ बोद्धव्वा ॥ ११ ॥ नारयउद्देसओ तइओ ॥ से तं नेरतिया ॥ (सू० ९५)

'**रयणप्पभे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं '**पुद्गलपरिणामं**' आहारादिपुद्गलविपाकं '**प्रत्यनुभवन्तः**' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति?, भगवानाह—गौतम! अनिष्टमित्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, एवं वेदनालेश्यानामगोत्रारतिभयशोकक्षुत्पिपासाव्याधिउच्छ्वासानुतापक्रोधमानमायालोभाहारभयमैथुनपरिग्रहसञ्ज्ञासूत्राणि वक्तव्यानि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"पोग्गलपरिणामे वेयणा य लेसा य नाम गोए य । अरई भए य सोगे खुहा पिवासा य वाही य ॥ १ ॥ उस्सासे अणुतावे कोहे माणे य मायलोभे य । चत्तारि य सण्णाओ नेरइयाणं तु परिणामे ॥ २ ॥" सम्प्रति सप्तमनरकपृथिव्यां ये गच्छन्ति तान् प्रतिपादयति—इह परिग्रहसञ्ज्ञापरिणामवक्तव्यतायां चरमसूत्रं सप्तमनरकपृथ्वीविषयं तदनन्तरं चेयं गाथा ततः '**एत्थे**' त्यनन्तरमुक्ताऽधःसप्तमी पृथिवी परामृश्यते, '**अत्र**' अधःसप्तमनरकपृथिव्यां '**किल**' इत्याप्तवादसूचने आप्तवचनमेतदिति भावः, '**अतिव्रजन्ति**' अतिशयेन—बाहुल्येन गच्छन्ति नरवृषभाः '**केशवाः**' वासुदेवाः '**जलचराश्च**' तन्दुलमत्स्यप्रभृतयः '**माण्डलिकाः**' वसुप्रभृतय इव '**राजानः**' चक्रवर्त्तिनः सुभूमादय इव ये च महारम्भाः कुटुम्बिनः—कालसौकरिकादय इव ॥ सम्प्रति नरकेषु प्रस्तावा-

त्तिर्यगादिषु चोत्तरवैक्रियावस्थानकालमानमाह—भिन्नः—खण्डो मुहूर्त्तो भिन्नमुहूर्त्तः अन्तर्मुहूर्त्तमित्यर्थः, नरकेषूत्कर्षतो विकुर्वणास्थितिकालः,
तिर्यङ्मनुष्येषु चत्वार्यन्तर्मुहूर्त्तानि, देवेष्वर्द्धमास उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालः भणितः एष उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालो भणि-
तस्तीर्थकरगणधरैः ॥ सम्प्रति नरकेष्वाहारादिस्वरूपमाह—ये पुद्गला अनिष्टा नियमात्स तेषां भवत्याहारः, **'संस्थानं तु'** संस्थानं पुन-
स्तेषां हुण्डं हुण्डमपि जघन्यमतिनिकृष्टमनिष्टं वेदितव्यं, एतच्च भवधारणीयशरीरमधिकृत्य वेदितव्यम्, उत्तरवैक्रियसंस्थानस्याग्रे वक्ष्य-
माणत्वात्, इयं च प्रागुक्तार्थसङ्ग्रहगाथा ततो न पुनरुक्तदोषः ॥ सम्प्रति विकुर्वणास्वरूपमाह—सर्वेषां नैरयिकाणां विकुर्वणा **'खलु'**
निश्चितमशुभा भवति, यद्यपि शुभं विकुर्विष्याम इति ते चिन्तयन्ति तथाऽपि तथाविधप्रतिकूलकर्मोदयतस्तेषामशुभैव विकुर्वणा भवति,
तदपि च वैक्रियं—उत्तरवैक्रियशरीरमसंहननम्, अस्थ्यभावात्, उपलक्षणमेतत् भवधारणीयं च वैक्रियशरीरमसंहननं, तथा हुण्डसं-
स्थानं तत् उत्तरवैक्रियशरीरं, हुण्डसंस्थाननाम्न एव भवप्रत्ययत उदयभावात् ॥ कश्चित् जीवः **'सर्वास्वपि पृथिवीषु'** रत्नप्रभादिषु तम-
स्तमापर्यन्तासु सर्वेष्वपि च **'स्थितिविशेषेषु'** जघन्यादिरूपेषु **'असातः'** असातोदयकलित उपपन्नः, उत्पत्तिकालेऽपि प्राग्भवमरण-
कालानुभूतमहादुःखानुवृत्तिभावात्, उत्पत्त्यनन्तरमपि **'असात एव'** असातोदयकलित एव सकलमपि निरयभवं **'त्यजति'** क्षप-
यति, न तु जातुचिदपि सुखलेशमप्यास्वादयति ॥ आह—किं तत्र कदाचित्सातोदयोऽपि भवति येनेदमुच्यते?, उच्यते, भवति, तथा
चाह—**'उववाएण'** इत्यत्र सप्तम्यर्थे तृतीया, उपपातकाले **'सातं'** सातवेदनीयकर्मोदयं कश्चिद्वेदयते, यः प्राग्भवे दाघच्छेदादिव्यतिरेकेण
मरणमुपगतोऽनतिसङ्क्लिष्टाध्यवसायी समुत्पद्यते, तदानीं हि न तस्य प्राग्भवानुबद्धमाधिरूपं दुःखं नापि क्षेत्रस्वभावजं नापि परमा-
धार्म्मिककृतं नापि परस्परोदीरितं तत एवंविधदुःखाभावादसौ सातं कश्चित् वेदयते इत्युच्यते, **'देवकम्मुणा वावि'** इति देवकर्म्मणा

पूर्वसाङ्गतिकदेवप्रयुक्तया क्रियया, तथाहि—गच्छति पूर्वसाङ्गतिको देवः पूर्वपरिचितस्य नैरयिकस्य वेदनोपशमनार्थं यथा **बलदेवः** कृष्णवासुदेवस्य, स च वेदनोपशमो देवकृतो मनाक्कालमात्र एव भवति, तत ऊर्ध्वं नियमात्क्षेत्रस्वभावजाऽन्योऽन्या वा वेदना प्रवर्त्तते, तथास्वाभाव्यात्, **'अज्झवसाणनिमित्त'** मिति अध्यवसाननिमित्तं सम्यक्त्वोत्पादकाले तत ऊर्ध्वं कदाचित्तथाविधविशिष्टशुभाध्यवसायप्रत्ययं कश्चिद् नैरयिको बाह्यक्षेत्रस्वभावजवेदनासद्भावेऽपि सातोदयमेवानुभवति, सम्यक्त्वोत्पादकाले हि जात्यन्धस्य चक्षुर्लाभ इव महान् प्रमोद उपजायते, तदुत्तरकालमपि कदाचित्तीर्थंकरगुणानुमोदनाद्यनुगतां विशिष्टां भावनां भावयतः, ततो बाह्यक्षेत्रस्वभावजवेदनासद्भावेऽप्यन्तः सातोदयो विजृम्भमाणो न विरुध्यते, **'अहवा कम्माणुभावेण'**मिति अथवा **'कर्म्मानुभावेन'** बाह्यतीर्थंकरजन्मदीक्षाज्ञानापवर्गकल्याणसंभूतिलक्षणबाह्यनिमित्तमधिकृत्य तथाविधस्य च सातवेदनीयस्य कर्म्मणोऽनुभावेन—विपाकोदयेन कश्चित्सातं वेदयने, न चैतद्व्याख्यानमनार्षं यत उक्तं **वसुदेवचरिते,** इह नैरयिकाः कुम्भ्यादिषु पच्यमानाः कुन्तादिभिर्भिद्यमाना वा भयोत्रस्तास्तथाविधप्रयत्नवशादूर्ध्वमुत्प्लवन्ते, ततस्तदुत्पातपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—नैरयिकाणां दुःखेनाभिद्रुतानां—सर्वात्मना व्याप्तानां **'वेदनाशतसंप्रगाढानां'** वेदनाशतानि—अपरिमिता वेदनाः संप्रगाढानि—अवगाढानि येषां ते वेदनाशतसंप्रगाढाः सुखादिदर्शनात् निष्ठान्तस्य परनिपातः, तेषां हेतुहेतुमद्भावश्चात्र, यतो वेदनाशतसंप्रगाढास्ततो दुःखेनाभिद्रुताः, तेषां जघन्यत उत्पातो गव्यूतमात्रम्, एतच्च संप्रदायादवसीयते, तथा च दृश्यते कचिदेवमपि पाठः—"नेरइयाणुप्पाओ गाउय उक्कोस• पंचजोयणसयाइं" इति, उत्कर्षतः पञ्च योजनशतानि इति। दुःखेनाभिहतानामित्युक्तं ततो दुःखमेव निरूपयति—नरके नैरयिकाणामुष्णवेदनया शीतवेदनया वाऽहर्निशं पच्यमानानां न **'अक्षिनिमीलनमात्रमपि'** अक्षिनिकोचकालमात्रमपि अस्ति सुखं, किन्तु दुःखमेव केवलं **'प्रतिबद्धम्'**

अनुबद्धं सदाऽनुगतमिति भावः ॥ अथ यत्तेषां वैक्रियशरीरं तत्तेषां मरणकाले कथं भवति? इति तन्निरूपणार्थमाह—तैजसकार्म्मणशरीराणि यानि 'सूक्ष्मशरीराणि' (च) सूक्ष्मनामकर्म्मोदयवतां पर्याप्तानामपर्याप्तानां चौदारिकशरीराणि वैक्रियाहारकशरीराणि च तेषामपि प्रायो मांसचक्षुरग्राह्यतया सूक्ष्मत्वात् तथा यानि 'अपर्याप्तानि' अपर्याप्तशरीराणि तानि जीवेन मुक्तमात्राणि सन्ति सहस्रशो भेदं व्रजन्ति विसकलितास्तत्परमाणुसङ्घाता भवन्तीत्यर्थः ॥ एतासामेव गाथानां संग्राहिकां गाथामाह—'एत्थ' इति पदोपलक्षिता प्रथमा द्वितीया 'भिन्नमुहुत्तो' इति तृतीया 'पोग्गला' इति 'जे पोग्गला अणिट्ठा' इत्यादि चतुर्थी 'अशुभा' इति (जे) 'असुभा विउव्वणा खलु' इत्यादि, एवं शेषपदान्यपि भावनीयानि ॥ तृतीयप्रतिपत्तौ तृतीयो नरकोद्देशकः समाप्तः ॥ तदेवमुक्तो नारकाधिकारः, सम्प्रति तिर्यगधिकारो वक्तव्यः, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

से किं तं तिरिक्खजोणिया?, तिरिक्खजोणिया पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—एगिंदियतिरिक्खजोणिया बेइंदियतिरिक्खजोणिया तेइंदियतिरिक्खजोणिया चउरिंदियतिरिक्खजोणिया पंचिंदियतिरिक्खजोणियाय। से किं तं एगिंदियतिरिक्खजोणिया?, २ पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया जाव वणस्सइकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया । से किं तं पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया बादरपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया य। से किं तं सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरि०?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तसुहुम० अपज्जत्तसुहुम० से तं सुहुमा।

से किं तं बादरपुढविकाइय०?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तबादरपु० अपज्जत्तबादरपु०, से तं बायरपुढविकाइयएगिंदिय०। से तं पुढवीकाइयएगिंदिया। से किं तं आउकाइयएगिंदिय०?, २ दुविहा पण्णत्ता, एवं जहेव पुढविकाइयाणं तहेव, वाउकायभेदो एवं जाव वणस्सतिकाइया से तं वणस्सइकाएगिंदियतिरिक्ख०। से किं तं बेइंदियतिरिक्ख०?, २ दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तकबेइंदियति० अपज्जत्तबेइंदियति०, से तं बेइंदियतिरि० एवं जाव चउरिंदिया। से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया थलयरपंचेंदियतिरिक्खजो० खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से किं तं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य। से किं तं संमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिता?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगसंमुच्छिम० अपज्जत्तगसंमुच्छिम० जलयरा, से तं संमुच्छिम० पंचिंदियतिरिक्ख०। से किं तं गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगगब्भवक्कंतिय० अपज्जत्तगब्भ० से तं गब्भवक्कंतियजलयर०, से तं जलयरपंचेंदियतिरि०। से किं तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता?, २ दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पयथलयरपंचेंदिय० परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता।

से किं तं चउप्पदथलयरपंचिंदिय०? चउप्पय० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमचउप्पयथ-
लयरपंचेंदिय० गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता य, जहेव जलयराणं तहेव
चउक्कतो भेदो, सेत्तं चउप्पदथलयरपंचेंदिय०। से किं तं परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्ख०?,
२ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता भुयगपरिसप्पथलय-
रपंचेंदियतिरिक्खजोणिता। से किं तं उरगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता?, उरगपरि०
दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—जहेव जलयराणं तहेव चउक्कतो भेदो, एवं भुयगपरिसप्पाणवि भाणि-
तव्वं, से तं भुयगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता, से तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजो-
णिता। से किं तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, खह० २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छि-
मखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता य। से किं तं
संमुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता?, संमु० २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगसंमु-
च्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया अपज्जत्तगसंमुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य,
एवं गब्भवक्कंतियावि जाव पज्जत्तगगब्भवक्कंतियावि जाव अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियावि खहयरपंचें-
दियतिरिक्खजोणियाणं भंते! कतिविधे जोणिसंगहे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविहे जोणिसंगहे

पण्णत्ते, तंजहा—अंडया पोयया संमुच्छिमा, अंडया तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी पुरिसा णपुंसगा, पोतया तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी पुरिसा णपुंसया, तत्थ णं जे ते संमुच्छिमा ते सव्वे णपुंसका ॥ (सू० ९६)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते तिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—तिर्यग्योनिकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकेन्द्रिया इत्यादि सूत्रं प्रायः सुगमं केवलं भूयान् पुस्तकेषु वाचनाभेद इति यथाऽवस्थितवाचनाक्रमप्रदर्शनार्थमक्षरसंस्कारमात्रं क्रियते—एकेन्द्रिया यावत्पञ्चेन्द्रियाः। अथ के ते एकेन्द्रियाः?, एकेन्द्रियाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिका यावद्वनस्पतिकायिकाः। अथ के ते पृथिवीकायिकाः?, पृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मपृथिवीकायिकाश्च वादरपृथिवीकायिकाश्च। अथ के ते सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः?, सूक्ष्मपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च। अथ के ते वादरपृथिवीकायिकाः?, वादरपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, एवं तावद्वक्तव्यं यावद्वनस्पतिकायिकाः। अथ के ते द्वीन्द्रियाः?, द्वीन्द्रिया द्विविधाः प्रज्ञप्ताः—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया अपि वक्तव्याः। अथ के ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—जलचराः स्थलचराः खचराश्च। अथ के ते जलचराः?, जलचरा द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—संमूर्च्छिमा गर्भव्युत्क्रान्तिकाश्च। अथ के ते संमूर्च्छिमा.?, संमूर्च्छिमा द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च। अथ

१ अण्डजव्यतिरिक्ता सर्वेऽपि जरायुजा अजरायुजा वा गर्भव्युत्क्रान्तिका पञ्चेन्द्रिया अत्रैवान्तर्भावनीया इति न चतुर्विधा, समाधास्यति चैवमग्रे, केवलमत्र जरायुजतया पक्षिणामप्रसिद्धे न समाधेरादति.

के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः?, गर्भव्युत्क्रान्तिका द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, एवं चतुष्पदा उरःपरिसर्प्पा भुजपरिसर्पाः पक्षिणश्च प्रत्येकं चतुष्प्रकारा वक्तव्याः ॥ सम्प्रति पक्षिणां प्रकारान्तरेण भेदप्रतिपादनार्थमाह—'पक्खि णं (खहयरपंचिंदियतिरि०) भंते!' इत्यादि, पक्षिणां भदन्त! 'कतिविधः' कतिप्रकारः 'योनिसङ्ग्रहः' योन्या सङ्ग्रहणं योनिसङ्ग्रहो योन्युपलक्षितं ग्रहणमित्यर्थः (प्रज्ञप्तः?), भगवानाह—गौतम! त्रिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अण्डजा—मयूरादयः पोतजा—वाग्गुल्यादयः संमूर्च्छिमाः खञ्जरीटादयः, अण्डजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, पोतजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, तत्र ये ते संमूर्च्छिमास्ते सर्वे नपुंसकाः, संमूर्च्छिमानामवश्यं नपुंसकवेदोदयभावात् ॥

एतेसि णं भंते! जीवाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—कण्हलेसा जाव सुक्कलेसा ॥ ते णं भंते! जीवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी?, गोयमा! सम्मदिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि सम्मामिच्छदिट्ठीवि ॥ ते णं भंते! जीवा किं णाणी अण्णाणी?, गोयमा! णाणीवि अण्णाणीवि तिण्णि णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ॥ ते णं भंते! जीवा किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी?, गोयमा! तिविधावि ॥ ते णं भंते! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता?, गोयमा! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि ॥ ते णं भंते! जीवा कओ उववज्जंति किं नेरतिएहिंतो उव० तिरिक्खजोणिएहिंतो उव०?, पुच्छा, गोयमा! असंखेज्जवासाउयअकम्मभूमगअंतरदीवगवज्जेहिंतो उववज्जंति ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं

केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति समुग्घाता पण्णत्ता?, गोयमा! पंच समुग्घाता पण्णत्ता, तंजहा—वेदणासमुग्घाए जाव तेयासमुग्घाए ॥ ते णं भंते! जीवा मारणांतियसमुग्घाएणं किं समोहता मरंति असमोहता मरंति?, गोयमा! समोहतावि म० असमोहयावि मरंति॥ ते णं भंते! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति?—किं नेरतिएसु उववज्जंति? तिरिक्ख० पुच्छा, गोयमा! एवं उव्वट्टणा भाणियव्वा जहा वक्कंतीए तहेव ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति जातीकुलकोडिजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! बारस जातीकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा ॥ भुयगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! कतिविधे जोणीसंगहे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते, तंजहा—अंडगा पोयगा संमुच्छिमा, एवं जहा खहयराणं तहेव, णाणत्तं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, उव्वट्टित्ता दोच्चं पुढविं गच्छंति, णव जातीकुलकोडीजोणीपमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खायं, सेसं तहेव ॥ उरगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! पुच्छा, जहेव भुयगपरिसप्पाणं तहेव, णवरं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, उव्वट्टित्ता जाव पंचमिं पुढविं गच्छंति, दस जातीकुलकोडी ॥ चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्ख० पुच्छा, गोयमा! दुविधे पण्णत्ते, तंजहा—

जराउया (पोयया) य संमुच्छिमा य, (से किं तं) जराउया (पोयया)?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी पुरिसा णपुंसका, तत्थ णं जे ते संमुच्छिमा ते सव्वे णपुंसया । तेसि णं भंते! जीवाणं कति लेस्साओ पण्णत्ताओ?, सेसं जहा पक्खीणं, णाणत्तं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं, उव्वट्टित्ता चउत्थिं पुढविं गच्छंति, दस जातीकुलकोडी ॥ जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, जहा भुयगपरिसप्पाणं णवरं उव्वट्टित्ता जाव अधेसत्तमं पुढविं अद्धतेरस जातीकुलकोडीजोणीपमुह० जाव प० ॥ चउरिंदियाणं भंते! कति जातीकुलकोडीजोणीपमुहसंतसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! नव जाईकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा [जाव] समक्खाया। तेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा! अट्ठजाईकुल जावमक्खाया। बेइंदियाणं भंते! कइ जाई०?, पुच्छा, गोयमा! सत्त जाईकुलकोडीजोणीपमुह० ॥ (सू० ९७)

"एएसि ण'मित्यादि, 'एतेषां' पक्षिणां भदन्त! जीवानां कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! षड् लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या, तेषां द्रव्यतो भावतो वा सर्वा लेश्याः, परिणामसम्भवात् ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! पक्षिणो जीवाः किं सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधा अपि ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनोऽज्ञानिनः?, भगवानाह—गौतम! द्वयेऽपि, ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽपीत्यर्थः, तत्र ये ज्ञानिनस्ते द्विज्ञानिनस्त्रिज्ञानिनो वा येऽप्यज्ञानिनस्तेऽपि द्व्यज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनो वा ॥ 'ते ण'मित्यादि, ते भदन्त! जीवाः किं मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययो-

गिनः ?, भगवानाह—गौतम ! त्रयोऽपि ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त ! जीवाः किं साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ताः ?, भगवानाह—द्वयेऽपि, साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ताश्चेत्यर्थः ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! पक्षिणो जीवाः कुत उत्पद्यन्ते ? नैरयिकेभ्य इत्यादि यथा **प्रज्ञापनायां** व्युत्क्रान्तिपदे तथा द्रष्टव्यम् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां भदन्त! पक्षिणां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां भदन्त! जीवानां कति समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! पञ्च समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातस्तैजससमुद्घातश्च ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! जीवा मारणान्तिकसमुद्घातेन किं समवहता म्रियन्ते असमवहता म्रियन्ते ?, भगवानाह—गौतम! समवहता अपि म्रियन्ते असमवहता अपि म्रियन्ते ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! जीवा अनन्तरमुद्वृत्त्य क्व गच्छन्ति ?, एतदेव व्याचष्टे—'एवं उव्वट्टणा' इत्यादि, यथा **द्विविधप्रतिपत्तौ** तथा द्रष्टव्यम् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां भदन्त ! जीवानां '**कति**' किंप्रमाणानि जातिकुलकोटीनां योनिप्रमुखाणि—योनिप्रवाहानि शतसहस्राणि योनिप्रमुखशतसहस्राणि जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि भवन्ति ?, भगवानाह—द्वादश जातिकुलकोटीयोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तत्र जातिकुलयोनीनामिदं परिस्थूरमुदाहरणं पूर्वाचार्यैरुपादर्शि—जातिरिति किल तिर्यग्जातिस्तस्याः कुलानि—कृमिकीटवृश्चिकादीनि, इमानि च कुलानि योनिप्रमुखाणि, तथाहि—एकस्यामेव योनौ अनेकानि कुलानि भवन्ति, तथाहि—छगणयोनौ कृमिकुलं कीटकुलं वृश्चिककुलमित्यादि, अथवा जातिकुलमित्येकं पदं, जातिकुलयोन्योश्च परस्परं विशेषः एकस्यामेव योनावनेकजातिकुलसम्भवात्, तद्यथा—एकस्यामेव छग-

१ व्युत्क्रान्तिपदवत्तत्र भणितत्वात् वृत्तौ यथायथं, मूले तु प्रज्ञापनाया व्युत्क्रान्तिपद एव यथायथ सूत्रमिति वक्तीएत्ति सूत्रं.

योनावान्तरजातिभेदभावादनेकानि योनिप्रवाहाणि
णयोनौ कृमिजातिकुलं कीटजातिकुलं वृश्चिकजातिकुलमित्यादिं, एवं चैकस्यामेव योनावान्तरजातिभेदभावादनेकानि योनिप्रवाहाणि जातिकुलानि संभवन्तीत्युपपद्यते, खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिजानां द्वादश जातिकुलकोटिशतसहस्राणि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा—"जोणीसंगहलेस्सादिट्ठी नाणे य जोग उवओगे । उववायठिईसमुग्घाय चयणं जाई कुलविही उ ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका—प्रथमं योनिसङ्ग्रहद्वारं ततो लेश्याद्वारं ततो दृष्टिद्वारमित्यादि ॥ **'भुयगाणं भंते!'** इत्यादि, भुजगानां भदन्त! कतिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः ?, इत्यादि पक्षिवत् सर्वं—निरवशेषं वक्तव्यं, नवरं स्थितिच्यवनकुलकोटिषु नानात्वं, तद्यथा—स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, च्यवनम्—उद्वर्त्तना, तत्र नरकगतिचिन्तायामधो यावद्वितीया पृथिवी उपरि यावत्सहस्रारः कल्पस्तावदुत्पद्यते, नव तेषां जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । एवमुरःपरिसर्पाणामपि वक्तव्यं, नवरं तत्र च्यवनद्वारेऽधश्चिन्तायां यावत्पञ्चमी पृथिवीति वक्तव्यं, कुलकोटिचिन्तायां दश जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ **'चउप्पयाण'**मित्यादि, चतुष्पदानां भदन्त! कतिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम! द्विविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पोतजाः संमूर्च्छिमाश्च, इह येऽण्डजव्यतिरिक्ता गर्भव्युत्क्रान्तास्ते सर्वे जरायुजा अजरायुजा वा पोतजा इति [पूर्वमपि विवक्षिताः परमत्र तु सर्वेऽपि गर्भव्युत्क्रान्तिकाः पोतजतया] विवक्षितमतोऽत्र द्विविधो यथोक्तस्वरूपो योनिसङ्ग्रह उक्तः, अन्यथा गवादीनां जरायुजत्वात् (सर्पादीनामण्डजत्वात्) तृतीयोऽपि जरायु(अण्डज)लक्षणो योनिसङ्ग्रहो वक्तव्यः स्यादिति, तत्र ये ते पोतजास्ते त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, तत्र ये ते संमूर्च्छिमास्ते सर्वे नपुंसकाः, शेषद्वारकलापः पूर्ववत्, नवरं स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, च्यवनद्वारेऽधश्चिन्तायां यावच्चतुर्थी पृथिवी ऊर्ध्वं यावत्सहस्रारः, जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राण्यत्रापि दश ॥ **'जलचराणा'**मित्यादि, जल-

चराणां भदन्त! कतिविधो योनिसंग्रहः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधो योनिसंग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अण्डजाः पोतजाः संमूर्छिमाश्च, अण्डजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, पोतजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, यत्र ये ते संमूर्च्छिमास्ते सर्वे नपुंसकाः, शेषमुरःपरिसर्पवन्निरवशेषं वक्तव्यम्, नवरं स्थितिर्जातिकुलकोटिषु नानात्वं, स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, च्यवनद्वारेऽप्यविशेषितानां यावत्सप्तमी ऊर्ध्वं यावत्सहस्रारः, कुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि अर्धत्रयोदश सार्द्धानि द्वादशेत्यर्थः ॥ 'चउरिंदियाण'मित्यादि, चतुरिन्द्रियाणां भदन्त! कति जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—नव जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, एवं त्रीन्द्रियाणामष्टौ जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि, द्वीन्द्रियाणां सप्त जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । इह जातिकुलकोट्यो योनिजातीयानां भिन्नजातीयाभिधानप्रसङ्गतो गन्धाङ्गानि भिन्नजातीयत्वात् प्ररूपयति—

कइ णं भंते! गंधा पण्णत्ता? कइ णं भंते! गंधसया पण्णत्ता?, गोयमा! सत्त गंधा सत्त गंधसया पण्णत्ता ॥ कइ णं भंते! पुप्फजाई कुलकोडीजोणिपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! सोलसपुप्फजातीकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता, तंजहा—चत्तारि जलयराणं चत्तारि थलयराणं चत्तारि महारुक्खियाणं चत्तारि महागुम्मियाणं ॥ कति णं भंते! वल्लीओ कति वल्लिसता पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि वल्लीओ चत्तारि वल्लीसता पण्णत्ता ॥ कति णं भंते! लताओ कति लतासता पण्णत्ता?, गोयमा! अट्ठ लयाओ अट्ठ लतासता पण्णत्ता ॥ कति णं

भंते! हरियकाया हरियकायसया पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ हरियकाया तओ हरियकायसया पण्णत्ता, फलसहस्सं च बिंटबद्धाणं फलसहस्सं च णालबद्धाणं, ते सव्वे हरितकायमेव समोयरंति, ते एवं समणुगम्ममाणा २ एवं समणुगाहिज्जमाणा २ एवं समणुपेहिज्जमाणा २ एवं समणुचिंतिज्जमाणा २ एएसु चेव दोसु काएसु समोयरंति, तंजहा—तसकाए चेव थावरकाए चेव, एवमेव सपुव्वावरेणं आजीवियदिट्ठंतेणं चउरासीति जातिकुलकोडीजोणीपमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खाया ॥ (सू० ९८)

'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त! गन्धाङ्गानि, क्वचिद् गन्धा इति पाठस्तत्र पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद् गन्धा इति गन्धाङ्गानीति द्रष्टव्यं प्रज्ञप्तानि ?, तथा कति गन्धाङ्गशतानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम! सप्त गन्धाङ्गानि सप्त गन्धाङ्गशतानि प्रज्ञप्तानि, इह सप्त गन्धाङ्गानि परिस्थूरजातिभेदादमूनि, तद्यथा—मूलं त्वक् काष्ठं निर्यासः पत्रं पुष्पं फलं च, तत्र मूलं मुस्तावालुकोशीरादि, त्वक् सुवर्णछल्लीत्वचाप्रभृति, काष्ठं चन्दनागुरुप्रभृति, निर्यासः कर्पूरादिः, पत्रं जातिपत्रतमालपत्रादि, पुष्पं प्रियङ्गुनागरपुष्पादि, फलं जातिफलकर्कोलकैलालवङ्गप्रभृति, एते च वर्णमधिकृत्य प्रत्येकं कृष्णादिभेदात्पञ्चपञ्चभेदा इति वर्णपञ्चकेन गुण्यन्ते जाताः पञ्चत्रिंशत्, गन्धचिन्तायामेते सुरभिगन्धय एवेत्येकेन गुणिताः पञ्चत्रिंशत् जाताः पञ्चत्रिंशदेव **'एकेन गुणितं तदेव भवती'**ति न्यायात्, तत्रान्येकैकस्मिन् वर्णभेदे रसपञ्चकं द्रव्यभेदेन विविक्तं प्राप्यते इति सा पञ्चत्रिंशत् रसपञ्चकेन गुण्यते जाताः पञ्चसप्ततिशतं, स्पर्शाश्च यद्यप्यष्टौ भवन्ति तथाऽपि गन्धाङ्गेषु यथोक्तरूपेषु प्रशस्या व्यवहारतश्चत्वार एव मृदुलघुशीतोष्णरूपास्ततः पञ्चसप्ततं शतं स्पर्शचतु-

ष्टयेन गुण्यते जातानि सप्त शतानि, उक्तञ्च—"मूलतयकट्ठनिज्जासपत्तपुप्फफलमेय गंधंगा । वण्णादुत्तरभेया गंधंगसया मुणेयव्वा ॥ १ ॥" अस्य व्याख्यानरूपं गाथाद्वयम्—"मुत्थासुवण्णछल्ली अगुरू वाला तमालपत्तं च । तह य पियंगू जाईफलं च जाईएँ गंधगा ॥ १ ॥ गुणणाए सत्त सया पंचहिँ वण्णेहि सुरभिगंधेणं । रसपणएणं तह फासेहि य चउहिँ मित्ते(पसत्थे)हि ॥ २ ॥" अत्र 'जाईए गंधंगा' इति जात्या जातिभेदेनामूनि गन्धाङ्गानि, शेषं भावितम् ॥ 'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त! पुष्पजातिकुलकोटिशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! षोडश पुष्पजातिकुलकोटिशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—चत्वारि 'जलजानां' पद्मानां जातिभेदेन, तथा चत्वारि 'स्थलजानां' कोरण्टकादीनां जातिभेदेन, चत्वारि महागुल्मिकादीनां जात्यादीनां, चत्वारि 'महावृक्षाणां' मधुकादीनामिति ॥ 'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त! वल्लयः? कति वल्लिशतानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चतस्रो वल्लयस्त्रपुष्यादिमूलभेदेन, ताश्च मूलटीकाकृता वैविक्त्येन न व्याख्याता इति संप्रदायादवसेयाः, चत्वारि वल्लिशतान्येवावान्तरजातिभेदेन ॥ 'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त! लताः कति लताशतानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! अष्टौ लता या मूलभेदेन ता अपि संप्रदायादवसातव्याः, मूलटीकाकारेणाव्याख्यानात्, अष्टौ लताशतानि प्रज्ञप्तानि, अवान्तरजातिभेदेन ॥ 'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त! हरितकायाः कति हरितकायशतानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! त्रयो हरितकायाः प्रज्ञप्ताः—जलजाः स्थलजा उभयजाः, एकैकस्मिन् शतमवान्तरभेदानामिति, त्रीणि हरितकायशतानि । 'फलसहस्सं चे'त्यादि, फलसहस्रं च 'वृन्तबन्धानां' वृन्ताकप्रभृतीनां फलसहस्रं च नालबद्धानां, 'तेऽवि सव्वे' इत्यादि, तेऽपि सर्वे भेदा अपिशब्दादन्येऽपि तथाविधाः 'हरितकायमेव समवतरन्ति' हरितकायेऽन्तर्भवन्ति हरितकायोऽपि वनस्पतौ वनस्पतिरपि स्थावरेषु स्थावरा अपि जीवेषु, तत एवं समनुगम्यमाना २ स्तथा जात्यन्तर्भा-

समनुप्रेक्ष्यमाणाः परेण सूत्रत एव, तथा समनुप्रेक्ष्यमाणाः समनुप्रेक्ष्यमाणा अनु-
वेन स्वत एव सूत्रतः, तथा समनुग्राह्यमाणाः समनुग्राह्यमाणाः परेण सूत्रत एव, तथा समनुप्रेक्ष्यमाणाः
वेन स्वत एव सूत्रतः, तथा समनुचिन्त्यमानाः समनुचिन्त्यमानास्तथा तथा तन्त्रयुक्तिभिः, एतयोरेव द्वयोः काययोः समवतरन्ति,
प्रेक्षया अर्थालोचनरूपया, तथा समनुचिन्त्यमानाः समनुचिन्त्यमानास्तथा तथा तन्त्रयुक्तिभिः, एतयोरेव द्वयोः काययोः समवतरन्ति,
तद्यथा—त्रसकाये च स्थावरकाये च, **'एवामेव'** इत्यादि, **'एवमेव'** उक्तेनैव प्रकारेण **'सपुव्वावरेणं'** पूर्वं चापरं च पूर्वापरं सह पू-
र्वापरं येन स सपूर्वापरः उक्तप्रकारस्तेन, उक्तविषयपौर्वापर्यालोचनयेति भावार्थः, **'आजीवगदिट्ठंतेणं'**ति आ—सकलजगदभिव्याप्त्या
जीवानां यो दृष्टान्तः—परिच्छेदः स आजीवदृष्टान्तस्तेन सकलजीवदर्शनेनेत्यर्थः, आह च **मूलटीकाकारः**—"आजीवदृष्टान्तेन सक-
लजीवनिदर्शनेने"ति, चतुरशीतिजातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं मयाऽन्यैश्च ऋषभादिभिरिति, अत्र चतुरशी-
तिसङ्ख्योपादानमुपलक्षणं, तेनान्यान्यपि जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि वेदितव्यानि, तथाहि—पक्षिणां द्वादश जातिकुलकोटि-
योनिप्रमुखशतसहस्राणि भुजगपरिसर्पाणां नव उरगपरिसर्पाणां दश चतुष्पदानां दश जलचराणामर्द्धत्रयोदशानि चतुरिन्द्रियाणां नव
त्रीन्द्रियाणामष्टौ द्वीन्द्रियाणां सप्त पुष्पजातीनां षोडश, एतेषां चैकत्र मीलने त्रिनवतिजातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि सार्द्धानि
भवन्ति, ततश्चतुरशीतिसङ्ख्योपादानमुपलक्षणमवसेयं, न चैतद् व्याख्यानं स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत उक्तं **चूर्णौ**—'आजीवगदिट्ठं-
तेणं'ति अशेषजीवनिदर्शनेन चउरासीजातिकुलकोडि योनिप्रमुखशतसहस्रा एतत्प्रमुखा अन्येऽपि विद्यन्ते इति ॥ कुलकोटिविचारणे
विशेषाधिकाराद्विमानान्यप्यधिकृत्य विशेषप्रश्नमाह—

अत्थि णं भंते! विमाणाइं सोत्थीयाणि सोत्थियावत्ताइं सोत्थियपभाइं सोत्थियकन्ताइं सो-

१ टीकाकृदभिप्रायेण अच्चियाइं अच्चियावत्ताइं इत्यादि पाठसंभव

त्थियवन्नाइं सोत्थियलेसाइं सोत्थियज्झयाइं सोत्थिसिंगाराइं सोत्थिकूडाइं सोत्थिसिट्ठाइं सोत्थुत्तरवडिंसगाइं?, हंता अत्थि। ते णं भंते! विमाणा केमहालता प०? गोयमा! जावतिए णं सूरिए उदेति जावइएणं च सूरिए अत्थमति एवतिया तिण्णोवासंतराइं अत्थेगतियस्स देवस्स एगे विक्कमे सिता, से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगतीए वीतीवयमांणे २ जाव एकाहं वा दुयाहं वा उक्कोसेणं छम्मासा वितीवएज्जा, अत्थेगतिया विमाणं वितीवइज्जा अत्थेगतिया विमाणं नो वीतीवएज्जा, एमहालता णं गोयमा! ते विमाणा पण्णत्ता, अत्थि णं भंते! विमाणाइं अंचीणि अच्चिरावत्ताइं तहेव जाव अच्चुत्तरवडिंसगातिं?, हंता अत्थि, ते विमाणा केमहालता पण्णत्ता?, गोयमा! एवं जहा सोत्थी(याई)णि णवरं एवतियाइं पंच उवासंतराइं अत्थेगतियस्स देवस्स एगे विक्कमे सिता सेसं तं चेव॥ अत्थि णं भंते! विमाणाइं कामाइं कामावत्ताइं जाव कामुत्तरवडिंसयाइं?, हंता अत्थि, ते णं भंते! विमाणा केमहालया पण्णत्ता?, गोयमा! जहा सोत्थीणि णवरं सत्त उवासंतराइं विक्कमे सेसं तहेव॥ अत्थि णं भंते! विमाणाइं विजयाइं वेजयंताइं जयंताइं अपराजिताइं?, हंता अत्थि, ते णं भंते! विमाणा के०?, गोयमा! जाव-

१ सोत्थियाइ इत्यादि टीकाकृदभिप्रायेण पाठोऽत्र.

तिए सूरिए उदेइ एवइयाइं नव ओवासंतराइं, सेसं तं चेव, नो चेव णं ते विमाणे वीईवएज्जा एमहालया णं विमाणा पण्णत्ता, समणाउसो ! ॥ (सू० ९९) तिरिक्खजोणियउद्देसओ पढमो ॥

'**अत्थि णं भंते**' इत्यादि, अस्तीति निपातो बह्वर्थे '**सन्ति**' विद्यन्ते णमिति वाक्यालङ्कारे '**विमानानि**' विशेषतः पुण्यप्राणिभिर्मन्यन्ते—तद्गतसौख्यानुभवनेनानुभूयन्ते इति विमानानि, तान्येव नामग्राहमाह—अर्चीषि—अर्चिर्नामानि, एवमर्चिरावर्त्तानि अर्चिःप्रभाणि अर्चिःकान्तानि अर्चिर्वर्णानि अर्चिर्लेश्यानि अर्चिर्ध्वजानि अर्चिःशृङ्गा(राणि) अर्चिःसृ(शि)ष्टानि अर्चिःकूटानि अर्चिरुत्तरावतंसकानि सर्वसङ्ख्यया एकादश नामानि, भगवानाह—'**हंता अत्थि**' हंतेति प्रत्यवधारणे अस्तीति निपातो बह्वर्थे सन्त्येवैतानि विमानानीति भावः । '**केमहालया ण**'मित्यादि, किंमहान्ति कियत्प्रमाणमहत्त्वानि णमिति पूर्ववत् भदन्त ! तानि विमानानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! '**जाव य उएइ सूरो**' इत्यादि, जम्बूद्वीपे सर्वोत्कृष्टे दिवसे सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमानः सूर्यो यावति क्षेत्रे उदेति यावति च क्षेत्रे सूर्योऽस्तमुपयाति, एतावन्ति त्रीणि अवकाशान्तराणि, उदयास्तमितप्रमितमधिकृतं क्षेत्रं त्रिगुणमित्यर्थः, अस्त्येतद्—बुद्ध्या परिभावनीयमेतद् यथैकस्य विवक्षितस्य देवस्यैको विक्रमः स्यात्, तत्र जम्बूद्वीपे सर्वोत्कृष्टे दिवसे सूर्य उदेति सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके योजनानामेकस्य च योजनस्यैकविंशतिः षष्टिभागा एतावति क्षेत्रे, उक्तञ्च—"सीयालीससहस्सा, दोण्णि सया जोयणाण तेवट्ठी । इगवीस सट्ठिभागा कक्कडमाइंमि पेच्छ नरा ॥ १ ॥" ४७२६३$\frac{२१}{६०}$, एतावत्येव क्षेत्रे तस्मिन् सर्वोत्कृष्टे दिवसेऽस्तमुपयाति, तत एतत्क्षेत्रं द्विगुणीकृतमुदयास्तापान्तरालप्रमाणं भवति, तच्चैतावत्—चतुर्नवतिः सहस्राणि पञ्च शतानि षड्विंशत्यधिकानि योजनानामेकस्य च योजनस्य [च] द्वाचत्वारिंशत्षष्टिभागाः ९४५२६$\frac{४२}{६०}$ एतावत्त्रिगुणीकृतं यथोक्तविमानपरिमाणक-

रणाय देवस्यैको विक्रमः परिकल्प्यते, स चैवंप्रमाणः—द्वे लक्षे त्र्यशीतिः सहस्राणि पञ्च शतानि अशीत्यधिकानि योजनानाम् एकस्य च योजनस्य षष्टिभागाः षट् २८३५८० $\frac{६}{६०}$ इति ॥ 'से णं देवे' इत्यादि, 'सः'विवक्षितो देवः 'तया' सकलदेवजनप्रसिद्धया उत्कृष्टया त्वरितया चपलया चण्डया शीघ्रया उद्धतया जवनया छेकया दिव्यया देवगत्या, अमीषां पदानामर्थः प्राग्वद्भावनीयः, व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन् जघन्यत एकाहं वा द्व्यहं वा यावदुत्कर्षतः षण्मासान् यावद् 'व्यतिव्रजेत्' गच्छेत्, तत्रैवं गमने अ [ग्रन्थाग्रम् ४०००] स्त्येतद् यथैकं किञ्चन विमानं पूर्वोक्तानां विमानानां मध्ये 'व्यतिव्रजेत्' अतिक्रामेत्, तस्य पारं लभेतेति भावः, तथाऽस्त्येतद् यथैककं विमानं न व्यतिव्रजेत्, न तस्य पारं लभेत, उभयत्रापि जातावेकवचनं, ततोऽयं भावार्थः—उक्तप्रमाणेनापि क्रमेण यथोक्तरूपयाऽपि च गत्या षण्मासानपि यावदधिकृतो देवो गच्छति तथापि केषाञ्चिद्विमानानां पारं लभते केषाञ्चित्पारं न लभते इति, एतावन्महान्ति तानि विमानानि प्रज्ञप्तानि हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! विमानानि स्वस्तिकानि स्वस्तिकावर्त्तानि स्वस्तिकप्रभाणि स्वस्तिककान्तानि स्वस्तिकवर्णानि स्वस्तिकलेश्यानि स्वस्तिकध्वजानि स्वस्तिकशृङ्गाराणि स्वस्तिकशिष्टानि स्वस्तिककूटानि स्वस्तिकोत्तरावतंसकानि?, 'हंता अत्थि' इत्यादि, समस्तं प्राग्वत्, नवरमत्र 'एवइयाइं पंच ओवासंतराइं' इति कण्ठ्यं, उदयास्तापान्तरालक्षेत्रं पञ्चगुणं क्रियत इति भावः ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! विमानानि कामानि कामावर्तानि कामप्रभाणि कामकान्तानि कामवर्णानि कामलेश्यानि कामध्वजानि कामशृङ्गाराणि कामशिष्टानि कामकूटानि कामोत्तरावतंसकानि?, 'हंता अत्थि' इत्यादि सर्वं पूर्ववत् नवरमत्रोदयास्तापान्तरालक्षेत्रं सप्तगुणं कर्त्तव्यं, शेषं तथैव ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानि विमानानि?, 'हंता अत्थी'त्यादि प्राग्वत्, नवरमत्र 'एवइयाइं

नव ओवासंतराइं' इति वक्तव्यं शेषं तथैव, उक्तञ्च—"जावइ उदेइ सूरो जावइ सो अत्थमेइ अवरेणं । तियपणसत्तनवगुणं काउं पत्तेय पत्तेयं ॥ १ ॥ सीयालीस सहस्सा दो य सया जोयणाण तेवट्ठा । इगवीस सट्ठिभागा कक्खडमाइंमि पेच्छ नरा ॥ २ ॥ एयं दुगुणं काउं गुणिज्जए तिपणसत्तमाईहिं । आगयफलं च जं तं कमपरिमाणं वियाणाहि ॥ ३ ॥ चत्तारिवि सकमेहिं चंडादिगईहिं जंति छम्मासं । तहवि य न जंति पारं केसिंचि सुरा विमाणाणं ॥ ४ ॥" अस्यां तृतीयप्रतिपत्तौ तिर्यग्योन्यधिकारे प्रथमोद्देशकः ॥

उक्तः प्रथमोद्देशकः, इदानी द्वितीयस्यावसरः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

कतिविहा णं भंते! संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता?, गोयमा! छव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—पुढविकाइया जाव तसकाइया। से किं तं पुढविकाइया?, पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमपुढविकाइया बादरपुढविकाइया य। से किं तं सुहुमपुढविकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, सेत्तं सुहुमपुढविकाइया। से किं तं बादरपुढविकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, एवं जहा पण्णवणापदे, सण्हा सत्तविधा पण्णत्ता, खरा अणेगविहा पन्नत्ता, जाव असंखेज्जा, से त्तं बादर पुढविकाइया। सेत्तं पुढविकाइया। एवं चेव जहा पण्णवणापदे तहेव निरवसेसं भाणितव्वं जाव वणप्फतिकाइया, एवं जाव जत्थेको तत्थ सिता संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिता अणंता, सेत्तं बादरवणप्फतिकाइया, से तं वणस्सइकाइया। से किं तं तसकाइया?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—बेइंदिया तेइंदिया च-

उरिंदिया पंचेंदिया। से किं तं बेइंदिया?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, एवं जं चेव पण्णवणापदे तं चेव निरयसेसं भाणितव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवा, सेतं अणुत्तरोववाइया, से तं देवा, से तं पंचेंदिया, से तं तसकाइया ॥ (सू० १००)

'कइविहा ण'मित्यादि, कतिविधा भदन्त! संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! षड्विधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पृथिवीकायिका अप्कायिका यावत्त्रसकायिकाः। अथ के ते पृथिवीकायिकाः?, इत्यादि प्रज्ञापनागतं प्रथमं प्रज्ञापनापदं निरवशेषं वक्तव्यं यावदन्तिमं 'से तं देवा' इति पदम् ॥ सम्प्रति विशेषाभिधानाय भूयोऽपि पृथिवीकायविषयं सूत्रमाह—

कतिविधा णं भंते! पुढवी पण्णत्ता?, गोयमा! छव्विहा पुढवी पण्णत्ता, तंजहा—सण्हापुढवी सुद्धपुढवी वालुयापुढवी मणोसिलापु० सक्करापु० खरपुढवी ॥ सण्हापुढवीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्कोसेणं एगं वाससहस्सं। सुद्धपुढवीए पुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० बारस वाससहस्साइं। वालुयापुढवीपुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० चोद्दस वाससहस्साइं। मणोसिलापुढवीणं पुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० सोलस वाससहस्साइं। सक्करापुढवीए पुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० अट्ठारस वाससहस्साइं। खरपुढविपुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० बावीस वाससहस्साइं ॥ नेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० दस वाससहस्साइं

उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती, एयं सव्वं भाणियव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धदेवत्ति ॥ जीवे णं भंते! जीवेत्ति कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! सव्वद्धं, पुढविकाइए णं भंते! पुढविकाइएत्ति कालतो केवचिरं होति?, गोयमा! सव्वद्धं, एवं जाव तसकाइए ॥ (सू० १०१)। पडुप्पन्नपुढविकाइया णं भंते! केवतिकालस्स णिल्लेवा सिता?, गोयमा! जहण्णपदे असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं उक्कोसपए असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं, जहन्नपदातो उक्कोसपए असंखेज्जगुणा, एवं जाव पडुप्पन्नवाउक्काइया ॥ पडुप्पन्नवणप्फइकाइयाणं भंते! केवतिकालस्स निल्लेवा सिता?, गोयमा! पडुप्पन्नवण० जहण्णपदे अपदा उक्कोसपदे अपदा, पडुप्पन्नवणप्फतिकाइयाणं णत्थि निल्लेवणा ॥ पडुप्पन्नतसकाइयाणं पुच्छा, जहण्णपदे सागरोवमसतपुहुत्तस्स उक्कोसपदे सागरोवमसतपुहुत्तस्स, जहण्णपदा उक्कोसपदे विसेसाहिया ॥ (सू० १०२)

'कइविहा ण'मित्यादि, कतिविधा णमिति पूर्ववत्, भदन्त! पृथिवी प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—'श्लक्ष्णपृथिवी' मृद्वी चूर्णितलोष्टकल्पा, 'शुद्धपृथिवी' पर्वतादिमध्ये, मनःशिला—लोकप्रतीता, वालुका—सिकतारूपा, शर्करा—मुरुण्डपृथिवी, 'खरापृथिवी' पाषाणादिरूपा ॥ अधुना एतासामेव स्थितिनिरूपणार्थमाह—'सण्हपुढवीकाइयाण'मित्यादि, श्लक्ष्णपृथिवीकायिकानां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत एकं वर्षसहस्रं । एवमनेनाभिलापेन शेषाणामपि पृथिवीनामनया गाथया उत्कृष्टमनुगन्तव्यं, तामेव गाथामाह—'सण्हा य'इत्यादि, (सण्हा य सुद्धवालुअ मणोसिला

सक्करा य खरपुढवी । इगबारचोद्दससोलढारबावीससमसहसा ॥ १ ॥) श्लक्ष्णपृथिव्या एकं वर्षसहस्रमुत्कर्षतः स्थितिः, शुद्धपृथिव्या द्वादश वर्षसहस्राणि, वालुकापृथिव्याश्चतुर्दश सहस्राणि, मनःशिलापृथिव्याः षोडश वर्षसहस्राणि, शर्करापृथिव्या अष्टादश वर्षसहस्राणि, खरपृथिव्या द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, सर्वासामपि चामीषां पृथिवीनां जघन्येन स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं वक्तव्या ॥ सम्प्रति स्थितिनिरूपणाप्रस्तावान्नैरयिकादीनां चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण स्थितिं निरूपयितुकाम आह—'नेरइयाणं भंते!' इत्यादि, नैरयिकाणां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, इत्येवं प्रज्ञापनागतस्थितिपदानुसारेण चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण तावद्वक्तव्यं यावत्सर्वार्थसिद्धविमानदेवानां स्थितिनिरूपणा, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते ॥ तदेवं भवस्थितिनिरूपणा कृता, सम्प्रति कायस्थितिनिरूपणार्थमाह—'जीवे णं भंते!' इत्यादि, अथ कायस्थितिरिति कः शब्दार्थः?, उच्यते, कायो नाम जीवस्य विवक्षितः सामान्यरूपो विशेषरूपो वा पर्यायविशेषस्तस्मिन् स्थितिः कायस्थितिः, किमुक्तं भवति?—यस्य वस्तुनो येन पर्यायेण—जीवत्वलक्षणेन पृथिवीकायादित्वलक्षणेन वाऽऽदिश्यते व्यवच्छेदेन यद्भवनं सा कायस्थितिः, तत्र जीव इति "जीव प्राणधारणे" जीवति—प्राणान् धारयतीति जीवः, प्राणाश्च द्विधा—द्रव्यप्राणा भावप्राणाश्च, तत्र द्रव्यप्राणा आयुःप्रभृतयः, उक्तञ्च—"पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः । प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥" भावप्राणा ज्ञानादयः यैर्मुक्तोऽपि जीवतीति व्यपदिश्यते, उक्तञ्च—"ज्ञानादयस्तु भावप्राणा मुक्तोऽपि जीवति स तैर्हि"ति, इह च विशेषानुपादानादुभयेषामपि ग्रहणं णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! जीव इति—जीवनपर्यायविशिष्टः कालतः—कालमधिकृत्य कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—सर्वाद्धां, संसार्यवस्थायां द्रव्यभावप्राणानधिकृत्य मुक्त्यवस्थायां भावप्राणानधिकृत्य सर्वत्रापि जीवनस्य विद्यमानत्वात्, अथवा जीव इति न एकः

प्रतिनियतो जीवो विवक्ष्यते किन्तु जीवसामान्यं, ततः प्राणधारणलक्षणजीवनाभ्युपगमेऽपि न कश्चिद्दोषः, तथाहि—'**जीवे णं भंते!**' इत्यादि, जीवो णमिति पूर्ववद् भदन्त! जीव इति—जीवन्निति प्राणान् धारयन्नित्यर्थः कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—गौतम! सर्वाद्धां, जीवसामान्यस्यानाद्यनन्तत्वात्, न चैतद् व्याख्यानं स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत उक्तं **मूलटीकायां**—"**जीवे णं भंते** इत्यादि, एषा ओघकायस्थितिः सामान्यजीवापेक्षिणीति सर्वाद्धया निर्वचनम्"। एवं च पृथिवीकायादिष्वप्यदोषः, एतत्सामान्यस्य सर्वदैव भावादिति। एवं गतीन्द्रियकायादिद्वारैर्यथा **प्रज्ञापनायाम**ष्टादशे कायस्थितिनामके पदे कायस्थितिरुक्ता तथाऽत्र सर्वं निरवशेषं वक्तव्यं यथा उपरि तत्पदगतं न किमपि तिष्ठति, गतीन्द्रियकायादिद्वारसङ्ग्राहके चेमे गाथे—"गइ इंदिए य काए जोगे वेए कसाय लेसा य। सम्मत्तनाणदंसणसंजयउवओगआहारे ॥ १ ॥ भासगपरित्तपज्जत्तसुहुम सण्णी भवऽत्थि चरिमे य। एएसिं तु पयाणं कायठिई होइ नायव्वा ॥ २ ॥" सूत्रपाठस्तु लेशतो दर्श्यते—"नेरइया णं भंते! णेरइयत्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। तिरिक्खजोणिए णं भंते! तिरिक्खजोणियत्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तमुक्कोसेणमणंतं कालं अणंता उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालतो खेत्ततो अणंता लोगा असंखेज्जा पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो" इत्यादि ॥ सम्प्रति सामान्यपृथिवीकायादिगतकायस्थितिनिरूपणार्थमाह—'**पुढविक्काइए णं भंते!**' इत्यादि, पृथिवीकायिको भदन्त!, सामान्यरूपोऽत एव जातावेकवचनं न व्यक्त्येकत्वे, पृथिवीकाय इति कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—गौतम! सर्वाद्धां, पृथिवीकायसामान्यस्य सर्वदैव भावात्। एवमप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायसूत्राण्यपि भावनीयानि ॥ सम्प्रति विवक्षिते काले जघन्यपदे उत्कृष्टपदे वा कियन्तोऽभिनवा उत्पद्यमानाः पृथिवीकायिकादयः? इत्येतन्निरूपणार्थमाह

—'**पडुप्पन्नपुढविक्काइया णं भंते! केवइकालस्स निल्लेवा सिया**' इत्यादि, प्रत्युत्पन्नपृथिवीकायिकाः—तत्कालमुत्पद्यमानाः पृथिवीकायिका भदन्त! '**केवइकालस्स**' त्ति तृतीयार्थे षष्ठी कियता कालेन निर्लेपाः स्युः ?, प्रतिसमयमेकैकापहारेणापह्रियमाणाः कियता कालेन सर्वे एव निष्ठामुपयान्तीति भावः, भगवानाह—गौतम! जघन्यपदे यदा सर्वस्तोका भवन्ति तदेत्यर्थः, असङ्ख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्प्पिणीभिरुत्कृष्टपदेऽपि यदा सर्वबहवो भवन्ति तदाऽपीति भावः असङ्ख्येयाभिरुत्सार्पिण्यवसार्प्पिणीभिर्नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदिनोऽसङ्ख्येयगुणाः। एवमप्तेजोवायुसूत्राण्यपि भावनीयानि॥ वनस्पतिसूत्रमाह—'**पडुप्पण्णे**'त्यादि, प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिका भदन्त! कियता कालेन निर्लेपाः स्युः?, भगवानाह—गौतम! प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिका जघन्यपदेऽपदा—इयता कालेनापह्रियन्ते इत्येतत्पदविरहिता अनन्तानन्तत्वात्, उत्कृष्टपदेऽप्यपदा, अनन्तानन्ततया निर्लेपनाऽसम्भवात्, तथा चाह—'**पडुप्पन्नवणस्सइकाइयाणं नत्थि निल्लेवणा**' इति सुगमं, नवरमनन्तानन्तत्वादिति हेतुपदं स्वयमभ्यूह्यम्॥ '**पडुप्पण्णतसकाइया ण**'मित्यादि, प्रत्युत्पन्नत्रसकायिका भदन्त! कियता कालेन निर्लेपाः स्युः?, भगवानाह—गौतम! जघन्यपदे सागरोपमशतपृथक्त्वस्य—तृतीयार्थे षष्ठी प्राकृतत्वात् सागरोपमशतपृथक्त्वेन, उत्कृष्टपदेऽपि सागरोपमशतपृथक्त्वेन नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदं विशेषाधिकमवसेयं। इदं च सर्वमुच्यमानं विशुद्धलेश्यसत्त्वमभि प्राप्तं यथाऽवस्थिततया सम्यगवभासते नान्यथेत्यविशुद्धविशुद्धलेश्यविषयं किञ्चिद्विवक्षुराह—

अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहएणं अप्पाणएणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से अण-

गारे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से अणगारे समोहतेणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, नो तिणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहयासमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, नो तिणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से अणगारे समोहतासमोहतेणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, नो तिणट्ठे समट्ठे। विसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, हंता जाणति पासति जहा अविसुद्धलेस्सेणं आलावगा एवं विसुद्धलेस्सेणवि छ आलावगा भाणितव्वा, जाव विसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहतासमोहतेणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, हंता जाणति पासति ॥ (सू०१०३)

'अविसुद्धलेस्से ण'मित्यादि, 'अविसुद्धलेश्यः' कृष्णादिलेश्यो भदन्त! 'अनगारः' न विद्यते अगारं—गृहं यस्यासौ अनगारः—साधुः 'असमवहतः' वेदनादिसमुद्घातरहितः 'समवहतः' वेदनादिसमुद्घाते गतः। एवमिमे द्वे सूत्रे असमवहतसमवहताभ्यामात्मभ्यामविशुद्धलेश्यपरविषये प्रतिपादिते एवं समवहतासमवहताभ्यामात्मभ्यां विशुद्धलेश्यपरविषये द्वे सूत्रे भावयितव्ये। तथाऽन्ये अविसुद्धलेश्यविशुद्धलेश्यपरविषये द्वे सूत्रे समवहतासमवहतेनात्मनेति पदेन, समवहतासमवहतो नाम वेदनादिसमुद्घातक्रियाविष्टो न तु परिपूर्णे समवहतो नाप्यसमवहतः सर्वथा। तदेवमविशुद्धलेश्ये ज्ञातरि साधौ षट् सूत्राणि प्रवृत्तानि, एवमेव विशुद्धलेश्येऽपि

साधौ ज्ञातरि पट् सूत्राणि भावनीयानि, नवरं सर्वत्र जानाति पश्यतीति वक्तव्यं, विशुद्धलेश्याकतया यथाऽवस्थितज्ञानदर्शनभावात्, आह च मूलटीकाकार:—"शोभनमशोभनं वा वस्तु यथावद्विशुद्धलेश्यो जानाती"ति, समुद्घातोऽपि च तस्याप्रतिबन्धक एव, न च तस्य समुद्घातोऽत्यन्ताशोभनो भवति, उक्तं च मूलटीकायाम्—"समुद्घातोऽपि तस्याप्रतिबन्धक एवे"त्यादीति ॥ तदेवं यतोऽविशुद्धलेश्यो न जानाति विशुद्धलेश्यो जानाति ततः सम्यग्मिथ्याक्रिययोरेकदा निषेधमभिधित्सुराह—

अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति एवं भासेन्ति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति—एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेति, तंजहा—सम्मत्ताकिरियं च मिच्छत्ताकिरियं च, जं समयं संमत्तकिरियं पकरेति तं समयं मिच्छत्ताकिरियं पकरेति, जं समयं मिच्छत्ताकिरियं पकरेइ तं समयं संमत्ताकिरियं पकरेइ, समत्ताकिरियापकरणताए मिच्छत्तकिरियं पकरेति मिच्छत्तकिरियापकरणताए संमत्तकिरियं पकरेति, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरितातो पकरेति, तंजहा—संमत्तकिरियं च मिच्छत्ताकिरियं च, से कहमेतं भंते! एवं?, गोयमा! जन्नं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेंति, तहेव जाव सम्मत्तकिरियं च मिच्छत्ताकिरियं च, जे ते एवमाहंसु तं णं मिच्छा, अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेति, तंजहा—सम्मत्ताकिरियं वा मिच्छत्ताकिरियं वा, जं समयं संमत्तकिरियं

पकरेति णो तं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेति, तं चेव जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेति नो तं समयं संमत्तकिरियं पकरेति, संमत्तकिरियापकरणयाए नो मिच्छत्तकिरियं पकरेति मिच्छत्त-किरियापकरणयाए णो संमत्तकिरियं पकरेति, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेति, तंजहा—सम्मत्तकिरियं वा मिच्छत्तकिरियं वा ॥ (सू० १०४)। से तं तिरिक्खजोणिय-उद्देसओ बीओ समत्तो ॥

'**अन्नउत्थिया णं भंते!**' इत्यादि, '**अन्ययूथिकाः**' अन्यतीर्थिका भदन्त! चरकादय एवमाचक्षते सामान्येन '**एवं भाषन्ते**' स्वशिष्यान् श्रवणं प्रत्यभिमुखानवबुध्य विस्तरेण व्यक्तं कथयन्ति, एवं '**प्रज्ञापयन्ति**' प्रकर्षेण ज्ञापयन्ति यथा स्वात्मनि व्यवस्थितं ज्ञानं तथा परेष्वप्यापादयन्तीति, एवं '**प्ररूपयन्ति**' तत्त्वचिन्तायामसंदिग्धमेतदिति निरूपयन्ति, इह खल्वेको जीव एकेन समयेन युगपद्वे क्रिये प्रकरोति, तद्यथा—'**सम्यक्त्वक्रियां च**' सुन्दराध्यवसायात्मिकां '**मिथ्यात्वक्रिया च**' असुन्दराध्यवसायात्मिका, '**जं समय**'-मिति प्राकृतत्वात्सप्तम्यर्थे द्वितीया यस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति '**तं समय**'मिति तस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति, यस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति तस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, अन्योऽन्यसंवलितोभयनियमप्रदर्शनार्थमाह—सम्य-क्त्वक्रियाप्रकरणेन मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति मिथ्यात्वक्रियाप्रकरणेन सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, तदुभयकरणस्वभावस्य तत्तत्क्रियाकरणा-त्सर्वात्मना प्रवृत्तेः, अन्यथा क्रियाऽयोगादिति, '**एवं खल्वि**'त्यादि निगमनं प्रतीतार्थं, '**से कहमेयं भंते!**' इत्यादि, तत् कथमेतद् भदन्त! एवम्?, तदेवं गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवानाह—गौतम! यत् णमिति वाक्यालङ्कारे '**अन्ययूथिकाः**' अन्यतीर्थिका एवमाचक्षते

इत्यादि प्राग्वत् यावत्तत् मिथ्या ते एवमाख्यातवन्तः, अहं पुनर्गौतम! एवमाचक्षे एवं भाषे एवं प्रज्ञापयामि एवं प्ररूपयामि, इह खल्वेको जीव एकेन समयेनैकां क्रियां प्रकरोति, तद्यथा—सम्यक्त्वक्रियां वा मिथ्यात्वक्रियां वा, अत एव यस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति न तस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति यस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति न तस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, परस्परवैविक्त्यनियमप्रदर्शनार्थमाह—सम्यक्त्वक्रियाप्रकरणेन न मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति मिथ्यात्वक्रियाप्रकरणेन न सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, सम्यक्त्वक्रियामिथ्यात्वक्रिययोः परस्परपरिहारावस्थानात्मकतया जीवस्य तदुभयकरणस्वभावत्वायोगात्, अन्यथा सर्वथा मोक्षाभावप्रसक्तेः, कदाचिदपि मिथ्यात्वानिवर्त्तनात् ॥ अस्यां तृतीयप्रतिपत्तौ तिर्यग्योन्यधिकारे द्वितीयोदेशकः समाप्तः ॥

व्याख्यातस्तिर्यग्योनिजाधिकारः, सम्प्रति मनुष्याधिकारव्याख्यावसरः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

से किं तं मणुस्सा?, मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य ॥ (सू० १०५) । से किं तं संमुच्छिममणुस्सा?, २ एगागारा पण्णत्ता ॥ कहि णं भंते! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति?, गोयमा! अंतोमणुस्सखेत्ते जहा पण्णवणाए जाव सेत्तं संमुच्छिममणुस्सा ॥ (सू० १०६)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते मनुष्याः?, सूरिराह—मनुष्या द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—संमूर्च्छिममनुष्याश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याश्च, चशब्दौ द्वयानामपि मनुष्यत्वजातितुल्यतासूचकौ ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते संमूर्च्छिममनुष्याः?, सूरिराह—संमूर्च्छिममनुष्याः 'एकाकाराः' एकस्वरूपाः प्रज्ञप्ताः । अथ क तेषां सम्भवः? इति जिज्ञासिपुर्गौतमः पृच्छति—'**कहि णं भंते!**'

इत्यादि, क भदन्त! संमूर्च्छिममनुष्याः संमूर्च्छेन्ति?, भगवानाह—अन्तर्मनुष्यक्षेत्रे इत्यादि सूत्रं प्राग्वद्भावनीयं यावत् अंतोमुहुत्तद्धा-
उया चेव कालं पकरेंति, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिममणुस्सा' ॥ सम्प्रति गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं गब्भवक्कंतियमणुस्सा?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अं-तरदीवगा ॥ (सू० १०७) से किं तं अंतरदीवगा?, २ अट्ठावीसतिविधा पण्णत्ता, तंजहा—ए-गुरूया आभासिता वेसाणिया णांगोली हयकण्णगा० आयंसमुहा० आसमुहा० आसकण्णा० उक्कामुहा० घणदंता जाव सुद्धदंता ॥ (सू० १०८)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याः?, सूरिराह—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—कर्मभूमका
अकर्म्मभूमका आन्तरद्वीपकाः, तत्र 'अस्त्यनानुपूर्व्यपी'ति न्यायप्रदर्शनार्थमान्तरद्वीपकप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि,
अथ के ते आन्तरद्वीपकाः?, लवणसमुद्रमध्ये अन्तरे अन्तरे द्वीपा अन्तरद्वीपा अन्तरद्वीपेषु भवा आन्तरद्वीपकाः, 'राष्ट्रेभ्यः' इति
वुञ्, सूरिराह—आन्तरद्वीपका अष्टाविंशतिविधाः प्रज्ञप्ताः, तानेव तद्यथेत्यादिना नामग्राहमुपदर्शयति—एकोरुकाः १ आभाषिकाः २
वैपाणिकाः ३ नाङ्गोलिकाः ४ हयकर्णाः ५ गजकर्णाः ६ गोकर्णाः ७ शष्कुलीकर्णाः ८ आदर्शमुखाः ९ मेण्ढमुखाः १० अयोमुखाः ११
गोमुखाः १२ अश्वमुखाः १३ हस्तिमुखाः १४ सिंहमुखाः १५ व्याघ्रमुखाः १६ अश्वकर्णाः १७ सिंहकर्णाः १८ अकर्णाः १९
कर्णप्रावरणाः २० उल्कामुखाः २१ मेघमुखाः २२ विद्युद्दन्ताः २३ विद्युज्जिह्वाः २४ घनदन्ताः २५ लष्टदन्ताः २६ गूढदन्ताः २७

शुद्धदन्ताः २८, इह एकोरुकादिनामानो द्वीपाः परं 'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश' इति न्यायान्मनुष्या अप्येकोरुकादय उक्ता यथा पञ्चाल-देशनिवासिनः पुरुषाः पञ्चाला इति ॥ तथा चैकोरुकमनुष्याणामेकोरुकद्वीपं पिपृच्छिषुराह—

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं एगोरूमणुस्साणं एगोरूदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जबुंदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगुरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते तिन्नि जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं णव एकूणपण्णजोयणसए किंचि विसेसेण परिक्खेवेणं एगाए पउमवरवेदियाए एगेणं च वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। सा णं पउमवरवेदिया अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं एगूरुयदीवं समंता परिक्खेवेणं पण्णत्ता। तीसे णं पउमवरवेदियाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया निम्मा एवं वेतियावण्णओ जहा रायपसेणईए तहा भाणियव्वो ॥(सू०१०९)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! दाक्षिणात्यानां इह एकोरुकादयो मनुष्याः शिखरिण्यपि पर्वते विद्यन्ते ते च मेरोरुत्तरदिग्वर्त्तिन इति तद्व्यवच्छेदार्थं दाक्षिणात्यानामित्युक्तं, एकोरुकमनुष्याणामेकोरुकद्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरपर्वतस्यान्यत्रासम्भवात् अस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे इति प्रतिपत्तव्यं, 'मन्दरपर्वतस्य' मेरोर्दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवद्वर्षधरपर्वतस्य, क्षुल्लग्रहणं महाहिमवद्वर्षधरपर्वतस्य व्यवच्छेदार्थं, पूर्वस्मात् पूर्वरूपाश्चरमान्ताद् उत्तरपूर्वेण—उत्तरपूर्वस्यां दिशि लवण-

समुद्रं त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि दाक्षिणात्यानामेकोरुकमनुष्याणामेकोरुकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, स च त्रीणि योजनशतान्यायामविष्कम्भेण समाहारो द्वन्द्वः आयामेन विष्कम्भेन चेत्यर्थः, नव 'एकोनपञ्चाशानि' एकोनपञ्चाशदधिकानि योजनशतानि ९४९ परिक्षेपेण, परिमाणगणितभावना—"विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ" इति करणवशात्स्वयं कर्त्तव्या सुगमत्वात् ॥

सा णं पउमवरवेतिया एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता । से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं वेतियासमेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, से णं वणसंडे किण्हे किण्होभासे, एवं जहा रायपसेणइयवणसंडवण्णओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं, तणाण य वण्णगंधफासो सद्दो तणाणं वावीओ उप्पायपव्वया पुढविसिलापट्टगा य भाणितव्वा जाव तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंति ॥ (सू० ११०)

'से ण'मित्यादि, स एकोरुकनामा द्वीप एकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनषण्डेन 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन परिक्षिप्तः, तत्र पद्मवरवेदिकावर्णको वनषण्डवर्णकश्च वक्ष्यमाणजम्बूद्वीपजगत्युपरिपद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णकवद् भावनीयः, स च तावद् यावच्चरमं 'आसयंती'ति पदम् ॥

एगोरूयदीवस्स णं दीवस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेति वा, एवं सयणिज्जे भाणितव्वे जाव पुढविसिलापट्टगंसि तत्थ णं बहवे एगुरूयदीवया

मणुस्सा य मणुस्सीओ य आसयंति जाव विहरंति, एगुरूयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे उद्दालका कोद्दालका कतमाला णयमाला णट्टमाला सिंगमाला संखमाला दंतमाला सेलमालगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो जाव बीयमंतो पत्तेहि य पुप्फेहि य अच्छण्णपडिच्छण्णा सिरीए अतीव २ उवसोभेमाणा उवसोहेमाणा चिट्ठंति, एकोरूयदीवे णं दीवे रुक्खा बहवे हेरुयालवणा भेरुयालवणा मेरुयालवणा सेरुयालवणा सालवणा सरलवणा सत्तवण्णवणा पूतफलिवणा खज्जूरिवणा णालिएरिवणा कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति, एगुरूदीवे णं तत्थ २ बहवे तिलया लवया नग्गोधा जाव रायरुक्खा णंदिरुक्खा कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति, एगुरूयदीवे णं तत्थ बहूओ पउमलयाओ जाव सामलयाओ निच्चं कुसुमिताओ एवं लयावण्णओ जहा उववाइए जाव पडिरूवाओ, एकोरूयदीवे णं तत्थ २ बहवे सेरियागुम्मा जाव महाजातिगुम्मा ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमंति विधूयग्गसाहा जेण वायविधूयग्गसाला एगुरूयदीवस्स बहुसमरमणिज्जभूमिभागं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेंति, एकोरूयदीवे णं तत्थ २ बहूओ वणरातीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणरातीतो किण्हातो किण्होभासाओ जाव रम्माओ महामेहणिगुरुंबभूताओ जाव महतीं गंधद्धणिं मुयंतीओ पासादीताओ ४। एगुरूयदीवे तत्थ २ बहवे मत्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणा-

उसो! जहा से चंदप्पभमणिसिलागवरसीधुपवरवारुणिसुजातफलपत्तपुप्फचोयणिज्जा संसारब-हुदव्वजुत्तसंभारकालसंधयासवा महुमेरगरिट्ठाभद्दुद्धजातीपसन्नमेल्लगसताउ खज्जूरमुद्दियासार-काविसायणसुपक्कखोयरसवरसुरावण्णरसगंधफरिसजुत्तबलवीरियपरिणामा मज्जविहित्थबहुप्प-गारा तदेवं ते मत्तंगयावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए मज्जविहीए उववेदा फलेहिं पुण्णा वीसंदंति कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति १। एकोरुए दीवे तत्थ २ बहवो भिंगंगया णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से वारगघडकरगकलसककरि-पायंकंचणिउदंकवद्धणिसुपविट्ठरपारीचसकभिंगारकरोडिसरगथरगपत्तीथालणत्थगववलियअवप-दगवारकविचित्तवट्टकमणिवट्टकसुत्तिचारुपिणयाकंचणमणिरयणभत्तिविचित्ता भायणविधीए ब-हुप्पगारा तहेव ते भिंगंगयावि दुमगणा अणेगबहुगविविहवीससाए परिणताए भाजणविधीए उववेया फलेहिं पुन्नाविव विसट्टंति कुसविकुस० जाव चिट्ठंति २। एगोरुगदीवे णं दीवे तत्थ २ बहवे तुडियंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से आलिंगमुयंगपणवपडहदद्दरग-करडिडिंडिमभंभाहोरंभकण्णियारखरमुहिमुगुंदसंखियपरिलीवव्वगपरिवाइणिवंसावेणुवीणासु-घोसविवंचिमहतिकच्छभिरगसगातलतालकंसतालसुसंपउत्ता आतोज्जविधीणिउणगंधव्वसमय-कुसलेहिं फंदिया तिट्ठाणसुद्धा तहेव ते तुडियंगयावि दुमगणा अणेगबहुविविधवीससापरि-

णामाए ततविततघणसुसिराए चउव्विहाए आतोज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा विसट्टन्ति कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ३। एगोरुयदी० तत्थ २ बहवे दीवसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से संझाविरागसमए नवणिहिपतिणो दीविया चक्कवालविंदे पभूयवट्टिपलित्ताणेहिं धणिउज्जालियतिमिरमद्दए कणगणिगरकुसुमितपालियातयवणप्पगासो कंचणमणिरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाहिं दीवियाहिं सहसा पज्जालिऊसवियणिद्धतेयदिप्पंतविमलगहगणसमप्पहाहिं वितिमिरकरसूरपसरिउल्लोयचिल्लियाहिं जावुज्जलपहसियाभिरामाहिं सोभेमाणा तहेव ते दीवसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणामाए उज्जोयविधीए उववेदा फलेहिं पुण्णा विसट्टंति कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति ४। एगुरूयदीवे तत्थ २ बहवे जोतिसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से अचिरुग्गयसरयसूरमंडलपडंतउक्कासहस्सदिप्पंतविज्जुज्जालहुयवहनिद्धूमजलियनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जकिंसुयासोयजावासुयणकुसुमविमउलियपुंजमणिरयणकिरणजच्चहिंगुलुयणिगररूवाइरेगरूवा तहेव ते जोतिसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए उज्जोयविहीए उववेदा सुहलेस्सा मंदलेस्सा मंदायवलेस्सा कूडाय इव ठाणठिया अन्नमन्नसमोगाढाहिं लेस्साहिं साए पभाए सपदेसे सव्वओ समंता ओभासंति उज्जोवेंति पभासेंति कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति

५। एगुरुयदीवे तत्थ २ बहवे चित्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से पेच्छाघरे विचित्ते रम्मे वरकुसुमदाममालुज्जले भासंतमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए विरल्लिविचित्तमल्लसिरिदाममल्लसिरिसमुदयप्पगब्भे गंथिमवेढिमपूरिमसंघाइमेण मल्लेण छेयसिप्पियं विभारतिएण सव्वतो चेव समणुबद्धे पविरललवंतविप्पइट्ठेहिं पंचवण्णेहिं कुसुमदामेहिं सोभमाणेहिं सोभमाणे वणमालतग्गए चेव दिप्पमाणे तहेव ते चित्तंगयावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए मल्लविहीए उववेया कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति ६। एगुरूयदीवे तत्थ २ बहवे चित्तरसा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से सुगंधवरकलमसालिविसिट्ठणिरुवहतदुद्धरद्धे सारयघयगुडखंडमहुमेलिए अतिरसे परमण्णे होज्ज उत्तमवण्णगंधमंते रण्णो जहा वा चक्कवट्टिस्स होज्ज णिउणेहिं सूतपुरिसेहिं सज्जिएहिं वाउकप्पसेअसित्ते इव ओदणे कलमसालिणिज्जत्तिएवि एक्के सव्वप्फमिउवसयसगसित्थे अणेगसालणगसंजुत्ते अहवा पडिपुण्णदव्वुवक्खडेसु सक्कए वण्णगंधरसफरिसजुत्तबलविरियपरिणामे इंदियबलपुट्ठिवद्धणे खुप्पिवासमहणे पहाणे गुलकढियखंडमच्छंडियउवणीए पमोयगे सण्हसमियगब्भे हवेज्ज परमइट्ठंगसंजुत्ते तहेव ते चित्तरसावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए भोजणविहीए उववेदा कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति ७। एगुरूए दीवे णं तत्थ २ बहवे मणियंगा नाम दुमगणा प-

पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से हारद्धहारवट्टणगमउडकुंडलवासुत्तगहेमजालमणिजालकणगजा-
लगसुत्तगउच्चिइयकडगाखुडियएकावलिकंठसुत्तमंगरिमउरत्थगेवेज्जसोणिसुत्तगचूलामणिकणग-
तिलगफुल्लसिद्धत्थयकण्णवालिससिसूरउसभचक्कगतलभंगतुडियहत्थिमालगवलक्खदीणारमा-
लिता चंदसूरमालिता हरिसयकेयूरवलयपालंबअंगुलेज्जगकंचीमेहलाकलावपयरगपायजालघंटि-
यखिंखिणिरयणोरुजालत्थिगियवरणेउरचलणमालिया कणगणिगरमालिया कंचणमणिरयणभ-
त्तिचित्ता भूसणविधी बहुप्पगारा तहेव ते मणियंगावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिण-
ताए भूसणविहीए उववेया कुसवि० जाव चिट्ठंति ८। एगुरूयए दीवे तत्थ २ बहवे गेहा-
गारा नाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से पागारट्टालगचरियदारगोपुरपासायाकास-
तलमंडवएगसालविसालगतिसालगचउरंसचउसालगब्भघरमोहणघरवलभिघरचित्तसालमालय-
भत्तिघरवट्टतंसचतुरंसणंदियावत्तसंठियायतपंडुरतलमुंडमालहम्मियं अहव णं धवलहरअद्धमा-
गहविब्भमसेलद्धसेलसंठियकूडागारड्ढसुविहिकोट्ठगअणेगघरसरणलेणआवणविडंगजालचंदणि-
ज्जूहअपवरकदोवालिचंदसालियरूवविभत्तिकलिता भवणविही बहुविकप्पा तहेव ते गेहागाराविं
दुमगणा अणेगबहुविविधवीससापरिणयाए सुहारुहणे सुहोत्ताराए सुहनिक्खमणप्पवेसाए दद्द-
रसोपाणपंतिकलिताए पइरिक्काए सुहविहाराए मणोऽणुकूलाए भवणविहीए उववेया कुसवि० जाव

चिट्ठंति ९। एगोरुयदीवे तत्थ २ वहवे अणिगणा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से अणेगसो मंतणुतं कंबलदुगुल्लकोसेज्जकालमिगपट्टचीणंसुयवरणातवारवणिगयतुआभरणचित्तसहिणगकल्लाणगभिंगिणीलकज्जलबहुवण्णरत्तपीतसुक्किलमक्खयमिगलोमहेमप्फरुण्णगअवसरत्तगसिंधुओसभदामिलवंगकलिंगनेलिणतंतुमयभत्तिचित्ता वत्थविही बहुप्पकारा हवेज्ज वरपट्टणुग्गता वण्णरागकलिता तहेव ते अणियणावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणताए वत्थविधीए उववेया कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति १०। एगोरुयदीवे णं भंते! दीवे मणुयाणं केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोयमा! ते णं मणुया अणुवमतरसोमचारुरूवा भोगुत्तमगयलक्खणा भोगसस्सिरीया सुजायसव्वंगसुंदरंगा सुपतिट्ठियकुम्मचारुचलणा रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतला नगनगरसागरमगरचक्कंकवरंकलक्खणंकियचलणा अणुपुव्वसुसाहतंगुलीया उण्णयतणुतंबणिद्धणखा संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा एणीकुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघा समुग्गणिमग्गगूढजाणू गतससणसुजातसण्णिभोरू वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासितगती सुजातवरतुरगगुज्झदेसा आइण्णहतोव णिरुवलेवा पमुइयवरतुरियसीहअतिरेगवट्टियकडी साहयसोणिंदमुसलदप्पणणिगरितवरकणगच्छक(रु)सरिसवरवइरपलितमज्झा उज्जुयसमसहितसुजातजच्चतणुकसिणणिद्धआदेज्जलडहसुकुमालमउयरमणीज्जरोमराती गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुरर-

विकिरणतरुणबोधितअकोसायंतपउमगंभीरवियडणाभी झसविहगसुजातपीणकुच्छी झसोदरा सुइकरणा पम्हवियडणाभा सण्णयपासा संगतपासा सुंदरपासा सुजातपासा मितमाइयपीणरतियपासा अकरुंडुयकणगरुयगनिम्मलसुजायनिरुवहयदेहधारी पसत्थवत्तीसलक्खणधरा कणगसिलातलुज्जलपसत्थसमयलोवचियविच्छिन्नपिहुलवच्छी सिरिवच्छंकियवच्छा पुरवरफलिहवट्टियभुया भुयगीसरविपुलभोगआयाणफलिहउच्छूढदीहबाहू जूयसन्निभपीणरतियपीवरपउट्ठसंठियसुसिलिट्ठविसिट्ठघणथिरसुबद्धसुनिगूढपव्वसंधी रत्ततलोवइतमउयमंसलपसत्थलक्खणसुजायअच्छिद्दजालपाणी पीवरवट्टियसुजायकोमलवरंगुलीया तंबतलिणसुचिरुइरणिद्धणक्खा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा दिसासोअत्थियपाणिलेहा चंदसूरसंखचक्कदिसासोअत्थियपाणिलेहा अणेगवरलक्खणुत्तमपसत्थसुचिरतियपाणिलेहा वरमहिसवराहसीहसद्दूलउसभणागवरपडिपुन्नविउलउन्नतमइंदखंधा चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा अवट्ठितसुविभत्तसुजातचित्तमंसूमंसलसंठियपसत्थसद्दूलविपुलहणुयाओ तवितसिलप्पवालबिंबफलसन्निभाहरोट्ठा पंडुरससिसगलविमलनिम्मलसंखगोखीरफेणदगरयमुणालिया धवलदंतसेढी अखंडदंता अफुडियदंता अविरलदंता सुजातदंता एगदंतसेढिव्व अणेगदंता हुतवहनिद्धंतधोततत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा गरुलाययउज्जुतुंगणासा अवदालियपोंडरीयणयणा कोकासितध-

वलपत्तलच्छा आणामियचावरुइलकिण्हपूराइयसंठियसंगतआयतसुजाततणुकसिणनिद्धभुमया अल्लीणप्पमाणजुत्तसवणा सुस्सवणा पीणमंसलकवोलदेसभागा अचिरुग्गयबालचंदसंठियपसत्थ-विच्छिन्नसमणिडाला उडुवतिपडिपुण्णसोमवदणा छत्तागारुत्तमंगदेसा घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयकूडागारणिभपिंडियसिस्से दाडिमपुप्फपगासतवणिज्जसरिसनिम्मलसुजायकेसंतकेसभूमी सामलिबोंडघणणिचियछोडियमिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणसुगंधसुंदरभुयमोयगभिंगिणीलक-ज्जलपहट्ठभमरगणणिद्धणिकुरुंबनिचियकुंचियचियपदाहिणावत्तमुद्धसिरया लक्खणवंजणगुणोव-वेया सुजायसुविभत्तसुरूवगा पासाइया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, ते णं मणुया हंसस्सरा कोंचस्सरा नंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसा छाया-उज्जोतियंगमंगा वज्जरिसभनारायसंघयणा समचउरंससंठाणसंठिया सिणिद्धछवी णिरायंका उत्तमपसत्थअइसेसनिरुवमतणू जल्लमलकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरा निरुवमलेवा अणुलो-मवाउवेगा कंकग्गहणी कवोतपरिणामा सउणिव्व पोसपिट्ठंतरोरुपरिणता विग्गहियउन्नयकुच्छी पउमुप्पलसरिसगंधणिस्साससुरभिवदणा अट्ठधणुसयं ऊसिया, तेसिं मणुयाणं चउसट्ठि पिट्ठिक-रंडगा पण्णत्ता समणाउसो!, ते णं मणुया पगतिभद्दगा पगतिविणीतगा पगतिउवसंता पग-तिपयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपण्णा अल्लीणा भद्दगा विणीता अप्पिच्छा असंनिहिसं-

घया अचंडा विडिमंतरपरिवसणा जहिच्छियकामगामिणो य ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। तेसि णं भंते! मणुयाणं केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति?, गोयमा! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति, एगोरुयमणुईणं भंते! केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोयमा! ताओ णं मणुईओ सुजायसव्वंगसुंदरीओ पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता अच्चंतविसप्पमाणपउमसूमालकुम्मसंठितविसिट्ठचलणाओ उज्जुमिओ पीवरनिरंतरपुट्ठसाहितंगुलीता उण्णयरतियनलिणंव सुइणिद्धणखा रोमरहियवट्टलट्ठसंठियअजहण्णपसत्थलक्खणअकोप्पजंघजुयला सुणिम्मियसुगूढजाणुमंडलसुबद्धसंधी कयलिक्खंभातिरेगसंठियणिव्वणसुकुमालमउयकोमलअविरलसमसहितसुजातवट्टपीवरणिरंतरोरू अट्ठावयवीचीपट्टसंठियपसत्थविच्छिन्नपिहुलसोणी वदणायामप्पमाणदुगुणितविसालमंसलसुबद्धजहणवरधारणीतो वज्जविराइयपसत्थलक्खणणिरोदरा तिवलिवलीयतणुणमियमज्झिताओ उज्जुयसमसहितजच्चतणुकसिणणिद्धआदेज्जलडहसुविभत्तसुजातकंतसोभंतरुइलरमणिज्जरोमराई गंगावत्तपदाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोधितअकोसायंतपउमवणगंभीरवियडणाभी अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छी सण्णयपासा संगयपासा सुजायपासा मितमातियपीणरइयपासा अकरंडुयकणगरुयगनिम्मलसुजायणिरुवहयगातलट्ठी कंचणकलससमपमाणसमसहितसुजातलट्ठचूचुयआमेलगजमलजुगलवट्टियअब्भुण्णयरतियसंठियपयोधराओ भुयंगणु-

३ प्रतिपत्तौ मनुष्याधि० उद्देशः १ सू० १११

पुव्वतणुयगोपुच्छवट्टसमसहियणमियआएज्जललियवाहाओ तंबणहा मंसलग्गहत्था पीवरको-मलवरंगुलीओ णिद्धपाणिलेहा रविससिसंखचक्कसोत्थियसुविभत्तसुविरतियपाणिलेहा पीणु-ण्णयकक्खवत्थिदेसा पडिपुण्णगलकवोला चउरंगुलसुप्पमाणकंवुवरसरिसगीवा मंसलसंठियपस-त्थहणुया दाडिमपुप्फप्पगासपीवरकुंचियवराधरा सुंदरोत्तरोट्ठा दधिदगरयचंदकुंदवासंतिमउल-अच्छिद्दविमलदसणा रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहा कणय(व)रमुउलअकुडिलअब्भुग्गतउ-ज्जुतुंगणासा सारदणवकमलकुमुदकुवलयविमुक्कदलणिगरसरिसलक्खणअंकियकंतणयणा पत्त-लचवलायंततंबलोयणाओ आणामितचावरुइलकिण्हब्भराइसंठियसंगतआययसुजातकसिण-णिद्धभमुया अल्लीणपमाणजुत्तसवणा पीणमट्ठरमणिज्जगंडलेहा चउरंसपसत्थसमणिडाला कोमु-तिरयणिकरविमलपडिपुन्नसोमवयणा छत्तुन्नयउत्तिमंगा कुडिलसुसिणिद्धदीहसिरया छत्तज्झ-यजुगथूभदामिणिकमंडलुकलसवाविसोत्थियपडागजवमच्छकुम्मरहवरमगरसुकथालअंकुसअ-ट्ठावयवीइसुपइट्ठकमयूरसिरिदामाभिसेयतोरणमेइणिउदधिवरभवणगिरिवरआयंसललियगतउ-सभसीहचमरउत्तमपसत्थवत्तीसलक्खणधरातो हंससरिसगतीतो कोतिलमधुरगिरसुस्सराओ कंता सव्वस्स अणुनतातो ववगतवलिपलिया चंगदुव्वण्णवाहीदोभग्गसोगमुक्काओ उच्चत्तेण य नराण थोवूणमूसियाओ सभावसिंगाराचारचारुवेसा संगतगतहसितभणियचेट्ठियविला-

ससंलावणिउणजुत्तोवयारकुसला सुंदरथणजहणवदणकरचलणणयणमाला वण्णलावण्णजोव-णविलासकलिया नंदणवणविवरचारिणीउव्व अच्छराओ अच्छेरगपेच्छणिज्जा पासाईतातो दरिस-णिज्जातो अभिरूवाओ पडिरूवाओ। तासि णं भंते! मणुईणं केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्प-ज्जति?, गोयमा! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति। ते णं भंते! मणुया किमाहारमाहारेंति?, गोयमा! पुढविपुप्फफलाहारा ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। तीसे णं भंते! पुढवीए केरि-सए आसाए पण्णत्ते?, गोयमा! से जहाणामए गुलेति वा खंडेति वा सक्कराति वा मच्छंडियाति वा भिसकंदेति वा पप्पडमोयएति वा पुप्फउत्तराइ वा पउमुत्तराइ वा अकोसितात‍ि वा विज-ताति वा महाविजयाइ वा आयंसोवसाति वा अणोवसाति वा चाउरक्के गोखीरे चउठाणपरि-णए गुडखंडमच्छंडिउवणीए मंदग्गिकडीए वण्णेणं उववेए जाव फासेणं, भवेतारूवे सिता?, नो इणट्ठे समट्ठे, तीसे णं पुढवीए एत्तो इट्ठयराए चेव जाव मणामतराए चेव आसाए णं पण्णत्ते, तेसि णं भंते! पुप्फफलाणं केरिसए आसाए पण्णत्ते?, गोयमा! से जहानामए चाउरंतचक्कव-ट्टिस्स कल्लाणे पवरभोयणे सतसहस्सनिप्फन्ने वण्णेणं उववेते गंधेणं उववेते रसेणं उववेते फासेणं उववेते आसाइणिज्जे वीसाइणिज्जे दीवणिज्जे बिंहणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे सव्विंदियगातपल्हाय-णिज्जे, भवेतारूवे सिता?, णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं पुप्फफलाणं एत्तो इट्ठतराए चेव जाव आस्साए णं

पण्णत्ते । ते णं भंते! मणुया तमाहारमाहारित्ता कहिं वसहिं उवेंति?, गोयमा! रुक्खगेहालता णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । ते णं भंते! रुक्खा किंसंठिया पण्णत्ता?, गोयमा! कूडागारसंठिता पेच्छाघरसंठिता सत्तागारसंठिया झयसंठिया थूभसंठिया तोरणसंठिया गोपुरचेतियपा(या)लगसंठिया अट्टालगसंठिया पासादसंठिया हम्मतलसंठिया गवक्खसंठिया वालग्गपोत्तियसंठिता वलभीसंठिता अण्णे तत्थ बहवे वरभवणसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिता सुहसीयलच्छाया णं ते दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगोरूयदीवे दीवे गेहाणि वा गेहावणाणि वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, रुक्खगेहालया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगूरूयदीवे २ गामाति वा णगराति वा जाव सन्निवेसाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, जहिच्छितकामगामिणो ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे असीति वा मसीइ वा कसीइ वा पणीति वा वणिज्जाति वा?, नो तिणट्ठे समट्ठे, ववगयअसिमसिकिसिपणियवाणिज्जा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे हिरण्णेति वा सुवन्नेति वा कंसेति वा दूसेति वा मणीति वा मुत्तिएति वा विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालसंतसारसावएज्जेति वा?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाणं तिव्वे ममत्तभावे समुप्पज्जति । अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे रायाति वा जुवरायाति वा ईसरेति

वा तलवरेइ वा माडंबियाति वा कोडुंबियाति वा इब्भाति वा सेट्ठीति वा सेणावतीति वा सत्थवाहाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगयइड्ढीसक्कारा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगूरूयदीवे २ दासाति वा पेसाइ वा सिस्साति वा भयगाति वा भाइल्लगाइ वा कम्मगरपुरिसाति वा?, नो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतआभिओगिता णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे दीवे मायाति वा पियाति वा भायाति वा भइणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाइ वा सुण्हाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं तेसि णं मणुयाणं तिव्वे पेमबंधणे समुप्पज्जति, पयणुपेज्जबंधणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे अरीति वा वेरिएति वा घातकाति वा वहकाति वा पडिणीताति वा पच्चमित्ताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतवेराणुबंधा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरूए दीवे मित्ताति वा वतंसाति वा घडिताति वा सहीति वा सुहियाति वा महाभागाति वा संगतियाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतपेम्मा ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरूयदीवे आवाहाति वा वीवाहाति वा जण्णाति वा सद्धाति वा थालिपाकाति वा चेलोवणतणाति वा सीमंतुण्णयणाइ वा पिति(मत)पिंडनिवेदणाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतआवाहविवाहजण्णसद्धथालिपागचोलोवणतणसीमंतुण्णयणमतपिंडनिवेदणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता सम-

णाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे २ इंदमहाति वा खंदमहाति वा रुद्दमहाति वा सिवमहाति वा वेसमणमहाइ वा मुगुंदमहाति वा णागमहाति वा जक्खमहाति वा भूतमहाति वा कूवमहाति वा तलायणदिमहाति वा दहमहाति वा पव्वयमहाति वा रुक्खरोवणमहाति वा चेइयमहाइ वा थूभमहाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतमहमहिमा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे दीवे णडपेच्छाति वा णट्टपेच्छाति वा मल्लपेच्छाति वा मुट्ठियपेच्छाइ वा विडंबगपेच्छाइ वा कहगपेच्छाति वा पवगपेच्छाति वा अक्खायगपेच्छाति वा लासगपेच्छाति वा लंखपे० मंखपे० तूणइल्लपे० तुंबवीणपे० कावणपे० मागहपे० जल्लपे० ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतकोउहल्ला णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे सगडाति वा रहाति वा जाणाति वा जुग्गाति वा गिल्लीति वा थिल्लीति वा पिपिल्लीइ वा पवहणाणि वा सिवियाति वा संदमाणियाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, पादचारविहारिणो णं ते मणुस्सगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे आसाति वा हत्थीति वा उट्टाति वा गोणाति वा महिसाति वा खराति वा घोडाति वा अजाति वा एलाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति । अत्थि णं भंते! एगूरुयगदीवे दीवे सीहाति वा वग्घाति वा विगाति वा दीवियाइ वा अच्छाति वा परच्छाति वा परस्सराति वा

तरच्छाति वा बिडालाइ वा सुणगाति वा कोलसुणगाति वा कोकंतियाति वा ससगाति वा चित्तलाति वा चिल्ललगाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं ते अण्णमण्णस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आबाहं वा पबाहं वा उप्पायंति वा छविच्छेदं वा करेंति, पगतिभद्दका णं ते सावयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे दीवे सालीति वा वीहीति गोधूमाति वा जवाति वा तिलाति वा इक्खूति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे गत्ताइ वा दरीति वा घंसाति वा भिगूति वा उवाएति वा विसमेति वा विज्जलेति वा धूलीति वा रेणूति वा पंकेइ वा चलणीति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, एगूरुयदीवे णं दीवे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे खाणूति वा कंटएति वा हीरएति वा सक्कराति वा तणकयवराति वा पत्तकयवराइ वा असुतीति वा पूतियाति वा दुब्भिगंधाइ वा अचोक्खाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगयखाणुकंटकहीरसक्करतणकयवरपत्तकयवरअसुतिपूतियदुब्भिगंधमचोक्खपरिवज्जिए णं एगुरुयदीवे पण्णत्ते समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे दीवे दंसाति वा मसगाति वा पिसुयाति वा जूताति वा लिक्खाति वा ढंकुणाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतदंसमसगापिसुतजूतालिक्खढंकुणपरिवज्जिए णं एगुरुयदीवे पण्णत्ते समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे अहीइ वा

अयगराति वा महोरगाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं ते अन्नमन्नस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आयाहं वा पबाहं वा छविच्छेयं वा करेंति, पगइभद्दगा णं ते वालगगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे गहदंडाति वा गहमुसलाति वा गहगज्जितताति वा गहजुद्धाति वा गहसंघाडगाति वा गहअवसव्वाति वा अब्भाति वा अब्भरुक्खाति वा संझाति वा गंधव्वनगराति वा गज्जितताति वा विज्जुताति वा उक्कापातताति वा दिसादाहाति वा णिग्घातताति वा पंसुविट्ठीति वा जुवगाति वा जक्खालित्ताति वा धूमिताति वा महिताति वा रउग्घातताति वा चंदोवरागाति वा सूरोवरागाति वा चंदपरिवेसाइ वा सूरपरिवेसाति वा पडिचंदाति वा पडिसूराति वा इंदधणूति वा उदगमच्छाति वा अमोहाइ वा कविहसियाइ वा पाईणवायाइ वा पडीणवायाइ वा जाव सुद्धवाताति वा गामदाहाति वा नगरदाहाति वा जाव सण्णिवेसदाहाति वा पाणक्खतजणक्खयकुलक्खयधणक्खयवसणभूतमणारिताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे दीवे डिंबाति वा डमराति वा कलहाति वा बोलाति वा खाराति वा वेराति वा विरुद्धरज्जाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतडिंबडमरकलहबोलखारवेरविरुद्धरज्जविवज्जिता णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे दीवे महाजुद्धाति वा महासंगामाति वा महासत्थनिवयणाति वा महापुरिसवाणाति वा महारुधिरवाणाति वा नागवाणाति वा खेण-

घाणाइ वा तामसवाणाइ वा दुब्भूतियाइ वा कुलरोगाति वा गामरोगाति वा णगररोगाति वा मंडलरोगाति वा सिरोवेदणाति वा अच्छिवेदणाति वा कण्णवेदणाति वा णक्कवेदणाइ वा दंतवेदणाइ वा नखवेदणाइ वा कासाति वा सासाति वा जराति वा दाहाति वा कच्छूति वा खसराति-वा कुट्ठाति वा कुडाति वा दगराति वा अरिसाति वा अजीरगाति वा भगंदराइ वा इंदग्गहाति वा खंदग्गहाति वा कुमारग्गहाति वा णागग्गहाति वा जक्खग्गहाति वा भूतग्गहाति वा उव्वेयग्गहाति वा धणुग्गहाति वा एगाहियग्गहाति वा बेयाहियगहिताति वा तेयाहियगहियाइ वा चाउत्थगाहियाति वा हिययसूलाति वा मत्थगसूलाति वा पाससूलाइ वा कुच्छिसूलाइ वा जोणिसूलाइ वा गाममारीति वा जाव सन्निवेसमारीति वा पाणक्खय जाव वसणभूतमणारिताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतरोगायंका णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे दीवे अतियासाति वा मंदवासाति वा सुवुट्ठीइ वा मंदवुट्ठीति वा उद्दवाहाति वा पवाहाति वा दगुब्भेयाइ वा दगुप्पीलाइ वा गामवाहाति वा जाव सन्निवेसवाहाति वा पाणक्खय० जाव वसणभूतमणारिताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतदगोवद्दवा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे दीवे अयागराति वा तम्बागराइ वा सीसागराति वा सुवण्णागराति वा रतणागराति वा वइरागराइ वा वसुहाराति वा हिरण्णवासाति वा सुवण्ण-

वासाति वा रयणवासाति वा वइरवासाति वा आभरणवासाति वा पत्तवासाति वा पुप्फवासाति वा फलवासाति वा बीयवासा० मल्लवासा० गंधवासा० वण्णवासा० चुण्णवासा० खीरवुट्ठीति वा रयणवुट्ठीति वा हिरण्णवुट्ठीति वा सुवण्ण० तहेव जाव चुण्णवुट्ठीति वा सुकालाति वा दुकालाति वा सुभिक्खाति वा दुभिक्खाति वा अप्पग्घाति वा महग्घाति वा कयाइ वा महाविक्कयाइ वा सण्णिहीइ वा सचयाइ वा निधीइ वा निहाणाति वा चिरपोराणाति वा पहीणसामियाति वा पहीणसेउयाइ वा पहीणगोत्तागाराइं वा जाइं इमाइं गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसन्निवेसेसु सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउमुहमहापहपहेसु णगरणिद्धमणसुसाणगिरिकंदरसन्तिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति, नो तिणट्ठे समट्ठे । एगुरुयदीवे णं भंते! दीवे मणुयाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा! जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं असंखेज्जतिभागेण ऊणगं उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं । ते णं भंते! मणुया कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छंति कहिं उववज्जंति ?, गोयमा! ते णं मणुया छम्मासावसेसाउया मिहुणताइं पसवंति अउणासीइं राइंदियाइं मिहुणाइं सारक्खंति संगोविंति य, सारक्खित्ता २ उस्ससित्ता निस्ससित्ता कासित्ता छीतित्ता अक्किट्ठा अव्वहिता अपरियाविया [पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं परियाविय] सुहंसुहेणं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु

देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति, देवलोयपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं आभासियमणुस्साणं आभासियदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जंवूदीवे दीवे चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वतस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं तिन्नि जोयण० सेसं जहा एगुरूयाणं णिरवसेसं सव्वं ॥ कहि णं भंते!! दाहिणिल्लाणं णंगोलिमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! जंवूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसताइं सेसं जहा एगुरुयमणुस्साणं ॥ कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं वेसाणियमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! जंवूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयण० सेसं जहा एगुरुयाणं ॥ (सू० १११)

'एगोरुयदीवस्स णं भंते!' इत्यादि, एकोरुकद्वीपस्य णमिति पूर्ववत् भदन्त! 'कीदृशः' क इव दृश्यः 'आकारभावप्रत्यवतारः' भूम्यादिस्वरूपसम्भवः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! एकोरुकद्वीपे 'वहुसमरमणीयः' प्रभूतसमः सन् रम्यो भूमिभागः प्रज्ञप्तः । 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादिरुत्तरकुरुगमस्तावदनुसर्त्तव्यो यावदनुसञ्जनासूत्रं, नवरमत्र नानात्वमिदं—मनुष्या अष्टौ धनुःशतान्युच्छ्रिता वक्तव्याश्चतुःषष्टिः पृष्ठकरण्डकाः—पृष्ठवंशाः, वृहत्प्रमाणानां हि ते वहवो भवन्ति, एकोनाशीतिं च रात्रिन्दिवानि स्वापत्यान्यनुपालयन्ति, स्थितिस्तेषां जघन्येन देशोनः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, एतदेव व्याचष्टे—पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनः, उत्कर्षतः

परिपूर्णः पल्योपमासङ्ख्येयभागः ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! दाक्षिणात्यानामाभाषिकमनुष्याणामाभाषिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य पूर्वस्माच्चरमान्तात् 'दक्षिणपूर्वेण' दक्षिणपूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे दंष्ट्राया उपरि दाक्षिणात्यानामाभाषिकमनुष्याणामाभाषिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, शेषवक्तव्यता एकोरुकवद्वक्तव्या यावत्स्थितिसूत्रम् ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! दाक्षिणात्यानां नाङ्गोलिकमनुष्याणां नाङ्गोलिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मंदरस्य पर्वतस्य 'दक्षिणेन' दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य पाश्चात्याच्चरमान्ताद् 'दक्षिणपश्चिमेन' दक्षिणपश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे दंष्ट्राया उपरि दाक्षिणात्यानां नाङ्गोलिकमनुष्याणां नाङ्गोलिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, शेषं यथैकोरुकाणां तथा वक्तव्यं यावत्स्थितिसूत्रम् ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! वैशालिकमनुष्याणां वैशालिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'दक्षिणेन' दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य पाश्चात्याच्चरमान्ताद् 'उत्तरपश्चिमेन' उत्तरपश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे दंष्ट्राया उपरि वैशालिकमनुष्याणां वैशालिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, शेषमेकोरुकवद् वक्तव्यं यावत्स्थितिसूत्रम् ॥

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! एगुरूयदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, चत्तारि जोयणसयाइं

आयामविक्खंभेणं बारस जोयणसया पन्नट्ठी किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं, से णं एगाए पउमवरवेतियाए अवसेसं जहा एगुरूयाणं। कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं गजकण्णमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! आभासियदीवस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसताइं सेसं जहा हयकण्णाणं। एवं गोकण्णमणुस्साणं पुच्छा। वेसाणितदीवस्स दाहिणपचत्थिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसताइं सेसं जहा हयकण्णाणं। सक्कुलिकण्णाणं पुच्छा, गोयमा! णंगोलियदीवस्स उत्तरपचत्थिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसताइं सेसं जहा हयकण्णाणं॥ आतंसमुहाणं पुच्छा, हतकण्णयदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो पंच जोयणसताइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं आयंसमुहमणुस्साणं आयंसमुहदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, आसमुहाईणं छ सया, आसकन्नाईणं सत्त, उक्कामुहाईणं अट्ठ, घणदंताइणं जाव नव जोयणसयाइं,—एगूरुयपरिक्खेवो नव चेव सयाइं अउणपन्नाइं। बारसपन्नट्ठाइं हयकण्णाईणं परिक्खेवो ॥१॥ आयंसमुहाईणं पन्नरसेकासीए जोयणसते किंचिविसेसाधिए परिक्खेवेणं, एवं एतेणं कमेणं उवउज्झिऊण णेतव्वा चत्तारि चत्तारि एगपमाणा, णाणत्तं ओगाहे, विक्खंभे परिक्खेवे पढमबीततातियचउक्काणं उग्गहो विक्खंभो परिक्खेवो भणितो, चउत्थचउक्के छजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं अट्ठारसत्ताणउते जोयणसते विक्खंभेणं। पंचम-

चउक्के सत्त जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं बावीसं तेरसोत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं। छट्ठचउक्के अट्ठजोयणसताइं आयामविक्खंभेणं पणुवीसं गुणतीसजोयणसए परिक्खेवेणं । सत्तमचउक्के नव-जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं दो जोयणसहस्साइं अट्ठ पणयाले जोयणसए परिक्खेवेणं। जस्स य जो विक्खंभो उग्गहो तस्स तत्तिओ चेव । पढमाइयाण परिरतो जाण सेसाण अहिओ उ ॥ १ ॥ सेसा जहा एगुरूयदीवस्स जाव सुद्धदंतदीवे देवलोकपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! ॥ कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं एगुरूयमणुस्साणं एगुरूयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसताइं ओगाहित्ता एवं जहा दाहिणिल्लाण तहा उत्तरिल्लाण भाणितव्वं, णवरं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स विदिसासु, एवं जाव सुद्धदंतदीवेत्ति जाव सेत्तं अंतरदीवका ॥ (सू० ११२)। से किं तं अकम्मभूमगमणुस्सा?, २ तीसविधा पण्णत्ता, तंजहा—पंचहिं हेमवएहिं, एवं जहा पण्णवणापदे जाव पंचहिं उत्तरकुरूहिं, सेत्तं अकम्मभूमगा। से किं तं कम्मभूमगा?, २ पण्णरसविधा पण्णत्ता, तंजहा—पंचहिं भरहेहिं पंचहिं एरवएहिं पंचहिं महाविदेहेहिं, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आयरिया मिलेच्छा, एवं जहा पण्णवणापदे जाव सेत्तं आयरिया, सेत्तं गब्भवक्कंतिया, सेत्तं मणुस्सा॥ (सू० ११३)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! हयकर्णमनुष्याणां हयकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! एकोरुकद्वीपस्य पूर्वस्माच्चरमान्ताद् उत्तरपूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं चत्वारि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्तादपि चतुर्योजनशतान्तरे दाक्षिणात्यानां हयकर्णमनुष्याणां हयकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, स च चत्वारि योजनशतान्यायामविष्कम्भेन द्वादश पञ्चषष्ठानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, शेषं यथैकोरुकमनुष्याणां। एवमाभाषिकद्वीपस्य पूर्वस्माच्चरमान्ताद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि चत्वारि योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्ताच्चतुर्योजनशतान्तरे गजकर्णमनुष्याणां गजकर्णो द्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, आयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं हयकर्णद्वीपवत्। नाङ्गोलिकद्वीपस्य पश्चिमाच्चरमान्ताद्दक्षिणपश्चिमेन चत्वारि योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्ताच्चतुर्योजनशतान्तरे गोकर्णमनुष्याणां गोकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, आयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं हयकर्णद्वीपवत्। वैशालिकद्वीपस्य पश्चिमाच्चरमान्ताद् उत्तरपश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रमवगाह्य चत्वारि योजनशतानि अत्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्ताच्चतुर्योजनशतान्तरे दाक्षिणात्यानां शष्कुलीकर्णमनुष्याणां शष्कुलीकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, आयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं हयकर्णद्वीपवत्, पद्मवरवेदिकावनषण्डमनुष्यादिस्वरूपं च समस्तमेकोरुकद्वीपवत्। एवमेतेनाभिलापेनामीषां हयकर्णादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु पञ्च योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य पञ्चयोजनशतायामविष्कम्भा एकाशीत्यधिकपञ्चदशयोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनषण्डमण्डितबाह्यप्रदेशा जम्बूद्वीपवेदिकान्तात्पञ्चयोजनशतप्रमाणान्तरा आदर्शमुखमेण्ढमुखायोमुखगोमुखनामानश्चत्वारो द्वीपा वक्तव्याः, तद्यथा—हयकर्णस्य परत आदर्शमुखो गजकर्णस्य परतो मेण्ढमुखो गोकर्णस्य परतोऽयोमुखः शष्कुलीकर्णस्य परतो गोमुखः।

एतेषामप्यादर्शमुखादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो भूयोऽपि यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं लवणसमुद्रं षट् षड् योजनशतान्यवगाह्य षड्योजनशतायामविष्कम्भाः सप्तनवत्यधिकाष्टादशयोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनषण्डमण्डितपरिसरा जम्बूद्वीपवेदिकान्तात् षड्योजनशतप्रमाणान्तरा अश्वमुखहस्तिमुखसिंहमुखव्याघ्रमुखनामानश्चत्वारो द्वीपा वक्तव्याः, तद्यथा—आदर्शमुखस्य परतोऽश्वमुखः, मेण्ढमुखस्य परतो हस्तिमुखः, अयोमुखस्य परतः सिंहमुखः, गोमुखस्य परतो व्याघ्रमुखः। एतेषामश्वमुखादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं सप्त सप्त योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य सप्तयोजनशतायामविष्कम्भास्त्रयोदशाधिकद्वाविंशतियोजनशतपरिरयाः पद्मवरवेदिकावनषण्डसमवगूढाः जम्बूद्वीपवेदिकान्तात्सप्तयोजनशतप्रमाणान्तरा अश्वकर्णहरिकर्णाकर्णकर्णप्रावरणनामानश्चत्वारो द्वीपा बोध्याः, तद्यथा—अश्वमुखस्य परतोऽश्वकर्णः हस्तिमुखस्य परतो हरिकर्णः सिंहमुखस्य परतोऽकर्णः व्याघ्रमुखस्य परतः कर्णप्रावरणः, तत एतेषामप्यश्वकर्णादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकमष्टौ अष्टौ योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्याष्टयोजनशतायामविष्कम्भा एकोनत्रिंशदधिकपञ्चविंशतियोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनखण्डमण्डितपरिसरा जम्बूद्वीपवेदिकान्तादष्टयोजनशतप्रमाणान्तरा उल्कामुखमेघमुखविद्युन्मुखविद्युद्दन्ताभिधानाश्चत्वारो द्वीपा वक्तव्याः, तद्यथा—अश्वकर्णस्य परत उल्कामुखः हरिकर्णस्य परतो मेघमुखः अकर्णस्य परतो विद्युन्मुखः कर्णप्रावरणस्य परतो विद्युद्दन्तः, एतेषामप्युल्कामुखादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं नव नव योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य नवनवयोजनशतायामविष्कम्भाः पञ्चचत्वारिंशदधिकाष्टाविंशतियोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनखण्डसमवगूढा जम्बूद्वीपवेदिकान्तात् नवयोजनशतप्रमाणान्तरा घनदन्तलष्टदन्तगूढदन्तशुद्धदन्तनामानश्चत्वारो द्वीपाः, तद्यथा—उल्कामुखस्य परतो घनदन्तः मेघमुखस्य परतो लष्टदन्तः विद्युन्मु-

स्तस्य परतो गूढदन्तः विशुद्दन्तस्य परतः शुद्धदन्तः । एतेषामेव द्वीपानामवगाहायामविष्कम्भपरिरयपरिमाणसङ्ग्रहगाथाषट्कमाह—"पढमंमि तिन्नि उ सया सेसाण सउत्तरा नव उ जाव । ओगाहं विक्खंभं दीवाणं परिरयं वोच्छं ॥ १ ॥ पढमचउक्कपरिरया बीयचउक्कस्स परिरओ अहिओ । सोलेहिं तिहि उ जोयणसएहिं एमेव सेसाणं ॥ २ ॥ एगोरुयपरिखेवो नव चेव सयाइं अउणपण्णाइं । बारस पण्णट्ठाइं हयकण्णाणं परिक्खेवो ॥ ३ ॥ पणरस एकासीया आयंसमुहाण परिरओ होइ । अट्ठार सत्तनउया आसमुहाणं परिक्खेवो ॥ ४ ॥ बावीसं तेराइं परिखेवो होइ आसकन्नाणं । पणुवीस अउणतीसा उक्कामुहपरिरओ होइ ॥ ५ ॥ दो चेव सहस्साइं अट्ठेव सया हवंति पणयाला । घणदंतदीवाणं विसेसमहिओ परिक्खेवो ॥ ६ ॥" व्याख्या—प्रथमे द्वीपचतुष्के चिन्त्यमाने त्रीणि योजनशतान्यवगाहनां—लवणसमुद्रावगाहं विष्कम्भं च, विष्कम्भग्रहणादायामोऽपि गृह्यते तुल्यपरिमाणत्वात्, जानीहि इति क्रियाशेषः, शेषाणां द्वीपचतुष्कानां शतोत्तराणि त्रीणि त्रीणि शतानि अवगाहनाविष्कम्भं तावज्जानीयाद् यावन्नव शतानि, तद्यथा—द्वितीयचतुष्के चत्वारि शतानि, तृतीये पञ्च शतानि, चतुर्थे षट् शतानि, पञ्चमे सप्त शतानि, षष्ठेऽष्टौ शतानि, सप्तमे नव शतानि, अत ऊर्द्ध्वं द्वीपानामेकोरुकप्रभृतीनां 'परिरयं' परिरयप्रमाणं वक्ष्ये । प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति—'पढमचउक्के'त्यादि, 'प्रथमचतुष्के परिरयात्' प्रथमद्वीपचतुष्के परिरयपरिमाणात् द्वितीयचतुष्कस्य—द्वितीयद्वीपचतुष्टयस्य परिरयः—परिरयपरिमाणमधिकः षोडशैः षोडशोत्तरैस्त्रिभिर्योजनशतैः, 'एवमेव' अनेनैव प्रकारेण शेषाणां 'द्वीपानां' द्वीपचतुष्कानां परिरयपरिमाणमधिकं पूर्वपूर्वचतुष्कपरिरयपरिमाणादवसातव्यम्, एतदेव चैतेन दर्शयति—'एकोरुये'त्यादि 'एकोरुकपरिक्षेपे' एकोरुकोपलक्षितप्रथमद्वीपचतुष्कपरिक्षेपे नव शतानि एकोनपञ्चाशानि—एकोनपञ्चाशदधिकानि । ततस्त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'हयकण्णाण'मिति वचनात् हयकर्णप्रमुखाणां द्वितीयानां चतुर्णां

द्वीपानां परिक्षेपो भवति, स च द्वादश योजनशतानि पञ्चषष्टानि—पञ्चषष्ट्यधिकानि । तत्रापि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'आयंसमुहाणं'ति आदर्शमुखप्रमुखाणां तृतीयानां चतुर्णां द्वीपानां परिरयपरिमाणं भवति, तच्च पञ्चदश योजनशतान्येकाशीत्यधिकानि । ततो भूयोऽपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'आसमुहाणं'ति अश्वमुखप्रभृतीनां चतुर्थानां चतुर्णां द्वीपानां परिक्षेपः, तद्यथा—अष्टादश योजनशतानि सप्तनवतानि—सप्तनवत्यधिकानि । तेष्वपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'आसकण्णाणं'ति अश्वकर्णप्रमुखाणां पञ्चानां चतुर्णां द्वीपानां परिक्षेपो भवति, तद्यथा—द्वाविंशतियोजनशतानि त्रयोदशानि—त्रयोदशाधिकानि । ततो भूयोऽपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'उल्कामुखपरिरयः' उल्कामुखषष्ठद्वीपचतुष्कपरिरयपरिमाणं भवति, तद्यथा—पञ्चविंशतियोजनशतानि एकोनत्रिंशानि—एकोनत्रिंशदधिकानि । ततः पुनरपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'घनदन्तद्वीपस्य' (पानां) घनदन्तप्रमुखसप्तमद्वीपचतुष्कस्य परिक्षेपः, तद्यथा—द्वे सहस्रे अष्टौ शतानि पञ्चचत्वारिंशानि—पञ्चचत्वारिंशदधिकानि 'विसेसमहिओ' इति किञ्चिद्विशेषाधिकः अधिकृतः परिक्षेपः, पञ्चचत्वारिंशानि किञ्चिद्विशेषाधिकानीति भावार्थः, इदं च पदमन्तेऽभिहितत्वात्सर्वत्राप्यभिसम्बन्धनीयं, तेन सर्वत्रापि किञ्चिद्विशेषाधिकमुक्तरूपं परिरयपरिमाणमवसातव्यं । तदेवमेते हिमवति पर्वते चतसृषु विदिक्षु व्यवस्थिताः सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाविंशतिः, एवं हिमवत्तुल्यवर्णप्रमाणपद्मह्रदप्रमाणायामविष्कम्भावगाहपुण्डरीकह्रदोपशोभिते शिखरिण्यपि पर्वते लवणोदार्णवजलसंस्पर्शादारभ्य यथोक्तप्रमाणान्तराश्चतसृषु विदिक्षु एकोरुकादिनामानोऽक्षूणापान्तरालायामविष्कम्भा अष्टाविंशतिसङ्ख्या द्वीपा वेदितव्याः, तथा चाह—"कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ

लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता तत्थ णं उत्तरिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे नामं दीवे पण्णत्ते" इत्यादि सर्वं तदेव, नवरमुत्तरेण विभाषा कर्त्तव्या, सर्वसङ्ख्यया षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपाः, उपसंहारमाह—'सेत्तमंतरदीवगा'ते एतेऽन्तरद्वीपकाः। अकर्म्मभूमकाः कर्म्मभूमकाश्च यथा प्रज्ञापनायां प्रथमे प्रज्ञापनाख्ये पदे तथैव वक्तव्या यावत् 'सेत्तं चरित्तारिया सेत्तं मणुस्सा' इति पदम्, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यत इति, उपसंहारमाह—'सेत्तं मणुस्सा' त एते मनुष्याः ॥ तदेवमुक्ता मनुष्याः, सम्प्रति देवानभिधित्सुराह—

से किं तं देवा?, देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—भवणवासी वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया (सू० ११४) से किं तं भवणवासी?, २ दसविहा पण्णत्ता, तंजहा—असुरकुमारा जहा पण्णवणापदे देवाणं भेओ तहा भाणितव्वो जाव अणुत्तरोववाइया पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—विजयवेजयंत जाव सव्वट्ठसिद्धगा, सेत्तं अणुत्तरोववातिया ॥ (सू० ११५) कहि णं भंते! भवणवासिदेवाणं भवणा पन्नत्ता?, कहि णं भंते! भवणवासी देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए, एवं जहा पण्णवणाए जाव भवणवासाइता, त(ए)त्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरि भवणावाससयसहस्सा भवंतित्तिमक्खाता, तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति—असुरा नाग सुवन्ना य जहा पण्णवणाए जाव विहरंति ॥ (सू० ११६) कहि णं भंते! असुरकुमाराणं देवाणं भवणा प०?, पुच्छा, एवं जहा पण्णवणाठाणपदे

जाव विहरंति ॥ कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं असुरकुमारदेवाणं भवणा पुच्छा, एवं जहा ठाण-पदे जाव चमरे, तत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसति जाव विहरति ॥ (सू० ११७)

'से किं त' मित्यादि, अथ के ते देवाः ?, सूरिराह—देवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवनवासिनो वानमन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाः, अमीषां च शब्दानां व्युत्पत्तिर्यथा प्रज्ञापनाटीकायां तथा वेदितव्या ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते भवनवासिनः ?, सूरिराह—भवनवासिनो दशविधाः प्रज्ञप्ताः, एवं देवानां प्रज्ञापनागतप्रथमप्रज्ञापनाख्यपद इव तावद्भेदो वक्तव्यो यावत्सर्वार्थदेवा इति ॥ सम्प्रति भवनवासिनां देवानां भवनवसनप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! भवनवासिनां देवानां भवनानि प्रज्ञप्तानि ?, क्व भदन्त! भवनवासिनो देवाः परिवसन्ति ?, भगवानाह—गौतम! 'इमीसे ण'मित्यादि, 'अस्याः' प्रत्यक्षत उपलभ्यमानाया यत्र वयमास्महे रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'अशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यायाः' अशीत्युत्तरम्—अशीतिसहस्राधिकं योजनशतसहस्रं बाहल्यं—पिण्डभावो यस्याः सा तथा, तस्या उपर्येकं योजनसहस्रमवगाह्याधस्तादेकं योजनसहस्रं वर्जयित्वा मध्ये 'अट्टसत्तरे' अष्टसप्ततिसहस्राधिके योजनशतसहस्रे, 'अत्र' एतस्मिन् स्थाने भवनवासिनां देवानां सप्त भवनकोटयो द्विसप्ततिर्भवनावासशतसहस्राणि भवन्तीति आख्यातानि मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, तत्र सप्तकोट्यादिभावनैवं—चतुःषष्टिः शतसहस्राणि भवनानामसुरकुमाराणां चतुरशीतिः शतसहस्राणि नागकुमाराणां द्विसप्ततिः शतसहस्राणि सुवर्णकुमाराणां षण्णवतिः शतसहस्राणि वायुकुमाराणां, द्वीपकुमारादीनां षण्णां प्रत्येकं षट्सप्ततिः शतसहस्राणि भवनानां, ततः सर्वसङ्ख्यया यथोक्तं भवनसङ्ख्यानं भवति । 'ते णं भवणा' इत्यादि, तानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, णमिति वाक्यालङ्कारे भवनानि बहिः 'वृत्तानि' वृत्ताकाराणि अन्तः

समचतुरस्राणि अधस्तलभागेषु पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितानि, **'भवणवण्णओ भाणियव्वो जहा ठाणपदे जाव पडिरूवा'** इति, उक्तप्रकारेण भवनवर्णको भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां द्वितीये स्थानाख्ये पदे, स च तावद् यावत् 'पडिरूवा' इति पदं, स चैवम्—"उक्किण्णंतरविउलगंभीरखायपरिखा पागारट्टालयकवाडतोरणपडिदुवारदेसभागा जंतसयग्घिमुसलमुसंढिपरिवारिया अजोज्झा सयाजया सयागुत्ता अडयालकोट्टरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरअमरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगन्धवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छरगणसंघसंविकिण्णा दिव्वतुडियसद्दसंपणदिया सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा" इति, अस्य व्याख्या—उत्कीर्णमिव उत्कीर्णं अतीव व्यक्तमिति भावः, उत्कीर्णमन्तरं यासां खातपरिखानां ता उत्कीर्णान्तराः किमुक्तं भवति ?—खातानां परिखाणां च स्पष्टवैविक्त्योन्मीलनार्थमपान्तराले महती पाली समस्तीति, खातानि च परिखाश्च खातपरिखाः उत्कीर्णान्तरा विपुला—विस्तीर्णा गम्भीरा—अलब्धमध्यभागाः खातपरिखा येषां भवनानां परितस्तानि उत्कीर्णान्तरविपुलगम्भीरखातपरिखानि, खातपरिखाणां चायं प्रतिविशेषः—परिखा उपरि विशालाऽधः सङ्कुचिता, खातं तूभयत्रापि सममिति, **'पागारट्टालककवाडपडिदुवारदेसभागा'** इति प्रतिभवनं प्राकारेषु अट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वाराणि—अट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वाररूपा देशभागा—देशविशेषा येषु तानि प्राकाराट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वारदेशभागानि, तत्राट्टालकाः—प्राकारस्योपरि भृत्याश्रयविशेषाः कपाटानि—प्रतोलीद्वारसत्कानि, एतेन प्रतोल्यः

सर्वत्र सूचिता अन्यथा कपाटानामसम्भवात्, तोरणानि—प्रतीतानि, तानि च प्रतोलीद्वारेषु, प्रतिद्वाराणि—मूलद्वारापान्तरालवर्तीनि लघुद्वाराणि । तथा 'जंतसयग्घिमुसलमुसंढिपरिवारिया' इति यन्त्राणि—नानाप्रकाराणि शतघ्न्यो—महायष्टयो महाशिला वा याः पातिताः सत्यः पुरुषाणां शतानि

सर्वत्र सूचिता अन्यथा कपाटानामसम्भवात्, तोरणानि—प्रतीतानि, तानि च प्रतोलीद्वारेषु, प्रतिद्वाराणि—मूलद्वारापान्तरालवर्त्तीनि लघुद्वाराणि । तथा 'जंतसयग्घिमुसलमुसंढिपरिवारिया' इति यन्त्राणि—नानाप्रकाराणि शतघ्न्यो—महायष्टयो महाशिला वा याः पातिताः सत्यः पुरुषाणां शतानि घ्नन्ति मुशलानि—प्रतीतानि मुषण्ढयः—शस्त्रविशेषास्तैः परिवारितानि—समन्ततो वेष्टितानि अत एवायोध्यानि—परैर्योद्धुमशक्यानि अयोध्यत्वादेव 'सदाजयानि' सदा—सर्वकालं जयो येषु तानि सदाजयानि सर्वकालं जयवन्तीति भावः, तथा सदा—सर्वकालं गुप्तानि प्रहरणैः पुरुषैश्च योद्धृभिः सर्वतः—समन्ततो निरन्तरं परिवारिततया परेषामसहमानानां मनागपि प्रवेशासम्भवात् 'अडयालकोट्ठरइया' इति अष्टाचत्वारिंशद्भेदभिन्नविच्छित्तिकलिताः कोष्ठका—अपवरका रचिताः स्वयमेव रचनां प्राप्ता येषु तान्यष्टाचत्वारिंशत्कोष्ठकरचितानि, सुखादिदर्शनात्पाक्षिको निष्ठान्तस्य परनिपातः, तथाऽष्टाचत्वारिंशद्भेदभिन्नविच्छित्तयः कृता वनमाला येषु तानि अष्टचत्वारिंशत्कृतवनमालानि, अन्ये त्वभिदधति—अडयालशब्दो देशीवचनात् प्रशंसावाची, ततोऽयमर्थः—'प्रशस्तकोष्ठकरचितानि प्रशस्तकृतवनमालानी'ति तथा 'क्षेमाणि' परकृतोपद्रवरहितानि, 'शिवानि' सदा मङ्गलोपेतानि, तथा किङ्कराः—किङ्करभूता येऽमरास्तैर्दण्डैः कृत्वा उपरक्षितानि—सर्वतः समन्ततो रक्षितानि किङ्करामरदण्डोपरक्षितानि, 'लाउल्लोइयमहिया' इति लाइयं नाम यद्भूमेर्गोमयादिना उपलेपनम् 'उल्लोइयं' कुड्यानां मालस्य सेटिकादिभिः संमृष्टीकरणं लाइयोल्लोइयाभ्यां महितानि—पूजितानि लाइयोल्लोइयमहितानि, तथा गोशीर्षेण—गोशीर्षनामकेन चन्दनेन सरसरक्तचन्दनेन च दर्दरेण—बहलेन चपेटाप्रकारेण वा दत्ताः पञ्चाङ्गुलयस्तला—हस्तका येषु तानि गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितलानि, तथा उपचिता—निवेशिताः चन्दनकलशा—मङ्गल्यकलशा येषु तानि उपचितचन्दनकलशानि, 'चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा'

इति चन्दनघटैः—चन्दनकलशैः सुकृतानि शोभितानीति तात्पर्यार्थः यानि तोरणानि तानि चन्दनघटसुकृतानि तोरणानि प्रतिद्वारदेशभागं—द्वारदेशभागे येषु तानि चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागानि, तथा **'आसत्तोसत्तविपुलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा'** इति आ—अवाङ् अधोभूमौ सक्त—आसक्तो भूमौ लग्न इत्यर्थः ऊर्द्धं सक्त उत्सक्तः उल्लोचतले उपरि संवद्ध इत्यर्थः विपुलो—विस्तीर्णो वृत्तो—वर्त्तुलः **'वग्घारिय'** इति प्रलम्बितो माल्यदामकलापः—पुष्पमालासमूहो येषु तानि आसक्तोत्सक्तविपुलवृत्तप्रलम्बितमाल्यदामकलापानि, तथा पञ्चवर्णेन सुरभिणा—सुरभिगन्धेन मुक्तेन—क्षिप्तेन पुष्पपुञ्जलक्षणेनोपचारेण—पूजया कलितानि पञ्चवर्णसुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितानि, तथा कालागुरुः—प्रसिद्धः प्रवरः—प्रधानः कुन्दुरुष्कः—चीडा तुरुष्कं—सिल्हकं कालागुरुश्च प्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्के च कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्काणि तेषां धूपस्य यो मघमघायमानो गन्ध उद्धूत—इतस्ततो विप्रसृतस्तेनाभिरामाणि—रमणीयानि कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपमघमघायमानगन्धोद्धुताभिरामाणि, तथा शोभनो गन्धो येषां ते सुगन्धाः ते च ते वरगन्धाश्च—वासाः सुगन्धवरगन्धास्तेषां गन्धः स एष्वस्तीति सुगन्धवरगन्धगन्धिकानि **'अतोऽनेकस्वरा'**दितीकप्रत्ययः, अत एव गन्धवर्त्तिभूतानि, सौरभ्यातिशयाद् गन्धद्रव्यगुटिकाकल्पानीति भावः, तथाऽप्सरोगणानां सङ्घः—समुदायस्तेन सम्यग्—रमणीयतया विकीर्णानि—व्याप्तानि अप्सरोगणसङ्घविकीर्णानि, तथा दिव्यानामातोद्यानां—वेणुवीणामृदङ्गानां ये शब्दास्तैः संप्रणदितानि—सम्यक्श्रोत्रमनोहारितया प्रकर्षेण सर्वकालं नदितानि—शब्दवन्ति दिव्यत्रुटितशब्दसंप्रणदितानि सर्वरत्नमयानि—सर्वात्मना सामस्त्येन रत्नमयानि न त्वेकदेशेन सर्वरत्नमयानि—समस्तरत्नमयानि अच्छानि—आकाशस्फटिकवदतिस्वच्छानि श्लक्ष्णानि—श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिष्पन्नानि श्लक्ष्णदलनिष्पन्नपटवत् लण्हानि—मसृणानि घुण्टितपटवत् **'घट्ठा'** इति घृष्टानीव घृष्टानि खरशानया पाषाणप्रतिमावत्, **'मट्ठा'**

इति मृष्टानीव मृष्टानि सुकुमारशानया पाषाणप्रतिमावदेव, अत एव नीरजांसि स्वाभाविकरजोरहितत्वात् **'निर्मलानि'** आगन्तुकमलासम्भवात् **'निष्पङ्कानि'** कलङ्कविकलानि कर्दमरहितानि वा **'निक्कंकडच्छाया'** इति निष्कङ्कटा—निष्कवचा निरावरणा निरुपघातेति भावार्थः छाया—दीप्तिर्येषां तानि निष्कङ्कटच्छायानि **'सप्रभाणि'** स्वरूपतः प्रभावन्ति **'समरीचीनि'** वहिर्विनिर्गतकिरणजालानि **'सोद्द्योतानि'** बहिर्व्यवस्थितवस्तुस्तोमप्रकाशकराणि **'प्रासादीयानि'** प्रसादाय—मनःप्रसत्तये हितानि मनःप्रसत्तिकारीणीति भावः, तथा **'दर्शनीयानि'** दर्शनयोग्यानि यानि पश्यतश्चक्षुषी न श्रमं गच्छत इति भावः, **'अभिरूवा'** इति अभि—सर्वेषां द्रष्टॄणां मनःप्रसादानुकूलतयाऽभिमुखं रूपं येषां तानि अभिरूपाणि—अत्यन्तकमनीयानीत्यर्थः अत एव **'पडिरूवा'** इति प्रतिविशिष्टं रूपं येषां तानि प्रतिरूपाणि, अथवा प्रतिक्षणं नवं नवमिव रूपं येषां तानि प्रतिरूपाणि ॥ तदेवं भवनस्वरूपमुक्तमिदानीं यत्पृष्टं 'क भदन्त! भवनवासिनो देवाः परिवसन्ती'ति तत्रोत्तरमाह—**'तत्थ णं वहवे भवणवासी देवा परिवसंति असुरा नागा भेदो भाणियव्वो जाव विहरंति एवं जा ठाणपदे वत्तव्वया सा भाणियव्वा जाव चमरेणं असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसइ'** इति, 'तत्र' तेष्वनन्तरोदितस्वरूपेषु भवनेषु वहवो भवनवासिनो देवाः परिवसन्ति, तानेव जातिभेदत आह—**'असुरा नागा'** इत्यादि यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठः—"असुरा नाग सुवण्णा विज्जू अग्गी य दीव उदही य दिसिपवणथणियनामा दसहा एए भवणवासी ॥ १ ॥ चूडामणिमउडरयणा १ भूसणनागफण २ गरुल ३ वइर ४ पुण्णकलसअंकउप्फेस ५ सीह ६ हयवर ७ गय ८ मगरंक- ९ वरवद्धमाण १० निजुत्तचित्तचिंधगया सुरूवा महिड्ढीया महज्जुइया महायसा महावला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंभियभुया अंगयकुंडलमट्ठगंडतलकण्णा पीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमालामउली (मउडा) कल्लाणगपवरवत्थप-

रिह्निया कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणवरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पहाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा, ते णं तत्थ साणं २ भवणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं २ अग्गमहिसीणं साणं २ अणीयाणं साणं साणं अणियाहिवईणं साणं २ आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽऽहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति" अस्य व्याख्या—'असुराः' असुरकुमाराः, एवं नागकुमाराः सुवर्णकुमारा विद्युत्कुमारा अग्निकुमारा द्वीपकुमारा उदधिकुमारा दिक्कुमाराः पवनकुमाराः स्तनितकुमाराः, 'दशधा' दशप्रकाराः 'एते' अनन्तरोदिता असुरकुमारादयो भवनवासिनो यथाक्रमं चूडामणिमुकुटरत्नभूषणनियुक्तनागस्फटादिविचित्रचिह्नगताश्च, तथाहि—असुरकुमारा भवनवासिनश्चूडामणिमुकुटरत्नाः, चूडामणिर्नाम मुकुटे रत्नं चिह्नभूतं येषां ते तथा, नागकुमारा भूषणनियुक्तनागस्फटारूपचिह्नधराः, सुवर्णकुमाराः भूषणनियुक्तगरुडरूपचिह्नधराः, विद्युत्कुमाराः भूषणनियुक्तवज्ररूपचिह्नधराः, वज्रं नाम शक्रस्यायुधं, अग्निकुमारा भूषणनियुक्तपूर्णकलशरूपचिह्नधराः, द्वीपकुमारा भूषणनियुक्तसिंहरूपचिह्नधराः, उदधिकुमारा भूषणनियुक्तहयवररूपचिह्नधारिणः, दिक्कुमारा भूषणनियुक्तगजरूपचिह्नधारिणः, वायुकुमारा भूषणनियुक्तमकररूपचिह्नधराः, स्तनितकुमारा भूषणनियुक्तवर्द्धमानकरूपचिह्नधारिणः, भूषणमत्र मुकुटो द्रष्टव्योऽन्यत्र 'मउडवरवद्धमाणनिजुत्तचित्तचिंधगया' इति पाठदर्शनाद्, वर्द्धमानकं—शरावसंपुटं, पुनः सर्वे कथम्भूताः? इत्याह—'सुरूपाः' शोभनं रूपं येषां ते तथा, अत्यन्तकमनीय-

रूपा इत्यर्थः, 'महिड्ढिया महज्जुइया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा' इति प्राग्वत्, 'हारविराइयवच्छा' इति
हारैर्विराजितं वक्षो येषां ते हारविराजितवक्षसः, 'कडगतुडियथंभियभुया' इति कटकानि—कलाचिकाभरणानि त्रुटितानि—बाहुरक्ष-
कास्तैः स्तम्भिताविव स्तम्भितौ भुजौ येषां ते कटकत्रुटितस्तम्भितभुजाः, तथाऽङ्गदानि—बाहुशीर्षाभरणविशेषरूपाणि कुण्डले—कर्णाभ-
रणविशेषरूपे, तथा मृष्टौ—मृष्टीकृतौ गण्डौ—कपोलौ यैस्तानि मृष्टगण्डानि कर्णपीठानि—आभरणविशेषरूपाणि धारयन्तीत्येवंशीला अङ्ग-
दकुण्डलमृष्टगण्डकर्णपीठधारिणः, तथा विचित्राणि— नानारूपाणि हस्ताभरणानि येषां ते विचित्रहस्ताभरणाः, तथा 'विचित्तमाला-
मउलिमउडा' इति, विचित्रा माला—कुसुमस्रग् मौलौ—मस्तके मुकुटं च येषां ते विचित्रमालामौलिमुकुटाः, तथा कल्याणकं—कल्याण-
कारि प्रवरं वस्त्रं परिहितं यैस्ते कल्याणकवस्त्रपरिहिताः, सुखादिदर्शनान्निष्ठान्तस्यात्र पाक्षिकः परनिपातः, तथा कल्याणकं—कल्याण-
कारि यत् प्रवरं माल्यं—पुष्पदाम यच्चानुलेपनं तद्धरन्तीति कल्याणकप्रवरमाल्यानुलेपनधराः, तथा भास्वरा—देदीप्यमाना बोन्दिः—
शरीरं येषां ते भास्वरबोन्दयः, तथा प्रलम्बत इति प्रलम्बा या वनमाला तां धरन्तीति प्रलम्बवनमालाधराः, दिव्येन 'वर्णेन' कृष्णा-
दिना 'दिव्येन गन्धेन' सुरभिणा 'दिव्येन स्पर्शेन' मृदुस्निग्धादिरूपेण दिव्येन शक्तिविशेषमपेक्ष्य संहननेनेव संहननेन न तु सा-
क्षात्संहननेन, देवानां संहननासम्भवात्, संहननं हि अस्थिरचनात्मकं, न च देवानामस्थीनि सन्ति, तथा चोक्तं प्रागेव—"देवा असं-
घयणी तेसिं नेव सिरा" इत्यादि, 'दिव्येन संस्थानेन' समचतुरस्ररूपेण भवधारणीयशरीरस्य, तेषामन्यसंस्थानासम्भवात्, 'दिव्यया
ऋद्ध्या' परिवारादिकया 'दिव्यया द्युत्या' इष्टार्थसंप्रयोगलक्षणया, 'द्यु अभिगमने' इतिवचनात् 'दिव्यया प्रभया' भवनावासग-
तया 'दिव्यया छायया' समुदायशोभया 'दिव्येनार्चिषा' स्वशरीरगतरत्नादितेजोज्वालया 'दिव्येन तेजसा' शरीरप्रभवेन 'दिव्यया

लेश्यया' देहवर्णसुन्दरतया दश दिशः **'उद्द्योतयन्तः'** प्रकाशयन्तः **'पभासेमाणा'** इति शोभयन्तस्ते भवनवासिनो देवा णमिति वाक्यालङ्कारे **'तत्र'** स्वस्थाने **'साणं साणं'**ति स्वेषां स्वेषामात्मीयात्मीयानां भवनावासशतसहस्राणां स्वेषां स्वेषां सामानिकसहस्राणां स्वेषां त्रायस्त्रिंशकानां स्वेषां स्वेषां लोकपालानां स्वासां स्वासाम् **'अग्रमहिषीणा'** पट्टराज्ञीनां स्वेषां स्वेषामनीकानां स्वेषां स्वेषामनीकाधिपतीनां स्वेषां स्वेषामात्मरक्षदेवसहस्राणाम्, अन्येषां च बहूनां स्वस्वभवनावासनगरीवास्तव्यानां भवनवासिनां देवानां देवीनां च **'आहेवच्च'**मित्यादि, अधिपतेः कर्म्म आधिपत्यं रक्षेत्यर्थः, सा च रक्षा सामान्येनापि (आ)रक्षकेणेव क्रियते तत आह—पुरस्य पतिः पुरपतिस्तस्य कर्म्म पौरपत्यं, सर्वेषामात्मीयानामग्रेसरत्वमिति भावः, तच्चाग्रेसरत्वं नायकत्वमन्तरेणापि नायकनियुक्ततथाविधगृहचिन्तकसामान्यपुरुषस्येव भवति ततो नायकत्वप्रतिपत्त्यर्थमाह—**'स्वामित्वं'** स्वमस्यास्तीति स्वामी तद्भावो नायकत्वमित्यर्थः, तदपि च नायकत्वं कथञ्चित्पोषकत्वमन्तरेणापि भवति यथा हरिणयूथाधिपतेर्हरिणस्य, तत आह—**'भर्तृत्वं'** पोषकत्वमत एव महत्तरकत्वं, तदपि महत्तरकत्वं कस्यचिदाज्ञाविकलस्यापि संभवति यथा कस्यचिद्वणिजः स्वदासदासीवर्गं प्रति, तत आह—**'आणाईसरसेणावच्चं'** आज्ञया ईश्वर आज्ञेश्वरः सेनायाः पतिः सेनापतिः आज्ञेश्वरश्चासौ सेनापतिश्च आज्ञेश्वरसेनापतिस्तस्य कर्म्म आज्ञेश्वरसेनापत्यं स्वस्वसैन्यं प्रत्यद्भुतमाज्ञाप्राधान्यमिति भावः कारयन्तोऽन्यैर्नियुक्तकैः पुरुषैः पालयन्तः स्वयमेव, महता रवेणेति योगः, **'आहय'** इति आख्यानकप्रतिबद्धानि यदिवा **'अहतानि'** अव्याहतानि नित्यानुबन्धीनीति भावः ये नाट्यगीते नाट्यं—नृत्यं गीतं—गानं यानि च वादितानि तन्त्रीतलतालत्रुटितानि तन्त्री—वीणा तलौ—हस्ततलौ तालः—कंसिका त्रुटितानि—वादित्राणि, तथा यश्च घनमृदङ्गः पटुना पुरुषेण प्रवादितः, तत्र घनमृदङ्गो नाम घनसमानध्वनिर्यो मृदङ्गः, तत एतेषां द्वन्द्वस्तेषां रवेण **'दिव्यान्'** दिवि भवान् प्रधानानिति भावः, भो-

गार्हा भोगाः—शब्दादयो भोगभोगास्तान् भुञ्जमानाः 'विहरन्ति' आसते ॥ "कहि णं भंते! असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पन्नत्ता?, कहि णं भंते! असुरकुमारा देवा परिवसंति?, एवं जा ठाणपए वत्तव्वया सा भाणियव्वा जाव चमरे एत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसति जाव विहरति" क भदन्त! असुरकुमाराणां देवानां भवनानि प्रज्ञप्तानि?, तथा क भदन्त! असुरकुमारा देवाः परिवसन्ति?, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण या स्थानपदे वक्तव्यता सा भणितव्या यावच्चमरः असुरकुमारेन्द्रः असुरकुमारराजा परिवसति यावद्विहरतीति, सा चैवम्—"गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हिट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं चोसट्ठी भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किन्नंतरविउलगम्भीरखायपरिहा जाव पडिरूवा, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता, एत्थ णं बहवे असुरकुमारा देवा परिवसंति काला लोहियक्खबिंबोट्ठा धवलपुप्फदंता असियकेसा वामेयकुंडलधरा अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता ईसिसिलिंधपुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिया पढमं वयं च समइक्कंता बिइयं च असंपत्ता भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा तलभंगयतुडियवरभूसणनिम्मलमणिरयणमंडियभुया दसमुद्दामंडियग्गहत्था चूडामणिचित्तचिंधगया सुरूवा महिड्डिया महज्जुइया महाजसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंभियभुया जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति, चमरबलिणो य एत्थ दुवे असुरकुमारिंदा असुरकुमाररायाणो परिवसंति काला महानीलसरिसा नीलगुलियगवलपगासा वियसियसयवत्तनिम्मलईसिसियरत्ततंबनयणा गरुलाययउज्जुतुंगनासा उवचियसिलप्पवाल-

बिंबफलसन्निभाधरोट्ठा पंडुरससिसगलविमलनिम्मल (दहिघण) संखगोखीरकुंदधवलमुणालियादंतसेढी हुयवहनिद्धंतधोयततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा अंजणघणमसिणरुयगरमणिज्जनिद्धकेसा वामेयकुंडलधरा जाव पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं जाव भुंजमाणा विहरंति ॥ कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता?, कहि णं भंते! दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा तहेव जाव पडिरूवा, तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति काला लोहियक्खा तहेव भुंजमाणा विहरंति, चमरे य एत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसइ काले महानीलसरिसे जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउण्हं चउसट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरइ" ॥ इति, इदं प्रायः समस्तमपि सुगमं नवरं 'काला लोहियक्ख' इत्यादि, 'कालाः' कृष्णवर्णाः 'लोहियक्खबिंबोट्ठा' लोहिताक्षरत्नवद् बिम्बवच्च—बिम्बीफलवद् ओष्ठौ येषां ते लोहिताक्षबिंबौष्ठाः आरक्तौष्ठा इति भावः, धवलाः पुष्पवत् सामर्थ्यात्कुन्दकलिका इव दन्ता येषां ते धवलपुष्पदन्ताः, असिताः—कृष्णाः केशा येषां ते असितकेशाः, दन्ताः केशाश्चामीषां वैक्रिया द्रष्टव्या न स्वाभाविकाः, वैक्रियशरीरत्वात्, 'वामेयकुण्डलधराः' एककर्णावसक्तकुण्डलधारिणः, तथाऽऽर्द्रेण—सरसेन चन्दनेनानुलिप्तं गात्रं यैस्ते

आर्द्रचन्दनानुलिप्तगात्राः, तथा ईषत्—मनाक् **'शिलिन्ध्रपुष्पप्रकाशानि'** शिलिन्ध्रपुष्पसदृशवर्णानि **'असंक्लिष्टानि'** अत्यन्तसुखजनकतया मनागपि सङ्क्लेशानुत्पादकत्वात् **'सूक्ष्माणि'** मृदुलघुस्पर्शानि अच्छानि चेति भावः वस्त्राणि प्रवरं सुशोभं यथा भवति एवं **परिहिताः**—परिहितवन्तः प्रवरवस्त्रपरिहिताः, तथा वयः प्रथमं—कुमारत्वलक्षणमतिक्रान्तास्तत्पर्यन्तवर्तिन इत्यर्थः, यत आह—द्वितीयं च—मध्यलक्षणं वयोऽसंप्राप्ताः, एतदेव व्यक्तीकरोति—**'भद्रे'** अतिप्रशस्ये यौवने वर्त्तमानाः **'तलभंगयतुडियवरभूसणनिम्मलमणिरयणमंडियभुया'** तलभङ्गका—बाह्वाभरणविशेषाः त्रुटितानि—बाहुरक्षकाः, अन्यानि च यानि वराणि भूषणानि बाह्वाभरणानि तेषु ये निर्म्मला मणयः—चन्द्रकान्ताद्या यानि रत्नानि—इन्द्रनीलादीनि तैर्मण्डितौ भुजौ येषां ते तथा, तथा दशभिर्मुद्राभिर्मण्डितौ अग्रहस्तौ येषां ते (दशमुद्रा) मण्डिताग्रहस्ताः, **'चूडामणिचित्तचिंधगया'** चूडामणिः—चूडामणिनामकं **चित्रम्**—अद्भुतं चिह्नं गतं—स्थितं येषां ते चूडामणिचित्रचिह्नगताः, चमरबलिसामान्यसूत्रे **'कालाः'** कृष्णवर्णाः, एतदेवोपमानतः प्रतिपादयति—**'महानीलसरिसा'** महानीलं यत्किमपि वस्तुजातं लोके प्रसिद्धं तेन सदृशाः, एतदेव व्याचष्टे—**नीलगुटिका**—नील्या गुटिका **गवलं**—माहिषं शृङ्गं तयोरिव **प्रकाशः**—प्रतिभा येषां ते नीलगुटिकागवलप्रकाशाः, तथा विकसितशतपत्रमिव निर्मले ईषद्देशविभागेन सिते रक्ते ताम्रे च नयने येषां ते विकसितशतपत्रनिर्म्मलेषत्सितरक्तताम्रनयनाः, तथा गरुडस्येवायता—दीर्घा ऋज्वी—अकुटिला **तुङ्गा**—उन्नता **नासा**—नासिका येषां ते गरुडायतर्जुतुङ्गनासाः, तथा **ओयवियं**—तेजितं यत् **शिलाप्रवाहं**—विद्रुमं रत्नं यच्च बिम्बफलं तत्सन्निभोऽधरः—ओष्ठो येषां ते तथा, तथा पाण्डुरं न तु सन्ध्याकालभावि आरक्तं **शशिशकलं**—चन्द्रखण्डं, तदपि च कथम्भूतमित्याह—**विमलं**—रजसा रहितं कलङ्कविकलं वा तथा निर्म्मलो यो दधिघनः शङ्खो गोक्षीरं यानि **कुन्दानि**—कुन्दकुसुमानि **दकरजः**—पानीयकणा मृणालिका च तद्वद् धवला दन्तश्रे-

णिर्येषां ते तथा, विमलशब्दस्य विशेष्यात्परनिपातः प्राकृतत्वात्, तथा हुतवहेन—वैश्वानरेण निर्ध्मातं सत् यद् जायते धौतं—निर्म्मलं तप्तम्—उत्तप्तं तपनीयम् आरक्तं सुवर्णं तद्वद्रक्तानि तलानि—हस्तपादतलानि तालुजिह्वे च येषां ते हुतवहनिर्ध्मातधौततप्ततपनीयरक्ततलताल्लुजिह्वाः, तथाऽञ्जनं—सौवीराञ्जनं घनः—प्रावृट्कालभावी मेघस्तद्वत् कृष्णाः रुचकवद्—रुचकरत्नवद् रमणीयाः स्निग्धाश्च केशा येषां ते अञ्जनघनकृष्णरुचकरमणीयस्निग्धकेशाः, शेषं प्राग्वत् ॥ चमरसूत्रे 'तिण्हं परिसाण'मित्युक्तं ततः पर्षद्विशेषपरिज्ञानाय सूत्रमाह—

चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररन्नो कति परिसातो पं० ?, गो० ! तओ परिसातो पं०, तं०—समिता चंडा जाता, अब्भितरिता समिता मज्झे चंडा बाहिं च जाया ॥ चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भितरपरिसाए कति देवसाहस्सीतो पण्णत्ताओ ?, मज्झिमपरिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?, बाहिरियाए परिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स २ अब्भितरपरिसाए चउवीसं देवसाहस्सीतो पण्णत्ताओ, मज्झिमिताए परिसाए अट्ठावीसं देव०, बाहिरिताए परिसाए बत्तीसं देवसा० ॥ चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भितरिताए कति देविसता पण्णत्ता ?, मज्झिमियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?, बाहिरियाए परिसाए कति देविसता पण्णत्ता ?, गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भितरियाए परिसाए अद्धुट्ठा देविसता पं० मज्झिमियाए परिसाए तिन्नि

देवि० बाहिरियाए अड्ढाइज्जा देवि०। चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए० बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? अब्भिंतरियाए परि० देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परि० देवीणं केवतियं० बाहिरियाए परि० देवीणं के०?, गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स २ अब्भिंतरियाए परि० देवाणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पं० मज्झिमाए परिसाए देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए देवाणं दिवड्ढं पलि० अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं दिवड्ढं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता मज्झिमियाए परिसाए देवीणं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता बाहिरियाए परि० देवीणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति?—चमरस्स असुरिंदस्स तओ परिसातो पण्णत्ताओ, तंजहा—समिया चंडा जाया, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाया?, गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भिंतरपरिसा देवा वाहिता हव्वमागच्छंति णो अव्वाहिता, मज्झिमपरिसाए देवा वाहिता हव्वमागच्छंति अव्वाहितावि, बाहिरपरिसा देवा अव्वाहिता हव्वमागच्छंति, अदुत्तरं च णं गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया अन्नयरेसु उच्चावएसु कज्जकोडुंबेसु समुप्पन्नेसु अब्भिंतरियाए परिसाए सद्धिं संमइसंपुच्छणाबहुले विहरइ मज्झिमपरिसाए सद्धिं पयं एवं पवंचेमाणे २

विहरति बाहिरियाए परिसाए सद्धिं पयंडेमाणे २ विहरति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ समिया चंडा जाता, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाता (सू० ११८) ॥

'चमरस्स ण'मित्यादि, चमरस्य भदन्त ! असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य 'कति' कियत्सङ्ख्याकाः पर्षदः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! तिस्रः पर्षदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—समिता चण्डा जाता, तत्राभ्यन्तरिका पर्षत् 'समिता' समिताभिधाना, एवं मध्यमिका चण्डा बाह्या जाता ॥ 'चमरस्स ण'मित्यादि, चमरस्य भदन्त ! असुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि कति देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ?, मध्यमिकायां पर्षदि कति देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ?, बाह्यायां पर्षदि कति देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! चमरस्यासुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि चतुर्विंशतिर्देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, मध्यमिकायामष्टाविंशतिर्देवसहस्राणि, बाह्यायां द्वात्रिंशद्देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ 'चमरस्स णं भंते' ! इत्यादि, चमरस्य भदन्त ! असुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि कति देवीशतानि प्रज्ञप्तानि ? मध्यमिकायां पर्षदि कति देवीशतानि प्रज्ञप्तानि ? बाह्यायां पर्षदि कति देवीशतानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! अभ्यन्तरिकायां पर्षदि अर्द्धतृतीयानि देवीशतानि प्रज्ञप्तानि, मध्यमिकायां पर्षदि त्रीणि देवीशतानि प्रज्ञप्तानि, बाह्यायां पर्षदि अर्द्धचतुर्थानि देवीशतानि प्रज्ञप्तानि ॥ 'चमरस्स णं भंते !' इत्यादि, चमरस्य भदन्त ! असुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? मध्यमिकायां पर्षदि देवानां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, एवं बाह्यपर्षद्विषयमपि प्रश्नसूत्रं वक्तव्यं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, एव मध्यमिकाबाह्यपर्ष-

द्विषये अपि प्रश्नसूत्रे वक्तव्ये, भगवानाह—गौतम! चमरस्यासुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानामर्द्धतृतीयानि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता, मध्यमिकायां पर्षदि देवानां द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता, बाह्यायां पर्षदि देवानां द्व्यर्द्धं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां द्व्यर्द्धपल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता, मध्यमिकायां पर्षदि देवीनां पल्योपमं स्थितिः, प्रज्ञप्ता, बाह्यायां पर्षदि देवीनामर्द्धपल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता, इह भूयान् वाचनाभेद इति यथाऽवस्थितसूत्रे पाठनिर्णयार्थं सुगममपि सूत्रमक्षरसंस्कारमात्रेण विव्रियते। सम्प्रत्यभ्यन्तरिकादिव्यपदेशकारणं पिपृच्छिषुरिदमाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते? चमरस्य असुरकुमारराजस्य तिस्रः पर्षदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा समिता चण्डा जाता, अभ्यन्तरा समिता मध्यमिका चण्डा बाह्या जाता भगवानाह—गौतम! चमरस्यासुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरपर्षत्का देवाः 'वाहिता' आहूताः 'हव्वं' शीघ्रमागच्छन्ति नो 'अव्वाहिता' अनाहूताः, अनेन गौरवमाह, मध्यमपर्षद्वा देवा आहूता अपि शीघ्रमागच्छन्ति अनाहूता अपि, मध्यमप्रतिपत्तिविषयत्वात्, बाह्यपर्षद्वा देवा अनाहूताः शीघ्रमागच्छन्ति, तेषामाकारणलक्षणगौरवानर्हत्वात्, 'अदुत्तरं च ण'मित्यादि, 'अथोत्तरम्' अथान्यद् अभ्यन्तरत्वादिविषये कारणं गौतम! चमरोऽसुरेन्द्रोऽसुरकुमारराजोऽन्यतरेषु 'उच्चावचेषु' शोभनाशोभनेषु 'कज्जकोडुंवेसु' इति कौटुम्बिकेषु कार्येषु कुटुम्बे भवानि कौटुम्बानि स्वराष्ट्रविषयाणीत्यर्थः तेषु कार्येषु समुत्पन्नेषु अभ्यन्तरिकया पर्षदा सार्द्धं संमतिसंप्रश्नबहुलश्चापि विहरति, सन्मत्या—उत्तमया मत्या यः संप्रश्नः—पर्यालोचनं तद्बहुलश्चापि 'विहरति' आस्ते, स्वल्पमपि प्रयोजनं प्रथमतस्तया सह पर्यालोच्य विदधातीति भावः, मध्यमिकया पर्षदा सार्द्धं यदभ्यन्तरिकया पर्षदा सह पर्यालोच्य कर्त्तव्यतया निश्चितं पदं 'तत्प्रपञ्चयन् विहरति' एवमिदमस्माभिः पर्यालोचितमिदं कर्त्तव्यमन्यथा दोष इति विस्तारयन्नास्ते, बाह्यया पर्षदा सह यदभ्यन्तरिकया पर्षदा सह पर्यालोचितं

मध्यमिकया सह गुणदोषप्रपञ्चकथनतो विस्तारितं पदं तत् **'प्रचण्डयन् प्रचण्डयन् विहरंति'** आज्ञाप्रधानः सन्नवश्यं कर्त्तव्यतया निरूपयन् तिष्ठति, यथेदं युष्माभिः कर्त्तव्यमिदं न कर्त्तव्यमिति, तदेवं या एकान्ते गौरवमेव केवलमर्हति यया च सहोत्तममतित्वात्स्वल्पमपि कार्यं प्रथमतः पर्यालोचयति सा गौरवविषये पर्यालोचनायां चात्यन्तमभ्यन्तरा वर्त्तते इत्यभ्यन्तरिका, या तु गौरवार्हा पर्यालोचितं चाभ्यन्तरिकया पर्षदा सह अवश्यकर्त्तव्यतया निश्चितं न तु प्रथमतः सा किल गौरवे पर्यालोचनायां च मध्यमे भागे वर्त्तत इति मध्यमिका, या तु गौरवं न जातुचिदप्यर्हति न च यया सह कार्यं पर्यालोचयति केवलमादेश एव यस्मै दीयते सा गौरवानर्हा पर्यालोचनायाश्च वहिर्भावे वर्त्तत इति बाह्या। तदेवमभ्यन्तरिकादिव्यपदेशनिबन्धनमुक्तं, सम्प्रत्येतदेवोपसंहरन्नाह—**'से एएण(तेण)ट्ठेण'**मित्यादि पाठसिद्धं, यानि तु समिया चंडा जाता इति नामानि तानि कारणान्तरनिबन्धनानि, कारणान्तरं च ग्रन्थान्तरादवसातव्यं, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"चउवीस अट्ठवीसा बत्तीससहस्स देव चमरस्स। अद्धुट्ठा तिन्नि तहा अड्ढाइज्जा य देविसया ॥१॥ अड्ढाइज्जा य दोन्नि य दिवड्ढपलियं कमेण देवठिई। पलियं दिवड्ढमेगं अद्धो देवीण परिसासु ॥ २ ॥"

कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं भवणा पण्णत्ता?, जहा ठाणपदे जाव बली, एत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसति जाव विहरति ॥ बलिस्स णं भंते! वयरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो कति परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिण्णि परिसा, तंजहा—समिया चंडा जाया, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाया। बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए कति देवसहस्सा? मज्झिमियाए परिसाए कति देवसहस्सा

जाव बाहिरियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता?, गोयमा! बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स २ अब्भिंतरियाए परिसाए वीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए चउवीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अट्ठावीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए अद्ध-पंचमा देविसता, मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि देविसया पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अद्धुट्ठा देविसता पण्णत्ता, बलिस्स ठितीए पुच्छा जाव बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स २ अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धुट्ठ-पलिओवमा ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए तिन्नि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, बाहिरि-याए परिसाए देवाणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं दो पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवीणं दिवड्ढं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, सेसं जहा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो ॥ (सू० ११९)

'कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता' इत्यादि, क्व भदन्त! उत्तराणामसुरकुमाराणां भवनानि प्रज्ञप्तानि? इत्येवं यथा प्रज्ञापनायां द्वितीये स्थानाख्ये पदे तथा तावद्वक्तव्यं यावद्बलिः, अत्र वैरोचनेन्द्रो वैरोचनराजः परिवसति, तत ऊर्ध्वमपि तावद्वक्तव्यं यावद्विहरति, तच्चैवम्—“कहि णं भंते! उत्तरिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! जंबु-

दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरे जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं तीसं भवणवाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा सेसं जहा दाहिणिल्लाणं जाव विहरंति, बली य एत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसइ काले महानीलसरिसे जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ तीसाए भवणवाससयसहस्साणं सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हमणियाणं सत्तण्हमणियाहिवईणं चउण्ह य सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरइ" समस्तमिदं प्राग्वत् ॥ सम्प्रति पर्षन्निरूपणार्थमाह—'बलिस्स णं भंते!' इत्यादि प्राग्वत्, नवरमिदमत्र देवदेवीसङ्ख्यास्थितिनानात्वम्—"वीस उ चउवीस अट्ठावीस सहस्साण (होंति) देवाणं। अद्धपणचउद्धुट्ठा देविसय बलिस्स परिसासु ॥ १ ॥ अद्धुट्ठ तिण्णि अड्ढाइज्जाइं (होंति) पलियदेवठिई। अड्ढाइज्जा दोण्णि य दिवड्ढ देवीण ठिइ कमसो ॥ २ ॥"

कहि णं भंते! नागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता?, जहा ठाणपदे जाव दाहिणिल्लावि पुच्छियव्वा जाव धरणे इत्थ नागकुमारिंदे नागकुमारराया परिवसति जाव विहरति॥ धरणस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कति परिसाओ? पं०, गोयमा! तिण्णि परिसाओ, ताओ चेव जहा चमरस्स। धरणस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स णागकुमाररन्नो अब्भितरियाए परिसाए कति देवसहस्सा पन्नत्ता?, जाव बाहिरियाए परिसाए कति देवीसता पण्णत्ता?, गोयमा! धरणस्स णं

णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए सट्ठिं देवसहस्साइं मज्झिमियाए परिसाए सत्तरिं देवसहस्साइं बाहिरियाए असीतिदेवसहस्साइं अब्भितरपरिसाए पण्णत्तरं देविसतं पण्णत्तं मज्झिमियाए परिसाए पण्णासं देविसतं पण्णत्तं बाहिरियाए परिसाए पणवीसं देविसतं पण्णत्तं । धरणस्स णं रन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? अब्भितरियाए परिसाए देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! धरणस्स रण्णो अब्भितरियाए परिसाए देवाणं सातिरेगं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अब्भितरियाए परिसाए देवीणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं सातिरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं चउभागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अट्ठो जहा चमरस्स ॥ कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं जहा ठाणपदे जाव विहरति ॥ भूयाणंदस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो अब्भितरियाए परिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्ण-

त्ताओ?, मज्झिमियाए परिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ?, बाहिरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ? अब्भिंतरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता?, गोयमा! भूयाणंदस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए पन्नासं देवसहस्सा पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए सट्ठिं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए परिसाए सत्तरि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, अब्भिंतरियाए परिसाए दो पणवीसं देविसयाणं पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए दो देवीसया पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए पण्णत्तरं देविसयं पण्णत्तं। भूयाणंदस्स णं भंते! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? जाव बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?, गोयमा! भूताणंदस्स णं अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं देसूणं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं साइरेगं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवीणं साइरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अत्थो जहा चमरस्स, अवसेसाणं वेणु-

देवादीणं महाघोसपज्जवसाणाणं ठाणपदवत्तव्वया णिरवयवा भाणियव्वा, परिसातो जहा धरणभू-ताणंदाणं (सेसाणं भवणवईणं) दाहिणिल्लाणं जहा धरणस्स उत्तरिल्लाणं जहा भूताणंदस्स, परिमाणंपि ठितीवि ॥ (सू० १२०)

'कहि णं भंते! नागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता?' इत्यादि, क भदन्त! नागकुमाराणां देवानां भवनानि प्रज्ञप्तानि?, एवं यथा प्रज्ञापनायां स्थानाख्ये द्वितीयपदे तथा वक्तव्यं यावद् दाक्षिणात्या अपि प्रष्टव्या यावद्धरणोऽत्र नागकुमारेन्द्रो नागकुमार-राजः परिवसति यावद्विहरति, तच्चैवम्—"कहि णं भंते! नागकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयण-सयसहस्से, एत्थ णं नागकुमाराणं देवाणं चुलसी भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं नागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता, तत्थ णं बहवे नागकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढीया महज्जुतिया, सेसं जहा ओहि-याणं जाव विहरंति, धरणभूयाणंदा एत्थ दुवे नागकुमारिंदा नागकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढीया सेसं जहा ओहियाणं जाव वि-हरंति। कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! दाहिणिल्ला नागकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोय-णसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं चोयालीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं

भवणा पन्नत्ता, एत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला 'नागकुमारा परिवसंति महिड्डीया जाव विहरंति, धरणे एत्थ नागकुमारिंदे नागकुमारराया परिवसइ महिड्डीए जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साणं छण्हं सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं छण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउवीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति" पाठसिद्धं ॥ सम्प्रति पर्षन्निरूपणार्थमाह—'**धरणस्स णं भंते!**' इत्यादि, प्राग्वत्, नवरमत्राभ्यन्तरपर्षदि षष्टिर्देवसहस्राणि मध्यमिकायां सप्ततिर्देवसहस्राणि बाह्यायामशीतिर्देवसहस्राणि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि पञ्चसप्ततं देवीशतं, 'मज्झिमियाए परिसाए पण्णासं देविसतं पण्णत्तं' मध्यमिकायां पर्षदि पञ्चाशं देवीशतं बाह्यायां पञ्चविंशं देवीशतं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां स्थितिः सातिरेकमर्द्धपल्योपमं मध्यमिकायामर्द्धपल्योपमं बाह्यायां देशोनमर्द्धपल्योपमं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां स्थितिर्देशोनमर्द्धपल्योपमं मध्यमिकायां सातिरेकं चतुर्भागपल्योपमं बाह्यायां चतुर्भागपल्योपमं, शेषं प्राग्वत् ॥ '**कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं नागकुमाराणं भवणा पण्णत्ता जहा ठाणपदे जाव विहरइ**'त्ति, क भदन्त! उत्तराणां नागकुमाराणां भवनानि प्रज्ञप्तानि? इत्यादि यथा प्रज्ञापनायां स्थानाख्ये पदे तथा वक्तव्यं यावद्विहरतीति पदं, तच्चैवम्—'कहि णं भंते! उत्तरिल्ला नागकुमारा परिवसन्ति?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं नागकुमाराणं चत्तालीसं भवणावाससयसहस्सा हवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा सेसं जहा दाहिणिल्लाणं जाव विहरंति, भूयाणंदे एत्थ नागकुमारिंदे नाग-

कुमारराया परिवसति महिड्ढीए जाव पभासेमाणे, से णं चत्तालीसाए भवणावाससयसहस्साणं सेसं तं चेव जाव विहरइ' इति निगदसिद्धं ॥ पर्षन्निरूपणार्थमाह—'**भूयाणंदस्स ण**'मित्यादि प्राग्वत् नवरमत्राभ्यन्तरिकायां पर्षदि पञ्चाशद्देवसहस्राणि मध्यमिकायां षष्टिर्देवसहस्राणि बाह्यायां सप्ततिर्देवसहस्राणि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि पञ्चविंशे द्वे देवीशते मध्यमिकायां परिपूर्णे द्वे देवीशते बाह्यायां पञ्चसप्ततं देवीशतं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां स्थितिर्देशोनं पल्योपमं मध्यमिकायां सातिरेकमर्द्धपल्योपमं बाह्यायामर्द्धपल्योपमं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां स्थितिरर्द्धपल्योपमं मध्यमिकायां देशोनमर्द्धपल्योपमं बाह्यायां सातिरेकं चतुर्भागपल्योपमं, शेषं प्राग्वत् । '**अवसेसाणं वेणुदेवाईणं महाघोसपज्जवसाणाणं ठाणपयवत्तव्वया भाणियव्वा**' इति, '**अवशेषाणां**' नागकुमारराजव्यतिरिक्तानां वेणुदेवादीनां महाघोषपर्यवसानानां **स्थानाख्यप्रज्ञापनागतद्वितीयपदवक्तव्यता** भणितव्या, सा चैवम्—"कहि णं भंते! सुवन्नकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए-असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं बावत्तरी भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता, तत्थ णं बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढिया सेसं जहा ओहियाणं जाव विहरंति, वेणुदेवे वेणुदाली एत्थ दुवे सुवण्णकुमारिंदा सुवण्णकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढिया जाव विहरंति । कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं भवणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसयसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे

जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं अट्ठत्तीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं भवणा पण्णत्ता, एत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा परिवसंति, वेणुदेवे एत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवण्णकुमारराया परिवसति महिड्डिए जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ अट्ठत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं जाव विहरति ।" पर्षद्वक्तव्यताऽपि धरणवन्निरवशेषा वक्तव्या । 'कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं भवणा पन्नत्ता? कहि णं भंते! उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं देवाणं चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं बहवे उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्डिया जाव विहरंति, वेणुदाली य एत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवण्णकुमारराया परिवसति महिड्डिए जाव पभासे०, (से णं) तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं सेसं जहा नागकुमाराणं।" पर्षद्वक्तव्यताऽपि भूतानन्दवन्निरवशेषा वक्तव्या । यथा सुवर्णकुमाराणां वक्तव्यता भणिता तथा शेषाणामपि वक्तव्या, नवरं भवननानात्वमिन्द्रनानात्वं परिमाणनानात्वं चैताभिर्गाथाभिरनुगन्तव्यम्—"चउसट्ठी असुराणं चुलसीई चेव होइ नागाणं । बावत्तरिं सुवण्णे वाउकुमाराण छन्नउई ॥१॥ दीवदिसाउदहीणं विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं । छण्हंपि जुयलयाणं बावत्तरिमो सयसहस्सा ॥ २ ॥ चोत्तीसा १ चोयाला २ अट्ठत्तीसं ३ च सयसहस्साइं । पण्णा ४ चत्तालीसा १० दाहिणतो होंति भवणाइं ॥ ३ ॥ तीसा १ चत्तालीसा २ चोत्तीसं ३ चेव सयसहस्साइं । छायाला ४ छत्तीसा १० उत्तरतो होंति भवणाइं ॥ ४ ॥ चमरे १ धरणे २ तह वेणुदेव ३ हरिकंत ४ अग्गिसीहे ५ य । पुण्णे ६ जलकंते या अमिए ८ लंबे य ९ घोसे य १० ॥ ५ ॥ बलि १ भूयाणंदे २ वेणुदालि ३ हरिस्सह ४ अग्गिमाणव

५ विसिट्ठे ६ । जलप्पभ अमियवाहण ८ पभंजणे ९ चेव महघोसे १० ॥ ६ ॥ चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं । सामाणिया उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥ ७ ॥" पर्षद्वक्तव्यताऽपि दाक्षिणात्यानां धरणवत्, उत्तराणां भूतानन्दवत्, तथा चाह— "परिसाओ सेसाणं भवणवईणं दाहिणिल्लाणं जहा धरणस्स, उत्तरिल्लाणं जहा भूयाणंदस्से"ति ॥ तदेवं भवन(पति)वक्तव्यतोक्ता, सम्प्रति वानमन्तरवक्तव्यतामभिधित्सुराह—

कहि णं भंते! वाणमंतराणं देवाणं भवणा (भोमेज्जा णगरा) पण्णत्ता?, जहा ठाणपदे जाव विहरंति ॥ कहि णं भंते! पिसायाणं देवाणं भवणा पण्णत्ता?, जहा ठाणपदे जाव विहरंति कालमहाकाला य तत्थ दुवे पिसायकुमाररायाणो परिवसंति जाव विहरंति, कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं पिसायकुमाराणं जाव विहरंति काले य एत्थ पिसायकुमारिंदे पिसायकुमारराया परिवसति महड्ढिए जाव विहरति ॥ कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो कति परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—ईसा तुडिया दढरहा, अब्भिंतरिया ईसा मज्झिमिया तुडिया बाहिरिया दढरहा । कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भिंतरपरिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ? जाव बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता?, गो० कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररायस्स अब्भिंतरियपरिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ मज्झिमपरि-

साए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ वाहिरियपरिसाए वारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ अ-
ब्भितरियाए परिसाए एगं देविसतं पण्णत्तं मज्झिमियाए परिसाए एगं देविसतं पण्णत्तं वाहिरि-
याए परिसाए एगं देविसतं पण्णत्तं। कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो
अब्भितरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवाणं
केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? वाहिरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? जाव
वाहिरियाए देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स
पिसायकुमाररण्णो अब्भितरपरिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए
परि० देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, वाहिरियाए परि० देवाणं सातिरेगं चउब्भागप-
लिओवमं ठिती पण्णत्ता, अब्भंतरपरि० देवीणं सातिरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता,
मज्झिमपरि० देवीणं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, वाहिरपरिसाए देवीणं देसूणं चउ-
ब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमपरिसाए देवीणं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता,
वाहिरपरिसाए देवीणं देसूणं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अट्ठो जो चेव चमरस्स, एवं
उत्तरस्सवि, एवं णिरंतरं जाव गीयजसस्स ॥ (सू० १२१)

'कहि णं भंते! वाणमंतराणं देवाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता?' क भदन्त! वानमन्तराणां देवानां भौमेयानि नगराणि प्रज्ञ-

प्तानि ?, 'जहा ठाणपदे जाव विहरंति' इति, यथा स्थानाख्ये प्रज्ञापनायां द्वितीये पदे तथा वक्तव्यं यावद्विहरन्तीति, तच्चैवं—"गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठावि एगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं वाणमन्तराणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जा नगरावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भोमेज्जा नगरा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया उक्किण्णंतरविउलगंभीरखायपरिहा पागारट्टालयकवाडतोरणपडिदुवारदेसभागा जंतसयग्घिमुसलमुसुंढिपरियरिया अयोज्झा सयाजया सयागुत्ता अडयालकोट्ठरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीससरसरत्तचंदणददरदिन्नपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागुरुपवरकुन्दुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता, तत्थ णं वहवे वाणमंतरा देवा परिवसंति, तंजहा—पिसाया भूया जक्खा रक्खसा किंनरा किंपुरिसा भुयगपतिणो महाकाया गंधव्वगणा य निउणगंधव्वगीयरमणा अणपन्नियपणपन्निय इसिवाइय भूयवाइय कंदिय महाकंदिया य कुहंडपयंगदेवा चंचलचवलचित्तकीलणदवप्पिया गहिरहसियगीयणच्चणरई वणमालामेलमउडकुंडलसच्छंदविउव्वियाभरणचारुभूसणधरा सव्वोउयसुरहिकुसुमरइयपलंबसोहंतकंतवियसंतचित्तवणमालरइयवच्छा कामकामा कामरूवदेहधारी नाणाविहवण्णरागवरवत्थचिल्ललगनियंसणा विविहदेसनेवत्थगहियवेसा पमुइयकंदप्पकलहकेलिकोलाहलप्पिया हासबोलबहुला असिमोग्गरसत्तिहत्था अणेगमणिरयणविविह (निजुत्त) चित्तचिंधगया

सुरूवा महिड्डिया महायसा जाव महासोक्खा हारविराइयवच्छा जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भोमेज्जनगरावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणीयाणं साणं २ अणीयाहिवईणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव भुंजमाणा विहरंति" प्रायः सुगमं, नवरं 'भुयगवइणो महाकाया' इति, महाकाया–महोरगाः, किंविशिष्टाः? इत्याह–भुजगपतयः, 'गन्धर्वगणाः' गन्धर्वसमुदायाः, किंविशिष्टाः? इत्याह—'निपुणगन्धर्वगीतरतयः' निपुणाः–परमकौशलोपेता एवं गन्धर्वा–गन्धर्वजातीया देवास्तेषां यद् गीतं तत्र रतिर्येषां ते तथा, एते व्यन्तराणामष्टौ मूलभेदाः, इमे चान्येऽवान्तरभेदा अष्टौ—'अणपन्निय'इत्यादि, कथम्भूता एते षोडशापीत्यत आह—'चंचलचवलचित्तकीलणदवप्पिया' चञ्चला–अनवस्थितचित्तास्तथा चलचपलम्–अतिशयेन चपलं यच्चित्रं–नानाप्रकारं क्रीडनं यश्च चित्रो–नानाप्रकारो द्रवः–परिहासस्तौ प्रियौ येषां ते चलचपलचित्रक्रीडनद्रवप्रियाः, ततश्चञ्चलशब्देन विशेषणसमासः, तथा 'गहिरहसियगीयनच्चणरई' इति गम्भीरेषु हसितगीतनर्त्तनेषु रतिर्येषां ते तथा, तथा 'वणमालामेडमउलकुंडलसच्छंदविउव्वियाभरणभूसणधरा' इति वनमाला–वनमालामयानि आमेलमुकुटकुण्डलानि, आमेलः–आपीडशब्दस्य प्राकृतलक्षणवशाद् आपीडः–शेखरकः, "तथा स्वच्छन्दं विकुर्वितानि यानि आभरणानि तैश्चारु भूषणं–मण्डनं तद्धरन्तीति वनमालाऽऽपीडमुकुटकुण्डलस्वच्छन्दविकुर्विताभरणचारुभूषणधराः, लिङ्गादित्वादत्, तथा सर्वर्त्तुकैः–सर्वर्त्तुभाविभिः सुरभिकुसुमैः सुरचिताः–शोभनं निर्वर्त्तिताः तथा प्रलम्बत इति प्रलम्बा शोभत इति शोभमाना कान्ता–कमनीया विकसन्ती–अमुकुलिता अम्लानपुष्पमयी चित्रा–नानाप्रकारा वनमाला रचिता वक्षसि यैस्ते सर्वर्त्तुकसुरभिकुसुमरचितप्रलम्बशोभमानकान्तविकसच्चित्रवनमालारचितवक्षसः, तथा कामं

—स्वेच्छया गमो येषां ते कामगमाः—स्वेच्छाचारिणः, क्वचित् **'कामकामाः'** इति पाठः, कामेन—स्वेच्छया कामो—मैथुनसेवा येषां ते कामकामा अनियतकामा इत्यर्थः, तथा कामं—स्वेच्छया रूपं येषां ते कामरूपास्ते च ते देहाश्च कामरूपदेहास्तान् धरन्तीत्येवंशीलाः कामरूपदेहधारिणः, स्वेच्छाविकुर्वितनानारूपदेहधारिण इत्यर्थः, तथा नानाविधैर्वर्णै रागो—रक्तता येषां तानि नानाविधवर्णरागाणि वराणि—प्रधानानि चित्राणि—नानाविधानि अद्भुतानि वा (वस्त्राणि) चेल्ललकानि—देशीवचनाद् देदीप्यमानानि निर्यसणं—परिधानं येषां ते नानाविधवर्णरागवरवस्त्रचेल्ललकनिवसनाः तथा विविधैर्देशनेपथ्यैर्गृहीतो वेषो यैस्ते विविधदेशनेपथ्यगृहीतवेषाः, **'पमुइयकंदप्पक-लहकेलिकोलाहलप्पिया'** कन्दर्पः—कामोद्दीपनं वचनं चेष्टा च कलहो—राटिः केलिः—क्रीडा कोलाहलो—बोलः कन्दर्प्पकलहकेलिको-लाहलाः प्रिया येषां ते कन्दर्प्पकलहकेलिकोलाहलप्रियाः, ततः प्रमुदितशब्देन सह विशेषणसमासः, **'हासबोलबहुला'** इति हास-बोलौ बहुलौ—अतिप्रभूतौ येषां ते हासबोलबहुलाः, तथाऽसिमुद्गरशक्तिकुन्ता हस्ते येषां ते असिमुद्गरशक्तिकुन्तहस्ताः, **'प्रहरणात् सप्तमी** चे'ति सप्तम्यन्तस्य पाक्षिकः परनिपातः, **'अणेगमणिरयणविविहनिजुत्तचित्तचिंधगया'** इति, मणयः—चन्द्रकान्ताद्या रत्नानि—कर्केतनादीनि अनेकैर्मणिरत्नैर्विविधं—नानाप्रकारं नियुक्तानि विचित्राणि—नानाप्रकाराणि चिह्नानि गतानि—स्थितानि येषां ते तथा, शेषं प्राग्वत् ॥ **'कहि णं भंते! पिसायाणं देवाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता?'** क्व भदन्त! पिशाचानां देवानां भौमेयानि नगराणि प्रज्ञप्तानि? इत्यादि, **'जहा ठाणपदे जाव विहरंति'** यथा प्रज्ञापनायां स्थानाख्ये पदे तथा वक्तव्यं यावद्विहरन्तीति पदं, तच्चैवं—"कहि णं भंते! पिसाया देवा परिवसंति? गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जन-

गरावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भोमेज्जनगरा वाहिं वट्टा जो ओहिओ भोमेज्जनगरवण्णतो सो भाणियव्वो जाव पडिरूवा, एत्थ णं पिसायाणं भोमेज्जनगरा पण्णत्ता, तत्थ णं वहवे पिसाया देवा परिवसंति महिड्डिया जहा ओहिया जाव विहरंति" सुगमं, "कालमहाकाला य एत्थ दुवे पिसाइंदा पिसायरायाणो परिवसंति महिड्डिया जाव विहरंति, कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं पिसायाणं भोमेज्जा नगरा० वाहिं वट्टा जो ओहिओ भोमेज्जनगरवण्णतो सो भाणियव्वो जाव पडिरूवा, एत्थ णं पिसायाणं भोमेज्जनगरा पण्णत्ता। कहि णं भंते! दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सवाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठावि एगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता, तत्थ णं वहवे दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति महिड्डिया जाव विहरंति, काले य तत्थ पिसाइंदे पिसायराया परिवसति महिड्डिए जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ तिरियमसंखेज्जाणं भोमेज्जनगरावाससयसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च वहूणं दाहिणिल्लाणं वाणमन्तराणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरति" पाठसिद्धं ॥ सम्प्रति पर्षन्निरूपणार्थमाह—'कालस्स णं भंते! पिसायइंदस्स पिसायरन्नो कति परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—ईसा तुडिया दढरहा अब्भितरिया ईसा' इत्यादि सर्वं प्राग्वत्, नवरमत्राभ्यन्तरिकायामष्टौ देवसहस्राणि मध्यमिकायां दश देवसहस्राणि वाह्यायां द्वादश देवसहस्राणि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि एकं देवीशतं मध्यमिकायामप्येकं देवीशतं वाह्यायामप्येकं देवीशतं, अभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां स्थितिरर्द्धपल्योपमं मध्यमिकायां देशोनमर्द्ध-

पल्योपमं वाह्यायां सातिरेकचतुर्भागपल्योपमं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां सातिरेकं चतुर्भागपल्योपमं मध्यमिकायां चतुर्भागपल्योपमं वाह्यायां देशोनं चतुर्भागपल्योपमं, शेषं प्राग्वत् । "कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं पिसायाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता ?, कहि णं भंते! उत्तरिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे जहेव दाहिणिल्लाणं वत्तव्वया तहेव उत्तरिल्लाणंपि, नवरं मन्दरस्स उत्तरेणं, महाकाले इत्थ पिसाइंदे पिसायराया परिवसति जाव विहरति" पाठसिद्धं, पर्षद्वक्तव्यताऽपि कालवत्, "एवं जहा पिसायाणं तहा भूयाणवि जाव गंधव्वाणं नवरं इंदेसु नाणत्तं भाणियव्वं, इमेण विहिणा—भूयाणं सुरूवपडिरूवा, जक्खाणं पुण्णभद्दमाणिभद्दा, रक्खसाणं भीममहाभीमा, किंनराणं किंनरकिंपुरिसा, किंपुरिसाणं सप्पुरिसमहापुरिसा, महोरगाणं अइकायमहाकाया, गंधव्वाणं गीयरईगीयजसा—'काले य महाकाले सुरूवपडिरूवपुण्णभद्दे य । अमरवइमाणिभद्दे भीमे य तहा महाभीमे ॥ १ ॥ किंनरकिंपुरिसे खलु सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे । अइकायमहाकाए गीयरई चेव गीयजसे ॥ २ ॥" सुगमम्, पर्षद्वक्तव्यताऽपि कालवन्निरन्तरं वक्तव्या यावद्गीतयशसः ॥ तदेवमुक्ता वानमन्तरवक्तव्यता सम्प्रति ज्योतिष्काणामाह—

कहि णं भंते! जोइसियाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! जोतिसिया देवा परिवसंति?, गोयमा! उप्पिं दीवसमुद्दाणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो सत्तणउए जोयणसते उड्ढं उप्पतित्ता दसुत्तरसया जोयणबाहल्लेणं, तत्थ णं जोइसियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा जोतिसियविमाणावाससतसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं विमाणा अद्धकविट्ठकसंठाणसंठिया एवं जहा ठाणपदे जाव चंदमसूरिया य तत्थ णं जोतिसिंदा जोतिसरायाणो

परिवसंति महिड्डिया जाव विहरंति ॥ सूरस्स णं भंते! जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो कति परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—तुंबा तुडिया पेचा, अब्भिंतरया तुंबा मज्झिमिया तुडिया बाहिरिया पेचा, सेसं जहा कालस्स परिमाणं, ठितीवि। अट्ठो जहा चमरस्स। चंदस्सवि एवं चेव ॥ (सू० १२२)

'कहि णं भंते! जोइसियाण'मित्यादि, क भदन्त! ज्योतिष्काणां देवानां विमानानि प्रज्ञप्तानि? क भदन्त! ज्योतिष्का देवाः परिवसन्ति?, भगवानाह—गौतम! अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयाद् भूमिभागाद् रुचकोपलक्षितात् 'सप्तनवतिशतानि' सप्तनवत्यधिकानि योजनशतान्यूर्ध्वमुत्प्लुत्य—बुद्ध्याऽतिक्रम्य दशोत्तरयोजनशतबाहल्ये तिर्यगसङ्ख्येयेऽसङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणे ज्योतिर्विषये 'अत्र' एतस्मिन् प्रदेशे ज्योतिष्काणां देवानां तिर्यगसङ्ख्येयानि ज्योतिष्कविमानशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, तानि च विमानान्यर्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितानि, अत्राक्षेपपरिहारौ चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां सूर्यप्रज्ञप्तिटीकायां सङ्ग्रहणिटीकायां चाभिहिताविति ततोऽवधार्यौ, 'सव्वफालियामया' सर्वात्मना स्फटिकमयानि सर्वस्फटिकमयानि 'जहा ठाणपदे जाव चंदमसूरिया एत्थ दुवे जोइसिंदा जोइसरायाणो परिवसंति महिड्डिया जाव विहरंति' यथा प्रज्ञापनायां स्थानाख्ये द्वितीये पदे तथा वक्तव्यं यावच्चन्द्रसूर्यौ, द्वावत्र ज्योतिष्केन्द्रौ ज्योतिष्कराजानौ परिवसतस्ततोऽप्यूर्द्धं यावद्विहरन्तीति, एतच्चैवं—"अब्भुग्गयमूसियपहसिया इव विविहमणिकणगरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागछत्तातिछत्तकलिया तुंगा गगणतलमभिलंघमाणसिहरा जालंतररयणा पंजरुम्मिल्लियव्व मणिकणगथूभियागा वियसियसयवत्तपोंडरीया तिलगरयणद्धचंदचित्ता नाणामणिमयदामालंकिया अंतो बहिं च

सण्हा तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडा सुहफासा सस्सिरीया सुरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं जोइसियाणं विमाणा पण्णत्ता, एत्थ णं जोइसिया देवा परिवसंति, तंजहा—बिहस्सती चंदसूरा सुक्कसणिच्छरा राहू धूमकेउबुहा अंगारका तत्ततवणिज्जकणगवण्णा जया तहा जोइसंमि चारं चरंति केऊ य गइरतीया अट्ठावीसइविहा य नक्खत्तदेवगणा नाणासंठाणसंठिया य पंचवण्णा य तारगाओ ठियलेसाचारिणो अविस्साममंडलगई पत्तेयनामंकपायडियचिंधमउडा महिड्ढिया जाव पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाहिवईणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति, चंदिमसूरिया य एत्थ दुवे जोइसिंदा जोइसियरायाणो परिवसंति महिड्ढिया जाव पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं जोइसियविमाणावाससयसहस्साणं चउण्हं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति" इति, अभ्युद्गता—आभिमुख्येन सर्वतो गता उत्सृता—प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता या प्रभा—दीप्तिस्तया सितानि—धवलानि अभ्युद्गतोत्सृतप्रभासितानि, तथा विविधानां मणिकनकरत्नानां या भक्तयो—विच्छित्तिविशेषास्ताभिश्चित्राणि—आश्चर्यभूतानि विविधमणिकनकभक्तिचित्राणि, 'वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागच्छत्तातिच्छत्तकलिया' वातोद्धूता—वायुकम्पिता विजयः—अभ्युदयस्तत्संसूचिका वैजयन्त्यभिधाना याः पताकाः, अथवा विजय इति वैजयन्तीनां पार्श्वकर्णिका उच्यन्ते तत्प्रधाना वैजयन्त्यो विजयवैजयन्त्यः—पताकास्ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः छत्रातिच्छत्राणि—उपर्युपरि स्थितानि छत्राणि तैः कलितानि वातोद्धूतविजयवैजयन्ती-

पताकाछत्रातिच्छत्रकलितानि 'तुङ्गानि' उच्चानि, तथा **गगनतलम्**—अम्बरतलम**नुलिखन्**—अभिलङ्घयन् शिखरं येषां तानि गगनतलानुलिखच्छिखराणि, तथा **जालानि**—जालकानि तानि च भवनभित्तिषु लोकप्रतीतानि, तदन्तरेषु विशिष्टशोभानिमित्तं रत्नानि यत्र तानि जालान्तररत्नानि, तथा पञ्जराद् उन्मीलितवद् यथा हि किल किमपि वस्तु **पञ्जराद्**—वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद् बहिष्कृतमत्यन्तमनष्टच्छायत्वात् शोभते तथा तान्यपि विमानानीति भावः, तथा मणिकनकानां सम्बन्धिनी **स्तूपिका**—शिखरं येषां तानि मणिकनकस्तूपिकानि, ततः पूर्वपदाभ्यां सह विशेषणसमासः, तथा विकसितानि यानि शतपत्राणि पुण्डरीकाणि च द्वारादिषु प्रतिकृतित्वेन स्थितानि **तिलकाश्च**—भित्त्यादिषु पुण्ड्राणि रत्नमयाश्चार्द्धचन्द्रा द्वारादिषु तैश्चित्राणि विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकरत्नार्द्धचन्द्रचित्राणि, तथा नानामणिमयीभिर्दामभिरलङ्कृतानि नानामणिमयदामालङ्कृतानि, तथाऽन्तर्वहिश्च **श्लक्ष्णानि**—मसृणानि, तथा **तपनीयं**—सुवर्णविशेषस्तन्मय्या रुचिराया **वालुकायाः**—सिकतायाः **प्रस्तटः**—प्रतरो येषु तानि तपनीयरुचिरवालुकाप्रस्तटानि, तथा सुखस्पर्शानि शुभस्पर्शानि वा शेषं प्राग्वद् यावद् **'बहस्सइचंदा'** इत्यादि, बृहस्पतिचन्द्रसूर्यशुक्रशनैश्चरराहुधूमकेतुबुधाङ्गारकाः **तप्ततपनीयकनकवर्णाः**—ईषत्कनकवर्णाः, तथा ये ग्रहा **ज्योतिष्के**—ज्योतिश्चक्रे चारं चरन्ति केतवः ये च वाह्यद्वीपसमुद्रेष्वगतिरतिकाः ये चाष्टाविंशतिविधा नक्षत्रदेवगणास्ते सर्वेऽपि नानाविधसंस्थानसंस्थिताः चशब्दात्तप्ततपनीयकनकवर्णाश्च, तारकाः पञ्चवर्णाः, एते च सर्वेऽपि **स्थितलेश्या**—अवस्थिततेजोलेश्याकाः, तथा ये चारिणः—चाररतास्तेऽविश्राममण्डलगतिकाः, तथा सर्वेऽपि प्रत्येकं **नामाङ्केन**—स्वस्वनामाङ्कपातेन प्रकटितं चिह्नं मुकुटो येषां ते प्रत्येकं स्वनामाङ्कप्रकटितमुकुटचिह्नाः, किमुक्तं भवति ?—चन्द्रस्य स्वमुकुटे चन्द्रमण्डलं लाञ्छनं स्वनामाङ्कप्रकटितं सूर्यस्य सूर्यमण्डलं ग्रहस्य ग्रहमण्डलं नक्षत्रस्य नक्षत्रमण्डलं तारकस्य तारकाकारमिति, शेषं प्राग्वत् ॥ पर्षन्निरूपणार्थमाह

—'सूरस्स णं भंते! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिन्नि परिसाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—तुंबा तुडिया पेचा, अब्भितरिया तंबा मज्झिमिया तुडिया वाहिरिया पेचा, सेसं जहा कालस्स, अट्ठो जहा चमरस्स, चन्दस्सवि एवं चेव' पाठसिद्धं ज्योतिष्कास्तिर्यग्लोक इति तिर्यग्लोकप्रस्तावाद्वीपसमुद्रवक्तव्यतामाह—

कहि णं भंते! दीवसमुद्दा? केवइया णं भंते! दीवसमुद्दा? केमहालया णं भंते! दीवसमुद्दा? किंसंठिया णं भंते! दीवसमुद्दा? किमाकारभावपडोयारा णं भंते! दीवसमुद्दा णं पन्नत्ता?, गोयमा! जंबुदीवाइया दीवा लवणादीया समुद्दा संठाणतो एकविहविधाणा वित्थारतो अणेगविधविधाणा दुगुणादुगुणे पडुप्पाएमाणा २ पवित्थरमाणा २ ओभासमाणवीचीया बहुउप्पलपउमकुमुदणलिणसुभगसोगंधियपोंडरीयमहापोंडरीयसतपत्तसहस्सपत्तपप्फुल्लकेसरोवचिता पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता अस्सिं तिरितलोए असंखेज्जा दीवसमुद्दा सयंभुरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो! ॥ (सू० १२३)

'कहि णं भंते! दीवसमुद्दा' इत्यादि, 'क्व' कस्मिन् णमिति वाक्यालङ्कारे 'भदन्त!' परमकल्याणयोगिन्! द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः?, अनेन द्वीपसमुद्राणामवस्थानं पृष्टं, 'केवइया णं भंते! दीवसमुद्दा' इति 'कियन्तः' कियत्सङ्ख्याका णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः?, अनेन द्वीपसमुद्राणां सङ्ख्यानं पृष्टं, 'केमहालिया णं भंते! दीवसमुद्दा' इति किं महानालय—आश्रयो व्याप्यक्षेत्ररूपो येषां ते महालयाः किंप्रमाणमहालया णमिति प्राग्वद् द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः?, किंप्रमाणं द्वीपसमुद्राणां महत्त्वमिति

भावः, एतेन द्वीपसमुद्राणामायामादिपरिमाणं पृष्टं, तथा **'किंसंठिया णं भंते! दीवसमुद्दा'** इति किं संस्थितं—संस्थानं येषां ते किंसंस्थिता णमिति पूर्ववद् भदन्त! द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः?, अनेन संस्थानं पप्रच्छ, **'किमागारभावपडोयारा णं भंते! दीवसमुद्दा पण्णत्ता'** इति आकारभावः—स्वरूपविशेषः कस्याकारभावस्य प्रत्यवतारो येषां ते किमाकारभावप्रत्यवताराः, बहुलग्रहणाद्वैयधिकरण्येऽपि समासः, णमिति पूर्ववद्, द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः?, किं स्वरूपं द्वीपसमुद्राणामिति भावः, अनेन स्वरूपविशेषविषयः प्रश्नः कृतः, भगवानाह—**'गोयमे'**त्यादि, गौतम! जम्बूद्वीपादयो द्वीपा **'लवणादिकाः'** लवणसमुद्रादिकाः समुद्राः, अनेन द्वीपानां समुद्राणां चादिरुक्तः, एतच्चापृष्टमपि भगवता कथितमुत्तरत्रोपयोगित्वात् गुणवते शिष्यायापृष्टमपि कथनीयमिति ख्यापनार्थं च, **'संठाणतो'** इत्यादि, **'संस्थानतः'** संस्थानमाश्रित्य **'एगविहिविहाणा'** इति एकविधि—एकप्रकारं विधानं येषां ते एकविधिविधानाः, एकस्वरूपा इति भावः, सर्वेषां वृत्तसंस्थानसंस्थितत्वाद्, **'विस्तारतः'** विस्तारमधिकृत्य पुनरनेकविधिविधानाः अनेकविधानि—अनेकप्रकाराणि विधानानि येषां ते तथा, विस्तारमधिकृत्य नानास्वरूपा इत्यर्थः, तदेव नानास्वरूपत्वमुपदर्शयति—**'दुगुणादुगुणे पडुप्पाएमाणा २ पवित्थरमाणा'** इति, द्विगुणं द्विगुणं यथा भवति एवं प्रत्युत्पद्यमाना गुण्यमाना इत्यर्थः, **'प्रविस्तरन्तः'** प्रकर्षेण विस्तारं गच्छन्तः, तथाहि—जम्बूद्वीप एकं लक्षं लवणसमुद्रो द्वे लक्षे धातकीखण्डश्चत्वारि लक्षाणीत्यादि, **'ओभासमाणवीचीया'** इति अवभासमाना वीचयः—कल्लोला येषां ते अवभासमानवीचयः, इदं विशेषणं समुद्राणां प्रतीतमेव, द्वीपानामपि च वेदितव्यं, तेष्वपि ह्रदनदीतडागादिषु कल्लोलसम्भवात्, तथा बहुभिरुत्पलपद्मकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रैः **'पप्फुल्ल'**त्ति प्रफुल्लैः—विकसितैः **'केसरे'**ति केसरोपलक्षितैरुपचिताः—उपचितशोभाका बहूत्पलपद्मकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापौण्डरीकशतपत्रसह-

स्रपत्रप्रफुल्लकेसरोपचिताः, तत्रोत्पलं—गर्दभकं पद्मं—सूर्यविकासि कुमुदं—चन्द्रविकासि नलिनम्—ईषद्रक्तं पद्मं सुभगं—पद्मविशेषः सौग-न्धिकं—कल्हारं पौण्डरीकं—सिताम्बुजं तदेव बृहत् महापौण्डरीकं शतपत्रसहस्रपत्रे—पद्मविशेषौ पत्रसङ्ख्याकृतभेदौ, 'पत्तेयं २' इति प्रतिशब्दोऽत्राभिमुख्ये 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इति च समासस्ततो वीप्साविवक्षायां प्रत्येकशब्दस्य द्विर्वचनं पद्मवरवेदिकापरिक्षिप्ताः प्रत्येकं वनखण्डपरिक्षिप्ताश्च 'सयंभूरमणपज्जवसाणा' इति जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः स्वयम्भूरमणद्वीपपर्यवसाना लवणसमुद्रादयः समुद्राः स्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यवसाना अस्मिन् तिर्यग्लोके यत्र वयं स्थिता असङ्ख्येया द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! इह 'अस्सिं तिरियलोए' इत्यनेन स्थानमुक्तम्, 'असंखेज्जा' इत्यनेन सङ्ख्यानं, 'दुगुणादुगुण'मित्यादिना महत्त्वं 'संठाणतो' इत्यादिना संस्थानम् ॥ सम्प्रत्याकारभावप्रत्यवतारं विवक्षुरिदमाह—

तत्थ णं अयं जंबुद्दीवे णामं दीवे दीवसमुदाणं अब्भिंतरिए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिते वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिते वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिते वट्टे पडिपुन्नचंदसंठाणसंठिते, एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसते तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलकं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते॥ से णं एक्काए जगतीए सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते॥ सा णं जगती अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले बारस जोयणाइं विक्खंभेणं मज्झे अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं उप्पिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया

गोपुच्छसंठाणसंठिता सव्ववइरामई अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥ सा णं जगती एक्केणं जालकडएणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता ॥ से णं जालकडए णं अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामए अच्छे सण्हे लण्हे (जाव) [घट्ठे मट्ठे णीरए णिम्मले णिप्पंके णिक्कंकडच्छाए सप्पभे [सस्सिरीए] समरीए सउज्जोए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे] पडिरूवे ॥ (सू० १२४)

'तत्थ ण'मित्यादि, 'तत्र' तेषु द्वीपसमुद्रेषु मध्ये 'अयं' यत्र वयं वसामो जम्बूद्वीपो नाम द्वीपः, कथम्भूतः ? इत्याह—सर्वद्वीपसमुद्राणां **'सर्वाभ्यन्तरकः'** सर्वात्मना—सामस्त्येनाभ्यन्तरः सर्वाभ्यन्तर एव सर्वाभ्यन्तरकः, प्राकृतलक्षणात्स्वार्थे कप्रत्ययः, केषां सर्वात्मनाऽभ्यन्तरकः ?, उच्यते, सर्वद्वीपसमुद्राणां, तथाहि—सर्वेऽपि शेषा द्वीपसमुद्रा जम्बूद्वीपादारभ्यागमाभिहितेन क्रमेण द्विगुणद्विगुणविस्तारास्ततो भवति सर्वद्वीपसमुद्राणां सर्वाभ्यन्तरकः, अनेन जम्बूद्वीपस्यावस्थानमुक्तं, **'सव्वखुड्डाग'** इति सर्वेभ्योऽपि शेषद्वीपसमुद्रेभ्यः क्षुल्लको—लघुः सर्वक्षुल्लकः, तथाहि—सर्वे लवणादयः समुद्राः सर्वे च धातकीखण्डादयो द्वीपा जम्बूद्वीपादारभ्य द्विगुणद्विगुणायामविष्कम्भपरिधयस्ततः शेषद्वीपसमुद्रापेक्षयाऽयं लघुरिति, एतेन सामान्यतः परिमाणमुक्तं, विशेषतस्त्वायामादिगतं परिमाणमग्रे वक्ष्यति, तथा वृत्तोऽयं जम्बूद्वीपो यतस्तैलापूपसंस्थानसंस्थितः, तैलेन पक्वोऽपूपस्तैलापूपः, तैलेन हि पक्वोऽपूपः प्रायः परिपूर्णवृत्तो भवति न घृतपक्व इति तैलविशेषणं, तस्येव यत्संस्थानं तेन संस्थितस्तैलापूपसंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तोऽयं जम्बूद्वीपो यतो **'रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः'**

रथस्य—रथाङ्गस्य चक्रस्यावयवे समुदायोपचाराच्चक्रवालं—मण्डलं तस्येव यत् संस्थानं तेन संस्थितो रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, एवं वृत्तः पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितः पुष्करकर्णिका—पद्मबीजकोशः वृत्तः परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितः पदद्वयं भावनीयम्, एतेन जम्बूद्वीपस्य संस्थानमुक्तम् ॥ सम्प्रत्यायामादिपरिमाणमाह—'एक्कं ण'मित्यादि, एकं योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन, आयामश्च विष्कम्भश्च आयामविष्कम्भं, समाहारो द्वन्द्वः, तेन, आयामेन विष्कम्भेन चेत्यर्थः, त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे योजनशते सप्तविंशत्यधिके त्रयः क्रोशा अष्टाविंशम्—अष्टाविंशत्यधिकं धनुःशतं त्रयोदशाङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकमित्येतावान् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, इदं च परिक्षेपपरिमाणं 'विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ।' इति करणवशात्स्वयमानेतव्यं क्षेत्रसमासटीका वा परिभावनीया, तत्र गणितभावनायाः सविस्तरं कृतत्वात् ॥ सम्प्रत्याकारभावप्रत्यवतारप्रतिपादनार्थमाह—'से ण'मित्यादि, 'सः' अनन्तरोक्तायामविष्कम्भपरिक्षेपपरिमाणो जम्बूद्वीपो णमिति वाक्यालङ्कारे एकया जगत्या सुनगरप्राकारकल्पया 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन 'संपरिक्षिप्तः' सम्यग्वेष्टितः ॥ 'सा णं जगई' इत्यादि, सा च जगती ऊर्द्धम्—उच्चैस्त्वेनाष्टौ योजनानि मूले द्वादश योजनानि विष्कम्भेन मध्येऽष्टौ उपरि चत्वारि, अत एव मूले विष्कम्भमधिकृत्य विस्तीर्णा, मध्ये संक्षिप्ता त्रिभागोनत्वात्, उपरि तनुका, मूलापेक्षया त्रिभागमात्रविस्तारभावात्, एतदेवोपमया प्रकटयति—'गोपुच्छसंठाणसंठिया' गोपुच्छस्येव संस्थानं गोपुच्छसंस्थानं तेन संस्थिता गोपुच्छसंस्थानसंस्थिता ऊर्द्धीकृतगोपुच्छाकारा इति भावः, 'सव्ववइरामई' सर्वात्मना—सामस्त्येन वज्रमयी—वज्ररत्नात्मिका 'अच्छा' आकाशस्फटिकवदतिस्वच्छा 'सण्हा लण्हा' श्लक्ष्णा-श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिष्पन्ना श्लक्ष्णदलनिष्पन्नपटवत् 'लण्हा' मसृणा घुण्टितपटवत् 'घट्ठा' घृष्टा इव घृष्टा खरशानया पाषाणप्रतिमावत् 'मट्ठा' मृष्टा इव मृष्टा सुकु-

मारशानया पाषाणप्रतिमावत् **'नीरजा'** स्वाभाविकरजोरहितत्वात् **'निर्मला'** आगन्तुकमलाभावात् **'निष्पङ्का'** कलङ्कविकला कर्दमरहिता वा **'निक्कंकडच्छाया'** इति निष्कङ्कटा निष्कवचा निरावरणा निरुपघातेति भावार्थः छाया—दीप्तिर्यस्याः सा निष्कङ्कटच्छाया **'सप्रभा'** स्वरूपतः प्रभावती **'समरीचा'** वहिर्विनिर्गतकिरणजाला, अत एव **'सोद्योता'** वहिर्व्यवस्थितवस्तुस्तोमप्रकाशकरी **'प्रासादीया'** प्रसादाय—मनःप्रसत्तये हिता तत्कारित्वात् प्रासादीया मनःप्रह्लत्तिकारिणीति भावः **'दर्शनीया'** दर्शनयोग्या यां पश्यतश्चक्षुषी श्रमं न गच्छत इति **'अभिरूवा'** इति अभि—सर्वेषां द्रष्टृणां मनःप्रसादानुकूलतयाऽभिमुखं रूपं यस्याः सा अभिरूपा, अत्यन्तकमनीयेति भावः, अत एव **'प्रतिरूपा'** प्रतिविशिष्टम्—असाधारणं रूपं यस्याः सा प्रतिरूपा, अथवा प्रतिक्षणं नवं नवमिव रूपं यस्याः सा प्रतिरूपा ॥ **'सा णं जगती'** इत्यादि, **'सा'** अनन्तरोदितस्वरूपा णमिति वाक्यालङ्कारे जगती एकेन **'जालकटकेन'** जालानि—जालकानि यानि भवनभित्तिषु लोकेऽपि प्रसिद्धानि तेषां कटकः—समूहो जालकटको जालकाकीर्णो रम्यसंस्थानप्रदेशविशेषपङ्क्तिरिति भावः, तेन जालकटकेन **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन संपरिक्षिप्ता ॥ **'से णं जालकडए'** इत्यादि, **'सः'** जालकटक ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेनार्द्धयोजनं—द्वे गव्यूते विष्कम्भेन पञ्च धनुःशतानि, किमुक्तं भवति ?—जगत्या प्रायो बहुमध्यभागे सर्वत्र जालकानि तानि च प्रत्येकमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन द्वे गव्यूते विष्कम्भतः पञ्चधनुःशतानीति, स च जालकटकः **'सव्वरयणामए'** इति सर्वात्मना रत्नमयः **'अच्छे सण्हे लण्हे जाव पडिरूवे'** इति यावच्छब्दकरणात् 'घट्ठे मट्ठे नीरए निम्मले निप्पंके निक्कंकडच्छाये सप्पभे समरीए सउज्जोए पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे' इति परिग्रहः, एतेषां [ग्रन्थाग्रम् ५०००] पदानामर्थः प्राग्वत् ॥

तीसे णं जगतीए उप्पिं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महई पउमवरवेदिया पं०, सा णं पउमवरवे-

दिया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामए जगतीसमिया परिक्खेवेणं
सव्वरयणामई० ॥ तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया
नेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्णरुप्पमया फलगा वइरामया संधी लोहितक्ख-
मईओ सूईओ णाणामणिमया कलेवरा कलेवरसंघाडा णाणामणिमया रूवा नाणामणिमया रूवसं-
घाडा अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ जोतिरसामया वंसा वंसकवेल्लुया य रययामईओ पट्टियाओ
जातरूवमयीओ ओहाडणीओ वइरामयीओ उवरिं पुञ्छणीओ सव्वसेए रययामते साणं छादणे॥
सा णं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेमजालेणं (एगमेगेणं गवक्खजालेणं) एगमेगेणं खिंखिणिजालेणं
जाव मणिजालेणं (कणयजालेणं रयणजालेणं) एगमेगेणं पउमवरजालेणं सव्वरयणामएणं सव्वतो
समंता संपरिक्खित्ता ॥ ते णं जाला तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया णाणामणिरयणवि-
विहहारद्धहारउवसोभितसमुदया ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणउत्तरागतेहिं वाएहिं
मंदागं २ एज्जमाणा २ कंपिज्जमाणा २ लंबमाणा २ पझंझमाणा २ सद्दायमाणा २ तेणं ओरालेणं
मणुण्णेणं कण्णमणणेव्वुतिकरेणं सद्देणं सव्वतो समंता आपूरेमाणा सिरीए अतीव उवसोभेमाणा
उव० चिट्ठंति ॥ तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे हयसंघाडा गयसंघाडा
नरसंघाडा किण्णरसंघाडा किंपुरिससंघाडा महोरगसंघाडा गंधव्वसंघाडा वसहसंघाडा सव्वर-

यणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा स-
मिरिया सउज्जोया पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ
तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे हयपंतीओ तहेव जाव पडिरूवाओ । एवं हयवीहीओ जाव पडिरू-
वाओ । एवं हयमिहुणाइं जाव पडिरूवाइं ॥ तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं
बहवे पउमलयाओ नागलताओ, एवं असोग० चंपग० चूयवण० वासंति० अतिमुत्तग० कुंद०
सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ जाव सुविहत्तपिंडमंजरिवडिंसकधरीओ सव्वरयणामईओ
सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णीरयाओ णिम्मलाओ णिप्पंकाओ णिक्कंकडच्छायाओ
सप्पभाओ समिरीयाओ सउज्जोयाओ पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ
॥ [तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे अक्खयसोत्थिया पण्णत्ता स-
व्वरयणामया अच्छा] ॥ से केणट्ठेणं (भंते !) एवं वुचइ—पउमवरवेइया पउमवरवेइया?, गोयमा !
पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं वेदियासु वेतियाबाहासु वेदियासीसफलएसु वेदियापु-
डंतरेसु खंभेसु खंभबाहासु खंभसीसेसु खंभपुडंतरेसु सूईसु सुईमुहेसु सूईफलएसु सूईपुडं-
तरेसु पक्खेसु पक्खबाहासु पक्खपेरंतरेसु बहूइं उप्पलाइं पउमाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं स-
व्वरयणामयाइं अच्छाइं सण्हाइं लण्हाइं घट्ठाइं मट्ठाइं णीरयाइं णिम्मलाइं निप्पंकाइं निक्कंकड-

च्छायाइं सप्पभाइं समिरीयाइं सउज्जोयाइं पासादीयाइं दरिसणिज्जाइं अभिरूवाइं पडिरूवाइं
महता २ वासिक्कच्छत्तसमयाइं पण्णत्ताइं समणाउसो!, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ पउमवरवे-
दिया २ ॥ पउमवरवेइया णं भंते! किं सासया असासया?, गोयमा! सिय सासया सिय अ-
सासया ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—सिय सासया सिय असासया?, गोयमा! दव्वट्ठयाए
सासता वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा!
एवं वुच्चइ—सिय सासता सिय असासता ॥ पउमवरवेइया णं भंते! कालओ केवच्चिरं होति?,
गोयमा! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि न भविस्सति ॥ भुविं च भवति य भवि-
स्सति य धुवा नियया सासता अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेदिया ॥ (सू० १२५)

'तीसे णं जगतीए' इत्यादि, 'तस्याः' यथोक्तरूपाया जगत्याः 'उपरि'उपरितने तले यो वहुमध्यदेशभागः, सूत्रे एकारान्तता मागधदेशभाषालक्षणानुरोधात् यथा 'कयरे आगच्छइ दित्तरूवे?' इत्यत्र, 'एत्थ ण'मिति 'अत्र' एतस्मिन् वहुमध्यदेशभागे णमिति पूर्ववत् महती एका पद्मवरवेदिका प्रज्ञप्ता मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, सा चोर्द्धमुच्चैस्त्वेनार्द्धयोजनं—द्वे गव्यूते पञ्च धनुःशतानि विष्कम्भेन 'जगतीसमिया' इति जगत्याः समा—समाना जगतीसमा सैव जगतीसमिका 'परिक्षेपेण' परिरयेण यावान् जगत्या मध्यभागे परिरयस्तावान् तस्या अपि परिरय इति भावः, 'सर्वरत्नमयी' सामस्त्येन रत्नात्मिका 'अच्छा सण्हा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं पाठतोऽर्थतश्च प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या णमिति पूर्ववत् पद्मवरवेदिकायाः 'अयं' वक्ष्यमाणः 'एतद्रूपः' एवंस्वरूपः 'वर्णा-

वासः' वर्णः—श्लाघा यथावस्थितस्वरूपकीर्त्तनं तस्यावासो—निवासो ग्रन्थपद्धतिरूपो वर्णावासो वर्णकनिवेश इत्यर्थः 'प्रज्ञप्तः' प्ररूपितः, तद्यथेत्यादिना तदेव दर्शयति—'**वइरामया नेमा**' इति नेमा नाम पद्मवरवेदिकाया भूमिभागादूर्द्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशास्ते सर्वे '**वज्रमयाः**' वज्ररत्नमयाः, वज्रशब्दस्य दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यं, रिष्टमयानि **प्रतिष्ठानानि**—मूलपादाः '**वेरुलियमया खंभा**' इति वैडूर्यरत्नमयाः स्तम्भाः सुवर्णरूप्यमयानि फलकानि लोहिताक्षरत्नात्मिकाः सूचयः फलकद्वयसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयास्ते सर्वे '**वइरामया संधी**' वज्रमयाः सन्धयः—सन्धिमेलाः फलकानां, किमुक्तं भवति?—वज्ररत्नापूरिताः फलकानां सन्धयः '**णाणामणिमया कलेवरा**' इति नानामणिमयानि **कलेवराणि**—मनुष्यशरीराणि नानामणिमयाः **कलेवरसङ्घाटा**—मनुष्यशरीरयुग्मानि नानामणिमयानि **रूपाणि**—रूपकाणि नानामणिमया **रूपसङ्घाटाः**—रूपयुग्मानि '**अङ्कामया पक्खा पक्खबाहातो य**' इति अङ्को—रत्नविशेषस्तन्मयाः पक्षास्तदेकदेशाः पक्षवाहवोऽपि तदेकदेशभूता एवाङ्कमयाः, आह च **मूलटीकाकारः**—"अङ्कमयाः पक्षास्तदेकदेशभूताः, एवं पक्षवाहवोऽपि द्रष्टव्या" इति, '**जोईरसामया वंसा वंसकवेल्लुया य**' इति ज्योतीरसं नाम रत्नं तन्मया वंशाः—महान्तः पृष्ठवंशाः '**वंशकवेल्लुया य**' इति महतां पृष्ठवंशानामुभयतस्तिर्यक् स्थाप्यमाना वंशाः कवेल्लुकानि—प्रतीतानि '**रययामईओ पट्टियाओ**' इति रजतमय्यः पट्टिका वंशानामुपरि कम्बास्थानीयाः '**जायरूवमईओ ओहाडणीओ**' जातरूपं—सुवर्णविशेषस्तन्मय्यः '**ओहाडणीओ**' अवघाटिन्यः आच्छादनहेतुकम्बोपरिस्थाप्यमानमहाप्रमाणकिलिञ्चस्थानीयाः, '**वइरामईओ उवरिं पुंछणीओ**' इति '**वज्रमय्यो**' वज्ररत्नात्मिका अववाटनीनामुपरि पुञ्छन्यः—निविडतरच्छादनहेतुश्लक्ष्णतरतृणविशेषस्थानीयाः, उक्तं च **मूलटीकाकारेण**—"ओहाडणी हीरग्गहणं महत् क्षुल्लकं तु पुञ्छनी इति, '**सव्वसेए रययामए सा णं छाणे**' इति, सर्वश्वेतं रजतमयं

पुञ्छनीनामुपरि कवेल्लुकानामध आच्छादनम् ॥ 'सा ण'मित्यादि, 'सा' एवंस्वरूपा णमिति वाक्यालङ्कारे पद्मवरवेदिका तत्र तत्र प्रदेशे एकैकेन 'हेमजालेन' सर्वात्मना हेममयेन लम्बमानेन दामसमूहेन एकैकेन 'गवाक्षजालेन' गवाक्षाकृतिरत्नविशेषदामसमूहेन एकैकेन 'किङ्किणीजालेन' किङ्किण्यः—क्षुद्रघण्टिकाः एकैकेन घण्टाजालेन, किङ्किण्यपेक्षया किञ्चिन्महत्यो घण्टा घण्टाः, तथा एकैकेन 'मुक्ताजालेन' मुक्ताफलमयेन दामसमूहेन एकैकेन 'मणिजालेन' मणिमयेन दामसमूहेन एकैकेन 'कनकजालेन' कनकं—पीतरूपः सुवर्णविशेषस्तन्मयेन दामसमूहेन एकैकेन रत्नजालेन एकैकेन (वर) पद्मजालेन—सर्वरत्नमयपद्मात्मकेन दामसमूहेन 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सर्वासु विदिक्षु परिक्षिप्ता, एतानि च दामसमूहरूपाणि हेमजालादीनि जालानि लम्बमानानि वेदितव्यानि, तथा चाह—'ते णं जाला' इत्यादि, तानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, प्राकृते हि लिङ्गमनियतमिति, णमिति पूर्ववत् हेमजालादीनि क्वचित् दामा इति पाठः तत्र ता हेमजालादिरूपा दामान इति व्याख्येयं, 'तवणिज्जलंवूसगा' तपनीयम्—आरक्तं सुवर्णं तन्मयो लम्बूसगो—दाम्नामग्रिमभागे मण्डनविशेषो येषां तानि तपनीयलम्बूसकानि 'सुवण्णपयरगमंडिया' इति पार्श्वतः सामस्त्येन सुवर्णप्रतरकेण—सुवर्णपत्रकेण मण्डितानि सुवर्णप्रतरकमण्डितानि, 'नाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभियसमुदया' इति नानारूपाणां मणीनां रत्नानां च ये विविधा—विचित्रवर्णा हारा—अष्टादशसरिका अर्द्धहारा—नवसरिकास्तैरुपशोभितः समुदायो येषां तानि, तथा 'ईसिमन्नमन्नमसंपत्ता' इति ईषत्—मनाग् अन्योऽन्यं—परस्परमसंप्राप्तानि—असंलग्नानि पूर्वापरदक्षिणोत्तरागतैर्वातैः 'मंदायं मंदायं' इति मन्दं मन्दम् एज्यमानानि—कम्प्यमानानि 'भृशाभीक्ष्ण्याविच्छेदे द्विः प्राक्तमबादेः' इत्यविच्छेदे द्विर्वचनं यथा पचति पचतीत्यत्र, एवमुत्तरत्रापि, ईषत्कम्पनवशादेव च प्रकर्षत इतस्ततो मनाक् चलनेन लम्बमानानि प्रलम्बमानानि, ततः

परस्परसंपर्कवशतः **'पझंझमाणा पझंझमाणा'** इति शब्दायमानानि शब्दायमानानि **'उदारेण'** स्फारेण शब्देनेति योगः, स च स्फारशब्दो मनःप्रतिकूलोऽपि भवति तत आह—**'मनोज्ञेन'** मनोऽनुकूलेन, तच मनोऽनुकूलत्वं लेशतोऽपि स्यादत आह—**'मनोहरेण'** मनांसि श्रोतॄणां हरति—आत्मवशं नयतीति मनोहरः, 'लिहादे'राकृतिगणत्वादच्प्रत्ययः, तेन, तदपि मनोहरत्वं कुतः? इत्याह—कर्णमनोनिर्वृतिकरेण—'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति वचनाद् हेतौ तृतीया, ततोऽयमर्थः—यतः श्रोतृकर्णयोर्मनसश्च निर्वृतिकरः—सुखोत्पादकस्ततो मनोहरस्तेन, इत्थम्भूतेन शब्देन तान् प्रत्यासन्नान् प्रदेशान् **'सर्वतः'** दिक्षु **'समन्ततः'** विदिक्षु आपूरयन्ति शत्रन्तस्य शाविदं रूपं, तत एव **'श्रिया'** शोभयाऽतीव उपशोभमानानि उपशोभमानानि तिष्ठन्ति ॥ **'तीसे ण'**मित्यादि, तस्याः पद्मवरवेदिकायास्तत्र तत्र देशे २ **'तहिं तहिं'** इति तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे, एतावता किमुक्तं भवति?—यत्र देशे एकस्तत्रान्येऽपि विद्यन्त इति, वहवे **'हयसंघाडा'** हययुग्मानि सङ्घाटशब्दो युग्मवाची यथा साधुसङ्घाट इत्यत्र, एवं गजनरकिंनरकिंपुरुषमहोरगगन्धर्ववृषभसङ्घाटा अपि वाच्याः, एते च कथम्भूताः? इत्याह—**'सव्वरयणामया'** सर्वात्मना रत्नमयाः **'अच्छा'** आकाशस्फटिकवदतिस्वच्छाः **'जाव पडिरूवा'** इति यावत्करणात् **'सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा'** इत्यादिविशेषणकदम्बकपरिग्रहस्तच प्राग्वत् । एते च सर्वेऽपि हयसङ्घाटादयः सङ्घाटाः पुष्पावकीर्णका उक्ताः, सम्प्रत्येतेषामेव हयादीनां पङ्क्त्यादिप्रतिपादनार्थमाह—**'एवं पंतीओ वीहीओ एवं मिहुणगा'** इति यथाऽमीषां हयादीनामष्टानां सङ्घाटा उक्तास्तथा पङ्क्तयोऽपि वक्तव्या वीथयोऽपि मिथुनकानि च, तानि चैवम्—'तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं वहुयाओ हयपंतीओ गयपंतीओ' इत्यादि, नवरमेकस्यां दिशि या श्रेणिः सा पङ्क्तिरभिधीयते, उभयोरपि पार्श्वयोरेकैकश्रेणिभावेन यच्छ्रेणिद्वयं सा वीथी, एते च वीथी-

पङ्क्तिसङ्घाटा हयादीनां पुरुषाणामुक्ताः, साम्प्रतमेतेषामेव हयादीनां स्त्रीपुरुषयुग्मप्रतिपादनार्थं 'मिहुणाइं' इत्युक्तम्, उक्तेनैव प्रकारेण हयादीनां मिथुनकानि स्त्रीपुरुषयुग्मरूपाणि वाच्यानि, यथा 'तत्थ तत्थ तहिं २ देसे देसे बहूइं हयमिहुणाइं गयमिहुणाइं' इत्यादि ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां णमिति पूर्ववत् पद्मवरवेदिकायां तत्र तत्र देशे २ 'तहिं २' इति तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे, अत्रापि 'तत्थ २ देसे २ तहिं २' इति वदता यत्रैका लता तत्रान्या अपि बह्वयो लताः सन्तीति प्रतिपादितं द्रष्टव्यं, 'बहुयाओ पउमलयाओ' इत्यादि, बह्वयः 'पद्मलताः' पद्मिन्यः 'नागलताः' नागा—द्रुमविशेषाः त एव लतास्तिर्यक्शाखाप्रसराभावात् नागलताः, एवमशोकलताश्चम्पकलता वणलताः, वणाः—तरुविशेषाः, वासन्तिकलता अतिमुक्तकलताः कुन्दलताः श्यामलताः, कथम्भूता एताः? इत्याह—'निच्चं' सर्वकालं षट्स्वपि ऋतुष्वित्यर्थः 'कुसुमिताः' कुसुमानि—पुष्पाणि संजातान्यास्विति कुसुमिताः, तारकादिदर्शनादितप्रत्ययः, एवं नित्यं मुकुलिताः, मुकुलानि नाम कुड्मलानि कलिका इत्यर्थः नित्यं 'लवइयाओ' इति पल्लविताः, नित्यं 'थवइयाओ' इति स्तवकिताः, नित्यं 'गुम्मियाओ' इति गुल्मिताः, स्तबकगुल्मौ गो(गु)च्छविशेषौ, नित्यं गुच्छाः, नित्यं यमलं नाम समानजातीययोर्लतयोर्युग्मं तत्संजातमास्विति यमलिताः, नित्यं 'युगलिताः' युगलं सजातीयविजातीययोर्लतयोर्द्वन्द्वं, तथा 'नित्यं' सर्वकालं फलभारेण नता—ईषन्नता नित्यं प्रणता—महता फलभारेण दूरं नताः, तथा नित्यं 'सुविभक्ते'त्यादि सुविभक्तिकः—सुविच्छित्तिकः प्रतिविशिष्टो मञ्जरीरूपो योऽवतंसकस्तद्धराः—तद्धारिण्यः । एष सर्वोऽपि कुसुमितत्वादिको धर्म एकैकस्या एकैकस्या लताया उक्तः, साम्प्रतं कासाञ्चिल्लतानां सकलकुसुमितत्वादिधर्म्मप्रतिपादनार्थमाह—'निच्चं कुसुमियमउलियलवइयथवइयगुलइयगोच्छियविणमियपणमियसुविभत्तपडिमंजरिवडंसगधरीउ' एताश्च सर्वा अपि लता एवंरूपाः, किंरूपाः? इत्याह—'सव्वरयणामईओ' सर्वात्मना

रत्नमय्यः, 'अच्छा सण्हा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ अधुना पद्मवरवेदिकाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं जिज्ञासुः पृच्छति—'से केणट्ठेणं भंते!' इत्यादि, सेशब्दोऽथशब्दार्थः, अथ 'केनार्थेन' केन कारणेन भदन्त! एवमुच्यते—पद्मवरवेदिका पद्मवरवेदिकेति?, किमुक्तं भवति?—पद्मवरवेदिकेत्येवंरूपस्य शब्दस्य तत्र प्रवृत्तौ किं निमित्तमिति?, एवमुक्ते भगवानाह—गौतम! पद्मवरवेदिकायां तत्र तत्र प्रदेशे तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे 'वेदिकासु' उपवेशनयोग्यमत्तवारणरूपासु 'वेदिकाबाहासु' वेदिकापार्श्वेषु 'वेइयापुडंतरेसु' इति द्वे वेदिके वेदिकापुटं तेषामन्तराणि—अपान्तरालानि वेदिकापुटान्तराणि तेषु, तथा स्तम्भेषु सामान्यतः तथा 'स्तम्भबाहासु' स्तम्भपार्श्वेषु 'खंभसीसेसु' इति स्तम्भशीर्षेषु 'खंभपुडंतरेसु' इति द्वौ स्तम्भौ स्तम्भपुटं तेषामन्तराणि तेषु 'सूचीषु' फलकसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयासु तासामुपरीति तात्पर्यार्थः, 'सूइमुहेसु' इति यत्र प्रदेशे सूची फलकं भित्त्वा मध्ये प्रविशति तत्प्रत्यासन्नो देशः सूचीमुखं तेषु, तथा सूचीफलकेषु—सूचीभिः संबन्धिता ये फलकप्रदेशास्तेऽप्युपचारात्सूचीफलकानि तेषु सूचीनामध उपरि च वर्त्तमानेषु, तथा 'सुईपुडंतरेसु' इति द्वे सूच्यौ सूचीपुटं तेषामन्तरेषु, पक्षाः पक्षवाहा—वेदिकैकदेशास्तेषु बहूनि 'उत्पलकानि' गर्दभकानि बहूनि 'पद्मानि' सूर्यविकासीनि बहूनि 'कुमुदानि' चन्द्रविकासीनि, एवं नलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्राण्यपि वाच्यानि, एतेषां च विशेषः प्रागेवोपदर्शितः, एतानि कथम्भूतानि? इत्याह—'सर्वरत्नमयानि' सर्वात्मना रत्नमयानि, 'अच्छा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् 'महयावासिक्कछत्तसमाणा' इति 'महान्ति' महाप्रमाणानि वार्षिकाणि—वर्षाकाले यानि पानीयरक्षणार्थं कृतानि तानि वार्षिकाणि तानि च तानि छत्राणि च तत्समानानि च प्रज्ञप्तानि हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, 'से एएणट्ठेण'मित्यादि, तदेतेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते पद्मवरवेदिका पद्मवरवेदिकेति तेषु तेषु यथोक्तरूपेषु

प्रदेशेषु यथोक्तरूपाणि पद्मानि पद्मवरवेदिकाशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमितिभावः, व्युत्पत्तिश्चैवं—पद्मवरा पद्मप्रधाना वेदिका पद्मवरवेदिका पद्मवरवेदिकेति॥ **'पउमवरवेइया णं भंते! किं सासया?'** इत्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववत् किं शाश्वती उताशाश्वती?, आवन्ततया सूत्रे निर्देशः प्राकृतत्वात्, किं नित्या उतानित्येति भावः, भगवानाह—गौतम! स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती—कथञ्चिन्नित्या कथञ्चिदनित्येत्यर्थः, स्याच्छब्दो निपातः कथञ्चिदित्येतदर्थवाची ॥ **'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! **'द्रव्यार्थतया'** द्रव्यास्तिकनयमतेन शाश्वती, द्रव्यास्तिकनयो हि द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते न पर्यायान्, द्रव्यं चान्वयि परिणामित्वाद्, अन्यथा द्रव्यत्वायोगाद्, अन्वयित्वाच्च सकलकालभावीति भवति द्रव्यार्थतया शाश्वती, **'वर्णपर्यायैः'** तदन्यसमुत्पद्यमानवर्णविशेषरूपैरेवं गन्धपर्यायै रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः, उपलक्षणमेतत्तदन्यपुद्गलविचटनोच्चटनैश्चाशाश्वती, किमुक्तं भवति?—पर्यायास्तिकनयमतेन पर्यायप्राधान्यविवक्षायामशाश्वती, पर्यायाणां प्रतिक्षणभावितया कियत्कालभावितया वा विनाशित्वात्, **'से एएणट्ठेण'**मित्यादि उपसंहारवाक्यं सुगमं, इह द्रव्यास्तिकनयवादी स्वमतप्रतिस्थापनार्थमेवमाह—नात्यन्तासत उत्पादो नापि सतो विनाशो, 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत' इति वचनात्, यौ तु दृश्येते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरोभावमात्रं यथा सर्प्पस्योत्फणत्वविफणत्वे, तस्मात्सर्वं वस्तु नित्यमिति ॥ एवं च तन्मतचिन्तायां संशयः—किं घटादिवद्द्रव्यार्थतया शाश्वती उत सकलकालमेवंरूपा? इति, ततः संशयापनोदार्थं भगवन्तं भूयः पृच्छति—**'पउमवरवेइया ण'**मित्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववद् **'भदन्त!'** परमकल्याणयोगिन्! **'कियच्चिरं'** कियन्तं कालं यावद्भवति?, एवंरूपा कियन्तं कालमवतिष्ठते? इति, भगवानाह—गौतम! न कदाचिन्नासीत्, सर्वदैवासीदिति भावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति

भावः, सदैव भावात्, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति प्रतिपत्तव्यं, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—'भुविं चे'त्यादि, अभूच्च भवति च भविष्यति चेति, एवं त्रिकालावस्थायित्वाद् 'ध्रुवा' मेर्वादिवद् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपे नियता, नियतत्वादेव च 'शाश्वती' शश्वद्भवनस्वभावा, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पौण्डरीकह्रद इवानेकपुद्गलविचटनेऽपि तावन्मात्रान्यपुद्गलोच्चटनसम्भवाद् 'अक्षया' न विद्यते क्षयो—यथोक्तस्वरूपाकारपरिभ्रंशो यस्याः साऽक्षया, अक्षयत्वादेव 'अव्यया' अव्ययशब्दवाच्या, मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्यसम्भवात्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थिता मानुषोत्तरपर्वताद् बहिः समुद्रवत्, एवं स्वस्वप्रमाणे सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्तिकायादिवत् ॥

तीसे णं जगतीए उप्पिं बाहिं पउमवरवेइयाए एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं जगतीसमए परिक्खेवेणं, किण्हे किण्होभासे जाव अणेगसगडरहजाणजुग्गपरिमोयणे सुरम्मे पासातीए सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे नीरए निप्पंके निम्मले निक्कंकडच्छाए सप्पभे समिरीए सउज्जोए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ॥ तस्स णं वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहानामए—आलिंगपुक्खरेति वा मुइंगपुक्खरेति वा सरतलेइ वा करतलेइ वा आयंसमंडलेति वा चंदमंडलेति वा सूरमंडलेति उरब्भचम्मेति वा उसभचम्मेति वा वराहचम्मेति वा सीहचम्मेति वा वग्घचम्मेति वा विगचम्मेति वा दी-

वितचम्मेति वा अणेगसंकुकीलगसहस्सवितते आवडपच्चावडसेढीपसेढीसोत्थियसोवत्थियपूसमाणवद्धमाणमच्छंडकमकरंडकजारमारफुल्लावलिपउमपत्तसागरतरंगवासंतिलयपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं समिरीएहिं सउज्जोएहिं नाणाविहपंचवण्णेहिं तणेहिं य मणिहिं य उवसोहिए तंजहा—किण्हेहिं जाव सुक्किल्लेहिं ॥ तत्थ णं जे ते किण्हा तणा य मणी य तेसि णं अयमेतारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए—जीमूतेति वा अंजणेति वा खंजणेति वा कज्जलेति वा मसीइ वा गुलियाइ वा गवलेइ वा गवलगुलियाति वा भमरेति वा भमरावलियाति वा भमरपत्तगयसारेति वा जंबुफलेति वा अद्दारिट्ठेति वा पुरिपुट्ठए (ति) वा गएति वा गयकलभेति वा कण्हसप्पेइ वा कण्हकेसरेइ वा आगासथिग्गलेति वा कण्हासोएति वा किण्हकणवीरेइ वा कण्हबंधुजीवएति वा, भवे एयारूवे सिया?, गोयमा! णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं कण्हाणं तणाणं मणीण य इत्तो इट्ठयराए चेव कंततराए चेव पिययराए चेव मणुण्णतराए चेव मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ते ॥ तत्थ णं जे ते णीलगा तणा य मणी य तेसि णं इमेतारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए–भिंगेइ वा भिंगपत्तेति वा चासेति वा चासपिच्छेति वा सुएति वा सुयपिच्छेति वा णीलीति वा णीलीभेएति वा णीलीगुलियाति वा सामाएति वा उच्चंतएति वा वणराईइ वा हलहरवसणेइ वा मोरग्गीवाति वा पारेवयगीवाति वा अयसिकुसुमेति वा अंजणकेसिगा-

कुसुमेति वा णीलुप्पलेति वा णीलासोएति वा णीलकणवीरेति वा णीलबंधुजीवएति वा, भवे एयारूवे सिता?, णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं णीलगाणं तणाणं मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव कंततराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते ॥ तत्थ जे ते लोहितगा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए—ससकरुहिरेति वा उरब्भरुहिरेति वा णररुहिरेति वा वराहरुहिरेति वा महिसरुहिरेति वा बालिंदगोवएति वा बालदिवागरेति वा संझब्भरागेति वा गुंजद्धराएति वा जातिहिंगुलुएति वा सिलप्पवालेति वा पवालंकुरेति वा लोहितक्खमणीति वा लक्खारसएति वा किमिरागेइ वा रत्तकंबलेइ वा चीणपिट्ठरासीइ वा जासुयणकुसुमेइ वा किंसुअकुसुमेइ वा पालियाइकुसुमेइ वा रत्तुप्पलेति वा रत्तासोगेति वा रत्तकणयारेति वा रत्तबंधुजीवेइ वा, भवे एयारूवे सिया?, नो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं लोहियगाणं तणाण य मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते ॥ तत्थ णं जे ते हालिद्दगा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए—चंपए वा चंपगच्छल्लीइ वा चंपयभेएइ वा हालिद्दाति वा हालिद्दभेएति वा हालिद्दगुलियाति वा हरियालेति वा हरियालभेएति वा हरियालगुलियाति वा चिउरेति वा चिउरंगरागेति वा वरकणएति वा वरकणगनिघसेति वा सुवण्णसिप्पिएति वा वरपुरिसवसणेति वा सल्लइकुसुमेति वा चंपककुसुमेइ वा

कुहुंडियाकुसुमेति वा (कोरंटकदामेइ वा) तडउडाकुसुमेति वा घोसाडियाकुसुमेति वा सुवण्णजूहियाकुसुमेति वा सुहरिन्नयाकुसुमेइ वा [कोरिंटवरमल्लदामेति वा] बीयगकुसुमेति वा पीयासोएति वा पीयकणवीरेति वा पीयबंधुजीएति वा, भवे एयारूवे सिया?, नो इणट्ठे समट्ठे, ते णं हालिद्दा तणा य मणी य एत्तो इट्ठयरा चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ता॥ तत्थ णं जे ते सुक्किल्लगा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए— अंकेति वा संखेति वा चंदेति वा कुंदेति वा कुसुमे(मुए)ति वा दयरएति वा (दहिघणेइ वा खीरेइ वा खीरपूरेइ वा) हंसावलीति वा कोंचावलीति वा हारावलीति वा बलायावलीति वा चंदावलीति वा सारतियबलाहएति वा धंतधोयरुप्पपट्टेइ वा सालिपिट्ठरासीति वा कुंदपुप्फरासीति वा कुमुयरासीति वा सुक्कछिवाडीति वा पेहुणमिंजाति वा बिसेति वा मिणालियाति वा गयदंतेति वा लवंगदलेति वा पोंडरीयदलेति वा सिंदुवारमल्लदामेति वा सेतासोएति वा सेयकणवीरेति वा सेयबंधुजीएइ वा, भवे एयारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं सुक्किल्लाणं तणाणं मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते ॥ तेसि णं भंते! तणाण य मणीण य केरिसए गंधे पण्णत्ते?, से जहाणामए—कोट्ठपुडाण वा पत्तपुडाण वा चोयपुडाण वा तगरपुडाण वा एलापुडाण वा [किरिमेरिपुडाण वा] चंदणपुडाण वा कुंकुमपुडाण वा उ-

सीरपुडाण वा चंपगपुडाण वा मरुयगपुडाण वा दमणगपुडाण वा जातिपुडाण वा जूहियापुडाण वा मल्लियपुडाण वा णोमालियपुडाण वा वासंतियपुडाण वा केयतिपुडाण वा कप्पूरपुडाण वा अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाण य णिब्भिज्जमाणाण य कोट्टेज्जमाणाण वा रुविज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा विकिरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा भंडाओ वा भंडं साहरिज्जमाणाणं ओराला मणुण्णा घाणमणणिव्वुतिकरा सव्वतो समंता गंधा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं तणाणं मणीण य एत्तो उ इट्ठतराए चेव जाव मणामतराए चेव गंधे पण्णत्ते ॥ तेसि णं भंते! तणाण य मणीण य केरिसए फासे पण्णत्ते?, से जहाणामए—आईणेति वा रूएति वा बूरेति वा णवणीतेति वा हंसगब्भतूलीति वा सिरीसकुसुमणिचतेति वा बालकुमुदपत्तरासीति वा, भवे एतारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं तणाण य मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव फासेणं पण्णत्ते॥ तेसि णं भंते! तणाणं पुव्वावरदाहिणउत्तरागतेहिं वाएहिं मंदायं मंदायं एइयाणं वेइयाणं कंपियाणं खोभियाणं चालियाणं फंदियाणं घट्टियाणं उदीरियाणं केरिसए सद्दे पण्णत्ते?, से जहाणामए—सिवियाए वा संदमाणीयाए (वा) रहवरस्स वा सछत्तस्स सज्झयस्स सघंटयस्स सतोरणवरस्स सणंदिघोसस्स सखिंखिणिहेमजालपेरंतपरिखित्तस्स हेमवयखेत्त (चित्तविचित्त) तिणिसकणगनिज्जुत्तदारुयागस्स सुपिणिद्धारकमं-

ङ्लधुरागस्स कालायससुकयणेमिजंतकम्मस्स आइण्णवरतुरगसुसंपउत्तस्स कुसलणरछेयसार-हिसुसंपरिगहितस्स सरसतबत्तीसतोरण(परि)मंडितस्स सकंकडवडिंसगस्स सचावसरपहरणाव-रणहरियस्स जोहजुद्धस्स रायंगणंसि वा अंतेपुरंसि वा रम्मंसि वा मणिकोट्टिमतलंसि अभिक्खणं २ अभिघट्टिज्जमाणस्स वा णियट्टिज्जमाणस्स वा [परूढवरतुरंगस्स चंडवेगाइद्धस्स] ओराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुतिकरा सव्वतो समंता सद्दा अभिणिस्सवंति, भवे एतारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से जहाणामए—वेयालियाए वीणाए उत्तरमंदामुच्छिताए अंके सुपइट्ठियाए वंद-णसारकाणपडिपट्टियाए कुसलणरणारिसंपगहिताए पदोसपच्चूसकालसमयंसि मंदं मंदं एइयाए वेइयाए खोभियाए उदीरियाए ओराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुतिकरा सव्वतो समंता सद्दा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से जहाणामए—किण्णराण वा किं-पुरिसाण वा महोरगाण वा गंधव्वाण वा भद्दसालवणगयाण वा नंदणवणगयाण वा सोमणस-वणगयाण वा पंडगवणगयाण वा हिमवंतमलयमंदरगिरिगुहसमण्णागयाण वा एगतो सहिताणं संमुहागयाणं समुविट्ठाणं संनिविट्ठाणं पमुदियपक्कीलियाणं गीयरतिगंधव्वहरिसियमणाणं गेज्जं पज्जं कत्थं गेयं पयविद्धं पायविद्धं उक्खित्तयं पवत्तयं मंदायं रोचियावसाणं सत्तसरसमण्णागयं अट्ठरससुसंपउत्तं छद्दोसविप्पमुक्कं एकारसगुणालंकारं अट्ठगुणोववेयं गुंजंतवंसकुहरोवगूढं

रत्तं तित्थाणकरणसुद्धं मधुरं समं सुललियं सकुहरगुंजंतवंसतंतीसुसंपउत्तं तालसुसंपउत्तं ताल-समं (रयसुसंपउत्तं गहसुसंपउत्तं) मणोहरं मउयरिभियपयसंचारं सुरभिं सुणतिं वरचारुरूवं दिव्वं नट्टं सज्जं गेयं पगीयाणं, भवे एयारूवे सिया?, हंता गोयमा! एवंभूए सिया ॥ (सू० १२६)

'तीसे णं जगतीए' इत्यादि, तस्या णमिति पूर्ववत् जगत्या उपरि पद्मवरवेदिकाया वहिर्वर्त्ती प्रदेशः **'तत्र'** तस्मिन् णमिति पूर्ववत्, महानेको वनषण्डः प्रज्ञप्तः, अनेकजातीयानामुत्तमानां महीरुहाणां समूहो वनषण्डः, आह च **मूलटीकाकारः**—'एगजाई-एहिं रुक्खेहिं वणं अणेगजाईएहिं उत्तमेहिं रुक्खेहिं वणसंडे' इति, स चैकैको देशोने द्वे योजने विष्कम्भतो जगतीसमकः **'परिक्षेपेण'** परिरयेण। कथम्भूतः? इत्याह—**'किण्हे'** इत्यादि, इह प्रायो वृक्षाणां मध्यमे वयसि वर्त्तमानानि पत्राणि नीला (कृष्णा)नि तद्योगाद् वनखण्डोऽपि कृष्ण, न चोपचारमात्रात्कृष्ण इति व्यपदेशः किन्तु तथाप्रतिभासनात्, तथा चाह—**'कृष्णावभासः'** यावति भागे कृष्णानि पत्राणि सन्ति तावति भागे स वनखण्डः कृष्णोऽवभासतेऽतः कृष्णोऽवभासो यस्यासौ कृष्णावभासः, तथा हरितत्वमति-क्रान्तानि कृष्णत्वमसंप्राप्तानि पत्राणि नीलानि तद्योगाद् वनखण्डोऽपि नीलः, न चैतदप्युपचारमात्रेणोच्यते किन्तु तथाऽवभासात्, तथा चाह—नीलावभासः, समासः प्राग्वत्, यौवने तान्येव पत्राणि किशलयत्वं रक्तत्वं चातिक्रान्तानि ईषद्धरितालाभानि पाण्डूनि सन्ति हरितानीत्युपदिश्यन्ते, ततस्तद्योगाद्वनपण्डोऽपि हरितः, न चैतदुपचारमात्रं, किन्तु तथाप्रतिभासोऽप्यस्ति तथा चाह—हरिता-वभासः, तथा बाल्यादतिक्रान्तानि वृक्षाणां पत्राणि शीतानि भवन्ति ततस्तद्योगाद् वनपण्डोऽपि शीतः, न चासौ न गुणतः किन्तु गुणत एव, तथा चाह—**'शीतावभासः'** अधोभागवर्त्तिनां व्यन्तराणां देवानां देवीनां च तद्योगे शीतवातसंस्पर्शः ततः स शीतो

वनपण्डोऽवभासते इति, तथा एते कृष्णनीलहरितवर्णा यथा (तः) स्वस्मिन् रूपेऽत्यर्थमुत्कटाः स्निग्धा भण्यन्ते तीव्राश्च ततस्तद्योगाद्वनख-
ण्डोऽपि स्निग्धस्तीव्रश्चोक्तः, न चैतदुपचारमात्रं, किन्तु तथा प्रतिभासोऽपि तत उक्तं स्निग्धावभासस्तीव्रावभास इति, इहावभासो
भ्रान्तोऽपि भवति यथा मरुमरीचिकासु जलावभासः ततो नावभासमात्रोपदर्शनेन यथाऽवस्थितं वस्तुस्वरूपमुक्तं वर्णितं भवति किन्तु
यथास्वरूपप्रतिपादनेन ततः कृष्णत्वादीनां तथास्वरूपप्रतिपादनार्थमनुवादपुरस्सरं विशेषणान्तरमाह—**'किण्हे किण्हच्छाये'** इत्यादि,
कृष्णो वनखण्डः, कुतः ? इत्याह—कृष्णच्छायः, 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मितिवचनाद्धेतौ प्रथमा, ततोऽ-
यमर्थः—यस्मात् कृष्णा छाया—आकारः सर्वाविसंवादितया तस्य तस्मात्कृष्णः, एतदुक्तं भवति—सर्वाविसंवादितया तत्र कृष्ण आकार
उपलभ्यते, न च भ्रान्तावभाससंपादितसत्ताकः सर्वाविसंवादी भवति, ततस्तत्त्ववृत्त्या स कृष्णो न भ्रान्तावभासमात्रव्यवस्थापित इति,
एवं नीलो नीलच्छाय इत्याद्यपि भावनीयं, नवरं शीतः शीतच्छाय इत्यत्र छायाशब्द आतपप्रतिपक्षवस्तुवाची द्रष्टव्यः, **'घणकडिय-
डच्छाए'** इति इह शरीरस्य मध्यभागे कटिस्ततोऽन्यस्यापि मध्यभागः कटिरिव कटिरित्युच्यते, कटिस्तटमिव कटितटं घना—अन्या-
न्यशाखाप्रशाखानुप्रवेशतो निविडा कटितटे—मध्यभागे छाया यस्य स घनकटितटच्छायः, मध्यभागे निविडतरच्छाय इत्यर्थः, क्वचि-
त्पाठः **'घनकडियकडच्छाए'** इति, तत्रायमर्थः—कटः सञ्जातोऽस्येति कटितः कटान्तरेणोपरि आवृत इत्यर्थः कटितश्चासौ कटश्च
कटितकटः घना—निविडा कटितकटस्येवाधोभूमौ छाया यस्य स घनकटितकटच्छायः अत एव रम्यो—रमणीयः, तथा महान्—जल-
भारावनतः प्रावृट्कालभावी मेघनिकुरम्बो—मेघसमूहस्तं भूतो—गुणैः प्राप्तो महामेघनिकुरम्बभूतः महामेघवृन्दोपम इत्यर्थः । **'ते णं
पायवा'** इत्यादि, **'ते'** वनषण्डान्तर्गताः पादपा **'मूलवन्तः'** मूलानि प्रभूतानि दूरावगाढानि च सन्त्येषामिति मूलवन्तः, कन्द एपा-

मस्तीति कन्दवन्तः, एवं स्कन्धवन्तस्त्वग्वन्तः शालावन्तः प्रवालवन्तः पत्रवन्तः पुष्पवन्तः फलवन्तो वीजवन्त इत्यपि भावनीयं, तत्र मूलानि—प्रसिद्धानि यानि कन्दस्याधः प्रसरन्ति कन्दास्तेषां मूलानामुपरिवर्त्तिनस्तेऽपि प्रतीताः, स्कन्धः—स्थुडं यतो मूलशाखाः प्रभवन्ति, त्वक्—छल्ली शाला—शाखा प्रवालः—पल्लवाङ्कुरः पत्रपुष्पफलवीजानि सुप्रसिद्धानि, सर्वत्रातिशायने कचिद्भूम्नि वा मतुप्प्रत्ययः, 'अणुपुव्वसुजाइरुइलवट्टभावपरिणया' इति आनुपूर्व्या—मूलादिपरिपाट्या सुष्ठु जाता आनुपूर्वीसुजाता रुचिलाः—स्निग्धतया देदीप्यमानच्छविमन्तः, तथा वृत्तभावेन परिणता वृत्तभावपरिणताः, किमुक्तं भवति ?—एवं नाम सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च शाखाभिः प्रशाखाभिश्च प्रसृता यथा वर्त्तुलाः संजाता इति, आनुपूर्वीसुजाताश्च ते रुचिराश्च ते च ते वृत्तभावपरिणताश्च आनुपूर्वीसुजातरुचिरवृत्तभावपरिणताः, तथा ते पादपाः प्रत्येकमेकस्कन्धाः, (समासान्तइन्) प्राकृते वाऽस्य स्त्रीत्वमिति 'एगखंधी' इति पाठः, तथाऽनेकाभिः शाखाभिः प्रशाखाभिश्च मध्यभागे विटपो—विस्तारो येषां तेऽनेकशाखाप्रशाखाविटपाः, तथा तिर्यग्बाहुद्वयप्रसारणप्रमाणो व्यामः अनेकैर्नरव्यामैः—पुरुषव्यामैः सुप्रसारितैरग्राह्यः—अप्रमेयो घनो—निविडो विपुलो—विस्तीर्णः स्कन्धो येषां ते अनेकनरव्यामसुप्रसारिताग्राह्यघनविपुलवृत्तस्कन्धाः, तथाऽच्छिद्राणि पत्राणि येषां ते अच्छिद्रपत्राः, किमुक्तं भवति ?—न तेषां पत्रेषु वातदोषतः कालदोषतो वा गड्डरिकादिरीतिरुपजायते, न तेषु पत्रेषु छिद्राणि भवन्तीत्यच्छिद्रपत्राः, अथवा एवं नामान्योऽन्यं शाखाप्रशाखानुप्रवेशात्पत्राणि पत्राणामुपरि जातानि येन मनागप्यपान्तरालरूपं छिद्रं नोपलक्ष्यत इति, तथा चाह—'अविरलपत्ता' इति, अत्र हेतौ प्रथमा ततोऽयमर्थः—यतोऽविरलपत्रा अतोऽच्छिद्रपत्राः, अविरलपत्रा अपि कुतः ? इत्याह—'अवातीनपत्राः' वातीनानि—वातोपहतानि वातेन पातितानीत्यर्थः न वातीनानि अवातीनानि पत्राणि येषां ते तथा, किमुक्तं भवति ?—न तत्र प्रबलो वातः खरपरुषो वाति येन पत्राणि त्रुटित्वा भूमौ

निपतन्ति, ततोऽवातीनपत्रत्वादविरलपत्रा इति, अच्छिद्रपत्रा इत्यत्र प्रथमव्याख्यानपक्षमधिकृत्य हेतुमाह—'**अणईइपत्ता**' न विद्यते ईतिः—गड्डरिकादिरूपा येषां तान्यनीतीनि अनीतीनि पत्राणि येषां ते अनीतिपत्राः, अनीतिपत्रत्वाच्चाच्छिद्रपत्राः, '**निद्धुयजरढपंडुरपत्ता**' इति निर्द्धूतानि—अपनीतानि जरठानि पाण्डूनि पत्राणि येभ्यस्ते निर्द्धूतजरठपाण्डुपत्राः, किमुक्तं भवति?—यानि वृक्षस्थानि जरठानि पाण्डूनि पत्राणि तानि वातेन निर्द्धूय निर्द्धूय भूमौ पात्यन्ते भूमेरपि च प्रायो निर्द्धूय निर्द्धूयान्यत्रापसार्यन्त इति, '**नवहरियभिसंतपत्तंधयारगंभीरदरसणिज्जा**' इति नवेन—प्रत्यग्रेण हरितेन—नीलेन भासमानेन—स्निग्धत्वचा दीप्यमानेन पत्रभारेण—दलसञ्चयेन यो जातोऽन्धकारस्तेन गम्भीरा—अलब्धमध्यभागाः सन्तो दर्शनीया नवहरितभासमानपत्रान्धकारगम्भीरदर्शनीयाः, तथा उपविनिर्गतैः—निरन्तरविनिर्गतैर्नवतरुणपल्लवैः तथा कोमलैः—मनोज्ञैरुज्ज्वलैः—शुद्धैश्चलद्भिः—ईषत्कम्पमानैः किशलयैः—अवस्थाविशेषोपेतैः पल्लवविशेषैः तथा सुकुमारैः प्रवालैः—पल्लवाङ्कुरैः शोभितानि वराङ्कुराणि—वराङ्कुरोपेतानि अग्रशिखराणि येषां ते उपविनिर्गतनवतरुणपत्रपल्लवकोमलोज्ज्वलचलत्किशलयसुकुमारप्रवालशोभितवराङ्कुराग्रशिखराः, इहाङ्कुरप्रवालयोः कालकृतावस्थाविशेषाद्विशेषो भावनीयः, '**निच्चं कुसुमिया निच्चं मउलिया निच्चं लवइया निच्चं थवइया निच्चं गोच्छिया निच्चं जमलिया निच्चं जुयलिया निच्चं विणमिया निच्चं पणमिया निच्चं कुसुमियमउलियलवइयथवइयगुलइयगोच्छियजमलियजुगलियविणमियपणमियसुविभत्तप(पिं)डिमंजरिवडंसगधरा**' इति पूर्ववत्, तथा शुकबर्हिणमदनशलाकाकोकिलकोरकभिङ्गारककोंडलजीवंजीवकनन्दीमुखकपिलपिङ्गलाक्षकारण्डवचक्रवाककलहंससारसाख्यानामनेकेषां शकुनगणानां मिथुनैः—स्त्रीपुंसयुग्मैर्विचरितं—इतस्ततो गतं यच्च शब्दोन्नतिकम्—उन्नतशब्दकं मधुरस्वरं च नादितं—लपितं येषु ते तथा, अत एव सुरम्याः—सुष्ठु रमणीयाः, अत्र शुकाः—कीराः बर्हिणो—मयूरा मदनशलाका—

शारिका कोकिलाऽपि चक्रवाककलहंससारसाः—प्रतीताः, शेषास्तु जीवविशेषा लोकतो वेदितव्याः, तथा संपिण्डिताः—एकत्र पिण्डीभूता दृप्ता—मदोन्मत्ततया दर्प्पाध्माता भ्रमरमधुकरीणां पहकराः—सङ्घाताः, 'पहकरओरोहसंघाया' इति देशीनाममालावचनात्, यत्र ते संपिण्डितदृप्तमधुकरभ्रमरमधुकरीपहकराः, तथा परिलीयमानाः—अन्यत आगत्यागत्य श्रयन्तो मत्ताः पट्पदाः कुसुमासवलोलाः—किञ्जल्कपानलम्पटा मधुरं गुमगुमायमानाः गुञ्जन्तश्च—शब्दविशेषं च विदधाना देशभागेषु तस्मिन् तस्मिन् देशभागे येषां ते परिलीयमानमत्तपट्पदकुसुमासवलोलमधुरगुमगुमायमानगुञ्जन्तदेशभागाः, गमकत्वादेवमपि समासः, ततो भूयः पूर्वपदेन सह विशेषणसमासः, तथाऽभ्यन्तराणि—अभ्यन्तरवर्त्तीनि पुष्पाणि फलानि च पुष्पफलानि येषां ते तथा, 'बाहिरपत्तच्छन्ना' इति बहिःपत्रैश्छन्ना—व्याप्ता बहिःपत्रछन्नाः, तथा पत्रैश्च पुष्पैश्च 'अवच्छन्नपरिच्छन्ना' अत्यन्तमाच्छादिताः, तथा 'नीरोगाः' रोगवर्जिताः 'अकण्टकाः' कण्टकरहिताः, नैतेषु मध्ये बब्बूलकादिवृक्षाः सन्तीति भावः, तथा स्वादूनि फलानि येषां ते स्वादुफलाः, तथा स्निग्धानि फलानि येषां ते स्निग्धफलाः, तथा प्रत्यासन्नैर्नानाविधैः—नानाप्रकारैर्गुच्छैः—वृन्ताकीप्रभृतिभिर्गुल्मैः—नवमालिकादिभिर्मण्डपैः—द्राक्षामण्डपकैरुपशोभिता नानाविधगुच्छगुल्ममण्डपकशोभिताः, तथा विचित्रैः—नानाप्रकारैः शुभैः—मङ्गलभूतैः केतुभिः—ध्वजैर्बहुला—व्याप्ता विचित्रशुभकेतुबहुलाः, तथा 'वाविपुक्खरिणीदीहियासु य निवेसियरम्मजालघरगा' वाप्यः—चतुरस्राकारास्ता एव वृत्ताः पुष्करिण्यः यदिवा पुष्कराणि विद्यन्ते यासु ताः पुष्करिण्यः दीर्घिका—ऋजुसारिण्यः वापीपुष्करिणीषु दीर्घिकासु च सुष्ठु निवेशितानि रम्याणि जालगृहकाणि येषु ते वापीपुष्करिणीदीर्घिकासुनिवेशितरम्यजालगृहकानि, तथा पिण्डिता सती निर्हारिमा—दूरे विनिर्गच्छन्ती पिण्डिमनीर्हारिमा तां सुगन्धि—सद्गन्धिकां शुभसुरभिभ्यो गन्धान्तरेभ्यः सकाशान्मनोहरा शुभसुरभिमनोहरा तां

च '**महया**' इति प्राकृतत्वाद्द्वितीयार्थे तृतीया महतीमित्यर्थः, गन्धघ्राणिं यावद्भिर्गन्धपुद्गलैर्गन्धविषये घ्राणिरुपजायते तावती गन्धपुद्गलसंहतिरुपचाराद् गन्धघ्राणिरित्युच्यते तां निरन्तरं मुञ्चन्तः, तथा '**सुहसेउकेउबहुला**' इति शुभाः—प्रधानाः सेतवो—मार्गा आलवालपाल्यो वा केतवो—ध्वजा बहुला—अनेकरूपा येषां ते तथा, '**अणेगरहजाणजुग्गसिवियसंदमाणिपडिमोयणा**' इति, तथा रथा द्विविधाः—क्रीडारथाः सङ्ग्रामरथाश्च, यानानि सामान्यतः, शेषाणि वाहनानि, युग्यानि—गोल्लविषयप्रसिद्धानि द्विहस्तप्रमाणानि वेदिकोपशोभितानि जम्पानानि शिविकाः—कूटाकारेणाच्छादिता जंपानविशेषाः स्यन्दमानिकाः—पुरुषप्रमाणा जम्पानविशेषाः, अनेकेषां रथादीनामधो विस्तीर्णत्वात् प्रतिमोचनं येषु ते तथा, '**पासाइया**' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ '**तस्स णं वणसंडस्से**'त्यादि, तस्य णमिति पूर्ववद् वनषण्डस्य '**अन्तः**' मध्ये बहुसमः सन् रमणीयो बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, किंविशिष्टः? इत्याह—'**से जहा नामए**' इत्यादि, '**तत्**' सकललोकप्रसिद्धं यथेति दृष्टान्तोपदर्शने नामेति शिष्यामन्त्रणे '**ए**' इति वाक्यालङ्कारे '**आलिंगपुक्खरेइ वा**' इति आलिङ्गो—मुरजो वाद्यविशेषस्तस्य पुष्करं—चर्म्मपुटकं तत् किलात्यन्तसममिति तेनोपमा क्रियते, इतिशब्दाः सर्वेऽपि स्वस्वोपमाभूतवस्तुपरिसमाप्तिद्योतकाः वाशब्दाः समुच्चये मृदङ्गो—लोकप्रतीतो मर्दलस्तस्य पुष्करं मृदङ्गपुष्करं परिपूर्णं—पानीयेन भृतं तडागं—सरस्तस्य तलं—उपरितनो भागः सरस्तलं '**करतलं**' प्रतीतं, चन्द्रमण्डलं च यद्यपि तत्त्ववृत्त्या उत्तानीकृतकपित्थाकारपीठप्रासादापेक्षया वृत्तालेखमिति तद्गतो दृश्यमानो भागो न समतलस्तथाऽपि प्रतिभासते समतल इति तदुपादानम्, आदर्शमण्डलं सुप्रसिद्धम्, '**उरब्भचम्मेइ वे**'त्यादि, अत्र सर्वत्रापि '**अणेगसंकुकीलगसहस्सवितते**' इति विशेषणयोगः, उरभ्रः—ऊरणः वृषभवराहसिंहव्याघ्रछगलाः प्रतीताः द्वीपी—चित्रकः, एतेषां प्रत्येकं चर्म्म अनेकैः शङ्कुप्रमाणैः कीलकसहस्रैः—महद्भिः कीलकैरताडितं प्रायो

मध्यक्षामं भवति न समतलं तथारूपतडाकासम्भवात् अतः शङ्कुग्रहणं, विततं—वितरीकृतं ताडितमिति भावः, यथाऽत्यन्तं बहुसमं भवति तथा तस्यापि वनषण्डस्यान्तर्बहुसमो भूमिभागः, पुनः कथम्भूतः? इत्याह—'नाणाविहपंचवन्नेहिं मणीहिं तणेहि य उवसोभिए' इति योगः, नानाविधा—जातिभेदान्नानाप्रकारा ये पञ्चवर्णा मणयस्तृणानि च तैरुपशोभितः, कथम्भूतैर्मणिभिः? इत्याह—'आवडे'त्यादि, आवर्तादीनि मणीनां लक्षणानि, तत्रावर्त्तः प्रतीत एकस्यावर्त्तस्य प्रत्यभिमुख आवर्त्तः प्रत्यावर्त्तः श्रेणिः—तथाविधबिन्दुजातादेः पङ्क्तिः तस्याश्च श्रेणेर्या विनिर्गताऽन्या श्रेणिः सा प्रश्रेणिः स्वस्तिकः प्रतीतः सौवस्तिकपुष्पमाणवौ—लक्षणविशेषौ लोकात्प्रत्येतव्यौ वर्द्धमानकं—शरावसंपुटं मत्स्यकाण्डकमकराण्डके—प्रतीते 'जारमारे'ति लक्षणविशेषौ सम्यग्मणिलक्षणवेदिनो लोकाद्वेदितव्यौ, पुष्पावलिपद्मपत्रसागरतरङ्गवासन्तीलतापद्मलताः प्रतीतास्तासां भक्त्या—विच्छित्त्या चित्रम्—आलेखो येषु ते आवर्त्तप्रत्यावर्त्तश्रेणिप्रश्रेणिस्वस्तिकसौवस्तिकपुष्पमाणववर्धमानकमत्स्याण्डकमकराण्डकजारमारपुष्पावलिपद्मपत्रसागरतरङ्गवासन्तीपद्मलताभक्तिचित्रास्तैः, किमुक्तं भवति?—आवर्त्तादिलक्षणोपेतैः, तथा सच्छायैः सती—शोभना प्रभा—कान्तिर्येषां ते सत्प्रभास्तैः 'समरीएहिं'ति समरीचिकैः—बहिर्विनिर्गतकिरणजालसहितैः 'सोद्द्योतैः' बहिर्व्यवस्थितप्रत्यासन्नवस्तुस्तोमप्रकाशकरोद्द्योतसहितैः, एवंभूतैर्नानाजातीयैः पञ्चवर्णैर्मणिभिस्तृणैश्चोपशोभितः, तानेव पञ्च वर्णानाह—'तंजहा कण्हे' इत्यादि ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र तेषां पञ्चवर्णानां मणीनां तृणानां च मध्ये णमिति वाक्यालङ्कारे ये ते कृष्णा मणयस्तृणानि च, ये इत्येव सिद्धे ये ते इति वचनं भाषाक्रमार्थं, तेषां णमिति पूर्ववत् 'अयम्' अनन्तरमुद्दिश्यमानः 'एतद्रूपः' अनन्तरमेव वक्ष्यमाणस्वरूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम—'जीमूत' इति 'जीमूतः' बलाहकः, स चेह प्रावृट्प्रारम्भसमये जलभृतो वेदितव्यः,

तस्यैव प्रायोऽतिकालिमसम्भवात्, इतिशब्द उपमाभूतवस्तुनामपरिसमाप्तिद्योतकः, वाशब्द उपमानान्तरापेक्षया समुच्चये, एवं सर्वत्रे-तिवाशब्दौ द्रष्टव्यौ, **'अञ्जनं'** सौवीराञ्जनं रत्नविशेषो वा **'खञ्जनं'** दीपमल्लिकामलः **'कज्जलं'** दीपशिखापतितं **'मषी'** तदेव कज्जलं ताम्रभाजनादिषु सामग्रीविशेषेण घोलितं **मषीगुलिका**—घोलितकज्जलगुटिका, कचित् **'मसी इति मसीगुलिया** इति वे'ति न दृश्यते, **गवलं**—माहिषं शृङ्गं तदपि चोपरितनत्वग्भागापसारणेन द्रष्टव्यं, तत्रैव विशिष्टस्य कालिम्नः सम्भवात्, तथा तस्यैव माहिषशृङ्गस्य निबिडतरसारनिर्वर्त्तिता गुडिका गवलगुडिका **'भ्रमरः'** प्रतीतः **'भ्रमरावली'** भ्रमरपङ्क्तिः **'भ्रमरपतङ्गसारः'** भ्रमरपक्षान्तर्गतो विशिष्टकालिमोपचितः प्रदेशः **'जम्बूफलं'** प्रतीतम् **'आर्द्रारिष्टः'** कोमलकाकः **'परपुष्टः'** कोकिलः गजो गजकलभश्च प्रतीतः **'कृष्णसर्पः'** कृष्णवर्णसर्प्पजातिविशेषः **'कृष्णकेसरः'** कृष्णवकुलः **'आकाशथिग्गलं'** शरदि मेघविनिर्मुक्तमाकाशखण्डं तद्धत्कृष्णमतीव प्रतिभातीति तदुपादानं, कृष्णाशोककृष्णकणवीरकृष्णबन्धुजीवाः अशोककणवीरबन्धुजीववृक्षभेदाः, अशोकादयो हि पञ्चवर्णा भवन्ति ततः शेषवर्णव्युदासार्थं कृष्णग्रहणम्, एतावत्युक्ते गौतमो भगवन्तं पृच्छति—**'भवे एयारूवे'** इति भवेन्मणीनां तृणानां च कृष्णो वर्णः **'एतद्रूपः'** जीमूतादिरूपः?, भगवानाह—गौतम! **'नायमर्थः समर्थः'** नायमर्थ उपपन्नो यदुतैवंभूतः कृष्णो वर्णो मणीनां तृणानां च, किन्तु ते कृष्णा मणयस्तृणानि च **'इतः'** जीमूतादेः **'इष्टतरका एव'** कृष्णवर्णेनाभीप्सिततरका एव, तत्र किञ्चिदकान्तमपि केषाञ्चिदिष्टतरं भवति ततोऽकान्ततान्यवच्छित्त्यर्थमाह—**'कान्ततरका एव'** अतिस्निग्धमनोहारिकालिमोपचिततया जीमूतादेः कमनीयतरका एव, अत एव **'मनोज्ञतरकाः'** मनसा ज्ञायन्ते—अनुकूलतया स्वप्रवृत्तिविषयीक्रियन्त इति मनोज्ञा—मनोऽनुकूलास्ततः प्रकर्षविवक्षायां तरप्प्रत्ययः, तत्र मनोज्ञतरमपि किञ्चिन्मध्यमं भवति ततः सर्वोत्कर्षप्रतिपादनार्थमाह—**'मनआपतरका एव'** द्र-

तॄणां मनांसि आप्नुवन्ति—प्राप्नुवन्ति आसवशतां नयन्तीति मनआपास्ततः प्रकर्षविवक्षायां तरप्प्रत्ययः, प्राकृतत्वाच्च पकारस्य मकारे मणामतरा इति भवति। तथा 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र तेषां मणीनां तृणानां च मध्ये ये ते नीला मणयस्तृणानि च तेषामयमेतद्रूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम—'भृङ्गः' कीटविशेषः पक्ष्मलः भृङ्गपत्रं—तस्यैव भृङ्गाभिधानस्य कीटविशेषस्य पक्ष्म 'शुकः' कीरः 'शुकपिच्छं' शुकस्य पत्रं 'चापः' पक्षिविशेषः 'चापपिच्छं' चापपक्षः 'नीली' प्रतीता 'नीलीभेदः' नीलीच्छेदः 'नीलीगुलिया' नीलीगुटिका 'श्यामाकः' धान्यविशेषः 'उच्चंतगे वा' इति 'उच्चन्तगः' दन्तरागः 'वनराजी' प्रतीता हलधरो—बलदेवस्तस्य वसनं हलधरवसनं तच्च किल नीलं भवति, सदैव तथास्वभावतया हलधरस्य नीलवस्त्रपरिधानात्, मयूरग्रीवापारापतग्रीवाऽतसीकुसुमबाणकुसुमानि प्रतीतानि, अत ऊर्द्ध क्वचित् 'इंदनीलेइ वा महानीलेइ वा मरगतेइ वा' तत्र इन्द्रनीलमहानीलमरकता रत्नविशेषाः प्रतीताः, अञ्जनकेशिका—वनस्पतिविशेषस्तस्याः कुसुममञ्जनकेशिकाकुसुमं 'नीलोत्पलं' कुवलयं नीलाशोकनीलकणवीरनीलबन्धुजीवा अशोकादिवृक्षविशेषाः, 'भवे एयारूवे' इत्यादि प्राग्वद् व्याख्येयम्। तथा 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र तेषां मणीनां मध्ये ये ते लोहिता मणयस्तृणानि च तेषामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम शशकरुधिरमुरभ्र—ऊरणस्तस्य रुधिरं वराहः—शूकरस्तस्य रुधिरं मनुष्यरुधिरं महिषरुधिरं च प्रतीतं, एतानि हि किल शेषरुधिरेभ्यो लोहितवर्णोत्कटानि भवन्ति तत एतेषामुपादानं, 'बालेन्द्रगोपकः' सद्योजात इन्द्रगोपकः, स हि प्रवृद्धः सन्नीषत्पाण्डुरक्तो भवति ततो बालग्रहणम्, इन्द्रगोपकः—प्रथमप्रावृट्कालभावी कीटविशेषः 'बालदिवाकरः' प्रथममुद्गच्छन् सूर्यः 'सन्ध्याभ्ररागः' वर्षासु सन्ध्यासमयभावी अभ्ररागः गुञ्जा—लोकप्रतीता तस्या अर्द्धे रागो गुञ्जार्द्धरागः, गुञ्जाया हि अर्द्ध-

मतिरक्तं भवति अर्द्धमतिक्रष्णं ततो गुञ्जार्द्धग्रहणं, जपाकुसुमकिंशुककुसुमपारिजातकुसुमजात्यहिङ्गुलका:-प्रतीता: 'शिलाप्रवालं' प्रवालनामा रत्नविशेष: प्रवालाङ्कुर: तस्यैव रत्नविशेषस्य प्रवालाभिधस्याङ्कुर:, स हि प्रथमोद्गतत्वेनात्यन्तरक्तो भवति ततस्तदुपादानं, लोहिताक्षमणिर्नाम रत्नविशेष:, लाक्षारसकृमिरागरक्तकम्बलचीनपिष्टराशिरक्तोत्पलरक्ताशोकरक्तकणवीररक्तबन्धुजीवा: प्रतीता: 'भवे एयारूवे' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र तेषां मणीनां तृणानां च मध्ये ये हरिद्रा मणयस्तृणानि च तेषामयमेतद्रूपो 'वर्णावास:' वर्णकविशेष: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम—चम्पक: सामान्यत: सुवर्णचम्पको वृक्ष: 'चम्पकच्छली' सुवर्णचम्पकत्वक् 'चम्पकभेद:' सुवर्णचम्पकच्छेद: 'हरिद्रा' प्रतीता 'हरिद्राभेद:' हरिद्राच्छेद: 'हरिद्रागुलिका' हरिद्रासारनिर्वर्त्तिता गुलिका 'हरितालिका' पृथ्वीविकाररूपा प्रतीता 'हरितालिकाभेद:' हरितालिकाच्छेद: 'हरितालिकागुलिका' हरितालिकासारनिर्वर्त्तिता गुटिका 'चिकुर:' रागद्रव्यविशेष: 'चिकुराङ्गराग:' चिकुरसंयोगनिमित्तो वस्त्रादौ राग:, वरकनकस्य—जात्यसुवर्णस्य य: कषपट्टके निघर्ष: स वरकनकनिघर्ष:, वरपुरुषो—वासुदेवस्तस्य वसनं वरपुरुषवसनं, तद्धि किल पीतमेव भवतीति तदुपादानम्, अ(स)ल्लकीकुसुमं लोकतोऽवसेयं 'चम्पककुसुमं' सुवर्णचम्पककुसुमं 'कूष्माण्डीकुसुमं' पुष्पफलीकुसुमं कोरण्टक:—पुष्पजातिविशेषस्तस्य दाम कोरण्टकदाम तडवडा आउली तस्या: कुसुमं तडवडाकुसुमं घोषातकीकुसुमं सुवर्णयूथिकाकुसुमं च प्रतीतं सुहरिण्यका—वनस्पतिविशेषस्तस्या: कुसुमं सुहरिण्यकाकुसुमं बीयको—वृक्ष: प्रतीतस्तस्य कुसुमं बीयककुसुमं पीताशोकपीतकणवीरपीतबन्धुजीवा: प्रतीता: 'भवे एयारूवे' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तत्थ ण' मित्यादि, तत्र तेषां मणीनां तृणानां च मध्ये ये ते शुक्ला मणयस्तृणानि च तेषामयमेतद्रूपो वर्णावास: प्रज्ञप्त:, तद्यथा–'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम—'अङ्क:' रत्न-

विशेषः शङ्खचन्द्रकुमुदोदकरजोदधिवनक्षीरक्षीरपूरक्रौञ्चावलिहारावलिहंसावलिवलाकावलयः प्रतीताः 'चन्द्रावली' तडाकादिषु जलमध्यप्रतिबिम्बितचन्द्रपङ्क्तिः 'सारइयवलाहगेइ वा' इति शारदिकः—शरत्कालभावी वलाहको—मेघः 'धंतधोयरुप्पपट्टेइ वे'ति, ध्मातः—अग्निसंपर्केण निर्मलीकृतो धौतो—भूतिखरण्टितहस्तसन्मार्जनेनातिनिशितीकृतो यो रूप्यपट्टो—रजतपत्रं स ध्मातधौतरूप्यपट्टः, अन्ये तु व्याचक्षते—ध्मातेन—अग्निसंयोगेन यो धौतः—शोधितो रूप्यपट्टः स ध्मातरूप्यपट्टः, शालिपिष्टराशिः—शालिक्षोदपुञ्जः कुन्दपुष्पराशिः कुमुदराशिश्च प्रतीतः, 'सुक्कछेवाडियाइ वा' इति छेवाडी नाम—वल्लादिफलिका, सा च क्वचिद्देशविशेषे शुष्का सती शुक्ला भवति ततस्तदुपादानं, 'पेहुणमिंजियाइ वा' इति पेहुणं—मयूरपिच्छं तन्मध्यवर्त्तिनी मिञ्जा पेहुणमिञ्जिका सा चातिशुक्लेति तदुपन्यासः, विसं—पद्मिनीकन्दः मृणालं—पद्मतन्तुः, गजदन्तलवङ्गदलपुण्डरीकदलश्वेतकणवीरश्वेतबन्धुजीवाः प्रतीताः, 'भवेयारूवे' इत्यादि प्राग्वत् ॥ तदेवमुक्तं वर्णस्वरूपं, सम्प्रति गन्धस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—'तेसि णं मणीणं तणाण य' इत्यादि, तेषां मणीनां तृणानां च कीदृशो गन्धः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—'से जहा नाम ए' इत्यादि, प्राकृतत्वात् 'से' इति बहुवचनार्थः, ते यथा नाम गन्धा अभिनिःश्रवन्तीति सम्बन्धः, कोष्ठं—गन्धद्रव्यं तस्य पुटाः कोष्ठपुटास्तेषां, वाशब्दाः सर्वत्रापि समुच्चये, इहैकस्य पुटस्य न तादृशो गन्ध आयाति द्रव्यस्याल्पत्वात् ततो बहुवचनं, तगरमपि गन्धद्रव्यम्, 'एलाः' प्रतीताः 'चोयगं' गन्धद्रव्यं चम्पकदमनककुङ्कुमचन्दनोशीरमरुवकजातीयूथिकामल्लिकास्नानमल्लिकाकेतकीपाटलानवमालिकावासकर्पूराणि प्रतीतानि नवरमुशीरं—वीरणीमूलं स्नानमल्लिका—स्नानयोग्यो मल्लिकाविशेषः एतेषामनुवाते—आघ्रायकविवक्षितपुरुषाणामनुकूले वाते वाति सति 'उब्भिज्जमानानाम्' उद्घाट्यमानानां, चशब्दः सर्वत्रापि समुच्चये, 'निर्भिद्यमानानां' नितरां—अतिशयेन भिद्यमानानां 'कोट्टिज्जमाणाण वा'

इति, इह पुटैः परिमितानि यानि कोष्ठादिगन्धद्रव्याणि तान्यपि परिमेये परिमाणोपचारात्कोष्ठपुटानीत्युच्यन्ते तेषां '**कुट्टयमानानाम्**' उदूखले कुट्टयमानानां '**रुविज्जमाणाण वा**' इति श्लक्ष्णखण्डीक्रियमाणानाम्, एतच्च विशेषणद्वयं कोष्ठादिद्रव्याणामवसेयं, तेषामेव प्रायः कुट्टनश्लक्ष्णखण्डीकरणसम्भवात्, न तु यूथिकादीनाम्, '**उक्किरिज्जमाणाण वा**' इति क्षुरिकादिभिः कोष्ठादिपुटानां कोष्ठादिद्रव्याणां वा उत्कीर्यमाणानां '**विक्खरिज्जमाणाण वा**' इति '**विकीर्यमाणानाम्**' इतस्ततो विप्रकीर्यमाणानां '**परिभुज्जमाणाण वा**' परिभोगायोपभुज्यमानानां, कचित्पाठः '**परिभाएज्जमाणाण वा**' इति, तत्र '**परिभाज्यमानानां**' पार्श्ववर्त्तिभ्यो मनाग् २ दीयमानानां '**भंडाओ भंडं साहरिज्जमाणाण वा**' इति '**भाण्डात्**' स्थानादेकस्माद् अन्यद् भाण्ड–भाजनान्तरं संह्रियमाणानाम् '**उदाराः**' स्फाराः, ते चामनोज्ञा अपि स्युरत आह—'**मनोज्ञाः**' मनोऽनुकूलाः, तच्च मनोज्ञत्वं कुतः ? इत्याह—'**मनोहराः**' मनो हरन्ति–आत्मवशं नयन्तीति मनोहराः, यतस्ततो मनोहरत्वं कुतः ? इत्याह–घ्राणमनोनिर्वृतिकराः, एवंभूताः '**सर्वतः**' सर्वासु दिक्षु '**समन्ततः**' सामस्त्येन गन्धाः '**अभिनिःस्रवन्ति**' जिघ्रतामभिमुखं निस्सरन्ति, एवमुक्ते शिष्यः पृच्छति–'**भवे एयारूवे**' इत्यादि प्राग्वत् ॥ तेषां मणीनां तृणानां च कीदृशः स्पर्शः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह–गौतम ! '**से जहा नाम ए**' इत्यादि, तद्यथा—'**अजिनकं**' चर्म्ममयं वस्त्रं रूतं च प्रतीतं '**वूरः**' वनस्पतिविशेषः '**नवनीतं**' म्रक्षणं हंसगर्भतूली शिरीषकुसुमनिचयश्च प्रतीतः '**बालकुमुदपत्तरासीइ वे**'ति बालानि–अचिरकालजातानि यानि कुमुदपत्राणि तेषां राशिर्बालकुमुदपत्रराशिः, कचित् बालकुसुमपत्रराशिरिति पाठः, '**भवे एयारूवे**' इत्यादि प्राग्वत् ॥ '**तेसि णं भंते !**' इत्यादि, तेषां भदन्त ! तृणानां पूर्वापरदक्षिणोत्तरागतैर्वातैः '**मन्दायं मन्दाय**'मिति मन्दं मन्दम् '**एजितानां**' कम्पितानां '**व्येजितानां**' विशेषतः कम्पितानाम्, एत-

देव पर्यायशब्देन व्याचष्टे—कम्पितानां तथा **'चालितानाम्'** इतस्ततो विक्षिप्तानाम्, एतदेव पर्यायेण व्याचष्टे—स्पन्दितानां तथा **'संघट्टितानां'** परस्परं घर्षयुक्तानां, कथं घट्टिताः? इत्याह—**'क्षोभितानां'** स्वस्थानाच्चालितानां, स्वस्थानाच्चालनमपि कुतः? इत्याह—**'उदीरितानाम्'** उत्प्राबल्येनेरितानां—प्रेरितानां, कीदृशः शब्दः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—**'गोयमे'** त्यादि, गौतम! स यथानामकः—शिबिकाया वा स्पन्दमानिकाया वा रथस्य वा, तत्र शिबिका—जम्पानविशेषरूपा उपरिच्छादिता कोष्ठाकारा, तथा दीर्घो—जम्पानविशेषः पुरुषस्य स्वप्रमाणावकाशदायी स्यन्दमानिका, अनयोश्च शब्दः पुरुषोत्पाटितयोः क्षुद्रहेमघण्टिकादिचलनवशतो वेदितव्यः, रथश्चेह सङ्ग्रामरथः प्रत्येयो, न क्रीडारथः, तस्यामेतनविशेषणानामसंभवात्, तस्य च फलकवेदिका यस्मिन् काले (यः) पुरुषस्तदपेक्षया कटिप्रमाणाऽवसेया, तस्य च रथस्य विशेषणान्यभिधत्ते—**'सच्छत्तस्से'**त्यादि, सच्छत्रस्य सध्वजस्य **'सघण्टाकस्य'** उभयपार्श्वावलम्बिमहाप्रमाणघण्टोपेतस्य सपताकस्य सह तोरणवरं—प्रधानं तोरणं यस्य स सतोरणवरस्तस्य सह नन्दिघोषो—द्वादशतूर्यनिनादो यस्य स सनन्दिघोषस्तस्य, तथा सह किङ्किणीभिः—क्षुद्रघण्टाभिर्वर्त्तन्त इति सकिङ्किणीकानि यानि हेमजालानि—हेममयदामसमूहास्तैः सर्वासु दिक्षु पर्यन्तेषु—बहिःप्रदेशेषु परिक्षिप्तो—व्याप्तः सकिङ्किणीकहेमजालपर्यन्तपरिक्षिप्तस्तस्य, तथा हैमवतं—हिमवत्पर्वतभावि चित्रविचित्रं—मनोहारिचित्रोपेतं तैनिशं—तिनिशदारुसम्बन्धि कनकनियुक्तं—कनकविच्छुरितं दारु—काष्ठं यस्य स हैमवतचित्रविचित्रतैनिशकनकनियुक्तदारुस्तस्य, सूत्रे च द्वितीयककारः स्वार्थिकः पूर्वस्य च दीर्घ प्राकृतत्वात्, तथा सुष्ठु—अतिशयेन सम्यक् पिनद्धमरकमण्डलं धूश्च यस्य स सुपिनद्धारकमण्डलधूष्कस्तस्य, तथा **कालायसेन**—लोहेन **सुष्ठु**—अतिशयेन कृतं **नेमेः**—बाह्यपरिधेर्यन्त्रस्य च—अरकोपरि फलकचक्रवालस्य कर्म्म यस्मिन् स कालायससुकृतनेमियन्त्रकर्म्मा तस्य, तथा **आकीर्णा**—गुणैर्व्याप्ता ये **वराः**—प्रधा-

नास्तुरगास्ते **सुष्ठु**—अतिशयेन सम्यक् **प्रयुक्ता**—योत्रिता यस्मिन् स आकीर्णवरतुरगसुसंप्रयुक्तः, प्राकृतत्वाद् वहुव्रीहावपि निष्ठान्तस्य परनिपातः, तथा सारथिकर्म्मणि ये कुशला नरास्तेषां मध्येऽतिशयेन **छेको**—दक्षः सारथिस्तेन सुष्ठु सम्यक्परिगृहीतस्य, तथा '**सरसयबत्तीसतोणमंडियस्स**' इति शराणां शतं प्रत्येकं येषु तानि शरशतानि तानि च तानि द्वात्रिंशत्तोणानि च—बाणाश्रयाः शरशतद्वात्रिंशत्तोणानि तैर्मण्डितः शरशतद्वात्रिंशत्तोणमण्डितः, किमुक्तं भवति ?—एवं नाम तानि द्वात्रिंशच्छरशतधृतानि तूणानि रथस्य सर्वतः पर्यन्तेष्ववलम्बितानि यथा तानि तस्य सङ्ग्रामायोपकल्पितस्यातीव मण्डनाय भवन्तीति, तथा **कङ्कटं**—कवचं सह कङ्कटं यस्य स सकङ्कटः सकङ्कटोऽ**वतंसः**—शेखरो यस्य स सकङ्कटावतंसस्तस्य, तथा सह चापं येषां ते सचापा ये शरा यानि च कुन्तभल्लिमुपण्ढिप्रभृतीनि नानाप्रकाराणि यानि च कवचखेटकप्रमुखाणि आवरणानि तैर्भृतः—परिपूर्णः, तथा योधानां युद्धं तन्निमित्तं सद्यः प्रगुणीभूतो यः स योधयुद्धसज्जः, ततः पूर्वपदेन सह विशेषणसमासः, तस्येत्थंभूतस्य राजाङ्गणे अन्तःपुरे वा रम्ये वा मणिकुट्टिमतले—मणिबद्धभूमितले अभीक्ष्णमभीक्ष्णं मणिको(कु)ट्टिमतलप्रदेशे राजाङ्गणप्रदेशे वा '**अभिघट्टिज्जमाणस्से**'ति अभिघट्ट्यमानस्य वेगेन गच्छतो ये **उदारा**—मनोज्ञाः कर्णमनोनिर्वृतिकराः सर्वतः समन्तात् शब्दा अभिनिस्सरन्ति, '**भवे एयारूवे सिया**' इति 'स्यात्' कथञ्चिद् भवेद् एतद्रूपस्तेषां मणीनां तृणानां च शब्दः ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थः, पुनरपि गौतमः प्राह—स यथा नामकः—प्रातः सन्ध्यायां देवतायाः पुरतो या वादनायोपस्थाप्यते सा किल मङ्गलपाठिका तालाभावे च वाद्यते इति वितालेे—तालाभावे भवतीति वैतालिकी तस्या वैतालिक्या—वीणाया '**उत्तरामन्दा मुच्छियाए**' इति मूर्छनं मूर्छा सा संजाताऽस्या इति मूर्च्छिता **उत्तरमन्दया**—उत्तरमन्दाभिधानया मूर्च्छनया—गान्धारस्वरान्तर्गतया सप्तम्या मूर्च्छिता उत्तरमन्दामूर्च्छिता, किमुक्तं भवति ?—गान्धारस्वरस्य सप्त मू-

च्छेना भवन्ति, तद्यथा—"नंदी य खुड्डिमा पूरिमा य चोत्थी अ सुद्धगंधारा। उत्तरगन्धारावि य हवई सा पंचमी मुच्छा ॥ १ ॥ सुहुमुत्तरआयामा छट्ठी सा नियमसो उ वोद्धव्वा। उत्तरमंदा य तहा हवई सा सत्तमी मुच्छा ॥ २ ॥" अथ किंस्वरूपा मूर्च्छना: ?, उच्यते, गान्धारादिस्वरूपामोचनेन गायतोऽतिमधुरा अन्यान्यस्वरविशेषा यान् कुर्वन्नास्तां श्रोतॄन् मूर्च्छितान् करोति किन्तु स्वयमपि मूर्च्छित इव तान् करोति, यदिवा स्वयमपि साक्षान्मूर्च्छा करोति, तथा चोक्तम्—"अन्नन्नसरविसेसे उप्पायंतस्स मुच्छणा भणिया। कत्तावि मुच्छितो इव कुणए मुच्छं व सोवेति ॥ १ ॥" गान्धारस्वरान्तर्गतानां च मूर्च्छनानां मध्ये सप्तमी उत्तरमन्दाभिधाना मूर्च्छना किलातिप्रकर्षप्राप्ता ततस्तदुत्पादनया च मुख्यवृत्त्या वादयिता मूर्च्छितो भवति, परमभेदोपचारात् वीणाऽपि मूर्च्छितेत्युक्ता, साऽपि यद्यङ्के सुप्रतिष्ठिता न भवति ततो न मूर्च्छनाप्रकर्षं विदधाति तत आह—अङ्के—स्त्रियाः पुरुषस्य वा उत्सङ्गे सुप्रतिष्ठितायाः, तथा कुशलेन—वादननिपुणेन नरेण पुरुषेण नार्या वा सुष्ठु—अतिशयेन सम्यग् गृहीतायाः, तथा चन्दनस्य सारः चन्दनसारस्तेन निर्मापितो यः कोणो—वादनदण्डस्तेन परिघट्टितायाः—संस्पृष्टायाः 'पच्चूसकालसमयंसि' इति 'प्रत्यूषकालसमये' प्रभातवेलायां, कचित् 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि' इति पाठस्तत्र प्रदोषसमये प्रात.समये चेत्यर्थः, 'मन्दं मन्दं' शनैः शनैः 'एजितायाः' चन्दनसारकोणेन मनाक् कम्पितायाः 'व्येजितायाः' विशेषतः कम्पितायाः, एतदेव पर्यायेण व्याचष्टे—चालितायास्तथा घट्टितायाः, ऊर्द्धाधोगच्छता चन्दनसारकोणेन गाढतरं वीणादण्डेन सह तन्त्र्याः स्पृष्टाया इत्यर्थः, तथा 'स्पन्दितायाः' नखाग्रेण स्वरविशेषोत्पादनार्थमीषच्चालितायाः 'क्षोभितायाः' मूर्च्छा प्रापिताया ये 'उदारा' मनोज्ञाः कर्णमनोनिर्वृतिकराः सर्वतः समन्ताच्छब्दा अभिनिस्सरन्ति, 'स्यात्' कथञ्चिद् भवेदेतद्रूपस्तेषां तृणानां मणीनां च शब्दः ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थः, पुनरपि गौतमः प्राह—स यथा नामकः—किंनराणां वा

किंपुरुषाणां वा महोरगाणां वा गन्धर्वाणां वा, वाशब्दाः सर्वेऽपि विकल्पार्थाः, किंनरादयो व्यन्तरविशेषाः, तेषां कथम्भूतानाम्? इत्याह—'भद्रशालवनगतानां वा' इत्यादि, तत्र मेरोः समन्ततो भूमौ भद्रशालवनं प्रथममेखलायां नन्दनवनं शिरसि चूलिकायाः पा-श्वेषु सर्वतः पण्डकवनं 'महाहिमवंतमलयमन्दरगिरिगुहासमन्नागयाणं' इति महाहिमवान्—हैमवतक्षेत्रस्योत्तरतः सीमाकारी वर्ष-धरपर्वतः, उपलक्षणं शेषवर्षधरपर्वतानां, मलयपर्वतस्य मन्दरगिरेश्च—मेरुपर्वतस्य च गुहा समन्वागतानां, वाशब्दा विकल्पार्थाः, एतेषु हि स्थानेषु प्राय: किंनरादयः प्रमुदिता भवन्ति तत एतेषामुपादानम्, 'एगतो सहियाणं'ति एकस्मिन् स्थाने सहितानां—समुदितानां 'समुहागयाणं'ति परस्परसंमुखागतानां—संमुखं स्थितानां, नैकोऽपि कस्यापि पृष्ठं दत्त्वा स्थित इत्यर्थः, पृष्ठदाने हर्षविघातोत्पत्तेः, तथा 'समुविट्ठाणं' सम्यक् परस्परानाबाधया उपविष्टाः समुपविष्टास्तेषां समुपविष्टानां, तथा 'संनिविट्ठाण'मिति सम्यक् स्वशरीराना-बाधया न तु विषमसंस्थानेन निविष्टाः संनिविष्टास्तेषां, 'पमुइयपक्कीलियाणं'ति प्रमुदिताः—प्रहर्षं गताः प्रक्रीडिताः—क्रीडितुमारब्ध-वन्तस्ततो विशेषणसमासस्तेषां, तथा गीते रतिर्येषां ते गीतरतयो गन्धर्वे—नाट्यादि तत्र हर्षितमनसो गन्धर्वहर्षितमनसस्ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासस्तेषां गद्यादिभेदादष्टविधं गेयं, तत्र गद्यं यत्र स्वरसञ्चारेण गद्यं गीयते, यत्र तु पद्यं—वृत्तादि गीयते तत्पद्यं, यत्र कथिकादि गीयते तत्कथ्यं, पदबद्धं यदेकाक्षरादि यथा ते ते इत्यादि, पादबद्धं यद् वृत्तादिचतुर्भागमात्रे पदे बद्धम्, 'उक्खित्ताय'—मिति उक्षिप्तकं प्रथमतः समारभ्यमाणं, दीर्घत्वं ककारात्पूर्वं प्राकृतत्वात्, एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यं, 'प्रवृत्तकं' प्रथमसमारम्भादूर्द्ध्वमाक्षे-पपूर्वकप्रवर्त्तमानं 'मंदाय'मिति मन्दकं मध्यभागे सकलमूर्च्छनादिगुणोपेतं मन्दं मन्दं संचरन्, तथा 'रोइयावसाणं'ति रोचितं—सम्यग्भावितमवसानं यस्य तद् रोचितावसानं, शनैः शनैः प्रक्षिप्यमाणस्वरं यस्य गेयस्यावसानं तद् रोचितावसानमिति भावः, तथा

'सप्तस्वरसमन्वागतं' सप्त स्वराः षड्जादयः, उक्तञ्च—"सज्जे रिसह गंधारे, मज्झिमे पंचमे सरे। धेवए चेव नेसाए, सरा सत्त वियाहिया ॥ १ ॥" ते च सप्त स्वराः पुरुषस्य स्त्रिया वा नाभीतः समुद्भवन्ति 'सत्त सरा नाभीतो' इति पूर्वमहर्षिवचनात्, तथाऽष्टभी रसैः—शृङ्गारादिभिः सम्यक् प्रकर्षेण युक्तमष्टरससम्प्रयुक्तं, तथा एकादश अलङ्काराः **पूर्वान्तर्गते स्वरप्राभृते** सम्यगभिहिताः, तानि च पूर्वाणि सम्प्रति व्यवच्छिन्नानि ततः पूर्वेभ्यो लेशतो विनिर्गतानि यानि **भरतविशाखिलप्रभृतीनि** तेभ्यो वेदितव्याः, **'छद्दोसविप्पमुक्कं'**ति षड्भिर्दोषैर्विप्रमुक्तं षड्दोषविप्रमुक्तं, ते च षड् दोषा अमी—'भीयं दुयमुप्पिच्छं उत्तालं कागस्सरमणुणासं च'। उक्तञ्च—"भीयं दुयमुप्पिच्छत्थमुत्तालं च कमसो मुणेयव्वं। काकस्सरमणुनासं छद्दोसा होंति गेयस्स ॥ १ ॥" तत्र 'भीतम्' उत्त्रस्तं, किमुक्तं भवति ?—यदुत्त्रस्तेन मनसा गीयते तद्भीतपुरुषनिबन्धनधर्म्मानुवृत्तत्वाद्भीतमुच्यते, 'द्रुतं' यत्त्वरितं गीयते, 'उप्पिच्छं' नाम आकुलम्, उक्तञ्च—"आहित्थं उप्पिच्छं च आउलं रोसभरियं च" अस्यायमर्थः—आहित्थमुप्पिच्छं च प्रत्येकमाकुलं रोषभृतं वोच्यत इति, आकुलता च श्वासेन द्रष्टव्या तथा पूर्वसूरिभिर्व्याख्यानात्, उक्तञ्च **मूलटीकायाम्**—"उप्पिच्छं श्वासयुक्त"मिति, तथा उत्—प्राबल्येनातितालमस्थानतालं वा उत्तालं, श्लक्ष्णस्वरेण काकस्वरं, सानुनासिकमनुनासं, नासिकाविनिर्गतस्वरानुगतमिति भावः, तथा **'अट्ठगुणोववेय'**मिति अष्टभिर्गुणैरुपेतमष्टगुणोपेतं, ते चाष्टावमी गुणाः—पूर्णं रक्तमलङ्कृतं व्यक्तमविघु(घु)ष्टं मधुरं समं सललितं च, तथा चोक्तम्—"पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहेव अविघु(घु)ट्ठं। महुरं समं सललियं अट्ठ गुणा होंति गेयस्स ॥ १ ॥" तत्र यत्स्वरकलाभिः पूर्णं गीयते तत्पूर्णं, गेयरागानुरक्तेन यद् गीयते तद्रक्तम्, अन्योऽन्यस्वरविशेषकरणेन यदलङ्कृतमेव गीयते तदलङ्कृतम्, अक्षरस्वरस्फुटकरणतो व्यक्तं, विस्वरं क्रोशतीव विघु(घु)ष्टं न विघुष्टमविघु(घु)ष्टं, मधुरस्वरेण गीयमानं मधुरं कोकिलारुत-

वत्, तालवंशस्वरादिसमनुगतं समं, तथा यत्स्वरघोलनाप्रकारेण ललतीव तत् सह ललितेनेति सललितं, यदिवा यच्छ्रोत्रेन्द्रियस्य शब्दस्पर्शनमतीव सूक्ष्ममुत्पादयति सुकुमारमिव च प्रतिभासते तत् सललितम् ॥ इदानीमेतेषामेवाष्टानां गुणानां मध्ये कियतो गुणान् अन्यच्च प्रतिपिपादयिषुराह—'**रत्तं तिट्ठाणकरणसुद्धं**'मित्यादि, '**रत्तं**' पूर्वोक्तस्वरूपं तथा च '**त्रिस्थानकरणशुद्धं**' त्रीणि स्थानानि—उरःप्रभृतीनि तेषु करणेन—क्रियया शुद्धं त्रिस्थानकरणशुद्धं, तद्यथा—उरःशुद्धं कण्ठशुद्धं शिरोविशुद्धं च, तत्र यदि उरसि स्वरः स्वभूमिकानुसारेण विशालो भवति तत उरोविशुद्धं, स एव यदि कण्ठे वर्त्तितो भवति अस्फुटितश्च ततः कण्ठविशुद्धं, यदि पुनः शिरः प्राप्तः सन् सानुनासिको भवति ततः शिरोविशुद्धं, यदिवा यद् उरःकण्ठशिरोभिः श्लेष्मणाऽव्याकुलितैर्विशुद्धैर्गीयते तद् उरःकण्ठशिरोविशुद्धत्वात्रिस्थानकरणविशुद्धं, तथा सकुहरो गुञ्जन् यो वंशो यत्र तन्त्रीतलताललयग्रहसुसंप्रयुक्तं भवति सकुहरे वंशे गुञ्जति तन्त्र्यां च वाद्यमानायां यत्तन्त्रीस्वरेणाविरुद्धं तत् सकुहरगुञ्जद्वंशतन्त्रीसुसंप्रयुक्तं, तथा परस्पराहतहस्ततालस्वरानुवर्त्ति यद् गीतं तत्तालसुसंप्रयुक्तं, यत् मुरजकंसिकादीनामातोद्यानामाहतानां यो ध्वनिर्यश्च नृत्यन्त्या नर्त्तक्याः पादोत्क्षेपस्तेन समं तत्तालसुसंप्रयुक्तं, तथा शृङ्गमयो दारुमयो वंशमयो वाऽङ्गुलिकोशस्तेनाहतायास्तन्त्र्याः स्वरप्रकारो लयस्तमनुसरद् गेयं लयसुसंप्रयुक्तं, तथा यः प्रथमं वंशतन्त्र्यादिभिः स्वरो गृहीतस्तन्मार्गानुसारि ग्रहसुसंप्रयुक्तं, तथा '**महुर**'मिति मधुरं प्राग्वत्, तथा '**सम**'मिति तालवंशस्वरादिसमनुगतं समं सललितं प्राग्वद् अत एव मनोहरं, पुनः कथम्भूतम्? इत्याह—'**मउयरिभियपयसंचारं**' तत्र मृदु—मृदुना स्वरेण युक्तं न निष्ठुरेण तथा यत्र स्वरोऽक्षरेषु—घोलनास्वरविशेषेषु संचरन् रागेऽतीव प्रतिभासते स पदसञ्चारो रिभितमुच्यते मृदुरिभितपदेषु गेयनिबद्धेषु सञ्चारो यत्र गेये तत् मृदुरिभितपदसञ्चारं, तथा '**सुरइं**' इति शोभना रतिर्यस्मिन् श्रोतॄणां तत्सुरति, तथा शोभना नतिः

रचनातोऽवसाने यस्मिन् तत्सुनति, तथा वरं—प्रधानं चारु—विशिष्टचङ्गिमोपेतं रूपं—स्वरूपं यस्य तद् वरचारुरूपं 'दिव्यं' प्रधानं नृत्यं गेयं प्रगीतानां—गानानुसारध्वनिव(म)तां यादृशः शब्दोऽतिमनोहरो भवति 'स्यात्' कथञ्चिद् भवेद् एतद्रूपस्तेषां तृणानां मणीनां च शब्दः ?, एवमुक्ते भगवानाह—गौतम ! स्यादेवंभूतः शब्द इति ॥

तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे खुड्डा खुड्डियाओ वावीओ पुक्खरिणीओ गुंजालियाओ दीहियाओ (सरसीओ) सरपंतियाओ सरसरपंतीओ बिलपंतीओ अच्छाओ सण्हाओ रयतामयकूलाओ वइरामयपासाणाओ तवणिज्जमयतलाओ वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोयडाओ णवणीयतलाओ सुवण्णसुब्भ(ज्झ) रययमणिवालुयाओ सुहोयारासुउत्ताराओ णाणामणितित्थसुबद्धाओ चारु(चउ)क्कोणाओ समतीराओ आणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजलाओ संछण्णपत्तभिसमुणालाओ बहुउप्पलकुमुयणलिणसुभगसोगंधितपोंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तफुल्लकेसरोवइयाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलाओ अच्छविमलसलिलपुण्णाओ परिहत्थभमंतमच्छकच्छभअणेगसउणमिहुणपरिचरिताओ पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेदियापरिक्खित्ताओ पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ अप्पेगतियाओ आसवोदाओ अप्पेगतियाओ वारुणोदाओ अप्पेगतियाओ खीरोदाओ अप्पेगतियाओ घओदाओ अप्पेगतियाओ [इक्खु]खो(दो)दाओ (अमयरससमरसोदाओ) अप्पेगतियाओ पगतीए उदग(अमय)रसेणं पण्णत्ताओ पासाइयाओ ४, तासि णं खुड्डि-

याणं वावीणं जाव बिलपंतियाणं तत्थ २ देसे २ तहिं २ जाव बहवे तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता । तेसि णं तिसोवाणपडिरूवाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया नेमा रिट्ठामया पतिट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्णरुप्पामया फलगा वइरामया संधी लोहितक्ख- मईओ सूईओ णाणामणिमया अवलंबणा अवलंबणबाहाओ ॥ तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरतो पत्तेयं २ तोरणा पं० ॥ ते णं तोरणा णाणामणिमयखंभेसु उवणिविट्ठसण्णिविट्ठा विविहमुत्तंतरोवइता विविहतारारूवोवचिता ईहामियउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिण्ण- ररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गयवइरवेदियापरिगताभिरामा विज्जाहर- जमलजुयलजंतजुत्ताविव अच्चिसहस्समालणीया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोयण- लेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासातिया ४ ॥ तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता—सोत्थियसिरिवच्छणंदियावत्तवद्धमाणभद्दासणकलसमच्छदप्पणा सव्वरतणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे किण्हचामरज्झया नीलचामर- ज्झया लोहियचामरज्झया हारिद्दचामरज्झया सुक्किलचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइर- दंडा जलयामलगंधीया सुरूवा पासाइया ४ ॥ तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइछत्ता पडागा- इपडागा घंटाजुयला चामरजुयला उप्पलहत्थया जाव सयसहस्सवत्तहत्थगा सव्वरयणामया

अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तासि णं खुड्डियाणं वावीणं जाव बिलपंतियाणं तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे उप्पायपव्वया णियइपव्वया जगतिपव्वया दारुपव्वयगा दगमंडवगा दगमंचका दगमालका दगपासायगा ऊसडा खुल्ला खडहडगा अंदोलगा पक्खंदोलगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसु णं उप्पायपव्वतेसु जाव पक्खंदोलएसु बहवे हंसासणाइं कोंचासणाइं गरुलासणाइं उण्णयासणाइं पणयासणाइं दीहासणाइं भद्दासणाइं पक्खासणाइं मगरासणाइं उसभासणाइं सीहासणाइं पउमासणाइं दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं सण्हाइं लण्हाइं घट्ठाइं मट्ठाइं णीरयाइं णिम्मलाइं निप्पंकाइं निक्कंकडच्छायाइं सप्पभाइं सम्मिरीयाइं सउज्जोयाइं पासादीयाइं दरिसणिज्जाइं अभिरूवाइं पडिरूवाइं ॥ तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे आलिघरा मालिघरा कयलिघरा लयाघरा अच्छणघरा पेच्छणघरा मज्जणघरगा पसाहणघरगा गब्भघरगा मोहणघरगा सालघरगा जालघरगा कुसमघरगा चित्तघरगा गंधव्वघरगा आयंसघरगा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सम्मिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥ तेसु णं आलिघरएसु जाव आयंसघरएसु बहूइं हंसासणाइं जाव दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं जाव पडिरूवाइं ॥ तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे २ तहिं

ताहिं बहवे जाइमंडवगा जूहियामंडवगा मल्लियामंडवगा णवमालियामंडवगा वासंतीमंडवगा दधिवासुयामंडवगा सूरिल्लिमंडवगा तंबोलीमंडवगा मुद्दियामंडवगा णागलयामंडवगा अतिमुत्तमंडवगा अप्फोतामंडवगा मालुयामंडवगा सामलयामंडवगा णिच्चं कुसुमिया णिच्चं जाव पडिरूवा ॥ तेसु णं जातीमंडवएसु बहवे पुढविसिलापट्टगा पण्णत्ता, तंजहा—हंसासणसंठिता कोंचासणसंठिता गरुलासणसंठिता उण्णयासणसंठिता पणयासणसंठिता दीहासणसंठिता भद्दासणसंठिता पक्खासणसंठिता मगरासणसंठिता उसभासणसंठिता सीहासणसंठिता पउमासणसंठिता दिसासोत्थियासणसंठिता पं०, तत्थ बहवे वरसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिया पण्णत्ता समणाउसो! आइण्णगरूयबूरणवणीततूलफासा मउया सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीदंति तुयट्टंति रमंति ललंति कीलंति मोहंति पुरापोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ॥ तीसे णं जगतीए उप्पिं अंतो पउमवरवेदियाए एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते देसूणाइं दो जोयणाइं विक्खंभेणं वेइयासमएणं परिक्खेवेणं किण्हे किण्होभासे वणसंडवण्णओ (मणि)तणसद्दविहूणो णेयव्वो, तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीयंति तुयट्टंति रमंति

ललंति कीडंति मोहंति पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कंताणं कम्माणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ॥ (सू० १२७)

'तस्स णं वणसंडस्से'त्यादि, तस्य णमिति वाक्यालङ्कारे वनखण्डस्य मध्ये तत्र तत्र देशे तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे 'बहूईओ' इति बह्व्यः 'खुड्डा खुड्डियाओ' इति क्षुल्लिकाः क्षुल्लिका लघवो लघव इत्यर्थः, 'वाप्यः' चतुरस्राकाराः 'पुष्करिण्यः' वृत्ताकाराः अथवा पुष्कराणि विद्यन्ते यासु ताः पुष्करिण्यः 'दीर्घिकाः' सारिण्यस्ता एव वक्रा गुञ्जालिकाः, बहूनि केवलकेवलानि पुष्पावकीर्णकानि सरांसि, सूत्रे स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, बहूनि सरांसि एकपङ्क्त्या व्यवस्थितानि सरःपङ्क्तिस्ता बह्व्यः सरःपङ्क्तयः, तथा येषु सरस्सु पङ्क्त्या व्यवस्थितेषु कूपोदकं प्रणालिकया संचरति सा सरःसरःपङ्क्तिस्ता बह्व्यः सरःसरःपङ्क्तयः, तथा बिलानीव बिलानि—कूपास्तेषां पङ्क्तयो बिलपङ्क्तयः, एताश्च सर्वा अपि कथम्भूताः ? इत्याह—'अच्छा' स्फटिकवद्बहिर्निर्म्मलप्रदेशाः 'श्लक्ष्णाः' श्लक्ष्णपुद्गलनिष्पादितबहिःप्रदेशाः, तथा रजतमयं—रूप्यमयं कूलं यासां ता रजतमयकूलाः, तथा समं—अगर्त्तासद्भावतोऽविषमं तीरं तीरावर्त्तिजलापूरितं स्थानं यासां ताः समतीराः, तथा वज्रमयाः पाषाणा यासां ता वज्रमयपाषाणाः, तथा तपनीयं—हेमविशेषस्तपनीयं—तपनीयमयं तलं—भूमितलं यासां तास्तपनीयतलाः, तथा 'सुवण्णसुज्झरययवालुयाओ' इति सुवर्णं—पीतकान्तिहेम सुज्झं—रूप्यविशेषः रजतं—प्रतीतं तन्मय्यो वालुका यासु ताः सुवर्णसुज्झरजतवालुकाः, 'वेरुलियमणिफालिहपडलपच्चोयडाओ य'त्ति वैडूर्यमणिमयानि स्फाटिकपटलमयानि प्रत्यवतटानि तटसमीपवर्त्तिनोऽत्युन्नतप्रदेशा यासां ता वैडूर्यमणिस्फटिकपटलप्रत्यवतटाः 'सुहोयारासुउत्तारा' इति सुखेनावतारो—जलमध्ये प्रवेशनं यासु ताः स्ववताराः तथा सु—सुखेन उत्तारो—जलमध्याद्बहिर्विनिर्गमनं यासु ताः

सुखोत्तारा: ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः **'नाणामणितित्थसुबद्धाओ'** इति नानामणिभिः—नानाप्रकारैर्मणिभिस्तीर्थानि सुबद्धानि यासां ता नानामणितीर्थसुबद्धाः, अत्र बहुव्रीहावपि क्तान्तस्य परनिपातो भार्यादिदर्शनात्प्राकृतशैलीवशाद्वा, **'चउक्कोणाओ'** इति चत्वारः कोणा यस्यां सा चतुष्कोणाः एतच्च विशेषणं वापीः कूपांश्च प्रति द्रष्टव्यं, तेषामेव चतुष्कोणत्वसम्भवात् न शेषाणां, तथा **आनुपूर्व्वेण**—क्रमेण नीचैर्नीचैस्तरभावरूपेण सुष्ठु—अतिशयेन यो जातो **वप्रः**—केदारो जलस्थानं तत्र गम्भीरं—अलब्धस्थानं शीतलं जलं यासु ता आनुपूर्व्यसुजातवप्रगम्भीरशीतलजलाः **'संछण्णपत्तभिसमुणालाओ'** संछन्नानि—जलेनान्तरितानि पत्रबिसमृणालानि यासु ताः संछन्नपत्रबिसमृणालाः, इह बिसमृणालसाहचर्यात्पत्राणि—पद्मिनीपत्राणि द्रष्टव्यानि, बिसानि—कन्दा मृणालानि—पद्मनालाः, तथा बहुभिरुत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रकेसरफुल्लोपचिताः, तथा षट्पदैः—भ्रमरैः परिभुज्यमानानि कमलानि उपलक्षणमेतत् कुमुदादीनि च यासु ताः षट्पदपरिभुज्यमानकमलाः, तथाऽच्छेन—स्वरूपतः स्फटिकवच्छुद्धेन विमलेन—आगन्तुकमलरहितेन सलिलेन पूर्णा अच्छविमलसलिलपूर्णाः, तथा **'पडिहत्था'** अतिरेकिताः अतिप्रभूता इत्यर्थः "पडिहत्थमुद्धुमायं अहिरेइयं च जाण आउण्णं" इति वचनात्, उदाहरणं चात्र—"घणपडिहत्थं गयणं सराइं नवसलिलसुद्धु(उद्धु)मायाइं । अहिरेइयं मह उण चिंताएँ मणं तुहं विरहे ॥ १ ॥" इति, भ्रमन्तो मत्स्यकच्छपा यत्र ताः पडिहत्थभ्रमन्मत्स्यकच्छपाः, तथाऽनेकैः—शकुनमिथुनकैः प्रविचरिता—इतस्ततो गमनेन सर्वतो व्याप्ता अनेकशकुनमिथुनकप्रविचरिताः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, एता वाप्यादयः सरस्सरःपङ्क्तिपर्यवसानाः प्रत्येकं प्रत्येकमिति, एकमेकं प्रति प्रत्येकम्, अत्राभिमुख्ये प्रतिशब्दो न वीप्साविवक्षायां, पश्चात्प्रत्येकशब्दस्य द्विर्वचनमिति, पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्ताः प्रत्येकं वनषण्डपरिक्षिप्ताश्च, **'अप्पेगतियाओ'** इत्यादि, अपिर्वाढार्थे बाढमेककाः—काश्चन

वाप्यादय आसवमिव—चन्द्रहासादिपरमासवमिव उदकं यासां ता आसवोदकाः, अप्येकका वारुणस्य वारुणसमुद्रस्येव उदकं यासां ता वारुणोदकाः, अप्येककाः क्षीरमिवोदकं यासां ताः क्षीरोदकाः, अप्येकका घृतमिवोदकं यासां ता घृतोदकाः, अप्येककाः क्षोद इव—इक्षुरस इव उदकं यासां ताः क्षोदोदकाः, अप्येकका अमृतरससमरसमुदकं यासां ता अमृतरससमरसोदकाः, अप्येकका अमृतरसेन स्वाभाविकेन प्रज्ञप्ताः, 'पासाईया(ओ)' इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत्, तासां क्षुल्लिकानां यावद्बिलपङ्क्तीनां प्रत्येकं २ चतुर्दिशि चत्वारि, एकैकस्यां दिशि एकैकभावात्, 'त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि' प्रतिविशिष्टं रूपं येषां तानि प्रतिरूपकाणि त्रयाणां सोपानानां समाहारस्त्रिसोपानं त्रिसोपानानि च तानि प्रतिरूपकाणि चेति विशेषणसमासः, विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, तानि प्रज्ञप्तानि, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणाम् 'अयं' वक्ष्यमाणः 'एतद्रूपः' अनन्तरं वक्ष्यमाणस्वरूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'वज्रमयाः' वज्ररत्नमया 'नेमाः' भूमेरूर्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशाः 'रिष्ठमयाः' रिष्ठरत्नमयाः 'प्रतिष्ठानाः' त्रिसोपानमूलपादा वैडूर्यमयाः स्तम्भाः सुवर्णरूप्यमयानि फलकानि—त्रिसोपानाङ्गभूतानि वज्रमयानि वज्ररत्नापूरिताः सन्धयः—फलकद्वयापान्तरालप्रदेशाः लोहिताक्षमय्यः सूच्यः—फलकद्वयसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयाः नानामणिमया अवलम्ब्यन्ते इति अवलम्बना—अवतरतामुत्तरतां चालम्बने हेतुभूता अवलम्बनबाहातो विनिर्गताः केचिदवयवाः 'अवलंबणबाहाओ' इति अवलम्बनबाहा अपि नानामणिमयाः, अवलम्बनबाहा नाम उभयोः उभयोः पार्श्वयोरवलम्बनाश्रयभूता भित्तयः, 'पासाईयाओ' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां प्रत्येकं प्रत्येकं तोरणानि प्रज्ञप्तानि, तेषां च तोरणानामयमेतद्रूपो 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'ते णं तोरणा नाणामणिमया' इत्यादि, तानि तोरणानि नानामणिमयानि, मणयः—चन्द्रकान्तादयः, विविध म-

णिमयानि, नानामणिमयेषु स्तम्भेषु 'उपविष्टानि' सामीप्येन स्थितानि, तानि च कदाचिच्चलानि अथवाऽपदपतितानि वाऽऽशङ्क्येरन् तत आह—सम्यग्—निश्चलतयाऽपदपरिहारेण च निविष्टानि ततो विशेषणसमासः उपविष्टसन्निविष्टानि 'विविहमुत्तंतरोचिया' इति विविधा—विविधविच्छित्तिकलिता मुक्ता—मुक्ताफलानि 'अंतरे'ति अन्तराशब्दोऽगृहीतवीप्सोऽपि सामर्थ्याद्वीप्सां गमयति, अन्तरा २ 'ओचिया' आरोपिता यत्र तानि तथा, 'विविहताराख्वोवचिया' इति विविधैस्तारारूपैः—तारिकारूपैरुपचितानि, तोरणेषु हि शोभार्थं तारका निबध्यन्ते इति लोकेऽपि प्रतीतं इति विविधतारारूपोपचितानि, 'ईहामिगउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिंनर-रुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता' इति ईहामृगा—वृका व्यालाः—श्वापदभुजगाः, ईहामृगऋषभतुरगनरमकरविहग-व्यालकिंनररुरुसरभकुञ्जरवनलतापद्मलतानां भक्त्या—विच्छित्त्या विचित्रं—आलेखो येषु तानि तथा, स्तम्भोद्गताभिः—स्तम्भोपरिवर्तिनीभिर्वज्ररत्नमयीभिर्वेदिकाभिः परिगतानि सन्ति यानि अभिरमणीयानि तानि स्तम्भोद्गतवज्रवेदिकापरिगताभिरामाणि, तथा 'विआहरजंतजुत्ताविव अच्चीसहस्समालिणीया' इति विद्याधरयोर्यद् यमलं—समश्रेणीकं युगलं—द्वन्द्वं विद्याधरयमलयुगलं तेषां यन्त्राणि—प्रपञ्चास्तैर्युक्तानीव, अर्चिषां सहस्रैर्मालनीयानि—परिवारणीयानि अर्चिःसहस्रमालनीयानि, किमुक्तं भवति ?—एवं नाम प्रभासमुदायोपेतानि येनैवं संभावनोपजायते यथा नूनमेतानि न स्वाभाविकप्रभासमुदयोपेतानि किन्तु विशिष्टविद्याशक्तिमत्पुरुषविशेषप्रपञ्चयुक्तानीति, 'रूवगसहस्सकलिया' इति रूपकाणां सहस्राणि रूपकसहस्राणि तैः कलितानि रूपकसहस्रकलितानि 'भिसमाणा' इति दीप्यमानानि 'भिब्भिसमाणा' इति अतिशयेन दीप्यमानानि 'चक्खुलोयणलेसा' इति चक्षुः कर्तृ लोकने—अवलोकने लिसतीव—दर्शनीयत्वातिशयतः श्लिष्यतीव यत्र तानि चक्षुर्लोकनलेसानि 'सुहफासा' इति शुभस्पर्शानि सशोभाकानि रूपाणि यत्र तानि सश्रीकरूपाणि,

'पासाइया' इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'तेसिं तोरणाणं उवरिं अट्ठट्ठमंगले'त्यादि सुगमं, नवरं 'जाव पडिरूवा' इति यावत्करणात् 'घट्टा मट्ठा नीरया' इत्यादिपरिग्रहः॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानामुपरि बहवः 'कृष्णचामरध्वजाः' कृष्णचामरयुक्ता ध्वजाः कृष्णचामरध्वजाः एवं बहवो नीलचामरध्वजा लोहितचामरध्वजा हारिद्रचामरध्वजाः शुक्लचामरध्वजाः, कथम्भूता इत्याह एते सर्वेऽपि? इति, अत आह—'अच्छा' आकाशस्फटिकवदतिनिर्मलाः 'कृष्णाः' कृष्णपुद्गलस्कन्धनिर्मापिता 'रूप्यपट्टा' इति रूप्यो—रूप्यमयो वज्रमयस्य दण्डस्योपरि पट्टो येषां ते रूप्यपट्टाः 'वइरदंडा' इति वज्रो—वज्ररत्नमयो दण्डो रूप्यपट्टमध्यवर्त्ती येषां ते वज्रदण्डाः, तथा जलजानामिव—जलजकुसुमानां पद्मादीनामिवामलो—निर्म्मलो न तु कुद्रव्यगंधसम्मिश्रो यो गन्धः स विद्यते येषां ते जलजामलगन्धिका 'अतः अनेकस्वरा'दितीकप्रत्ययः, अत एव सुरम्याः, 'पासादीया' इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानामुपरि बहूनि 'छत्रातिच्छत्राणि' छत्रात्—लोकप्रसिद्धादेकसङ्ख्याकादतिशायीनि द्विसङ्ख्यानि त्रिसङ्ख्यानि वा छत्रातिच्छत्राणि, बहवः पताकाभ्यो—लोकप्रसिद्धाभ्योऽतिशायिन्यो दीर्घत्वेन विस्तारेण च पताकाः पताकातिपताकाः, बहूनि घण्टायुगलानि बहूनि चामरयुगलानि बहवः 'उत्पलहस्तकाः' उत्पलाख्यजलजकुसुमसमूहविशेषाः, एवं पद्महस्तका बहवो नलिनहस्तका बहवः सुभगहस्तका बहवः सौगन्धिकहस्तका बहवः पुण्डरीकहस्तका बहवः शतपत्रहस्तकाः बहवः सहस्रपत्रहस्तकाः, उत्पलादीनि प्रागेव व्याख्यातानि, एते च छत्रातिच्छत्रादयः सर्वेऽपि सर्वरत्नमयाः 'जाव पडिरूवा' इति यावत्करणात् 'अच्छा सण्हा लण्हा' इत्यादि विशेषणकदम्बकपरिग्रहः ॥ 'तासि ण'मित्यादि, तासां क्षुल्लिकानां वापीनां यावद्बिलपङ्क्तीनाम्, अत्र यावच्छब्दात् पुष्करिण्यादिपरिग्रहः, अपान्तरालेषु तत्र तत्र देशे तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे बहव उत्पातपर्वता—यत्रागत्य बहवो व्यन्तरदेवा देव्यश्च विचित्रक्रीडानिमित्तं वैक्रियशरीरमारचयन्ति

'नियइपव्वया' इति **नियत्या**—नैयत्येन पर्वता नियतिपर्वताः, कचित् **'निययपव्वया'** इति पाठस्तत्र **नियताः**—सदा भोग्यत्वेनावस्थिताः पर्वता नियतपर्वताः, यत्र वानमन्तरा देवा देव्यश्च भवधारणीयेन वैक्रियशरीरेण प्रायः सदा रममाणा अवतिष्ठन्ते इति भावः, 'जगतीपर्वतकाः' पर्वतविशेषाः **'दारुपर्वतकाः'** दारुनिर्मापिता इव पर्वतकाः **'दगमंडवगा'** इति **'दकमण्डपकाः'** स्फटिकमण्डपकाः, उक्तं च **मूलटीकायां**—"दकमण्डपकाः स्फाटिकमण्डपका" इति, एवं दकमञ्चका दकमालका दकप्रासादाः, एते च दकमण्डपादयः केचित् 'ऊसडा' इति उत्सृता उच्चा इत्यर्थः, केचित् **'खुड्डा'** इति क्षुल्ला लघवः कचित् **'खडख(ह)डगा'** इति लघव आयताश्च, तथा अन्दोलकाः पक्ष्यन्दोलकाश्च, तत्र यत्रागत्य मनुष्या आत्मानमन्दोलयन्ति ते अन्दोलका इति लोके प्रसिद्धाः, यत्र तु पक्षिण आगत्यात्मानमन्दोलयन्ति ते पक्ष्यन्दोलकाः, ते चान्दोलकाः पक्ष्यन्दोलकाश्च तस्मिन् वनषण्डे तत्र तत्र प्रदेशे वानमन्तरदेवदेवीक्रीडायोग्या बहवः सन्ति, ते चोत्पातपर्वतादयः कथम्भूताः? इत्याह—**'सर्वरत्नमयाः'** सर्वात्मना रत्नमयाः, **'अच्छा सण्हा'** इत्यादि विशेषणजातं पूर्ववत् ॥ **'तेसु ण'**मित्यादि, तेषु उत्पातपर्वतेषु यावत्पक्ष्यन्दोलकेषु, यावत्करणान्नियतिपर्वतकादिपरिग्रहः, बहूनि हंसासनानि तत्र येषामासनानामधोभागे हंसा व्यवस्थिता यथा सिंहासने सिंहाः तानि हंसासनानि, एवं क्रौञ्चासनानि गरुडासनानि च भावनीयानि, उन्नतासनानि नाम यानि उच्चासनानि प्रणतासनानि—निम्नासनानि दीर्घासनानि—शय्यारूपाणि **भद्रासनानि** येषामधोभागे पीठिकाबन्धः पक्ष्यासनानि येषामधोभागे नानास्वरूपाः पक्षिणः, एवं मकरासनानि सिंहासनानि च भावनीयानि, **पद्मासनानि**—पद्माकाराणि आसनानि **'दिसासोवत्थियासणाणि'** येषामधोभागे दिक्सौवस्तिका आलिखिताः सन्ति, अत्र यथाक्रममासनानां सङ्ग्राहिका सङ्ग्रहणिगाथा—"हंसे १ कोंचे २ गरुडे ३ उण्णय ४ पणए य ५ दीह ६ भद्दे य ७ । पक्खे ८ मयरे ९

तथा वर्त्तन्त इति भावः 'क्रीडन्ति' यथासुखमितस्ततो गमनविनोदेन गीतनृत्यादिविनोदेन वा तिष्ठन्ति 'मोहन्ति' मैथुनसेवां कुर्वन्ति, इत्येवं 'पुरा पोराणाण'मित्यादि, 'पुरा' पूर्वं प्राग्भवे इति भावः कृतानां कर्म्मणामिति योगः, अत एव पौराणानां सुचीर्णानां—सुचरितानामितिभावः, इह सुचरितजनितं कर्म्मापि कार्ये कारणोपचारात्सुचरितमिति विवक्षितं, ततोऽयं भावार्थः—विशिष्टतथाविधधर्म्मानुष्ठानविषयाप्रमादकरणक्षान्त्यादिसुचरितानामिति, तथा सुपराक्रान्तानाम्, अत्रापि कारणे कार्योपचारात् सुपराक्रान्तजनितानि कर्माण्येव सुपराक्रान्तानि इत्युक्तं भवति, सकलसत्त्वमैत्रीसत्यभाषणपरद्रव्यानपहारसुशीलादिरूपसुपराक्रमजनितानामिति, अत एव शुभानां—शुभफलानाम्, इह किञ्चिदशुभफलमपीन्द्रियमतिविपर्यासात् शुभफलमाभाति ततस्तात्त्विकशुभत्वप्रतिपत्त्यर्थमस्यैव पर्यायशब्दमाह—'कल्याणानां' तत्त्ववृत्त्या तथाविधविशिष्टफलदायिनाम्, अथवा कल्याणानाम्—अनर्थोपशमकारिणां, कल्याणं—कल्याणरूपं फलविपाकं 'पच्चणुभवमाणा' प्रत्येकमनुभवन्तः—'विहरन्ति' आसते ॥ तदेवं पद्मवरवेदिकाया वहिर्यो वनखण्डस्तद्वक्तव्यतोक्ता, सम्प्रति तस्या एव पद्मवरवेदिकाया अर्वाग् जगत्या उपरि यो वनखण्डस्तद्वक्तव्यतामभिधित्सुराह—'तीसे णं जगतीए' इत्यादि, तस्या जगत्या उपरि पद्मवरवेदिकाया 'अन्तः' मध्यभागे अत्र महानेको वनषण्डः प्रज्ञप्तः 'देसोणाइं दो जोयणाइं विक्खंभेण'मित्यादि सर्वं वहिर्वनखण्डवदविशेषेण वक्तव्यं, नवरमत्र मणीना तृणानां च शब्दो न वक्तव्यः, पद्मवरवेदिकान्तरिततया तथाविधवाताभावतो मणीनां तृणानां च चलनाभावतः परस्परसंघर्षाभावात्, तथा चाह—"वणसंडवण्णतो सद्दवज्जो जाव विहरंति" इति ॥ सम्प्रति जम्बूद्वीपस्य द्वारसङ्ख्याप्रतिपादनार्थमाह—

जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—

विजये वेजयंते जयंते अपराजिए ॥ (सू० १२८) कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजये नामं दारे पण्णत्ते ?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाधाए जंबुद्दीवे दीवे पुरच्छिमपेरंते लवणसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीताए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजये णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावतियं चेव पवेसेणं सेए वरकणगथूभियागे ईहामियउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवणलतपउमलयभत्तिचित्ते खंभुग्गतवइरवेदियापरिगताभिरामे विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्ते इव अच्चीसहस्समालिणीए रूवगसहस्सकलिते भिसिमाणे भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोयणलेसे सुहफासे सस्सिरीयरूवे वण्णो दारस्स (तस्सिमो होइ) तं०—वइरामया णिम्मा रिट्ठामया पतिट्ठाणा वेरुलियामया खंभा जायरूवोवचियपवरपंचवण्णमणिरयणकोट्टिमतले हंसगब्भमए एलुए गोमेज्जमते इंदक्खीले लोहितक्खमईओ दारचिडाओ जोतिरसामते उत्तरंगे वेरुलियामया कवाडा वइरामया संधी लोहितक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया समुग्गगा वईरामई अग्गलाओ अग्गलपासाया वइरामई आवत्तणपेढिया अंकुत्तरपासते णिरंतरितघणकवाडे भित्तीसु चेव भित्तीगुलिया छप्पण्णा तिण्णि होंति गोमाणसी तत्तिया णाणामणिरयणवालरूवगलीलट्ठियसालिभंजिया वइरामए कूडे रययामए उ-

रसेहे सव्वतवणिज्जमए उल्लोए णाणामणिरयणजालपंजरमणिवंसगलोहितक्खपडिवंसगरयत-
भोम्मे अंकामया पक्खबाहाओ जोतिरसामया वंसा वंसकवेल्लुगा य रयतामयी पट्टिताओ
जायरूवमती ओहाडणी वइरामयी उवरि पुच्छणी सव्वसेतरययमए च्छायणे अंकमतकणगकूडत-
वणिज्जथूभियाए सेते संखतलविमलणिम्मलदधिघणगोखीरफेणरययणिगरप्पगासे तिलगरयणद्ध-
चंदचित्ते णाणामणिमयदामालंकिए अंतो य बहिं च सण्हे तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडे सुह-
प्फासे सस्सिरीयरूवे पासातीए ४ ॥ विजयस्स णं दारस्स उभयो पासिं दुहतो णिसीहियाते
दो दो चंदणकलसपरिवाडीओ पण्णत्ताओ, ते णं चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा सुरभिवर-
वारिपडिपुण्णा चंदणकयचच्चागा आबद्धकंठेगुणा पउमुप्पलपिहाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा
जाव पडिरूवा महता महता महिंदकुंभसमाणा पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ विजयस्स णं दारस्स
उभओ पासिं दुहतो णिसीहिआए दो दो णागदंतपरिवाडीओ, ते णं णागदंतगा मुत्ताजालंतरू-
सितहेमजालगवक्खजालखिंखिणीघंटाजालपरिक्खित्ता अब्भुग्गता अभिणिसिट्ठा तिरियं सुसं-
पगहिता अहेपण्णगद्धरूवा पण्णगद्धसंठाणसंठिता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा महता
महया गयदंतसमाणा प० समणाउसो ! ॥ तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तबद्धवग्घारि-
तमल्लदामकलावा जाव सुक्किलसुत्तबद्धवग्घारियमल्लदामकलावा ॥ ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा

सुवण्णपतरगमंडिता णाणामणिरयणविविधहारद्धहार (उवसोभितसमुदया) जाव सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ॥ तेसि णं णागदंतकाणं उवरिं अण्णाओ दो दो णागदंतपरिवाडीओ पण्णत्ताओ, तेसि णं णागदंतगाणं मुत्ताजालंतरूसिया तहेव जाव समणाउसो! । तेसु णं णागदंतएसु बहवे रयतामया सिक्कया पण्णत्ता, तेसु णं रयणामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामतीओ धूवघडीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—ताओ णं धूवघडीओ कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामाओ सुगंधवरगंधगंधियाओ गंधवट्टिभूयाओ ओरालेणं मणुण्णेणं घाणमणणिव्वुइकरेणं गंधेणं तप्पएसे सव्वतो समंता आपूरेमाणीओ आपूरेमाणीओ अतीव अतीव सिरीए जाव चिट्ठंति ॥ विजयस्स णं दारस्स उभयतो पासिं दुहतो णिसीधियाए दो दो सालिभंजियापरिवाडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं सालभंजियाओ लीलट्ठिताओ सुपयट्ठियाओ सुअलंकिताओ णाणागारवसणाओ णाणामल्लपिणट्टि(द्धि)ओ मुट्ठीगेज्झमज्झाओ आमेलगजमलजुयलवट्टिअब्भुण्णयपीणरचियसंठियपओहराओ रत्तावंगाओ असियकेसीओ मिदुविसयपसत्थलक्खणसंवेल्लितग्गसिरयाओ ईसिं असोगवरपादवसमुट्ठिताओ वामहत्थगहितग्गसालाओ ईसिं अद्धच्छिकडक्खचिट्ठिएहिं लूसेमाणीतो इव चक्खुल्लोयणलेसाहिं अण्णमण्णं खिज्जमाणीओ इव पुढविपरिणामाओ सासयभावमुव-

गताओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंदद्धसमनिडालाओ चंदाहियसोमदंसणाओ उक्का इव उज्जोएमाणीओ विज्जुघणमरीचिसूरदिप्पंततेयअहिययरसंनिकासाओ सिंगारागारचारुवेसाओ पासाइयाओ ४ तेयसा अतीव अतीव सोभेमाणीओ सोभेमाणीओ चिट्ठंति ॥ विजयस्स णं दारस्स उभयतो पासिं दुहतो णिसीहियाए दो दो जालकडगा पण्णत्ता, ते णं जालकडगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ विजयस्स णं दारस्स उभओपासिं दुहओ णिसीधियाए दो दो घंटापरिवाडिओ पण्णत्ताओ, तासि णं घंटाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—जंबूणतमतीओ घंटाओ वइरामतीओ लालाओ णाणामणिमया घंटापासगा तवणिज्जमतीओ संकलाओ रयतामतीओ रज्जूओ ॥ ताओ णं घंटाओ ओहस्सराओ मेहस्सराओ हंसस्सराओ कोंचस्सराओ णंदिस्सराओ णंदिघोसाओ सीहस्सराओ सीहघोसाओ मंजुस्सराओ मंजुघोसाओ सुस्सराओ सुस्सरणिग्घोसाओ ते पदेसे ओरालेणं मणुण्णेणं कण्णमणनिव्वुइकरेण सद्देण जाव चिट्ठंति ॥ विजयस्स णं दारस्स उभओपासिं दुहतो णिसीधिताए दो दो वणमालापरिवाडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणमालाओ णाणादुमलताकिसलयपल्लवसमाउलाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलसोभंतसस्सिरीयाओ पासाईयाओ ते पएसे उरालेणं जाव गंधेणं आपूरेमाणीओ जाव चिट्ठंति (सू० १२९) ॥

'जंबुद्दीवस्स णं भंते!' इत्यादि, जम्बूद्वीपस्य णमिति प्राग्वत् भदन्त! द्वीपस्य कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं च ॥ 'कहिं णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरच्छिमेणं'ति पूर्वस्यां दिशि पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्रप्रमाणया 'अबाधया' अपान्तरालेन यो जम्बूद्वीपस्य 'पुरच्छिमे पेरंते' इति पूर्वः पर्यन्तो लवणसमुद्रपूर्वार्द्धस्य 'पच्चत्थिमेणं'ति पश्चिमे भागे शीताया महानद्या उपरि 'अत्र' एतस्मिन् प्रदेशे जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तम्, अष्टौ योजनानि उच्चैस्त्वेन चत्वारि योजनानि विष्कम्भेन, 'तावइयं चेव पवेसेणं'ति तावन्त्येव चत्वारीत्यर्थः योजनानि प्रवेशेन, कथम्भूतमित्यर्थः, 'सेए' इत्यादि, 'श्वेतं' श्वेतवर्णोपेतं बाहल्येनाङ्करत्नमयत्वात् 'वरकणगथूभियाए' इति वरकनका—वरकनकमयी स्तूपिका—शिखरं यस्य तद् वरकनकस्तूपिकाकम्, 'ईहामियउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ते खंभुग्गयवरवेइयापरिगयाभिरामे विज्जाहरजमलजुगलजंतजुत्ते इव अच्चीसहस्समालणीए रूवगसहस्सकलिए भिसमाणे भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोयणलेसे सुहफासे सस्सिरीयरूवे' इति विशेषणजातं प्राग्वत् । 'वण्णो दारस्स तस्सिमो होइ' इति 'वर्णः' वर्णकनिवेशो द्वारस्य 'तस्य' विजयाभिधानस्य 'अयं' वक्ष्यमाणो भवति, तमेवाह—'तंजहे'त्यादि, तद्यथा—वज्रमया नेमा—भूमिभागादूर्द्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशा रिष्ठमयानि प्रतिष्ठानानि—मूलपादाः 'वेरुलियरुइलखंभे' इति वैडूर्या—वैडूर्यरत्नमया रुचिराः स्तम्भा यस्य तद् वैडूर्यरुचिरस्तम्भं 'जायरूवोवचियपवरपंचवण्णमणिरयणकुट्टिमतले' इति जातरूपेण—सुवर्णेनोपचितैः—युक्तैः प्रवरैः—प्रधानैः पञ्चवर्णैर्मणिभिः—चन्द्रकान्तादिभिः रत्नैः—कर्केतनादिभिः कुट्टिमतलं—बद्धभूमितलं यस्य तत्तथा 'हंसगब्भमए एलुगे'

इति हंसगर्भो—रत्नविशेषस्तन्मय एलुको—देहली 'गोमेज्जमयइंदकीले' इति गोमेयकरत्नमय इन्द्रकीलो लोहिताक्षरत्नमय्यौ द्वारपिण्डौ(चेट्यौ)—द्वारशाखे 'जोइरसामए उत्तरंगे' इति ज्योतीरसमयमुत्तरङ्ग—द्वारस्योपरि तिर्यग्व्यवस्थितं काष्ठं वैडूर्यमयौ कपाटौ लोहिताक्षमय्यो—लोहिताक्षरत्नालिकाः सूचयः—फलकद्वयसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयाः 'वइरामया संधी' वज्रमयाः 'सन्धयः' सन्धिमेलाः फलकानां, किमुक्तं भवति ?—वज्ररत्नापूरिताः फलकानां सन्धयः, 'नानामणिमया समुग्गया' इति समुद्गका इव समुद्गकाः—सूतिकागृहाणि तानि नानामणिमयानि 'वइरामया अग्गला अग्गलपासाया' अर्गलाः—प्रतीताः अर्गलाप्रासादा यत्रार्गला नियम्यन्ते, आह च मूलटीकाकारः—"अर्गलाप्रासादा यत्रार्गला नियम्यन्ते" इति, एतौ द्वावपि वज्ररत्नमयौ, 'रययामयी आवत्तणपेढिया' इति आवर्त्तनपीठिका यत्रेन्द्रकीलिका, उक्तं च मूलटीकायाम्—"आवर्त्तनपीठिका यत्रेन्द्रकीलको भवति" 'अंकुत्तरपासाए' इति अङ्का अङ्करत्नमया उत्तरपार्श्वा यस्य तद् अङ्कोत्तरपार्श्वं 'निरंतरियघणकवाडे' इति निर्गता अन्तरिका—लध्वन्तररूपा ययोस्तौ निरन्तरिकौ अत एव घनौ कपाटौ यस्य तन्निरन्तरघनकपाटं 'भित्तिसु चेव भित्तिगुलिया छप्पण्णा तिन्नि होंति' इति तस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्भित्तिषु—भित्तिगता भित्तिगुलिकाः—पीठकसंस्थानीयास्तिस्रः षट्पञ्चाशतः—षट्पञ्चाशत्त्रिकप्रमाणा भवन्ति, 'गोमाणसिया तत्तिया' इति गोमानस्यः—शय्याः 'तत्तिया' इति तावन्मात्राः षट्पञ्चाशत्त्रिकसङ्ख्याका इत्यर्थः, 'नानामणिरयणवालरूवगलीलट्ठियसालभंजियाए' इति इदं द्वारविशेषणं, नानामणिरत्नानि—नानामणिरत्नमयानि व्यालरूपकाणि लीलास्थितशालभञ्जिकाश्च—लीलास्थितपुत्रिकाश्च यस्य तत्तथा 'वइरामए कूडे' वज्रमयो—वज्ररत्नमयः कूटो—माडभागः रजतमय उत्सेधः—शिखरम्, आह च मूलटीकाकारः—"कूडो—माडभाग उच्छ्रयः—शिखर"मिति, केवलं शिखरमत्र तस्यैव माडभागस्य सं-

बन्धि द्रष्टव्यं न द्वारस्य, तस्य प्रागेवोक्तत्वात्, **'सव्वतवणिज्जमए उल्लोए'** सर्वात्मना तपनीयमय उल्लोकः—उपरिभागः **'नानामणि-
रयणजालपंजरमणिवंसगलोहियक्खपडिवंसगरययभोमे'** इति, मणयो—मणिमया वंशा येषां तानि मणिमयवंशकानि लोहिताक्षा
—लोहिताक्षमयाः प्रतिवंशा येषां तानि लोहिताक्षप्रतिवंशकानि रजता—रजतमयी भूमिर्येषां तानि रजतभूमानि, प्राकृतत्वात्समासान्तो
मकारस्य च द्वित्वं, मणिवंशकानि लोहिताक्षप्रतिवंशकानि रजतभूमानि नानामणिरत्नानि—नानामणिरत्नमयानि जालपञ्जराणि—गवा-
क्षापरपर्यायाणि यस्मिन् द्वारे तत्तथा, पदानामन्यथोपनिपातः प्राकृतत्वात्, 'अंकमया पक्खा पक्खबाहाओ जोईरसामया वंसा वंस-
कवेल्लुगा य रययामईओ पट्टियाओ जायरूवमईओ ओहाडणीओ वइरामईओ उवरिपुंछणीओ सव्वसेयरययामए छा(य)णे' इति पक्षवर-
वेदिकावद्भावनीयम्, **'अंकमयकणगकूडतवणिज्जथूभियागे'** इति अङ्कमयं—बाहुल्येनाङ्करत्नमयं पक्षबाहादीनामङ्करत्नात्मकत्वात्
कनकं—कनकमयं कूटं—शिखरं यस्य तत् कनककूटं तपनीया—तपनीयमयी स्तूपिका—लघुशिखररूपा यस्य तत्तपनीयस्तूपिकाकं, ततः
पदत्रयस्य पदद्वयमीलनेन कर्म्मधारयः, एतेन यत् प्राक् सामान्यत उत्क्षिप्तं **'सेए वरकणगथूभियागे'** इति तदेव प्रपञ्चतो भा-
वितमिति । सम्प्रति तदेव श्वेतत्वमुपसंहारव्याजेन भूय उपदर्शयति—**'सेए'** श्वेतं, श्वेतत्वमेवोपमया द्रढयति—**'संखतलविमलनि-
म्मलदधिघणगोखीरफेणरययनिगरप्पगासे'** इति विमलं—विगतमलं यत् शङ्खतलं शङ्खस्योपरितनो भागो यश्च निर्मलो दधिघनो—
घनीभूतं दधिगोक्षीरफेनो रजतनिकरश्च तद्वत्प्रकाशः—प्रतिमता यस्य तत्तथा, **'तिलगरयणद्धचंदचित्ते'** इति तिलकरत्नानि—पुण्ड्र-
विशेषास्तैरर्द्धचन्द्रैश्च चित्राणि—नानारूपाणि तिलकार्द्धचन्द्रचित्राणि, क्वचित् 'संखतलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरययनियरप्पगा-
सद्धचंदचित्ता' इति पाठस्तत्र पूर्ववत् पृथक् पृथग् व्युत्पत्तिं कृत्वा पश्चात्पदद्वयस्य २ कर्मधारयः, **'नाणामणिदामालंकिए'** नाना-

मणयो—नानामणिमयानि दामानि—मालास्तैरलङ्कृतं नानामणिदामालङ्कृतम् अन्तर्बहिश्च 'श्लक्ष्णं' श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिर्मापितं 'तवणिज्जवालुयापत्थडे' इति तपनीयाः—तपनीयमय्यो या वालुकाः—सिकतास्तासां प्रस्तटः—प्रस्तारो यस्मिन् तत्तथा, 'सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाईए जाव पडिरूवे' इति प्राग्वत् ॥ 'विजयस्स णं दारस्से' त्यादि, विजयस्य णमिति प्राग्वत् द्वारस्य उभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन 'दुहतो' इति द्विधातो द्विप्रकारायां नैषेधिक्यां, नैषेधिकी—निषीदनस्थानम्, उक्तं च मूलटीकाकारेण—"नैषेधिकी निषीदनस्थान"मिति प्रत्येकं द्वौ द्वौ चन्दनकलशौ प्रज्ञप्तौ, ते च चन्दनकलशाः 'वरकमलपइट्ठाणा' इति वरं—प्रधानं यत्कमलं तत्प्रतिष्ठानं—आधारो येषां ते वरकमलप्रतिष्ठानाः, तथा सुरभिवरवारिप्रतिपूर्णाश्चन्दनकृतचर्चाकाः—चन्दनकृतोपरागाः 'आविद्धकंठेगुणा' इति आविद्धः—आरोपितः कण्ठे गुणो—रक्तसूत्ररूपो येषु ते आविद्धकण्ठेगुणाः, कण्ठेकालवत्सप्तम्या अलुक्, 'पउमुप्पलपिहाणा' इति पद्ममुत्पलं च यथायोगं पिधानं येषां ते पद्मोत्पलपिधानाः 'सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् 'महयामहया' इति अतिशयेन महान्तो महेन्द्रकुम्भसमानाः, कुम्भानामिन्द्र इन्द्रकुम्भो, राजदन्तादिदर्शनादिन्द्रशब्दस्य पूर्वनिपातः, महांश्चासौ इन्द्रकुम्भश्च तस्य समाना महेन्द्रकुम्भसमाना—महाकलशप्रमाणाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'विजयस्स ण'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्य उभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन द्विधातो नैषेधिक्यां द्वौ द्वौ 'नागदन्तकौ' नर्कुटकौ अङ्कुटकावित्यर्थः प्रज्ञप्तौ, ते च नागदन्तका 'मुत्ताजालंतरूसियहेमजालगवक्खजालखिंखिणीजालपरिक्खित्ता' इति मुक्ताजालानामन्तरेषु यानि उत्सृतानि—लम्बमानानि हेमजालानि—हेममयदामसमूहाः यानि च गवाक्षजालानि—गवाक्षाकृतिरत्नविशेषदामसमूहाः यानि च किङ्किणी—क्षुद्रघण्टा किङ्किणीजालानि—क्षुद्रघण्टा(सङ्घाता)स्तैः परिक्षिप्ताः—सर्वतो व्याप्ताः 'अब्भुग्गया' इति अभिमुखमुद्गता अभ्युद्गता अग्रिमभागे मनाग् उन्नता

इति भावः **'अभिनिसिट्ठा'** इति अभिमुखं—बहिर्भागाभिमुखं निसृष्टाः अभिनिसृष्टाः **'तिरियं सुसंपग्गहिया'** इति तिर्यग्—भित्तिप्रदेशे सुष्ठु अतिशयेन सम्यग्—मनागप्यचलनेन परिगृहीताः सुसंपरिगृहीताः **'अहेपन्नगद्धरूवा'** इति अधः—अधस्तनं यत्पन्नगस्य—सर्पस्यार्द्धं तस्येव रूपं—आकारो येषां ते तथा अधःपन्नगार्द्धवदतिसरला दीर्घाश्चेति भावः, एतदेव व्याचष्टे—**'पन्नगार्द्धसंस्थानसंस्थिताः'** अधःपन्नगार्द्धसंस्थानसंस्थिताः **'सव्ववइरामया'** सर्वात्मना वज्रमयाः **'अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा'** इति प्राग्वत्, **'महयामहया'** इति अतिशयेन **'गजदन्तसमानाः'** गजदन्ताकाराः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'तेसु णं नागदंतएसु'** इत्यादि, तेषु च नागदन्तकेषु बहवः कृष्णसूत्रे बद्धाः **'वग्घारिया'** इति अवलम्बिताः **'माल्यदामकलापाः'** पुष्पमालासमूहा बहवो नीलसूत्रबद्धा माल्यदामकलापाः, एवं लोहितहारिद्रशुक्लसूत्रबद्धा अपि वाच्याः ॥ **'ते णं दामा'** इत्यादि, तानि दामानि **'तवनिज्जलंबूसगा'** इति तपनीयः—तपनीयमयो लम्बूसगो—दाम्नामग्रिमभागे प्राङ्गणे लम्बमानो मण्डनविशेषो गोलकाकृतिर्येषां तानि तपनीयलम्बूसकानि **'सुवण्णपयरगमंडिया'** इति पार्श्वतः सामस्त्येन सुवर्णप्रतरेण—सुवर्णपत्रकेण मण्डितानि सुवर्णप्रतरकमण्डितानि **'नानामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभियसमुदया'** इति नानारूपाणां मणीनां रत्नानां च ये विविधा—विचित्रवर्णा हारा—अष्टादशसरिका अर्द्धहारा—नवसरिकास्तैरुपशोभितः समुदायो येषां तानि तथा 'जाव सिरीए अतीव उवसोभेमाणा चिट्ठंति' अत्र यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठो द्रष्टव्यः—'ईसिमण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं वाएहिं मंदायं मंदायमेइज्जमाणा पलंबमाणा पलंबमाणा परुंभ(झंझ)माणा परुंभ(झंझ)माणा ओरालेणं मणुन्नेणं मणहरेणं कण्णमणनिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे सव्वतो समंता आपूरेमाणा आपूरेमाणा सिरीए उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।' एतच्च प्रागेव पद्मवरवेदिकावर्णने व्याख्यातमिति भूयो न व्याख्यायते ॥ **'तेसि णं नागदं-**

ताण'मित्यादि, तेषां नागदन्तानामुपरि अन्यौ द्वौ नागदन्तकौ प्रज्ञप्तौ, ते च नागदन्तकाः 'मुत्ताजालंतरूसियहेमजालगवक्खजाल' इत्यादि प्रागुक्तं सर्वं द्रष्टव्यं यावद् गजदन्तसमानाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'तेसु णं णागदंतएसु'** इत्यादि, तेषु नागदन्तकेषु बहूनि रजतमयानि सिक्ककानि प्रज्ञप्तानि, तेषु च रजतमयेषु सिक्ककेषु बहवो **'वेडूर्यरत्नमय्यो'** वैडूर्यरत्नात्मिकाः **'धूपघट्यो'** धूपघटिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च धूपघटिकाः **'कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा'** कालागुरुः प्रसिद्धः प्रवरः—प्रधानः कुन्दुरुष्कः—चीडा तुरुष्कं—सिल्हकं कालागुरुश्च प्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्के च कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्काणि तेषां धूपस्य यो मघमघायमानो गन्ध उद्धुत—इतस्ततो विप्रसृतस्तेनाभिरामाः कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूममघमघायमानगन्धोद्धुताभिरामाः, तथा शोभनो गन्धो येषां ते सुगन्धास्ते च ते वरगन्धास्तेषां गन्धः स आस्त्यस्तीति सुगन्धवरगन्धिकाः 'अतोऽनेकस्वरादि'तीकप्रत्ययः, अत एव गन्धवर्त्तिभूताः—सौरभ्यवर्त्तिभूताः सौरभ्यातिशयाद् गन्धद्रव्यगुटिकाकल्पाः **'उदारेण'** स्फारेण **'मनोज्ञेन'** मनोऽनुकूलेन, कथं मनोऽनुकूलत्वम्? अत आह—घ्राणमनोनिर्वृतिकरेण हेतौ तृतीया यतो घ्राणमनोनिर्वृतिकरस्ततो मनोज्ञस्तेन गन्धेन तान् प्रत्यासन्नान् प्रदेशान् आपूरयन्त्य आपूरयन्त्यः अत एव श्रियाऽतीव शोभमानास्तिष्ठन्ति ॥ **'विजयस्स णं दारस्से'**त्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन द्विधातो—द्विप्रकारायां नैषेधिक्यां द्वे द्वे शालभञ्जिके प्रज्ञप्ते, ताश्च शालभञ्जिका लीलया ललिताङ्गनिवेशरूपया स्थिता लीलास्थिताः **'सुपइट्ठियाओ'** इति सुष्ठु—मनोज्ञतया प्रतिष्ठिताः सुप्रतिष्ठिताः **'सुअलंकियाओ'** इति सुष्ठु—अतिशयेन रमणीयतयाऽलङ्कृताः स्वलङ्कृताः **'नाणाविहरागवसणाओ'** इति नानाविधो—नानाप्रकारो रागो येषां तानि नानाविधरागाणि तानि वसनानि—वस्त्राणि संवृततया यासां ता नानाविधरागवसनाः **'रत्तावंगाओ'** इति रक्तोऽपाङ्गो—नयनोपान्तं यासां ता रक्तापाङ्गाः 'असिय-

केसीओ' इति असिताः—कृष्णाः केशा यासां ता असितकेश्यः 'मिउविसयपसत्थलक्खणसंवेल्लियग्गसिरयाओ' मृदवः—कोमला विशदा—निर्म्मलाः प्रशस्तानि—शोभनानि अस्फुटितलप्रभृतीनि लक्षणानि येषां ते प्रशस्तलक्षणाः संवेल्लितं—संवृतमग्रं येषां शेखरककरणात् ते संवेल्लिताग्राः शिरोजाः—केशा यासां ता मृदुविशदप्रशस्तलक्षणसंवेल्लिताग्रशिरोजाः 'णाणामल्लपिणद्धाओ' इति नानारूपाणि माल्यानि—पुष्पाणि पिनद्धानि—आविद्धानि यासां ता नानामाल्यपिनद्धाः, निष्ठान्तस्य परनिपातो भार्यादिदर्शनात्, 'मुट्ठिगेज्झसुमज्झा' इति मुष्टिग्राह्यं सुष्ठु—शोभनं मध्यं—मध्यभागो यासां ता मुष्टिग्राह्यसुमध्याः 'आमेलगजमलजुगलवट्टियअब्भुण्णयपीणरइयसंठियपओहराओ' पीनं—पीवरं रचितं संस्थितं—संस्थानं यकाभ्यां तौ पीनरचितसंस्थितौ आमेलक—आपीडः शेखरक इत्यर्थः तस्य यमलं—समश्रेणीकं युगलं तद्वत् वर्त्तितौ—बद्धस्वभावावुपचितकठिनभावाविति भावः अभ्युन्नतौ पीनरचितसंस्थितौ च पयोधरौ यासां तास्तथा, 'ईसिं असोगवरपायवसमुट्ठियाओ' इति ईषत्—मनाक् अशोकवरपादपे समवस्थिता—आश्रिता ईषदशोकवरपादपसमवस्थिताः, तथा वामहस्तेन गृहीतमग्रं शालायाः—शाखाया अर्थादशोकपादपस्य यकाभिस्ता वामहस्तगृहीताग्रशालाः, 'ईसिं अड्ढऽच्छिकडक्खचिट्ठिएहिं लूसेमाणीओ विवे'ति ईषत्—मनाग् 'अड्ढं'तिर्यग्वलितम् अक्षि येषु कटाक्षरूपेषु चेष्टितेषु तैर्मुष्णन्त्य इव सुरजनानां मनांसि 'चक्खुल्लोयणलेसेहि य अण्णमण्णं विज्झेमाणीओ इव' अन्नमन्नं—परस्परं चक्षुषां लोकनेन—अवलोकनेन लेशाः—संश्लेषास्तैर्विध्यमाना इव, किमुक्तं भवति ?—एवं नाम तास्तिर्यग्वलिताक्षिकटाक्षैः परस्परमवलोकमाना अवतिष्ठन्ते यथा नूनं परस्परसौभाग्यासहनतस्तिर्यग्वलिताक्षिकटाक्षैः परस्परं खिद्यन्त इवेति 'पुढविपरिणामाओ' इति पृथिवीपरिणामरूपाः शाश्वतभावमुपागता विजयद्वारवत् 'चंदाणणाओ' इति चन्द्रवद् आननं—मुखं यासां ताश्चन्द्राननाः 'चंदविलासिणीओ' इति चन्द्रवन्मनोहरं

विलसन्तीत्येवंशीलाश्चन्द्रविलासिन्यः 'चंदद्धसमनिडालाओ' इति चन्द्रार्द्धेन–अष्टमीचन्द्रेण समं–समानं ललाटं यासां ताश्चन्द्रार्द्ध-
समललाटाः 'चंदाहियसोमदंसणाओ' इति चन्द्रादप्यधिकं सोमं–सुभगं कान्तिमद्दर्शनं–आकारो यासां तास्तथा, उल्का इव द्योत-
मानाः 'विज्जुघणमरीचिसूरदिप्पंततेयअहिययरसन्निकासाओ' इति विद्युतो ये घना–बहुलतरा मरीचयस्तेभ्यो यच्च सूर्यस्य
दीप्यमानमनावृतं तेजस्तस्मादप्यधिकतरः सन्निकाशः–प्रकाशो यासां तास्तथा 'सिंगारागारचारुवेसाओ' इति शृङ्गारो–मण्डनभूप-
णाटोपस्तत्प्रधान आकार–आकृतिर्यासां ताः शृङ्गाराकाराः चारु वेपो–नेपथ्यं यासां ताश्चारुवेपास्ततः कर्म्मधारये शृङ्गाराका-
रचारुवेषाः 'पासाईयाओ' इत्यादि विशेपणचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'विजयस्स णं दारस्से'त्यादि, विजयस्य द्वारस्य उभयोः
पार्श्वयोरेकैकनैपेधिकीभावेन 'द्विधातो' द्विप्रकारायां नैपेधिक्यां द्वौ द्वौ जालकटकौ प्रज्ञप्तौ, 'ते णं जालकडगा'इत्यादि,
ते च जालकटकाकीर्णा रम्यसंस्थानाः प्रदेशविशेपाः 'सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् ॥
'विजयस्से'त्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्द्विधातो नैपेधिक्यां द्वे द्वे घण्टे प्रज्ञप्ते, तासां च घण्टानामयमेतद्रूपः 'वर्णा-
वासः' वर्णकनिवेश. प्रज्ञप्तः, तद्यथा–जाम्बूनदमय्यो घण्टाः वज्रमय्यो लालाः नानामणिमया घण्टापार्श्वाः तपनीयमय्यः शृ-
ङ्खला यासु ता अवलम्बितास्तिष्ठन्ति रजतमय्यो रज्जवः ॥ 'ताओ णं घंटाओ' इत्यादि, ताश्च घण्टाः 'ओघस्सराः' ओघेन–प्रवा-
हेण स्वरो यासां ता ओघस्वराः, मेघस्येवातिदीर्घः स्वरो यासां ता मेघस्वराः, हंसस्येव मधुरः स्वरो यासां ता हंसस्वराः, एवं क्रौञ्च-
स्वराः, सिंहस्येव प्रभूतदेशव्यापी स्वरो यासां ताः सिंहस्वराः, एवं दुन्दुभिस्वरा नन्दिस्वराः, द्वादशतूर्यसङ्घातो नन्दिः, नन्दिवद् घोपो
–निनादो यासां ता नन्दिघोपाः, मञ्जुः–प्रियः स्वरो यासां ता मञ्जुस्वराः, एवं मञ्जुघोपाः, किं बहुना?, सुस्वराः सुस्वरघोपाः,

'ओरालेण'मित्यादि प्राग्वत् ॥ 'विजयस्स ण'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्द्विधातो नैषेधिक्यां द्वे द्वे वनमाले प्रज्ञप्ते, ताश्च वनमाला नानाद्रुमाणां नानालतानां च ये किशलयरूपा अतिकोमला इत्यर्थः पल्लवास्तैः समाकुलाः—सम्मिश्राः 'छप्पयपरिभुज्जमाणसोभंतसस्सिरीया' इति षट्पदैः परिभुज्यमाना सती शोभमाना षट्पदपरिभुज्यमानशोभमाना अत एव सश्रीका ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, 'पासाईया' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहतो णिसीहियाए दो दो पगंठगा पण्णत्ता, ते णं पगंठगा चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खंभेणं दो जोयणाइं बाहल्लेणं सव्ववइरामता अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं पयंठगाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडिंसगा चत्तारि जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसितपहसिताविव विविहमणिरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागच्छत्तातिछत्तकलिया तुंगा गगणतलमभिलंघमाण(णुलिहंत)सिहरा जालंतररयणपंजरुम्मिलितव्व मणिकणगथूभियागा वियसियसयवत्तपोंडरीयतिलकरयणद्धयंदचित्ता णाणामणिमयदामालंकिया अंतो य बाहिं च सण्हा तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडगा सुद्ध(ह)फासा सस्सिरीयरूवा पासातीया ४ ॥ तेसि णं पासायवडेंसगाणं उल्लोया पउमलता जाव सामलयाभत्तिचित्ता सव्वतवणिज्जमता अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं पासायवडिंसगाणं पत्तेयं पत्तेयं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा-

णामए आलिंगपुक्खरेति वा जाव मणीहिं उवसोभिए, मणीण गंधो वण्णो फासो य नेयव्वो ॥ तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वरयणामईओ जाव पडिरूवाओ, तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं २ सीहासणे पण्णत्ते, तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–तवणिज्जमया चक्कवाला रयतामया सीहा सोवण्णिया पादा णाणामणिमयाइं पायवीढगाइं जंबूणयमताइं गत्ताइं वतिरामया संधी नाणामणिमए वेच्चे, ते णं सीहासणा ईहामियउसभ जाव पउमलयभत्तिचित्ता ससारसारोवइयविविहमणिरयणपायपीढा अच्छरगमिउमसूरगनवतयकुसंतलिचसीहकेसरपच्चुत्थताभिरामा उयचियखोमदुगुल्लयपडिच्छयणा सुविरचितरयत्ताणा रत्तंसुयसंवुया सुरम्मा आइणगरुयबूरणवनीततूलमउयफासा मउया पासाईया ४॥ तेसि णं सीहासणाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं विजयदूसं पण्णत्ते, ते णं विजयदूसा सेता संखकुंददगरयअमतमहियफेणपुंजसन्निकासा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तेसि णं विजयदूसाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामया अंकुसा पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु अंकुसेसु पत्तेयं २ कुंभिक्का मुत्तादामा पण्णत्ता, ते णं कुंभिक्का मुत्तादामा अन्नेहिं चउहिं चउहिं तदद्धुच्चप्पमाणमेत्तेहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता,

ते णं दामा तवणिज्जलंबूसका सुवण्णपयरगमंडिता जाव चिट्ठंति, तेसि णं पासायवडिंसगाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता सोत्थिय तधेव जाव छत्ता ॥ (सू० १३०)

'**विजयस्स ण**'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्द्विधातो नैषेधिक्यां द्वौ द्वौ प्रकण्ठकौ प्रज्ञप्तौ, प्रकण्ठको नाम पीठविशेषः, आह च **मूलटीकाकारः**—"प्रकण्ठौ पीठविशेषौ," **चूर्णिकार**स्त्वेवमाह—"आदर्शवृत्तौ पर्यन्तावनतप्रदेशौ पीठौ प्रकण्ठावि"ति, ते च प्रकण्ठकाः प्रत्येकं चत्वारि योजनानि '**आयामविष्कम्भेन**' आयामविष्कम्भाभ्यां द्वे योजने बाहल्येन '**सव्ववइरामया**' इति सर्वात्मना ते प्रकण्ठका वज्रमयाः '**अच्छा सण्हा य**' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ '**तेसि णं पकंठयाण**'मित्यादि, तेषां च प्रकण्ठकानामुपरि प्रत्येकं प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, प्रासादावतंसको नाम प्रासादविशेषः, उक्तं च **मूलटीकायां**—"प्रासादावतंसकः प्रासादविशेष" इति, व्युत्पत्तिश्चैवम्—प्रासादानामवतंसक इव—शेखरक इव प्रासादावतंसकः, ते च प्रासादावतसंकाः प्रत्येकं चत्वारि योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्याम्, '**अब्भुग्गयमूसियपहसियाविवे**'ति अभ्युद्गता—आभिमुख्येन सर्वतो विनिर्गता उत्सृता—प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता या प्रभा तया सिता इव—बद्धा इव तिष्ठन्तीति गम्यते, अन्यथा कथमिव तेऽत्युच्चा निरालम्बास्तिष्ठन्तीति भावः, अथवा प्रबलश्वेतप्रभापटलया प्रहसिताविव प्रकर्षेण हसिताविव, तथा '**विविहमणिरयणभत्तिचित्ता**' विविधा अनेकप्रकारा ये मणयः—चन्द्रकान्ताद्या यानि च रत्नानि—कर्केतनादीनि तेषां भक्तिभिः—विच्छित्तिभिश्चित्रा—नानारूपा आश्चर्यवन्तो वा नानाविधमणिरत्नभक्तिविचित्राः '**वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागछत्तातिछत्तकलिया**' वातोद्धूता—वायुकम्पिता विजयः—अभ्युदयस्तत्संसूचिका वैजयन्तीनामानो (नाम्न्यो) याः पताकाः, अथवा विजया इति वैजयन्तीनां पार्श्वकर्णिका उच्यन्ते तत्प्रधाना वैजयन्त्यो

विजयवैजयन्त्यः पताकास्ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः, छत्रातिछत्राणि—उपर्युपरिस्थितान्यातपत्राणि तैः कलिता वातोद्धूतविजयवैजयन्तीपताकाछत्रातिच्छत्रकलिताः 'तुङ्गाः' उच्चा उच्चैस्त्वेन चतुर्योजनप्रमाणत्वात्, अत एव 'गगणतलमणुलिहन्तसिहरा' इति, गगनतलम्—अम्बरम् अनुलिखन्ति—अभिलङ्घयन्ति शिखराणि येषां ते गगनतलानुलिखच्छिखराः, तथा जालानि—जालकानि यानि भवनभित्तिषु लोके प्रतीतानि तदन्तरेषु विशिष्टशोभानिमित्तं रत्नानि येषु ते जालान्तररत्नाः, सूत्रे चात्र विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्, तथा पञ्जराद् उन्मीलिता इव—बहिष्कृता इव, यथा हि किल किमपि वस्तु वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद् बहिष्कृतमत्यन्तमविनष्टच्छायं भवति एवं तेऽपि प्रासादावतंसका इति भावः, तथा मणिकनकानि—मणिकनकमय्यः स्तूपिकाः—शिखराणि येषां ते मणिकनकस्तूपिकाः, तथा विकसितानि यानि शतपत्राणि पुण्डरीकाणि च द्वारादौ प्रतिकृतित्वेन स्थितानि तिलकरत्नानि भित्त्यादिषु पुण्ड्रविशेषा अर्द्धचन्द्राश्च द्वारादिषु तैश्चित्रा—नानारूपा आश्चर्यभूता विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकार्द्धचन्द्रचित्राः अन्तर्बहिश्च (नाना—अनेकप्रकारा ये चन्द्रकान्ताद्या मणयस्तन्मयानि—तत्प्रधानानि यानि दामानि—पुष्पमालास्तैरलङ्कृताः) 'श्लक्ष्णाः' मसृणाः, तथा तपनीयं—सुवर्णविशेषस्तन्मय्या वालुकायाः प्रस्तटं—प्रतरो येषु ते तपनीयवालुकाप्रस्तटाः 'सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां च प्रासादावतंसकानाम् 'उल्लोकाः' उपरितनभागाः पद्मलताभक्तिचित्रा अशोकलताभक्तिचित्राश्चम्पकलताभक्तिचित्राश्चूतलताभक्तिचित्रा वनलताभक्तिचित्रा वासन्तिकलताभक्तिचित्राः सर्वात्मना तपनीयमयाः 'अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा' इति विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां प्रासादावतंसकानामन्तर्बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, 'से जहा नामए आलिंगपुक्खरे इ वा' इत्यादि समस्तं भूमिवर्णनं मणीनां वर्णपञ्चकसुरभिगन्धशुभस्पर्शवर्णनं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि,

तेषां प्रासादावतंसकानामन्तर्बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं (मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिका योजनमायामविष्कम्भेन अष्ट योजनानि बाहल्येन सर्वरत्नमय्यो यावत्प्रतिरूपाः तासां मणिपीठिकानामुपरि) सिंहासनं प्रज्ञप्तं, तेषां च सिंहासनानामयमेतद्रूपो **'वर्णावासो'** वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—रजतमयाः सिंहा तैरुपशोभितानि सिंहासनानि **'सौवर्णिकाः'** सुवर्णमयाः पादाः तपनीयमयानि **चक्कलानि**—पादानामधःप्रदेशाः भवन्ति [मुक्तानानामणिमयानि पादानामधःप्रदेशाः] प्रयुक्ता, नानामणिमयानि **'पादशीर्षकाणि'** पादानामुपरितना अवयवविशेषा जाम्बूनदमयानि गात्राणि ईषदच्छाः **'वज्रमयाः'** वज्ररत्नापूरिताः **'सन्धयः'** गात्राणां सन्धिमेला नानामणिमयं **'वेच्चं'** व्यूतं वानमित्यर्थः, आह च **चूर्णिकृत्**—"वेच्चे वाणकतेण"मित्यादि, तानि च सिंहासनानि ईहामृगऋषभतुरगनरमकरव्यालकिन्नररुरुसरभचमरकुञ्जरवनलतापद्मलताभक्तिचित्राणि **'ससारसारोवचियविविहमणिरयणपादपीढा'** इति, सारसारैः—प्रधानप्रधानैर्विविधैर्मणिरत्नैरुपचितैः पादपीठैः सह यानि तानि तथा, प्राकृतत्वाच्च उपचितशब्दस्यान्तरुपन्यासः, **'अच्छरमउयमसूरगनवतयकुसन्तलित्तकेसरपच्चत्थुयाभिरामा'** इति, आस्तरकं—आच्छादनं मृदु येषां मसूरकाणां तानि आस्तरकमृदूनि, विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, नवा त्वग् येषां ते नवत्वचः कुशान्ता—दर्भपर्यन्ताः, नवत्वचश्च ते कुशान्ताश्च नवत्वक्कुशान्ताः प्रत्यग्रत्वगदर्भपर्यन्तरूपाणि त्वतिकोमलानि लित्तानि—नम्र(मन)शीलानि च केसराणि, क्वचित् सिंहकेसरेति पाठस्तत्र सिंहकेसराणीव केसराणि मध्ये मसूरकाणां तानि नवत्वक्कुशान्तचिह्न(लित्त)केसराणि, सिंहकेसरेति पाठपक्षे एकस्य केसरशब्दस्य शाकपार्थिवादिदर्शनाल्लोपः, आस्तरकमृदुभिर्मसूरकैर्नवत्वक्कुशान्तलिच(त्त)केसरैः प्रत्यवस्तृतानि—आच्छादितानि सन्ति यानि अभिरामाणि तानि तथा, विशेषणपूर्वापरनिपातो यादृच्छिकः प्राकृतत्वात्, **'आईणगरुयबूरनवणीयतूलफासा'** इति आजिनकं—

चर्ममयं वस्त्रं तच्च स्वभावादतिकोमलं भवति रूतं—कर्पासपक्ष्म वूरो—वनस्पतिविशेषः नवनीतं—म्रक्षणं तूलं—अर्कतूलं तेषामिव स्पर्शो येषां तानि तथा, तथा सुविरचितं रजस्त्राणं प्रत्येकमुपरि येषां तानि सुविरचितरजस्त्राणानि 'उवचिय(खोम)दुगुल्लपट्टपडिच्छायणे' इति उपचितं—परिकर्म्मितं यत्क्षौमं दुकूलं—कार्पासिकं वस्त्रं तत्प्रतिच्छादनं—रजस्त्राणस्योपरि द्वितीयमाच्छादनं प्रत्येकं येषां तानि तथा, तत उपरि 'रत्तंसुयसंवुया' इति रक्तांशुकेन—अतिरमणीयेन रक्तेन वस्त्रेण संवृतानि—आच्छादितानि रक्तांशुकसंवृतानि अत एव सुरम्याणि 'पासाइया' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां च सिंहासनानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकं विजयदूष्यं—वस्त्रविशेषः प्रज्ञप्तः, आह च मूलटीकाकारः—"विजयदूष्यं वस्त्रविशेष" इति । 'ते ण'मित्यादि, तानि च विजयदूष्याणि 'शङ्खकुन्ददकरजोऽमृतमथितफेनपुञ्जसन्निकाशानि' शङ्खः प्रतीतः कुन्देति—कुन्दकुसुमं दकरजः—उदककणाः अमृतस्य—क्षीरोदधिजलस्य मथितस्य यः फेनपुञ्जो—डिण्डीरोत्करस्तत्सन्निकाशानि—तत्समप्रभाणि, पुनः कथम्भूतानि ? इत्यत आह—'सव्वरयणामया' सर्वात्मना रत्नमयानि 'अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा' इति विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां—सिंहासनोपरिस्थितानां विजयदूष्याणां प्रत्येकं प्रत्येकं बहुमध्यदेशभागे वज्रमयाः वज्ररत्नात्मकाः 'अङ्कुशाः' अङ्कुशाकारा मुक्तादामावलम्बनाश्रयभूताः प्रज्ञप्ताः, तेषु च वज्रमयेष्वङ्कुशेषु प्रत्येकं प्रत्येकं 'कुम्भाग्रं' मगधदेशप्रसिद्धं कुम्भप्रमाणमुक्तामयं मुक्तादाम प्रज्ञप्तं, तानि च कुम्भाग्राणि मुक्तादामानि प्रत्येकं प्रत्येकमन्यैश्चतुर्भिः कुम्भाग्रैर्मुक्तादामभिस्तदर्धोच्चप्रमाणमात्रैः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्तानि, 'ते णं दामा तवणिज्जलंवूसगा णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभियसमुदाया ईसिमन्नमन्नमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं वाएहिं

मंदायं मंदायं एइज्जमाणा २ वेइज्जमाणा २ पकंपमाणा पकंपमाणा पझंझमाणा पझंझमाणा ओरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं कण्णमणनि व्वुइकरेणं ते पएसे सव्वतो समंता आपूरेमाणा 'सिरीए उवसोभमोणा चिट्ठंति” ॥

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो तोरणा पण्णत्ता, ते णं तोरणा णाणामणिमया तहेव जाव अट्ठट्ठमंगलका य छत्तातिछत्ता ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो सालभंजिताओ पण्णत्ताओ, जहेव णं हेट्ठा तहेव ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो णागदंतगा पण्णत्ता, तेणं णागदंतगा मुत्ताजालंतरूसिया तहेव, तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हे सुत्तवट्ट-वग्घारितमल्लदामकलावा जाव चिट्ठंति ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो हयसंघाडगा पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, एवं पंतीओ वीहीओ मिहुणगा, दो दो पउमलयाओ जाव पडिरूवाओ तेसि णं तोरणाणं पुरनो (अक्खाअसोवत्थिया सव्वरयणामया अच्छा जाव प-डिरूवा) तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो चंदणकलसा पण्णत्ता, ते णं चंदणकलसा वरकमल-पइट्ठाणा तहेव सव्वरयणामया जाव पडिरूवा समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो भिंगारगा पण्णत्ता वरकमलपइट्ठाणा जाव सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा महतामहता म-त्तगयमुहागितिसमाणा पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो आतंसगा पण्ण-त्ता, तेसि णं आतंसगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—तवणिज्जमया पयंठगा वेरु-

लियमया छरुहा (थंभया) वइरामया वरंगा णाणामणिमया वलक्खा अंकमया मंडला अणोघसिय-
निम्मलासाए छायाए सव्वतो चेव समणुबद्धा चंदमंडलपडिणिकासा महतामहता अद्धकायसमाणा
पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो वइरणाभे थाले पण्णत्ते, ते णं थाला
अच्छतिच्छडियसालितंदुलनहसंदट्ठबहुपडिपुण्णा चेव चिट्ठंति सव्वजंबूणतामता अच्छा जाव
पडिरूवा महतामहता रहचक्कसमाणा समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो पातीओ
पण्णत्ताओ, ताओ णं पातीओ अच्छोदयपडिहत्थाओ णाणाविधपंचवण्णस्स फलहरितगस्स
बहुपडिपुण्णाओ विव चिट्ठंति सव्वरयणामतीओ जाव पडिरूवाओ महयामहया गोकलिंजग-
चक्कसमाणाओ पण्णत्ताओ समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो सुपतिट्ठगा पण्णत्ता,
ते णं सुपतिट्ठगा णाणाविध(पंचवण्ण)पसाहणगभंडविरचिया सव्वोसधिपडिपुण्णा सव्वरयणा-
मया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो मणोगुलियाओ पण्णत्ताओ ॥ तासु
णं मणोगुलियासु बहवे सुवण्णरूप्पामया फलगा पण्णत्ता, तेसु णं सुवण्णरूप्पामएसु फलएसु
बहवे वइरामया णागदंतगा मुत्ताजालंतरुसिता हेम जाव गयंदगसमाणा पण्णत्ता, तेसु णं वइराम-
एसु णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वायक-
रगा पण्णत्ता ॥ ते णं वायकरगा किण्हसुत्तसिक्कगवत्थिया जाव सुक्किलसुत्तसिक्कगवत्थिया सव्वे

वेरुलियामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चित्ता रयणकरंडगा पण्णत्ता, से जहाणामए—रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चित्ते रयणकरंडे वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोयडे साए पभाए ते पदेसे सव्वतो समंता ओभासइ उज्जोवेति तावेइ पभासेति, एवामेव ते चित्तरयणकरंडगा पण्णत्ता वेरुलियपडलपच्चोयडा साए पभाए ते पदेसे सव्वतो समंता ओभासेति ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो हयकंठगा जाव दो दो उसभकंठगा पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसु णं हयकंठएसु जाव उसभकंठएसु दो दो पुप्फचंगेरीओ, एवं मल्लगंधचुण्णवत्थाभरणचंगेरीओ सिद्धत्थचंगेरीओ लोमहत्थचंगेरीओ सव्वरयणामतीओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो पुप्फपडलाइं जाव लोमहत्थपडलाइं सव्वरयणामयाइं जाव पडिरूवाइं ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो सीहासणाइं पण्णत्ताइं, तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तहेव जाव पासातीया ४ ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो रुप्पछदाछत्ता पण्णत्ता, ते णं छत्ता वेरुलियभिसंतविमलदंडा जंबूणयकन्निकावइरसंधी मुत्ताजालपरिगता अट्ठसहस्सवरकंचणसलागा दद्दरमलयसुगंधी सव्वोउअसुरभिसीयलच्छाया मंगलभत्तिचित्ता चंदागारोवमा वट्टा ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो चामराओ पण्णत्ताओ, ताओ णं चामराओ (चन्दप्पभवइरवेरुलियनानामणि-

रयणखचियदंडा) णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लिआओ संखंककुंददगरयअमयमहियफेणपुंजसण्णिकासाओ सुहुमरयतदीहवालाओ सव्वरयणामताओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो तिल्लसमुग्गा कोट्ठसमुग्गा पत्तसमुग्गा चोयसमुग्गा तयरसमुग्गा एलासमुग्गा हरियालसमुग्गा हिंगुलयसमुग्गा मणोसिलासमुग्गा अंजणसमुग्गा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ (सू० १३१)

'विजयस्स ण'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्द्विधातो नैषेधिक्या द्वे द्वे तोरणे प्रज्ञप्ते, तानि च तोरणानि नानामणिमयानीत्यादि तोरणवर्णनं निरवशेषं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे शालभञ्जिके प्रज्ञप्ते, शालभञ्जिकावर्णनं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां द्वौ द्वौ नागदन्तकौ प्रज्ञप्तौ, तेषां च नागदन्तकानां वर्णनं यथाऽधस्तादनन्तरमुक्तं तथा वक्तव्यं, नवरमत्रोपरि नागदन्तका न वक्तव्या अभावात् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ हयसंघाटकौ द्वौ द्वौ गजसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ नरसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ किन्नरसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ किंपुरुषसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ महोरगसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ गन्धर्वसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ वृषभसङ्घाटकौ, एते च कथम्भूताः? इत्याह—'सव्वरयणामया अच्छा सण्हा' इत्यादि प्राग्वत्, एवं पङ्क्तिवीथीमिथुनकान्यपि प्रत्येकं वाच्यानि ॥ 'तेसिं तोरणाण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे पद्मलते यावत्करणाद् द्वे द्वे नागलते द्वे द्वे अशोकलते द्वे द्वे चम्पकलते द्वे द्वे चूतलते द्वे द्वे वासन्तीलते द्वे द्वे कुन्दलते द्वे द्वे अतिमुक्तकलते इति परिग्रहः, द्वे द्वे श्यामलते, एताश्च कथम्भूताः? इत्याह—'निच्चं सुकुमियाओ' इत्यादि यावत्करणात् 'निच्चं मउलिया निच्चं लवइयाओ निच्चं थइयाओ निच्चं गोच्छियाओ निच्चं जमलियाओ निच्चं

विणमियाओ (निच्चं पणमियाओ) निच्चं सुविभत्तपडिमंजरिवडंसगधरीओ निच्चं कुसुमियमउलियलवइयथवइयनिच्चंगोच्छियविणमियपण-मियसुविभत्तपडिमंजरिवडंसगधरीओ' इति परिगृह्यते, अस्य व्याख्यानं प्राग्वत्। पुनः कथम्भूताः? इत्याह—'सव्वरयणामया जाव पडिरूवा' इति, अत्रापि यावत्करणात् 'अच्छा सण्हा' इत्यादि विशेषणकदम्बकपरिग्रहः स च प्राग्वद्भावनीयः॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ चन्दनकलशौ प्रज्ञप्तौ, वर्णकश्च चन्दनकलशानां 'वरकमलपइट्ठाणा' इत्यादिरूपः सर्वः प्राक्तनो वक्तव्यः॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ भृङ्गारकौ प्रज्ञप्तौ, तेषामपि चन्दनकलशानामिव वर्णको वक्तव्यः, नवरं पर्यन्ते 'मत्तगय-महामुहागिइसमाणा पण्णत्ता समणाउसो!' इति वक्तव्यं **'मत्तगयमहामुहागिइसमाणा'** इति मत्तो यो गजस्तस्य महद्—अतिवि-शालं यन्मुखं तस्याकृतिः—आकारस्तत्समानाः—तत्सदृशाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वावादर्शकौ प्रज्ञप्तौ, तेषां चादर्शकानामयमेतद्रूपः **'वर्णावासः'** वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—तपनीयमयाः **'प्रकण्ठकाः'** पीठ-कविशेषाः **'वैडूर्यमयाथंभया'** आदर्शकगण्डप्रतिवन्धप्रदेशाः, आदर्शकगण्डानां मुष्टिग्रहणयोग्याः प्रदेशा इति भावः, वज्ररत्नमया वराङ्गा गण्डा इत्यर्थः, **'नानामणिमया वलक्षाः'** वलक्षो नाम शृङ्खलादिरूपमवलम्बनम्, अङ्कमयानि—अङ्करत्नमयानि मण्डलानि यत्र प्रतिबिम्बसंभूतिः **'अणोहसियणिम्मलाए छायाए'** इति, अवघर्षणमवघर्षितं, भावे क्तप्रत्ययः, भूत्यादिना निमज्जनमित्यर्थः, अवघर्षितस्याभावोऽनवघर्षितं तेन निर्म्मला अनवघर्षितनिर्म्मला तया छायया समनुबद्धाः **'चंदमंडलपडिनिकासा'** इति चन्द्रमण्ड-लसदृशाः **'महयामहया'** अतिशयेन महान्तः **'अर्द्धकायसमानाः'** द्रष्टुः शरीरार्द्धप्रमाणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे वज्रनाभे स्थाले प्रज्ञप्ते, तानि च स्थालानि [तिष्ठन्ति] **'अच्छतिच्छडियसालितंदुलनहसं-**

दद्धपडिपुण्णा इव चिट्ठंति' अच्छा–निर्म्मला: शुद्धस्फटिकवत्रिच्छटिता अत एव नखसंदष्टा:–नखा: संदष्टा मुसलादिभिश्चुम्बिता येषां ते तथा, भार्यादिदर्शनात्परनिपातो निष्ठान्तस्य, अच्छैस्त्रिच्छटितैः शालितन्दुलैर्नखसंदष्टैः परिपूर्णानीव अच्छत्रिच्छटितशालित-न्दुलनखसंदष्टपरिपूर्णानीव पृथिवीपरिमाणरूपाणि तानि तथा स्थितानि केवलमेवमाकाराणीत्युपमा, तथा चाह—'सव्वजंवूनदमया' सर्वात्मना जम्बूनदमयानि 'अच्छा सण्हा' इत्यादि प्राग्वत् 'महयामहया' इति अतिशयेन महान्ति रथचक्रसमानानि प्रज्ञप्तानि हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे 'पाईओ' इति पात्र्यौ प्रज्ञप्ते, ताश्च पात्र्यः 'अच्छोदक-पडिहत्थाओ' इति स्वच्छपानीयपरिपूर्णाः 'नाणाविहस्स फलहरियस्स बहुपडिपुण्णाओ विवे'ति अत्र षष्ठी तृतीयार्थे बहुवचने चैकवचनं प्राकृतत्वात्, नानाविधैः 'फलहरितैः' हरितफलैर्बहु–प्रभूतं प्रतिपूर्णा इव तिष्ठन्ति, न खलु तानि फलानि जलं वा किन्तु तथारूपा: शाश्वतभावमुपगता: पृथिवीपरिणामास्तत उपमानमिति, 'सव्वरयणामईओ' इत्यादि प्राग्वत्, 'महयामहया' इति अति-शयेन महत्यो गोकलिञ्ज (र) चक्रसमाना: प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ सुप्रतिष्ठकौ आधारविशेषौ प्रज्ञप्तौ, ते च सुप्रतिष्ठका: [सु]सर्वौषधिप्रतिपूर्णा नानाविधैः पञ्चवर्णैः प्रसाधनभाण्डैश्च बहुपरिपूर्णा इव तिष्ठन्ति, अ-त्रापि तृतीयार्थे षष्ठी बहुवचने चैकवचनं प्राकृतत्वात्, उपमानभावना प्राग्वत्, 'सव्वरयणामया' इत्यादि तथैव ॥ 'तेसि णं'मि-त्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे मनोगुलिके प्रज्ञप्ते, मनोगुलिका नाम पीठिका, उक्तं च मूलटीकायां—"मनोगुलिका पीठि-के"ति, ताश्च मनोगुलिका: सर्वात्मना 'वेडूर्यमय्यो' वैडूर्यरत्नात्मिका: 'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तासु णं मणोगुलियासु वहवे' इत्यादि, तासु मनोगुलिकासु बहूनि सुवर्णमयानि रूप्यमयानि च फलकानि प्रज्ञप्तानि, तेषु सुवर्णरूप्यमयेषु फलकेषु बहवो वज्रमया:

'नागदन्तकाः' अङ्कुटकाः प्रज्ञप्ताः, तेषु नागदन्तकेषु बहूनि **'रजतमयानि'** रूप्यमयानि सिक्ककानि प्रज्ञप्तानि, तेषु च रजतमयेषु सिक्ककेषु बहवो **'वातकरकाः'** जलशून्याः करका इत्यर्थः प्रज्ञप्ताः ॥ **'ते ण'**मित्यादि ते वातकरकाः **'कृष्णसूत्रसिक्कगवस्थिताः'** इति, आच्छादनं गवस्थाः(ताः) संजाता एष्विति गवस्थिताः कृष्णसूत्रैः—कृष्णसूत्रमयैर्गवस्थैरिति गम्यते, सिक्ककेषु गवस्थिताः कृष्णसूत्रसिक्कगवस्थिताः, एवं नीलसूत्रसिक्ककगवस्थिता इत्याद्यपि भावनीयं, ते च वातकरकाः सर्वात्मना वैडूर्यमया अच्छा इत्यादि प्राग्वत् ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ **'चित्रौ'** चित्रवर्णोपेतावाश्चर्यभूतौ वा रत्नकरण्डकौ प्रज्ञप्तौ, **'से जहा नामए'** इत्यादि, स यथा नाम—राज्ञश्चतुरन्तचक्रवर्त्तिनः, चतुर्षु—पूर्वापरदक्षिणोत्तररूपेषु पृथ्वीपर्यन्तेषु चक्रेण वर्त्तितुं शीलं यस्य तस्य **'चित्रः'** आश्चर्यभूतो नानामणिमयत्वेन नानावर्णो वा **'वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोयडे'** इति वाहुल्येन वैडूर्यमणिमयः, तथा 'स्फाटिकपटलप्रत्यवतटः' स्फाटिकपटलमयाच्छादनः **'साय पभाए'** इति स्वकीयया प्रभया **'तान्'** प्रत्यासन्नान् प्रदेशान् **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येनावभासयति, एतदेव पर्यायत्रयेण व्याचष्टे—उद्द्योतयति तापयति प्रभासति, **'एवमेवे'**त्यादि सुगमम् ॥ **'तेसि णं तोरणाण'**मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ **'हयकण्ठौ'** हयकण्ठप्रमाणौ रत्नविशेषौ प्रज्ञप्तौ, एवं गजकिंनरकिंपुरुषमहोरगगन्धर्ववृषभकण्ठा अपि वाच्याः, उक्तं च **मूलटीकायां**—"हयकण्ठौ हयकण्ठप्रमाणौ रत्नविशेषौ," एवं सर्वेऽपि कण्ठा वाच्या इति, तथा चाह—**'सव्वरयणामया'** सर्वे **'रत्नमयाः'** रत्नविशेषरूपा 'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत् ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे पुष्पचङ्गेर्यौ प्रज्ञप्तौ, एवं माल्यचूर्णगन्धवस्त्राभरणसिद्धार्थकलोमहस्तकचङ्गेर्योऽपि वक्तव्याः, एताश्च सर्वा अपि सर्वात्मना रत्नमय्यः, 'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत् ॥ एवं पुष्पादीनामष्टानां पटलकान्यपि द्विद्विसङ्ख्याकानि वाच्यानि ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे

सिंहासने प्रज्ञप्ते, तेषां च सिंहासनानां वर्णकः प्रागुक्तो निरवशेषो वक्तव्यो यावद्दामवर्णनम् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे **'रूप्यच्छदे'** रूप्याच्छादने छत्रे प्रज्ञप्ते, तानि च छत्राणि वैडूर्यरत्नमयविमलदण्डानि जाम्बूनदकर्णिकानि **'वज्रसन्धीनि'** वज्ररत्नापूरितदण्डशलाकासन्धीनि मुक्ताजालपरिगतानि अष्टौ सहस्राणि—अष्टसहस्रसङ्ख्याका वरकाञ्चनशलाका—वरकाञ्चनमय्यः शलाका येषु तानि अष्टसहस्रवरकञ्चनशलाकानि **'दद्दरमलयसुगन्धिसव्वोउयसुरहिसीयलच्छाया'** इति दर्दरः—चीवरावनद्धं कुण्डिकादिभाजनमुखं तेन गालितास्तत्र पक्का वा ये मलय इति—मलयोद्भवं श्रीखण्डं तत्सम्बन्धिनः सुगन्धयो गन्धवासास्तद्वत्सर्वेषु ऋतुषु सुरभिः शीतला च छाया येषां तानि, तथा **'मंगलभत्तिचित्ता'** तेषां अष्टानां मङ्गलानां भक्त्या—विच्छित्त्या चित्रं—आलेखो येषां तानि मङ्गलभक्तिचित्राणि, तथा **'चंदागारोवमा'** इति चन्द्राकारः—चन्द्राकृतिः स उपमा येषां तानि तथा चन्द्रमण्डलवद्वृत्तानीति भावः ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे चामरे प्रज्ञप्ते, तानि च चामराणि **'चंदप्पभवइरवेरुलियनाणामणिरयणखचियदंडा'** इति चन्द्रप्रभः—चन्द्रकान्तो वज्रं वैडूर्यं च प्रतीतं चन्द्रप्रभवज्रवैडूर्याणि शेषाणि च नानामणिरत्नानि खचितानि येषु दण्डेषु ते तथा, एवंरूपाश्चित्रा—नानाकारा दण्डा येषां चामराणां तानि तथा, सूत्रे स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, तथा **'सुहुमरययदीहवालाओ'** इति सूक्ष्मा रजतमया दीर्घा वाला येषां तानि तथा, **'संखंककुंददगरयअमयमहियफेणपुंजसंनिकासाओ'** इति शङ्खः—प्रतीतोऽङ्को—रत्नविशेषः कुन्देति—कुन्दपुष्पं दकरजः—उदककणाः अमृतमथितफेनपुञ्जः—क्षीरोदजलमथनसमुत्थफेनपुञ्जस्तेषामिव संनिकाशः—प्रभा येषां तानि तथा, अच्छा इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ 'तैलसमुद्गकौ' सुगन्धितैलाधारविशेषौ, उक्तं च **जीवाभिगममूलटीकायां**—"तैलसमुद्गकौ सुगन्धितैलाधारौ" एवं कोष्ठादिसमुद्गका अपि वाच्याः, अत्र

सङ्ग्रहणिगाथा—"तेल्लो कोट्ठसमुग्गा पत्ते चोए य तगर एला य। हरियाले हिंगुलए मणोसिला अंजणसमुग्गो ॥ १ ॥" 'सव्व रयणामया' इति एते सर्वेऽपि सर्वात्मना रत्नमयाः 'अच्छा सण्हा' इत्यादि प्राग्वत् ॥

विजये णं दारे अट्ठसतचक्कज्झयाणं अट्ठसयं मिगज्झयाणं अट्ठसयं गरुडज्झयाणं अट्ठसयं विगद्धयाणं (अट्ठसयं रुरुयज्झयाणं) अट्ठसतं छत्तज्झयाणं अट्ठसयं पिच्छज्झयाणं अट्ठसयं सउणिज्झयाणं अट्ठसतं सीहज्झयाणं अट्ठसतं उसभज्झयाणं अट्ठसतं सेयाणं चउविसाणाणं णागवरकेतूणं एवामेव सपुव्वावरेणं विजयदारे य आसीयं केउसहस्सं भवतित्ति मक्खायं ॥ विजये णं दारे णव भोमा पण्णत्ता, तेसि णं भोमाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता जाव मणीणं फासो, तेसि णं भोमाणं उप्पिं उल्लोया पउमलया जाव सामलताभत्तिचित्ता जाव सव्वतवणिज्जमता अच्छा जाव पडिरूवा, तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए जे से पंचमे भोम्मे तस्स णं भोमस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णतो विजयदूसे जाव अंकुसे जाव दामा चिट्ठंति, तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं सामाणियसहस्साणं चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं चत्तारि भद्दासणा पण्णत्ता, तस्स णं सीहासणस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स

अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं अट्ठण्हं भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स दाहिणेणं विजयस्स देवस्स मज्झिमियाए परिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स बाहिरियाए परिसाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ॥ तस्स णं सीहासणस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सत्तण्हं अणियाहिवतीणं सत्त भद्दासणा पण्णत्ता, तस्स णं सीहासणस्स पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—पुरत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ, एवं चउसुवि जाव उत्तरेणं चत्तारि साहस्सीओ, अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पण्णत्ता ॥ (सू० १३२)

'विजये णं दारे' इत्यादि, तस्मिन् विजये द्वारे 'अष्टशतम्' अष्टाधिकं शतं 'चक्रध्वजानां' चक्रालेखरूपचिह्नोपेतानां ध्वजानाम्, एवं मृगगरुडरुरुकच्छत्रपिच्छशकुनिसिंहवृषभचतुर्दन्तहस्तिध्वजानामपि प्रत्येकमष्टशतमष्टशतं वक्तव्यम्, 'एवामेव सपुव्वावरेणं' 'एवमेव' अनेन प्रकारेण सपूर्वापरेण सह पूर्वैरपरैश्च वर्त्तत इति सपूर्वापरं सङ्ख्यान तेन विजयद्वारे 'अशीतम्' अशीत्यधिकं केतुसहस्रं भवतीत्याख्यातं मयाऽन्यैश्च तीर्थकृद्भिः ॥ 'विजयस्स ण'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्य पुरतो नव 'भौमानि' विशिष्टानि स्थानानि प्रज्ञप्तानि, तेषां च भौमानां भूमिभागा उल्लोकाश्च पूर्ववद्वक्तव्याः, तेषां च भौमानां बहुमध्यदेशभागे यत्पञ्चमं भौमं तस्य बहुमध्यदेशभागे विजय-

द्वाराधिपतिविजयदेवयोग्यं सिंहासनं प्रज्ञप्तं, तस्य च सिंहासनस्य वर्णनं विजयदूष्यं कुम्भाग्रमुक्तादामवर्णनं प्राग्वत्, तस्य च सिंहासनस्य 'अपरोत्तरस्यां' वायव्यकोणे उत्तरस्यामुत्तरपूर्वस्यां च विजयदेवस्य संबन्धिनां चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चत्वारि भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तस्य सिंहासनस्य पूर्वस्यामत्र विजयस्य देवस्य चतसृणामग्रमहिषीणां चत्वारि भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तस्य सिंहासनस्य दक्षिणपूर्वस्यामाग्नेयकोण इत्यर्थः, अत्र विजयदेवस्य 'अभ्यन्तरपर्षदाम्' अभ्यन्तरपर्षद्रूपाणामष्टानां देवसहस्राणां योग्यानि अष्टौ भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तस्य सिंहासनस्य दक्षिणस्यां दिशि अत्र विजयदेवस्य मध्यपर्षदो दशानां देवसहस्राणां योग्यानि दश भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तस्य सिंहासनस्य दक्षिणापरस्यां दिशि नैर्ऋतकोण इत्यर्थः अत्र विजयदेवस्य बाह्यपर्षदो द्वादशानां देवसहस्राणां योग्यानि द्वादश भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ '**तस्स णं सीहासणस्से**'त्यादि, तस्य सिंहासनस्य पश्चिमायां दिशि अत्र विजयस्य देवस्य सम्बन्धिनां सप्तानामनीकाधिपतीनां योग्यानि सप्त भद्रासनानि प्रज्ञप्तानि, तस्य सिंहासनस्य '**सर्वतः**' सर्वासु दिक्षु '**समन्ततः**' सामस्त्येन अत्र विजयस्य देवस्य संबन्धिनां षोडशानामात्मरक्षदेवसहस्राणां योग्यानि षोडश भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, अवशेषेषु प्रत्येकं प्रत्येकं सिंहासनमपरिवारं सामानिकादिदेवयोग्यभद्रासनरूपपरिवाररहितं प्रज्ञप्तम् ॥

विजयस्स णं दारस्स उवरिमागारा सोलसविहेहिं रतणेहिं उवसोभिता, तंजहा—रयणेहिं वयरेहिं वेरुलिएहिं जाव रिट्ठेहिं ॥ विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तंजहा—सोत्थितसिरिवच्छ जाव दप्पणा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। विजयस्स णं

दारस्स उप्पिं बहवे कण्हचामरज्झया जाव सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे छत्तातिच्छत्ता तहेव ॥ (सू० १३३)

'विजयस्स ण'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्य 'उवरिमाकारा' इति उपरितन आकार:—उत्तरङ्गादिरूप: षोडशविधै रत्नैरुपशोभित:, तद्यथा—रत्नै: सामान्यत: कर्केतनादिभि: १ वज्रै: २ वैडूर्यै: ३ लोहिताक्षै: ४ मसारगल्लै: ५ हंसगर्भै: ६ पुलकै: ७ सौगन्धिकै: ८ ज्योतीरसै: ९ अङ्कै: १० अञ्जनै: ११ रजतै: १२ जातरूपै: १३ अञ्जनपुलकै: १४ स्फटिकै: १५ रिष्टै: १६॥ 'विजयस्स ण' मित्यादि, विजयस्य द्वारस्य उपरि अष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलकानि प्र०, तद्यथेत्यादिना तान्येवोपदर्शयति—'सव्वरयणामया' इत्यादि प्राग्वत् ॥

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति?—विजए णं दारे २, गोयमा विजए णं दारे विजए णाम देवे महिड्ढीए महज्जुतीए जाव महाणुभावे पलिओवमट्ठितीए परिवसति, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं विजयस्स णं दारस्स विजयाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं विजयाए रायहाणीए वत्थव्वगाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति—विजये दारे विजये दारे, [अदुत्तरं च णं गोयमा! विजयस्स णं दारस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जण्ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सति जाव अवट्ठिए णिच्चे विजए दारे] ॥ (सू० १३४)

'से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—**'गोयमे'**त्यादि, गौतम ! विजये द्वारे विजयो नाम, प्राकृतत्वाद् अव्ययत्वाच्च नामशब्दात्परस्य टावचनस्य लोपस्ततोऽयमर्थः—प्रवाहतोऽनादिकालसन्ततिपतितेन विजय इति नाम्ना देवः 'महर्द्धिकः' महती ऋद्धिः—भवनपरिवारादिका यस्यासौ महर्द्धिकः **'महाद्युतिकः'** महती द्युतिः शरीरगता आभरणगता च यस्यासौ महाद्युतिकः, तथा महद् बलं—शारीरः प्राणो यस्य स महाबलः, तथा महद् यशः—ख्यातिर्यस्यासौ महायशाः, महेश इत्याख्या—प्रसिद्धिर्यस्य स महेशाख्यः, अथवा ईशनमीशो भावे घञ्प्रत्ययः ऐश्वर्यमित्यर्थः 'ईश ऐश्वर्ये' इति वचनात् तत ईशनमैश्वर्यं आत्मनः ख्याति अन्तर्भूतण्यर्थतया ख्यापयति—प्रथयति यः स ईशाख्यः महांश्चासावीशाख्यश्च महेशाख्यः, क्वचित् 'महासोक्खे' इति पाठस्तत्र महत् सौख्यं प्रभूतसद्वेद्योदयवशाद् यस्य स महासौख्यः पल्योपमस्थितिकः परिवसति, स च तत्र चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चतसृणामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां प्रत्येकमेकैकसहस्रसङ्ख्यपरिवारसहितानां तिसृणां अभ्यन्तरमध्यमबाह्यरूपाणां यथाक्रममष्टदशद्वादशदेवसहस्रसङ्ख्याकानां पर्षदां सप्तानामनीकानां—हयानीकगजानीकरथानीकपदात्यनीकमहिषानीकगन्धर्वानीकनाट्यानीकरूपाणां सप्तानामनीकाधिपतीनां षोडशानामात्मरक्षसहस्राणां विजयस्य द्वारस्य विजयाया राजधान्या अन्येषां च बहूनां विजयराजधानीवास्तव्यानां देवानां देवीनां च 'आहेवच्चं'ति आधिपत्यम् अधिपतेः कर्म आधिपत्यं रक्षा इत्यर्थः, सा च रक्षा सामान्येनाप्यारक्षकेणेव क्रियते तत आह—पुरस्य पतिः पुरपतिस्तस्य कर्म्म पौरपत्यं सर्वेषामग्रेसरत्वमिति भावः, तच्चाग्रेसरत्वं नायकत्वमन्तरेणापि स्वनायकनियुक्ततथाविधगृहचिन्तकसामान्यपुरुषस्येव (स्यात्) ततो नायकत्वप्रतिपत्त्यर्थमाह—**'स्वामित्वं'** स्वमस्यास्तीति स्वामी तद्भावः स्वामित्वं नायकत्वमित्यर्थः, तदपि च नायकत्वं कदाचित्पोषकत्वमन्तरेणापि भवति यथा हरिणयूथाधिपतेर्हरिणस्य तत आह—**भर्तृत्वं**—पोषकत्वं 'डुभृञ् धारणपोषणयोः'

इति वचनात्, अत एव महत्तरकत्वं, तदपि चेह महत्तरकत्वं कस्यचिदाज्ञाविकलस्यापि भवति यथा कस्यचिद्वणिजः स्वदासदासीवर्गं प्रति तत आह—'आणाईसरसेणावच्चं' आज्ञया ईश्वर आज्ञेश्वरः सेनायाः पतिः सेनापतिः आज्ञेश्वरश्चासौ सेनापतिश्च आज्ञेश्वरसेनापतिस्तस्य कर्म्म आज्ञेश्वरसेनापत्यं स्वसैन्यं प्रत्यद्भुतमाज्ञाप्राधान्यमिति भावः 'कारयन्' अन्यैर्नियुक्तैः पुरुषैः पालयन् स्वयमेव, महता रवेणेति योगः 'अहय'त्ति आख्यानकप्रतिबद्धानि यदिवा 'अहतानि' अव्याहतानि नित्यानि नित्यानुबन्धीनीति भावः, ये नाट्यगीते नाट्यं—नृत्यं गीतं—गानं यानि च वादितानि 'तन्त्रीतलतालत्रुटितानि' तन्त्री—वीणा तलौ—हस्ततलौ तालः—कंसिका त्रुटितानि—वादित्राणि, तथा यश्च घनमृदङ्गः पटुना पुरुषेण प्रवादितः, तत्र घनमृदङ्गो नाम घनसमानध्वनिर्यो मृदङ्गस्तत एतेषां द्वन्द्वस्तेषां रवेण 'दिव्यान्' प्रधानान् भोगार्हा भोगाः—शब्दादयो भोगभोगास्तान् भुञ्जानः 'विहरति' आस्ते 'से एएणट्ठेण'मित्यादि, तत एतेन 'अर्थेन' कारणेन गौतम! एवमुच्यते—विजयद्वारं विजयद्वारमिति, विजयाभिधानदेवस्वामिकत्वाद् विजयमिति भावः ॥

कहि णं भंते! विजयस्स देवस्स विजया णाम रायहाणी पण्णत्ता?, गोयमा! विजयस्स णं दारस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीतिवतित्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं विजयस्स देवस्स विजया णाम रायहाणी प० बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं सत्ततीसजोयणसहस्साइं नव य अडयाले जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ सा णं एगेणं पागारेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता ॥ से णं पागारे सत्ततीसं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं मूले अद्धतेरस जोयणाइं विक्खंभेणं मज्झेत्थ

सक्कोसाइं छजोयणाइं विक्खंभेणं उप्पिं तिण्णि सद्धकोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए बाहिं वट्टे अंतो चउरंसे गोपुच्छसंठाणसंठिते सव्वकणगामए अच्छे जाव पडिरूवे॥ से णं पागारे णाणाविहपंचवण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोभिए, तंजहा—किण्हेहिं जाव सुक्किल्लेहिं ॥ ते णं कविसीसका अद्धकोसं आयामेणं पंचधणुसताइं विक्खंभेणं देसोणमद्ध-कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वमणिमया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ विजयाए णं रायहाणीए एगमेगाए बाहाए पणुवीसं पणुवीसं दारसतं भवतीति मक्खायं ॥ ते णं दारा बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजो-यणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं तावतियं चेव पवेसेणं सेता वरक-णगथूभियागा ईहामिय० तहेव जधा विजए दारे जाव तवणिज्जवालुगपत्थडा सुहफासा सस्सि-(म)रीए सरूवा पासातीया ४। तेसि णं दाराणं उभयपासिं दुहतो णिसीहियाए दो वंदणकलसप-रिवाडीओ पण्णत्ताओ तहेव भाणियव्वं जाव वणमालाओ ॥ तेसि णं दाराणं उभओ पासिं दुहतो णिसीहियाए दो दो पगंठगा पण्णत्ता, ते णं पगंठगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आया-मविक्खंभेणं पन्नरस जोयणाइं अड्ढाइज्जे कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं पगंठगाणं उप्पिं पत्तेयं २ पासायवडिंसगा पण्णत्ता ॥ ते णं पासायवडिं-सगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं पन्नरस जोयणाइं अड्ढाइज्जे य कोसे आयामवि-

क्खंभेणं सेसं तं चेव जाव समुग्गया णवरं बहुवयणं भाणितव्वं । विजयाए णं रायधाणीए एगमेगे दारे अट्ठसयं चक्कज्झयाणं जाव अट्ठसतं सेयाणं चउविसाणाणं णागवरकेऊणं, एवामेव स पुव्वावरेणं विजयाए रायहाणीए एगमेगे दारे आसीतं २ केउसहस्सं भवतीति मक्खायं ॥ विजयाए णं रायहाणीए एगमेगे दारे (तेसि णं दाराणं पुरओ) सत्तरस भोमा पण्णत्ता, तेसि णं भोमाणं (भूमिभागा) उल्लोया (य) पउमलया०भत्तिचित्ता ॥ तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए जे ते नवमनवमा भोमा तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं २ सीहासणा पण्णत्ता, सीहासणवण्णओ जाव दामा जहा हेट्ठा, एत्थ णं अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पण्णत्ता । तेसि णं दाराणं उत्तिमं (उवरिमा) गारा सोलसविधेहिं रयणेहिं उवसोभिया तं चेव जाव छत्ताइछत्ता, एवामेव पुव्वावरेण विजयाए रायहाणीए पंच दारसता भवंतीति मक्खाया ॥ (सू० १३५)

'कहि णं भंते ! विजयस्से'त्यादि, क भदन्त ! विजयस्य देवस्य विजया नाम राजधानी प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह—गौतम ! विजयस्य द्वारस्य पूर्वस्यां दिशि तिर्यग् असङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् 'व्यतिव्रज्य' अतिक्रम्य अत्रान्तरे योऽन्यः जम्बूद्वीपः अधिकृतद्वीपतुल्याभि-

१ वृत्तिकारा अतिदिशन्ति 'तोरणे'त्यादिगाथात्रयं सूत्रादर्शगतं पर न क्काप्यादर्शेऽत्र दृश्यत इदं, अनेकेषु च स्थानेष्वेवं वृत्तिकारप्राप्तानामादर्शानामिदानीन्तनप्राप्यादर्शाना च परस्परं भिन्नतमत्वात् सूत्रवृत्त्योर्वैचित्र्यं न च तादृश उपलभ्यते आदर्श इति निरुपाया वयं सर्वत्र द्वयोरेकत्रीकरणे.

धानः, अनेन जम्बूद्वीपानामप्यसङ्ख्येयत्वं सूचयति, तस्मिन् द्वादश योजनसहस्राणि अवगाह्य अत्रान्तरे विजयस्य देवस्य योग्या विजया नाम राजधानी प्रज्ञप्ता मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, सा च द्वादश योजनसहस्राणि 'आयामविष्कम्भेन' आयामविष्कम्भाभ्यां, सप्तत्रिंशद् योजनसहस्राणि नव शतानि 'अष्टाचत्वारिंशानि' अष्टचत्वारिंशदधिकानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, इदं च परिक्षेपपरिमाणं 'विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ' इति करणवशात्स्वयमानेतव्यम् ॥ 'सा ण'मित्यादि, 'सा' विजयाभिधाना राजधानी णमिति वाक्यालङ्कारे एकेन महता प्राकारेण 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन परिक्षिप्ता ॥ 'से ण'मित्यादि, स प्राकारः सप्तत्रिंशतं योजनानामर्द्धयोजनमूर्द्धमुच्चैस्त्वेन मूलेऽर्द्धत्रयोदश योजनानि विष्कम्भेन मध्ये षड् योजनानि सक्रोशानि—एकेन क्रोशेनाधिकानि विष्कम्भेन उपरि त्रीणि योजनानि सार्द्धक्रोशानि [योजनानि] सार्द्धानि द्वादश अर्द्धक्रोशाधिकानि (द्वादश) विष्कम्भेन, मूले विस्तीर्णो मध्ये संक्षिप्तो, मूलविष्कम्भतोऽर्द्धस्य त्रुटितत्वात्, उपरि तनुको, मध्यविष्कम्भादप्यर्द्धस्य त्रुटितत्वात्, बहिर्वृत्तोऽन्तश्चतुरस्रो 'गोपुच्छसंस्थानसंस्थितः' ऊर्द्धीकृतगोपुच्छसंस्थानसंस्थितः 'सव्वकणगमए' सर्वात्मना कनकमयः 'अच्छे' इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् ॥ 'से ण'मित्यादि, स प्राकारो नानाविधानि च तानि पञ्चवर्णानि च नानाविधपञ्चवर्णानि तैः, नानाविधत्वं च पञ्चवर्णापेक्षया कृष्णादिवर्णतारतम्यापेक्षया वा द्रष्टव्यं, पञ्चवर्णत्वमेवोपदर्शयति—'किण्हेहिं' इत्यादि ॥ 'ते णं कविसीसगा' इत्यादि, तानि कपिशीर्षकाणि प्रत्येकमर्द्धक्रोशं—धनुःसहस्रप्रमाणमायामेन—दैर्घ्येण पञ्च धनुःशतानि 'विष्कम्भेन' विस्तारेण, देशोनमर्द्धक्रोशमूर्द्धमुच्चैस्त्वेन 'सव्वमणिमया' इत्यादि सर्वात्मना मणिमया 'अच्छा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ 'विजयाए णं रायहाणीए' इत्यादि, विजयाया राजधान्या एकैकस्यां बाहायां पञ्चविंशं—पञ्चविंशत्यधिकं द्वारशतं २ प्रज्ञप्तं, सर्वसङ्ख्यया पञ्च द्वारशतानि ॥ 'ते णं दारा'

इत्यादि, तानि द्वाराणि प्रत्येकं द्वाषष्टियोजनानि अर्द्धयोजनं चोर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, एकत्रिंशतं योजनानि क्रोशं च विष्कम्भतः, **'तावइयं चेव पवेसेणं'** एतावदेव—एकत्रिंशद् योजनानि क्रोशं चेत्यर्थः प्रवेशेन, **'सेया वरकणगथूभियागा'** इत्यादि द्वारवर्णनं निरवशेषं तावद्वक्तव्यं यावद्वनमालावर्णनम् ॥ **'तेसि णं दाराण'**मित्यादि, तेषां द्वाराणां प्रत्येकमुभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन **'द्विधातो'** द्विप्रकारायां नैषेधिक्यां द्वौ द्वौ **'प्रकण्ठकौ'** पीठविशेषौ प्रज्ञप्तौ, ते च प्रकण्ठकाः प्रत्येकमेकत्रिंशतं योजनानि क्रोशमेकं च आयामविष्कम्भाभ्यां, पञ्चदश योजनानि अर्द्धतृतीयांश्च क्रोशान् बाहल्येन **'सव्ववइरामया'** इति सर्वात्मना ते प्रकण्ठका वज्ररत्नमयाः 'अच्छा सण्हा' इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत्॥ **'तेसिं पगंठगाण'**मित्यादि, तेषां प्रकण्ठकानामुपरि प्रत्येकं **'प्रासादावतंसकः'** प्रासादविशेषः प्रज्ञप्तः ॥ **'ते णं पासायवडेंसगा'** इत्यादि, ते प्रासादावतंसका एकत्रिंशतं योजनानि क्रोशं चैकमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, पञ्चदश योजनानि अर्द्धतृतीयांश्च क्रोशान् आयामविष्कम्भाभ्यां, तेषां च प्रासादानाम् 'अब्भुग्गयमूसियपहसियाविव' इत्यादि सामान्यतः स्वरूपवर्णनम् उल्लोकवर्णनं मध्यभूमिभागवर्णनं सिंहासनवर्णनं विजयदूष्यवर्णनं मुक्तादामोपवर्णनं च विजयद्वारवत्, शेषमपि तोरणादिकं विजयद्वारवदिमाभिर्वक्ष्यमाणाभिर्गाथाभिरनुगन्तव्यं, ता एव गाथा आह—**'तोरणे'**त्यादि गाथात्रयं, द्वारेषु प्रत्येकमेकैकस्यां नैषेधिक्यां द्वे द्वे तोरणे वक्तव्ये, तेषां च तोरणानामुपरि प्रत्येकमष्टावष्टौ मङ्गलकानि, तेषां तोरणानामुपरि कृष्णचामरध्वजादयो ध्वजाः, तदनन्तरं तोरणानां पुरतः शालभञ्जिकाः तदनन्तरं नागदन्तकास्तेषु च नागदन्तकेषु दामानि ततो हयसङ्घाटादयः सङ्घाटा वक्तव्याः ततो हयपङ्क्त्यादयः पङ्क्तयस्तदनन्तरं हयवीथ्यादयो वीथयस्ततो हयमिथुनकादीनि मिथुनानि ततः पद्मलतादयो लताः ततः **'सोत्थिया'** चतुर्दिक्सौवस्तिका वक्तव्यास्ततो वन्दनकलशास्तदनन्तरं भृङ्गारकास्तत आदर्शकास्ततः स्थालानि ततः पात्र्यस्तदनन्तरं सुप्रतिष्ठानि ततो मनोगुलिकास्तासु

'वातकरका:' वातभृता: करका वातकरका जलशून्या इत्यर्थ:, तदनन्तरं चित्रा रत्नकरण्डकास्ततो हयकण्ठा गजकण्ठा नरकण्ठा:, उपलक्षणमेतत् किंनरकिंपुरुषमहोरगगन्धर्ववृषभकण्ठका: क्रमेण वक्तव्या:, तदनन्तरं पुष्पादिचङ्गेर्यो वक्तव्यास्तत: पुष्पादिपटलकानि तत: सिंहासनानि तदनन्तरं छत्राणि ततश्चामराणि ततस्तैलादिसमुद्गका वक्तव्यास्ततो ध्वजा:, तेषां च ध्वजानामिदं चरमसूत्रम्— 'एवामेव सपुव्वावरेणं विजयाए रायहाणीए एगमेगंसि दारंसि असीयं असीयं केउसहस्सं भवतीति मक्खायं' तदनन्तरं भौमानि वक्तव्यानि, तत्सूत्रं साक्षादुपदर्शयति—'तेसि णं दाराण'मित्यादि, तेषां द्वाराणां पुरत: सप्तदश सप्तदश भौमानि प्रज्ञप्तानि, तेषां च भौमानां भूमिभागा उल्लोकाश्च प्राग्वद्वक्तव्या: ॥ 'तेसि णं भोमाण'मित्यादि, तेषां च भौमानां वहुमध्यदेशभागे यानि नवमनवमानि भौमानि तेषां बहुमध्यदेशभागेषु प्रत्येकं विजयदेवयोग्यं (सिंहासनं यथा) विजयद्वारपञ्चमभौमे किन्तु सपरिवारं सिंहासनं वक्तव्यम्, अवशेषेषु च भौमेषु प्रत्येकं सपरिवारं सिंहासनं प्रज्ञप्तं, 'तेसि णं दाराणं उवरिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिता' इत्यादि प्राग्वत् ॥

विजयाए णं रायहाणीए चउद्दिसिं पंचजोयणसताइं अबाहाए, एत्थ णं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तंजहा—असोगवणे सत्तवण्णवणे चंपगवणे चूतवणे, पुरत्थिमेणं असोगवणे दाहिणेणं सत्तवण्णवणे पच्चत्थिमेणं चंपगवणे उत्तरेणं चूतवणे ॥ ते णं वणसंडा साइरेगाइं दुवालस जोयणसहस्साइं आयामेणं पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता पत्तेयं पत्तेयं पागारपरिक्खित्ता किण्हा किण्होभासा वणसंडवण्णओ भाणियव्वो जाव बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य

आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीदंति तुयट्टंति रमंति ललंति कीलंति मोहंति पुरापोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कम्माणं कडाणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति ॥ तेसि णं वणसंडाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडिंसगा बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गतमूसिया तहेव जाव अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता उल्लोया पउमभत्तिचित्ता भाणियव्वा, तेसि णं पासायवडेंसगाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता वण्णावासो सपरिवारा, तेसि णं पासायवडिंसगाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता ॥ तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तंजहा—असोए सत्तवण्णे चंपए चूते ॥ तत्थ णं ते साणं साणं वणसंडाणं साणं साणं पासायवडेंसयाणं साणं साणं सामाणियाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं आयरक्खदेवाणं आहेवच्चं जाव विहरति ॥ विजयाए णं रायहाणीए अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए तणसद्दविहूणे जाव देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंति । तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं ओवरियालेणे पण्णत्ते बारस जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं तिन्नि जोयणसहस्साइं

सत्त य पंचाणउते जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं अद्धकोसं बाहल्लेणं सव्वजंबूणतामतेणं अच्छे जाव पडिरूवे ॥ से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते पउमवरवेतियाए वण्णओ वणसंडवण्णओ जाव विहरंति, से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं ओवारियालयणसमपरिक्खेवेणं ॥ तस्स णं ओवारियालयणस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरतो पत्तेयं पत्तेयं तोरणा पण्णत्ता छत्तातिछत्ता ॥ तस्स णं उवारियालयणस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीहिं उवसोभिते मणिवण्णओ, गंधरसफासो, तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं मूलपासायवडिंसए पण्णत्ते, से णं पासायवडिंसए बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसियप्पहसिते तहेव तस्स णं पासायवडिंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणिफासे उल्लोए ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पन्नत्ता, सा च एगं जोयणमायामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा सण्हा ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एगे महं सीहासणे पन्नत्ते, एवं सीहासणवण्णओ सपरिवारो, तस्स णं पासायवडिंसगस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंग-

लगा झया छत्तातिछत्ता ॥ से णं पासायवडिंसए अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासा-
यवडिंसएहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते, ते णं पासायवडिंसगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च
उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धसोलसजोयणाइं अद्धकोसं च आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गत० तहेव, तेसि णं
पासायवडिंसयाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा उल्लोया ॥ तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमि-
भागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सीहासणं पण्णत्तं, वण्णओ, तेसिं परिवारभूता भद्दासणा
पण्णत्ता, तेसि णं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता ॥ ते णं पासायवडिंसका अण्णेहिं चउहिं
चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता ॥ ते णं पासा-
यवडेंसका अद्धसोलसजोयणाइं अद्धकोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं अट्ठ जोयणाइं आयामवि-
क्खंभेणं अब्भुग्गय० तहेव, तेसि णं पासायवडेंसगाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा उ-
ल्लोया, तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं पउमासणा प-
न्नत्ता, तेसि णं पासायाणं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता ॥ ते णं पासायवडेंसगा अण्णेहिं च-
उहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता ॥ ते णं पासाय-
वडेंसका देसूणाइं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अ-
ब्भुग्गत० भूमिभागा उल्लोया भद्दासणाइं उवरिं मंगलगा झया छत्तातिछत्ता, ते णं पासायव-

डिंसगा अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडिंसएहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता । ते णं पासायवडिंसगा देसूणाइं चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं दो जोयणाइं आयामविक्खंभेण अब्भुग्गयमूसिय० भूमिभागा उल्लोया पउमासणाइं उवरिं मंगलगा झया छत्ताइच्छत्ता ॥ (सू० १३६)

'विजयाए णं रायहाणीए' इत्यादि, विजयाया राजधान्याः 'चउदिसि'मिति चतस्रो दिशः समाहृताश्चतुर्दिक् तस्मिन् चतुर्दिशि—चतसृषु दिक्षु पञ्च पञ्च योजनशतानि 'अबाहाए' इति बाधनं बाधा—आक्रमणं तस्यामबाधायां कृत्वेति गम्यते, अपान्तरालेषु मुक्त्वेति भावः, चत्वारो वनखण्डाः प्रज्ञप्ताः, 'तद्यथे'त्यादि, तानेव वनषण्डान् नामतो दिग्भेदतश्च दर्शयति, अशोकवृक्षप्रधानं वनमशोकवनम्, एवं सप्तपर्णवनं चम्पकवनं चूतवनमपि भावनीयं, 'पुव्वेण असोगवण'मित्यादिरूपा गाथा पाठसिद्धा (अत्र तु न)॥ 'ते णं वणसंडा' इत्यादि, ते वनखण्डाः सातिरेकाणि द्वादश योजनसहस्राण्यायामेन पञ्च योजनशतानि विष्कम्भेन प्रत्येकं प्रज्ञप्ताः प्रत्येकं प्राकारपरिक्षिप्ताः, पुनः कथम्भूतास्ते वनषण्डाः ? इत्यादि पद्मवरवेदिकाबहिर्वनषण्डवत्तावदविशेषेण वक्तव्यं यावत् 'तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंति' ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां वनषण्डानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रासादावतंसकाः प्रज्ञप्ताः, ते च प्रासादावतंसका द्वाषष्टिर्योजनान्यर्द्धयोजनं चोर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन एकत्रिंशतं योजनानि क्रोशं च विष्कम्भेन 'अब्भुग्गयमूसियपहसियाविव' इत्यादि प्रासादावतंसकानां वर्णनं निरवशेषं तावद्वक्तव्यं यावत्तत्र प्रत्येकं सिंहासनं सपरिवारं । 'तत्थ णं' मित्यादि, तेषु वनषण्डेषु प्रत्येकमेकैकदेवभावेन चत्वारो देवा महर्द्धिका यावत् 'महज्जुइया महाबला महायसा महासोक्खा महाणु-

भावा' इतिपरिग्रहः पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—'असोए' इत्यादि, अशोकवनेऽशोकः सप्तपर्णवने सप्तपर्णः चम्पकवने चम्पकः चूतवने चूतः ॥ 'तेसि णं'मि(तत्थ णं ते इ) त्यादि, ते अशोकादयो देवास्तस्य वनखण्डस्य स्वस्य प्रासादावतंसकस्य, सूत्रे वहुवचनं प्राकृतत्वात्, प्राकृते हि वचनव्यत्ययो भवतीति, स्वेषां स्वेषां सामानिकसहस्राणां स्वासां स्वासामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां स्वासां स्वासां पर्षदां स्वेषां स्वेषामनीकानां (अनीकाधिपतीनां) स्वेषां स्वेषामात्मरक्षकाणाम् 'आहेवच्चं पोरेवच्च'मित्यादि प्राग्वत् ॥ 'विजयाए णं'-मित्यादि, विजयाया राजधान्या अन्तर्बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, तस्य 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि वर्णनं प्राग्वत् निरवशेषं तावद्वक्तव्यं यावन्मणीनां स्पर्शः, तस्य च बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्र महद् एकमुपकारिकालयनं प्रज्ञप्तं, राजधानीस्वामिसत्कप्रासादावतंसकादीन् उपकरोति—उपष्टभ्नातीत्युपकारिका—राजधानीस्वामिसत्कप्रासादावतंसकादीनां पीठिका, अन्यत्र त्वियमुपकार्योपकारकेति प्रसिद्धा, उक्तञ्च—"गृहस्थानं स्मृतं राज्ञामुपकार्योपकारका" इति, उपकारिकालयनमिव उपकारिकालयनं तद् द्वादश योजनशतानि 'आयामविष्कम्भेन' आयामविष्कम्भाभ्यां, त्रीणि योजनसहस्राणि सप्त योजनशतानि पञ्चनवतानि—पञ्चनवत्यधिकानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि, परिक्षेपपरिमाणं चेदं प्रागुक्तकरणवशात्स्वयमानेतव्यम्, अर्द्धक्रोशं—धनुःसहस्रपरिमाणं बाहल्येन 'सव्वजंबूणयामए' इति सर्वात्मना जाम्बूनदमयम्, 'अच्छे' इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् ॥ 'से णं'मित्यादि, 'तद्' उपकारिकालयनम् एकया पद्मवरवेदिकया तत्पृष्ठभाविन्या एकेन च वनपण्डेन 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्तं, पद्मवरवेदिकावर्णको वनपण्डवर्णकः प्राग्वन्निरवशेषो वक्तव्यो यावत् 'तत्थ बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति सयंति जाव विहरंति' इति ॥ 'तस्स णं'मित्यादि, तस्य उपकारिकालयनस्य 'चउदिसिं'ति चतुर्दिशि चतसृषु

दिक्षु एकैकस्यां दिशि एकैकभावेन चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि—प्रतिविशिष्टरूपाणि त्रिसोपानानि प्रज्ञप्तानि, त्रिसोपानवर्णकः पूर्ववद्वक्तव्यः, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं तोरणं प्रज्ञप्तं, तेषां च तोरणानां वर्णनं प्राग्वद्वक्तव्यम् ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, 'तस्य' उपकारिकालयनस्य उपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, 'से जहानामए' इत्यादि भूमिभागवर्णनं प्राग्वत्तावद्वाच्यं यावन्मणीनां स्पर्शः, तस्य च बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र महानेको मूलप्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, स च द्वाषष्टिर्योजनानि अर्द्धं च योजनमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, एकत्रिंशतं योजनानि क्रोशं चायामविष्कम्भाभ्याम्, 'अब्भुग्गयमूसियपहसियाविवे'त्यादि, तस्य वर्णनं मध्येभूमिभागवर्णनं सिंहासनवर्णनं शेषाणि च भद्रासनानि तत्परिवारभूतानि विजयद्वारबहिःस्थितप्रासादवद्भावनीयानि ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य मूलप्रासादावतंसकस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र महती एका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, सा चैकं योजनमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं बाहल्येन 'सव्वमणिमयी' इति सर्वात्मना मणिमयी 'अच्छा सण्हा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र महदेकं सिंहासनं प्रज्ञप्तं, तस्य च सिंहासनस्य परिवारभूतानि शेषाणि भद्रासनानि प्राग्वद्वक्तव्यानि ॥ 'से ण'मित्यादि, स च मूलप्रासादावतंसकोऽन्यैश्चतुर्भिर्मूलप्रासादावतंसकैस्तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्रैः—मूलप्रासादावतंसकार्द्धोच्चत्वप्रमाणैः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः, तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमेव दर्शयति—एकत्रिंशतं योजनानि क्रोशं चैकमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, पञ्चदश योजनानि अर्द्धतृतीयांश्च क्रोशान् आयामविष्कम्भाभ्यां, तेषामपि 'अब्भुग्गयमूसियपहसियाविवे'त्यादि स्वरूपवर्णनं मध्येभूमिभागवर्णनमुल्लोकवर्णनं च प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां प्रासादावतंसकानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं सिंहासनं प्रज्ञप्तं, तेषां च सिंहासनानां वर्णनं प्राग्वत्, नवरमत्र सिंहासनानां शेषाणि परिवारभूतानि न वक्तव्यानि ॥ 'ते णं पासा-

यवडेंसया' इत्यादि, ते प्रासादावतंसका अन्यैश्चतुर्भिः प्रासादावतंसकैस्तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्रैः—मूलप्रासादावतंसकपरिवारभूतप्रासादावतंसकार्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्रैर्मूलप्रासादापेक्षया चतुर्भागमात्रप्रमाणैरित्यर्थः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्ताः, तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमेव दर्शयति —'ते ण'मित्यादि, ते प्रासादावतंसकाः पञ्चदश योजनानि अर्द्धतृतीयांश्च क्रोशान् ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन देशोनानि अष्टौ योजनानि आयामविष्कम्भाभ्यां, सूत्रे च 'आयामविक्खंभेणं'ति एकवचनं समाहारविवक्षणात्, एवमन्यत्रापि भावनीयम्, एतेषामपि 'अब्भुग्गयमूसिये'त्यादि स्वरूपवर्णनं मध्येभूमिभागवर्णनमुल्लोकवर्णनं सिंहासनवर्णनं च प्राग्वत् केवलमत्रापि सिंहासनमपरिवारं वक्तव्यम् ॥ 'ते ण'मित्यादि, तेऽपि प्रासादावतंसका अन्यैश्चतुर्भिः प्रासादावतंसकैस्तदर्द्धोच्चप्रमाणमात्रैः—अनन्तरोक्तप्रासादावतंसकार्द्धोच्चत्वप्रमाणैर्मूलप्रासादापेक्षयाऽष्टभागमात्रप्रमाणैरित्यर्थः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्ताः, तदेव तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्रमुपदर्शयति—'ते ण'मित्यादि, ते प्रासादावतंसका देशोनानि अष्टौ योजनानि ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन देशोनानि चत्वारि योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां तेषामपि 'अब्भुग्गयमूसियपहसियाविवे'त्यादि स्वरूपादिवर्णनमनन्तरप्रासादावतंसकवत् ॥ (एतयोः सूत्रयोर्मूलपाठो न दृश्यते) 'ते ण'मित्यादि, तेऽपि च प्रासादावतंसका अन्यैश्चतुर्भिः प्रासादावतंसकैस्तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्रैः—अनन्तरोक्तप्रासादावतंसकार्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्रैर्मूलप्रासादावतंसकापेक्षया षोडशभागप्रमाणमात्रैरित्यर्थः सर्वतः समन्ततः संपरिक्षिप्ताः, तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमेव दर्शयति—'ते ण'मित्यादि, ते प्रासादावतंसका देशोनानि चत्वारि योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन देशोने द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां, तेषामपि स्वरूपवर्णनं मध्येभूमिभागवर्णनमुल्लोकवर्णनं सिंहासनवर्णनं च परिवारवर्जितं प्राग्वत्, तदेवं चतस्रः प्रासादावतंसकपरिपाट्यो भवन्ति, कचित्तिस्र एव दृश्यन्ते न चतुर्थी ॥

तस्स णं मूलपासायवडेंसगस्स उत्तरपुरत्थिमे णं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सभा सुधम्मा पण्णत्ता अद्धत्तेरसजोयणाइं आयामेणं छ सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं णव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसतसंनिविट्ठा अब्भुग्गयसुकयवइरवेदिया तोरणवररतियसालभंजिया सुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठियपसत्थवेरुलियविमलखंभा णाणामणिकणगरयणखइयउज्जलबहुसमसुविभत्तचित्त(णिचिय)रमणिज्जकुट्टिमतला ईहामियउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता थंभुग्गयवइरवेइयापरिगयाभिरामा विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्ताविव अच्चिसहस्समालणीया रूवगसहस्सकलिया भिसमाणी भिब्भिसमाणी चक्खुलोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा कंचणमणिरयणथूभियागा नाणाविहपंचवण्णघंटापडागपडिमंडितग्गसिहरा धवला मिरीइकवचं विणिम्मुयंती लाउल्लोइयमहिया गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिन्नपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिता कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छरगणसंघसंविकिन्ना दिव्वतुडियमधुरसद्दसंपणाइया सुरम्मा सव्वरयणामती अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तीसे णं सोहम्माए सभाए तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता ॥ ते णं दारा पत्तेयं पत्तेयं

दो दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगं जोयणं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेया· वरकणगथूभियागा जाव वणमालादारवन्नओ ॥ तेसि णं दाराणं पुरओ मुहमंडवा पण्णत्ता, ते णं मुहमंडवा अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं छजोयणाइं सक्कोसाइं विक्खंभेणं साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मुहमंडवा अणेगखंभसयसंनिविट्ठा जाव उल्लोया भूमिभागवण्णओ ॥ तेसि णं मुहमंडवाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं अट्ठट्ठ मंगला पण्णत्ता सोत्थिय जाव मच्छ० ॥ तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता, ते णं पेच्छाघरमंडवा अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं जाव दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं जाव मणिफासो ॥ तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामयअक्खाडगा पण्णत्ता, तेसि णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं २ मणिपीढिया पण्णत्ता, ताओ णं मणिपीढियाओ जोयणमेगं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तासि णं मणिपीढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता, सीहासणवण्णओ जाव दामा परिवारो। तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता ॥ तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरतो तिदिसिं तओ मणिपेढियाओ पं० ताओ णं मणिपेढियाओ दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमतीओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चेइयथूभा पण्णत्ता, ते णं चेइयथूभा

दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं सातिरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सेया संखंककुंददगरयाम-यमहितफेणपुंजसण्णिकासा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं चेइयथूभाणं उप्पिं अट्ठट्ठ मंगलगा बहुकिण्हचामरज्झया पण्णत्ता छत्तातिछत्ता ॥ तेसि णं चेतियथूभाणं चउद्दिसिं पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि मणिपेढियाओ प०, ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयाम-विक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ ॥ तासि णं मणिपीढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि जिणपडिमाओ जिणुस्सेहपमाणमेत्ताओ पलियंकणिसण्णाओ थूभाभिमुहीओ सन्निविट्ठाओ चिट्ठंति, तंजहा—उसभा वद्धमाणा चंदाणणा वारिसेणा ॥ तेसि णं चेतियथू-भाणं पुरतो तिदिसिं पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ पन्नत्ताओ, ताओ णं मणिपेढियाओ दो दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाओ लण्हाओ सण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णिप्पंकाओ णीरयाओ जाव पडिरूवाओ । तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चेइयरुक्खा पण्णत्ता, ते णं चेतियरुक्खा अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहेणं दो जोयणाइं खंधी अद्धजोयणं विक्खंभेणं छजोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं अट्ठजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ताइं । तेसि णं चेइयरुक्खाणं अय-मेतारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया मूला रययसुपतिट्ठिता विडिमा रिट्ठामयविपुल-

कंदवेरुलियरुतिलखंधा सुजातरूवपढमगविसालसाली नाणामणिरयणविविधसाहप्पसाहवेरुलि-
यपत्ततवणिज्जपत्तवेंटा जंबूणयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लवसोभंतवरंकुरग्गसिहरा विचित्तम-
णिरयणसुरभिकुसुमफलभरणमियसाला सच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया अमयरस-
समरसफला अधियं णयणमणणिव्वुतिकरा पासातीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥ ते
णं चेइयरुक्खा अन्नेहिं बहूहिं तिलयलवयछत्तोवगसिरीससत्तवन्नदहिवन्नलोद्धधवचंदणनीवकु-
डयकयंबपणसतालतमालपियालपियंगुपारावयरायरुक्खनंदिरुक्खेहिं सव्वओ समंता संपरि-
क्खित्ता ॥ ते णं तिलया जाव नंदिरुक्खा मूलवंतो कन्दमंतो जाव सुरम्मा ॥ ते णं तिलया
जाव नंदिरुक्खा अन्नेहिं बहूहिं पउमलयाहिं जाव सामलयाहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता,
ताओ णं पउमलयाओ जाव सामलयाओ निच्चं कुसुमियाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तेसि णं चे-
तियरुक्खाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता ॥ तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरतो
तिदिसिं तओ मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयामविक्खंभेणं
अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमतीओ अच्छा जाव पडिरूवाओ ॥ तासि णं मणिपेढियाणं
उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं माहिंदझया अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं अद्धकोसं
विक्खंभेणं वइरामयवट्टलट्ठसंठियसुसिलिट्ठपरिघट्ठमट्ठसुपतिट्ठिता विसिट्ठा अणेगवरपंचव-

णकुडभीसहस्सपरिमंडियाभिरामा वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागा छत्तातिछत्तकलिया तुंगा गगणतलमभिलंघमाणसिहरा पासादीया जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं महिंदज्झयाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता ॥ तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरतो तिदिसिं तओ णंदाओ पुक्खरिणीओ पं० ताओ णं पुक्खरिणीओ अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं सक्कोसाइं छ जोयणाइं विक्खंभेणं दसजोयणाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ पुक्खरिणीवण्णओ पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ताओ पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ वण्णओ जाव पडिरूवाओ ॥ तेसि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं २ तिदिसिं तिसोवाणपडिरूवगा पं०, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं वण्णओ, तोरणा भाणियव्वा, जाव छत्तातिच्छत्ता सभाए णं सुहम्माए छ मणोगुलिसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—पुरत्थिमे णं दो साहस्सीओ पच्चत्थिमेणं दो साहस्सीओ दाहिणेणं एगसाहस्सी उत्तरेणं एगा साहस्सी, तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवण्णरूप्पामया फलगा पण्णत्ता, तेसु णं सुवण्णरूप्पामएसु फलगेसु बहवे वइरामया णागदंतगा पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु नागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तवट्टवग्घारितमल्लदामकलावा जाव सुक्किलवट्टवग्घारितमल्लदामकलावा, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा जाव चिट्ठंति ॥ सभाए णं सुहम्माए छगोमाणसीसाहस्सीओ पण्णत्ताओ तंजहा—पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ, एवं पच्चत्थिमेणावि दाहिणेणं सहस्सं एवं

उत्तरेणवि, तासु णं गोमाणसीसु बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पं० जाव तेसु णं वइरामएसु नागदंतएसु बहवे रयतामया सिक्कता पण्णत्ता, तेसु णं रयतामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामईओ धूवघडिताओ पण्णत्ताओ, ताओ णं धूवघडियाओ कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्क जाव घाणमणणिव्वुइकरेणं गंधेणं सव्वतो समंता आपूरेमाणीओ चिट्ठंति। सभाए णं सुधम्माए अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीणं फासो उल्लोया पउमलयभत्तिचित्ता जाव सव्वतवणिज्जमए अच्छे जाव पडिरूवे ॥ (सू० १३७)

'तस्स ण'मित्यादि, तस्य मूलप्रासादावतंसकस्य 'उत्तरपूर्वस्याम्' ईशानकोण इत्यर्थः, 'अत्र' एतस्मिन् भागे विजयस्य देवस्य योग्या सभा सुधर्मा नाम विशिष्टच्छन्दकोपेता साऽर्द्धत्रयोदशयोजनान्यायामेन षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेन नव योजनानि ऊर्द्धमुच्चैस्त्वेन 'अणेगे'त्यादि अनेकेषु स्तम्भशतेषु सन्निविष्टा अनेकस्तंभशतसन्निविष्टा 'अब्भुग्गयसुकयवरवेइया तोरणवररइयसालभंजिया सुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठियपसत्थवेरुलियविमलखंभा' अभ्युद्गता—अतिरमणीयतया द्रष्टॄणां प्रत्यभिमुखमुत्—प्राबल्येन स्थिता सुकृतेव सुकृता निपुणशिल्पिरचितेवेति भावः, अभ्युद्गता चासौ सुकृता च अभ्युद्गतसुकृता वज्रवेदिका—द्वारमुण्डकोपरि वज्ररत्नमयी वेदिका तोरणं चाभ्युद्गतसुकृतं यत्र सा तथा, तथा वराभिः—प्रधानाभिः रचिताभिः—विरचिताभिः रतिदाभिर्वा सालभञ्जिकाभिः सुश्लिष्टा—संबद्धा विशिष्टं—प्रधानं लष्टं—मनोज्ञं संस्थितं—संस्थानं येषां ते विशिष्टलष्टसंस्थिताः प्रशस्ताः—प्रशंसास्पदीभूता वैडूर्यस्तम्भाः—वैडूर्यरत्नमयाः स्तम्भा यस्यां सा वररचितशालभञ्जिकासुश्लिष्टविशिष्टलष्टसंस्थितप्रशस्तवैडूर्यस्तम्भा, ततः पूर्वपदेन कर्मधारयः, तथा नानामणिकन-

करत्नानि खचितानि यत्र स नानामणिकनकरत्नखचित:, निष्ठान्तस्य परनिपातो भार्यादिदर्शनात्, नानामणिकनकरत्नखचितः उ-ज्ज्वलो—निर्म्मलो बहुसम:—अत्यन्तसम: सुविभक्तो निचितो—निविडो रमणीयश्च भूमिभागो यस्यां सा नानामणिकनकरत्नखचितोज्ज्व-लबहुसमसुविभक्त (निचितरमणीय) भूमिभागा 'ईहामिगउसहतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुञ्जरवणलयपउमलयभत्ति-चित्ता' इति तथा **स्तम्भोद्गतया**—स्तम्भोपरिवर्त्तिन्या **वज्रवेदिकया**—वज्ररत्नमय्या वेदिकया परिगता सती याऽभिरामा स्तम्भोद्गत-वज्रवेदिकापरिगताभिरामा 'विज्जाहरजमलजुगलजंतजुत्ताविव अच्चिसहस्समालणीया रूवगसहस्सकलिया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा' इति प्राग्वत् **'कंचणमणिरयणथूभियागा'** इति काञ्चनमणिरत्नानां स्तूपिका—शिखरं यस्याः सा काञ्चनमणिरत्नस्तूपिकाका 'नाणाविहपंचवण्णघंटापडागपरिमंडियग्गसिहरा' नानाविधाभि:—नानाप्रकाराभि: पञ्चवर्णाभिर्घण्टाभि: पताकाभिश्च परि—सामस्त्येन मण्डितमग्रशिखरं यस्याः सा नानाविधपञ्चवर्णघण्टापताकापरिमण्डिताग्रशिखरा **'धवला'** श्वेता **मरी-चिकवचं**—किरणजालपरिक्षेपं विनिर्मुञ्चन्ती **'लाउल्लोइयमहिया'** इति लाइयं नाम यद् भूमेर्गोमयादिना उपलेपनम् उल्लोइयं—कु-ड्यानां मालस्य च सेटिकादिभि: संमृष्टीकरणं लाउल्लोइयं ताभ्यामिव महिता—पूजिता लाउल्लोइयमहिता, तथा **गोशीर्षेण**—गोशीर्ष-नामचन्दनेन सरसरक्तचन्दनेन दर्दरेण—बहलेन चपेटाकारेण वा दत्ता: पञ्चाङ्गुलयस्तला—हस्तका यत्र सा गोशीर्षकसरसरक्तचन्दनद-र्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितला, तथा उपचिता—निवेशिता वन्दनकलशा—मङ्गलकलशा यस्यां सा उपचितवन्दनकलशा **'चंदणघडसुकयतो-रणपडिदुवारदेसभागा'** इति चन्दनघटै:—चन्दनकलशै: सुकृतानि—सुष्ठु कृतानि शोभनानीति तात्पर्यार्थ: यानि तोरणानि तानि चन्दनघटसुकृतानि तोरणानि प्रतिद्वारदेशभागे यस्यां सा चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागा, तथा **'आसत्तोसत्तवट्टवग्घारिय-**

मल्लदामकलावा' इति आ—अवाङ् अधोभूमौ सक्त आसक्तो भूमौ लग्न इत्यर्थः ऊर्द्ध्वं सक्त उत्सक्तः—उल्लोचतले उपरिसंबद्ध इत्यर्थः, विपुलो—विस्तीर्णः वृत्तो—वर्त्तुलः 'वग्घारिय' इति प्रलम्बितो माल्यदामकलापः—पुष्पमालासमूहो यस्यां सा आसक्तोत्सक्तविपुलवृत्तवग्घारितमाल्यदामकलापा, तथा पञ्चवर्णेन सरसेन—सच्छायेन सुरभिणा मुक्तेन—क्षिप्तेन पुष्पपुञ्जलक्षणेनोपचारेण—पूजया कलिता पञ्चवर्णसरससुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलिता 'कालागुरुपवरकुन्दुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूया' इति प्राग्वत्, **'अच्छरगणसंघसंविकिण्णा'** इति अप्सरोगणानां सङ्घः—समुदायस्तेन सम्यग्—रमणीयतया विकीर्णा—व्याप्ता **'दिव्वतुडियसद्दसंपणादिया'** इति दिव्यानां त्रुटितानां—आतोद्यानां वेणुवीणामृदङ्गादीनां ये शब्दास्तैः सम्यक्—श्रोत्रमनोहारितया प्रकर्षेण नादिता—शब्दवती दिव्यत्रुटितसंप्रणादिता 'अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् ॥ **'तीसे णं सभाए ण'**मित्यादि, सभायाः सुधर्मायाः 'त्रिदिशि' तिसृषु दिक्षु एकैकस्यां दिशि एकैकद्वारभावेन त्रीणि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—एकं पूर्वस्यामेकं दक्षिणस्यामेकमुत्तरस्याम् ॥ **'ते णं दारा'** इत्यादि, तानि द्वाराणि प्रत्येकं प्रत्येकं द्वे द्वे योजने ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन योजनमेकं विष्कम्भेन **'तावइयं चेवे'**ति योजनमेकं प्रवेशेन 'सेया वरकणगथूभियागा' इत्यादि प्रागुक्तं द्वारवर्णनं तदेतावद्वक्तव्यं यावद्वनमाला इति ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां द्वाराणां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं मुखमण्डपः प्रज्ञप्तः, ते च मुखमण्डपा अर्द्धत्रयोदश योजनानि आयामेन, षड् योजनानि सक्रोशानि विष्कम्भेन, सातिरेके द्वे योजने ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, एतेषामपि 'अणेगखंभसयसन्निविट्ठा' इत्यादि वर्णनं सुधर्मायाः सभाया इव निरवशेषं द्रष्टव्यं, तेषां मुखमण्डपानामुल्लोकवर्णनं बहुसमरमणीयभूमिभागवर्णनं च यावन्मणीनां स्पर्शः प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां मुखमण्डपानामुपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि—स्वस्तिकादीनि प्रज्ञप्तानि, तान्येवाह—**'तंजहे'**त्यादि, एतच्च विशेषणं

सुधर्मासभाया अपि द्रष्टव्यम् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां मुखमण्डपानां पुरतः प्रत्येकं २ प्रेक्षागृहमण्डपः प्रज्ञप्तः, तेऽपि च प्रेक्षागृहमण्डपा अर्द्धत्रयोदश योजनान्यायामेन, सक्रोशानि षड् योजनानि विष्कम्भेन, सातिरेके द्वे योजने ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, प्रेक्षागृहमण्डपानां च भूमिभागवर्णनं पूर्ववत्तावद्वाच्यं यावन्मणीनां स्पर्शः ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां च बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं वज्रमयः 'अक्षपाटकः' चतुरस्राकारः प्रज्ञप्तः, तेषां चाक्षपाटकानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिका योजनमेकमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं बाहल्येन 'सव्वमणिमईओ' इति सर्वात्मना मणिमय्यः 'अच्छा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ 'तासि ण'मित्यादि, तासां मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकं सिंहासनं प्रज्ञप्तं, तेषां च सिंहासनानां वर्णनं परिवारश्च प्राग्वद्वक्तव्यः, तेषां च प्रेक्षागृहमण्डपानामुपरि अष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलकानि प्रज्ञप्तानि, कृष्णचामरध्वजादि च प्राग्वद्वक्तव्यम् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां प्रेक्षागृहमण्डपानां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिकाः प्रत्येकं द्वे द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां योजनमेकं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमय्यः अच्छा इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तासि ण'मित्यादि, तासां मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकं चैत्यस्तूपाः प्रज्ञप्ताः, ते च चैत्यस्तूपाः सातिरेके द्वे योजने ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां शङ्खाङ्ककुन्ददकरजोऽमृतमथितफेनपुञ्जसंनिकाशाः सर्वात्मना रत्नमया अच्छाः श्लक्ष्णा इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां चैत्यस्तूपानामुपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि बहवः कृष्णचामरध्वजा इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां चैत्यस्तूपानां प्रत्येकं प्रत्येकं 'चतुर्दिशि' चतसृषु दिक्षु एकैकस्यां दिशि एकैकमणिपीठिकाभावेन चतस्रो मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिका योजनमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धं योजनं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमय्यः अच्छा इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तासि ण'मित्यादि,

तासां मणिपीठिकानामुपरि एकैकस्या मणिपीठिकाया उपरि एकैकप्रतिमाभावेन चतस्रो जिनप्रतिमा जिनोत्सेधः—उत्कर्षतः पञ्च धनुःशतानि जघन्यतः सप्त हस्ताः, इह तु पञ्च धनुःशतानि संभाव्यन्ते, **'पलियंकनिसन्नाओ'** इति पर्यङ्कासननिषण्णाः स्तूपाभिमुख्यस्तिष्ठन्ति, तद्यथा—ऋषभा वर्द्धमाना चन्द्रानना वारिषेणा ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां चैत्यस्तूपानां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिका द्वे द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां योजनमेकं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमय्यः अच्छा इत्यादि प्राग्वत् । तासां च मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकं चैत्यवृक्षाः प्रज्ञप्ताः । ते चैत्यवृक्षा अष्टौ योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन अर्द्धयोजनमुत्सेधेन उण्डत्वेन द्वे योजने उच्चैस्त्वेन स्कन्धः स एवार्द्धं योजनं विष्कम्भेन यावद्बहुमध्यदेशभागे ऊर्द्ध्वं विनिर्गता शाखा सा विडिमा सा षड् योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, साऽपि चार्द्धं योजनं विष्कम्भेन, सर्वाग्रेण सातिरेकाण्यष्टौ योजनानि प्रज्ञप्तः । तेषां च चैत्यवृक्षाणामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—**'वइरामया मूला रययसुपइट्ठिया विडिमा'** वज्राणि—वज्ररत्नमयानि मूलानि येषां ते वज्रमूलाः, तथा रजता—रजतमयी सुप्रतिष्ठिता विडिमा—बहुमध्यदेशभागे ऊर्द्ध्वविनिर्गता शाखा येषां ते रजतसुप्रतिष्ठितविडिमा, ततः पूर्वपदेन कर्म्मधारयसमासः, **'रिट्ठमयकंदवेरुलियरुचिरखंधी'** रिष्ठमयो—रिष्ठरत्नमयः कन्दो येषां ते रिष्ठरत्नमयकन्दाः, तथा वैडूर्यो—वैडूर्यरत्नमयो रुचिरः स्कन्धो येषां ते तथा, ततः पूर्वपदेन कर्म्मधारयसमासः, **'सुजायवरजायरूवपढमगविसालसाला'** सुजातं—मूलद्रव्यशुद्धं वरं—प्रधानं यज्जातरूपं तदात्मका प्रथमका—मूलभूता विशाला शाला—शाखा येषां ते सुजातवरजातरूपप्रथमकविशालशाला: **'नानामणिरयणविविहसाहप्पसाहवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तवेंटा'** नानामणिरत्नानां नानामणिरत्नात्मिका विविधाः शाखाः प्रशाखाश्च येषां ते तथा, वैडूर्याणि—वैडूर्यमयानि पत्राणि येषां ते तथा, तथा तपनीयानि—तपनीयमयानि पत्रवृन्तानि येषां ते तथा, ततः पूर्ववत्पदद्वयपदद्वयमीलनेन कर्म्म-

धारयः, जाम्बूनदा—जाम्बूनदनामकसुवर्णविशेषमया रक्ता—रक्तवर्णा मृदवो—मनोज्ञाः सुकुमाराः—सुकुमारस्पर्शा ये प्रवाला—ईषदुन्मीलितपत्रभावाः पल्लवाः—संजातपरिपूर्णप्रथमपत्रभावरूपा वराङ्कुराः—प्रथममुद्भिद्यमाना अङ्कुरास्तान् धरन्तीति जाम्बूनदरक्तमृदुसुकुमारप्रवालपल्लवाङ्कुरधराः, कचित्पाठः 'जंबूणयरत्तमउयसुकुमालकोमलपवालपल्लवङ्कुरग्गसिहरा' तत्र जाम्बूनदानि रक्तानि मृदूनि—अकठिनानि सुकुमाराणि—अकर्कशस्पर्शानि कोमलानि—मनोज्ञानि प्रवालपल्लवाङ्कुराः—यथोदितस्वरूपा अग्रशिखराणि च येषां ते तथा, **'विचित्तमणिरयणसुरभिकुसुमफलभरेण नमियसाला'** विचित्रमणिरत्नानि—विचित्रमणिरत्नमयानि यानि सुरभीणि कुसुमानि फलानि च तेषां भरेण नमिता—नामं ग्राहिताः शालाः—शाखा येषां ते तथा, सती—शोभना छाया येषां ते सच्छायाः, तथा सती—शोभना प्रभा—कान्तिर्येषां ते सत्प्रभाः, सह उद्द्योतेन वर्त्तन्ते मणिरत्नानामुद्द्योतभावात् सोद्द्योताः, अधिकं—अतिशयेन नयनमनोनिर्वृतिकराः, अमृतरससमरसानि फलानि येषां ते अमृतरससमफलाः 'पासाईया' इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'ते णं चेइयरुक्खा' इत्यादि, ते चैत्यवृक्षा अन्यैर्बहुभिस्तिलकलवङ्गछत्रोपगशिरीषसप्तपर्णदधिपर्णलोध्रधवचन्दननीपकुटजकदम्बपनसतालतमालप्रियालप्रियङ्गुपारापतराजवृक्षनन्दिवृक्षैः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्ताः ॥ 'ते णं तिलगा' इत्यादि, ते तिलका यावन्नन्दिवृक्षा मूलवन्तः कन्दवन्त इत्यादि वृक्षवर्णनं प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावदनेकशकटरथयानशिबिकास्यन्दमानिकाप्रतिमोचनासुरम्या इति ॥ 'ते णं तिलगा' इत्यादि, ते तिलका यावन्नन्दिवृक्षा अन्याभिर्बहुभिः पद्मलताभिर्नागलताभिरशोकलताभिश्चम्पकलताभिश्चूतलताभिर्वनलताभिर्वासन्तिकालताभिरतिमुक्तकलताभिः कुन्दलताभिः श्यामलताभिः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्ताः, 'ताओ णं पउमलयाओ जाव सामलयाओ निच्चं कुसुमियाओ' इत्यादिलतावर्णनं तावद्वक्तव्यं यावत् 'पडिरूवाओ' इति, व्याख्या चास्य पूर्ववत् ॥ **'तेसि णं'**मित्यादि,

तेषां चैत्यवृक्षाणामुपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि बहवः कृष्णचामरध्वजा इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावद्बहवः सहस्रपत्रहस्तकाः सर्वरत्न-
मया यावत्प्रतिरूपका इति ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां चैत्यवृक्षाणां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिका
योजनमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमय्यः, अच्छा इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तासि ण'मित्यादि, तासां मणिपी-
ठिकानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकं महेन्द्रध्वजः प्रज्ञप्तः, ते च महेन्द्रध्वजा 'अर्द्धाष्टमानि' सार्द्धानि सप्त योजनान्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेन, अर्द्धक्रोशं—
धनुःसहस्रप्रमाणमुद्वेधेन, अर्द्धक्रोशं—धनुःसहस्रप्रमाणं 'विष्कम्भेन' विस्तारेण, 'वइरामयवट्टलट्ठसंठियसुसिलिट्ठपरिघट्ठमट्ठसुपइट्ठिया'
इति वज्रमया—वज्ररत्नमयाः तथा वृत्तं—वर्तुलं लष्टं—मनोज्ञं संस्थितं—संस्थानं येषां ते वृत्तलष्टसंस्थिताः, तथा सुश्लिष्टा यथा भवन्ति एवं
परिघृष्टा इव खरशानया पाषाणप्रतिमेव सुश्लिष्टपरिघृष्टाः मृष्टाः सुकुमारशानया पाषाणप्रतिमेव सुप्रतिष्ठिता मनागप्यचलनात् 'अणे-
गवरपंचवण्णकुडभीसहस्सपरिमंडियाभिरामा' अनेकैर्वरैः—प्रधानैः पञ्चवर्णैः कुडभीसहस्रैः—लघुपताकासहस्रैः परिमण्डिताः स-
न्तोऽभिरामा अनेकवरपञ्चवर्णकुडभीसहस्रपरिमण्डिताभिरामाः 'वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागा छत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगणतल-
मणुलिहंतसिहरा पासाईया जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां महेन्द्रध्वजानामुपरि अष्टावष्टौ मङ्गल-
कानि बहवः कृष्णचामरध्वजा इत्यादि पूर्ववत् सर्वं वक्तव्यं यावद्बहवः सहस्रपत्रकहस्तका इति ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां महेन्द्र-
ध्वजानां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं 'नन्दा' नन्दाभिधाना पुष्करिणी प्रज्ञप्ता, 'अर्द्धत्रयोदश' सार्द्धानि द्वादश योजनानि आयामेन, षड्
योजनानि सक्रोशानि विष्कम्भेन, दश योजनान्युद्वेधेन—उण्डत्वेन, 'अच्छाओ सण्हाओ रययमयकूडाओ' इत्यादि वर्णनं जगत्युपरि-
पुष्करिणीवन्निरवशेषं वक्तव्यं यावत् 'पासाईयाओ उदगरसेणं पन्नत्ताओ' ताश्च नन्दापुष्करिण्यः प्रत्येकं २ पद्मवरवेदिकया प्रत्येकं २

वनषण्डेन च परिक्षिप्ताः, तासां च नन्दापुष्करिणीनां त्रिदिशि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि तेषां च वर्णनं तोरणवर्णनं च प्राग्वत् ॥ 'सभाए णं सुहम्माए' इत्यादि, सभायां सुधर्म्मायां षड् (मनो) गुलिकासहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—द्वे सहस्रे पूर्वस्यां दिशि द्वे पश्चिमायामेकं सहस्रं दक्षिणस्यामेकमुत्तरस्यामिति, एतासु च फलकनागदन्तकमाल्यदामवर्णनं प्राग्वत् ॥ 'सभाए णं सुहम्माए' इत्यादि, सभायां सुधर्मायां षड् गोमानसिकाः—शय्यारूपाः स्थानविशेषास्तासां सहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—द्वे सहस्रे पूर्वस्यां दिशि द्वे पश्चिमायामेकं दक्षिणस्यामेकमुत्तरस्यामिति, तास्वपि फलकवर्णनं नागदन्तवर्णनं धूपघटिकावर्णनं च विजयद्वारवत् । 'सभाए णं सुहम्माए' इत्यादि उल्लोकवर्णनं 'सभाए णं सुहम्माए' इत्यादि भूमिभागवर्णनं च प्राग्वत् ॥

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपीढिया पण्णत्ता, सा णं मणिपीढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमता ॥ तीसे णं मणिपीढियाए उप्पिं एत्थ णं माणवए णाम चेइयखंभे पण्णत्ते अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं छकोडीए छलंसे छविग्गहिते वइरामयवट्टलट्ठसंठिते, एवं जहा महिंदज्झयस्स वण्णओ जाव पासातीए ॥ तस्स णं माणवकस्स चेतियखंभस्स उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता हेट्ठावि छक्कोसे वज्जेत्ता मज्झे अद्धपंचमेसु जोयणेसु एत्थ णं बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पं०, तेसु णं सुवण्णरूप्पमएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु नागदंतएसु बहवे रययामता सिक्कगा पण्णत्ता ॥ तेसु णं रययाम-

यसिक्कएसु बहवे वइरामया गोलवट्टसमुग्गका पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिणसकहाओ संनिक्खित्ताओ चिट्ठंति, जाओ णं विजयस्स देवस्स अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेतियं पज्जुवासणिज्जाओ। माणवस्स णं चेतियखंभस्स उवरिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता ॥ तस्स णं माणवकस्स चेतियखंभस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं एगा महामणिपेढिया पं०, सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई जाव पडिरूवा ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ ॥ तस्स णं माणवगस्स चेतियखंभस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पं० जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमती अच्छा ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, तस्स णं देवसयणिज्जस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—नाणामणिमया पडिपादा सोवण्णिया पादा नाणामणिमया पायसीसा जंबूणयमयाइं गत्ताइं वइरामया संधी णाणामणिमते चिच्चे रइयामता तूली लोहियक्खमया बिब्बोयणा तवणिज्जमती गंडोवहाणिया, से णं देवसयणिज्जे उभओ बिब्बोयणे दुहओ उण्णए मज्झेणयगंभीरे सालिंगणवट्टीए गंगापुलिणवालुउद्दालसालिसए ओतवितक्खो-

मदुगुल्लपट्टपडिच्छायणे सुविरचितरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुते सुरम्मे आईणगरूतबूरणवणीयतूलफासमउए पासाईए ॥ तस्स णं देवसयणिज्जस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महई एगा मणिपीठिका पण्णत्ता जोयणमेगं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई जाव अच्छा ॥ तीसे णं मणिपीढियाए उप्पिं एगं महं खुड्डए महिंदज्झए पण्णत्ते अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेधेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं वेरुलियामयवट्टलट्ठसंठिते तहेव जाव मंगला झया छत्तातिछत्ता ॥ तस्स णं खुड्डमहिंदज्झयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चुप्पालए नाम पहरणकोसे पण्णत्ते ॥ तत्थ णं विजयस्स देवस्स फलिहरयणपामोक्खा बहवे पहरणरयणा संनिक्खित्ता चिट्ठंति, उज्जलसुणिसियसुतिक्खधारा पासाईया ॥ तीसे णं सभाए सुहम्माए उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता ॥ (सू० १३८)

'तस्स णं बहुसमरमणीयस्स भूमिभागस्से'त्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्र महती एका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यामेकं योजनं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी 'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि महानेको माणवकनामा चैत्यस्तम्भः प्रज्ञप्तः, अर्द्धाष्टमानि—सार्द्धानि सप्त योजनान्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेन अर्द्धकोशं—धनुःसहस्रमानमुद्वेधेन, अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन षडस्रिकः—षट्कोटीकः षड्विग्रहिकः 'वइरामयवट्टलट्ठसंठिए' इत्यादि महेन्द्रध्वजवद् वर्णनमशेषमस्यापि तावद्वक्तव्यं यावद् 'बहवो सहस्सपत्तहत्थगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा' इति ॥ 'तस्स ण'मि-

त्यादि, तस्य माणवकस्य चैत्यस्तम्भस्योपरि पट् क्रोशान् अवगाह्य उपरितनभागात् पट् क्रोशान् वर्जयित्वेति भावः, अधस्तादपि पट् क्रोशान् वर्जयित्वा मध्येऽर्द्धपञ्चमेषु योजनेषु वहवे 'सुवण्णरूप्पमया फलगा' इत्यादिफलकवर्णनं नागदन्तवर्णनं सिक्कगवर्णनं च प्राग्वत् ॥ 'तेसु ण'मित्यादि, तेषु रजतमयेषु सिक्ककेषु वहवो वज्रमया गोलवृत्ताः समुद्गकाः, तेषु च वज्रमयेषु समुद्गकेषु वहूनि जिनसक्थीनि संनिक्षिप्तानि तिष्ठन्ति यानि विजयस्य देवस्यान्येषां च वहूनां वानमन्तराणां देवानां देवीनां चार्चनीयानि चन्दनतः वन्दनीयानि स्तुत्यादिना पूजनीयानि पुष्पादिना माननीयानि वहुमानकरणतः सत्कारणीयानि वस्त्रादिना कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यमितिवुद्ध्या पर्युपासनीयानि ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य माणवकस्य चैत्यस्तम्भस्य पूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, योजनमेकमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं वाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी 'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र महदेकं सिंहासनं प्रज्ञप्तं तद्वर्णनं शेपाणि च भद्रासनानि तत्परिवारभूतानि प्राग्वत् ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य माणवकनाम्नश्चैत्यस्तम्भस्य पश्चिमायां दिशि अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, एकं योजनमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं वाहल्येन 'सव्वमणिमयी' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र महदेकं (देव) शयनीयं प्रज्ञप्तं, तस्य च देवशयनीयस्यायमेतद्रूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—नानामणिमयाः प्रतिपादाः—मूलपादानां प्रतिविशिष्टोपष्टम्भकरणाय पादाः प्रतिपादाः 'सौवर्णिकाः' सुवर्णमयाः 'पादाः' मूलपादाः, जाम्बूनदमयानि गात्राणि—ईषादीनि वज्रमया वज्ररत्नपूरिताः सन्धयः, 'नानामणिमये चिच्चे' इति चिच्चं नाम च्युतं वानमित्यर्थः, नानामणिमयं च्युतं—विशिष्टवानं रजतमयी तूली लोहिताक्षमयानि 'विव्वोयणा' इति उपधानकानि, आह च मूलटीकाकारः—"विव्वोयणा—उपधानकानि उच्यन्त" इति, तपनीयमय्यो गण्डोपधानकाः ॥

'से णं देवसयणिज्जे' इत्यादि, तद् देवशयनीयं **'सालिङ्गनवर्त्तिकं'** सह आलिङ्गनवर्त्त्या—शरीरप्रमाणेनोपधानेन यद् तत्तथा **'उभओविव्वोयणे'** इति उभयतः—उभौ—शिरोऽन्तपादान्तावाश्रित्य विव्वोयणे—उपधाने यत्र तद् उभयतोविव्वोयणं 'दुहतो उन्नते' इति उभयत उन्नतं 'मज्झेणयगंभीरे' इति, मध्ये च नतं निम्नत्वाद् गम्भीरं च महत्त्वात् नतगम्भीरं गङ्गापुलिनवालुकाया अवदालो—विद्लनं पादादिन्यासेऽधोगमनमिति भावः तेन **'सालिसए'** इति सदृशकं गङ्गापुलिनवालुकावदालसदृशं, तथा **'ओयविय'** इति विशिष्टं परिकर्मितं क्षौमं—कार्पासिकं दुकूलं—वस्त्रं तदेव पट्ट ओयवियक्षौमदुकूलपट्टः स प्रतिच्छादनं—आच्छादनं यस्य तत्तथा, 'आईणगरूयबूरनवणीयतूलफासे' इति प्राग्वत्, **'रत्तंसुयसंवुए'** इति रक्तांशुकेन संवृतं रक्तांशुकसंवृतम्, अत एव सुरम्यं 'पासाइए' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य देवशयनीयस्य उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, योजनमेकमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं बाहल्येन 'सव्वमणिमयी अच्छा' इत्यादि प्राग्वत् ॥ **'तीसे ण'**मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र क्षुल्लको महेन्द्रध्वजः प्रज्ञप्तः, तस्य प्रमाणं च वर्णकश्च महेन्द्रध्वजवद्वक्तव्यः ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य क्षुल्लकस्य महेन्द्रध्वजस्य पश्चिमायां दिशि अत्र विजयस्य देवस्य सम्बन्धी महान् एकश्चोप्पालो नाम **'प्रहरणकोशः'** प्रहरणस्थानं प्रज्ञप्तं, किंविशिष्टमित्याह— 'सव्ववइरामए अच्छे जाव पडिरूवे' इति प्राग्वत् ॥ **'तत्थ ण'**मित्यादि, तत्र चोप्पालकाभिधाने प्रहरणकोशे बहूनि परिघरत्नप्रमुखाणि प्रहरणरत्नानि संक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, कथम्भूतानीत्यत आह—**उज्ज्वलानि**—निर्मलानि **सुनिशितानि**—अतितेजितानि अत एव तीक्ष्णधाराणि प्रासादीयानीत्यादि प्राग्वत् ॥ **'तीसे णं सभाए'** इत्यादि, तस्याः सुधर्म्मायाः सभाया उपरि बहून्यष्टावष्टौ मङ्गलकानि, इत्यादि सर्वं प्राग्वत्तावक्तव्यं यावद्बहवः सहस्रपत्रहस्तकाः सर्वरत्नमया अच्छा यावत्प्रतिरूपाः ॥

सभाए णं सुधम्माए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं सिद्धायतणे पण्णत्ते अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं छज्जोयणाइं सकोसाइं विक्खंभेणं नव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं जाव गोमाणसिया वत्तव्वया जा चेव सहाए सुहम्माए वत्तव्वया सा चेव निरवसेसा भाणियव्वा तहेव दारा मुहमंडवा पेच्छाघरमंडवा झया थूभा चेइयरुक्खा महिंदज्झया णंदाओ पुक्खरिणीओ, तओ य सुधम्माए जहा पमाणं मणगुलियाणं गोमाणसीया धूवयघडिओ तहेव भूमिभागे उल्लोए य जाव मणिफासे ॥ तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमयी अच्छा०, तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवच्छंदए पण्णत्ते दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वरयणामए अच्छे ॥ तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसतं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमेत्ताणं संणिखित्तं चिट्ठइ ॥ तासि णं जिणपडिमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—तवणिज्जमता हत्थतला अंकामयाइं णक्खाइं अंतोलोहियक्खपरिसेयाइं कणगमया पादा कणगामया गोप्फा कणगामतीओ जंघाओ कणगामया जाणू कणगामया ऊरू कणगामयाओ गायलट्ठीओ तवणिज्जमतीओ णाभीओ रिट्ठामतीओ रोमरातीओ तवणिज्जमया चुचुया तवणिज्जमता सिरिवच्छा कणगमयाओ बाहाओ कणगमईओ पासाओ कणगमतीओ गीवाओ रिट्ठामते मंसु

सिलप्पवालमया उट्ठा फलिहामया दंता तवणिज्जमतीओ जीहाओ तवणिज्जमया तालुया कणगमतीओ णासाओ अंतोलोहितक्खपरिसेयाओ अंकामयाइं अच्छीणि अंतोलोहितक्खपरिसेताइं पुलगमतीओ दिट्ठीओ रिट्ठामतीओ तारगाओ रिट्ठामयाइं अच्छिपत्ताइं रिट्ठामतीओ भमुहाओ कणगामया कवोला कणगामया सवणा कणगामया णिडाला वट्टा वइरामतीओ सीसघडीओ तवणिज्जमतीओ केसंतकेसभूमीओ रिट्ठामया उवरिमुद्धजा । तासि णं जिणपडिमाणं पिट्ठतो पत्तेयं पत्तेयं छत्तधारपडिमाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं छत्तधारपडिमाओ हिमरततकुंदेंदुसप्पकासाइं सकोरेंटमल्लदामधवलाइं आतपत्तातिं सलीलं ओहारमाणीओ चिट्ठंति ॥ तासि णं जिणपडिमाणं उभओ पासिं पत्तेयं पत्तेयं चामरधारपडिमाओ पन्नत्ताओ, ताओ णं चामरधारपडिमाओ चंदप्पहवइरवेरुलियनाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लियाओ संखंककुंददगरयअमतमथितफेणपुंजसण्णिकासाओ सुहुमरयतदीहवालाओ धवलाओ चामराओ सलीलं ओहारेमाणीओ चिट्ठंति ॥ तासि णं जिणपडिमाणं पुरतो दो दो नागपडिमाओ दो २ जक्खपडिमाओ दो २ भूतपडिमाओ दो २ कुंडधारपडिमाओ विणओणयाओ पायवडियाओ पंजलिउडाओ संणिक्खित्ताओ चिट्ठंति सव्वरयणामतीओ अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णीरयाओ णिप्पंकाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तासि णं

जिणपडिमाणं पुरतो अट्ठसतं घंटाणं अट्ठसतं चंदणकलसाणं एवं अट्ठसतं भिंगारगाणं एवं आयंसगाणं थालाणं पातीणं सुपतिट्ठकाणं मणगुलियाणं वातकरगाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं हयकंठगाणं जाव उसभकंठगाणं पुप्फचंगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं पुप्फपडलगाणं अट्ठसयं तेल्लसमुग्गाणं जाव धूवगडच्छुयाणं संणिखित्तं चिट्ठति ॥ तस्स णं सिद्धायतणस्स णं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता उत्तिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया तंजहा—रयणेहिं जाव रिट्ठेहिं ॥ (सू० १३९)

'सभाए ण'मित्यादि, सभायाः सुधर्म्मायाः उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महदेकं सिद्धायतनं प्रज्ञप्तम्, अर्द्धत्रयोदश योजनान्यायामेन षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भतो नव योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेनेत्यादि सर्वं सुधर्म्मावद्वक्तव्यं यावद् गोमानसीवक्तव्यता, तथा चाह— 'जा चेव सभाए सुधम्माए वत्तव्वया सा चेव निरवसेसा भाणियव्वा जाव गोमाणसियाओ' इति, किमुक्तं भवति?—यथा सुधर्म्मायाः सभायाः पूर्वदक्षिणोत्तरवर्त्तीनि त्रीणि द्वाराणि, तेषां च द्वाराणां पुरतो मुखमण्डपाः, तेषां च मुखमण्डपानां पुरतः प्रेक्षागृहमण्डपाः, तेषां च प्रेक्षागृहमण्डपानां पुरतश्चैत्यस्तूपाः सप्रतिमाः, तेषां च चैत्यस्तूपानां पुरतश्चैत्यवृक्षाः, तेषां च चैत्यवृक्षाणां पुरतो महेन्द्रध्वजाः, तेषां च महेन्द्रध्वजानां पुरतो नन्दापुष्करिण्य उक्ताः, तदनन्तरं च सभायां सुधर्म्मायां षड् गुलिकासहस्राणि षड् गोमानसीसहस्राण्यप्युक्तानि तथाऽत्रापि सर्वमनेनैव क्रमेण निरवशेषं वक्तव्यम्, उल्लोकवर्णनं बहुसमरमणीयभूमिभागवर्णनमपि तथैव ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य (सिद्धायतनस्य) बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता द्वे

योजने आयामविष्कम्भाभ्यां योजनमेकं बाहल्येन सर्वमणिमयी अच्छा इत्यादि प्राग्वत् । तस्याश्च मणिपीठिकाया उपरि अत्र महानेको देवच्छन्दकः प्रज्ञप्तः सातिरेके द्वे योजने ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां सर्वात्मना रत्नमया अच्छा इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र देवच्छन्दके 'अष्टशतम्' अष्टाधिकं शतं जिनप्रतिमानां जिनोत्सेधप्रमाणमात्राणां पञ्चधनुःशतप्रमाणानामिति भावः सन्निक्षिप्तं तिष्ठति ॥ 'तासि णं जिणपडिमाण'मित्यादि, तासां जिनप्रतिमानामयमेतद्रूपो 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तपनीयमयानि हस्ततलपादतलानि 'अङ्कमयाः' अङ्करत्नमया अन्तः—मध्ये लोहिताक्षरत्नप्रतिषेका नखाः, कनकमय्यो जङ्घाः, कनकमयानि जानूनि, कनकमया ऊरवः, कनकमय्यो गात्रयष्टयः, तपनीयमया नाभयः, रिष्ठरत्नमय्यो रोमराजयः, तपनीयमयाः 'चुच्चुकाः' स्तनाग्रभागाः, तपनीयमयाः श्रीवृक्षाः (वत्सा.) 'शिलाप्रवालमयाः' विद्रुममया ओष्ठाः, स्फटिकमया दन्ताः, तपनीयमय्यो जिह्वाः, तपनीयमयानि तालुकानि, कनकमय्यो नासिकाः अन्तर्लोहिताक्षरत्नप्रतिसेकाः, अङ्कमयानि अक्षीणि अन्तर्लोहिताक्षप्रतिसेकानि, रिष्ठरत्नमय्योऽक्षिमध्यगतास्तारिकाः, रिष्ठरत्नमयानि अक्षिपत्राणि, रिष्ठरत्नमय्यो भ्रुवः, कनकमयाः कपोलाः, कनकमयाः श्रवणाः, कनकमय्यो ललाटपट्टिकाः, वज्रमय्यः शीर्षघटिकाः, तपनीयमय्यः केशान्तकेशभूमयः, केशानामन्तभूमयः केशभूमयश्चेति भावः, रिष्टमया उपरि मूर्द्धजाः—केशाः, तासां जिनप्रतिमानां पृष्ठत एकैका छत्रधरप्रतिमा हेमरजतकुन्देन्दु (समान) प्रकाशं सकोरिंटमाल्यदामधवलमातपत्रं गृहीत्वा सलीलं धरन्ती तिष्ठति ॥ 'तासि णं जिणपडिमाण'मित्यादि, तासां जिनप्रतिमानां प्रत्येकमुभयोः पार्श्वयोर्द्वे द्वे चमरधारप्रतिमे प्रज्ञप्ते, 'चंदप्पभवइरवेरुलियनाणामणिरयणखचितदंडाओ' इति चन्द्रप्रभः—चन्द्रकान्तो वज्रं वैडूर्यं च प्रतीतं चन्द्रप्रभवज्रवैडूर्याणि शेषाणि च नानामणिरत्नानि खचितानि येषु दण्डेपु ते तथा, एवंरूपाश्चित्राः—नानाप्र-

कारा दण्डा येषां तानि तथा, सूत्रे स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, 'सुहुमरययदीहवालाओ' इति सूक्ष्माः—श्लक्ष्णा रजतस्य—रजतमया वाला येषां तानि तथा, 'संखंककुंददगरयअमयमहियफेणपुंजसन्निकासाओ धवलाओ चामराओ' इति प्रतीतं चामराणि गृहीत्वा सलीलं वीजयन्त्यस्तिष्ठन्ति ॥ 'तासि णं'मित्यादि, तासां जिनप्रतिमानां पुरतो द्वे द्वे नागप्रतिमे द्वे द्वे यक्षप्रतिमे द्वे द्वे भूतप्रतिमे द्वे द्वे कुण्डधारप्रतिमे संनिक्षिप्ते तिष्ठतः, ताश्च 'सव्वरयणामईओ अच्छाओ' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तत्थ णं'मित्यादि, 'तस्मिन्' देवच्छन्दके जिनप्रतिमानां पुरतोऽष्टशतं घण्टानामष्टशतं चन्दनकलशानामष्टशतं भृङ्गाराणामष्टशतमादर्शानामष्टशतं स्थालानामष्टशतं पात्रीणामष्टशतं सुप्रतिष्ठानामष्टशतं मनोगुलिकानां—पीठिकाविशेषरूपाणामष्टशतं वातकरकाणामष्टशतं चित्राणां रत्नकरण्डकाणामष्टशतं हयकण्ठानामष्टशतं गजकण्ठानामष्टशतं नरकण्ठानामष्टशतं किंनरकण्ठानामष्टशतं किंपुरुषकण्ठानामष्टशतं महोरगकण्ठानामष्टशतं गन्धर्वकण्ठानामष्टशतं वृषभकण्ठानामष्टशतं पुष्पचङ्गेरीणामष्टशतं माल्यचङ्गेरीणामष्टशतं चूर्णचङ्गेरीणामष्टशतं गन्धचङ्गेरीणामष्टशतं वस्त्रचङ्गेरीणामष्टशतमाभरणचङ्गेरीणामष्टशतं लोमहस्तचङ्गेरीणां लोमहस्तका—मयूरपिच्छपुञ्जनिकाः अष्टशतं पुष्पपटलकानामष्टशतं माल्यपटलकानां मुत्कलानि पुष्पाणि ग्रथितानि माल्यानि अष्टशतं चूर्णपटलकानाम्, एवं गन्धवस्त्राभरणसिद्धार्थलोमहस्तकपटलकानामपि प्रत्येकं प्रत्येकमष्टशतं वक्तव्यम्, अष्टशतं सिंहासनानामष्टशतं छत्राणामष्टशतं चामराणामष्टशतं तैलसमुद्गकानामष्टशतं कोष्ठसमुद्गकानामष्टशतं चोयकसमुद्गकानामष्टशतं तगरसमुद्गकानामष्टशतमेलासमुद्गकानामष्टशतं हरितालसमुद्गकानामष्टशतं हिङ्गुलकसमुद्गकानामष्टशतं मनःशिलासमुद्गकानामष्टशतं अंजनसमुद्गकानां, सर्वाण्यप्येतानि तैलादीनि परमसुरभिगन्धोपेतानि द्रष्टव्यानि, अष्टशतं ध्वजानाम्, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"वंदणकलसा भिंगारगा य आयंसगा य थाला य। पाईओ सुपइट्ठा मणगुलिया वायकरगा य ॥१॥

चित्ता रयणकरंडा हयगयनरकंठगा य चंगेरी। पडला सिंहासणछत्तचामरा समुग्गयक(जु)या य ॥ २ ॥" अष्टशतं धूपकडुच्छ संनिक्षिप्तं तिष्ठति ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य सिद्धायतनस्य उपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि, ध्वजच्छत्रातिछत्रादीनि तु प्राग्वत् ॥

तस्स णं सिद्धायतणस्स णं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं उववायसभा पण्णत्ता जहा सुधम्मा तहेव जाव गोमाणसीओ उववायसभाएवि दारा मुहमंडवा सव्वं भूमिभागे तहेव जाव मणिफासो (सुहम्मासभावत्तव्वया भाणियव्वा जाव भूमीए फासो) ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमती अच्छा, तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, तस्स णं देवसयणिज्जस्स वण्णओ, उववायसभाए णं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता जाव उत्तिमागारा, तीसे णं उववायसभाए उत्तरपुरच्छिमेणं एत्थ णं एगे महं हरए पण्णत्ते, से णं हरए अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं छक्कोसातिं जोयणाइं विक्खंभेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे वण्णओ जहेव णंदाणं पुक्खरिणीणं जाव तोरणवण्णओ, तस्स णं हरतस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं अभिसेयसभा पण्णत्ता जहा सभासुधम्मा तं चेव निरवसेसं जाव गोमाणसीओ भूमिभाए उल्लोए तहेव ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता जोयणं आयामविक्खंभेणं

अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमया अच्छा ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं महं एगे सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ अपरिवारो ॥ तत्थ णं विजयस्स देवस्स सुबहु अभिसेक्के भंडे संणिक्खित्ते चिट्ठति, अभिसेयसभाए उप्पिं अट्ठट्ठमंगलए जाव उत्तिमागारा सोलसविधेहिं रयणेहिं, तीसे णं अभिसेयसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं अलंकारियसभावत्तव्वया भाणियव्वा जाव गोमाणसीओ मणिपेढियाओ जहा अभिसेयसभाए उप्पिं सीहासणं स(अ)-परिवारं ॥ तत्थ णं विजयस्स देवस्स सुबहु अलंकारिए भंडे संनिक्खित्ते चिट्ठति, उत्तिमागारा अलंकारिय० उप्पिं मंगलगा झया जाव (छत्ताइछत्ता) ॥ तीसे णं आलंकारियसहाए उत्तरपुरत्थि-मेणं एत्थ णं एगा महं ववसातसभा पण्णत्ता, अभिसेयसभावत्तव्वया जाव सीहासणं अपरिवारं ॥ त(ए)त्थणं विजयस्स देवस्स एगे महं पोत्थयरयणे संनिक्खित्ते चिट्ठति, तत्थ णं पोत्थयरयणस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पन्नत्ते, तंजहा—रिट्ठामतीओ कंबियाओ [रयतामतातिं पत्तकाइं रिट्ठाम-यातिं अक्खराइं] तवणिज्जमए दोरे णाणामणिमए गंठी (अंकमयाइं पत्ताइं) वेरुलियमए लिप्पासणे तवणिज्जमती संकला रिट्ठमए छादने रिट्ठामया मसी वइरामयी लेहणी रिट्ठामयाइं अक्खराइं धम्मिए सत्थे ववसायसभाए णं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता उत्तिमागारेति । तीसे णं

वत्ता(उववा)यसभाए उत्तरपुरच्छिमेणं एगे महं [1]बलिपेढे पण्णत्ते दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वरयतामए अच्छे जाव पडिरूवे ॥ एत्थ णं तस्स णं बलिपेढस्स उत्तरपुर-त्थिमेणं एगा महं णंदापुक्खरिणी पण्णत्ता जं चेव माणं हरयस्स तं चेव सव्वं ॥ (सू० १४०)

'तस्स ण'मित्यादि, तस्य सिद्धायतनस्य उत्तरपूर्वस्यामत्र महत्येका उपपातसभा प्रज्ञप्ता, तस्याश्च सुधर्म्मासभाया इव प्रमाणं त्रीणि द्वाराणि तेषां च द्वाराणां पुरतो मुखमण्डपा इत्यादि सर्वं तावद्वक्तव्यं यावद् गोमानसीवर्णनं, तदनन्तरमुल्लोकवर्णनं ततो भूमिभा-गवर्णनं तावद् यावन्मणीनां स्पर्शः, तथा चाह—'सुहम्मसभावत्तव्वया भाणियव्वा जाव भूमीए फासो' इति ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य च वहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य वहुमध्यदेशभागेऽत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, योजनमेकमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी अच्छा इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत्, तस्याश्च मणिपीठिकाया उपरि अत्र महदेकं देवशयनीयं प्रज्ञप्तं, तस्य स्वरूपवर्णनं यथा सुधर्म्मायां सभायां देवशयनीयस्य तस्य तथा द्रष्टव्यं, तस्या अपि उपपातसभाया उपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानी-त्यादि प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या उपपातसभाया उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महानेको ह्रदः प्रज्ञप्तः, अर्द्धत्रयोदश योजना-न्यायामेन षड् योजनानि सक्रोशानि विष्कम्भेन दश योजनान्युद्वेधेन 'अच्छे सण्हे रययाकूले' इत्यादि नन्दापुष्करिणीवत्सर्वं निरवशेषं वाच्यं, तथा चाह—'आयामुव्वेहेणं विक्खंभेणं वन्नओ जो चेव नंदापुक्खरिणीए'[2]मिति ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, स ह्रद

---

[1] अत्र प्रथमं जीर्णपुस्तके नंदापुष्करिणीविवेचनं वर्त्तते पश्चात् बलिपीठस्य परं च टीकायां प्रथमं बलिपीठस्य पश्चात् नंदायाः, एतदनुसारेण मयाऽप्यत्रैवं लिखितं

[2] अस्या वक्ष्यमाणव्याख्याया मूलपाठो न दृश्यते पुस्तकेषु.

एकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः, पद्मवरवेदिकाया वर्णनं वनषण्डवर्णनं च तावद् यावत् 'तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंती'ति, तस्य ह्रदस्य 'त्रिदिशि' तिसृषु दिक्षु त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां तोरणानां च (वर्णनं पूर्ववत्) 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य ह्रदस्य उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येकाऽभिषेकसभा प्रज्ञप्ता, साऽपि प्रमाणस्वरूपद्वारमुखमण्डपप्रेक्षागृहमण्डपचैत्यस्तूपवर्णनादिप्रकारेण सुधर्मासभावत्तावद्वक्तव्या यावद् गोमानसीवक्तव्यता, तदनन्तरं तथैवोल्लोकवर्णनं भूमिभागवर्णनं च तावद् यावन्मणीनां स्पर्शः ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता योजनमेकमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी 'अच्छा सण्हा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र महदेकं सिंहासनं प्रज्ञप्तं, सिंहासनवर्णकः प्राग्वत्, नवरमत्र परिवारभूतानि भद्रासनानि न वक्तव्यानि ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, तस्मिन् सिंहासने विजयस्य देवस्य योग्यं सुबहु 'अभिषेकभाण्डम्' अभिषेकोपस्करः संनिक्षिप्तः तिष्ठति, तस्याश्चाभिषेकसभाया उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येकाऽलङ्कारसभा प्रज्ञप्ता, सा च प्रमाणस्वरूपद्वारत्रयमुखमण्डपप्रेक्षागृहमण्डपादिवर्णनप्रकारेणाभिषेकसभावत्तावद्वक्तव्या यावदपरिवारं सिंहासनम् ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, 'तत्र' सिंहासने विजयदेवस्य योग्यं सुबहु 'आलङ्कारिकम्' अलङ्कारयोग्यं भाण्डं संनिक्षिप्तं तिष्ठति ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या अलङ्कारसभाया उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येका व्यवसायसभा प्रज्ञप्ता, सा चाभिषेकसभावत्प्रमाणस्वरूपद्वारत्रयमुखमण्डपादिवर्णकप्रकारेण तावद्वक्तव्या यावदपरिवारं सिंहासनम् ॥ 'एत्थ ण'मित्यादि, 'अत्र' सिंहा-

१ अत्र संबंधत्रुटितो दृश्यते.

सने महदेकं पुस्तकरत्नं संनिक्षिप्तं तिष्ठति, तस्य च पुस्तकरत्नस्यायमेतद्रूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः—'रिष्ठमय्यौ' रिष्ठरत्नात्मिके कम्बिके पुष्टके इति भावः, रजतमयो(तपनीयमयो)दवरको यत्र पत्राणि प्रोतानि सन्ति, नानामणिमयो ग्रन्थिर्दवरकस्यादौ येन पत्राणि न निर्गच्छन्ति 'अङ्कमयानि' अङ्करत्नमयानि पत्राणि नानामणि(वैडूर्य)मयं लिप्पासनं—मषीभाजनमित्यर्थः, तपनीयमयी शृङ्खला मषीभाजनसत्का रिष्ठरत्नमयमुपरितनं तस्य छादनं 'रिष्ठमयी' रिष्ठरत्नमयी मषी वज्रमयी लेखिनी रिष्ठमयान्यक्षराणि धार्म्मिकं लेख्यं, तस्याश्च उपपातसभाया उत्तरपूर्वस्यां दिशि महदेकं बलिपीठं प्रज्ञप्तं द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां योजनमेकं बाहल्येन 'अच्छे सण्हे' इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बलिपीठस्य उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येका नन्दापुष्करिणी प्रज्ञप्ता, सा च ह्रदप्रमाणा, ह्रदस्येव च तस्या अपि त्रिसोपानवर्णनं तोरणवर्णनं च प्राग्वत् ॥ तदेवं यत्र यादृग्भूता च राजधानी विजयस्य देवस्य तदेतद् उपवर्णितं, सम्प्रति विजयो देवस्तत्रोत्पन्नस्तदा यदकरोद् यथा च तस्याभिषेकोऽभवत्तदुपदर्शयति—

तेणं कालेणं तेणं समएणं विजए देवे विजयाए रायहाणीए उववातसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिते अंगुलस्स असंखेज्जतिभागमेत्तीए बोंदीए विजयदेवत्ताए उववण्णे ॥ तए णं से विजये देवे अहुणोववण्णमेत्तए चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छति, तंजहा —आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणापाणुपज्जत्तीए भासामणपज्जत्तीए ॥ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गयस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिते मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं मे पुव्वं सेयं किं मे पच्छा सेयं किं मे पुव्विं कर-

णिज्जं किं मे पच्छा करणिज्जं किं मे पुव्विं वा पच्छा वा हिताए सुहाए खेमाए णीस्सेसयाते अणुगामियत्ताए भविस्सतीतिकट्टु एवं संपेहेति ॥ तते णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा विजयस्स देवस्स इमं एतारूवं अज्झत्थितं चिंतियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं जाणित्ता जेणामेव से विजए देवे तेणामेव उवागच्छंति तेणामेव उवागच्छित्ता विजयं देवं करतलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति जएणं विजएणं वद्धावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं विजयाए रायहाणीए सिद्धायतणंसि अट्ठसतं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणमेत्ताणं संनिक्खित्तं चिट्ठति सभाए य सुधम्माए माणवए चेतियखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गतेसु बहूओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति जाओ णं देवाणुप्पियाणं अन्नेसिं च बहूणं विजयरायहाणिवत्थव्वाणं देवाणं देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेतियं पज्जुवासणिज्जाओ एतण्णं देवाणुप्पियाणं पुव्विंपि सेयं एतण्णं देवाणुप्पियाणं पच्छावि सेयं एतण्णं देवा० पुव्विं करणिज्जं पच्छा करणिज्जं एतण्णं देवा० पुव्विं वा पच्छा वा जाव आणुगामियत्ताते भविस्सतीतिकट्टु महता महता जय(जय)सद्दं पउंजंति ॥ तए णं से विजए देवे तेसिं सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हियते देवसयणिज्जा-

ओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता दिव्वं देवदूसजुयलं परिहेइ २ त्ता देवसयणिज्जाओ पच्चोरुहइ २ हित्ता उपपातस-
भाओ पुरत्थिमेणं बारेणं णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव हरते तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता हरयं
अणुपदाहिणं करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमेणं तोरणेणं अणुप्पविसति २ त्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाण-
पडिरूवएणं पच्चोरुहति २ हरयं ओगाहति २ त्ता जलावगाहणं करेति २ त्ता जलमज्जणं करेति २ त्ता
जलकिड्डं करेति २ त्ता आयंते चोक्खे परमसूतिभूते हरताती पच्चुत्तरति २ त्ता जेणामेव अभिसेय-
सभा तेणामेव उवागच्छति २ त्ता अभिसेयसभं पदाहिणं करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं बारेणं अणुपवि-
सति २ त्ता जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता सीहासणवरगते पुरच्छाभिमुहे सण्णि-
सण्णे॥ तते णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा आभिओगिते देवे सद्दावे-
ति २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विजयस्स देवस्स महत्थं महग्घं महरिहं
विपुलं इंदाभिसेयं उवट्ठवेह ॥ तते णं ते आभिओगिता देवा सामाणियपरिसोववण्णेहिं एवं
वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हितया करतलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं देवा
तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति २ त्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति २ त्ता
वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं णिसरंति तं०—रयणाणं जाव रि-
ट्ठाणं, अहाबायरे पोग्गले परिसाडंति २ त्ता अहासुहुमे पोग्गले परियायंति २ त्ता दोच्चंपि वेउ-

व्वियसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं रुप्पामयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं मणिमयाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णरुप्पामयाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णमणिमयाणं अट्ठसहस्सं रुप्पामणिमयाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णरुप्पामताणं अट्ठसहस्सं भोमेज्जाणं अट्ठसहस्सं भिंगारगाणं एवं आयंसगाणं थालाणं पातीणं सुपतिट्ठकाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं पुप्फचंगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं पुप्फपडलगाणं जाव लोमहत्थगपडलगाणं अट्ठसतं सीहासणाणं छत्ताणं चामराणं अवपडगाणं वट्टकाणं तवसिप्पाणं खोरकाणं पीणकाणं तेल्लसमुग्गकाणं अट्ठसतं धूवकडुच्छुयाणं विउव्वंति ते साभाविए विउव्विए य कलसे य जाव धूवकडुच्छुए य गेण्हंति गेण्हित्ता विजयातो रायहाणीतो पडिनिक्खमंति २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव उद्धुताए दिव्वाए देवगतीए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं वीयीवयमाणा २ जेणेव खीरोदे समुद्दे तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता खीरोदगं गिण्हित्ता जातिं तत्थ उप्पलाइं जाव सतसहस्सपत्तातिं तातिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव पुक्खरोदे समुद्दे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पुक्खरोदगं गेण्हंति पुक्खरोदगं गिण्हित्ता जातिं तत्थ उप्पलाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति २ त्ता जेणेव समयखेत्ते जेणेव भरहेरवयातिं वासाइं जेणेव मागधवरदामपभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गिण्हंति २ त्ता तित्थमट्टियं गेण्हंति २ त्ता जेणेव गंगासिं-

धुरत्तारत्तवतीसलिला तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सरितोदगं गेण्हंति २ त्ता उभओ तडमट्टियं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव चुल्लहिमवंतसिहरिवासधरपव्वता तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतूवरे य सव्वपुप्फे य सव्वगंधे य सव्वमल्ले य सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हंति सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हित्ता जेणेव पउमदहपुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति तेणेव २ दहोदगं गेण्हंति जातिं तत्थ उप्पलाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हंति ताइं गिण्हित्ता जेणेव हेमवयहेरण्णवयाइं वासाइं जेणेव रोहियरोहितंससुवण्णकूलरुप्पकूलाओ तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सलिलोदगं गेण्हंति २ त्ता उभओ तडमट्टियं गिण्हंति गेण्हित्ता जेणेव सद्दावातिमालवंतपरियागा वट्टवेतड्ढपव्वता तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य गेण्हंति, सिद्धत्थए य गेण्हित्ता जेणेव महाहिमवंतरुप्पिवासधरपव्वता तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वपुप्फे तं चेव जेणेव महापउमद्दहमहापुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं तं चेव जेणेव हरिवासे रम्मावासेति जेणेव हरकान्तहरिकंतणरकंतनारिकंताओ सलिलाओ तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति सलिलोदगं गेण्हित्ता जेणेव वियडावइगंधावतिवट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव उवागच्छंति सव्वपुप्फे य तं चेव जेणेव णिसहनीलवंतवासहरपव्वता तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवा-

गच्छित्ता सव्वतूवरे य तहेव जेणेव तिगिच्छिद्दहकेसरिद्दहा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं तं चेव जेणेव पुव्वविदेहावरविदेहवासाइं जेणेव सीयासीओयाओ महाणईओ जहा णईओ जेणेव सव्वचक्कवट्टिविजया जेणेव सव्वमागहवरदामपभासाइं तित्थाइं तहेव जहेव जेणेव सव्ववक्खारपव्वता सव्वतुवरे य जेणेव सव्वंतरणदीओ सलिलोदगं गेण्हंति २ तं चेव जेणेव मंदरे पव्वते जेणेव भद्दसालवणे तेणेव उवागच्छंति सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हंति २ त्ता जेणेव णंदणवणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सव्वतुवरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थे य सरसं च गोसीसचंदणं गिण्हंति २ त्ता जेणेव सोमणसवणे तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं दिव्वं च सुमणदामं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव पंडगवणे तेणामेव समुवागच्छंति तेणेव समुवा० २ त्ता सव्वतूवरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए सरसं च गोसीसचंदणं दिव्वं च सुमणोदामं ददरयमलयसुगंधिए य गंधे गेण्हंति २ त्ता एगतो मिलंति २ त्ता जंबूदीवस्स पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं णिग्गच्छंति पुरत्थिमिल्लेणं निग्गच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव दिव्वाए देवगतीए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीयीवयमाणा २ जेणेव विजया रायहाणी तेणेव उवागच्छंति २ त्ता विजयं रायहाणिं अणुप्पयाहिणं करेमाणा २ जेणेव अभिसेयसभा जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करतलपरि-

ग्गहितं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति विजयस्स देवस्स तं महत्थं महग्घं महरिहं विपुलं अभिसेयं उवट्ठवेंति ॥ तते णं तं विजयदेवं चत्तारि य सामाणियसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ तिण्णि परिसाओ सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अन्ने य बहवे विजयरायधाणिवत्थव्वगा वाणमंतरा देवा य देवीओ य तेहिं साभावितेहि उत्तरवेउव्वितेहिं य वरकमलपतिट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं चंदणकयचच्चातेहिं आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पलपिधाणेहिं करतलसुकुमालकोमलपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्साणं सोवण्णियाणं कलसाणं रूप्पमयाणं ताव अट्ठसहस्साणं भोमेयाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं सव्वपुप्फेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए सव्वजुत्तीए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूतिए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वोरोहेणं सव्वणाडएहिं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसाए सव्वदिव्वतुडियणिणाएणं महया इड्ढीए महया जुत्तीए महया बलेणं महता समुदएणं महता तुरियजमगसमगपडुप्पवादितरवेणं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिमुरवमुयंगदुंदुहिहुडुक्कणिग्घोससंनिनादितरवेणं महता महता इंदाभिसेगेणं अभिसिंचंति ॥ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स महता महता इंदाभिसेगंसि वट्टमाणंसि अप्पेगतिया देवा णच्चोदगं णातिमट्टियं पविरलफुसियं दिव्वं सुरभिं रयरेणुविणासणं गंधोदगवासं

वासंति, अप्पेगतिया देवा णिहतरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं रायहाणिं सब्भिंतरबाहिरियं आसितसम्मज्जितोवलित्तं सित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं रायहाणिं मंचातिमंचकलितं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं रायहाणिं णाणाविहरागरंजियऊसियजयविजयवेजयन्तीपडागातिपडागमंडितं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं रायहाणिं लाउल्लोइयमहियं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं गोसीससरससरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितलं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं आसत्तोसत्तविपुलवट्टवग्घारितमल्लदामकलावं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलितं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेंति, अप्पेगइया देवा हिरण्णवासं वासंति, अप्पेगइया देवा सुवण्णवासं वासंति, अप्पेगइया देवा एवं रयणवासं वइरवासं पुप्फवासं मल्लवासं गंधवासं चुण्णवासं वत्थवासं आहरणवासं, अप्पेगइया देवा हिरण्णविधिं भाइंति, एवं सुवण्णविधिं रयणविधिं वतिरविधिं पुप्फविधिं मल्लविधिं चुण्णविधिं गंधविधिं वत्थविधिं भाइंति आभरणविधिं ॥ अप्पेगतिया देवा दुयं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया

विलंबितं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा दुतविलंबितं णाम णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा अंचियं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा रिभितं णट्टविधिं उवदंसेंति अ० अंचितरिभितं णाम दिव्वं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा आरभडं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा भसोलं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा आरभडभसोलं णाम दिव्वं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा उप्पायणिवायपवुत्तं संकुचियपसारियं रियारियं भंतसंभंतं णाम दिव्वं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा चउव्विधं वातियं वादेंति, तंजहा—ततं विततं घणं झुसिरं, अप्पेगतिया देवा चउव्विधं गेयं गातंति, तंजहा—उक्खित्तयं पवत्तयं मंदायं रोइदावसाणं, अप्पेगतिया देवा चउव्विधं अभिणयं अभिणयंति, तंजहा—दिट्ठंतियं पाडंतियं सामन्तोवणिवातियं लोगमज्झावसाणियं, अप्पेगतिया देवा पीणंति अप्पेगतिया देवा बुक्कारेंति अप्पेगतिया देवा तंडवेंति अप्पे० लासेंति अप्पेगतिया देवा पीणंति बुक्कारेंति तंडवेंति लासेंति अप्पेगतिया देवा बुक्कारेंति अप्पेगतिया देवा अप्फोडंति अप्पेगतिया देवा वग्गंति अप्पेगतिया देवा तिवतिं छिंदंति अप्पेगतिया देवा अप्फोडेंति वग्गंति तिवतिं छिंदेंति अप्पेगतिया देवा हतहेसियं करेंति अप्पेगतिया देवा हत्थिगुलगुलाइयं करेंति अप्पेगतिया देवा रहघणघणातियं करेंति अप्पेगतिया देवा हयहेसियं करेंति हत्थिगुलगुलाइयं करेंति रहघणघणाइयं करेंति

अप्पेगतिया देवा उच्छोलेंति अप्पेगतिया देवा पच्छोलेंति [अप्पेगतिया देवा उक्किट्ठिं करेंति] अप्पेगतिया देवा उक्किट्ठीओ करेंति अप्पेगतिया देवा उच्छोलेंति पच्छोलिंति उक्किट्ठिओ करेंति अप्पेगतिया देवा सीहणादं करेंति अप्पेगतिया देवा पाददद्दरयं करेंति अप्पेगतिया देवा भूमिचवेडं दलयंति अप्पेगतिया देवा सीहनादं पाददद्दरयं भूमिचवेडं दलयंति, अप्पेगतिया देवा हक्कारेंति अप्पेगतिया देवा वुक्कारेंति अप्पेगतिया देवा थक्कारेंति अप्पे० पुक्कारेंति अप्पेगतिया देवा नामाइं सावेंति अप्पेगतिया देवा हक्कारेंति वुक्कारेंति थक्कारेंति पुक्कारेंति णामाइं सावेंति अप्पेगतिया देवा उप्पतंति अप्पेगतिया देवा णिवयंति अप्पेगतिया देवा परिवयंति अप्पेगतिया देवा उप्पयंति णिवयंति परिवयंति अप्पेगतिया देवा जलेंति अप्पेगतिया देवा तवंति अप्पेगतिया देवा पतवंति अप्पेगतिया देवा जलंति तवंति पतवंति अप्पेगइया देवा गज्जेंति अप्पेगइया देवा विज्जुयायंति अप्पेगइया देवा वासंति अप्पेगइया देवा गज्जंति विज्जुयायंति वासंति अप्पेगतिया देवा देव सन्निवायं करेंति अप्पेगतिया देवा देवुक्कलियं करेंति अप्पेगइया देवा देवकहकहं करेंति- अप्पेगतिया देवा दुहदुहं करेंति अप्पेगतिया देवा देवसन्निवायं देवउक्कलियं देवकहकहं देवदुहदुहं करेंति अप्पेगतिया देवा देवुज्जोयं करेंति अप्पेगतिया देवा विज्जुयारं करेंति अप्पेगतिया देवा चेलुक्खेवं करेंति अप्पेगतिया देवा देवुज्जोयं विज्जुतारं चेलुक्खेवं करेंति अप्पेगतिया देवा उप्प-

लहत्थगता जाव सहस्सपत्त० घंटाहत्थगता कलसहत्थगता जाव धूवकडुच्छहत्थगता हट्ठ तुट्ठा जाव हरिसवसविसप्पमाणहियया विजयाए रायहाणीए सव्वतो समंता आधावेंति परिधावेंति ॥ तए णं तं विजयं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ जाव सोलसआयरक्खदेवसाहस्सीओ अण्णे य बहवे विजयरायहाणीवत्थव्वा वाणमंतरा देवा य देवीओ य तेहिं वरकमलपतिट्ठाणेहिं जाव अट्ठसतेणं सोवण्णियाणं कलसाणं तं चेव जाव अट्ठसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदगेहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं सव्वपुप्फेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए जाव निग्घोसनाइयरवेणं महया २ इंदाभिसेएणं अभिसिंचंति २ पत्तेयं २ सिरसावत्तं अंजलिं कट्टु एवं वयासि—जय जय नंदा! जय जय भद्दा! जय जय नंद भद्दं ते अजियं जिणेहि जियं पालयाहि अजितं जिणेहि सत्तुपक्खं जितं पालेहि मित्तपक्खं जियमज्झे वसाहि तं देव! निरुवसग्गं इंदो इव देवाणं चंदो इव ताराणं चमरो इव असुराणं धरणो इव नागाणं भरहो इव मणुयाणं बहूणि पलिओवमाइं बहूणि सागरोवमाणि चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव आयरक्खदेवसाहस्सीणं विजयस्स देवस्स विजयाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं विजयरायहाणिवत्थव्वाणं वाणमंतराणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहराहित्तिकट्टु महता २ सद्देणं जयजयसद्दं पउंजंति ॥ (सू० १४१) ॥

'तेणं कालेणं तेणं समएणं' इत्यादि, तस्मिन् काले तस्मिन् समये विजयो देव उपपातसभायां देवशयनीये देवदूष्यान्तरिते प्रथमतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रयाऽवगाहनया समुत्पन्नः ॥ 'तए णं'मित्यादि, सुगमं नवरमिह भाषामनःपर्याप्त्योः समाप्तिकालान्तरस्य प्रायः शेषपर्याप्तिकालान्तरापेक्षया स्तोकत्वादेकत्वेन विवक्षणमिति 'पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ' इत्युक्तम् ॥ 'तए णं'मित्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य पञ्चविधया पर्याप्त्या पर्याप्तभावं गतस्य सतोऽयम्—एतद्रूपः संकल्पः समुदपद्यत, कथम्भूतः? इत्याह—'मनोगतः' मनसि गतो—व्यवस्थितो नाद्यापि वचसा प्रकाशितस्वरूप इति भावः, पुनः कथम्भूतः? इत्याह—'आध्यात्मिकः' आत्मन्यधि अध्यात्मं तत्र भव आध्यात्मिक आत्मविषय इति भावः, सङ्कल्पश्च द्विधा भवति—कश्चिद्ध्यानात्मकोऽपरश्च चिन्तात्मकः, तत्रायं चिन्तात्मक इति प्रतिपादनार्थमाह—'चिन्तितः' चिन्ता संजाताऽस्मिन्निति चिन्तितश्चिन्तात्मक इति भावः, सोऽपि कश्चिदभिलाषात्मको भवति कश्चिदन्यथा, तत्रायमभिलाषात्मकस्तथा चाह—प्रार्थनं प्रार्थो णिजन्तादच् प्रार्थः संजातोऽस्मिन्निति प्रार्थितोऽभिलाषात्मक इति भावः, किंरूपः? इत्याह—'किं मे' इत्यादि, किं 'मे' मम पूर्वं करणीयं किं मे पश्चात्करणीयं, तथा किं मे पूर्वं कर्तुं श्रेयः किं मे पश्चात्कर्तुं श्रेयः, तथा किं मे पूर्वमपि च पश्चादपि च हिताय भावप्रधानोऽयं निर्देशो हितत्वाय—परिणामसुन्दरत्वाय सुखाय—शर्मणे क्षेमायेति भवत्यपि भावप्रधानो निर्देशः संगतत्वाय, निःश्रेयसाय—निश्चितकल्याणाय अनुगामिकतायै—परम्परया शुभानुबन्धसुखाय भविष्यतीति ॥ 'तए णं'मित्यादि, 'ततः' एतच्चिन्तासमनन्तरमेव दिव्यानुभावतो विजयस्य देवस्य 'सामाणियपरिसोववन्नगा देवा' इति सामानिकाः पर्षदुपपन्नकाश्च—अभ्यन्तरादिपर्षदुपगताः 'इमम्' अनन्तरोक्तम् 'एतद्रूपम्' अनन्तरोदितस्वरूपमाध्यात्मिकं चिन्तितं प्रार्थितं मनोगतं सङ्कल्पं समभिज्ञाय 'जेणेवे'ति यत्रैव विजयो देवस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागम्य च

'**करयलपरिग्गहियं**'मित्यादि द्वयोर्हस्तयोरन्योऽन्यान्तरिताङ्गुलिकयोः संपुटरूपतया यदेकत्र मीलनं सा अञ्जलिस्तां करतलाभ्यां परिगृहीता—निष्पादिता करतलपरिगृहीता ताम्, आवर्त्तनमावर्त्तः शिरस्यावर्त्तो यस्याः सा शिरस्यावर्त्ता, कण्ठेकाल उरसिलोमेत्यादिवद्लुक्समासः, तामत एव मस्तके कृत्वा जयेन विजयेन वर्द्धापयन्ति—जय त्वं देव! विजय त्वं देव! इत्येवं वर्द्धापयन्तीत्यर्थः, तत्र जयः—परैरनभिभूयमानता प्रतापवृद्धिश्च, विजयस्तु—परेषामसहमानानामभिभवोत्पादः, जयेन विजयेन च वर्द्धापयित्वा एवमवादिषुः—'एवं खलु देवाणुप्पियाण'मित्यादि पाठसिद्धम् ॥ '**तए णं**'मित्यादि, '**ततः**' एतद्वचनानन्तरं विजयो देवस्तेषां सामानिकपर्षदुपपन्नकानां—सामानिकानां पर्षदुपपन्नकानां च देवानामन्तिके एनमर्थं '**श्रुत्वा**' आकर्ण्य '**निशम्य**' हृदये परिणमय्य '**हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए**' इति हृष्टतुष्टोऽतीव तुष्ट इति भावः, अथवा हृष्टो नाम विस्मयमापन्नो यथा शोभनमहो! एतैरुपदिष्टमिति, '**तुष्टः**' तोषं कृतवान् यथा भव्यसभूद् यदेतैरित्थमुपदिष्टमिति, तोषवशादेव चित्तमानन्दितं—स्फीतीभूतं 'टुणदु समृद्धौ' इति वचनात्, यस्य स चित्तानन्दितः, भार्यादिदर्शनात्पाक्षिको निष्ठान्तस्य परनिपातः मकारः प्राकृतत्वादलाक्षणिकस्ततः पदत्रयस्य पदद्वय २ मीलनेन कर्म्मधारयः, '**पीइमणे**' इति प्रीतिर्मनसि यस्यासौ प्रीतिमना जिनप्रतिमाऽर्चनविषयबहुमानपरायणमना इति भावः, ततः क्रमेण बहुमानोत्कर्षवशात् '**परमसोमणस्सिए**' इति शोभनं मनो यस्यासौ सुमनास्तस्य भावः सौमनस्यं परमं च तत् सौमनस्यं च परमसौमनस्यं तत्संजातमस्मिन्निति परमसौमनस्यितः, एतदेव व्यक्तीकुर्वन्नाह—'**हरिसवसविसप्पमाणहियए**' हर्षवशेन विसर्पद्—विस्तारयायि हृदयं यस्य स हर्षवशविसर्पद्धृदयः देवशयनीयादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय च देवदूष्यं परिधत्ते, परिधाय च उपपातसभातः पूर्वद्वारेण निर्गच्छति, निर्गत्य च यत्रैव प्रदेशे ह्रदस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य ह्रदमनुप्रदक्षिणीकृत्य पूर्वेण तोरणेन ह्रदमनुप्रविशति, प्रविश्य च

ह्रदे प्रत्यवरोहति, मध्ये प्रविशतीति भावः, प्रत्यवरुह्य च ह्रदमवगाहते, अवगाह्य जलमज्जनं करोति, कृत्वा च क्षणमात्रं जलक्रीडां करोति, ततः 'आयंते' इति नवानामपि श्रोतसां शुद्धोदकप्रक्षालनेनाऽऽचान्तो—गृहीताचमनश्चोक्षः—स्वल्पस्यापि शङ्कितमलस्यापनयनात्, अत एव परमशुचिभूतो ह्रदात् प्रत्युत्तरति, प्रत्युत्तीर्य यत्रैव प्रदेशेऽभिषेकसभा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्याभिषेकसभामनुप्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वद्वारेणानुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव मणिपीठिका यत्रैव च मणिपीठिकाया उपरि सिंहासनं तत्रोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः ॥ 'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य सामानिकाः पर्षदुपपन्नकाश्च देवाः 'आभियोगिकान्' अभियोजनमभियोगः, प्रेष्यकर्म्मणि व्यापार्यमाणत्वमिति भावः, अभियोगे नियुक्ता आभियोगिकास्तान् देवान् 'शब्दायन्ते' आकारयन्ति, शब्दायित्वा च तानेवमवादिषुः—'क्षिप्रमेव' शीघ्रमेव भो देवानां प्रियाः! विजयस्य देवस्य 'महार्थं' महान् अर्थो—मणिकनकरत्नादिक उपयुज्यमानो यस्मिन् स महार्थस्तं महार्थं, तथा महान् अर्घः—पूजा यत्र स महार्घस्तं, महं—उत्सवमर्हतीति महार्हस्तं 'विपुलं' विस्तीर्णं शक्राभिषेकवद् इन्द्राभिषेकमुपस्थापयत ॥ 'तए णं ते' इत्यादि, ततस्ते आभियोगिका देवाः सामानिकपर्षदुपपन्नकैर्देवैरेवमुक्ताः 'हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु' इति पूर्ववत्, विनयेन वचनं 'प्रतिशृण्वन्ति' अभ्युपगच्छन्ति, कथम्भूतेन विनयेन? इत्याह—'एवं देवा तहत्ति आणाए' इति हे देवाः! एवं—यथैव यूयमादिशत तथैवाज्ञया—युष्मदादेशेन कुर्म्म इत्येवंरूपेण प्रतिश्रुत्य वचनमुत्तरपूर्वं दिग्भागमीशानकोणमित्यर्थः तस्यात्यन्तप्रशस्तत्वात् 'अपक्रामन्ति' गच्छन्ति अपक्रम्य च वैक्रियसमुद्घातेन—वैक्रियकरणाय प्रयत्नविशेषेण 'समोहणंति' समवहन्यन्ते समवहता भवन्तीत्यर्थः, समवहताश्चात्मप्रदेशान् दूरतो विक्षिपन्ति, तथा चाह—'संखेज्जाणि जो-

यणाणि दंडं निसरंति' दण्ड इव दण्ड ऊर्द्धाधआयतः शरीरबाहल्यो जीवप्रदेशसमूहस्तं शरीरस्य वहिः सङ्ख्येयानि योजनानि यावत् **'निसृजन्ति'** निष्काशयन्ति, निसृज्य च तथाविधान् पुद्गलानाददते, एतदेव दर्शयति—तद्यथा—'रत्नानां' कर्केतनादीनां १ वज्राणां २ वैडूर्याणां ३ लोहिताक्षाणां ४ मसारगल्लानां ५ हंसगर्भाणां ६ पुलकानां ७ सौगन्धिकानां ८ ज्योतीरसानाम् ९ अञ्जनानाम् १० अञ्जनपुलकानां ११ रजतानां १२ जातरूपाणाम् १३ अङ्कानां १४ स्फटिकानां १५ रिष्टानां १६, यथाबादरान्—असारान् पुद्गलान् परिशातयन्ति यथासूक्ष्मान्—सारान् पुद्गलान् पर्याददते, पर्यादाय च चिकीर्षितरूपनिर्माणार्थं द्वितीयमपि वारं वैक्रियसमुद्घातेन **समवहन्यन्ते** समवहत्य यथोक्तानां रत्नादीनां योग्यान् यथाबादरान् पुद्गलान् परिशातयन्ति यथासूक्ष्मानाददते आदाय च **'अष्टसहस्रम्'** अष्टाधिकं सहस्रं सौवर्णिकानां कलशानां विकुर्वन्ति १ अष्टसहस्रं रूप्यमयानाम् २ अष्टसहस्रं मणिमयानाम् ३ अष्टसहस्रं सुवर्णरूप्यमयानाम् ४ अष्टसहस्रं सुवर्णमणिमयानाम् ५ अष्टसहस्रं रूप्यमणिमयानाम् ६ अष्टसहस्रं सुवर्णरूप्यमणिमयानाम् ७ अष्टसहस्रं भौमेयानाम् ८ अष्टसहस्रं भृङ्गाराणाम् ९, एवमादर्शस्थालपात्रीसुप्रतिष्ठमनोगुलिकावातकरकचित्ररत्नकरण्डकपुष्पचङ्गेरीयावल्लोमहस्तचङ्गेरीपुष्पपटलकयावल्लोमहस्तकपटलकसिंहासनच्छत्रचामरसमुद्गकध्वजधूपकडुच्छुकानां प्रत्येकं प्रत्येकमष्टसहस्रं विकुर्वन्ति, विकुर्वित्वा 'ताए उक्किट्ठाए' इत्यादि पूर्वं व्याख्यातार्थं यत्रैव क्षीरोदसमुद्रस्तत्रागच्छन्ति, आगत्य च क्षीरोदकं गृह्णन्ति, यानि च तत्र उत्पलानि पद्मानि कुमुदानि नलिनानि सुभगानि सौगन्धिकानि पुण्डरीकाणि महापुण्डरीकाणि शतपत्राणि सहस्रपत्राणि शतसहस्रपत्राणि च तानि गृह्णन्ति, गृहीत्वा पुष्करोदे समुद्रे समागत्य तत्रोदकमुत्पलादीनि च गृह्णन्ति, तदनन्तरं यत्रैव समयक्षेत्रं यत्रैव भरतैरावतानि क्षेत्राणि यत्रैव च तेषु भरतैरावतेषु वर्षेषु मागधवरदामप्रभासाख्यानि तीर्थानि तत्रैवोपागत्य तीर्थोदकं तीर्थमृत्तिकां च गृह्णन्ति, ततो गङ्गा-

सिन्धुरक्तारक्तवतीषु महानदीषु नद्युदकमुभयतटमृत्तिकां च गृह्णन्ति, ततः क्षुल्लहिमवच्छिखरिषु समागत्य सर्वतुबरान्—कषायान् सर्वाणि जातिभेदेन पुष्पाणि सर्वान् '**गन्धान्**' गन्धवासादीन् सर्वाणि माल्यानि—ग्रथितादिभेदभिन्नानि सर्वौषधीः सिद्धार्थकांश्च गृह्णन्ति, गृहीत्वा तदनन्तरं पद्मह्रदपुण्डरीकह्रदेषूपागत्य तदुदकमुत्पलादीनि च गृह्णन्ति, ततो हैमवतैरण्यवतेषु वर्षेषु रोहितारोहितांशासुवर्णकूलारूप्यकूलासु महानदीषु नद्युदकमुभयतटमृत्तिकां तदनन्तरं शब्दापातिविकटापातिवृत्तवैताढ्येषु सर्वतुबरादीन् ततो महाहिमवद्रूपिवर्षधरपर्वतेषु सर्वतुबरादीन् ततो महापद्ममहापौण्डरीकह्रदेषु ह्रदोदकमुत्पलादीनि च तदनन्तरं हरिवर्षरम्यकवर्षेषु हरकान्ताहरिकान्तानरकान्तानारीकान्तासु महानदीषु सलिलोदकम् उभयतटमृत्तिकां च ततो गन्धापातिमाल्यवत्पर्यायवृत्तवैताढ्येषु सर्वतुबरादीन् ततो निषधनीलवर्षधरपर्वतेषु सर्वतुबरादीन् तदनन्तरं तद्गतेषु तिगिञ्छिकेसरिमहाह्रदेषु ह्रदोदकमुत्पलादीनि च ततः पूर्वविदेहापरविदेहेषु शीताशीतोदामहानदीषु नद्युदकम् उभयतटमृत्तिकां च तदनन्तरं सर्वेषु चक्रवर्त्तिविजेतव्येषु मागधवरदामप्रभासाख्यतीर्थेषु तीर्थोदकानि तीर्थमृत्तिकाश्च ततः सर्वेषु वक्षस्कारपर्वतेषु सर्वतुबरादीन् तदनन्तरं सर्वास्वन्तरनदीषु नद्युदकमुभयतटमृत्तिकाश्च ततो मन्दरपर्वते भद्रशालवने सर्वतुबरादीन् ततो नन्दनवने सर्वतुबरादीन् सरसं च गोशीर्षचन्दनं ततः सौमनसवने सर्वतुबरादीन् सरसं च गोशीर्षचन्दनं दिव्यं च सुमनोदाम गृह्णन्ति, ततः पण्डकवने सर्वतुबरपुष्पगन्धमाल्यसरसगोशीर्षचन्दनदिव्यसुमनोदामानि '**ददरमलए सुगंधिए य गिण्हंति**' इति दर्दरः—चीवरावनद्धकुण्डिकादिभाजनमुखं तेन गालितं तत्र पक्वं वा यन्मलयोद्भवतया प्रसिद्धत्वान्मलयं—श्रीखण्डं येषु तान् 'सुगन्धान्' परमगन्धोपेतान् गन्धान् गृह्णन्ति, गृहीत्वा एकत्र मिलन्ति, मिलित्वा तया उत्कृष्टया दिव्यया देवगत्या यत्रैव विजया राजधानी यत्रैव विजयो देवस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च करतलपरिगृहीतां शिरस्यावर्त्तिकां मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा विजयं देवं जयेन

विजयेन वर्द्धापयन्ति, वर्द्धापयित्वा महार्थं महार्घं महार्हं विपुलमिन्द्राभिषेकयोग्यं क्षीरोदकादि 'उपनयन्ति' समर्पयन्ति ॥ 'तए णं'-मित्यादि, ततो णमिति वाक्यालङ्कारे तं विजयं देवं चत्वारि देवसामानिकसहस्राणि चतस्रोऽग्रमहिष्यः सपरिवारास्तिस्रः पर्षदो यथाक्रममष्टदशद्वादशदेवसहस्रपरिमाणाः सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयः षोडश आत्मरक्षदेवसहस्राणि, अन्ये च बहवो विजयराजधानीवास्तव्या वानमन्तरा देवा देव्यश्च तैः—तद्गतदेवजनप्रसिद्धैः स्वाभाविकैर्वैकुर्विकैश्च वरकमलप्रतिष्ठानैः सुरभिवरवारिप्रतिपूर्णैश्चन्दनकृतचर्चाकैः 'आविद्धकण्ठेगुणैः' आरोपितकण्ठे रक्तसूत्रतन्तुभिः पद्मोत्पलपिधानैः सुकुमारकरतलपरिगृहीतैरनेकसहस्रसङ्ख्यैः कलशैरिति गम्यते, तानेव विभागतो दर्शयति—अष्टसहस्रेण सौवर्णिकानां कलशानाम्, अष्टसहस्रेण रूप्यमयानाम्, अष्टसहस्रेण मणिमयानाम्, अष्टसहस्रेण सुवर्णरूप्यमयानाम्, अष्टसहस्रेण सुवर्णमणिमयानाम्, अष्टसहस्रेण रूप्यमणिमयानाम्, अष्टसहस्रेण सुवर्णरूप्यमणिमयानाम्, अष्टसहस्रेण भौमेयानां, सर्वसङ्ख्ययाऽष्टभिः सहस्रैश्चतुःषष्ठ्यधिकैः, तथा 'सर्वोदकैः' सर्वतीर्थनद्याद्युदकैः सर्वतुवरैः सर्वपुष्पैः सर्वगन्धैः सर्वमाल्यैः सर्वौषधिसिद्धार्थकैश्च 'सर्वर्द्ध्या' परिवारादिकया 'सर्वद्युत्या' यथाशक्ति विस्फारितेन शरीरतेजसा 'सर्वबलेन' सामस्त्येन स्वस्वहस्त्यादिसैन्येन 'सर्वसमुदयेन' स्वस्वाभियोग्यादिसमस्तपरिवारेण 'सर्वादरेण' समस्तयावच्छक्तितोलनेन 'सर्वविभूत्या' स्वस्वाभ्यन्तरवैक्रियकरणादिबाह्यरत्नादिसम्पदा, तथा 'सर्वविभूषया' यावच्छक्तिस्फारोदारशृङ्गारकरणेन 'सव्वसंभमेणं'ति सर्वोत्कृष्टेन संभ्रमेण, सर्वोत्कृष्टसंभ्रमो नाम इह स्वनायकविषयबहुमानख्यापनार्थपरा स्वनायककार्यसम्पादनाय यावच्छक्ति त्वरितत्वरिता प्रवृत्तिः, सर्वपुष्पवस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण, अत्र गन्धा—वासा माल्यानि—पुष्पदामानः अलङ्कारा—आभरणानि ततः समाहारो द्वन्द्वः, ततः सर्वदिव्यत्रुटितानि तेषां शब्दाः सर्वदिव्यत्रुटितशब्दास्तैः सह सर्वशब्देन विशेषणसमासः, 'सव्वदिव्वतुडियसद्दनि-

नाएण'मिति सर्वाणि च तानि दिव्यत्रुटितानि च—दिव्यतूर्याणि च, एषामेकत्र मीलनेन यः संगतो नितरां नादो—महान् घोषः सर्वदिव्यत्रुटितशब्दसंनिनादस्तेन, इह तुल्येष्वपि सर्वशब्दो दृष्टो यथाऽनेन सर्वं पीतं घृतमिति, तत आह—'महया इड्ढीए' इत्यादि, महत्या यावच्छक्तितुलितया 'ऋद्ध्या' परिवारादिकया 'महया जुईए' इत्याद्यपि भावनीयं, तथा महता—स्फूर्त्तिमता वराणां—प्रधानानां त्रुटितानां—आतोद्यानां यमकसमकं—एककालं पटुभिः पुरुषैः प्रवादितानां यो रवस्तेन, एतदेव विशेषेणाचष्टे—'संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कमुरवमुइंगदुंदुहिनिग्घोससंनिनादितरवेणं' शङ्खः प्रतीतः पणवो—भाण्डानां पटहः—प्रतीतः भेरी—ढक्का झल्लरी—चर्मावनद्धा विस्तीर्णा वलयरूपा खरमुही—काहला हुडुक्का—महाप्रमाणो मर्द्दलो मुरजः—स एव लघुर्मृदङ्गो दुन्दुभिः—भेर्याकारा सङ्कटमुखी, तासां द्वन्द्वः, तासां निर्घोषो—महान् ध्वानो नादितं च घण्टायामिव वादनोत्तरकालभावी सततध्वनिस्तल्लक्षणो यो रवस्तेन महता महता इन्द्राभिषेकेणाभिषिञ्चति ॥ 'तए ण'मित्यादि, ततो णमिति पूर्ववत् तस्य विजयस्य देवस्य 'महया' इति अतिशयेन महति इन्द्राभिषेके वर्त्तमानेऽप्येकका देवा विजयां राजधानीं, सप्तम्यर्थे द्वितीया प्राकृतत्वात्ततोऽयमर्थः—विजयायां राजधान्यां नात्युदकं प्रभूतजलसंग्रहभावतो वैरस्योपपत्तेः नातिमृत्तिके अतिमृत्तिकाया अपि कर्दमरूपतायां उत्साहवृद्धिजनकत्वाभावात् 'पविरलफुसिय'मिति प्रविरलानि—घनभावे कर्दमसम्भवात् प्रकर्षेण यावता रेणवः स्थगिता भवन्ति तावन्मात्रेणोत्कर्षेण स्पृष्टानि—स्पर्शनानि यत्र वर्षे तत् प्रविरलस्पृष्टं 'रयरेणुविणासणं'ति श्लक्ष्णतरा रेणुपुद्गला रजस्त एव स्थूला रेणवः रजांसि च रेणवश्च रजोरेणवस्तेषां विनाशनं रजोरेणुविनाशनं 'दिव्यं' प्रधानं सुरभिगन्धोदकवर्षं वर्षन्ति, अप्येकका विजयां राजधानीं समस्तामपि 'निहतरजसं' निहतं रजो यस्यां सा निहतरजास्तां, तत्र निहतत्वं रजसः क्षणमात्रमुत्थानाभावेनापि संभवति तत आह—'नट्ठरजसं' नष्टं—सर्वथाऽदृश्यी-

भूतं रजो यत्र [ग्रन्थाग्रं ७०००] सा नष्टरजास्तां, तथा भ्रष्टं—वातोद्धूततया राजधान्या दूरतः पलायितं रजो यस्याः सा भ्रष्टरजास्ताम्, एतदेवैकार्थिकद्वयेन प्रकटयति—प्रशान्तरजसं उपशान्तरजसं कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीम् 'आसियसंमज्जियोवलित्तं सित्तं सुइसम्मट्ठ[रय]रत्थंतरावणवीहियं करेंति' इति आसिक्तमुदकच्छटेन संमार्जितं कचवरशोधनेन उपलिप्तमिव गोमयादिनोपलिप्तं, तथा सिक्तानि जलेनात एव शुचीनि—पवित्राणि संमृष्टानि—कचवरापनयनेन रथ्यान्तराणि आपणवीथय इव—हट्टमार्गा इव आपणवीथयो रथ्याविशेषाश्च यस्यां सा तथा तां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा मञ्चातिमञ्चकलितां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा नानाविधा विशिष्टा रागा येषु ते नानाविरागा नानाविरागैरुच्छ्रतैः—ऊर्द्धीकृतैर्ध्वजैः पताकातिपताकाभिश्च मण्डितां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा लाउल्लोइयमहितां गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितला कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीमुपचितचन्दनकलशां कुर्वन्ति अप्येकका देवा चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीमासिक्तोत्सक्तविपुलवृत्तवग्घारितमाल्यदामकलापां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीं पञ्चवर्णसुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीं कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपमघमघायमानां गन्धोद्धुताभिरामां सुगन्धवरगन्धगन्धिकां गन्धवर्त्तिभूतां कुर्वन्ति, एतेषां च पदानां व्याख्यानं पूर्ववत्, अप्येकका देवा हिरण्यवर्षं वर्षन्ति, अप्येककाः सुवर्णवर्षमप्येकका आभरणवर्षं (रत्नवर्षमप्येकका वज्रवर्षमप्येककाः) पुष्पवर्षमप्येकका माल्यवर्षमप्येककाश्चूर्णवर्षं वस्त्रवर्षं (आभरणवर्षं) वर्षन्ति, अप्येकका देवा हिरण्यविधिं—हिरण्यरूपं मङ्गलप्रकारं 'भाजयन्ति' विश्राणयन्ति शेषदेवेभ्यो ददतीति भावः, एवं सुवर्णरत्नाभरणपुष्पमाल्यगन्धचूर्णवस्त्रविधिभाजनमपि भावनीयम् ॥ 'अप्पेगइया देवा दुयं नट्टविहिं उवदंसेंति' इत्यादि, इह द्वात्रिंशन्नाट्यविधयः, ते च येन क्रमेण

भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः पुरतः सूर्याभदेवेन भाविता राजप्रश्नीयोपाङ्गे दर्शितास्तेन क्रमेण विनेयजनानुग्रहार्थमुपदर्श्यन्ते, तत्र स्वस्तिकश्रीवत्सनन्द्यावर्त्तवर्द्धमानकभद्रासनकलशमत्स्यदर्पणरूपाष्टमङ्गलाकाराभिनयात्मकः प्रथमो नाट्यविधिः १, द्वितीय आवर्त्तप्रत्यावर्त्तश्रेणिप्रतिश्रेणिस्वस्तिकपुष्पमाणवकवर्द्धमानकमत्स्याण्डकमकराण्डकजारमारपुष्पावलिपद्मपत्रसागरतरङ्गवासन्तीलतापद्मलताभक्तिचित्राभिनयात्मकः २, तृतीय ईहामृगऋषभतुरगनरमकरविहगव्यालकिन्नररुरुसरभचमरकुञ्जरवनलतापद्मलताभक्तिचित्रात्मकः ३, चतुर्थ एकतोच(तश्च)क्रद्विधातोच(तश्च)क्रएकतश्चक्रवालद्विधातश्चक्रवालचक्रार्द्धचक्रवालाभिनयात्मकः ४, पञ्चमश्चन्द्रावलिप्रविभक्तिसूर्यावलिप्रविभक्तिवलयावलिप्रविभक्तिहंसावलीप्रविभक्तितारावलिप्रविभक्तिमुक्तावलिप्रविभक्तिरत्नावलिप्रविभक्तिपुष्पावलिप्रविभक्तिनामा ५, षष्ठश्चन्द्रोद्गमप्रविभक्तिसूर्योद्गमप्रविभक्त्यभिनयात्मक उद्गमनोद्गमनप्रविभक्तिनामा ६, सप्तमश्चन्द्रागमनसूर्यागमनप्रविभक्त्यभिनयात्मक आगमनागमनप्रविभक्तिनामा ७, अष्टमश्चन्द्रावरणप्रविभक्तिसूर्यावरणप्रविभक्त्यभिनयात्मक आवरणावरणप्रविभक्तिनामा ८, नवमश्चन्द्रास्तमयनप्रविभक्तिसूर्यास्तमयनप्रविभक्त्यभिनयात्मकोऽस्तमयनास्तमयनप्रविभक्तिनामा ९, दशमश्चन्द्रमण्डलप्रविभक्तिसूर्यमण्डलप्रविभक्तिनागमण्डलप्रविभक्तियक्षमण्डलप्रविभक्तिभूतमण्डलप्रविभक्त्यभिनयात्मको मण्डलप्रविभक्तिनामा १०, एकादश ऋषभमण्डलप्रविभक्तिसिंहमण्डलप्रविभक्तिहयविलम्बितगजविलम्बितहयविलसितगजविलसितमत्तहयविलसितमत्तगजविलसितमत्तहयविलम्बितमत्तगजविलम्बिताभिनयो द्रुतविलम्बितनामा ११, द्वादशः सागरप्रविभक्तिनागप्रविभक्त्यभिनयात्मकः सागरनागप्रविभक्तिनामा १२, त्रयोदशो नन्दाप्रविभक्तिचम्पाप्रविभक्त्यभिनयात्मको नन्दाचम्पाप्रविभक्त्यात्मकः १३, चतुर्दशो मत्स्याण्डकप्रविभक्तिमकराण्डकप्रविभक्तिजारप्रविभक्तिमारप्रविभक्त्यभिनयात्मको मत्स्याण्डकमकराण्डकजारमारप्रविभक्तिनामा १४, पञ्चदशः क इति ककारप्रविभक्तिः ख इति खकारप्रविभ-

क्तिर्गं इति गकारप्रविभक्तिर्घं इति घकारप्रविभक्तिर्ङं इति ङकारप्रविभक्तिरित्येवं क्रमभाविककारादिप्रविभक्त्यभिनयात्मकः ककारखकारगकारघकारङकारप्रविभक्तिनामा १५, एवं षोडशश्चकारछकारजकारझकारञकारप्रविभक्तिनामा १६, सप्तदशः टकारठकारडकारढकारणकारप्रविभक्तिनामा १७, अष्टादशस्तकारथकारदकारधकारनकारप्रविभक्तिनामा १८, एकोनविंशतितमः पकारफकारबकारभकारमकारप्रविभक्तिनामा १९, विंशतितमोऽशोकपल्लवप्रविभक्त्याम्रपल्लवप्रविभक्तिजम्बूपल्लवप्रविभक्तिकोशाम्बपल्लवप्रविभक्त्यभिनयात्मकः पल्लव २ प्रविभक्तिनामा २०, एकविंशतितमः पद्मलताप्रविभक्त्यशोकलताप्रविभक्तिचम्पकलताप्रविभक्तिचूतलताप्रविभक्तिवनलताप्रविभक्तिवासन्तीलताप्रविभक्त्यतिमुक्तलताप्रविभक्तिश्यामलताप्रविभक्त्यभिनयात्मको लताप्रविभक्तिनामा २१, द्वाविंशतितमो द्रुतनामा २२, त्रयोविंशतितमो विलम्बितनामा २३, चतुर्विंशतितमो द्रुतविलम्बितनामा २४, पञ्चविंशतितमः अञ्चितनामा २५, षड्विंशतितमो रिभितनामा २६, सप्तविंशतितमोऽञ्चितरिभितनामा २७, अष्टाविंशतितम आरभटनामा २८, एकोनत्रिंशत्तमो भसोलनामा २९, त्रिंशत्तम आरभटभसोलनामा ३०, एकत्रिंश उत्पातनिपातप्रसक्तसंकुचितप्रसारितरेकरचितभ्रान्तसंभ्रान्तनामा ३१ द्वात्रिंशत्तमस्तु चरमचरमनामानिबद्धनामा, स च सूर्याभदेवेन भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः पुरतो भगवतश्चरमपूर्वमनुष्यभवचरमदेवलोकभवचरमच्यवनचरमगर्भसंहरणचरमभरतक्षेत्रावसर्प्पिणीतीर्थकरजन्माभिषेकचरमबालभावचरमयौवनचरमकामभोगचरमनिष्क्रमणचरमतपश्चरणचरमज्ञानोत्पादचरमतीर्थप्रवर्त्तनचरमपरिनिर्वाणाभिनयात्मको भावितः ३२ । तत्रैतेषां द्वात्रिंशतो नाट्यविधीनां मध्ये कांश्चन नाट्यविधीनुपन्यस्यति—अप्येकका देवाः द्रुतं—द्रुतनामकं द्वाविंशतितमं नाट्यविधिमुपदर्शयन्ति, एवमप्येकका विलम्बितं नाट्यविधिमुपदर्शयन्ति, अप्येकका द्रुतविलम्बितं नाट्यविधिं, अप्येकका अञ्चितं नाट्यविधिं, अप्येकका रिभितं नाट्यविधिं, अप्येकका अ-

ञ्चितरिभितं नाट्यविधिं, अप्येकका आरभटं नाट्यविधिं, अप्येकका भसोलं नाट्यविधिं, अप्येकका आरभटभसोलं नाट्यविधिमुपदर्शयन्ति, अप्येकका देवा उत्पातनिपातम् उत्पातपूर्वो निपातो यस्मिन् स उत्पातनिपातस्तं; एवं निपातोत्पातं सङ्कुचितप्रसारितं 'रियारियं'मिति गमनागमनं भ्रान्तसम्भ्रान्तं नाम, नाट्यविधिं—सामान्यतो नर्त्तनविधिं द्वात्रिंशद्विध्युत्तीर्णमुपदर्शयन्ति । अप्येकका देवाश्चतुर्विधं वाद्यं वादयन्ति, तद्यथा—'ततं' मृदङ्गपटहादि 'विततं' वीणादिकं 'घनं' कंसिकादि 'शुषिरं' काहलादि, अप्येकका देवाश्चतुर्विधं गेयं गायन्ति, तद्यथा—'उत्क्षिप्तं' प्रथमतः समारभ्यमाणं 'प्रवृत्तम्' उत्क्षेपावस्थातो विक्रान्तं मनाग्भरेण प्रवर्त्तमानं मन्दायमिति—मध्यभागे मूर्छनादिगुणोपेततया मन्दं मन्दं घोलनात्मकं 'रोचितावसान'मिति रोचितं—यथोचितलक्षणोपेततया भावितं सत्यापितमितियावद् अवसानं यस्य तद् रोचितावसानं । अप्येककाश्चतुर्विधमभिनयमभिनयन्ति, तद्यथा—दार्ष्टान्तिकं प्रतिश्रुतिकं सामान्यतोविनिपातिकं लोकमध्यावसानिकमिति, एतेऽभिनयविधयो नाट्यकुशलेभ्यो वेदितव्याः, अप्येकका देवाः 'पीनयन्ति' पीनमात्मानं कुर्वन्ति स्थूला भवन्तीति भावः, अप्येकका देवाः 'ताण्डवयन्ति' ताण्डवरूपं नृत्यं कुर्वन्ति, अप्येकका देवाः 'लास्ययन्ति' लास्यरूपं नृत्यं कुर्वन्ति, अप्येकका देवाः 'छुक्कारेंति' छूत्कारं कुर्वन्ति, अप्येकका देवा एतानि पीनत्वादीनि चत्वार्यपि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा उच्छलन्ति अप्येकका देवाः प्रोच्छलन्ति अप्येकका देवास्त्रिपदिकां छिन्दन्ति अप्येककास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा हयहेषितानि कुर्वन्ति अप्येकका देवा हस्तिगडगडायितं कुर्वन्ति अप्येकका रथघणघणायितं कुर्वन्ति अप्येकका देवास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा आस्फोटयन्ति; भूम्यादिकमिति गम्यते, अप्येकका देवा वल्गन्ति; अप्येकका देवाः सिंहनादं नदन्ति अप्येकका देवाः पाददर्दरकं कुर्वन्ति अप्येकका देवा भूमिचपेटां ददति—भूमिं चपेटयाऽऽस्फाल-

यन्तीति भावः, अप्येकका देवा महता महता शब्देन **'रवन्ते'** शब्दं कुर्वन्ति अप्येकका देवाश्चत्वार्यपि सिंहनादादीनि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा **'हक्कारेंति'** हक्कारं कुर्वन्ति अप्येकका देवाः **'वुक्कारेंति'** मुखेन वुक्कारशब्दं कुर्वन्ति अप्येकका देवाः **'थक्कारेंति'** थक्क इत्येवं महता शब्देन कुर्वन्ति अप्येककास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा अवपतन्ति अप्येकका देवा उत्पतन्ति अप्येकका देवाः परिपतन्ति—तिर्यग्निपतन्तीत्यर्थः अप्येकका देवास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येककाः **'ज्वलन्ति'** ज्वालामालाकुला भवन्ति अप्येकका देवाः **'तपन्ति'** तप्ता भवन्ति अप्येककाः प्रतपन्ति अप्येकका देवास्त्रीण्यपि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा गर्जयन्ति अप्येककाः 'विज्जुयारंति' विद्युतं कुर्वन्ति अप्येकका देवा वर्षं वर्षन्ति अप्येककास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा देवोत्कलिकां कुर्वन्ति—देवानां वातस्येवोत्कलिका देवोत्कलिका तां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा देवकहकहं कुर्वन्ति—प्रभूतानां देवानां प्रमोदभरवशतः स्वेच्छावचनैर्बोलः कोलाहलो देवकहकहस्तं कुर्वन्ति, अप्येकका देवा देवदुहुदुहुकं कुर्वन्ति—दुहुदुहुकमित्यनुकरणवचनमेतत्, अप्येककास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवाश्चेलोत्क्षेपं कुर्वन्ति, अप्येकका देवा वन्दनकलशहस्तगताः—वन्दनकलशा हस्ते गता येषां ते वन्दनकलशहस्तगताः, अप्येकका देवाः भृङ्गारकलशहस्तगताः, एवमादर्शस्थालपात्रीसुप्रतिष्ठकवातकरकचित्ररत्नकरण्डकपुष्पचङ्गेरीयावल्लोमहस्तचङ्गेरीपुष्पपटलकयावल्लोमहस्तपटलकसिंहासनचामरतैलसमुद्गकयावदञ्जनसमुद्गकधूपकडुच्छुकहस्तगताः प्रत्येकमभिलाप्याः, 'हट्ठतुट्ठे'त्यादि यावत्करणात् 'हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीतिमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया' इति परिग्रहः, सर्वतः समन्ताद् आधावन्ति प्रधावन्ति ॥ 'तए णं तं विजयं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ' इत्याद्यभिषेकनिगमनसूत्रमाशीर्वादसूत्रं च पाठसिद्धम् ॥

तए णं से विजए देवे महया २ इंदाभिसेएणं अभिसित्ते समाणे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ सीहासणाओ अब्भुट्ठेत्ता अभिसेयसभातो पुरत्थिमेणं दारेणं पडिनिक्खमति २ त्ता जेणामेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छति २ त्ता आलंकारियसभं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ पुरत्थिमेणं दारेणं अणुपविसति पुरत्थिमेणं दारेणं अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता सीहासणवरगते पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, तए णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति २ एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विजयस्स देवस्स आलंकारियं भंडं उवणेह, तेणेव ते आलंकारियं भंडं जाव उवट्ठवेंति ॥ तए णं से विजए देवे तप्पढमयाए पम्हलसूमालाए दिव्वाए सुरभीए गंधकासाईए गाताइं लूहेति गाताइं लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गाताइं अणुलिंपति सरसेणं गोसीसचंदणेणं गाताइं अणुलिंपेत्ता ततोऽणंतरं च णं नासाणीसासवायवज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हतलालापेलवातिरेगं धवलं कणगखइयंतकम्मं आगासफलिहसरिसप्पभं अहतं दिव्वं देवदूसजुयलं णियंसेइ णियंसेत्ता हारं पिणिद्धेइ हारं पिणिद्धेत्ता एवं एकावलिं पिणिंधति एकावलिं पिणिंधेत्ता एवं एतेणं अभिलावेणं मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं कडगाइं तुडियाइं अंगयाइं केयूराइं दसमुद्दिताणंतकं कडिसुत्तकं तेअत्थिसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं पालंबंसि

कुंडलाइं चूडामणिं चित्तरयणुक्कडं मउडं पिणिंधेइ पिणिंधित्ता गंठिम[1]वेढिमपूरिमसंघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खयंपिव अप्पाणं अलंकियविभूसितं करेति, कप्परुक्खयंपिव अप्पाणं अलंकियविभूसियं करेत्ता दद्दर[2]मलयसुगंधगंधितेहिं गंधेहिं गाताइं सुक्किडति २ त्ता दिव्वं च सुमणदामं पिणिद्धति ॥ तए णं से विजए देवे केसालंकारेणं[3] वत्थालंकारेणं मल्लालंकारेणं आभरणालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकिते विभूसिए समाणे पडिपुण्णालंकारे[4] सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता आलंकारियसभाओ पुरच्छिमिल्लेणं दारेणं पडिनिक्खमति २ त्ता जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छति २ त्ता ववसायसभं अणुप्पदाहिणं करेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति २ त्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता सीहासणवरगते पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे। तते णं तस्स विजयस्स देवस्स आहिओगिया देवा पोत्थयरयणं उवणेंति॥ तए णं से विजए देवे पोत्थयरयणं गेण्हति २ त्ता पोत्थयरयणं मुयति पोत्थयरणं मुएत्ता पोत्थयरयणं विहाडेति पोत्थयरयणं विहाडेत्ता पोत्थयरयणं वाएति पोत्थयरयणं वाएत्ता धम्मियं

---

१ 'गंठिमे'त्यादितो यावत् 'करेत्ता' इत्ययं पाठोऽप्रलिखितसूत्रस्यादावेव दृश्यते व्याख्यानुसारेण. २ अस्य व्याख्या न दृश्यते. ३ 'गंठिमे'त्यादि यावत् 'करेत्ता' इत्ययं पाठ व्याख्या न दृश्यते, 'केसालंकारेणं' इत्यादि यावत् 'विभूसिए समाणे' इत्येतस्य व्याख्याऽपि न दृश्यते। गंठिमे'त्यादि यावत् 'करेत्ता' इत्येतस्य 'पडिपुण्णालंकारे' इत्येतेन सह संबंधो दृश्यते व्याख्यानुसारेण. ४ अयं पुस्तकद्वयेऽप्यत्रैव दृश्यतेऽतोऽहं व्याख्यानुसारेण मूलपाठे कर्तुं न शक्तोऽभूवम्..

ववसायं पगेण्हति धम्मियं ववसायं पगेण्हित्ता पोत्थयरयणं पडिणिक्खिवेइ २ त्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेति २ त्ता ववसायसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति २ त्ता णंदं पुक्खरिणिं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति २ त्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोपाणपडिरूवगएणं पच्चोरुहति २ त्ता हत्थं पादं पक्खालेति २ त्ता एगं महं सेतं रयतामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकितिसमाणं भिंगारं पगिण्हति भिंगारं पगेण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हति २ त्ता णंदातो पुक्खरिणीतो पच्चुत्तरेइ २ त्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ जाव अण्णे य बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य अप्पेगइया उप्पलहत्थगया जाव हत्थगया विजयं देवं पिट्ठतो पिट्ठतो अणुगच्छंति ॥ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स बहवे आभिओगिया देवा देवीओ य कलसहत्थगता जाव धूवकडुच्छुयहत्थगता विजयं देवं पिट्ठतो २ अणुगच्छंति । तते णं से विजए देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहि य बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए सव्वजुत्तीए जाव णिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता सिद्धायतणं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति अणु-

पविसित्ता जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छति २ त्ता आलोए जिणपडिमाणं पणामं करेति २ त्ता लोमहत्थगं गेण्हति लोमहत्थगं गेण्हित्ता जिणपडिमाओ लोमहत्थएणं पमज्जति २ त्ता सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेति २ त्ता दिव्वाए सुरभिगंधकासाइए गाताइं लूहेति २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गाताणि अणुलिंपइ अणुलिंपेत्ता जिणपडिमाणं अहयाइं सेताइं दिव्वाइं देवदूसजुयलाइं णियंसेइ नियंसेत्ता अग्गेहिं वरेहि य गंधेहि य मल्लेहि य अचेति २ त्ता पुप्फारुहणं गंधारुहणं मल्लारुहणं वण्णारुहणं चुण्णारुहणं आभरणारुहणं करेति करेत्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारितमल्लदाम० करेति २ त्ता अच्छेहिं सण्हेहिं [सेएहिं] रययामएहिं अच्छरसातंदुलेहिं जिणपडिमाणं पुरतो अट्ठट्ठमंगलए आलिहति सोत्थियसिरिवच्छ जाव दप्पण अट्ठट्ठमंगलगे आलिहति आलिहित्ता कयग्गाहग्गहितकरतलपब्भट्ठविप्पमुक्केण दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलितं करेति २ त्ता चंदप्पभवइरवेरुलियविमलदंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवगंधुत्तमाणुविद्धं धूमवट्टिं विणिम्मुयंतं वेरुलियामयं कडुच्छुयं पग्गहित्तु पयत्तेण धूवं दाऊण जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं महावित्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं संथुणइ २ त्ता सत्तट्ठ पयाइं ओसरति सत्तट्ठपयाइं ओसरित्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि णिवाडेइ तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणि-

यलंसि णमेइ नमित्ता ईसिं पच्चुण्णमति २ त्ता कडयतुडियथंभियाओ भुयाओ पडिसाहरति २ त्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोऽत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्ताणं तिकट्टु वंदति णमंसति वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छति २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खति २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं मंडलं आलिहति २ त्ता चचए दलयति चचए दलयित्ता कयग्गाहग्गहियकरतलपब्भट्ठविमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयार-कलियं करेति २ त्ता धूवं दलयति २ जेणेव सिद्धायतणस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छति २ त्ता लोमहत्थयं गेण्हइ २ दारचेडीओ य सालिभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जति २ बहुमज्झदेसभाए सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं अणुलिंपति २ चचए दलयति २ पुप्फारुहणं जाव आहरणारुहणं करेति २ आसत्तोसत्तविपुल जाव मल्लदामकलावं करेति २ कयग्गाहग्गहित जाव पुंजोवयारकलितं करेति २ धूवं दलयति २ जेणेव मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छति २ त्ता बहुमज्झदेसभाए लोमहत्थेणं पमज्जति २ दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेति २ सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं मंडलगं आलिहति २ चचए दलयति २ कयग्गाह जाव धूवं दलयति २ जेणेव मुहमंडवगस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव

उवा० लोमहत्थगं गेण्हति २ दारचेडीओ य सालिभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थगेण पमज्जति २ दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेति २ सरसेणं गोसीसचंदणेणं जाव चच्चए दलयति २ आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयति २ जेणेव मुहमंडवगस्स उत्तरिल्ला णं खंभपंती तेणेव उवागच्छइ २ लोमहत्थगं परा० सालभंजियाओ दिव्वाए उदगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं पुप्फारुहणं जाव आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयति जेणेव मुहमंडवस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव दारस्स अच्चणिया जेणेव दाहिणिल्ले दारे तं चेव जेणेव पेच्छाघरमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए जेणेव वइरामए अक्खाडए जेणेव मणिपेढिया जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छति २ लोमहत्थगं गिण्हति लोमहत्थगं गिण्हित्ता अक्खाडगं च सीहासणं च लोमहत्थगेण पमज्जति २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भु० पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयति जेणेव पेच्छाघरमंडवपच्चत्थिमिल्ले दारे दारच्चणिया उत्तरिल्ला खंभपंती तहेव पुरत्थिमिल्ले दारे तहेव जेणेव दाहिणिल्ले दारे तहेव जेणेव चेतियथूभे तेणेव उवागच्छति २ त्ता लोमहत्थगं गेण्हति २ त्ता चेतियथूभं लोमहत्थएणं पमज्जति २ दिव्वाए दग० सरसेण० पुप्फारुहणं आसत्तोसत्त जाव धूवं दलयति २ जेणेव पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव जिणपडिमा तेणेव उवागच्छति जिणपडिमाए आलोए पणामं करेइ २ त्ता लोमहत्थगं गेण्हति २ त्ता तं

चेव सव्वं जं जिणपडिमाणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं वंदति णमंसति, एवं उत्तरिल्लाएवि, एवं पुरत्थिमिल्लाएवि, एवं दाहिणिल्लाएवि, जेणेव चेइयरुक्खा दारविही य मणिपेढिया जेणेव महिंदज्झए दारविही, जेणेव दाहिणिल्ला नंदापुक्खरणी तेणेव उवा० लोमहत्थगं गेण्हति चेतियाओ य तिसोपाणपडिरूवए य तोरणे य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएण पमज्जति २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए सिंचति सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपति २ पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयति २ सिद्धायतणं अणुप्पयाहिणं करेमाणे जेणेव उत्तरिल्ला णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति २ त्ता तहेव महिंदज्झया चेतियरुक्खो चेतियथूभे पचत्थिमिल्ला मणिपेढिया जिणपडिमा उत्तरिल्ला पुरत्थिमिल्ला दक्खिणिल्ला पेच्छाघरमंडवस्सवि तहेव जहा दक्खिणिल्लस्स पचत्थिमिल्ले दारे जाव दक्खिणिल्ला णं खंभपंती मुहमंडवस्सवि तिण्हं दाराणं अच्चणिया भणिऊणं दक्खिणिल्ला णं खंभपंती उत्तरे दारे पुरच्छिमे दारे सेसं तेणेव कमेण जाव पुरत्थिमिल्ला णंदापुक्खरिणी जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ तते णं तस्स विजयस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ एयप्पभितिं जाव सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तं णं सभं सुधम्मं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेणं अणुपविसति २ आलोए जिणसकहाणं पणामं करेति २ जेणेव मणिपेढिया

जेणेव माणवचेतियक्खंभे जेणेव वइरामया गोलवट्टसमुग्गका तेणेव उवागच्छति २ लोमहत्थयं गेण्हति २ त्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए लोमहत्थएण पमज्जइ २ त्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहाडेति २ त्ता जिणसकहाओ लोमहत्थएणं पमज्जति २ त्ता सुरभिणा गंधोदएणं तिसत्तखुत्तो जिणसकहाओ पक्खालेति २ सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ २ त्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहि य अच्चिणति २ त्ता धूवं दलयति २ त्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु पडिणिक्खिवति २ त्ता माणवकं चेतियखंभं लोमहत्थएणं पमज्जति २ दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयति २ पुप्फारुहणं जाव आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयति २ जेणेव सभाए सुधम्माए बहुमज्झदेसभाए तं चेव जेणेव सीहासणे तेणेव जहा दारच्चणिता जेणेव देवसयणिज्जे तं चेव जेणेव खुड्डागे महिंदज्झए तं चेव जेणेव पहरणकोसे चोप्पाले तेणेव उवागच्छति २ पत्तेयं २ पहरणाइं लोमहत्थएणं पमज्जति पमज्जित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं तहेव सव्वं सेसंपि दक्खिणदारं आदिकाउं तहेव णेयव्वं जाव पुरच्छिमिल्ला णंदापुक्खरिणी सव्वाणं सभाणं जहा सुधम्माए सभाए तहा अच्चणिया उववायसभाए णवरि देवसयणिज्जस्स अच्चणिया सेसासु सीहासणाण अच्चणिया हरयस्स जहा णंदाए पुक्खरिणीए अच्चणिया, ववसायसभाए पोत्थयरयणं लोम० दिव्वाए उदगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं

अणुलिंपति अग्गेहिं वरेहिं गंधेहि य मल्लेहि य अच्चिणति २ त्ता [मल्लेहि] सीहासणे लोमहत्थ-
एणं पमज्जति जाव धूवं दलयति सेसं तं चेव णंदाए जहा हरयस्स तहा जेणेव वलिपीढं तेणेव
उवागच्छति २ त्ता अभिओगे देवे सद्दावेति २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणु-
प्पिया! विजयाए रायहाणीए सिंघाडगेसु य तिएसु य चउक्केसु य चच्चरेसु य चतुमुहेसु य
महापहपहेसु य पासाएसु य पागारेसु य अट्टालएसु य चरियासु य दारेसु य गो-
पुरेसु य तोरणेसु य वावीसु य पुक्खरिणीसु य जाव विलपंतिगासु य आरामेसु य उज्जाणेसु
य काणणेसु य वणेसु य वणसंडेसु य वणराईसु य अच्चणियं करेह करेत्ता ममेयमाणत्तियं
खिप्पामेव पच्चप्पिणह। तए णं ते आभिओगिया देवा विजएणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा जाव
हट्टतुट्टा विणएणं पडिसुणेंति २ त्ता विजयाए रायहाणीए सिंघाडगेसु य जाव अच्चणियं
करेत्ता जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥ तए णं से
विजए देवे तेसि णं आभिओगियाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्ठचित्तमाणंदिय
जाव हयहियए जेणेव णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति २ त्ता पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं जाव
हत्थपायं पक्खालेति २ त्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए णंदापुक्खरिणीओ पच्चुत्तरति २ त्ता
जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से विजए देवे चउहिं सामाणियसाह-

स्सीहिं जाव सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सव्विड्ढीए जाव निग्घोसनाइयरवेणं जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव उवागच्छति २ त्ता सभं सुधम्मं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति २ त्ता जेणेव मणिपेढिया तेणेव उवागच्छति २ त्ता सीहासणवरगते पुरच्छाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥ (सू० १४२)

'**तए णं**'मित्यादि, ततः स विजयो देवो वानमन्तरैः '**महया २**' इति अतिशयेन महता इन्द्राभिषेकेणाभिषिक्तः सन् सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थायाभिषेकसभातः पूर्वद्वारेण विनिर्गत्य यत्रैवालङ्कारसभा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्यालङ्कारिकसभामनुप्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वद्वारेणानुप्रविशति, अनुप्रविश्य च यत्रैव मणिपीठिका यत्रैव च सिंहासनं तत्रोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः संनिषण्णः, ततस्तस्य विजयस्य देवस्याभियोग्या देवा सुबहु '**आलङ्कारिकम्**' अलङ्कारयोग्यं भाण्डमुपनयन्ति ॥ '**तए णं**'मित्यादि, ततः स विजयो देवस्तत्प्रथमतया तस्यामलङ्कारसभायां प्रथमतया पक्ष्मला च सा सुकुमारा च पक्ष्मलसुकुमारा तया '**सुरभिगन्धकाषायिक्या**' सुरभिगन्धकषायद्रव्यपरिकर्म्मितया लघुशाटिकयेति गम्यते गात्राणि रूक्षयति रूक्षयित्वा सरसेन गोशीर्षचन्दनेन गात्राण्यनुलिम्पति अनुलिप्य देवदूष्ययुगलं निधत्त इति योगः, कथम्भूतः ? इत्याह—'**नासानीसासवायवज्झं**' नासिकानिःश्वासवातवाह्यं, एतेन श्लक्ष्णतामाह, '**चक्खुहरं**' चक्षुर्हरति—आत्मवशं नयति विशिष्टरूपातिशयकलितत्वाच्चक्षुर्हरं '**वर्णस्पर्शयुक्तम्**' अतिशायिना वर्णेनातिशायिना स्पर्शेन युक्तं '**हयलालापेलवाइरेग**'मिति हयलाला—अश्वलाला तस्या अपि पेलवमतिरेकेण हयलालापेलवातिरेकं 'नाम नाम्नैकार्थ्ये समासो बहुल'मिति समासः, अतिविशिष्टमृदुत्वलघुत्वगुणोपेतमिति भावः,

धवलं–श्वेतं कनकखचितानि–विच्छुरितानि अन्तकर्म्माणि–अञ्चलयोर्वानलक्षणानि यस्य तत् कनकखचितान्तकर्म्म आकाशस्फटिकं नाम–अतिस्वच्छस्फटिकविशेषस्तत्समप्रभं दिव्यं 'देवदूष्ययुगलं' देववस्त्रयुग्मं 'निवस्ते' परिधत्ते, परिधाय हारादीन्याभरणानि पिनह्यति, तत्र हारः–अष्टादशसरिकः अर्द्धहारो–नवसरिकः एकावली–विचित्रमणिका मुक्तावली–मुक्ताफलमयी कनकावली–कनकमणिमयी प्रालम्बः–तपनीयमयो विचित्रमणिरत्नभक्तिचित्र आसनः प्रमाणेन स्वप्रमाण आभरणविशेषः कटकानि–कलाचिकाभरणानि त्रुटितानि–बाहुरक्षकाः अङ्गदानि–बाह्वाभरणविशेषा 'दशमुद्रिकाऽनन्तकं' हस्ताङ्गुलिसम्बन्धि मुद्रिकादशकं 'कुण्डले' कर्णाभरणे चूडामणिमिति–चूडामणिर्नाम सकलपार्थिवरत्नसर्वसारो देवेन्द्रमनुष्येन्द्रमूर्द्धकृतनिवासो निःशेषापमङ्गलाशान्तिरोगप्रमुखदोषापहारकारी प्रवरलक्षणोपेतः परममङ्गलभूत आभरणविशेषः 'चित्तरयणसंकडं मउड'मिति चित्राणि–नानाप्रकाराणि यानि रत्नानि तैः सङ्कटः चित्ररत्नसङ्कटः प्रभूतरत्ननिचयोपेत इति भावः । 'तं दिव्वं सुमणदामं'ति 'दिव्यां' प्रधानां पुष्पमालाम् ॥ 'तए णं से विजए'इत्यादि, ग्रन्थिमं–ग्रंथनं ग्रन्थस्तेन निर्वृत्तं ग्रन्थिमं 'भावादिमः प्रत्ययः' यत् सूत्रादिना ग्रथ्यते तद् ग्रन्थिममिति भावः, भरिमं–यद् ग्रन्थितं सद् वेष्टते यथा पुष्पलम्बूसको गण्डूक इत्यर्थः, पूरिमं येन वंशशलाकादिमयपञ्जरी पूर्यते, सङ्घातिमं यत्परस्परतो नालसङ्घातेन सङ्घात्यते, एवंविधेन चतुर्विधेन माल्येन कल्पवृक्षमिवात्मानमलङ्कृतविभूषितं करोति कृत्वा परिपूर्णालङ्कारः सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थायालङ्कारसभातः पूर्वेण द्वारेण निर्गत्य यत्रैव व्यवसायसभा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः । 'तए णं'मित्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्याभियोग्याः पुस्तकरत्नमुपनयन्ति ॥ 'तए णं'मित्यादि, ततः स विजयो देवः पुस्तकरत्नं गृह्णाति गृहीत्वा पुस्तकरत्नमुत्सङ्गादाविति गम्यते मुञ्चति

३ प्रतिपत्तौ
विजयदेवकृता
जिनपूजा
उद्देशः २
सू० १४२

मुक्त्वा विघाटयति विघाट्यानुप्रवाचयति अनु–परिपाट्या प्रकर्षेण–विशिष्टार्थावगमरूपेण वाचयति वाचयित्वा 'धार्म्मिकं' धर्मानुगतं व्यवसायं व्यवस्यति, कर्त्तुमभिलषतीति भावः, व्यवसायसभायाः शुभाध्यवसायनिबन्धनत्वात्, क्षेत्रादेरपि कर्म्मक्षयोपशमादिहेतुत्वात्, उक्तञ्च—"उदयक्खयखओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया। दव्वं खेत्तं कालं भवं च भावं च संपप्प ॥ १ ॥" इति, धार्म्मिकं च व्यवसायं व्यवसाय पुस्तकरत्नं प्रतिनिक्षिपति प्रतिनिक्षिप्य सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय व्यवसायसभातः पूर्वद्वारेण विनिर्गच्छति विनिर्गत्य यत्रैव व्यवसायसभाया एव पूर्वा नन्दापुष्करिणी तत्रैवोपागच्छति उपागत्य नन्दां पुष्करिणीमनुप्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वतोरणेनानुप्रविशति प्रविश्य पूर्वेण त्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहति, मध्ये प्रविशतीति भावः, प्रत्यवरुह्य हस्तपादौ प्रक्षालयति प्रक्षाल्यैकं महान्तं श्वेतं रजतमयं विमलसलिलपूर्णं मत्तकरिमहामुखाकृतिसमानं भृङ्गारं गृह्णाति गृहीत्वा यानि तत्रोत्पलानि पद्मानि कुमुदानि नलिनानि यावत् शतसहस्रपत्राणि तानि गृह्णाति गृहीत्वा नन्दातः पुष्करिणीतः प्रत्युत्तरति प्रत्युत्तीर्य यत्रैव सिद्धायतनं तत्रैव प्रधावितवान् गमनाय ॥ 'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य चत्वारि सामानिकदेवसहस्राणि चतस्रः सपरिवारा अग्रमहिष्यः तिस्रः पर्षदः सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयः षोडशात्मरक्षदेवसहस्राणि अन्ये च बहवो विजयराजधानीवास्तव्या वानमन्तरा देवाश्च देव्यश्च अप्येकका उत्पलहस्तगता अप्येककाः पद्महस्तगता अप्येककाः कुमुदहस्तगताः एवं नलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रशतसहस्रपत्रहस्तगताः क्रमेण प्रत्येकं वाच्याः, विजयं देवं पृष्ठतः पृष्ठतः परिपाट्येति भावः अनुगच्छन्ति ॥ 'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य बहव आभियोग्या देवा देव्यश्च अप्येकका वन्दनकलशहस्तगताः अप्येकका भृङ्गारहस्तगताः अप्येकका आदर्शहस्तगताः एवं स्थालपात्रीसुप्रतिष्ठवातकरकचित्ररत्नकरण्डक-

पुष्पचङ्गेरीयावल्लोमहस्तचङ्गेरीपुष्पपटलकयावल्लोमहस्तपटलकसिंहासनच्छत्रचामरतैलसमुद्गकयावदञ्जनसमुद्गकधूपकडुच्छुकहस्तगताः क्रमेण प्रत्येकमालाप्याः, विजयं देवं पृष्ठतः पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति । ततः स विजयो देवश्चतुर्भिः सामानिकसहस्रैश्चतसृभिः सपरिवाराभिरग्रमहिषीभिस्तिसृभिः पर्षद्भिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः षोडशभिरात्मरक्षदेवसहस्रैरन्यैश्च वहुभिर्विजयराजधानीवास्तव्यैर्वानमन्तरैर्देवैर्देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः सर्वर्द्ध्या 'जाव निग्घोसनादितरवेण'मिति यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठो द्रष्टव्यः—'सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वविभूईए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडियसद्दनिनाएणं महया इड्डीए महया जुईए महया वलेणं महया समुदएणं महया वरतुडियजमगसमगपडुप्पवाइयरवेणं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कदुंदुभिनिग्घोसनादितरवेणं' अस्य व्याख्या प्राग्वत् । यत्रैव सिद्धायतनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिद्धायतनमनुप्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वद्वारेण प्रविशति, प्रविश्यालोक्य जिनप्रतिमानां प्रणामं करोति, कृत्वा यत्रैव मणिपीठिका यत्रैव देवच्छन्दको यत्रैव जिनप्रतिमास्तत्रोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तकं परामृशति परामृश्य च जिनप्रतिमाः प्रमार्जयति प्रमार्ज्य दिव्ययोदकधारया स्नपयति स्नपयित्वा सरसेनार्द्रेण गोशीर्षचन्दनेन गात्राण्यनुलिम्पति, अनुलिप्य 'अहतानि' अपरिमलितानि दिव्यानि देवदूष्ययुगलानि 'नियंसइ'त्ति परिधापयति परिधाप्य 'अग्रैः' अपरिभुक्तैः 'वरैः' प्रधानैर्गन्धैर्माल्यैश्चार्चयति । एतदेव सविस्तरमुपदर्शयति—पुष्पारोपणं माल्यारोपणं वर्णकारोपणं चूर्णारोपणं गन्धारोपणम् आभरणारोपणं (च) करोति, कृत्वा तासां जिनप्रतिमानां पुरतः 'अच्छैः' स्वच्छैः 'श्लक्ष्णैः' मसृणै रजतमयैः, अच्छो रसो येषां तेऽच्छरसाः, प्रत्यासन्नवस्तुप्रतिविम्वाधारभूता इवातिनिर्मला इति भावः, ते च ते तन्दुलाश्चाच्छरसतन्दुलाः, पूर्वपदस्य दीर्घान्तता प्राकृतत्वात्, यथा 'वइरामया नेमा' इत्यादौ, तैरष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गल-

कान्यालिखति, आलिख्य '**कयग्गाहगहिय**'मित्यादि मैथुनप्रथमसंरम्भे मुखचुम्बनाद्यर्थं युवत्याः पञ्चाङ्गुलिभिः केशेषु ग्रहणं कचग्राहस्तेन कचग्राहेण गृहीतं करतलाद्विमुक्तं सत् प्रभ्रष्टं करतलप्रभ्रष्टविमुक्तं, प्राकृतत्वादेवं पदव्यत्ययः, तेन '**दशार्द्धवर्णेन**' पञ्चवर्णेन '**कुसुमेन**' कुसुमसमूहेन '**पुष्पपुञ्जोपचारकलितं**' पुष्पपुञ्ज एवोपचारः—पूजा पुष्पपुञ्जोपचारस्तेन कलितं—युक्तं करोति, कृत्वा च '**चंदप्पभवइरवेरुलियविमलदंडं**' चन्द्रप्रभवज्रवैडूर्यमयो विमलो दण्डो यस्य स तथा तं काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्रं कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपेन गन्धोत्तमेनानुविद्धा कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपगन्धोत्तमानुविद्धा, प्राकृतत्वात्पदव्यत्ययः, तां धूपवर्त्ति विनिर्मुञ्चन्तं वैडूर्यमयं धूपकडुच्छुकं प्रगृह्य प्रयतो धूपं दत्त्वा जिनवरेभ्यः, सूत्रे षष्ठी प्राकृतत्वात्, सप्ताष्टानि पदानि पश्चादपसृत्य दशाङ्गुलिमञ्जलिं मस्तके कृत्वा प्रयतः '**अट्ठसयविसुद्धगंठजुत्तेहिं**' इति विशुद्धो—निर्मलो लक्षणदोषरहित इति भावः यो ग्रन्थः—शब्दसंदर्भस्तेन युक्तानि विशुद्धग्रन्थयुक्तानि अष्टशतं च तानि विशुद्धग्रन्थयुक्तानि च तैः '**अर्थयुक्तैः**' अर्थसारैः अपुनरुक्तैः महावृत्तैः, तथाविधदेवलब्धेः प्रभाव एषः, संस्तौति संस्तुत्य वामं जानुं '**अञ्चति**' उत्पाटयति दक्षिणं जानुं धरणितले '**निवाडेइ**' इति निपातयति लगयतीत्यर्थः '**त्रिकृत्वः**' त्रीन् वारान् मूर्द्धानं धरणितले '**नमेइ**'त्ति नमयति नमयित्वा चेषत्प्रत्युन्नमयति, ईषत्प्रत्युन्नम्य कटकत्रुटितस्तम्भितौ भुजौ '**संहरति**' सङ्कोचयति, संहृत्य करतलपरिगृहीतं शिरस्यावर्त्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वैवमवादीत्—'**नमोऽत्थु ण**'मित्यादि, नमोऽस्तु णमिति वाक्यालङ्कारे देवादिभ्योऽतिशयपूजामर्हन्तीत्यर्हन्तस्तेभ्यः, सूत्रे षष्ठी "छट्ठिविभत्तीएँ भन्नइ चउत्थी"इति प्राकृतलक्षणात्, ते चार्हन्तो नामादिरूपा अपि सन्ति ततो भावार्हत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—'**भगवद्भ्यः**' भगः—समग्रैश्वर्यादिलक्षणः स एषामस्तीति भगवन्तस्तेभ्यः, आदिः—धर्म्मस्य प्रथमा प्रवृत्तिस्तत्करणशीला आदिकरास्तेभ्यः, तीर्यते संसारसमुद्रोऽनेनेति

तीर्थं तत्करणशीलास्तीर्थकरास्तेभ्यः, स्वयं—अपरोपदेशेन सम्यग्वरबोधिप्राप्त्या बुद्धा मिथ्यात्वनिद्रापगमसम्बोधेन स्वयंसंबुद्धास्तेभ्यः, तथा पुरुषाणामुत्तमाः पुरुषोत्तमाः, भगवन्तो हि संसारमप्यावसन्तः सदा परार्थव्यसनिन उपसर्जनीकृतस्वार्था उचितक्रियावन्तोऽदीनभावाः कृतज्ञतापतयोऽनुपहतचित्ता देवगुरुबहुमानिन इति भवन्ति पुरुषोत्तमास्तेभ्यः, तथा पुरुषाः सिंहा इव कर्म्मगजान् प्रति पुरुषसिंहास्तेभ्यः, तथा पुरुषा वरपुण्डरीकाणीव संसारजलासङ्गादिना धर्म्मकलापेनेति पुरुषवरपुण्डरीकाणि तेभ्यः, तथा पुरुषा वरगन्धहस्तिन इव परचक्रदुर्भिक्षमारिप्रभृतिक्षुद्रगजनिराकरणेनेति पुरुषवरगन्धहस्तिनस्तेभ्यः, तथा लोको—भव्यसत्त्वलोकस्तस्य सकलकल्याणैकनिबन्धनतया भव्यत्वभावेनोत्तमा लोकोत्तमास्तेभ्यः तथा लोकस्य—भव्यलोकस्य नाथा—योगक्षेमकृतो लोकनाथास्तेभ्यः, तत्र योगो—बीजाधानोद्भेदपोषणकरणं क्षेमं—तदुपद्रवाद्यभावापादनं, तथा लोकस्य—प्राणिलोकस्य पञ्चास्तिकायात्मकस्य वा हितोपदेशेन सम्यक्प्ररूपणया वा हिता लोकहितास्तेभ्यः, तथा लोकस्य—देशनायोग्यस्य विशिष्टस्य प्रदीपा—देशनांशुभिर्यथाऽवस्थितवस्तुप्रकाशका लोकप्रदीपास्तेभ्यः, तथा लोकस्य—उत्कृष्टमतेर्भव्यसत्त्वलोकस्य प्रद्योतनं प्रद्योतः प्रद्योतकत्वं—विशिष्टज्ञानशक्तिस्तत्करणशीला लोकप्रद्योतकराः, तथा च भवन्ति भगवत्प्रसादात् तत्क्षणमेव भगवन्तो गणभृतो विशिष्टज्ञानसम्पत्समन्विता यद्वशाद् द्वादशाङ्गमारचयन्तीति तेभ्यः, तथाऽभयं—विशिष्टमात्मनः स्वास्थ्यं निःश्रेयसधर्म्मभूमिकानिबन्धनभूता परमा धृतिरिति भावः, तद् अभयं ददतीत्यभयदास्तेभ्यः, सूत्रे च कप्रत्ययः स्वार्थिकः प्राकृतलक्षणवशात्, एवमन्यत्रापि, तथा चक्षुरिव चक्षुः—विशिष्ट आत्मधर्मस्तत्त्वावबोधनिबन्धनं श्रद्धास्वभावः, श्रद्धाविहीनस्याचक्षुष्मत इव तत्त्वदर्शनायोगात्, तद्ददातीति चक्षुर्दास्तेभ्यः, तथा मार्गो—विशिष्टगुणस्थानावाप्तिप्रगुणः स्वरसवाही क्षयोपशमविशेषस्तं ददतीति मार्गदास्तेभ्यः, तथा शरणं—संसारकान्तारगतानामतिप्रबलरागादिपीडितानां समाश्वसनस्थान-

कल्पं तत्त्वचिन्तारूपमध्यवसानं तद्ददतीति शरणदास्तेभ्यः, तथा बोधिः—जिनप्रणीतधर्मप्राप्तिस्तां तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यग्दर्शनरूपां ददतीति बोधिदास्तेभ्यः, तथा धर्मं—चारित्ररूपं ददतीति धर्मदास्तेभ्यः कथं धर्म्मदाः? इत्याह—धर्मं दिशन्तीति धर्म्मदेशकास्तेभ्यः, तथा धर्म्मस्य नायकाः—स्वामिनस्तद्वशीकरणात्तत्फलपरिभोगाच्च धर्मनायकास्तेभ्यः, धर्म्मस्य सारथय इव सम्यक्प्रवर्त्तनयोगेन धर्म-सारथयस्तेभ्यः, तथा धर्म एव वरं—प्रधानं चतुरन्तहेतुत्वात् चतुरन्तं २ चक्रमिव चतुरन्तचक्रं तेन वर्त्तितुं शीलं येषां ते धर्म्मवर-चतुरन्तचक्रवर्त्तिनस्तेभ्यः, तथाऽप्रतिहते—अप्रतिस्खलिते क्षायिकत्वाद् वरे—प्रधाने ज्ञानदर्शने धरन्तीति अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरा-स्तेभ्यः, तथा छादयति—आवरयतीति छद्म—घातिकर्म्मचतुष्टयं व्यावृत्तं—अपगतं छद्म येभ्यस्ते व्यावृत्तछद्मानस्तेभ्यः, तथा रागद्वेष-कषायेन्द्रियपरीषहोपसर्गघातिकर्म्मशत्रून् जितवन्तो जिनाः अन्यान् जापयन्तीति जापकास्तेभ्यो जिनेभ्यो जापकेभ्यः, तथा भवा-र्णवं स्वयं तीर्णा अन्यांश्च तारयन्तीति तीर्णास्तारकास्तेभ्यः, तथा केवलवेदसा अवगततत्त्वा बुद्धा अन्यांश्च बोधयन्तीति बोधकास्तेभ्यः, मुक्ताः—कृतकृत्या निष्ठितार्था इति भावः, अन्यांश्च मोचयन्तीति मोचकास्तेभ्यः, सर्वज्ञेभ्यः सर्वदर्शिभ्यः, शिवं—सर्वोपद्रवरहितत्वात् 'अचलं' स्वाभाविकप्रायोगिकचलनक्रियाव्यपोहात् 'अरुजं' शरीरमनसोरभावेनाऽऽधिव्याध्यसम्भवात् अनन्तं—केवलात्मनाऽनन्त-त्वात् 'अक्षयं' विनाशकारणाभावात् 'अव्याबाधं' केनापि विबाधयितुमशक्यत्वात् न पुनरावृत्तिर्यस्मात्तदपुनरावृत्ति, सिध्यन्ति—निष्ठितार्था भवन्त्यस्यामिति सिद्धिः—लोकान्तक्षेत्रलक्षणा सैव गम्यमानत्वाद् गतिः सिद्धिगतिः २ रिति नामधेयं यस्य तत्सिद्धिगतिनाम-धेयं, तिष्ठत्यस्मिन्निति स्थानं—व्यवहारतः सिद्धक्षेत्रं निश्चयतो यथाऽवस्थितं स्वं स्वरूपं, स्थानस्थानिनोरभेदोपचारात्तु सिद्धिगतिनाम-धेयं तत्संप्राप्तेभ्यः । एवं प्रणिपातदण्डकं पठित्वा 'वंदइ नमंसइ' इति वन्दते—ताः प्रतिमाश्चैत्यवन्दनविधिना प्रसिद्धेन, नमस्करोति—

पश्चात्प्रणिधानादियोगेनेत्येके, अन्ये त्वभिदधति—विरतिमतामेव प्रसिद्धश्चैत्यवन्दनविधिरन्येषां तथाऽभ्युपगमे कायोत्सर्गासिद्धेरिति व- न्दते सामान्येन, नमस्करोत्याशयवृद्धेरुत्थाननमस्कारेणेति, तत्त्वमत्र भगवन्तः परमर्षयः केवलिनो विदन्ति, ततो वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव सिद्धायतनस्य बहुमध्यदेशभागस्तत्रैवोपागच्छति उपागत्य बहुमध्यदेशभागं दिव्ययोदकधारया 'अभ्युक्षति' अभिमुखं सिञ्चति, अभ्युक्ष्य सरसेन गोशीर्षचन्दनेन पञ्चाङ्गुलितलं ददाति, दत्त्वा कचग्राहगृहीतेन करतलप्रभ्रष्टविमुक्तेन दशार्द्धवर्णेन 'कुसुमेन' कुसुम- जातेन पुष्पपुञ्जोपचारकलितं करोति कृत्वा धूपं ददाति, दत्त्वा च यत्रैव दाक्षिणात्यं द्वारं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तकं गृह्णाति, गृहीत्वा तेन द्वारशाखाशालभञ्जिकाव्यालरूपकाणि च प्रमार्जयति, प्रमृज्य दिव्ययोदकधारयाऽभ्युक्षणं गोशीर्षचन्दनचर्चा पुष्पाद्या- रोपणं धूपदानं करोति, ततो दक्षिणद्वारेण निर्गत्य यत्रैव दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्य बहुमध्यदेशभागस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य लोम- हस्तकं परामृशति, परामृश्य च बहुमध्यदेशभागं लोमहस्तकेन प्रमार्जयति, प्रमृज्य दिव्ययोदकधारयाऽभ्युक्षणं सरसेन गोशीर्षचन्दनेन पञ्चाङ्गुलितलं मण्डलमालिखति, कचग्राहगृहीतेन करतलप्रभ्रष्टविमुक्तेन दशार्द्धवर्णेन कुसुमेन पुष्पपुञ्जोपचारकलितं करोति, कृत्वा धूपं ददाति, दत्त्वा च यत्रैव दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्य पश्चिमं द्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तपरामर्शनं, तेन च लोमहस्त- केन द्वारशाखाशालभञ्जिकाव्यालरूपकप्रमार्जनं, उदकधारयाऽभ्युक्षणं गोशीर्षचन्दनचर्चा पुष्पाद्यारोपणं धूपदानं करोति, कृत्वा यत्रैव दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्योत्तरद्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववद् द्वारार्चनिकां करोति, कृत्वा च यत्रैव दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्य पूर्वद्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववत्तत्राप्यर्चनिकां करोति, कृत्वा च दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्य यत्रैव दाक्षिणात्यं द्वारं तत्रोपाग- च्छति, उपागत्य पूर्ववत्तत्र पूजां विधाय तेन द्वारेण विनिर्गत्य यत्रैव दाक्षिणात्यः प्रेक्षागृहमण्डपो यत्रैव दाक्षिणात्यस्य प्रेक्षागृहमण्डपस्य

वहुमध्यदेशभागो यत्रैव वज्रमयोऽक्षपाटको यत्रैव च मणिपीठिका यत्रैव च सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तकं परामृशति, परामृश्याक्षपाटकं मणिपीठिकां सिंहासनं च प्रमार्जयति, प्रमार्ज्योदकधारयाऽभ्युक्ष्य चन्दनचर्चां पुष्पपूजां धूपदानं च करोति, कृत्वा च यत्रैव दाक्षिणात्यस्य प्रेक्षागृहमण्डपस्योत्तरद्वारं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववद्द्वारार्चनिकां करोति, कृत्वा यत्रैव दाक्षिणात्यस्य प्रेक्षागृहमण्डपस्य पूर्वद्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्वद्वारार्चनिकां करोति, कृत्वा यत्रैव तस्य दाक्षिणात्यस्य प्रेक्षागृहमण्डपस्य दाक्षिणात्यं द्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य तत्रार्चनिकां कृत्वा यत्रैव दाक्षिणात्यश्चैत्यस्तम्भस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य स्तूपं मणिपीठिकां च लोमहस्तकेन प्रमृज्य दिव्ययोदकधारयाऽभ्युक्षति सरसगोशीर्षचन्दनचर्चां पुष्पाद्यारोहणधूपदानादि करोति, कृत्वा च यत्रैव पाश्चात्या मणिपीठिका यत्रैव च पाश्चात्या जिनप्रतिमा तत्रोपागच्छति, उपागत्य जिनप्रतिमाया आलोके प्रणामं करोतीत्यादि पूर्ववद् यावन्नमस्यित्वा यत्रैवोत्तरा जिनप्रतिमा तत्रोपागच्छति, उपागत्य तत्रापि यावन्नमस्यित्वा यत्रैव पूर्वा जिनप्रतिमा तत्रोपागच्छति उपागत्य पूर्ववद् यावन्नमस्यित्वा यत्रैव दाक्षिणात्या जिनप्रतिमा पूर्ववत् सर्वं तदेव यावन्नमस्यित्वा यत्रैव दाक्षिणात्यश्चैत्यवृक्षस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववदर्चनिकां करोति, कृत्वा च यत्रैव महेन्द्रध्वजस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववदर्चनिकां विधाय यत्रैव दाक्षिणात्या नन्दापुष्करिणी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तकं परामृशति, परामृश्य तोरणानि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि शालभञ्जिकाव्यालरूपकाणि च प्रमार्जयति, प्रमार्ज्य दिव्ययोदकधारया सिञ्चति, सिक्त्वा सरसगोशीर्षचन्दनपञ्चाङ्गुलितलप्रदानपुष्पाद्यारोहणधूपदानादि करोति, कृत्वा च सिद्धायतनमनुप्रदक्षिणीकृत्य यत्रैवोत्तरा नन्दापुष्करिणी स तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववत्सर्वं करोति, कृत्वा चौत्तराहे माहेन्द्रध्वजे तदनन्तरमौत्तराहे चैत्यवृक्षे तत औत्तराहे चैत्यस्तूपे, ततः पश्चिमोत्तरपूर्वदक्षिणजिनप्रतिमासु पूर्ववत्सर्वा वक्तव्यता वक्तव्या,

तदनन्तरमौत्तराहे प्रेक्षागृहमण्डपे समागच्छति, तत्र दाक्षिणात्ये प्रेक्षागृहमण्डपे पूर्ववत्सर्वं वक्तव्यं, तत उत्तरद्वारेण विनिर्गत्यौत्तराहे मुखमण्डपे समागच्छति, तत्रापि दाक्षिणात्यमुखमण्डपवत्सर्वं कृत्वोत्तरद्वारेण विनिर्गत्य सिद्धायतनस्य पूर्वद्वारे समागच्छति, तत्रार्चनिकां पूर्ववत्कृत्वा पूर्वस्य मुखमण्डपस्य दक्षिणोत्तरपूर्वद्वारेषु क्रमेणोक्तरूपां पूजां विधाय पूर्वद्वारेण विनिर्गत्य पूर्वप्रेक्षामण्डपे समागत्य पूर्ववदर्चनिकां करोति, ततः पूर्वप्रकारेणैव क्रमेण चैत्यस्तूपजिनप्रतिमाचैत्यवृक्षमाहेन्द्रध्वजनन्दापुष्करिणीनां ततः सभायां सुधर्मायां पूर्वद्वारेण प्रविशति, प्रविश्य यत्रैव मणिपीठिका तत्रैवोपागच्छति, उपागत्यालोके जिनसक्थां प्रणामं करोति, कृत्वा च यत्र माणवकचैत्यस्तम्भो यत्र वज्रमया गोलवृत्ताः समुद्गकास्तत्रागत्य समुद्गकान् गृह्णाति, गृहीत्वा च विघाटयति, विघाट्य लोमहस्तकेन प्रमार्जयति, प्रमार्ज्योदकधारयाऽभ्युक्षति, अभ्युक्ष्य गोशीर्षचन्दनेनानुलिम्पति, ततः प्रधानैर्गन्धमाल्यैरर्चयति, अर्चयित्वा धूपं दहति, तदनन्तरं भूयोऽपि वज्रमयेषु गोलवृत्तसमुद्गकेषु प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य तान् वज्रमयान् गोलवृत्तसमुद्गकान् स्वस्थाने प्रतिनिक्षिपति, प्रतिनिक्षिप्य तेषु पुष्पगन्धमाल्यवस्त्राभरणान्यारोपयति, ततो लोमहस्तकेन माणवकचैत्यस्तम्भं प्रमार्ज्योदकधारयाऽभ्युक्ष्य चन्दनचर्चां पुष्पाद्यारोपणं धूपदानं च करोति, कृत्वा सिंहासनप्रदेशे समागत्य सिंहासनस्य लोमहस्तकेन प्रमार्जनादिरूपां पूर्ववदर्चनिकां करोति, कृत्वा यत्र मणिपीठिका यत्र च देवशयनीयं तत्रोपागत्य मणिपीठिकाया देवशयनीयस्य च प्राग्वदर्चनिकां करोति, तत उक्तप्रकारेणैव क्षुल्लकेन्द्रध्वजपूजां करोति, कृत्वा च यत्र चोप्पालको नाम प्रहरणकोशस्तत्र समागत्य लोमहस्तेन परिघरत्नप्रमुखाणि प्रहरणरत्नानि प्रमार्जयति, प्रमार्ज्योदकधारयाऽभ्युक्षणं चन्दनचर्चा पुष्पाद्यारोपणं धूपदानं करोति, कृत्वा सभायाः सुधर्माया बहुमध्यदेशभागेऽर्चनिकां पूर्ववत्करोति, कृत्वा सभायाः सुधर्माया दक्षिणद्वारे समागत्यार्चनिकां पूर्ववत्करोति, ततो दक्षिणद्वारे विनिर्गच्छति, इत ऊर्ध्वं यथैव सिद्धायत-

नान्निष्क्रामतो दक्षिणद्वारादिका दक्षिणनन्दापुष्करिणीपर्यवसाना पुनरपि प्रविशत उत्तरनन्दापुष्करिणीप्रभृतिका उत्तरान्ता ततो द्वितीयं वारं निष्क्रामतः पूर्वद्वारादिका पूर्वनन्दापुष्करिणीपर्यवसानार्चनिका वक्तव्या तथैव सुधर्मायाः सभाया अप्यन्यूनातिरिक्ता द्रष्टव्या, ततः पूर्वनन्दापुष्करिण्या अर्चनिकां कृत्वोपपातसभां पूर्वद्वारेण प्रविशति, प्रविश्य च मणिपीठिकाया देवशयनीयस्य तदनन्तरं बहुमध्यदेशभागे प्राग्वदर्चनिकां विदधाति, ततो दक्षिणद्वारेण समागत्य तस्यार्चनिकां कुरुते, अत ऊर्द्ध्वमत्रापि सिद्धायतनवद्दक्षिणद्वारादिका पूर्वनन्दापुष्करिणीपर्यवसानाऽर्चनिका वक्तव्या । ततः पूर्वनन्दापुष्करिणीतोऽपक्रम्य ह्रदे समागत्य पूर्ववत्तोरणार्चनिकां करोति, कृत्वा पूर्वद्वारेणाभिषेकसभायां प्रविशति, प्रविश्य मणिपीठिकायाः सिंहासनस्याभिषेकभाण्डस्य बहुमध्यदेशभागस्य च पूर्ववदर्चनिकां क्रमेण करोति, तदनन्तरमत्रापि सिद्धायतनवद्दक्षिणद्वारादिका पूर्वनन्दापुष्करिणीपर्यवसानाऽर्चनिका वक्तव्या, ततः पूर्वनन्दापुष्करिणीतः पूर्वद्वारेण व्यवसायसभां प्रविशति प्रविश्य पुस्तकरत्नं लोमहस्तकेन प्रमृज्योदकधारयाऽभ्युक्ष्य चन्दनेन चर्चयित्वा वरगन्धमाल्यैरर्चयित्वा पुष्पाद्यारोपणं धूपदानं च करोति, तदनन्तरं मणिपीठिकायाः सिंहासनस्य बहुमध्यदेशभागस्य च क्रमेणार्चनिकां करोति, तदनन्तरमत्रापि सिद्धायतनवद्दक्षिणद्वारादिका पूर्वनन्दापुष्करिणीपर्यवसानाऽर्चनिका वक्तव्या, ततः पूर्वनन्दापुष्करिणीतो बलिपीठे समागत्य तस्य बहुमध्यदेशभागे पूर्ववदर्चनिकां करोति, कृत्वा चोत्तरपूर्वस्यां नन्दापुष्करिण्यां समागत्य तस्यास्तोरणेषु पूर्ववदर्चनिकां कृत्वाऽऽभियोगिकान् देवान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—'खिप्पामेवे'त्यादि सुगमं यावत् 'एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति' नवरं शृङ्गाटकं—त्रिकोणं स्थानं त्रिकं—यत्र रथ्यात्रयं मिलति चतुष्कं—चतुष्पथयुक्तं चत्वरं—बहुरथ्यापातस्थानं चतुर्मुखं—यस्माच्चतसृष्वपि दिक्षु पन्थानो निस्सरन्ति महापथो—राजपथः शेषः सामान्यः पन्थाः प्राकारः—प्रतीतः अट्टालकाः—प्राकारस्योपरि भृत्याश्रयविशेषाः चरिका—अष्टह-

स्तत्प्रमाणो नगरप्राकारान्तरालमार्गः द्वाराणि— प्रासादादीनां गोपुराणि—प्राकारद्वाराणि तोरणानि—द्वारादिसम्बन्धीनि आगत्य रमन्तेऽत्र माधवीलतागृहादिषु दम्पत्य इति स आरामः पुष्पादिसद्वृक्षसङ्कुलमुत्सवादौ बहुजनोपभोग्यमुद्यानं सामान्यवृक्षवृन्दं नगरासन्नं काननं नगरविप्रकृष्टं वनं एकानेकजातीयोत्तमवृक्षसमूहो वनषण्डः एकजातीयोत्तमवृक्षसमूहो वनराजी ॥ 'तए ण'मित्यादि, ततः स विजयो देवो बलिपीठे बलिविसर्जनं करोति, कृत्वा च यत्रैवोत्तरनन्दापुष्करिणी तत्रोपागच्छति, उपागत्योत्तरपूर्वां नन्दां पुष्करिणीं प्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वतोरणेनानुप्रविशति, अनुप्रविश्य पूर्वत्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य हस्तपादौ प्रक्षालयति, प्रक्षाल्य नन्दापुष्करिणीतः प्रत्युत्तरति, प्रत्युत्तीर्य चतुर्भिः सामानिकसहस्रैश्चतसृभिरग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिस्तिसृभिः पर्षद्भिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः षोडशभिरात्मरक्षदेवसहस्रैरन्यैश्च बहुभिर्विजयराजधानीवास्तव्यैर्वानमन्तरैर्देवैर्देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः सर्वर्द्ध्या यावद् दुन्दुभिनिर्घोषनादितरवेण विजयाया राजधान्या मध्यंमध्येन यत्रैव सभा सुधर्मा तत्रोपागच्छति, उपागत्य सभां सुधर्मां पूर्वद्वारेणानुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव मणिपीठिका यत्रैव सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः ॥

तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं पत्तेयं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति । तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पुरत्थिमेणं पत्तेयं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति । तए णं तस्स विजयस्स देवस्स दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पत्तेयं २ जाव णिसी-

यंति। एवं दक्खिणेणं मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ जाव णिसीदंति। दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पत्तेयं २ जाव णिसीदंति। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पच्चत्थिमेणं सत्त अणियाहिवती पत्तेयं २ जाव णिसीयंति। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ पत्तेयं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीदंति, तंजहा—पुरत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ जाव उत्तरेणं ४॥ ते णं आयरक्खा सन्नद्धबद्धवम्मियकवया उप्पीलियसरासणपट्टिया पिणद्धगेवेज्जविमलवरचिंधपट्टा गहियाउहपहरणा तिणयाइं तिसंधीणि वइरामया कोडीणि धणूइं अहिगिज्झ परियाइयकंडकलावा णीलपाणिणो पीयपाणिणो रत्तपाणिणो चावपाणिणो चारुपाणिणो चम्मपाणिणो खग्गपाणिणो दंडपाणिणो पासपाणिणो णीलपीयरत्तचावचारुचम्मखग्गदंडपासवरधरा आयरक्खा रक्खोवगा गुत्ता गुत्तपालिता जुत्ता जुत्तपालिता पत्तेयं २ समयतो विणयतो किंकरभूताविव चिट्ठंति॥ विजयस्स णं भंते! देवस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गो०! एगं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, विजयस्स णं भंते! देवस्स सामाणियाणं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, एगं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, एवंमहिड्डीए एवंमहज्जुतीए एवंमहब्बले एवंमहायसे एवंमहासुक्खे एवंमहाणुभागे विजए देवे २॥ (सू० १४३)

ततस्तस्य विजयस्य देवस्यापरोत्तरेण—अपरोत्तरस्यां दिशि एवमुत्तरस्यामुत्तरपूर्वस्यां दिशि च चत्वारि २ सामानिकदेवसहस्राणि चतुर्षु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति । ततस्तस्य विजयस्य देवस्य पूर्वस्यां दिशि चतस्रोऽग्रमहिष्यश्चतुर्षु भद्रासनेषु निषीदन्ति, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य दक्षिणपूर्वस्यामभ्यन्तरिकायाः पर्षदोऽष्टौ देवसहस्राणि अष्टासु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति । ततस्तस्य विजयस्य देवस्य दक्षिणस्यां दिशि मध्यमिकायाः पर्षदो दश देवसहस्राणि दशसु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति । ततस्तस्य विजयस्य देवस्य पश्चिमायां दिशि वाह्यायाः पर्षदो द्वादश देवसहस्राणि द्वादशसु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति । ततस्तस्य विजयस्य देवस्य पश्चिमायां दिशि सप्तानीकाधिपतयः सप्तसु भद्रासनेषु निषीदन्ति। ततस्तस्य विजयस्य देवस्य सर्वतः समन्तात् सर्वासु दिक्षु सामस्त्येन षोडश आत्मरक्षकदेवसहस्राणि षोडशसु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति, तद्यथा—चत्वारि सहस्राणि चतुर्षु भद्रासनसहस्रेषु पूर्वस्यां दिशि, एवं दक्षिणस्यां दिशि, एवं प्रत्येकं पश्चिमोत्तरयोरपि ॥ ते चात्मरक्षाः सन्नद्धवद्धवर्मितकवचाः, कवचं—तनुत्राणं वर्म—लोहमयकुतूलिकादिरूपं संजातमस्मिन्निति वर्मितं सन्नद्धं शरीरे आरोपणात् वद्धं गाढतरवन्धनेन वन्धनात् वर्मितं कवचं यैस्ते सन्नद्धवद्धवर्मितकवचाः, 'उप्पीलियसरासणपट्टिया' इति उत्पीडिता—गाढीकृता शरा अस्यन्ते—क्षिप्यन्तेऽस्मिन्निति शरासनः—इषुधिस्तस्य पट्टिका यैरुत्पीडितशरासनपट्टिकाः 'पिणद्धगेवेज्जविमलवरचिंधपट्टा' इति पिनद्धं ग्रैवेयं—ग्रीवाभरणं विमलवरचिह्नपट्टश्च यैस्ते पिनद्धवरग्रैवेयविमलवरचिह्नपट्टाः 'गहियाउहपहरणा' इति आयुध्यतेऽनेनेत्यायुधं—खेटकादि प्रहरणं—असिकुन्तादि, गृहीतानि आयुधानि प्रहरणानि च यैस्ते गृहीतायुधप्रहरणाः 'त्रिनतानि' आदिमध्यावसानेषु नमनभावात् 'त्रिसन्धीनि' आदिमध्यावसानेषु सन्धिभावात्, वज्रमयकोटीनि धनूंषि अभिगृह्य 'परियाइयकंडकलावा' इति पर्यात्तकाण्डकलापा विचित्रकाण्डकलापयोगात्, केचित् 'नीलपाणय' इति नीलः काण्डकलाप

इति गम्यते पाणौ येषां ते नीलपाणयः, एवं पीतपाणयः रक्तपाणयः, चापं पाणौ येषां ते चापपाणयः, चारुः—प्रहरणविशेषः पाणौ येषां ते चारुपाणयः, चर्म—अङ्गुष्ठाङ्गुल्योराच्छादनरूपं पाणौ येषां ते चर्मपाणयः, एवं दण्डपाणयः खड्गपाणयः पाशपाणयः, एतदेव व्याचष्टे—यथायोगं नीलपीतरक्तचापचारुचर्मदण्डपाशधरा आत्मरक्षाः, रक्षामुपगच्छन्ति—तदेकचित्ततया तत्परायणा वर्त्तन्त इति रक्षोपगाः 'गुप्ताः' न स्वामिभेदकारिणः तथा गुप्ता—पराप्रवेश्या पालिः—सेतुर्येषां ते गुप्तपालिकाः, तथा 'युक्ताः' सेवकगुणोपेततयोचिताः, तथा युक्ता—परस्परं बद्धा न तु बृहदन्तराला पालिर्येषां ते युक्तपालिकाः, प्रत्येकं प्रत्येकं समयतः—आचारत आचारेणेत्यर्थः विनयतश्च किङ्करभूता इव तिष्ठन्ति, न खलु ते किङ्कराः, किन्तु तेऽपि मान्याः, तेषामपि पृथगासननिपातनात्, केवलं ते तदानीं निजाचारपरिपालनतो विनीतत्वेन च तथाभूता इव तिष्ठन्ति तदुक्तं किङ्करभूता इवेति ॥ 'तए णं से विजए' इत्यादि सुप्रतीतं यावद्विजयदेववक्तव्यतापरिसमाप्तिः ॥ तदेवमुक्ता विजयद्वारवक्तव्यता, सम्प्रति वैजयन्तद्वारवक्तव्यतामभिधित्सुराह—

कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाधाए जंबुद्दीवदीवदाहिणपेरंते लवणसमुद्ददाहिणद्धस्स उत्तरेणं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स २ वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सच्चेव सव्वा वत्तव्वता जाव णिच्चे। कहि णं भंते!० रायहाणी?, दाहिणे णं जाव वेजयंते देवे २ ॥ कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स २ जयंते णाम दारे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं जंबुद्दीवपच्चत्थिमपेरंते लवणसमुद्दपच्चत्थिमद्धस्स पुर॰

च्छिमेणं सीओदाए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स जयंते णाम दारे पण्णत्ते, तं चेव से पमाणं जयंते देवे पचत्थिमेणं से रायहाणी जाव महिड्ढीए ॥ कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स अपराइए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! मंदरस्स उत्तरेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवे २ उत्तरपेरंते लवणसमुद्दस्स उत्तरद्धस्स दाहिणेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे २ अपराइए णामं दारे पण्णत्ते तं चेव पमाणं, रायहाणी उत्तरेणं जाव अपराइए देवे, चउण्हवि अण्णंमि जंबुद्दीवे ॥ (सू० १४४) जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! अउणासीतिं जोयणसहस्साइं बावण्णं च जोयणाइं देसूणं च अद्धजोयणं दारस्स य २ अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ॥ (सू० १४५)

'कहि णं भंते' इत्यादि सर्वं पूर्ववत्, नवरमत्र वैजयन्तस्य द्वारस्य दक्षिणतस्तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिक्रम्येति वक्तव्यं, शेषं प्राग्वत् ॥ एवं जयन्तापराजितद्वारवक्तव्यताऽपि वाच्या, नवरं जयन्तद्वारस्य पश्चिमायां दिशि, अपराजितद्वारस्योत्तरतस्तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्येति वाच्यम् ॥ सम्प्रति विजयादिद्वाराणां परस्परमन्तरं प्रतिपिपादयिषुरिदमाह—'जंबुद्दीवस्स ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपस्य णमिति प्राग्वत् भदन्त! द्वीपस्य सम्बन्धिनो द्वारस्य च द्वारस्य चैतत् कियत्प्रमाणाबाधया—अन्तरित्वा प्रतिघातेनान्तरं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! एकोनाशीतिर्योजनसहस्राणि द्विपञ्चाशद् योजनानि देशोनं चार्द्धयोजनं द्वारस्य च द्वारस्य चाबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, तथाहि—चतुर्णामपि द्वाराणां प्रत्येकमेकैकस्य कुड्यस्य द्वारशाखापरपर्यायस्य बाहल्यं गव्यूतं द्वाराणां च वि-

३ प्रतिपत्तौ वैजयन्तादीनि द्वाराणि सू० १४४ द्वारान्तरं उद्देशः २ सू० १४५

स्तारः प्रत्येकं २ चत्वारि २ योजनानि, ततश्चतुर्ष्वपि द्वारेषु सर्वसङ्ख्यया कुड्यद्वारप्रमाणमष्टादश योजनानि, जम्बूद्वीपस्य च परिधि-स्तिस्रो लक्षाः षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके ३१६२२७ क्रोशत्रयं ३ अष्टाविंशं धनुःशतं १२८ त्रयोदशाङ्गुलानि एक-मर्धाङ्गुल १३॥-मिति, अस्माच्च जम्बूद्वीपपरिधेः सकाशात्तानि कुड्यद्वारपरिमाणभूतान्यष्टादश योजनानि शोध्यन्ते, शोधितेषु च तेषु परिधिसत्को योजनराशिरेवंरूपो जातः—तिस्रो लक्षाः षोडश सहस्राणि द्वे शते नवोत्तरे ३१६२०९, शेषं तथैव, ततो योजनरा-शेश्चतुर्भिर्भागो ह्रियते, लब्धानि योजनानामेकोनाशीतिः सहस्राणि द्विपञ्चाशदधिकानि गव्यूतं चैकं ७९०५२ क्रो० १, यानि च परिधिसत्कानि त्रीणि गव्यूतानि तानि धनुस्त्वेन क्रियन्ते लब्धानि धनुषां षट् सहस्राणि, यदपि च परिधिसत्कमष्टाविंशं धनुःशतं तदप्येतेषु धनुःषु मध्ये प्रक्षिप्यते, ततो जातो धनूराशिरेकषष्टिः शतान्यष्टाविंशत्यधिकानि ६१२८, एषां चतुर्भिर्भागो ह्रियते, लब्धानि धनुषां पञ्चदश शतानि द्वात्रिंशदधिकानि १५३२, यान्यपि च त्रयोदशाङ्गुलानि तेषामपि चतुर्भिर्भागो ह्रियते, लब्धानि त्रीणि अङ्गु-लानि, एतदपि सर्वं देशोनमेकं गव्यूतमिति लब्धं देशोनमर्द्धयोजनं, उक्तं च—"[1]कुड्डुवारपमाणं अट्ठारस जोयणाइं परिहीए। सो-हिय चउहिं विभत्तं इणमो दारंतरं होइ ॥ १ ॥ अउणासीइ सहस्सा बावण्णा अद्धजोयणं नूणं । दारस्स य दारस्स य अंतरमेयं विणिद्दिट्ठं ॥ २ ॥"

जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स पएसा लवणं समुद्दं पुट्ठा?, हंता पुट्ठा ॥ ते णं भंते! किं जंबुद्दीवे २

---

१ कुड्यद्वारप्रमाणमष्टादश योजनानि परिधेः । शोधयित्वा चतुर्भिर्विभक्ते इदं द्वारान्तरं भवति ॥ १ ॥ एकोनाशीतिः सहस्राणि द्विपञ्चाशत् अर्धयोजनमूनं द्वारस्य द्वारस्य चान्तरमेतत् विनिर्दिष्टं ॥ २ ॥

लवणसमुद्दे?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे नो खलु ते लवणसमुद्दे ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स पदेसा जंबूद्दीवं दीवं पुट्ठा?, हंता पुट्ठा। ते णं भंते! किं लवणसमुद्दे जंबूद्दीवे दीवे?, गोयमा! लवणे णं ते समुद्दे नो खलु ते जंबुद्दीवे दीवे ॥ जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे जीवा उद्दाइत्ता २ लवणसमुद्दे पच्चायंति?, गोयमा! अत्थेगतिया पच्चायंति अत्थेगतिया नो पच्चायंति ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता २ जंबुद्दीवे २ पच्चायंति?, गोयमा! अत्थेगतिया पच्चायंति अत्थेगतिया नो पच्चायंति ॥ (सू० १४६)

'जंबूद्दीवस्स णं भंते!' इत्यादि, जम्बूद्वीपस्य णमिति पूर्ववत् भदन्त! द्वीपस्य 'प्रदेशाः' स्वसीमागतचरमरूपा लवणं समुद्रं 'स्पृष्टाः?' कर्तरि क्तप्रत्ययः, स्पृष्टवन्तः, काका पाठ इति प्रश्नार्थत्वावगतिः, पृच्छतश्चायमभिप्रायः—यदि स्पृष्टास्तर्हि वक्ष्यमाणं पृच्छ्यते नो चेत्तर्हि नेति भावः, भगवानाह—हंतेत्यादि, 'हन्त' इति प्रत्यवधारणे स्पृष्टाः ॥ एवमुक्ते भूयः पृच्छति—'ते ण'मित्यादि, ते भदन्त! स्वसीमागतचरमरूपाः प्रदेशाः किं जम्बूद्वीपः? किं वा लवणसमुद्रः?, इह यद् येन संस्पृष्टं तत्किञ्चित्तद्व्यपदेशमश्नुवानमुपलब्धं यथा सुराष्ट्रेभ्यः संक्रान्तो मगधदेशं मागध इति, किञ्चित्पुनर्न तद्व्यपदेशभाग् यथा तर्जन्या संस्पृष्टा ज्येष्ठाऽङ्गुलिर्ज्येष्ठैवेति, इहापि च जम्बूद्वीपचरमप्रदेशा लवणसमुद्रं स्पृष्टवन्तस्ततो व्यपदेशचिन्तायां संशय इति प्रश्नः, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीप एव णमिति निपातस्यावधारणार्थत्वात् ते चरमप्रदेशा द्वीपो, जम्बूद्वीपसीमावर्त्तित्वात्, न खलु ते जम्बूद्वीपचरमप्रदेशा लवणसमुद्रः, (न ते) जम्बूद्वीपसीमानमतिक्रम्य लवणसमुद्रसीमानमुपगताः किन्तु स्वसीमागता एव लवणसमुद्रं स्पृष्टवन्तस्तेन तटस्थतया संस्पर्शभावात् तर्जन्या

संस्पृष्टा ज्येष्ठाङ्गुलिरिव ते स्वव्यपदेशं भजन्ते न व्यपदेशान्तरं, तथा चाह—नो खलु ते जम्बूद्वीपचरमप्रदेशा लवणसमुद्रः । एवं 'लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स पदेसा' इत्यादि लवणविषयमपि सूत्रं भावनीयम् ॥ 'जंबुद्दीवे णं भंते!' इत्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे ये जीवास्ते 'उद्दाइत्ता' इति 'अवद्राय २' मृत्वा २ लवणसमुद्रे 'प्रत्यायान्ति' आगच्छन्ति ?, भगवानाह—गौतम! अस्तीति निपातोऽत्र बह्वर्थः, सन्त्येकका जीवा ये 'अवद्रायावद्राय' मृत्वा २ लवणसमुद्रे प्रत्यायान्ति, सन्त्येकका ये न प्रत्यायान्ति, जीवानां तथा तथा स्वस्वकर्म्मवशतया गतिवैचित्र्यसम्भवात् ॥ एवं लवणसूत्रमपि भावनीयं ॥ सम्प्रति जम्बूद्वीप इति नाम्नो निवन्धनं जिज्ञासिषुः प्रश्नं करोति—

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति जंबूद्दीवे २?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवंतस्स दाहिणेणं मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं गंधमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं उत्तरकुरा णाम कुरा पण्णत्ता, पाईणपडीणायता उदीणदाहिणविच्छिण्णा अद्धचंदसंठाणसंठिता एक्कारस जोयणसहस्साइं अट्ठ बायाले जोयणसते दोण्णि य एकोणवीसतिभागे जोयणस्स विक्खंभेणं ॥ तीसे जीवा पाईणपडीणायता दुहओ वक्खारपव्वयं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वतं पुट्ठा पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तेवण्णं जोयणसहस्साइं आयामेणं, तीसे धणुपट्ठं दाहिणेणं सट्ठिं जोयणसह-

स्साइं चत्तारि य अट्ठारसुत्तरे जोयणसते दुवालस य एकूणवीसतिभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ उत्तरकुराए णं भंते! कुराए केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोयमा! बहु-समरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णाम ए आलिंगपुक्खरेति वा जाव एवं एकोरुयदीववत्तव्वया जाव देवलोगपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!, णवरि इमं णाणत्तं—छधणुसहस्समूसिता दोछप्पन्ना पिट्ठकरंडसता अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति तिण्णि पलिओवमाइं देसूणाइं पलिओवमस्सासंखिज्जइभागेण ऊणगाइं जहन्नेणं तिन्नि पलिओवमाइं उक्कोसेणं एकूणपण्णराइंदियाइं अणुपालणा, सेसं जहा एगूरुयाणं ॥ उत्तरकुराए णं कुराए छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जंति, तंजहा—पम्हगंधा १ मियगंधा २ अम्ममा ३ सहा ४ तेयालीसे ५ सणिचारी ६ (सू० १४७)

'से केणट्ठेणं भंते!' इत्यादि, अथ केन 'अर्थेन' केन कारणेन भदन्त! एवमुच्यते जम्बूद्वीपो द्वीपः? इति, भगवानाह—

---

१ यद्यपि सूत्रकारैः जहा एगोरुयवत्तव्वयेति वाक्येनातिदिश्यते उत्तरकुरुस्वरूपमशेषं तथापि व्याख्यातमत्राशेषं तत्, न चैकोरुकद्वीपस्वरूपावसरे तल्लेशोऽपि व्याख्यातो वर्णनस्य, व्याख्यायकसूरिभिश्चान्यत्रातिदिश्यते कल्पद्रुमादिवर्णने यथोत्तरकुरुष्विति नात्र धृतं मूलसूत्रं न च परावर्त्तिता व्याख्या, परमेतदनुमीयते यदुत टीकाकृद्भिः प्राप्ता आदर्शा अत्रैव कल्पवृक्षादिवर्णनयुक्ता प्रथमोपस्थितैकोरुकवर्णनस्थाने च तद्रहिता अतिदिष्टा स्युः, चिन्त्यमेतावदेवात्र यत्र सूत्रकारशैल्याऽग्रे वर्णनीयपदार्थातिदेशस्तत्रैव सूत्रे, तत्र सामान्येन वर्णनं स्यादत्र विशेषेणेति युक्त विवेचनमत्र तत्रभवदीयादर्शानुसारेण वा, अत एवात्र प्रतिसूत्रं प्रतीकधृतिर्मलयगिरिपादानाम्

जम्बूद्वीपे णमिति वाक्यालङ्कारे द्वीपे मन्दरपर्वतस्य **'उत्तरेण'** उत्तरतः नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य **'दक्षिणेन'** दक्षिणतो गन्धमादनस्य वक्षस्कारपर्वतस्य **'पुरत्थिमेणं'**ति पूर्वस्यां दिशि माल्यवतो वक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायाम् **'अत्र'** एतस्मिन् प्रदेशे उत्तरकुरवो नाम कुरवः प्रज्ञप्ताः, सूत्र एकवचननिर्देशोऽकारान्ततानिर्देशश्च प्राकृतत्वात्, ताश्च कथम्भूताः? इत्याह—**'पाईणे'**त्यादि, प्राचीनापाचीनायता उदग्दक्षिणविस्तीर्णा अर्द्धचन्द्रसंस्थानसंस्थिता एकादश योजनसहस्राण्यष्टौ योजनशतानि **'द्विचत्वारिंशानि'** द्विचत्वारिंशदधिकानि द्वौ चैकोनविंशतिभागौ योजनस्य **'विष्कम्भेन'** दक्षिणोत्तरतया विस्तारेण, तथाहि—महाविदेहे मेरोरुत्तरत उत्तरकुरवो दक्षिणतो दक्षिणकुरवः, ततो यो महाविदेहक्षेत्रस्य विष्कम्भस्तस्मान्मन्दरविष्कम्भे शोधिते यदवशिष्यते तस्यार्द्धं यावत्परिमाणमेतावत्प्रत्येकं दक्षिणकुरूणामुत्तरकुरूणां च विष्कम्भः, उक्तं च—"वइदेहा विक्खंभा मंदरविक्खंभसोहियद्धं जं। कुरुविक्खंभं जाणसु" इति, स च यथोक्तप्रमाण एव, तथाहि—महाविदेहे विष्कम्भस्त्रयस्त्रिंशद् योजनसहस्राणि षट् शतानि चतुरशीत्यधिकानि योजनानां चतस्रः कलाः ३३६८४ क० ४, एतस्मान्मेरुविष्कम्भो दश योजनसहस्राणि शोध्यन्ते १०००० स्थितानि पश्चात्त्रयोविंशतिः सहस्राणि षट् शतानि चतुरशीत्यधिकानि योजनानां चतस्रः कलाः २३६८४ क० ४, एतेषामर्द्धे लब्धान्येकादश सहस्राणि अष्टौ शतानि द्विचत्वारिंशदधिकानि योजनानां द्वे च कले ११८४२ क० २ ॥ **'तीसे'** इत्यादि, तासामुत्तरकुरूणां जीवा उत्तरतो नीलवर्षधरसमीपे प्राचीनापाचीनायता उभयतः पूर्वपश्चिमभागाभ्यां वक्षस्कारपर्वतं यथाक्रमं माल्यवन्तं गन्धमादनं च **'स्पृष्टा'** स्पृष्टवती, एतदेव भावयति—**'पुरत्थिमिल्लाए'** इत्यादि, पूर्वया **'कोट्या'** अग्रभागेन पूर्वं वक्षस्कारपर्वतं माल्यवदभिधानं **'स्पृष्टा'** स्पृष्टवती **'पश्चिमया'** पश्चिमदिगवलम्बिन्या कोट्या पश्चिमवक्षस्कारपर्वतं गन्धमादनाख्यं स्पृष्टा, सा च जीवा

आयामेन त्रिपञ्चाशद् योजनसहस्राणि, कथमिति चेदुच्यते—इह मेरोः पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि भद्रशालवनस्य यदायामेन परिमाणं यच्च मेरोर्विष्कम्भस्य तदेकत्र मीलितं गन्धमादनमाल्यवद्वक्षस्कारपर्वतमूलपृथुत्वपरिमाणरहितं यावत्प्रमाणं भवति तावदुत्तरकुरूणां जीवायाः परिमाणम्, उक्तं च—"मंदरपुव्वेणायय वावीस सहस्स भद्दसालवणं । दुगुणं मंदरसहियं दुसेलरहियं च कुरुजीवा ॥ १ ॥" तच्च यथोक्तप्रमाणमेव, तथाहि—मेरोः पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि प्रत्येकं भद्रशालवनस्य दैर्घ्यपरिमाणं द्वाविंशतिर्योजनसहस्राणि, ततो द्वाविंशतिः सहस्राणि द्वाभ्यां गुण्यन्ते, जातानि चतुश्चत्वारिंशत् सहस्राणि ४४०००, मेरोश्च पृथुत्वपरिमाणं दश योजनसहस्राणि १००००, तानि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि ५४०००, गन्धमादनस्य माल्यवतश्च वक्षस्कारपर्वतस्य प्रत्येकं मूले पृथुत्वं पञ्च योजनशतानि, ततः पञ्च शतानि द्वाभ्यां गुण्यन्ते, जातं योजनसहस्रं, तत् पूर्वराशेरपनीयते, जातानि त्रिपञ्चाशद् योजनसहस्राणि ५३००० ॥ 'तीसे धणुपट्ठ'मित्यादि, तासामुत्तरकुरूणां धनुःपृष्ठं 'दक्षिणेन' दक्षिणतः, तच्च षष्टिर्योजनसहस्राणि चत्वारि योजनशतानि अष्टादशोत्तराणि द्वादश एकोनविंशतिभागा योजनस्य परिक्षेपेण, द्वयोरपि हि गन्धमादनमाल्यवद्वक्षस्कारपर्वतयोरायामपरिमाणमेकत्र मीलितमुत्तरकुरूणां धनुःपृष्ठपरिमाणं, "आयामो सेलाणं दोण्ह व मिलिओ कुरूण धणुपट्ठं" इति वचनात्, गन्धमादनस्य माल्यवतश्च वक्षस्कारपर्वतस्य प्रत्येकमायामपरिमाणं त्रिंशद् योजनसहस्राणि द्वे शते नवोत्तरे षट् च कलाः ३०२०९ क० ६, उभयोश्च मिलित आयामो यथोक्तपरिमाणो भवति ६०४१८ क० १२ ॥ 'उत्तरकुराए णं भंते !' इत्यादि, उत्तरकुरूणां भदन्त ! कुरूणां, सूत्रे एकवचनं प्राकृतत्वात्, कीदृश आकारभावस्वरूपस्य प्रत्यवतारः—सम्भवः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम ! बहुसमरमणीयो भूमिभाग उत्तरकुरूणां प्रज्ञप्तः, 'से जहानामए—आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि जगत्युपरि वनप-

ण्डवर्णकवत्तावद्वक्तव्यं यावत्तृणानां च मणीनां च वर्णो गन्धः स्पर्शः शब्दश्च सवर्णकः परिपूर्ण उक्तो भवति, पर्यन्तसूत्रं चेदम्—'दिव्वं नट्टं सज्जं गेयं पगीयाणं भवे एयारूवे ?, हंता सिया' इति॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे वह्वे **'खुड्डा खुड्डियाओ वावीओ'** इत्यादि, तथा त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि तोरणानि पर्वतकाः पर्वतकेष्वासनानि गृहकाणि गृहेष्वासनानि मण्डपका मण्डपेषु पृथिवीशिलापट्टकाः पूर्ववद् वक्तव्याः, तदनन्तरं चेदं वक्तव्यम्—'तत्थ णं वहवे उत्तरकुरा मणुस्सा मणुस्सीओ य आसयंति सयंति जाव कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरन्ति' एतद्व्याख्याऽपि प्राग्वत्। **'उत्तरकुराए णं भंते! कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु णमिति पूर्ववत् कुरुषु तत्र तत्र देशे **'तहिं तहिं'** इति तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे वहवः सरिकागुल्माः नवमालिकागुल्माः कोरण्डगुल्माः बन्धुजीवकगुल्माः मनोवद्यगुल्माः वीयकगुल्माः बाणगुल्माः (कणवीरगुल्माः) कुब्जकगुल्माः सिन्दुवारगुल्माः जातिगुल्माः मुद्गरगुल्मा यूथिकागुल्माः मल्लिकागुल्माः वासन्तिकगुल्माः वस्तुलगुल्माः कस्तूलगुल्माः सेवालगुल्माः अगस्त्यगुल्माः मगदन्तिगुल्माः चम्पकगुल्माः जातिगुल्माः नवनातिकागुल्माः कुन्दगुल्माः महाकुन्दगुल्माः, सरिकादयो लोकतः प्रत्येतव्याः, गुल्मा नाम ह्रस्वस्कन्धबहुकाण्डपत्रपुष्पफलोपेताः, ततः सर्वत्र विशेषणसमासः, सरिकादीनां चेमास्तिस्रः सङ्ग्रहणिगाथाः—"सेरियए नोमालियकोरंटयबन्धुजीवगमणोज्जा। बीययबाणयकणवीरकुज्ज तह सिंदुवारे य॥ १॥ जाईमोग्गर तह जूहिया य तह मल्लिया य वासंती। वत्थुलकत्थुलसेवालगत्थिमगदंतिया चेव॥ २॥ चंपकजाईनवनाइया य कुंदे तहा महाकुंदे। एवमणेगागारा हवंति गुम्मा मुणेयव्वा॥ ३॥" **'ते णं गुम्मा'** इत्यादि, **'ते'** अनन्तरोदिता णमिति वाक्यालङ्कारे गुल्माः **'दशार्द्धवर्णं'** पञ्चवर्णं **'कुसुमं'** जातावेकवचनं कुसुमसमूहं **'कुसुमयन्ति'** उत्पादयन्तीति भावः, येन कुसुमोत्पादनेन कुरूणां वहुसमरम-

णीयो भूमिभागो 'वायविहुयग्गसालेहिं'ति वातेन विधुताः—कम्पिता वातविधुतास्ताश्च ता अग्रशाखाश्च वातविधुताग्रशाखास्ताभिः, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, मुक्तो यः पुष्पपुञ्जः स एवोपचारः—पूजा मुक्तपुष्पपुञ्जोपचारस्तेन कलितः श्रियाऽतीव उपशोभमानस्तिष्ठति ॥ '**उत्तरकुराए णं कुराए**' इत्यादि, उत्तरकुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य २ देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहूनि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, हरुतालवनानि भेरुतालवनानि मेरुतालवनानि शालवनानि सरलवनानि सप्तपर्णवनानि पूगीफलीवनानि खर्जूरीवनानि नालिकेरीवनानि कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूलानि, ते च वृक्षाः मूलमंतो कंदमंतो इत्यादि विशेषणजातं जगत्युपरिवनपण्डकवर्णकवत्तावत्परिभावनीयं यावद् 'अणेगसगडरहजाणजोग्गगिल्लिथिल्लिसीयसंदमाणपडिमोयणेसु रम्मा पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा' इति, भेरुतालादयो वृक्षजातिविशेषाः शालादयः प्रतीताः ॥ '**उत्तरकुराए णं कुराए**' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहव उद्दालाः कोद्दाला मोद्दालाः कृतमाला नृत्तमाला वृत्तमाला दन्तमालाः शृङ्गमालाः शङ्खमालाः श्वेतमाला नाम '**द्रुमगणाः**' द्रुमजातिविशेषसमूहाः प्रज्ञप्ताः तीर्थकरगणधरैः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, ते च कथम्भूताः? इत्याह—कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला इत्यादि प्राग्वद् यावत् 'पडिमोयणा सुरम्मा' इति ॥ '**उत्तरकुराए णं कुराए**' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवस्तिलका लवकाः छत्रोपगाः शिरीषाः सप्तपर्णाः लुध्राः धवाः चन्दनाः अर्जुनाः नीपाः कुटजाः कदम्बाः पनसाः शालाः तमालाः प्रियालाः प्रियङ्गवः पारापता राजवृक्षा नन्दिवृक्षाः, तिलकादयो लोकप्रतीताः, एते कथम्भूताः? इत्याह—कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला इत्यादि सर्वं प्राग्वद् यावत् 'पडिमोयणा सुरम्मा' इति ॥ '**उत्तरकुराए णं कुराए**' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बह्वयः पद्मलता नागलता अशोकलताश्चम्पकलताश्चूतलता वनलता वासन्तिकलता-

अतिमुक्तकलता: कुन्दलता: श्यामलता:, एता: सुप्रतीता:, 'निच्चं कुसुमियाओ' इत्यादि विशेषणजातं प्रागवत् 'जाव पडिरूवाओ' इति ॥ 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे वह्वयो वनराजय: प्रज्ञप्ता:, इहै-कानेकजातीयानां वृक्षाणां पङ्क्तयो वनराजयस्तत: पूर्वोक्तसूत्रेभ्योऽस्य भिन्नार्थतेति न पौनरुक्त्यं, ताश्च वनराजय: प्रज्ञप्ता: कृष्णा: कृष्णा-वभासा इत्यादि विशेषणजातं प्रागवत् तावद्वक्तव्यं यावत् 'अणेगरहजाणजुग्गगिल्लिथिल्लिसीयसंदमाणियपडिमोयणाओ सुरम्माओ जाव पडिरू-वाओ' इति ॥ 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे वह्वो मत्ताङ्गका नाम द्रुमगणा: प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, किंविशिष्टास्ते? इत्याह—यथा 'से चंदप्पभमणिसलाग' इत्यादि, यथा चन्द्रप्रभादयो मद्यविधयो बहुप्रकारास्तत्र चन्द्रस्येव प्रभा—आकारो यस्या: सा चन्द्रप्रभा, मणिशलाकेव मणिशलाका, वरं च तत् सीधु च वरसीधु, वरा च सा वारुणी च वरवारुणी 'सुजायपुत्तपुप्फफलचोयनिज्जाससारबहुदव्वजुत्तिसंभारकालसंधियआसव' इति इहासव:—पत्रादि-वासकद्रव्यभेदादनेकप्रकार:, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायां लेश्यापदे रसचिन्तावसरे—'पत्तासवेइ वा पुप्फासवेइ वा फलासवेइ वा चोयासवेइ वा' ततोऽत्र निर्याससारशब्द: पत्रादिभि: सह प्रत्येकमभिसम्बन्धनीय:, पत्रनिर्याससार: पुष्पनिर्याससार: फलनिर्यास-सारश्चोयनिर्याससार:, तत्र पत्रनिर्यासो—धातकीपत्ररसस्तत्प्रधान आसव: पत्रनिर्याससार:, एवं पुष्पनिर्याससार: फलनिर्याससारश्च परिभावनीय:, चोयो—गन्धद्रव्यं तन्निर्याससारश्चोयनिर्याससार:, सुजाता:—सुपरिपाकागता:, 'बहुद्रव्ययुक्तिसंभारा' इति बहूनां द्रव्याणामुपबृंहकाणां युक्तयो—मीलनानि तासां संभार:—प्राभूत्यं येषु ते बहुद्रव्ययुक्तिसंभारा:, पुन: कथम्भूता:? इत्याह—'कालसं-धिय' इति कालसन्धिता: सन्धानं सन्धा काले—स्वस्वोचिते सन्धा कालसन्धा सा संजातैषामिति कालसन्धिता, तारकादिदर्शनादि-

तंप्रत्ययस्ततः पदद्वयपदद्वयमीलनेन विशेषणसमासः, सुजातपत्रपुष्पफलचोयनिर्यासबहुद्रव्ययुक्तिसम्भारकालसन्धितासवाः, मधुमेरकौ—मद्यविशेषौ, 'रिट्ठरत्नवर्णाभा' रिष्ठा या शास्त्रान्तरे जम्बूफलकलिकेति प्रसिद्धा, दुग्धजातिः—आस्वादतः क्षीरसदृशी, प्रसन्ना—सुराविशेषः, नेल्लकोऽपि सुराविशेषः, शतायुर्नाम या शतवारान् शोधिताऽपि स्वस्वरूपं न जहाति, 'खज्जूरमुद्दियासार' इति अत्रापि सारशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, खर्जूरसारो मृद्वीकासारः, तत्र ण(मू)लदलखर्जूरसारनिष्पन्न आसवविशेषः खर्जूरसारः, मृद्वीका—द्राक्षा तत्सारनिष्पन्न आसवविशेषो मृद्वीकासारः, कापिशायितं—मद्यविशेषः, सुपक्वः—सुपरिपाकागतो यः क्षोदरस—इक्षुरसस्तन्निष्पन्ना वरसुरा सुपक्वक्षोदरसवरसुरा, कथम्भूता एते मद्यविशेषाः? इत्याह—'वन्नगंधरसफासजुत्तबलविरियपरिणामा' वर्णेन सामर्थ्यादतिशायिना एवं गन्धेन रसेन स्पर्शेन च युक्ताः—सहिता बलवीर्यपरिणामा—बलहेतवो वीर्यपरिणामा येषां ते तथा, किमुक्तं भवति?—परमातिशयसंपन्नैर्वर्णगन्धरसस्पर्शैर्बलहेतुभिर्वीर्यपरिणामैश्चोपेता इति, पुनः किंविशिष्टाः? इत्याह—'बहुप्रकाराः' बहवः प्रकारा येषां जातिभेदेन ते बहुप्रकाराः, तथैव मत्ताङ्गका अपि द्रुमगणा मद्यविधिनोपपेता इति योगः, किंविशिष्टेन मद्यविधिना? इत्यत आह—'अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए' इति न एकः अनेकः, तत्रानेकः अनेकजातीयोऽपि व्यक्तिभेदाद्भवति तत आह—बहु—प्रभूतं विविधो—जातिभेदान्नानाप्रकारो बहुविविधः प्रभूतजातिभेदतो नानाविध इति भावः, स च केनापि निष्पादितोऽपि संभाव्यते तत आह—विश्रसया—स्वभावेन तथाविधक्षेत्रादिसामग्रीविशेषजनितेन परिणतो न पुनरीश्वरादिना निष्पादितो विश्रसापरिणतः, ततः पदत्रयस्य पदद्वयपदद्वयमीलनेन कर्मधारयः, सूत्रे च स्त्रीत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, ते च मद्यविधिनोपपेता न ताडादिवृक्षा इवाङ्कुरादिषु किन्तु फलेषु तथा चाह—'फलेहिं पुण्णा वीसंदंति' अत्र सप्तम्यर्थे तृतीया 'व्यत्ययोऽप्यासा'मिति वचनात्, फलेषु मद्यविधिभिरिति गम्यते 'पूर्णाः'

संभृता: 'विष्यन्दन्ति' स्रवन्ति, सामर्थ्यात्तानेवानन्तरोदितान् मद्यविधीन्, क्वचित् 'विसट्टंति' इति पाठस्तत्र विकसन्तीति व्याख्येयं, किमुक्तं भवति?—तेषां फलानि परिपाकागतमद्यविधिभि: पूर्णानि स्फुटित्वा तान् मद्यविधीन् मुञ्चन्तीति, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला:, 'मूलवन्त' इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपका इति १। 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो भृङ्गाङ्गका नाम द्रुमगणा: प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! 'जहा से' इत्यादि, यथा ते करकघटककलशकर्करीपादकाञ्चनिकाउदङ्कवार्द्धानीसुप्रतिष्ठकविष्टरपारीचषकभृङ्गारककरोटिकासरकपरकपात्रीस्थालमल्लकचपलितदकवारकविचित्रपट्टकशुक्तिचारुपीनका भाजनविधय:, एते प्राय: प्रतीता:, नवरं पादकाञ्चनिका—पादधावनयोग्या काञ्चनमयी पात्री उदङ्को—येनोदकमुदच्यते वार्द्धानी—गलन्तिका सरको—वंशमयच्छिक्का: शिक्काकृति: अप्रतीता लोकतो विशिष्टसंप्रदायाद्वाऽवसातव्या:, कथम्भूता:? इत्याह—काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्रा:, पुन: कथम्भूता:? इत्याह—बहुप्रकारा:, एकैकस्मिन् विधाववान्तरानेकभेदभावात्, तथैव ते भृङ्गाङ्गका अपि द्रुमगणा: 'अणेगबहुविविहविस्ससापरिणयाए' इत्यस्य व्याख्या पूर्ववत् भाजनविधिनोपपेता:, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपा: २॥ 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवस्त्रुटिताङ्गका नाम द्रुमगणा: प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, 'जहा से' इत्यादि, यथा ते आलिङ्ग्य(मुरव)मृदङ्गपणवपटहदर्दरककरटिडिण्डिमभम्भाहोरम्भाक्वणिताखरमुखीमकुन्दशङ्खिकापिरलीवच्चकपरिवादिनीवंशवेणुवीणासुघोषाविपञ्चीमहतीकच्छभीरिगसिका, तत्रालिङ्ग्य वाद्यत इति आलिङ्ग्य: मुरव:—वाद्यविशेष:, एष यकारान्तशब्द:, मृदङ्गो—लघुमर्दल:, पणवो—भाण्डपटहो लघुपटहो वा पटह:—प्रतीत:, दर्दरकोऽपि तथैव, करटी—सुप्रसिद्धा, डिण्डिम:—प्रथमप्रस्तावनासूचक: पणवविशेष:, भम्भा—

ढक्का, होरम्भा—महाढक्का, कणिता—काचिद् वीणा, खरमुखी—काहला, मकुन्दो—मरुजवाद्यविशेषो योऽभिलीनं प्रायो वाद्यते, शङ्खिका—लघुशङ्खरूपा तस्याः स्वरो मनाक् तीक्ष्णो भवति नतु शङ्खस्येवातिगम्भीरः, पिरलीवच्चकौ तृणरूपवाद्यविशेषौ, परिवादिनी—सप्ततन्त्रीवीणा वंशः—प्रतीतो वेणुः—वंशविशेषः सुघोषा—वीणाविशेषः, विपञ्ची—तन्त्री वीणा महती—शततन्त्रिका, कच्छभी रिगसिका च लोकतः प्रत्येतव्या, एताः कथम्भूताः? इत्याह—'तलतालकंसतालसुसंपउत्ता' तलं—हस्तपुटं तालाः—प्रतीताः कांस्यतालाः—कंसालिया एतैः 'सुसंप्रयुक्ताः' सुष्ठु—अतिशयेन सम्यग्—यथोक्तनीत्या प्रयुक्ताः—संबद्धा आतोद्यविधयः—आतोद्यभेदाः, पुनः कथम्भूताः? इत्याह—'निउणगंधव्वसमयकुसलेहिं फंदिया' इति, निपुणं यथा भवति एवं गन्धर्वसमये—नाट्यसमये कुशलास्तैः स्पन्दिता—व्यापारिता इति भावः, पुनः किंविशिष्टाः? इत्याह—'त्रिस्थानकरणशुद्धाः' आदिमध्यावसानरूपेषु त्रिषु स्थानेषु करणेन—क्रियया यथोक्तवादनक्रियया शुद्धा अवदाता न पुनरवस्थानव्यापारणरूपदोषलेशेनापि कलङ्किताः, तथैव ते तुटिताङ्गका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन, अस्य व्याख्यानं प्राग्वत्, 'ततविततघनशुषिरेण' ततं—वीणादिकं विततं—पटहादिकं घनं—कांस्यतालादि शुषिरं—वंशादि, एतद्रूपेण चतुर्विधेनातोद्यविधिनोपपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूलाः मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपकाः ३ । 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो दीपशिखा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! यथा तत् 'सन्ध्याविरागसमये' सन्ध्यारूपो विरुद्धस्तिमिररूपत्वाद्रागः सन्ध्याविरागस्तत्समये—तदवसरे नवनिधिपतेः—चक्रवर्त्तिन इव दीपिकाचक्रवालवृन्दं—ह्रस्वो दीपो दीपिका तासां चक्रवालं—सर्वं परिमण्डलरूपं वृन्दं दीपिकाचक्रवालवृन्दं, कथम्भूतमित्याह—'प्रभूतवर्त्ति' प्रभूता—बहुसङ्ख्याकाः स्थूरा वा वर्त्तयो यत्र तत्तथा, तथा 'पलित्तनेहं'ति पर्याप्तः—प्रतिपूर्णः स्नेहः—

तैलादिरूपो यस्य तत् पर्याप्तस्नेहं, 'धणिउज्जालिए' इति धणियं—अत्यर्थमुज्ज्वालितम्, अत एव तिमिरमर्दकं—तिमिरनाशकं, पुनः किंविशिष्टमित्याह—'**कणगनिगरणकुसुमियपारियातगवणप्पगासे**' कनकस्य निगरणं कनकनिगरणं गालितं कनकमिति भावः कुसुमितं च तत्पारिजातकवनं च कुसुमितपारिजातकवनं ततो द्वन्द्वसमासस्तद्वत्प्रकाशः—प्रभा आकारो यस्य तत्कनकनिगरणपारिजातकुसुमवनप्रकाशम्, एतावता समुदायविशेषणमुक्तम्, इदानीं समुदायसमुदायिनोः कथञ्चिद्भे(दभे)द इति ख्यापयन् समुदायविशेषणमेव विवक्षुः समुदायिविशेषणान्याह—'**कंचणमणिरयणे**'त्यादि, दीपिकाभिः शोभमानमिति सम्बन्धः, कथम्भूताभिर्दीपिकाभिः? अत आह—काञ्चनमणिरत्नानां काञ्चनमणिरत्नमया विमलाः—स्वाभाविकागन्तुकमलरहिता महार्हा—महोत्सवार्हाः विचित्रा—विचित्रवर्णोपेता दण्डा यासां ताः काञ्चनमणिरत्नविमलमहार्हविचित्रदण्डास्ताभिः, तथा सहसा—एककालं ज्वालिताश्च ता उत्सर्पिताश्च वर्त्त्युत्सर्प्पणेन सहसाप्रज्वालितोत्सर्पिताः, स्निग्धं—मनोहरं तेजो यासां ताः स्निग्धतेजसः, तथा दीप्यमानो—रजन्यां भास्वान् विमलोऽत्र धूल्याद्यपगमेन ग्रहगणो—ग्रहसमूहस्तेन समा प्रभा यासां ता दीप्यमानविमलग्रहगणसमप्रभाः, ततः पदद्वयपदद्वयमीलनेन कर्म्मधारयसमासः, सहसाप्रज्वालितोत्सर्पितस्निग्धतेजोदीप्यमानविमलग्रहगणसमप्रभास्ताभिः, तथा वितिमिराः करा यस्यासौ वितिमिरकरः स चासौ सूरश्च वितिमिरकरसूरस्तस्येव यः प्रसरति उद्द्योतः—प्रभासमूहस्तेन 'चिल्लियाहिं'ति देशीपदमेतद् दीप्यमानाभिरित्यर्थः, ज्वाला एव यदुज्ज्वलं प्रहसितमिव प्रहसितं तेनाभिरामा—अभिरमणीया ज्वालोज्ज्वलप्रहसिताभिरामास्ताभिः, अत एव शोभमानाभिः शोभमानाः, तथैव दीपशिखा अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविश्रसापरिणतोद्योतविधिनोपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत् प्रतिरूपा इति ४ ॥ '**उत्तरकुराए णं कुराए**' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे

बहवो ज्योतिषिका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! यथा तद् अचिरोद्गतं शरदि सूर्यमण्डलं यद्विवा यथैतद् उल्का-सहस्रं यथा वा दीप्यमाना विद्युत् अथवा यथा निर्धूमज्वलित उज्ज्वलः—उद्गता ज्वाला यस्य स तथा हुतवहः, सूत्रे च पदोपन्यासऽन्य-थात्वं प्राकृतत्वात्, ततः सर्वेषामेषां द्वन्द्वः समासः, कथम्भूता एते? इत्याह—'निद्धंतधोये'त्यादि, निध्मातेन—नितरामग्निसंयोगेन यद् धौतं—शोधितं तप्तं च तपनीयं ये च किंशुकाशोकजपाकुसुमानां विमुकुलितानां—विकसितानां पुञ्जाः ये च मणिरत्नकिरणाः यश्च जात्यहिङ्गुलकनिकरस्तद्रूपेभ्योऽप्यतिरेकेण—अतिशयेन यथायोगं वर्णतः प्रभया च रूपं—स्वरूपं येषां ते निध्मातधौततप्ततपनीयकिंशु-काशोकजपाकुसुमविमुकुलितपुञ्जमणिरत्नकिरणजात्यहिङ्गुलकनिकररूपातिरेकरूपाः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तथैव ते ज्योति-षिका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविश्रसापरिणतेनोद्योतविधिनोपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् याव-त्प्रतिरूपाः ५ ॥ 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवश्चित्राङ्गका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! यथा तत् प्रेक्षागृहं विचित्रं—नानाविधचित्रोपेतम्, अत एव रम्यं—रमयति मनांसि द्रष्टॄणामिति रम्यं, बाहुलकात् कर्त्तरि यप्रत्ययः, वराश्च ताः कुसुमदाममालाश्च—ग्रथितकुसुममाला वरकुसुमदाममालास्ताभिरुज्ज्वलं दे-दीप्यमानत्वाद् वरकुसुमदाममालोज्ज्वलं, तथा भास्वान्—विकसिततया मनोहरतया च देदीप्यमानो मुक्तो यः पुष्पपुञ्जोपचारस्तेन क-लितं भास्वन्मुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितं, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तथा विरल्लितानि—विरलीकृतानि विचित्राणि यानि माल्यानि ग्रथितपुष्पमालास्तेषां यः श्रीसमुदयस्तेन प्रगल्भं—अतीव परिपुष्टं विरल्लितविचित्रमाल्यश्रीसमुदयप्रगल्भं, तथा ग्रन्थिमं—यत् सूत्रेण ग्र-थितं वेष्टिमं—यत्पुष्पमुकुट इव उपर्युपरि शिखराकृत्या मालास्थापनं पूरिमं—यद्वघुच्छिद्रेषु पुष्पनिवेशेन पूर्यते सङ्घातिमं—यत्पुष्पं पुष्पेण

परस्परं नालप्रवेशेन संयोज्यते, ग्रन्थिमं च वेष्टिमं च पूरिमं च सङ्घातिमं चेति समाहारो द्वन्द्वस्तेन माल्येन छेकशिल्पिना—परमदक्षेण शिल्पिना विभागरहितेन यद् यत्र योग्यं ग्रन्थिमं वेष्टिमं पूरिमं सङ्घातिमं च तत्र तेन सर्वतः—सर्वासु दिक्षु समनुवद्धं, तथा प्रविरलैः —लम्बमानैः, तत्र विरलत्वं मनागप्यसंहतत्वमात्रेण भवति ततो विप्रकृष्टत्वप्रतिपादनार्थमाह—विप्रकृष्टैः—बृहदन्तरालैः पञ्चवर्णैः कुसुमदामभिः शोभमानं 'वणमालाकयग्गए चेवे'ति वनमाला—चन्दनमाला कृताऽग्रे यस्य तद् वनमालाकृताग्रं तथाभूतं सद् दीप्यमानं, तथैव चित्राङ्गका अपि नाम द्रुमगणा अनेकवहुविविधविस्रसापरिणतेन ग्रन्थिमवेष्टिमपूरिमसङ्घातिमेन चतुर्विधेन माल्यविधिनोपपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि यावत्प्रतिरूपकाः ६ ॥ 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे चित्ररसा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, यथा तत्परमान्नं—पायसं भवेदिति सम्बन्धः, किंविशिष्टमित्याह—ये सुगन्धाः—प्रवरगन्धोपेताः, समासान्तविधेरनित्यत्वादत्रैतद्रूपस्य समासान्तस्याभावो यथा सुरभिगन्धेन वारिणा इत्यत्र, वराः—प्रधाना दोषरहितक्षेत्रकालादिसामग्रीसंपादितात्मलाभा इति भावः, कमलशालितन्दुलाः, यच्च विशिष्टं—विशिष्टगवादिसम्बन्धि निरुपहतमिति—पाकादिभिरविनाशितं दुग्धं तै राद्धं—पक्वं परमकलमशालिभिः परमदुग्धेन च यथोचितमात्रापाकेन निष्पादितमित्यर्थः, तथा शारदं घृतं गुडः खण्डं मधु वा शर्करापरपर्यायं मेलितं यत्र तत् शारदघृतगुडखण्डमधुमेलितं, निष्ठान्तस्य परनिपातः प्राकृतत्वात् सुखादिदर्शनाद्वा, अत एवातिरसमुत्तमवर्णगन्धवत्, यथा वा राज्ञश्चक्रवर्त्तिनो भवेत् कुशलैः सूपपुरुषैः—सूपकारैः पुरुषैः सज्जितो—निष्पादितः चतुष्कल्पसेकसिक्त इवौदनः, चत्वारश्च कल्पाः सेकविषया रसवतीशास्त्राभिज्ञेभ्यो भावनीयाः, स चौदनः किंविशिष्टः? इत्याह—कलमशालिनिर्वर्त्तितः—कलमशालिमयो विपक्वो—विशिष्टपरिपाकमागतः, 'सव्वप्फमिउविसयसक-

लसित्थे' इति सवाष्पानि—वाष्पं मुञ्चन्ति मृदूनि—कोमलानि चतुष्कलपसेकादिना परिकर्मितत्वात् विशदानि सर्वथा तुपादिमलापग-मात् सकलानि—परिपूर्णानि सित्थूनि यत्र स सवाष्पमृदुविशदसकलसित्थुः, अनेकानि यानि शालनकानि—पुष्पफलप्रभृतीनि तैः संयुक्तः—समुपेतोऽनेकशालनकसंयुक्तः, तथा चामोदक इति सम्बन्धः, किंविशिष्टः ? इत्याह—परिपूर्णानि—समस्तानि द्रव्याणि—एला-प्रभृतीनि उपस्कृतानि—नियुक्तानि यत्र स परिपूर्णद्रव्योपस्कृतः, निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, सुसंस्कृतो—यथोक्तमात्राग्नि-परितापादिना परमसंस्कारमुपनीतः, वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तवलवीर्यपरिणाम इति वर्णगन्धरसस्पर्शैः सामर्थ्यादतिशायिभिर्युक्ताः—सहिता वलवीर्यहेतवः परिणामा यस्य स तथा, अतिशायिभिर्वर्णादिभिर्वलवीर्यहेतुपरिणामैश्चोपपेता इति भावः, तत्र वलं—शारीरं वीर्य—आन्त-रोत्साहः, 'इंदियवलपुट्ठिवद्धणे' इति, इन्द्रियाणां—चक्षुरादीनां वलं—स्वस्वविषयग्रहणपाटवमिन्द्रियवलं तस्य पुष्टिः—अतिशायी पोष इन्द्रियवलपुष्टिस्तां वर्द्धयति, नन्द्यादित्वादनः, इन्द्रियवलपुष्टिवर्द्धनः, तथा क्षुत्त्व पिपासा च क्षुत्पिपासे तयोर्मथनः क्षुत्पिपासामथनः, तथा प्रधानः—कथितो यो गुडो यद्वा कथितं—प्रधानं खण्डं यदिवा कथिता प्रधाना मत्स्यण्डी—खण्डशर्करा यच्च प्रधानं घृतं तानि उपनीतानि—योजितानि यस्मिन् स प्रधानकथितगुडखण्डमत्स्यण्डीघृतोपनीतः, निष्ठान्तस्य परनिपातोऽत्रापि सुखादिदर्शनात्, स इव मोदकः श्लक्ष्णसमितिगर्भः—अतिश्लक्ष्णकणिकामूलदलः प्रशस्तः, तथैव चित्ररसा अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन भोजनविधिनोपपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्तो यावत्प्रतिरूपाः ७ ॥ 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो मण्यङ्गका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, यथा ते हारोऽर्द्धहारो वेष्टनं मुकुटः कुण्डलं वामोत्तको हेमजालं मणिजालं कनकजालं सूत्रकमुच्चीकटकं खुड्डकाम(ड्डका ए)कावलिः कण्ठसूत्रं मकरिका उरस्क-

न्धग्रैवेयकं श्रोणीसूत्रकं चूडामणिः कनकतिलकं फुल्लकं सिद्धार्थकं कर्णपाली शशी सूर्यो वृषभश्चक्रकं तलभङ्गकं तुडितं हस्तमालकं ह-
र्षकं केयूरं वलयं प्रालम्बमङ्गुलीयकं वलक्षं दीनारमालिका काञ्ची मेखला कलापः प्रतरं प्रातिहार्यकं पादोज्ज्वलं घण्टिका किङ्किणी
रत्नोरुजालं वरनूपुरं चरणमालिका कनकनिगरमालिकेति भूषणविधयो बहुप्रकाराः, एते च लोकतः प्रत्येतव्याः, कथम्भूताः ? इत्याह—
काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्राः, तथैव ते मण्यङ्गका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन भूषणविधिनोपपेताः, कुशविकुश-
विशुद्धवृक्षमूला यावत्प्रतिरूपा इति ८ ॥ 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र
प्रदेशे बहवो गेहाकारा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण ! हे आयुष्मन् ! यथा ते प्राकाराट्टालकचरिकाद्वारगोपुरप्रासादाकाशतलम-
ण्डपैकशालकद्विशालकत्रिशालकचतुःशालकगर्भगृहमोहनगृहवलभीगृहचित्रशालमालिकभक्तिगृहवृत्तत्र्यस्रचतुरस्रनन्द्यावर्त्तसंस्थितानि पा-
ण्डुरतलहर्म्यं मुण्डमालहर्म्यं, अथवा धवलगृहाणि अर्द्धमागधविभ्रमाणि शैलसुस्थितानि अर्द्धशैलसुस्थितानि कूटाकाराढ्यानि सुविधि-
कोष्ठकानि, तथाऽनेकानि गृहाणि शरणानि लयनानि 'अप्पेगे' इति भवनविकल्पा अत्र बहुविकल्पाः, एतेषां च परस्परं विशेषो
वास्तुविद्यातोऽवसातव्यः, कथम्भूता एते ? इत्याह—'विडंगे'त्यादि, विटङ्कः—कपोतपाली जालवृन्दं—गवाक्षसमूहः निर्यूहो—गृहैकदे-
शविशेषः अपवरकः—प्रतीतः चन्द्रशालिका—शिरोगृहं, एवंरूपाभिर्विभक्तिभिः कलिताः, तथैव गृहाकारा अपि द्रुमगणा अनेकबहु-
विविधविस्रसापरिणतेन भवनविधिनेति सम्बन्धः, किंविशिष्टेन ? इत्याह—'सुहारुहणसुहोत्ताराए' इति सुखेनारोहणं—ऊर्द्ध्वं गमनं
सुखेनोत्तारः—अधस्तादवतरणं यस्य दर्दरसोपानपङ्क्त्यादिभिः स सुखारोहसुखोत्तारस्तेन, तथा सुखेन निष्क्रमणं प्रवेशश्च यत्र स सुख-
निष्क्रमणप्रवेशस्तेन, कथं सुखारोहसुखोत्तारः ? इत्याह—दर्दरसोपानपङ्क्तिकलितेन, हेतौ तृतीया, ततोऽयमर्थः—यतो दर्दरसोपानपङ्क्तिक-

लितस्तत: सुखारोहसुखोत्तार:, 'पतिरिक्कसुहविहाराए' प्रतिरिक्ते–एकान्ते सुखविहार:–अवस्थानशयनादिरूपो यत्र प्रतिरिक्तसुखविहारस्तेनोपपेता, सर्वत्र स्त्रीत्वनिर्देश: प्राकृतत्वात्, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपका: ९ ॥ 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवोऽनग्नका नाम द्रुमगणा: प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, 'जहा से' इत्यादि, आजिनकं नाम–चर्ममयं वस्त्रं क्षौमं–कार्पासिकं कम्बल:–प्रतीत: दुकूलं–वस्त्रजातिविशेष: कौसेयं–त्रसरितन्तुनिष्पन्नं कालमृगपट्ट:–कालमृगचर्म अंशुकचीनांशुकानि–दुकूलविशेषरूपाणि पट्टानि–प्रतीतानि आभरणचित्राणि–आभरणैश्चित्राणि–विचित्राणि आभरणचित्राणि 'सण्ह' इति श्लक्ष्णानि कल्याणकानि–परमवस्त्रलक्षणोपेतानि गम्भीराणि–निपुणशिल्पिनिष्पादिततयाऽलब्धस्वरूपमध्यानि 'नेहल'त्ति स्नेहलानि–स्निग्धानि 'गया(ज्ज)लानि' उद्वेल्यमानानि परिधीयमानानि वा गर्जयन्ति, शेषं सम्प्रदायादवसातव्यं, तदन्तरेण सम्यक् पाठशुद्धेरपि कर्त्तुमशक्यत्वात्, वस्त्रविधयो बहुप्रकारा भवेयुर्वरपट्टनोद्गता:–प्रसिद्धतत्तत्पत्तनविनिर्गता 'विविधवर्णरागकलिता' विविधैर्वर्णैर्विविधै रागै:–मञ्जिष्ठारागादिभि: कलिता:, तथैवानग्नका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन वस्त्रविधिनोपपेता:, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपा: १० । 'उत्तरकुराए णं भंते! कुराए मणुयाण'मित्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु भदन्त! 'मनुजानां' मनुष्याणां कीदृश: कीदृश आकारभाव:, प्रत्यवतारस्वरूपसम्भव इति भाव:, प्रश्न: ?, भगवानाह–गौतम! 'ते ण'मिति पूर्ववत् मनुष्या 'अतीव' अतिशयेन सोमं–दृष्टिसुभगं चारु रूपं येषां तेऽतीवसोमचारुरूपा: 'भोगुत्तमगयलक्खणा' इति उत्तमशब्दस्य विशेषणस्यापि परनिपात: प्राकृतत्वात्, उत्तमाश्च ते भोगाश्च उत्तमभोगास्तद्गतानि–तत्संसूचकानि लक्षणानि येषां ते उत्तमभोगगतलक्षणा:, तथा भोगै. सश्रीका:–सशोभाका भोगसश्रीका:, तथा सुजातानि–

यथोक्तप्रमाणोपपन्नत्वेन शोभनजन्मानि यानि सर्वाणि उरःशिरःप्रभृतीन्यङ्गानि तैः सुन्दरमङ्गं—समग्रं वपुर्येषां ते सुजातसर्वाङ्गसुन्दराङ्गाः, '**सुपइट्ठियकुम्मचारुचरणा**' इति सुष्ठु—शोभनं यथा भवति एवं प्रतिष्ठिताः कूर्म्मवदुन्नतत्वेन चारवश्चरणाः—पादा येषां ते सुप्रतिष्ठितकूर्मचारुचरणाः, '**रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतला**' इति रक्तं—लोहितमुत्पलपत्रवत् मृदु—मार्दवोपेतमकर्कशमिति भावः तच्चासुकुमारमपि संभवति यथा घृष्टमृष्टपाषाणप्रतिमा तत आह—सुकुमारं—शिरीषकुसुमवदकठिनं कोमलं—मनोज्ञं चरणतलं येषां ते रक्तोत्पलपत्रमृदुसुकुमारकोमलतलाः, तथा '**नगनगरमगरसागरचक्कंकहरंकलक्खणंकियचलणा**' नगः—पर्वतः नगरमकरसागरचक्राणि—प्रतीतानि अङ्कधरः—चन्द्रमा अङ्कः—तस्यैव लाञ्छनं मृगः एवंरूपाणि यानि लक्षणानि तैरङ्कितौ चरणौ येषां ते नगनगरमकरसागरचक्राङ्कधराङ्कलक्षणाङ्कितचरणाः, '**अणुपुव्वसुसाहयंगुलीया**' इति पूर्वस्याः पूर्वस्या अनु लघव इति गम्यते अनुपूर्वाः, किमुक्तं भवति?—पूर्वस्याः पूर्वस्या उत्तरोत्तरा नखं नखेन हीनाः "नहं नहेण हीणाओ" इति **सामुद्रिकशास्त्रवचनात्** सुसंहताः—सुश्लिष्टा अङ्गुलयो येषां ते अनुपूर्वसुसंहताङ्गुलीकाः, '**उन्नयतणुतंबनिद्धनखा**' उन्नता—ऊर्द्ध्वं नतास्तनवस्ताम्राः '**स्निग्धाः**' स्निग्धच्छाया नखाः पादगता इति सामर्थ्यलभ्यं तद्वर्णनाधिकाराद् येषां ते उन्नततनुताम्रस्निग्धनखाः, '**संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा**' सम्यक्स्वरूपप्रमाणतया स्थितौ संस्थितौ सुश्लिष्टौ—मांसलौ गुल्फौ—गुलकौ येषां ते संस्थितसुश्लिष्टगूढगुल्फाः, '**एणीकुरुविंदवत्तवट्टाणुपुव्वजंघा**' इति एण्या इव—हरिण्या इव कुरुविन्दस्येव वर्त्तं—सूत्रवलनकं तस्येव वृत्ते—वर्त्तुले आनुपूर्व्येण—क्रमेण ऊर्द्ध्वं स्थूरे स्थूरतरे इति गम्यं जङ्घे येषां ते एणीकुरुविन्दवर्त्तवृत्तानुपूर्वजङ्घाः '**समुग्गनिमग्गगूढजाणू**' समुद्गकस्येव—समुद्गकपक्षिण इव निमग्ने—अन्तःप्रविष्टे गूढे—मांसलत्वादनुद्धते जानुनी—अष्ठीवन्तौ येषां ते समुद्गनिमग्नगूढजानवः, '**गयससणसुजायसन्निभोरू**' गजो—हस्ती श्वसिति—प्राणित्यनेनेति

श्वसनः—शुण्डादण्डः गजस्य श्वसनो गजश्वसनस्तस्य सुजातस्य—सुनिष्पन्नस्य सन्निभौ ऊरू येषां ते गजश्वसनसुजातसन्निभोरवः, सुजातशब्दस्य विशेषणस्यापि सतः परनिपातः प्राकृतत्वात्, **'वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासियगई'** अत्रापि मत्तशब्दस्य विशेष्यात्परनिपातः प्राकृतत्वात्, मत्तो—मदोन्मत्तो यो वरः—प्रधानो भद्रजातीयो वारणो—हस्ती तस्य तुल्यः—सदृशो विक्रमः—पराक्रमो विलासिता—विलासः संजातोऽस्या विलासिता तारकादिदर्शनादितप्रत्ययः विलासवती गतिः—गमनं येषां ते वरवारणमत्ततुल्यविक्रमविलासितगतयः, **'पमुइयवरतुरगसीहवरवट्टियकडी'** प्रमुदितो—रोगशोकाद्युपद्रवाभावात्, क्वचित्पुनरेवं पाठः 'पमुइयवरतुरगसिंहअइरेगवट्टियकडी' तत्र प्रमुदितयो—रोगशोकाद्युपद्रवरहितत्वेनातिपुष्टयोर्वरयोस्तुरगसिंहयोः कट्याः सकाशादतिशयेन वर्त्तिता—वृत्तिः (त्ता) कटिर्येषां ते प्रमुदितवरतुरगसिंहातिरेकवर्त्तितकटयः, **'वरतुरयसुजायगुज्झदेसा'** वरतुरगस्येव सुजातः—संगुप्तत्वेन सुनिष्पन्नो गुह्यदेशो येषां ते वरतुरगसुजातगुह्यदेशाः, पाठान्तरं **'पसत्थवरतुरगगुज्झदेसा'** व्यक्तं, **'आइण्णहयव्व निरुवलेवा'** आकीर्णो—गुणैर्व्याप्तः स चासौ हयश्च आकीर्णहयस्तद्वन्निरुपलेपा—लेपरहितशरीरमलाः, यथा जात्याश्वो मूत्रपुरीषाद्यनुपलिप्तगात्रो भवति तथा तेऽपीति भावः, **'साहयसोणंदमुसलदप्पणनिगरियवरकणगच्छरुसरिसवरवइरवलियमज्झा'** संहृतसौनन्दं नाम ऊर्ध्वीकृतमुदूखलाकृति काष्ठं तच्च मध्ये तनु उभयोः पार्श्वयोर्बृहत्, मुसलं—प्रतीतं, दर्पणशब्देनेहावयवे समुदायोपचाराद्दर्पणगण्डो गृह्यते, तथा यन्निगरितं—सारीकृतं वरकनकं तस्य—तन्मयं त्सरुः—खड्गादिमुष्टिर्निगरितवरकनकत्सरुस्तैः सदृशः तेषामिवेत्यर्थः, तथा वरवज्रस्येव क्षामो वलितो—वलयः संजाता अस्य वलितः—वलित्रयोपेतो मध्यो—मध्यभागो येषां ते संहृतसौनन्दमुसलदर्पणनिगरितवरकनकत्सरुसदृशवरवज्रवलितमध्याः **'झसविहगसुजायपीणकुच्छी'** झषो—मत्स्यः पक्षी—प्रतीतस्तयोरिव सुजातौ—सुनिष्पन्नौ जन्मदोषरहिताविति भावः पीनौ—उपचितौ

कुक्षी येषां ते मत्स्यपक्षिसुजातपीनकुक्षयः, **'झषोदरा'** झषस्येवोदरं येषां ते झषोदराः, **'सुइकरणा'** इति शुचीनि—पवित्राणि निरुपलेपानीति भावः करणानि—चक्षुरादीनीन्द्रियाणि येषां ते शुचिकरणाः, कचिदेव 'पम्हवियडनाभा' इति पाठस्तत्र पद्मवद् विकटा—विस्तीर्णा नाभिर्येषां ते पद्मविकटनाभाः, अत एव निर्देशादनाड्यपि समासान्तः, एवमुत्तरपदेऽपि, **'गंगावत्तयपयाहिणावत्ततरंगभंगुरविकिरणतरुणबोहियअ(आ)कोसायंतपउमगंभीरवियडनाभा'** गङ्गावर्त्तक इव दक्षिणावर्त्ता तरङ्गैरिव तरङ्गैस्तिसृभिर्वलिभिर्भङ्गुरा तरङ्गभङ्गुरा रविकिरणैः—सूर्यकरैस्तरुणं—नवं तत्प्रथमं तत्कालमित्यर्थः यद्बोधितं—उन्निद्रीकृतमत एव **'आकोसायंत'** इत्याकोशायमानं विकचीभवदित्यर्थः पद्मं तद्वद् गम्भीरा च विकटा च नाभिर्येषां ते गङ्गावर्त्तकप्रदक्षिणावर्त्ततरङ्गभङ्गुररविकिरणतरुणबोधिताकोशायमानपद्मगम्भीरविकटनाभाः, **'उज्जुयसमसहियसुजायजच्चतणुकसिणनिद्धआइज्जलडहसुकुमालमिउरमणिज्जरोमराई'** ऋजुका—न वक्रा समा—न काप्युदन्तुरा सहिता—सन्तता न त्वपान्तरालव्यवच्छिन्ना सुजाता—सुजन्मा न तु कालादिवैगुण्याद्दुर्जन्मा अत एव जात्या—प्रधाना तन्वी न तु स्थूरा कृष्णा न तु मर्कटवर्णा, कृष्णमपि किञ्चिन्निर्दीप्तिकं भवति तत आह—स्निग्धा आदेया—दर्शनपथमुपगता सती उपादेया सुभगा इति भावः, एतदेव विशेषणद्वारेण समर्थयते—'लडहा' सलवणिमा अत एव आदेया, तथा सुकुमारा—अकठिना, तत्राकठिनमपि किञ्चित्कर्कशस्पर्शं भवति तत आह—मृद्वी अत एव रमणीया—रम्या रोमराजिः—तनूरुहपङ्क्तिर्येषां ते ऋजुकसमसहितसुजातजात्यतनुकृष्णस्निग्धादेयलटहसुकुमारमृदुरमणीयरोमराजयः, **'सन्नयपासा'** सम्यग्—अधोऽधःक्रमेण नतौ पार्श्वौ येषां ते सन्नतपार्श्वाः अधोऽधःक्रमावनतपार्श्वा इत्यर्थः, तथा **'संगयपासा'** इति संगतौ—देहप्रमाणोचितौ पार्श्वौ येषां ते सङ्गतपार्श्वा अत एव सुन्दरपार्श्वाः **'सुजायपासा'** इति सुनिष्पन्नपार्श्वाः **'मियमाइयपीणरइयपासा'** मितं—परिमितं यथा भवति देहानुसारेणेत्यर्थः आयतौ—दीर्घौ पीनौ-

उपचितौ मांसलाविति भावः रचितौ—स्वस्वनामकर्मोदयनिर्वर्त्तितौ रतिदौ वा—रम्यौ पार्श्वौ येषां ते तथा, '**अकरंडयकणगरुयगनिम्मलसुजायनिरुवहयदेहधारी**' अविद्यमानं—मांसलतयाऽनुपलक्ष्यमाणं करण्डकं—पृष्ठवंशास्थिकं यस्य देहस्य सोऽकरण्डकस्तं कनकस्येव रुचको—रुचिर्यस्य स कनकरुचिस्तं निर्मलं—स्वाभाविकागन्तुकमलरहितं सुजातं—बीजाधानादारभ्य जन्मदोषरहितं निरुपहतं—ज्वरादिदंशाद्युपद्रवरहितं देहं धारयन्तीत्येवंशीला अकरण्डककनकरुचकनिर्म्मलसुजातनिरुपहतदेहधारिणः '**कणगसिलायलुज्जलपसत्थसमतलोवचियविच्छिन्नपिहुलवच्छा**' कनकशिलातलवदुज्ज्वलं च—निर्मलं प्रशस्तं च—अतिप्रशस्यं समतलं—न विषमोन्नतं उपचितं—मांसलं विस्तीर्णम्—ऊर्द्ध्वाधोऽपेक्षया पृथुलं दक्षिणोत्तरतो वक्षो येषां ते कनकशिलातलोज्ज्वलप्रशस्तसमतलोपचितविस्तीर्णपृथुलवक्षसः '**सिरिवच्छंकियवच्छा**' इति श्रीवृक्षेणाङ्कितं—लाञ्छितं वक्षो येषां ते श्रीवृक्षलाञ्छितवक्षसः '**जुगसन्निभपीणरइयपीवरपउट्ठसंठियसुसिलिट्ठविसिट्ठघणथिरसुबद्धसंधी पुरवरफलिहवट्टियभुया**' युगसन्निभौ—वृत्ततया आयततया च यूपतुल्यौ पीनौ—उपचितौ रतिदौ—पश्यतां दृष्टिसुखदौ पीवरप्रकोष्ठौ—अकृशकलाचिकौ संस्थितौ—विशिष्टसंस्थानौ सुश्लिष्टाः—संगताः विशिष्टाः—प्रधानाः घनाः—निविडाः स्थिराः—नातिश्लथाः सुबद्धाः—स्नायुभिः सुष्ठु नद्धाः सन्धयः—सन्धानानि ययोस्तौ तथा पुरवरपरिघवत्—महानगरार्गलावद् वर्त्तितौ च बाहू येषां ते युगसन्निभपीनरतिदपीवरप्रकोष्ठसंस्थितसुश्लिष्टविशिष्टघनस्थिरसुबद्धसन्धिपुरवरपरिघवर्त्तितभुजाः, पाठान्तरं '**जुगसन्निभपीणरइयपउट्ठसंठियोवचियघणथिरसुबद्धसुनिगूढपव्वसंधी**' युगसन्निभौ वर्त्तुलत्वेन पीनौ रतिदौ प्रकोष्ठौ येषां ते तथा, तथा संस्थिताः—सम्यक्स्थिता उपचिता—मांसला घना—निविडाः स्थिरा—अचाल्याः, कुतः? इत्याह—सुबद्धा—दृढबन्धनबद्धा निगूढा—मांसलत्वादनुपलक्ष्याः पर्वसन्धयो हस्तादिगता येषां ते तथा, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, '**भुयगीसरविपुलभोगआयाणफलि-**

हउच्छूढदीहबाहू' भुजगेश्वरो—नागराजस्तस्य यो विपुलो—महान् भोगो—देहो भुजगेश्वरविपुलभोगः तथा आदीयते—द्वारस्थगनार्थं गृह्यत इत्यादानः स चासौ परिघश्च आदानपरिघः 'उच्छूढ'त्ति अवक्षिप्तः—अर्गलास्थानान्निष्कासितो द्वारपृष्ठभागे दत्त इत्यर्थः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, भुजगेश्वरविपुलभोगश्च आदानपरिघावक्षिप्तश्च ताविव दीर्घौ बाहू येषां ते तथा, **'रत्ततलोवतियमांसलसुजायअच्छिद्दजालपाणी'** रक्ततलौ—लोहिततलौ अवपतितौ—क्रमेण हीयमानोपचयौ मृदुकौ—कोमलौ मांसलौ सुजातौ—जन्मदोषरहितौ अच्छिद्रजालौ—अङ्गुल्यन्तरालसमूहरहितौ पाणी—हस्तौ येषां ते तथा, पाठान्तरं 'रत्ततलोवइयमंसलसुजायपसत्थलक्खणअच्छिद्दजालपाणी' तत्र प्रशस्तलक्षणौ—शुभचिह्नाविति व्याख्येयं, शेषं तथैव, **'पीवरकोमलवरंगुलीया'** इति पीवराः—स्वशरीरानुक्रमोपचयाः कोमला—मृदवो वराः—प्रशस्तलक्षणोपेता अङ्गुलयो येषां ते पीवरकोमलवराङ्गुलिकाः, पाठान्तरं 'पीवरवट्टियसुजायकोमलवरंगुलीया' व्यक्तम्, **'आयंबतलिणसुइरुइलनिद्धनखा'** आताम्रा—ईषद्रक्ताः तलिनाः—प्रतलाः शुचयः—पवित्रा रुचिरा—दीप्ताः स्निग्धा—अरूक्षा नखाः—कररुहा येषां ते तथा आताम्रतलिनशुचिरुचिरस्निग्धनखाः, **'चंदपाणिलेखा'** चन्द्र इव चन्द्राकारा पाणौ रेखा येषां ते चन्द्रपाणिरेखाः, एवं सूर्यपाणिरेखाः शङ्खपाणिरेखाश्चक्रपाणिरेखा दिक्सौवस्तिको—दिक्प्रोक्षको दक्षिणावर्त्तः स्वस्तिक इत्यन्ये स पाणौ रेखा येषां ते दिक्सौवस्तिकपाणिरेखाः, एतदेवानन्तरोक्तं विशेषणपञ्चकं तत्प्रशस्तताप्रकर्षप्रतिपादनाय सङ्ग्रहवचनेनाह—चन्द्रसूर्यशङ्खचक्रदिक्सौवस्तिकरेखाः, एतदनन्तरं क्वचिदेवं पाठः—'रविससिसंखवरचक्कसोत्थियविभिन्नसुविरइयपाणिरेहा' व्यक्तो नवरं विभक्ता—विभागवत्यः सुविरचिताः—सुष्ठु कृताः स्वकीयकर्म्मणा **'अणेगवरलक्खणुत्तमपसत्थसुइरइयपाणिलेहा'** अनेकैः—अनेकसङ्ख्यैर्वरैः—प्रधानैर्लक्षणैरुत्तमाः प्रशस्ताः—प्रशंसास्पदीभूताः शुचयः—पवित्रा रचिताः—स्वकर्मणा निष्पा-

दिताः पाणिरेखा येषां ते अनेकवरलक्षणोत्तमप्रशस्तशुचिरचितपाणिरेखाः, '**वरमहिसवराहसिंहसद्दूलउसभनागवरपडिपुण्णविउलखंधा**' वरमहिषः—प्रधानसौरभेयः वराहः—शूकरः सिंहः—केशरी शार्दूलो—व्याघ्रः ऋषभो—वृषभः नागवरः—प्रधानो गजः, एता-मिव प्रतिपूर्णः—स्वप्रमाणेनाहीनो विपुलो—विस्तीर्णः स्कन्धः—अंशदेशो येषां ते वरमहिषवराहसिंहशार्दूलवृषभनागवरप्रतिपूर्णविपुल-स्कन्धाः '**चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा**' चतुरङ्गुलं—स्वाङ्गुलापेक्षया चतुरङ्गुलप्रमितं सुष्ठु—शोभनं प्रमाणं यस्याः सा चतुर-ङ्गुलसुप्रमाणा कम्बुवरसदृशी—उन्नततया वलियोगेन च प्रधानशङ्खसन्निभा ग्रीवा येषां ते चतुरङ्गुलसुप्रमाणकम्बुवरसदृशग्रीवाः '**मंसलसंठियसद्दूलविपुलहणुया**' मांसलं—उपचितमांसं सम्यक् स्थितं संस्थितं विशिष्टस्थानमित्यर्थः प्रशस्तं प्रशस्यलक्षणोपेतत्वात् शार्दूलस्येव—व्याघ्रस्येव विपुलं—विस्तीर्णं हनुकं येषां ते तथा, '**अवट्ठियसुविभत्तमंसू**' अवस्थितानि—अवर्द्धिष्णूनि सुविभक्तानि-विविक्तानि चित्राणि—अतिरम्यतयाऽद्भुतानि श्मश्रूणि—कूर्चकेशा येषां तेऽवस्थितसुविभक्तचित्रश्मश्रवः '**ओयवियसिलप्पवालबिंब-फलसन्निभाधरोट्ठा**' ओयवियं—परिकर्मितं यत् शिलारूपं प्रवालं विद्रुममित्यर्थः बिम्बफलं—गोल्हाफलं तयोः सन्निभो रक्ततया उन्न-तमध्यतयाऽधरओष्ठः—अधस्तनो दन्तच्छदो येषां ते तथा, '**पंडुरससिसगलविमलनिम्मलसंखगोखीरफेणकुंददगरयमुणालिया-धवलदंतसेढी**' पाण्डुरं—अकलङ्कं यत् शशिशकलं—चन्द्रखण्डं विमल—आगन्तुकमलरहितो निर्मलः—स्वभावोत्थमलरहितो यः शङ्खः गोक्षीरफेनः प्रतीतः कुन्दं—कुन्दकुसुमं दकरज—उदककणाः मृणालिका—बिसं, एतद्वद्धवला दन्तश्रेणिर्येषां ते पाण्डुरशशिशकलविमल-निर्मलगोक्षीरफेनकुन्ददकरजोमृणालिकाधवलदन्तश्रेणयः '**अखंडदंता**' इति अखण्डाः—सकला दन्ता येषां ते अखण्डदन्ताः '**अ-प्फुडियदंता**' अस्फुटिता—अजर्जरा राजिरहिता दन्ता येषां ते अस्फुटितदन्ताः, तथा सुजाता—जन्मदोषरहिता दन्ता येषां ते सुजा-

तदन्ताः, तथाऽविरला—घना दन्ता येषां ते अविरलदन्ताः, **'एगदंतसेढीविव अणेगदंता'** एकाकारा दन्तश्रेणिर्येषां ते तथा ते इव परस्परानुपलक्ष्यमाणदन्तविभागत्वाद् अनेके दन्ता येषां ते अनेकदन्ताः, एवं नामाविरलदन्ता यथाऽनेकदन्ता अपि सन्त एकाकार-दन्तपङ्क्तय इव लक्ष्यन्त इति भावः, **'हुयवहनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा'** हुतवहेन—अग्निना निर्ध्मातं सद् यद् धौतं—शोधितमलं तप्तं तपनीयं—सुवर्णविशेषस्तद्वद् रक्ते तले—हस्ततले तालु—काकुदं जिह्वा च—रसना येषां ते हुतवहनिर्ध्मातधौततप्त-तपनीयरक्ततलतालुजिह्वाः **'गरुलाययउज्जुतुंगनासा'** गरुडस्येवायता—दीर्घा ऋज्वी—अवक्रा तुङ्गा—उन्नता नासा—नासिका येषां ते गरुडायतऋजुतुङ्गनासाः **'कोकासियधवलपत्तलच्छा'** कोकासिते—पद्मवद्विकसिते धवले क्वचिद्देशे पत्रले—पक्ष्मवती अक्षिणी—लोचने येषां ते कोकासितधवलपत्राक्षाः, एतदेव स्पष्टयति—**'विप्फालियपुंडरीयनयणा'** विस्फारितं—रविकिरणैर्विकासितं यत्पुण्डरीकं—सितपद्मं तद्वन्नयने येषां ते विस्फारितपुण्डरीकनयनाः, क्वचित् **'अवदालियपुंडरीयनयणा'** इति पाठस्तत्रापि अवदालितं—रवि-किरणैर्विकासितमिति व्याख्येयं, **'आणामियचावरुइलतणुकसिणनिद्धभुया'** आनामितं—ईषन्नामितमारोपितमिति भावः यच्चापं—धनुस्तद्वद् रुचिरे—संस्थानविशेषभावतो रमणीये तनू—तनुके श्लक्ष्णपरिमितवालपङ्क्त्यात्मकत्वात् कृष्णे—परमकालिमोपेते स्निग्धे—स्निग्ध-च्छाये भ्रुवौ येषां ते आनामितचापरुचिरतनुकृष्णस्निग्धभ्रूकाः, क्वचित्पाठः—'आणामियचारुरुचिलकिण्हब्भराईसंठियसंगयआ-ययसुजायभुमया' तत्र आनामितचापवद् रुचिरे कृष्णाभ्रराजीव संस्थिते संगते—यथोक्तप्रमाणोपपन्ने आयते—दीर्घे सुजाते—सुनिष्पन्ने जन्मदोषरहितत्वाद् भ्रुवौ येषां ते तथा, क्वचित्पुनरेवं पाठः—'आणामियचावरुइलकिण्हब्भराइतणुकसिणनिद्धभुमया' तत्रानामित-चापवद् रुचिरे—मनोज्ञे कृष्णाभ्रराजीव—कालमेघरेखेव तनू—तनुके कृष्णे—काले स्निग्धे—सच्छाये भ्रुवौ येषां ते तथा, 'आलीणपमा-

णजुत्तसवणा' आलीनौ न तु टप्परौ प्रमाणयुक्तौ—प्रमाणोपेतौ श्रवणौ—कर्णौ येषां ते आलीनप्रमाणयुक्तश्रवणाः, अत एव **'सुस-वणा'** शोभनश्रवणाः **'पीणमंसलकवोलदेसभागा'** पीनौ—अकृशौ यतो मांसलौ—उपचितौ कपोलदेशौ—गण्डभागौ मुखस्य देशभागौ येषां ते पीनमांसलकपोलदेशभागाः, अथवा कपोलयोर्देशभागाः कपोलदेशभागाः कपोलावयवा इत्यर्थः पीना—मांसलाः कपोलदेशभागा येषां ते पीनमांसलकपोलदेशभागाः **'निव्वणसमलट्ठमट्ठचंदद्धसमनिडाला'** निर्व्रणं—विस्फोटकादिक्षतरहितं समं—अविषमं अत एव लष्टं—मनोज्ञं मृष्टं—मसृणं चन्द्रार्द्धसमं—शशधरसमप्रविभागसदृशं ललाटं—अलकं येषां ते निर्व्रणसमलष्टचन्द्रार्द्धसमललाटाः, सूत्रे 'निडा-ले'ति प्राकृतलक्षणवशात्, **'उडुवइपडिपुण्णसोमवयणा'** प्राकृतत्वात्पदव्यत्ययः, प्रतिपूर्णोडुपतिरिव—सम्पूर्णचन्द्र इव सोमं—सश्रीकं वदनं येषां ते प्रतिपूर्णोडुपतिसोमवदनाः, **'घणनिचियसुबद्धलक्खणुन्नयकूडागारनिहपिंडियसिरा'** घनं—अतिशयेन निचितं घननिचितं सुष्ठु—अतिशयेन बद्धानि—अवस्थितानि लक्षणानि यत्र तत् सुबद्धलक्षणं, उन्नतं—मध्यभागे उच्चं यत्कूटं तस्याकारो—मूर्त्तिस्तन्निभमुन्नतकूटाका-रसदृशमिति भावः पिण्डितं—स्वकर्म्मणा संयोजितं शिरो येषां ते घननिचितसुबद्धलक्षणोन्नतकूटाकारनिभपिण्डितशिरसः **'छत्ताकारुत्त-मंगदेसा'** छत्राकार उत्तमाङ्गरूपो देशो येषां ते छत्राकारोत्तमाङ्गदेशाः **'दाडिमपुप्फप्पगासतवणिज्जसरिसनिम्मलसुजायकेसंतके-सभूमी'** दाडिमपुष्पप्रकाशा—दाडिमपुष्पप्रतिमास्तपनीयसदृशाश्च निर्म्मला—आगन्तुकस्वाभाविकमलरहिताः केशान्ताः केशभूमिश्च—केशोत्पत्तिस्थानभूता मस्तकत्वग् येषां ते दाडिमपुष्पप्रकाशतपनीयसदृशनिर्मलसुजातकेशान्तकेशभूमयः **'सामलिबोंडघणछोडियमि-उविसयपसत्थसुहुमलक्खणसुगंधसुन्दरभुयमोयगभिंगनीलकज्जलपहट्ठभमरगणनिकुरंबनिचियकुंचियपयाहिणावत्तमुद्धसि-रया'** शाल्मली—वृक्षविशेषः स च प्रतीत एव तस्य बोण्डं—फलं तद्वच्छोटिता अपि घनं—अतिशयेन निचिताः शाल्मलीबोण्डघननि-

चितच्छोटिता:, स्नेहकेशपाशं न कुर्वन्ति परिज्ञानाभावात्, केवलं छोटिता अपि तथास्वभावतया शाल्मलीबोण्डाकारवद् घननिचिता अवतिष्ठन्ते तत एतद्विशेषणोपादानं, तथा मृदवः—अकर्कशा विशदा—निर्मला: प्रशस्ता:—प्रशंसास्पदीभूता: सूक्ष्मा:—श्लक्ष्णा: लक्ष्णा—लक्षणवन्त: सुगन्धा:—परमगन्धकलिता अत एव सुन्दरा:, तथा भुजमोचको—रत्नविशेष: भृङ्ग:—प्रतीत: नीलो—मरकतमणि: कज्जलं—प्रतीतं प्रहृष्ट:—प्रमुदितो भ्रमरगण: प्रहृष्टभ्रमरगण:, प्रहृष्टो हि भ्रमरगणस्तारुण्यावस्थायां भवति तदानीं चातिकृष्ण इति प्रहृष्टग्रहणं, तद्वत्स्निग्धा भुजमोचकभृङ्गनीलकज्जलप्रहृष्टभ्रमरगणस्निग्धा:, तथा निकुरम्बा—निकुरम्बीभूता: सन्तो निचिता न तु विस्तृता: सन्त: परस्परसंहता निकुरम्बनिचिता ईषत्कुटिला: प्रदक्षिणावर्त्ताश्च मूर्द्धनि शिरोजा—वाला येषां ते शाल्मलीबोण्डघननिचितच्छोटितमृदुविशदप्रशस्तसूक्ष्मलक्षणसुगन्धसुन्दरभुजमोचकभृङ्गनीलकज्जलप्रहृष्टभ्रमरगणस्निग्धनिकुरम्बनिचितप्रदक्षिणावर्त्तमूर्द्धशिरोजा:, **'लक्खणवंजणगुणोववेया'** लक्षणानि—स्वस्तिकादीनि व्यञ्जनानि—मषतिलकादीनि गुणा:—क्षान्त्यादयस्तैरुपपेता—युक्ता लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेता: **'सुजायसुविभत्तसुरूवगा'** सुजातं—सुनिष्पन्नं जन्मदोषरहितत्वात् सुविभक्तं—अङ्गप्रत्यङ्गोपाङ्गानां यथोक्तवैविक्त्यभावात् सुरूपं—शोभनं रूपं समुदायगतं येषां ते सुजातसुविभक्तसुरूपका: **'पासाईया'** इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ **'उत्तरकुराए णं भंते! कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु भदन्त! कुरुषु मनुजीनां कीदृश आकारभावप्रत्यवतार: स्वरूपसम्भव इति भाव: प्रज्ञप्त: ?, भगवानाह—गौतम! ता मनुष्य: सुजातसर्वाङ्गसुन्दर्य:—सुजातानि—यथोक्तप्रमाणोपेततया शोभनजन्मानि यानि सर्वाण्यङ्गानि—उदरप्रभृतीनि तै: सुन्दर्य:—सुन्दराकारा: सुजातसर्वाङ्गसुन्दर्य: **'पहाणमहेलागुणजुत्ताओ'** प्रधाना—अतिशायिनो ये महेलागुणा:—प्रियंवदत्वभर्तृचित्तानुवर्त्तकत्वप्रभृतयस्तैर्युक्ता—उपपेता: प्रधानमहेलागुणयुक्ता: **'कंतविसयमिउसुकुमालकुम्मसंठियविसि-**

ट्ठचलणा' कान्तौ—कमनीयौ विशदौ—निर्म्मलौ मृदू—अकठिनौ सुकुमारौ—अकर्कशौ कूर्मसंस्थितौ—कूर्मवदुन्नतौ विशिष्टौ—विशिष्टलक्षणोपेतौ चरणौ यासां ताः कान्तविशदमृदुसुकुमारकूर्मवदुन्नतसंस्थितविशिष्टचरणाः 'उज्जुमउयपीवरपुट्ठसाहयंगुलीओ' ऋजवः—अवक्रा मृदवः—अकठिनाः पीवरा—अकृशाः पुष्टा—मांसलाः संहताः—सुश्लिष्टा अङ्गुलयो यासां ता ऋजुमृदुकपीवरपुष्टसंहताङ्गुलयः 'उन्नयरतियतलिनतंबसुइनिद्धनखा' उन्नता—ऊर्द्ध्वनता रतिदा—रमणीयास्तलिनाः—प्रतलास्ताम्रा—ईषद्रक्ताः शुचयः—पवित्राः स्निग्धाः—स्निग्धच्छाया नखा यासां ता उन्नतरतिदतलिनताम्रशुचिस्निग्धनखाः 'रोमरहियवट्टलट्ठसंठियअजहन्नपसत्थलक्खणजंघाजुयला' रोमरहितं वृत्तं—वर्त्तुलं लष्टसंस्थितं—मनोज्ञसंस्थानं क्रमेणोर्द्ध्वं स्थूरस्थूरतरमिति भावः, अजघन्यप्रशस्तलक्षणं—जघन्यपदरहितशेषप्रशस्तलक्षणाङ्कितं जङ्घायुगलं यासां ता रोमरहितवृत्तलष्टसंस्थिताजघन्यप्रशस्तलक्षणजङ्घायुगलाः 'सुनिम्मियगूढजाणुमंडलसुबद्धा' सुष्ठु—अतिशयेन निर्मितः सुनिर्मितः एवं सुगूढं—मांसलतयाऽनुपलक्ष्यमाणं जानुमण्डलं सुबद्धं—स्नायुभिरतीव बद्धं यासां ताः सुनिर्मितसुगूढजानुमण्डलसुबद्धाः, सुबद्धशब्दस्य निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात् प्राकृतत्वाद्वा, 'कयलीखंभातिरेगसंठियनिव्वणसुकुमालमउयकोमलअइविमलसमसंहतसुजायवट्टपीवरनिरंतरोरू' कदलीस्तम्भाभ्यामतिरेकेण—अतिशायितया संस्थितं—संस्थानं ययोस्तौ कदलीस्तम्भातिरेकसंस्थितौ निर्व्रणौ—विस्फोटकादिकृतक्षतरहितौ सुकुमारौ—अकर्कशौ मृदू—अकठिनौ कोमलौ—दृष्टिसुभगौ अतिविमलौ—सर्वथा स्वाभाविकागन्तुकमललेशेनाप्यकलङ्कितौ समसंहतौ—समप्रमाणौ सन्तौ संहतौ समसंहतौ सुजातौ—जन्मदोषरहितौ वृत्तौ—वर्तुलौ पीवरौ—मांसलौ निरन्तरौ—उपचितावयवतयाऽपान्तरालवर्जितौ ऊरू यासां ताः कदलीस्तम्भातिरेकसंस्थितनिर्व्रणसुकुमारमृदुकोमलातिविमलसमसंहतसुजातवृत्तपीवरनिरन्तरोरवः 'पट्टसंठियपसत्थविच्छिण्णपिहुलसोणीओ' पट्टवत्—शिलापट्टकादि-

वत् संस्थिता पट्टसंस्थिता प्रशस्ता प्रशस्तलक्षणोपेतत्वाद् विस्तीर्णा ऊर्ध्वाधः पृथुला दक्षिणोत्तरतः श्रोणिः—कटेरग्रभागो यासां ताः पट्टसंस्थितविस्तीर्णपृथुलश्रोणयः **'वयणायामप्पमाणदुगुणियविसालमंसलसुबद्धजहणवरधारणीओ'** वदनस्य—मुखस्यायामप्रमाणं—द्वादशाङ्गुलानि तस्माद् द्विगुणितं—द्विगुणप्रमाणं सद् विशालं वदनायामप्रमाणद्विगुणितविशालं मांसलमप्युपचितं सुबद्धं—अतीव सुबद्धावयवं न तु श्लथमिति भावः जघनवरं—वरजघनं, वरशब्दस्य विशेषणस्यापि सतः परनिपातः प्राकृतत्वात्, धारयन्तीत्येवंशीला वदनायामप्रमाणद्विगुणितविशालमांसलसुबद्धजघनवरधारिण्यः **'वज्जविराइयपसत्थलक्खणनिरोदरतिवलीविणीयतणुनमियमज्झियाओ'** वज्रस्येव विराजितं वज्रविराजितं प्रशस्तानि लक्षणानि यत्र तत् प्रशस्तलक्षणं निरुदरं—विकृतोदररहितं त्रिवलीविनीतं—तिस्रो वलयो विनीता—विशेषतः प्रापिता यत्र तत् त्रिवलीविनीतं तनु—कृशं नतं तनुनतमीषन्नतमित्यर्थः मध्यं यासां ता वज्रविराजितप्रशस्तलक्षणनिरुदरत्रिवलीविनीततनुनतमध्यकाः **'उज्जुयसमसंहियजच्चतणुकसिणनिद्धआएज्जलडहसुविभत्तसुजायसोभंतरुइलरमणिज्जरोमराई'** ऋजुका—न वक्रा समा—न काप्युदन्तुरा संहिता—सन्तता न त्वपान्तरालव्यवच्छिन्ना जात्या—प्रधाना तन्वी न तु स्थूरा कृष्णा न मर्कटवर्णा स्निग्धा—स्निग्धच्छाया आदेया—दर्शनपथप्राप्ता सन्ती उपादेया सुभगेति भावः, एवदेव समर्थयति—लटहा—सलवणिमाऽत एव आदेया सुविभक्ता—सुविभागा सुजाता—जन्मदोषरहिता अत एव शोभमाना रुचिरा—दीप्रा रमणीया—द्रष्टृमनोरमणशीला रोमराजिर्यासां ता ऋजुकसमसहितजात्यतनुकृष्णस्निग्धादेयलटहसुविभक्तसुजातशोभमानरुचिररमणीयरोमराजयः **'गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोहियआकोसायंतपउमगंभीरवियडनाभा'** इति पूर्ववत्, **'अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छीओ'** अनुद्भटा—अनुल्बणा प्रशस्ता—प्रशस्तलक्षणा पीना कुक्षिर्यासां ता अनुद्भटप्रशस्तपीनकुक्षयः 'सन्नयपासा संगतपासा सुंदरपासा सुजायपासा मिय-

माइयपीणरइयपासा अकरंडयकणगरुयगनिम्मलसुजायनिरुवहयगायलट्ठीओ' इति पूर्ववत्, 'कंचणकलससुप्पमाणसमसंहितसुजायलट्ठचूचुयआमेलगजमलजुगलवट्टियअब्भुन्नयरइयसंठियपओहराओ' काञ्चनकलशाविव काञ्चनकलशौ सुप्रमाणौ—स्वशरीरानुसारिप्रमाणोपेतौ समौ—नैको हीनो नैकोऽधिक इति भावः संहितौ—संततौ अपान्तरालरहिताविति भावः सुजातौ—जन्मदोषरहितौ लष्टौ—मनोज्ञौ चूचुक आमेलकः—आपीडकः शेखरो ययोस्तौ चूचुकापीडकौ 'जमलजुगले'ति यमलयुगलं—समश्रेणीकयुगलरूपौ वर्त्तिताविव वर्त्तितौ कठिनाविति भावः अभ्युन्नतौ—पत्युरभिमुखमुन्नतौ रतिदं—रतिकारि संस्थितं—संस्थानं ययोस्तौ रतिदसंस्थितौ पयोधरौ यासां ताः काञ्चनकलशसुप्रमाणसमसंहितसुजातलष्टचूचुकापीडयमलयुगलवर्त्तिताभ्युन्नतरतिदसंस्थितपयोधराः 'अणुपुव्वतणुयगोपुच्छवट्टसमसहितनमियआएज्जललियबाहाओ' आनुपूर्व्येण—क्रमेण तनुकौ आनुपूर्व्यतनुकौ अत एव गोपुच्छवद् वृत्तौ—वर्तुलौ समौ—समप्रमाणौ संहितौ—स्वशरीरसंश्लिष्टौ नतौ स्कन्धदेशस्य नतत्वात् आदेयौ—अतिसुभगतयोपादेयौ ललितौ—मनोज्ञचेष्टाकलितौ बाहू यासां ता आनुपूर्व्यतनुगोपुच्छवृत्तसंहितनतादेयललितबाहवः 'तंबनहा' ताम्रा—ईषद्रक्ता नखाः—कररुहा यासां तास्ताम्रनखाः 'मंसलग्गहत्था' मांसलौ अग्रहस्तौ बाह्वग्रभागवर्त्तिनौ हस्तौ यासां ता मांसलाग्रहस्ताः 'पीवरकोमलवरंगुलीया' पीवरा—उपचिताः कोमलाः—सुकुमारा वराः—प्रमाणलक्षणोपेततया प्रधाना अङ्गुलयो यासां ताः पीवरकोमलवराङ्गुलिकाः 'निद्धपाणिरेहा' स्निग्धाः पाणौ रेखा यासां ताः तथा, 'रविससिसंखचक्कसोत्थियविभत्तसुविरइयपाणिलेहा' इति पूर्ववत् 'पीणुन्नयकक्खवक्खवत्थिप्पएसा' पीना—उपचितावयवा उन्नता—अभ्युन्नताः कक्षावक्षोवस्तिरूपाः प्रदेशा यासां ताः पीनोन्नतकक्षावक्षोवस्तिप्रदेशाः 'पडिपुण्णगलकवोला' प्रतिपूर्णौ गलकपोलौ च यासां तास्तथा 'चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा' पूर्ववत् 'मंसलसंठियपसत्थहणुया' मांसलम्

—उपचितमांसं संस्थितं—विशिष्टसंस्थानं प्रशस्तं—प्रशस्तलक्षणोपेतं हनुकं यासां ता मांसलसंस्थितप्रशस्तहनुकाः **'दाडिमपुप्फप्पगास-पीवरप्पवराहरा'** दाडिमपुष्पप्रकाशः पीवरः प्रवरः—सुभगोऽधरो यासां ता दाडिमपुष्पप्रकाशपीवरप्रवराधराः **'सुंदरोत्तरोट्ठा'** व्यक्तं **'दहिदगरयचंदकुंदवासंतियमउलधवलअच्छिद्दविमलदसणा'** दधि—प्रतीतं दकरज—उदककणाः चन्द्रः—प्रतीतः कुन्दः—कुसुमं वासन्तिकामुकुलं—वासन्तिकाकलिका तद्वद्धवला अच्छिद्राः—छिद्ररहिता विमला—मलरहिता दशना—दन्ता यासां ता दधिदकरजश्चन्द्रकुन्दवासन्तिकामुकुलधवलाच्छिद्रविमलदशनाः **'रत्तुप्पलपत्तमउयसूमालतालुजीहा'** रक्तोत्पलवद् रक्तं मृदु—अकठिनं सुकुमारं—अकर्कशं तालु जिह्वा च यासां ता रक्तोत्पलमृदुसुकुमारतालुजिह्वाः **'कणइरमुकुलअकुडियअब्भुग्गयउज्जुतुंगनासा'** कणयरा—अतिस्निग्धतया श्लक्ष्णश्लक्ष्णस्वेदकणाकीर्णा मुकुला—नासापुटद्वयस्यापि यथोक्तप्रमाणतया संवृत्ताकारतया च मुकुलाकारा अभ्युद्गता—अभ्युन्नता ऋजुका—सरला तुङ्गा—उच्चा नासा यासां तास्तथा, **'सारयनवकमलकुमुयकुवलयविमुक्कदलनिगरसरिसलक्खणंकियकंतनयणाओ'** शारदं—शरन्मासभावि यन्नवं—प्रत्यग्रं कमलं—पद्मं कुमुदं—कैरवं कुवलयं—नीलोत्पलं तैर्विमुक्तो यो दलनिकरस्तत्सदृशे, किमुक्तं भवति ?—एवं नामायतदीर्घे मनोहारिणी नयने यत् शारदान्नवात् कमलाद्वा कुमुदाद्वा कुवलयाद्वा उत्पद्य पत्रद्वयमिवावस्थितमाभातीति, लक्षणाङ्किते—प्रशस्तलक्षणोपेते नयने यासां ताः शारदनवकमलकुमुदकुवलयविमुक्तदलनिकरसदृशलक्षणाङ्कितनयनाः, एतदेव किञ्चिद्विशेषार्थमाह—**'पत्तलचपलायंततंबलोयणाओ'** पत्रले—पक्ष्मवती चपलायमाने ताम्रे—क्वचित्प्रदेशे ईषद्रक्ते लोचने यासां ताः पत्रलचपलायमानताम्रलोचनाः 'आणामियचावरुइलकिण्हब्भराइसंठियसंगयआगयसुजायभुमया अल्लीणपमाणजुत्तसवणा' इति पूर्ववत्, **'पीणमट्ठरमणिज्जगंडलेहा'** पीना—उपचिता मृष्टा—मसृणा रमणीया—रम्या गण्डरेखा—कपोलपाली यासां ताः पीनमृष्टरमणीयगण्ड-

लेखाः 'चउरंसपसत्थसमनिडाला' चतुरस्रं—चतुष्कोणं प्रशस्तं—प्रशस्तलक्षणोपेतं समं—ऊर्द्धाधस्तया दक्षिणोत्तरतया च तुल्यप्रमाणं ललाटं यासां ताश्चतुरस्रप्रशस्तसमललाटाः 'कोमुईरयणिकरविमलपडिपुण्णसोमवयणा' कौमुदी—कार्त्तिकी पौर्णमासी तस्यां रजनिकर इव विमलं प्रतिपूर्णं सोमं च वदनं यासां ताः कौमुदीरजनिकरविमलप्रतिपूर्णसोमवदनाः, सोमशब्दस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, 'छत्तुन्नयउत्तमंगाओ' छत्रवन्मध्ये उन्नतमुत्तमाङ्गं यासां तारछत्रोन्नतोत्तमाङ्गाः 'कुडिलसुसिणिद्धदीहसिरयाओ' कुटिलाः सुस्निग्धा दीर्घाः शिरोजा यासां ताः कुटिलसुस्निग्धदीर्घशिरोजाः, छत्रध्वजयूपस्तूपदामनीकमण्डलुकलशवापीसौवस्तिकपताकायवमत्स्यकूर्मरथवरमकरशुकस्थालाङ्कुशाष्टापदसुप्रतिष्ठकमयूरश्रीदामाभिषेकतोरणमेदिन्युदधिवरभवनगिरिवरादर्शललितगजवृषभसिंहचामररूपाणि उत्तमानि—प्रधानानि प्रशस्तानि—सामुद्रिकशास्त्रेषु प्रशंसास्पदीभूतानि द्वात्रिंशतं लक्षणानि धारयन्तीति छत्रचामरयावदुत्तमप्रशस्तद्वात्रिंशल्लक्षणधराः 'हंससरिसगतीओ' हंसस्य सदृशी गतिर्यासां ता हंससदृशगतयः, कोकिलाया इव या मधुरा गीस्तया सुस्वराः कोकिलामधुरगीःसुस्वराः, तथा कान्ताः—कमनीयाः, तथा सर्वस्य—तत्प्रत्यासन्नवर्त्तिनो लोकस्यानुमताः—संमता न मनागपि द्वेष्या इति भावः, व्यपगतवलिपलिताः, तथा व्यङ्गदुर्वर्णव्याधिदौर्भाग्यशोकमुक्ताः, स्वप्नेऽपि तेषामसम्भवात्, स्वभावत एव शृंगारः—शृङ्गाररूपश्चारुः—प्रधानो वेषो यासां ताः स्वभावशृङ्गारचारुवेषाः, तथा 'संगयगयहसियभणियचेट्ठियविलाससंलावणिउणजुत्तोवयारकुसला' सङ्गतं—सुश्लिष्टं यद् गतं—गमनं हंसीगमनवत् हसितं—हसनं कपोलविकासि प्रेमसंदर्शि च भणितं—भणनं गम्भीरं—मन्मथोद्दीपि च चेष्टितं—चेष्टनं सकाममङ्गप्रत्यङ्गोपदर्शनादि विलासो—नेत्रविकारः संलापः—पत्या सहासकामस्वहृदयप्रत्यर्पणक्षमं परस्परसंभाषणं निपुणः—परमनैपुण्योपेतो युक्तश्च यः शेष उपचारस्तत्र कुशलाः संगतगतहसितभणितचेष्टितविलाससंलापनिपुणयुक्तोपचार-

कलिताः, एवंविधविशेषणाश्च स्वपतिं प्रति द्रष्टव्या न परपुरुषं प्रति, तथा क्षेत्रस्वाभाव्यतः प्रतनुकामतया परपुरुषं प्रति तासामभिलापासम्भवात्, पूर्वोक्तमेवार्थं संपिण्ड्याह—वरस्तनजघनवदनकरचरणनयनलावण्यवर्णयौवनविलासकलिता नन्दनवनचारिण्य इवाप्सरसः, **'अच्छेरपेच्छणिज्जा'** इति आश्चर्यप्रेक्षणीयाः **'पासाईयाओ'** इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ सम्प्रति स्त्रीपुंसविशेषमन्तरेण सामान्यतस्तत्रत्यमनुष्याणां स्वरूपं प्रतिपिपादयिषुरिदमाह—**'ते णं मणुया ओहस्सरा'** इत्यादि, ते उत्तरकुरुनिवासिनो मनुष्या ओघः—प्रवाही स्वरो येषां ते ओघस्वराः, हंसस्येव मधुरः स्वरो येषां ते हंसस्वराः, क्रौञ्चस्येवाप्रयासविनिर्गतोऽपि दीर्घदेशव्यापी स्वरो येषां ते क्रौञ्चस्वराः, एवं सिंहस्वरा दुन्दुभिस्वरा नन्दिस्वराः, नन्द्या इव घोषः—अनुनादो येषां ते नन्दीघोषाः, मञ्जुः—प्रियः स्वरो येषां ते मञ्जुस्वराः, मञ्जुर्घोषो येषां ते मञ्जुघोषाः, एतदेव पदद्वयेन व्याचष्टे—सुस्वराः सुस्वरनिर्घोषाः **'पउमुप्पलगंधसरिसनीसाससुरभिवयणा'** पद्मं—कमलमुत्पलं—नीलोत्पलं अथवा पद्मं—पद्मकाभिधानं गन्धद्रव्यं उत्पलम्—उत्पलकुष्ठं तयोर्गन्धेन—सौरभ्येण सदृशः-समो यो निःश्वासस्तेन सुरभिगन्धि वदनं—मुखं येषां ते पद्मोत्पलगन्धसदृशनिःश्वाससुरभिवदनाः, तथा छवी—छविमन्त उदात्तवर्णया सुकुमारया च त्वचा युक्ता इति भावः **'निरायंकउत्तमपसत्थअइसेसनिरुवमतणू'** निरातङ्का—नीरोगा उत्तमा—उत्तमलक्षणोपेता अतिशेषा—कर्म्मभूमकमनुष्यापेक्षयाऽतिशायिनी अत एव निरुपमा—उपमारहिता तनुः—शरीरं येषां ते निरातङ्कोत्तमप्रशस्तातिशेषनिरुपमतनवः, एतदेव सविशेषमाह—**'जल्लमलकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरनिरुवलेवा'** याति च लगति चेति जल्लः—पृषोदरादित्वान्निष्पत्तिः स्वल्पप्रयत्नापनेयः स चासौ मलश्च जल्लमलः स च कलङ्कं च—दुष्टतिलकादिकं चित्रादिकं वा स्वेदश्च—प्रस्वेदः रजश्च—रेणुर्दोषो—मालिन्यकारिणी चेष्टा तेन वर्जितं निरुपलेपं च—मूत्रविष्ठाद्युपलेपरहितं शरीरं येषां ते जल्लमलकलङ्कस्वेदरजोदोषवर्जित-

निरुपलेपशरीराः, सूत्रे च निरुपलेपशब्दस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, 'छायाउज्जोवियंगमंगा' छायया—शरीरप्रभया उद्द्योतितमङ्गमङ्गम्—अङ्गप्रत्यङ्गं येषां ते तथा, 'अनुलोमवाउवेगा' अनुलोमः—अनुकूलो वायुवेगः—शरीरान्तर्वर्तिवातजवो येषां ते अनुलोमवायुवेगाः, वायुगुल्मरहितोदरमध्यप्रदेशा इति भावः, आह च मूलटीकाकारः—"उदरमध्यप्रदेशे वायुगुल्मो येषां तेषामनुलोमो वायुवेगो न भवति, तदभावाच्च तेषामनुलोमो भवति वायुवेगो मिथुनाना"मिति, 'कङ्कग्गहणी' इति कङ्कः—पक्षिविशेषस्तस्येव ग्रहणिः—गुदाशयो नीरोगवर्चस्कतया येषां ते कङ्कग्रहणयः, 'कवोयपरिणामा' कपोतस्येव—पक्षिविशेषस्य परिणाम—आहारपाको येषां ते कपोतपरिणामाः, कपोतस्य हि जाठराग्निः पाषाणलवानपि जरयतीति श्रुतिः, एवं तेषामप्यत्यर्गलाहारग्रहणेऽपि न जातुचिदप्यजीर्णदोषा भवन्तीति, 'सउणिपोसपिट्ठंतरोरुपरिणया' इति शकुनेरिव—पक्षिण इव पुरीषोत्सर्गे निर्लेपतया 'पोसं'ति पोसः—अपानदेशः 'पुसउत्सर्गे' पुरीषमुत्सृजन्त्यनेनेति व्युत्पत्तेः, तथा लघुपरिणामतया पृष्ठं च प्रतीतं अन्तरे च—पृष्ठोदरयोरन्तराले पार्श्वावित्यर्थः ऊरू चेति द्वन्द्वः ते परिणता येषां ते शकुनिपोसपृष्ठान्तरोरुपरिणताः, निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, 'विग्गहियउन्नयकुच्छी' विग्रहिता—मुष्टिग्राह्या उन्नता च कुक्षिर्येषां ते विग्रहितोन्नतकुक्षयः, वज्रर्षभनाराचं संहननं येषां ते वज्रर्षभनाराचसंहननाः, तथा समचतुरस्रं च तत् संस्थानं च समचतुरस्रसंस्थानं तेन संस्थिताः समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिताः, षड्धनुःसहस्रोच्छ्रिताः—त्रिगव्यूतप्रमाणोच्छ्रयाः, तथा तेषामुत्तरकुरुवास्तव्यानां मनुष्याणां द्वे पृष्ठकरण्डकशते षट्पञ्चाशे—षट्पञ्चाशदधिके प्रज्ञप्ते तीर्थकरगणधरैः॥ 'ते णं मणुया' इत्यादि, ते उत्तरकुरुवास्तव्या मनुजाः प्रकृत्या—स्वभावेन भद्रकाः—अपरानुपतापहेतुकायवाङ्मनश्चेष्टाः, तथा प्रकृत्या—स्वभावेन न तु परोपदेशतः परेभ्यो भयतो वोपशान्ताः, तथा प्रकृत्या—स्वभावेन प्रतनवः—अतिमन्दीभूताः क्रोधमानमायालोभा येषां ते प्रकृ-

तिप्रतनुक्रोधमानमायालोभाः, अत एव मृदु—मनोज्ञं परिणामसुखावहमिति भावः यन्मार्दवं तेन संपन्ना मृदुमार्दवसंपन्ना न कपटमार्दवोपेताः **'अल्लीणा'** इति आ—समन्तात्सर्वासु क्रियासु लीना—गुप्ता आलीना नोल्वणचेष्टाकारिण इत्यर्थः, भद्रकाः—सकलतत्क्षेत्रोचितकल्याणभागिनः विनीता—बृहत्पुरुषविनयकरणशीलाः अल्पेच्छा—मणिकनकादिविषयप्रतिबन्धरहिता अत एवासन्निधिसञ्चया—न विद्यते सन्निधिरूपः सञ्चयो येषां ते तथा, **'विडिमंतरपरिवसणा'** विडिमान्तरेषु—शाखान्तरेषु प्रासादाद्याकृतिषु परिवसनं—आकालमावासो येषां ते विडिमान्तरपरिवसनाः **'जहिच्छियकामकामिणो'** यथेप्सितान् मनोवाञ्छितान् कामान्—शब्दादीन् कामयन्त इत्येवंशीला यथेप्सितकामकामिनः, ते उत्तरकुरुवास्तव्या णमिति पूर्ववत् मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'तेसि णं भंते!'** इत्यादि, तेषां भदन्त! उत्तरकुरुवास्तव्यानां मनुष्याणां **'केवइकालस्स'**त्ति सप्तम्यर्थे षष्ठी कियति काले गते भूय आहारार्थः समुत्पद्यते?—आहारलक्षणं प्रयोजनमुपतिष्ठते?, भगवानाह—गौतम! **'अट्ठमभत्तस्स'** अत्रापि सप्तम्यर्थे षष्ठी अष्टमभक्तेऽतिक्रान्ते आहारार्थः समुत्पद्यते ॥ **'ते णं भंते!'** इत्यादि, ते उत्तरकुरुवास्तव्या भदन्त! मनुष्याः किमाहारमाहारयन्ति?, भगवानाह—गौतम! पृथिवीपुष्पफलाहाराः—पृथिवीपुष्पफलानि च कल्पद्रुमाणामाहारो येषां ते तथा ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'तेसि णं भंते'** इत्यादि, तस्या भदन्त! पृथिव्याः कीदृश आस्वादः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! **'से जहा नामए'** इत्यादि, तत्—लोके प्रसिद्धं यथा नाम 'ए' इति वाक्यालङ्कारेऽखण्डमिति वा, इतिशब्द उपमाभूतवस्तुनामपरिसमाप्तिद्योतकः, वाशब्दो विकल्पने, एवं सर्वत्र, गुड इति वा शर्करा इति वा, इयं शर्करा काशादिप्रभवा द्रष्टव्या, मत्स्यण्डिका इति वा, मत्स्यण्डी—खण्डशर्करा, पर्पटमोदक इति वा विसकन्द इति वा पुष्पोत्तरेति वा पद्मोत्तरेति वा विजया इति वा महाविजया इति वा उपमा इति वा अनुपमा इति वा, पर्प-

टमोदकादयः खाद्यविशेषा लोकतः प्रत्येतव्याः, 'चाउरक्के वा गोखीरे' इत्यादि वा, चातुरक्यं—चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तं, तच्चैवं—गवां पुण्ड्रदेशोद्भवेक्षुचारिणीनामनातङ्कानां कृष्णानां यत्क्षीरं तदन्यान्याभ्यः कृष्णगोभ्य एव यथोक्तगुणाभ्यः पानं दीयते, तत्क्षीरमप्येवंभूताभ्योऽन्याभ्यस्तत्क्षीरमप्यन्याभ्य इति चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तं, एवंभूतं यच्चातुरक्यं गोक्षीरं खण्डगुडमत्स्यण्डिकोपनीतं—खण्डगुडमत्स्यण्डिका उपनीता यत्र तत्तथा, सुखादिदर्शनान्निष्ठान्तस्य परनिपातः, खण्डादिभिः सुरसतां प्रापितमिति भावः, 'मंदग्गिकढिए' मन्दमग्निना कथितं मन्दाग्निकथितम्, अत्यग्निकथितं हि विरसं विगन्धादि च भवतीति मन्दग्रहणं, वर्णाद्यतिशयप्रतिपादनार्थमेवाह—वर्णेन—सामर्थ्यादतिशायिना अन्यथा वर्णोपादाननैरर्थक्यापत्तेः उपपेतं—युक्तं, एवं गन्धेन रसेन स्पर्शेन चातिशायिनोपपेतं, एवमुक्ते गौतम आह—भगवन्! भवेदेतद्रूपः पृथिव्या आस्वादः?, भगवानाह—गौतम! नायमर्थः समर्थः, तस्याः पृथिव्या इतो—गुडखण्डशर्करादेरिष्टतर एव, यावत्करणात् 'कंततराए चेव पियतराए चेव मणामतराए चेवे'ति परिग्रहः, आस्वादः प्रज्ञप्तः॥ पुष्पफलादीनामास्वादनं पृच्छन्नाह—'**तेसि णं भंते! पुप्फफलाणं**' मित्यादि, तेषां कल्पपादपसत्कानां पुष्पफलानां कीदृश आस्वादः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! '**से जहा नामए**' इत्यादि तद्यथा नाम राज्ञः, स च राजा लोके कतिपयदेशाधिपतिरपि प्राप्यते तत आह—चतुरन्तचक्रवर्त्तिनः—चतुर्षु अन्तेषु त्रिसमुद्रहिमवत्परिच्छिन्नेषु चक्रेण वर्त्तितुं शीलं यस्यासौ चक्रवर्त्ती तस्य कल्याणं—एकान्तसुखावहं भोजनं शतसहस्रनिष्पन्नं—लक्षनिष्पन्नं वर्णेनातिशायिनेति गम्यते, एवं गन्धेन रसेन स्पर्शेनोपपेतं, आस्वादनीयं सामान्येन विस्वादनीयं विशेषतस्तद्रसप्रकर्षमधिकृत्य दीपनीयमग्निवृद्धिकरं, दीपयति हि जाठराग्निमिति दीपनीयं, बाहुलकात्कर्त्तर्यनीयप्रत्ययः, एवं दर्प्पणीयमुत्साहवृद्धिहेतुत्वात्, मदनीयं मन्मथजननात्, बृंहणीयं धातूपचयकारित्वात्, सर्वाणीन्द्रियाणि गात्रं च प्रह्लादयतीति स-

वेंन्द्रियगात्रप्रह्लादनीयं, वैशद्येन तत्प्रह्लादहेतुत्वात्, एवमुक्ते गौतम आह—भगवन्! भवेदेतद्रूपः पुष्पफलानामास्वादः?, भगवानाह—गौतम! नायमर्थः समर्थः, तेषां पुष्पफलानामितश्चक्रवर्त्तिभोजनादिष्टतरादिरेवास्वादः प्रज्ञप्तः ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! मनुजास्तं—अनन्तरोदितस्वरूपमाहारमाहार्य 'क्व वसतौ' कस्मिन्नुपाश्रये 'उपयान्ति?' उपगच्छन्ति, भगवानाह—गौतम! 'वृक्षगृहालयाः' वृक्षरूपाणि गृहाणि आलया—आश्रया येषां ते वृक्षगृहालयास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'ते णं भंते' इत्यादि, ते भदन्त! वृक्षाः 'किंसंस्थिताः' किमवसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! अप्येककाः कूटाकारसंस्थिताः शिखराकारसंस्थिता इत्यर्थः अप्येककाः प्रेक्षागृहसंस्थिताः अप्येककाश्छत्रसंस्थिताः अप्येकका ध्वजसंस्थिताः अप्येककाः स्तूपसंस्थिताः अप्येककास्तोरणसंस्थिताः अप्येकका गोपुरसंस्थिताः, गोभिः पूर्यत इति गोपुरं—पुरद्वारं, अप्येकका वेदिकासंस्थानसंस्थिताः, वेदिका—उपवेशनयोग्या भूमिः, अप्येककाश्चोप्पालसंस्थिता इत्यर्थः, चोप्पालं नाम मत्तवारणं, अप्येकका अट्टालकसंस्थिताः अट्टालकः—प्राकारस्योपर्याश्रयविशेषः, अप्येकका वीथीसंस्थिताः वीथी—मार्गः, अप्येककाः प्रासादसंस्थिताः, राज्ञां देवतानां च भवनानि प्रासादाः उत्सेधबहुला वा प्रासादास्ते चोभयेऽपि पर्यन्तशिखराः, हर्म्य—शिखररहितं धनवतां भवनं, अप्येकका गवाक्षसंस्थिताः, गवाक्षो—वातायनं, अप्येकका वालाग्रपोतिकासंस्थिताः, वालाग्रपोतिका नाम तडागादिषु जलस्योपरि प्रासादः, अप्येकका वलभीसंस्थिताः, वलभी—गृहाणामाच्छादनं, अप्येकका वरभवनविशिष्टसंस्थानसंस्थिताः, वरभवनं सामान्यतो विशिष्टं गृहं तस्यैव यद् विशिष्टं संस्थानं तेन संस्थिताः, शुभा शीतला च छाया येषां ते शुभशीतलच्छायास्ते द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु गृहाणि वाऽऽसद्गृहकल्पानि गृहायतनानि—तेषु गृहेषु तेषां मनुष्याणामायतनानि—गमनानि गृहायतनानि?,

भगवानाह—गौतम! नायमर्थः समर्थो, वृक्षगृहालयास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु ग्रामा इति वा यावत्सन्निवेशा इति वा, यावत्करणान्नगरादिपरिग्रहः, तत्र ग्रसन्ति बुद्ध्यादीन् गुणानिति यदिवा गम्याः—शास्त्रप्रसिद्धानामष्टादशानां कराणामिति ग्रामाः, न विद्यते करो येषु तानि नकराणि, नखादय इति निपातनान्नञोऽनादेशाभावः, निगमाः—प्रभूतवणिग्वर्गावासाः, पांशुप्राकारनिबद्धानि खेटानि, क्षुल्लप्राकारवेष्टितानि कर्बटानि, अर्द्धतृतीयगव्यूतान्तर्ग्रामरहितानि मडम्बानि, 'पट्टणाइ वे'ति पट्टनानि पत्तनानि वा, उभयत्रापि प्राकृतत्वेन निर्देशस्य समानत्वात्, तत्र यन्नौभिरेव गम्यं तत्पट्टनं, यत्पुनः शकटैर्घोटकैर्नौभिश्च गम्यं तत्पत्तनं यथा भरुकच्छं, उक्तं च—"पत्तनं शकटैर्गम्यं, घोटकैर्नौभिरेव च। नौभिरेव तु यद्गम्यं, पट्टनं तत्प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥" द्रोणमुखानि—बाहुल्येन जलनिर्गमप्रवेशानि, आकरा—हिरण्याकरादयः, आश्रमाः—तापसावसथोपलक्षिता आश्रयाः, संबाधा—यात्रासमागतप्रभूतजननिवेशाः, राजधान्यो यत्र नकरे पत्तनेऽन्यत्र वा स्वयं राजा वसति, सन्निवेशा इति—सन्निवेशो यत्र सार्थादिरावासितः, भगवानाह—गौतम! नायमर्थः समर्थो, यद्—यस्मान्नेच्छितकामगामिनः—न इच्छितं—इच्छाविषयीकृतं नेच्छितं, नायं नञ् किन्तु नशब्द इत्यत्रा(ना)देशाभावो यथा 'नैके द्वेपस्य पर्याया' इत्यत्र, नेच्छितं—इच्छाया अविषयीकृतं कामं—स्वेच्छया गच्छन्तीत्येवंशीला नेच्छितकामगामिनस्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु 'असयः' अस्युपलक्षिताः सेवकाः पुरुषाः, मषीति वा मष्युपलक्षिता लेखनजीविनः, कृषिरिति कृषिकर्मोपजीविनः, 'पणी'ति पणितं पण्यमिति वा क्रयविक्रयोपजीविनः, वाणिज्यमिति वाणिज्यकलोपजीविनः?, भगवानाह—गौतम! नायमर्थः समर्थो, व्यपगतासिमषीकृषिपण्यवाणिज्यास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते'

इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु हिरण्यमिति वा–हिरण्यं–अघटितं सुवर्णं कांस्यं–कांस्यभाजनजातिः 'दूस'मिति वा दूष्यं वस्त्रजातिः, मणिमौक्तिकशङ्खशिलाप्रवालसत्सारस्वापतेयानि वा, तत्र मणिमौक्तिकशङ्खशिलाप्रवालानि प्रतीतानि सद्–विद्यमानं सारं–प्रधानं स्वापतेयं–धनं सत्सारस्वापतेयं, भगवानाह–हन्ता! अस्ति, 'नो चेव ण'मित्यादि, न पुनस्तेषां मनुजानां तद्विषयस्तीव्रो ममत्वभावः समुत्पद्यते, मन्दरागादितया विशुद्धाशयत्वात् ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु राजेति वा राजा–चक्रवर्त्ती बलदेववासुदेवो महामाण्डलिको वा युवराज इति वा–उत्थिताशनः ईश्वरो–भोगिकादि, अणिमाद्यष्टविधैश्वर्ययुक्त ईश्वर इत्येके, तलवर इति वा, तलवरो नाम परितुष्टनरपतिप्रदत्तरत्नालङ्कृतसौवर्णपट्टविभूषितशिराः, कौटुम्बिक इति वा, कतिपयकुटुम्बप्रभुः कौटुम्बिकः, माडम्बिक इति वा, यस्य प्रत्यासन्नं ग्रामनगरादिकमपरं नास्ति तत्सर्वतश्छिन्नं जनाश्रयविशेषरूपं मडम्बं तस्याधिपतिर्माडम्बिकः, इभ्य इति वा, इभो–हस्ती तत्प्रमाणं द्रव्यमर्हतीतीभ्यः, यत्सत्कपुञ्जीकृतहिरण्यरत्नादिद्रव्येणान्तरितो हस्त्यपि न दृश्यते सोऽधिकतरद्रव्यो वा इभ्य इत्यर्थः, श्रेष्ठीति वा श्रीदेवताऽध्यासितसौवर्णपट्टविभूषितोत्तमाङ्गः पुरज्येष्ठो वणिग्विशेषः श्रेष्ठी, सेनापतिरिति वा हस्त्यश्वरथपदातिसमुदायलक्षणायाः सेनायाः प्रभुः सेनापतिः, सार्थवाह इति वा, "[1]गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छेज्जं चेव दव्वजायं तु । घेत्तूणं लाभत्थं वच्चइ जो अन्नदेसं तु ॥ १ ॥ निववहुमओ पसिद्धो दीणाणाहाण वच्छलो पंथे । सो सत्थवाहनामं धणो व्व लोए समुव्वहइ ॥ २ ॥" एतल्लक्षणयुक्तः सार्थवाहः, भगवानाह–गौतम! नायमर्थः समर्थो, व्यपगतर्द्धिसत्कारा–

---

१ गणिमं धरिमं मेयं परिच्छेद्यं चैव द्रव्यजातं तु । गृहीत्वा लाभार्थं व्रजति योऽन्यदेशं तु ॥ १ ॥ नृपबहुमतः प्रसिद्धो दीनानाथाना वत्सल. पथि । स सार्थवाहनाम धन इव लोके समुद्वहति ॥ २ ॥

व्यपगता ऋद्धिः—विभवैश्वर्यं सत्कारश्च—सेव्यतालक्षणो येभ्यस्ते तथा उत्तरकुरुवास्तव्या मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! । 'अत्थि णं भंते', इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु दास इति वा, दासः—आमरणं क्रयक्रीतः, प्रेष्य इति वा, प्रेष्यः—प्रेषणयोग्यः, शिष्य इति वा, शिष्यः—उपाध्यायस्योपासकः, भृतक इति वा, भृतको—नियतकालमधिकृत्य वेतनेन कर्म्मकरणाय धृतः, 'भागिल्लए'त्ति वा भागिक इति वा, भागिको नाम द्वितीयांशस्य चतुर्थांशस्य वा ग्राहकः, कर्मकारपुरुष इति वा, कर्म्मकारो लोहारादिः कर्म्मकारः?, भगवानाह—गौतम! नायमर्थः समर्थो, व्यपगताभियोग्यास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ताः, अभिमुखं कर्म्मसु युज्यते व्यापार्यत इति वाऽभियोग्यस्तस्य भावः कर्म्म वा आभियोग्यं, 'व्यञ्जनाद् यपंचमस्य सरूपे वा' इत्येकस्य यकारस्य लोपः, व्यपगतमाभियोग्यं येभ्यस्ते तथा हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु मातेति वा पितेति वा भ्रातेति वा भगिनीति वा भार्येति वा सुत इति वा दुहितेति वा स्नुषेति वा?, तत्र माता—जननी पिता—जनकः सहोदरो—भ्राता सहोदरी—भगिनी वधू—भार्या सुतः—पुत्रः सुता—दुहिता पुत्रवधूः—स्नुषा, भगवानाह—हन्त! अस्ति, तथाहि—या प्रसूते सा जननी, यो वीजं निषिक्तवान् स पिता विवक्षितः पुरुषः, सहजातो यो भ्राता एकमातृपितृकत्वात्, इतरा तस्य भगिनी, भोग्यत्वाद् भार्या, स्वमातापित्रोः स पुत्र इतरा दुहिता, स्वपुत्रभोग्यत्वात्स्नुषेति, 'नो चेव ण'मित्यादि, न पुनस्तेषां मनुजानां तीव्रं प्रेमरूपं वन्धनं समुत्पद्यते, तथा क्षेत्रस्वाभाव्यात् प्रतनुप्रेमवन्धनास्ते मनुजगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु अरिरिति वा—शत्रुः वैरीति वा—जातिनिवद्धवैरोपेतः, घातक इति वा, घातको योऽन्येन घातयति, वधक इति वा, वधकः—स्वयं हन्ता, प्रत्यनीक इति वा, प्रत्यनीकः—छिद्रान्वेषी, प्रत्यमित्र इति वा, प्रत्यमित्रो यः पूर्वं मित्रं भूत्वा पश्चाद्-

मित्रो जातः ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थो, व्यपगतवैरानुबन्धास्ते मनुजगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु मित्रमिति वा मित्रं—स्नेहविषयः, वयस्य इति वा—समानवया गाढतरस्नेहविषयः, सखा इति वा—समानखादनपानो गाढतमस्नेहस्थानं, सुहृदिति वा, सुहृत्—मित्रमेव सकलकालमव्यभिचारि हितोपदेशदायि च, साङ्गतिक इति वा, साङ्गतिकः—सङ्गतिमात्रघटितः ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थो, व्यपगतस्नेहानुरागास्ते मनुजगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु 'आवाहा इति वा' आहूयन्ते स्वजनास्ताम्बूलदानाय यत्र स आवाहः—विवाहात्पूर्वस्ताम्बूलदानोत्सवः, वीवाहा इति वा, वीवाहः—परिणयनं, यज्ञा इति वा, यज्ञाः—प्रतिदिवसं स्वस्वेष्टदेवतापूजाः, श्राद्धानीति वा, श्राद्धं—पितृक्रिया, स्थालीपाका इति वा, स्थालीपाकः—प्रतीतः, मृतपिण्डनिवेदनानीति वा—मृतेभ्यः श्मशाने तृतीयनवमादिषु दिनेषु पिण्डनिवेदनानि मृतपिण्डनिवेदनानि, चूडोपनयनानीति वा, चूडोपनयनं—शिरोमुण्डनं, सीमन्तोन्नयनानीति वा, सीमन्तोन्नयनं—गर्भस्थापनं ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थो, व्यपगतावाहवीवाहयज्ञश्राद्धस्थालीपाकमृतपिण्डनिवेदनास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु नटप्रेक्षेति वा नटा—नाटकानां नाटयितारस्तेषां प्रेक्षा नटप्रेक्षा, नृत्यप्रेक्षेति वा, नृत्यन्ति स्म नृत्या—नृत्यविधायिनस्तेषां प्रेक्षा नृत्यप्रेक्षा इति वा, जल्लप्रेक्षेति वा, जल्ला—वरत्राखेलका राजस्तोत्रपाठका इत्यपरे तेषां प्रेक्षा जल्लप्रेक्षा, मल्लप्रेक्षेति वा, मल्लाः—प्रतीताः, मौष्टिकप्रेक्षेति वा, मौष्टिकाः मल्लविशेषा एव ये मुष्टिभिः प्रहरन्ति, विडम्बकप्रेक्षेति वा, विडम्बका—विदूषका नानावेषकारिण इत्यर्थः, कथकप्रेक्षेति वा, कथकाः प्रतीताः, प्लवकप्रेक्षेति वा, प्लवका ये उत्प्लुत्य गर्त्तादिकं झम्पाभिर्लङ्घयन्ति नद्यादिकं वा तरन्ति तेषां प्रेक्षा प्लवकप्रेक्षा, लासकप्रेक्षेति वा, लासका ये रास-

कान् गायन्ति जयशब्दप्रयोक्तारो वा भाण्डास्तेषां प्रेक्षा लासकप्रेक्षा, आख्यायकप्रेक्षेति वा ये शुभाशुभमाख्यान्ति ते आख्यायकास्तेषां प्रेक्षा आख्यायकप्रेक्षा, लङ्खप्रेक्षेति वा, लङ्खा ये महावंशाग्रमारुह्य नृत्यन्ति तेषां प्रेक्षा लङ्खप्रेक्षा, मङ्खप्रेक्षेति वा, ये चित्रपट्टिकादिहस्ता भिक्षां चरन्ति ते मङ्खास्तेषां प्रेक्षा मङ्खप्रेक्षा, 'तूणइल्लपेच्छाइ वा' इति तूणइल्ला—तूणाभिधानवाद्यविशेषवन्तस्तेषां प्रेक्षा तूणइल्लप्रेक्षा, तुम्बवीणाप्रेक्षेति वा, तुम्बयुक्ता वीणा येषां ते तुम्बवीणाः—तुम्बवीणावादकास्तेषां प्रेक्षा तूणइडिवाहका तेषां प्रेक्षा, मागधप्रेक्षेति वा, मागधा—वन्दिभूतास्तेषां प्रेक्षा मागधप्रेक्षेति वा ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थो, व्यपगतकौतुकास्ते मनुजगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु इन्द्रमह इति वा, इन्द्रः—शक्रस्तस्य महः—प्रतिनियतदिवसभावी उत्सवः, स्कन्दमह इति वा, स्कन्दः—कार्त्तिकेयः, रुद्रमह इति वा, रुद्रः प्रतीतः, शिवमह इति वा, शिवो—देवताविशेषः, वैश्रमणमह इति वा, वैश्रमणः—उत्तरदिग्लोकपालः, नागमह इति वा, नागो—भवनपतिविशेषः, यक्षमह इति वा भूतमह इति वा, यक्षभूतौ—व्यन्तरविशेषौ, मकुन्दमह इति वा, मकुन्दो—बलदेवः, कूपमह इति वा तडागमह इति वा नदीमह इति वा ह्रदमह इति वा पर्वतमह इति वा वृक्षमह इति वा चैत्यमह इति वा स्तूपमह इति वा ?, कूपादयः प्रतीताः, भगवानाह—नायमर्थः समर्थो, व्यपगतमहमहिमास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु शकटानीति वा, शकटानि—प्रतीतानि, रथा वा, रथा द्विविधा—यानरथाः सङ्ग्रामरथाश्च, तत्र सङ्ग्रामरथस्य प्राकारानुकारिणी फलकमयी वेदिकाऽपरस्य तु न भवतीति विशेषः, यानानीति वा, यानं—गव्यादि, युग्यानीति वा, युग्यं—गोल्लविषयप्रसिद्धं द्विहस्तप्रमाणं चतुरस्रवेदिकोपशोभितं जम्पानं, गिल्लय इति वा, गिल्लिर्हस्तिन उपरि कोल्लररूपा या मानुषं गिलतीव, थिल्लय इति वा,

लाटानां यद् अङ्गुपल्लाणं रूढं तदन्यविषये थिल्लिरित्युच्यते, शिबिका इति वा, शिबिका—कूटाकाराच्छादितो जम्पानविशेषः, सन्दमाणिया इति वा, सन्दमाणिया—पुरुषप्रमाणो जम्पानविशेषः?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थः, पादविहारचारिणस्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति भदन्त! अश्वा इति वा हस्तिन इति वा उष्ट्रा इति वा गाव इति वा महिषा इति वा खरा इति वा घोटका इति वा?, इह जात्या आशुगमनशीला अश्वाः शेषा घोटकाः, खरा—गर्दभाः, अजा इति वा एडका इति वा?, भगवानाह—हन्त! सन्ति, न पुनस्तेषां मनुजानां परिभोग्यतया 'हव्वं' शीघ्रमागच्छन्ति ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु गाव इति वा, गावः—स्त्रीगव्यः, महिष्य इति वा उष्ट्र्य इति वा अजा इति वा एडका इति वा?, हन्त! सन्ति, न पुनस्तेषां मनुष्याणामुपभोग्यतया हव्वं शीघ्रमागच्छन्ति ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु सिंहा इति वा, सिंहः—पञ्चाननः, व्याघ्रा इति वा, व्याघ्रः—शार्दूलः, वृका इति वा, द्वीपिका इति वा द्वीपिकाः—चित्रकाः, ऋक्षा इति वा, परस्सरा इति वा, परस्सरो—गण्डः, शृगाला इति वा, बिडाला इति वा, शुनका इति वा, कालशुनका इति वा, कोकन्तिका इति वा, कोकन्तिका—लुङ्कडिकाः, शशका इति वा, चिल्लला इति वा, चिल्लल—आरण्यकः पशुविशेषः?, भगवानाह—हन्त! सन्ति, न पुनस्ते परस्परस्या तेषां वा मनुजानां काञ्चिदाबाधां वा प्रबाधां वा छविच्छेदं वा कुर्वन्ति, प्रकृतिभद्रकास्ते श्वापदगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु शालय इति वा व्रीहय इति वा गोधूमा इति वा यवा इति वा तिला इति वा इक्षव इति वा?, हन्त! सन्ति न पुनस्तेषां मनुष्याणां परिभोग्यतया 'हव्वं' शीघ्रमागच्छन्ति ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु स्थाणुरिति वा कण्टक इति वा हीरमिति वा, हीरं—लघु कुत्सितं तृणं, शर्करेति वा, शर्करा—कर्क-

रकः, तृणकचवर इति वा पत्रकचवर इति वा अशुचीति वा, अशुचि—विगन्धं शरीरमलादि, पूतीति वा, पूति—कुथितं स्वस्वभावचलितं त्रिवासरवटकादिवत्, दुरभिगन्धमिति वा, दुरभिगन्धं मृतकलेवरादिवत्, अचोक्षं—अपवित्रमस्थ्यादिवत् ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थो, व्यपगतस्थाणुकण्टकहीरशर्करातृणकचवरपत्रकचवराशुचिपूतिदुरभिगन्धाचोक्षपरिवर्जिता उत्तरकुरव. प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुपु कुरुपु, गर्त्तेति वा, गर्त्ता—महती खड्डा, दरीति वा, दरी—मूषिकादिकृता लघ्वी खड्डा, घसीति वा, घसी—भूराजिः, भृगुरिति वा, भृगुः—प्रपातस्थानं, विषममिति वा, विषमं—दुरारोहावरोहस्थानं, धूलिरिति वा पङ्क इति वा, धूलीपङ्कौ प्रतीतौ, चलणीति वा, चलनी—चरणमात्रस्पर्शी कर्दमः ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थः, उत्तरकुरुपु कुरुपु बहुसमरमणीयो भूभागः प्रज्ञप्तो हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! दंसा इति वा मसका इति वा ढङ्कुणा इति वा, क्वचित् पिशुगा इति वा इति पाठस्तत्र पिशुकाः—चंचटादयः, यूका इति वा लिक्षा इति वा ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थो, व्यपगतोपद्रवाः खलु उत्तरकुरवः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुपु कुरुपु अहय इति वा अजगरा इति वा महोरगा इति वा ?, हन्त! सन्ति न पुनस्तेऽन्योऽन्यस्य तेषां वा मनुजानां काञ्चिदाबाधां व्याबाधां वा छविच्छेदं वा कुर्वन्ति, प्रकृतिभद्रकास्ते व्यालकगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति (भदन्त)! उत्तरकुरुपु कुरुपु ग्रहदण्डा इति वा, दण्डाकारव्यत्रस्थिता ग्रहा ग्रहदण्डाः ते चानर्थोपनिपातहेतुतया प्रतिषेध्या न स्वरूपतः, एवं ग्रहमुशलानीति वा, ग्रहगर्जितानि—ग्रहचारहेतुकानि गर्जितानि, इमानि स्वरूपतोऽपि प्रतिषेध्यानि, ग्रहयुद्धानीति वा, ग्रहयुद्धं नाम यदेको ग्रहोऽन्यस्य ग्रहस्य मध्येन याति, ग्रहसङ्घाटका इति वा, ग्रहसङ्घाटको नाम ग्रहयुग्मं, ग्रहापसव्यानीति वा

अभ्राणीति वा, अभ्राणि—सामान्याकारेण प्रतीतानि, अभ्रवृक्षा इति वा, अभ्रवृक्षा—वृक्षाकारपरिणतान्यभ्राणि, सन्ध्या इति वा सन्ध्याकाले नीलाद्यभ्रपरिणतिरूपा प्रतीतैव, गन्धर्वनगराणि—सुरसदनप्रासादोपशोभितनगराकारतया तथाविधनभःपरिणतपुद्गलराशिरूपाणि, एतान्यपि तत्र स्वरूपतोऽपि न भवन्ति, गर्जितानीति वा विद्युत इति वा, गर्जितानि विद्युतश्च प्रतीताः, उल्कापाता इति वा, उल्कापाता—व्योम्नि संमूर्च्छितज्वलननिपतनरूपाः, दिग्दाह इति वा, दिग्दाहा—अन्यतरस्यां दिशि छिन्नमूलज्वलनज्वालाकरालिताम्बरप्रतिभासरूपाः, निर्घाता इति वा, निर्घातो—विद्युत्प्रपातः, पांशुवृष्टय इति वा, पांशुवृष्टयो—धूलिवर्षाणि, यूपका इति वा, यूपकाः 'संझाछेयावरणो य' इत्यादिनाऽऽवश्यकग्रन्थेन प्रतिपत्तव्याः, यक्षदीप्तकानीति वा, यक्षदीप्तकानि नाम नभसि दृश्यमानाग्निसहितः पिशाचः, धूमिकेति वा रूक्षा प्रविरला धूमाभा धूमिका, महिकेति वा, स्निग्धा घना घनत्वादेव भूमौ पतिता सार्द्रतृणादिदर्शनद्वारेणोपलक्ष्यमाणा महिका, रजउद्घाता—रजस्वला दिशः, चन्द्रोपरागा इति वा सूर्योपरागा इति वा, चन्द्रोपरागः—चन्द्रग्रहणं सूर्योपरागः—सूर्यग्रहणं, इह गर्जितविद्युदुल्कादिग्दाहनिर्घातपांशुवृष्टियूपकयक्षदीप्तकधूमिकामहिकारजउद्घाताः स्वरूपतोऽपि प्रतिषेध्याः, चन्द्रसूर्यग्रहणे त्वनर्थोपनिपातहेतुतया, स्वरूपतस्तयोः प्रतिषेद्धुमशक्यत्वात्, जम्बूद्वीपगतौ हि चन्द्रौ सूर्यौ वा तत्प्रकाशयतः, एकस्य चन्द्रस्य ग्रहणे सकलमनुष्यलोकवर्त्तिनां चन्द्राणामेकस्य सूर्यस्य ग्रहणे सकलमनुष्यलोकवर्त्तिनां सूर्याणां ग्रहणमत इह क्षेत्र इव तत्रापि स्वरूपतश्चन्द्रसूर्योपरागप्रतिषेधासम्भवः, चन्द्रपरिवेषा इति वा सूर्यपरिवेषा इति वा, चन्द्रसूर्यपरिवेषाश्चन्द्रादित्ययोः परितो वलयाकारपरिणतिरूपाः प्रतीता एव, प्रतिचन्द्रा इति वा प्रतिसूर्या इति वा, प्रतिचन्द्र—उत्पातादिसूचको द्वितीयश्चन्द्रः, एवं द्वितीयः सूर्यः प्रतिसूर्यः, इन्द्रधनुरिति वा उदकमत्स्य इति वा, इन्द्रधनुः—प्रतीतं, तस्यैव खण्डमुदकमत्स्यः, कपिहसितानीति वा, कपिहसितानि—अकस्मा-

भसि ज्वलद्भीमशब्दरूपाणि, अमोघा इति वा, अमोघाः—सूर्यविम्बस्याधः कदाचिदुपलभ्यमानशकटोद्धिसंस्थिता श्यामादिरेखा, एते चन्द्रपरिवेषादयः स्वरूपतोऽपि प्रतिषेध्याः, प्राचीनवाता इति वा अपाचीनवाता इति वा यावत् शुद्धवाता इति वा, यावत्करणाद् क्षिणवातादिपरिग्रहः, एतेऽसुखहेतवो विकृतरूपाः प्रतिषेध्याः नतु सामान्येन, पूर्वादिवातस्य तत्रापि सम्भवात्, ग्रामदाहा इति वा यावत्करणान्नकरदाहा इति यावत्संनिवेशदाहा इति, यावत्करणान्निगमदाहखेटदाहादिपरिग्रहः, दाहकृतश्च प्राणक्षय इति वा भूतक्षय इति वा कुलक्षय इति वा, एते स्वरूपतोऽपि प्रतिषेध्याः, तथा चाह भगवान्—गौतम! नायमर्थः समर्थः, केषाञ्चिदनर्थहेतुतया केषाञ्चित्स्वरूपतश्च तत्र तेषामसम्भवात् ॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु डिम्बानीति वा, डिम्बानि—स्वदेशोत्था विप्लवाः, डमराणीति वा, डमराणि—परराजकृता उपद्रवाः, कलहा इति वा, कलहा—वाग्युद्धानि, बोला इति वा, बोलः—आर्त्तानां बहूनां कलकलपूर्वको मेलापकः, क्षार इति वा, क्षारः—परस्परं मात्सर्यं, वैराणीति वा, वैरं—परस्परमसहनतया हिंस्यहिंसकभावाध्यवसायः, महायुद्धानीति वा, महायुद्धं—परस्परं मार्यमाणमारकतया युद्धं, महासङ्ग्रामा इति वा, महासन्नाहा इति वा, महासङ्ग्राम-**श्रेटिककोणिकवत्**, महासन्नाहो—बृहत्पुरुषाणामपि बहूनां यः सन्नाहः, महापुरुषनिपतनानीति वा, प्रतीतं, महाशस्त्रनिपतनानीति वा, महाशस्त्रनिपतनं—यन्नागवाणादीनां दिव्यास्त्राणां प्रक्षेपणं, नागवाणादयो हि वाणा महाशस्त्राणि, तेषामद्भुतविचित्रशक्तिकत्वात्, तथाहि नागवाणा धनुष्यारोपिता वाणाकारा मुक्ताश्च सन्तो जाज्वल्यमानासद्योल्कादण्डरूपास्ततः परशरीरे सङ्क्रान्ता नागमूर्त्तीभूय पाशत्वमुपगच्छन्ति, तामसबाणाश्च पर्यन्ते सकलसङ्ग्रामभूमिव्यापिमहान्धतमसरूपतया परिणमन्ते, उक्तञ्च—"चित्रं श्रेणिक! ते बाणा, भवन्ति धनुराश्रिताः। उल्कारूपाश्च गच्छन्तः, शरीरे नागमूर्त्तयः ॥ १ ॥ क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः, क्षणं पाशत्वमागताः।

आकरा बहुभेदास्ते, यथाचिन्तितमूर्त्तयः ॥ २ ॥" इत्यादि, भगवानाह—नायमर्थः समर्थो, व्यपगतडिम्बडमरकलहबोलक्षारवैरास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु दुर्भूतानीति वा, दुर्भूतं—अशिवं, कुलरोगा इति वा मण्डलरोगा इति वा शिरोवेदनेति वा अक्षिवेदनेति वा कर्णवेदनेति वा नखवेदनेति वा दन्तवेदनेति वा काश इति वा श्वास इति वा शोष इति वा ज्वर इति वा दाह इति वा कच्छूरिति वा खसर इति वा कुष्ठमिति वा अर्श इति वा अजीर्णमिति वा भगन्दर इति वा इन्द्रग्रह इति वा स्कन्धग्रह इति वा कुमारग्रह इति वा नागग्रह इति वा यक्षग्रह इति वा भूतग्रह इति वा धनुर्ग्रह इति वा उद्वेग इति वा एकाहिका इति वा द्व्याहिका इति वा त्र्याहिका इति वा चतुर्थका इति वा हृदयशूलानीति वा मस्तकशूलानीति वा पार्श्वशूलानीति वा कुक्षिशूलानीति वा योनिशूलानीति वा ग्राममारिरिति वा नकरमारिरिति वा निगममारिरिति वा यावत्सन्निवेशमारिरिति वा, यावत्करणात् खेडकर्बटादिपरिग्रहः, मारिकृतप्राणिक्षय इति वा जनक्षय इति वा धनक्षय इति वा कुलक्षय इति वा व्यसनभूतमनार्यतेति वा?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थो, व्यपगतरोगातङ्कास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'तेसि णं' मित्यादि, तेषामुत्तरकुरुवास्तव्यानां भदन्त! मनुष्याणां कियन्तं कालं स्थितिः—अवस्थानं प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्येन देशोनानि त्रीणि पल्योपमानि, तत्र न ज्ञायते कियता देशेनोनानि? तत आह—पल्योपमस्यासङ्ख्येयभागेनोनानि, उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि ॥ 'ते णं भंते' इत्यादि, ते उत्तरकुरुवास्तव्या भदन्त! मनुजाः कालमासे 'कालं' मरणं कृत्वा क्व गच्छन्ति?, एतदेव व्याचष्टे—कोत्पद्यन्ते? इति, भगवानाह—गौतम! ते मनुजाः षण्मासावशेषायुषः कृतपरभवायुर्बन्धाः स्वकाले युगलं प्रसूवते, प्रसूय एकोनपञ्चाशतं रात्रिन्दिवानि तद् युगलमनुपालयन्ति, अनुपाल्य काशित्वा क्षुत्वा जृम्भयित्वा

'अक्लिष्टाः' स्वशरीरोत्थक्लेशरहिताः 'अव्यथिताः' परेणानापादितदुःखाः 'अपरितापिताः' स्वतः परतो वाऽनुपजातकायमनःपरितापाः कालमासे कालं कृत्वा 'देवलोकेषु' भवनपत्याद्याश्रयेषूत्पद्यन्ते, 'देवलोगपरिग्गहिया ण'मिति देवलोको—भवनपत्याद्याश्रयरूपस्तथाक्षेत्रस्वाभाव्यतस्तद्योग्यायुर्बन्धनेन परिगृहीतो यैस्ते देवलोकपरिगृहीताः, निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, णमिति वाक्यालङ्कारे, ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'उत्तरकुराए णं भंते' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु भदन्त! 'कतिविधाः' जातिभेदेन कतिप्रकारा मनुष्याः 'अनुसजन्ति?' सन्तानेनानुवर्त्तन्ते, भगवानाह—गौतम! षड्विधा मनुजा अनुसजन्ति, तद्यथा—पद्मगन्धा इत्यादि, जातिवाचका इमे शब्दाः। अत्र विनेयजनानुग्रहायोत्तरकुरुविषयसूत्रसङ्कलनार्थं सङ्ग्रहणिगाथात्रयमाह—"उसुजीवाधणुपट्ठं भूमी गुम्मा य हेरुउद्दाला। तिलगलयावणराई रुक्खा मणुया य आहारे ॥ १ ॥ गेहा गामा य असी हिरण्ण राया य दास माया य। अरिवेरिए य मित्ते विवाहमहनट्टसगडा य ॥ २ ॥ आसा गावो सीहा साली खाणू य गड्डदंसाही। गहजुद्धरोगठिइ उवट्टणा य अणुसज्जणा चेव ॥ ३ ॥" अस्य व्याख्या—प्रथममुत्तरकुरुविषयमिषुजीवाधनुःपृष्ठप्रतिपादकं सूत्रं, तदनन्तरं भूमिरिति भूमिविषयं सूत्रं, ततो 'गुम्मा' इति गुल्मविषयं, तदनन्तरं हेरुतालवनविषयं, ततः 'उद्दाला' इति उद्दालादिविषयं, तदनन्तरं 'तिलग' इति तिलकपदोपलक्षितं, ततो लताविषयं, तदनन्तरं वनराजीविषयं, ततः 'रुक्खा' इति दशविधकल्पपादपविषया दश सूत्रदण्डकाः, 'मणुया य' इति त्रयो मनुष्यविषयाः सूत्रदण्डकास्तद्यथा—आद्यः पुरुषविषयो द्वितीयः स्त्रीविषयस्तृतीयः सामान्यत उभयविषय इति, ततः 'आहारे' इति आहारविषयः, तदनन्तरं 'गेहा' इति गृहविषयौ द्वौ दण्डकौ, आद्यो गृहाकारवृक्षाभिधायी अपरो गेहाद्यभावविषय इति, ततः 'गामा' इति ग्रामाद्यभावः, तदनन्तरमसीति अस्याद्यभावविषयः, ततो हिरण्यादिविषयः, तद-

नन्तरं राजाद्यभावविषयः, ततो दासाद्यभावविषयः, ततो मात्रादिविषयः, तदनन्तरमरिवैरिप्रभृतिप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं मित्राद्यभावविषयः, तदनन्तरं विवाहपदोपलक्षितस्तत्प्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं महप्रतिषेधविषयः, ततो नृत्यपदोपलक्षितः प्रेक्षाप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं शकटादिप्रतिषेधविषयः, ततोऽश्वादिपरिभोगप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं स्त्रीगव्यादिपरिभोगप्रतिषेधविषयः, ततः सिंहादिश्वापदविषयः, तदनन्तरं शाल्याद्युपभोगप्रतिषेधविषयः, ततः स्थाण्वादिप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं गर्त्तादिप्रतिषेधविषयः, ततो दंशाद्यभावविषयः, ततोऽह्यादिविषयः, तदनन्तरं 'गहं' इति ग्रहदण्डादिविषयः, ततः 'जुद्ध' इति युद्धपदोपलक्षितो डिम्बादिप्रतिषेधविषयः सूत्रदण्डकः, ततो रोग इति रोगपदोपलक्षितो दुर्भूतादिप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं स्थितिसूत्रं, ततोऽनुषजनसूत्रमिति ॥ सम्प्रत्युत्तरकुरुभावियमकपर्वतवक्तव्यतामाह—

कहि णं भंते! उत्तरकुराए कुराए जमगा नामं दुवे पव्वता पन्नत्ता?, गोयमा! नीलवंतस्स वासधरपव्वयस्स दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयणसते चत्तारि य सत्तभागे जोयणस्स अबाधाए सीताए महाणईए (पुव्वपच्छिमेणं) उभओ कूले, इत्थ णं उत्तर कुराए जमगा णामं दुवे पव्वता पण्णत्ता एगमेगं जोयणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं जोयणसताणि उव्वेहेणं मूले एगमेगं जोयणसहस्सं आयामविक्खंभेणं मज्झे अद्धट्ठमाइं जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं उवरिं पंचजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठिं जोयणसतं किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं मज्झे दो जोयणसहस्साइं तिन्नि य बावत्तरे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं

पन्नत्ते उवरिं पन्नरसं एक्कासीते जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते, मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिता सव्वकणगमया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा पत्तेयं २ पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं २ वणसंडपरिक्खित्ता, वण्णओ दोण्हवि, तेसि णं जमगपव्वयाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते वण्णओ जाव आसयंति० ॥ तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं २ पासायवडेंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एकत्तीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं अब्भुग्गतमूसिता वण्णओ भूमिभागा उल्लोता दो जोयणाइं मणिपेढियाओ वरसीहासणा सपरिवारा जाव जमगा चिट्ठंति ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुचति जमगा पव्वता? २, गोयमा! जमगेसु णं पव्वतेसु तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहुइओ खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ जाव बिलपंतिताओ, तासु णं खुड्डाखुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहूइं उप्पलाइं २ जाव सतसहस्सपत्ताइं जमगप्पभाइं जमगवण्णाइं, जमगा य एत्थ दो देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, ते णं तत्थ पत्तेयं पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव जमगाण पव्वयाणं जमगाण य रायधाणीणं अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव पालेमाणा विहरंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं० जमगपव्वया २, अदुत्तरं च णं गोयमा! जाव णिच्चा

॥ कहि णं भंते ! जमगाणं देवाणं जमगाओ नाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा ! जमगाणं पव्वयाणं उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीइवतित्ता अण्णंमि जंबूदीवे २ बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जमगाणं देवाणं जमगाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ बारसजोयणसहस्स जहा विजयस्स जाव महिड्डिया जमगा देवा जमगा देवा ॥ (सू० १४८)

'कहि णं भंते !' इत्यादि, क भदन्त ! उत्तरकुरुषु कुरुषु यमकौ नाम द्वौ पर्वतौ प्रज्ञप्तौ ?, भगवानाह—गौतम ! नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तात्—चरमरूपात्पर्यन्तादष्टौ योजनशतानि चतुस्त्रिंशदधिकानि चतुरश्च योजनस्य सप्तभागान् अवाधया कृत्वा—अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, अत्रान्तरे शीताया महानद्याः 'पूर्वपश्चिमेन' पूर्वपश्चिमयोर्दिशोरुभयोः कूलयोः 'अत्र' एतस्मिन् प्रदेशे यमकौ नाम द्वौ पर्वतौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—एकः पूर्वकूले एकः पश्चिमकूले, प्रत्येकं चैकं योजनसहस्रमुच्चैस्त्वेन, अर्द्धतृतीयानि योजनशतान्युद्वेधेन—अवगाहेन, मेरुव्यतिरेकेण शेषशाश्वतपर्वतानां सर्वेषामविशेषेणोच्चैस्त्वापेक्षया चतुर्भागस्यावगाहनाभावात्, मूले एकयोजनसहस्रं विष्कम्भतः १०००, मध्येऽर्द्धाष्टमानि योजनशतानि ७५०, उपरि पञ्च योजनशतानि ५००, मूले त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च द्वाषष्टं—द्वाषष्ट्यधिकं योजनशतं किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तौ ३१६२, मध्ये द्वे योजनसहस्रे त्रीणि योजनशतानि द्वासप्ततानि—द्वासप्तत्यधिकानि २३७२ किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तौ, उपरि एकं योजनसहस्रं पञ्च चैकाशीतानि—एकाशीत्यधिकानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि १५८१ परिक्षेपेण, एवं च तौ मूले विस्तीर्णौ मध्ये संक्षिप्तौ उपरि च तनुकावत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थितौ, 'सव्वकणगमया' इति सर्वात्मना कनकमयौ 'अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत्, तौ च प्रत्येकं

प्रत्येकं पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्तौ प्रत्येकं २ वनखण्डपरिक्षिप्तौ, पद्मवरवेदिकावर्णको वनखण्डवर्णकश्च जगत्युपरिपद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णकवद् वक्तव्यः ॥ 'तेसि णं जमगपव्वयाण'मित्यादि, यमकपर्वतयोरुपरि प्रत्येकं बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, भूमिभागवर्णनं 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावद् 'वाणमंतरा देवाय देवीओ य आसयंति सयंति जाव पच्चणुभवमाणा विहरंति' ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तयोर्बहुसमरमणीययोर्भूमिभागयोर्बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, तौ च प्रासादावतंसकौ द्वाषष्टिर्योजनान्यर्द्धयोजनं चोर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, एकत्रिंशद् योजनानि क्रोशं चैकं विष्कम्भेन, 'अब्भुग्गयमूसियपहसिया इवेत्यादि यावत् पडिरूवा' इति प्रासादावतंसकवर्णनमुल्लोचवर्णनं भूमिभागवर्णनं मणिपीठिकावर्णनं सिंहासनवर्णनं विजयदूष्यवर्णनमङ्कुशवर्णनं दामवर्णनं च निरवशेषं प्राग्वद्वक्तव्यं, नवरमत्र मणिपीठिकायाः प्रमाणमायामविष्कम्भाभ्यां द्वे योजने, बाहल्येनैकं योजनं, शेषं तथैव । 'तेसि णं सिंहासणाण'मित्यादि, तयोः सिंहासनयोः प्रत्येकम् 'अवरुत्तरेणं'ति अपरोत्तरस्यां वायव्यामित्यर्थः उत्तरस्यामुत्तरपूर्वस्यां च दिशि, अत एतासु तिसृषु दिक्षु 'यमकयोः' यमकनाम्नोर्यमकपर्वतस्वामिनोर्देवयोः प्रत्येकं प्रत्येकं चतुर्णां सामानिकसहस्राणां योग्यानि चत्वारि भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, एवमनेन क्रमेण सिंहासनपरिवारो वक्तव्यो यथा प्राग्विजयदेवस्य ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तयोः प्रासादावतंसकयोः प्रत्येकमुपर्यष्टावष्टौ मङ्गलकानि प्रज्ञप्तानि इत्याद्यपि प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावत् 'सयसहस्सपत्तगा' इति पदम् ॥ सम्प्रति नामनिबन्धनं पिपृच्छिषुरिदमाह—अथ 'केनार्थेन' केन कारणेन एवमुच्यते—यमकपर्वतौ यमकपर्वतौ ? इति, भगवानाह—गौतम ! यमकपर्वतयोः णमिति वाक्यालङ्कारे क्षुल्लकक्षुल्लिकासु वापीपुष्करिणीषु यावद्बिलपङ्क्तिषु बहूनि यावत्सहस्रपत्राणि 'यमकप्रभाणि' यमका नाम—शकुनिविशेषास्तत्प्रभानि—तदाकाराणि, एतदेव व्याचष्टे—यमकवर्णाभानि

—यमकवर्णसदृशवर्णानीत्यर्थः, 'यमकौ च' यमकनामानौ च तत्र—तयोर्यमकपर्वतयोः स्वामित्वेन द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावन्महाभागौ पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तौ च तत्र प्रत्येकं चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चतसृणामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां तिसृणामभ्यन्तरमध्यमबाह्यरूपाणां यथासङ्ख्यमष्टदशद्वादशदेवसहस्रसङ्ख्याकानां पर्षदां सप्तानामनीकानां सप्तानामनीकाधिपतीनां षोडशानामात्मरक्षदेवसहस्राणां 'जमगपव्वयाणं जमगाण य रायहाणीण'मिति स्वस्य स्वस्य यमकपर्वतस्य स्वस्य स्वस्य यमिकाभिधाया राजधान्या अन्येषां च बहूनां वाणमन्तराणां देवानां देवीनां च स्वस्वयमिकाभिधराजधानीवास्तव्यानामाधिपत्यं यावद्विहरतः, यावत्करणात् 'पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्त'मित्यादिपरिग्रहः, ततो यमकाकारयमकवर्णोत्पलादियोगाद्यमकाभिधदेवस्वामिकत्वाच्च तौ यमकपर्वतावित्युच्येते, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि ॥ सम्प्रति यमिकाभिधराजधानीस्थानं पृच्छति—कहि णं भंते' इत्यादि, क भदन्त! यमकयोर्देवयोः सम्बन्धिन्यौ यमिके नाम राजधान्यौ प्रज्ञप्तौ ?, भगवानाह—गौतम! यमकपर्वतयोरुत्तरतोऽन्यस्मिन्नसङ्ख्येयतमे जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वादश योजनसहस्राणि अवगाह्यात्रान्तरे यमकयोर्देवयोः सम्बन्धिन्यौ यमिके नाम राजधान्यौ प्रज्ञप्ते, ते चाविशेषेण विजयराजधानीसदृशे वक्तव्ये । सम्प्रति ह्रदवक्तव्यतामभिधित्सुराह—

कहि णं भंते! उत्तरकुराए २ नीलवंतद्दहेणामं दहे पण्णत्ते?, गोयमा! जमगपव्वयाणं दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयणसते चत्तारि सत्तभागा जोयणस्स अबाहाए सीताए महाणईए बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं उत्तरकुराए २ नीलवंतद्दहे नामं दहे पन्नत्ते, उत्तरदक्खिणायए पाईणपडीणविच्छिन्ने एगं जोयणसहस्सं आयामेणं पंच जोयणसताइं विक्खंभेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे रयतामत-

कूले चउक्कोणे समतीरे जाव पडिरूवे उभओ पासिं दोहि य पउमवरवेइयाहिं वणसंडेहिं स-
व्वतो समंता संपरिक्खित्ते दोण्हवि वण्णओ ॥ णीलवंतद्दहस्स णं दहस्स तत्थ २ जाव बहवे
तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ भाणियव्वो जाव तोरणत्ति ॥ तस्स णं नीलवंतद्दहस्स
णं दहस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं पउमे पण्णत्ते, जोयणं आयामविक्खंभेणं तं ति-
गुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं दो कोसे ऊसिते जलं-
तातो सातिरेगाइं दसद्धजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ॥ तस्स णं पउमस्स अयमेयारूवे वण्णा-
वासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामता मूला रिट्ठामते कंदे वेरुलियामए नाले वेरुलियामता बाहिर-
पत्ता जंबूणयमया अब्भितरपत्ता तवणिज्जमया केसरा कणगामई कण्णिया नाणामणिमया पु-
क्खरत्थिभुता ॥ सा णं कण्णिया अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खे-
वेणं कोसं बाहल्लेणं सव्वप्पणा कणगमई अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा ॥ तीसे णं कण्णियाए
उवरिं बहुसमरमणिज्जे देसभाए पण्णत्ते जाव मणीहिं ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभा-
गस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खं-
भेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसतसंनिविट्ठं जाव वण्णओ, तस्स णं भवणस्स ति-
दिसिं ततो दारा पण्णत्ता पुरत्थिमेणं दाहिणेणं उत्तरेणं, ते णं दारा पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं

अड्ढाइज्जाइं धणुसताइं विक्खंभेणं तावतियं चेव पवेसेणं सेया वरकणगथूभियागा जाव वणमालाउत्ति ॥ तस्स णं भवणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहा नामए—आलिंगपुक्खरेति वा जाव मणीणं वण्णओ ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं मणिपेढिया पण्णत्ता, पंचधणुसयाइं आयामविक्खंभेणं अड्ढाइज्जाइं धणुसताइं बाहल्लेणं सव्वमणिमई ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, देवसयणिज्जस्स वण्णओ ॥ से णं पउमे अण्णेणं अट्ठसतेणं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्ताणं पउमाणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते ॥ ते णं पउमा अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं कोसं बाहल्लेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं कोसं ऊसिया जलंताओ साइरेगाइं ते दस जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ताइं ॥ तेसि णं पउमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया मूला जाव णाणामणिमया पुक्खरत्थिभुगा ॥ ताओ णं कण्णियाओ कोसं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं स० परि० अद्धकोसं बाहल्लेणं सव्वकणगामईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तासि णं कण्णियाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा जाव मणीणं वण्णो गंधो फासो ॥ तस्स णं पउमस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं नीलवंतदहस्स कुमारस्स चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवं (एतेणं) सव्वो परिवारो

नवरि पउमाणं भाणितव्वो ॥ से णं पउमे अण्णेहिं तिहिं पउमवरपरिक्खेवेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते, तंजहा—अब्भिंतरेणं मज्झिमेणं बाहिरएणं, अब्भिंतरएणं पउमपरिक्खेवे बत्तीसं पउमसयसाहस्सीओ प०, मज्झिमए णं पउमपरिक्खेवे चत्तालीसं पउमसयसाहस्सीओ पं० बाहिरए णं पउमपरिक्खेवे अडयालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवामेव सपुव्वावरेणं एगा पउमकोडी वीसं च पउमसतसहस्सा भवंतीति मक्खाया ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—णीलवंतद्दहे दहे?, गोयमा! णीलवंतद्दहे णं तत्थ तत्थ जाइं उप्पलाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं नीलवंतप्पभातिं नीलवंतद्दहकुमारे य० सो चेव गमो जाव नीलवंतद्दहे २ ॥ (सू० १४९)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! उत्तरकुरुपु कुरुपु नीलवद्ह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! यमकपर्वतयोर्दक्षिणाचरमान्तादर्वाग् दक्षिणाभिमुखमष्टौ 'चतुस्त्रिंशानि' चतुस्त्रिंशदधिकानि योजनशतानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्याबाधया कृत्वेति गम्यते अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, अत्रान्तरे शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे 'एत्थ णं'ति एतस्मिन्नवकाशे उत्तरकुरुपु कुरुपु नीलवद्ह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः, स च किंविशिष्टः? इत्याह—उत्तरदक्षिणायतः प्राचीनापाचीनविस्तीर्णः, उत्तरदक्षिणाभ्यामवयवाभ्यामायत उत्तरदक्षिणायतः, प्राचीनापाचीनाभ्यामवयवाभ्या विस्तीर्णः प्राचीनापाचीनविस्तीर्णः, एकं योजनसहस्रमायामेन, पञ्च योजनशतानि विष्कम्भतः, दश योजनान्युद्वेधेन—उण्डत्वेन, 'अच्छः' स्फटिकवद्बहिर्निर्मलप्रदेशः 'श्लक्ष्णः' श्लक्ष्णपुद्गलनिर्मापितबहिःप्रदेशः, तथा रजतमयं—रूप्यमयं कूलं यस्यासौ रजतमयकूलः, इत्यादि विशेषणकदम्बकं जगत्युपरिवाप्यादिवत्तावद्वक्तव्यं यावदिदं

पर्यन्तपदं 'पड़िहत्थभमंतमच्छकच्छपअणेगसउणमिहुणपरियरिए' इति । 'उभओपासे' इत्यादि, स च नीलवन्नामा ह्रदः शीताया महानद्या उभयोः पार्श्वयोर्वहिर्विनिर्गतः, स तथाभूतः सन्नुभयोः पार्श्वयोर्द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्याम्, एकस्मिन् पार्श्वे एकया पद्मवरवेदिकया द्वितीये पार्श्वे द्वितीयया पद्मवरवेदिकयेत्यर्थः, एवं द्वाभ्यां वनषण्डाभ्यां 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्तः, पद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णकश्च प्राग्वत् ॥ 'नीलवंतदहस्स णं दहस्स तत्थ तत्थे'त्यादि, नीलवद्ह्रदस्य णमिति वाक्यालङ्कारे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहूनि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि—प्रतिविशिष्टरूपकाणि त्रिसोपानानि प्रज्ञप्तानि, वर्णकस्तेषां प्राग्वद्वक्तव्यः ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं तोरणं प्रज्ञप्तं, 'ते णं तोरणा' इत्यादि तोरणवर्णनं पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावत् 'वहवो सयसहस्सपत्तहत्थगा' इति पदम् ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य नीलवन्नाम्नो ह्रदस्य वहुमध्यदेशभागे, अत्र महदेकं पद्मं प्रज्ञप्तं योजनमायामतो विष्कम्भतश्चार्द्धयोजनं वाहल्येन दश योजनानि 'उद्वेधेन' उण्डत्वेन जलपर्यन्ताद् द्वौ क्रोशौ उच्छ्रितं सर्वाग्रेण सातिरेकाणि दश योजनशतानि प्रज्ञप्तानि ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य पद्मस्य 'अयं' वक्ष्यमाणः 'एतद्रूपः' अनन्तरमेव वक्ष्यमाणस्वरूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—वज्रमयं मूलं रिष्टरत्नमयः कन्दो वैडूर्यरत्नमयो नालः, वैडूर्यरत्नमयानि वाह्यपत्राणि, जाम्बूनदमयान्यभ्यन्तरपत्राणि, तपनीयमयानि केसराणि, कनकमयी पुष्करकर्णिका, नानामणिमयी पुष्करस्थिबुका ॥ 'सा णं कण्णिया अद्ध'मित्यादि, सा कर्णिकाऽर्द्धयोजनमायामविष्कम्भाभ्यां क्रोशमेकं वाहल्यतः सर्वात्मना कनकमयी अच्छा यावत्प्रतिरूपा, यावत्करणात् 'सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया' इत्यादि परिग्रहः ॥ 'तीसे णं कण्णियाए' इत्यादि, तस्याः कर्णिकाया उपरि वहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, तद्वर्णनं च 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वे'त्यादिना प्र-

न्थेन विजयराजधान्या उपकारिकालयनस्येव तावद्वक्तव्यं यावन्मणीनां स्पर्शवक्तव्यतापरिसमाप्तिः ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बहु-समरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महदेकं भवनं प्रज्ञप्तं क्रोशमायामतोऽर्द्धक्रोशं विष्कम्भतो देशोनं क्रोशमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टमित्यादि तद्वर्णनं विजयराजधानीगतसुधर्मसभाया इव तावद्वक्तव्यं यावदिदं सूत्रं 'दिव्वतुडियसद्दसंपणदिते' इति, तदनन्तरं सूत्रमाह—'सव्वरयणामए' इत्यादि सर्वात्मना रत्नमयम् अच्छं यावत्प्रतिरूपं, यावत्करणात् 'सण्हे लण्हे घट्टे मट्ठे' इत्यादिपरिग्रहः। तस्स णमित्यादि तस्य भवनस्य 'त्रिदिशि' तिसृषु दिक्षु एकैकस्यां दिशि एकैकद्वारभावेन त्रीणि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—पूर्वस्यामुत्तरस्यां दक्षिणस्याम् ॥ 'ते णं दारा' इत्यादि, तानि द्वाराणि पञ्चधनुःशतानि ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, अर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि विष्कम्भेन, तावदेव—अर्द्धतृतीयान्येव धनुःशतानीति भावः प्रवेशेन। 'सेयावरकणगथूभिया' इत्यादि द्वारवर्णनं विजयद्वारस्येव तावद्विशेषेणावसातव्यं यावत् 'वणमालाओ' इति वनमालावक्तव्यतापरिसमाप्तिः ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य भवनस्य उल्लोचोऽन्तर्बहुसमरमणीयो भूमिभागो मणीनां वर्णगन्धरसस्पर्शवर्णनं प्राग्वत् ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, पञ्चधनुःशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां अर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी अच्छा यावत्प्रतिरूपा इति प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपर्यत्र महदेकं देवशयनीयं प्रज्ञप्तं, शयनीयवर्णकः प्राग्वत्। 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य भवनस्य उपर्यष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलकानीत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावद्बहवः सहस्रपत्रहस्तका इति ॥ 'से ण'मित्यादि, तत्पद्ममन्येनाष्टशतेन पद्मानां तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्राणां—तस्य मूलपद्मप्रमाणस्यार्द्धं तदर्द्धं तच्च तद् उच्चत्वप्रमाणं च तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणं तत् मात्रा येषां ते तानि तथा तेषां, 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्तं। तद-

द्धोच्चत्वप्रमाणमेव तेषां भावयति—'ते णं पउमा' इत्यादि, तानि पद्मानि प्रत्येकमर्द्धयोजनमायामविष्कम्भाभ्यां क्रोशमेकं बाहल्येन दश योजनशतानि उद्वेधेन क्रोशमेकं जलपर्यन्तादुच्छ्रितं सातिरेकाणि दश योजनशतानि सर्वाग्रेण ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां पद्मानामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, वज्रमयानि मूलानि रिष्ठरत्नमयाः कन्दाः वैडूर्यरत्नमया नालाः तपनीयमयानि बाह्यपत्राणि जाम्बूनदमयानि अभ्यन्तरपत्राणि तपनीयमयानि केशराणि कनकमय्यः कर्णिकाः नानामणिमयाः पुष्करस्थिभुगाः ॥ 'ताओ णं कण्णियाओ' इत्यादि, ताः कर्णिकाः क्रोशमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धक्रोशं बाहल्येन सर्वात्मना कनकमय्यः 'अच्छाओ जाव पडिरूवाओ' इति प्राग्वत् ॥ 'तासि णं कण्णियाण'मित्यादि, तासां कर्णिकानामुपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, तस्य वर्णकः पूर्ववत्तावद्वक्तव्यो यावन्मणीनां स्पर्शः ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य मूलभूतपद्मस्य 'अपरोत्तरेण' अपरोत्तरस्यां, एवमुत्तरस्यामुत्तरपूर्वस्यां, सर्वसङ्कलनया तिसृषु दिक्षु अत्र नीलवतो नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य चतुर्णां सामानिकसहस्राणां योग्यानि चत्वारि पद्मसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । 'एतेण'मित्यादि, एतेनानन्तरोदितेनाभिलापेन यथा विजयस्य सिंहासनपरिवारोऽभिहितस्तथेहापि पद्मपरिवारो वक्तव्यः, तद्यथा—पूर्वस्यां दिशि चतसृणामग्रमहिषीणां योग्यानि चत्वारि महापद्मानि, दक्षिणपूर्वस्यामभ्यन्तरपर्षदोऽष्टानां देवसहस्राणां योग्यान्यष्टौ पद्मसहस्राणि, दक्षिणस्यां मध्यमपर्षदो दशानां देवसहस्राणां योग्यानि दश पद्मसहस्राणि, दक्षिणापरस्यां बाह्यपर्षदो द्वादशानां देवसहस्राणां द्वादश पद्मसहस्राणि, पश्चिमायां सप्तानामनीकाधिपतीनां योग्यानि सप्त महापद्मानि प्रज्ञप्तानि, तदनन्तरं तस्य द्वितीयस्य पद्मपरिवेषस्य पृष्ठतश्चतसृषु दिक्षु षोडशानामात्मरक्षकदेवसहस्राणां योग्यानि षोडश पद्मसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—चत्वारि पद्मसहस्राणि पूर्वस्यां दिशि चत्वारि पद्मसहस्राणि दक्षिणस्यां चत्वारि पद्मसहस्राणि पश्चिमायां चत्वारि पद्मसह-

स्त्राण्युत्तरस्यामिति । तदेवं मूलपद्मस्य त्रयः पद्मपरिक्षेपा अभूवन्, अन्येऽपि च त्रयो विद्यन्त इति तत्प्रतिपादनार्थमाह—'से णं पउमे' इत्यादि, तत् पद्ममन्यैरनन्तरोक्तपरिक्षेपत्रिकव्यतिरिक्तैस्त्रिभिः पद्मपरिक्षेपैः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्तं, तद्यथा—अभ्यन्तरेण मध्यमेन बाह्येन च, तत्राभ्यन्तरे पद्मपरिक्षेपे सर्वसङ्ख्यया द्वात्रिंशत्पद्मशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ३२०००००, मध्ये पद्मपरिक्षेपे चत्वारिंशत् शतसहस्राणि ४००००००, बाह्ये पद्मपरिक्षेपेऽष्टाचत्वारिंशत्पद्मशतसहस्राणि ४८००००० प्रज्ञप्तानि । 'एवमेव' अनेनैव प्रकारेण 'सपुव्वावरेणं'ति सह पूर्वं यस्य येन वा सपूर्वं सपूर्वं च तद् अपरं च सपूर्वापरं तेन, पूर्वापरसमुदायेनेत्यर्थः, एका पद्मकोटी विंशतिश्च पद्मशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, एतेन सर्वतीर्थकृतामविसंवादिवचनतामाह, कोट्यादिका च सङ्ख्या स्वयं मीलनीया, द्वात्रिंशदादिशतसहस्राणामेकत्र मीलने यथोक्तसङ्ख्याया अवश्यं भावात् ॥ सम्प्रति नामान्वर्थं पिपृच्छिषुराह—'से केणट्ठेणं भंते!' इत्यादि, अथ केनार्थेनैवमुच्यते नीलवद्ध्रदो नीलवद्ध्रदः ? इति, भगवानाह—गौतम ! नीलवद्ध्रदे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहूनि 'उत्पलानि' पद्मानि यावत्सहस्रपत्राणि नीलवद्ध्रदप्रभाणि—नीलवन्नाम ह्रदाकाराणि 'नीलवद्वर्णानि' नीलवन्नामवर्षधरपर्वतस्तद्वर्णानि नीलानीति भावः, नीलवन्नामा च नागकुमारेन्द्रो नागकुमारराजो महर्द्धिक इत्यादि यमकदेववन्निरवशेषं वक्तव्यं यावद्विहरति, ततो यस्मात्तद्वतानि पद्मानि नीलवद्वर्णानि नीलवन्नामा च तदधिपतिर्देवस्ततस्तद्योगादसौ नीलवन्नामा ह्रदः, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि ॥ 'कहि णं भंते ! नीलवंतदहस्से'त्यादि राजधानीविषयं सूत्रं समस्तमपि प्राग्वत् ॥

नीलवंतदहस्स णं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं दस जोयणाइं अबाधाए एत्थ णं दस दस कंचणगप-

व्वता पण्णत्ता, ते णं कंचणगपव्वता एगमेगं जोयणसतं उड्ढं उच्चत्तेणं पणवीसं २ जोयणाइं उव्वेहेणं मूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं मज्झे पण्णत्तरिं जोयणाइं [आयाम]विक्खंभेणं उवरिं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं मूले तिण्णि सोले जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं मज्झे दोन्नि सत्ततीसे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं उवरिं एगं अट्ठावण्णं जोयणसतं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिता सव्वकंचणमया० अच्छा, पत्तेयं २ पउमवरवेतिया० पत्तेयं २ वणसंडपरिक्खित्ता ॥ तेसि णं कंचणगपव्वताणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव आसयंति० तेसि णं० पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा सड्ढबावट्ठिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं मणिपेढिया दोजोयणिया सीहासणं सपरिवारा ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—कंचणगपव्वता कंचणगपव्वता?, गोयमा! कंचणगेसु णं पव्वतेसु तत्थ तत्थ वावीसु उप्पलाइं जाव कंचणगवण्णाभातिं कंचणगा जाव देवा महिड्ढीया जाव विहरंति, उत्तरेणं कंचणगाणं कंचणियाओ रायहाणीओ अण्णंमि जंबू० तहेव सव्वं भाणितव्वं ॥ कहि णं भंते! उत्तराए कुराए उत्तरकुरुदहे पण्णत्ते?, गोयमा! नीलवंतदहस्स दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयणसते, एवं सो चेव गमो णेतव्वो जो णीलवंतदहस्स सव्वेसिं सरिसको दहसरिनामा य देवा, सव्वेसिं पुरत्थिमपचत्थिमेणं

कंचणगपव्वता दस २ एकप्पमाणा उत्तरेणं रायहाणीओ अण्णंमि जंबुद्दीवे। कहि णं भंते! चंदद्दहे एरावणद्दहे मालवंतद्दहे एवं एक्केक्को णेयव्वो ॥ (सू० १५०)

'नीलवंतदहस्स ण'मित्यादि, नीलवतो ह्रदस्य 'पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं'ति पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि प्रत्येकं दश दश योजनान्यबाधया कृत्वेति गम्यते, अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, दश दश काञ्चनपर्वता दक्षिणोत्तरश्रेण्या प्रज्ञप्ताः, ते च काञ्चनकाः पर्वताः प्रत्येकमेकं योजनशतमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन पञ्चविंशतिर्योजनान्युद्वेधेन मूले एकं योजनशतं विष्कम्भेन मध्ये पञ्चसप्ततिर्योजनानि विष्कम्भेन उपरि पञ्चाशद् योजनानि विष्कम्भेन, मूले त्रीणि षोडशोत्तराणि योजनशतानि ३१६ किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण मध्ये द्वे सप्तविंशे योजनशते २२७ किञ्चिद्विशेषोने परिक्षेपेण उपर्येकमष्टापञ्चाशं योजनशतं १५८ किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण, अत एव मूले विस्तीर्णा मध्ये सङ्क्षिप्ता उपरि तनुकाः अत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थिताः सर्वात्मना कनकमयाः 'अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत्। तथा प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्ताः प्रत्येकं प्रत्येकं वनषण्डपरिक्षिप्ताश्च, पद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णनं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां काञ्चनपर्वतानामुपरि बहुसमरमणीया भूमिभागाः प्रज्ञप्ताः, तेषां च वर्णनं प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावत्तृणानां मणीनां च शब्दवर्णनमिति ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं प्रासादावतंसकाः प्रज्ञप्ताः, प्रासादवक्तव्यता यमकपर्वतोपरि प्रासादावतंसकयोरिव निरवशेषा वक्तव्या यावत्सपरिवारसिंहासनवक्तव्यतापरिसमाप्तिः ॥ सम्प्रति नामान्वर्थं पिपृच्छिषुरिदमाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि प्राग्वन्नवरं यस्मादुत्पलादीनि काञ्चनप्रभानि काञ्चननामानश्च देवास्तत्र परिवसन्ति ततः काञ्चनप्रभोत्पलादियोगात् काञ्चनकाभिधदेवस्वामिकत्वाच्च ते काञ्चनका इति, तथा चाह—'से एएणट्ठे-

ण'मित्यादि। काञ्चनिकाश्च राजधान्यो यमिकाराजधानीवद् वक्तव्याः ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरकुरुषु कुरुषु उत्तरकुरुह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! नीलवतो ह्रदस्य दाक्षिणात्याच्चरमपर्यन्तादष्टौ 'चतुस्त्रिंशानि' चतुस्त्रिंशदधिकानि योजनशतानि चतुरश्च योजनस्य सप्तभागान् अबाधया कृत्वेति गम्यते शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे अत्रोत्तरकुरुनामा ह्रदः प्रज्ञप्तः, यथैव प्राग् नीलवतो ह्रदस्यायामविष्कम्भोद्वेधपद्मवरवेदिकावनषण्डत्रिसोपानप्रतिरूपकतोरणमूलभूतमहापद्माष्टशतपद्मपरिवारपद्मशेपपद्मपरिक्षेपत्रयवक्तव्यतोक्ता तथैवेहाप्यन्यूनातिरिक्ता वक्तव्या ॥ नामकरणं पिपृच्छिषुरिदमाह—'से केणट्ठेणं भंते!' इत्यादि प्राग्वन्नवरमुत्पलादीनि यस्माद् 'उत्तरकुरुह्रदप्रभाणि' उत्तरकुरुह्रदाकाराणि तेन तानि तदाकारयोगात् उत्तरकुरुनामा च तत्र देवः परिवसति तेन तद्योगाद् ह्रदोऽप्युत्तरकुरुः, न चैवमितरेतराश्रयदोषप्रसङ्गः, उभयेषामपि नाम्नामनादिकालं तथा प्रवृत्तेः, एवमन्यत्रापि निर्दोषता भावनीया, उत्तरकुरुनामा च तत्र देवः परिवसति, तद्वक्तव्यता च नीलवन्नागकुमारवद्वक्तव्या, ततोऽप्यसावुत्तरकुरुरिति, राजधानीवक्तव्यता काञ्चनकपर्वतवक्तव्यता च राजधानीपर्यवसाना प्राग्वत् ॥ चन्द्रह्रदवक्तव्यतामाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! उत्तरकुरुह्रदस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तादर्वाग् दक्षिणस्यां दिशि अष्टौ चतुस्त्रिंशानि योजनशतानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्याबाधया कृत्वेति शेषः शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे 'अत्र' अस्मिन्नवकाशे उत्तरकुरुषु कुरुषु चन्द्रह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः, अस्यापि नीलवद्ह्रदस्येवायामविष्कम्भोद्वेधपद्मवरवेदिकावनषण्डत्रिसोपानप्रतिरूपकतोरणमूलभूतमहापद्माष्टशतपद्मपरिवारपद्मशेषपद्मपरिक्षेपत्रयवक्तव्यता वक्तव्या, नामान्वर्थसूत्रमपि तथैव, नवरं यस्मादुत्पलादीनि 'चन्द्रह्रदप्रभाणि' चन्द्रह्रदाकाराणि चन्द्रवर्णानि चन्द्रनामा च देवस्तत्र परिवसति तस्माच्चन्द्रह्रदाभोत्पलादियो-

गाश्चन्द्रदेवस्वामिकत्वाच्च चन्द्रह्रद इति, चन्द्राराजधानीवक्तव्यता काञ्चनपर्वतवक्तव्यता च राजधानीपर्यवसाना प्राग्वत् ॥ साम्प्रतमैरावतह्रदवक्तव्यतामाह—'कहि णं भंते' इत्यादि प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, निर्वचनमाह—गौतम! चन्द्रह्रदस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तादर्वाग् दक्षिणस्यां दिशि अष्टौ चतुस्त्रिंशानि योजनशतानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्याबाधया कृत्वेति शेषः शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे ऐरावतह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः, अस्यापि नीलवन्नाम्नो ह्रदस्येवायामविष्कम्भादिवक्तव्यता परिक्षेपपर्यवसाना वक्तव्या, अन्वर्थसूत्रमपि तथैव; नवरं यस्मादुत्पलादीनि ऐरावतह्रदप्रभाणि, ऐरावतो नाम हस्ती तद्वर्णानि च ऐरावतश्च नामा तत्र देवः परिवसति तेन ऐरावतह्रद इति, ऐरावताराजधानी विजयराजधानीवत् काञ्चनकपर्वतवक्तव्यतापर्यवसाना तथैव ॥ अधुना माल्यवन्नामह्रदवक्तव्यतामाह—'कहि णं भंते' इत्यादि सुगमं, भगवानाह—गौतम! ऐरावतह्रदस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तादर्वाग् दक्षिणस्यां दिशि अष्टौ चतुस्त्रिंशानि योजनशतानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्य अबाधया कृत्वेति शेषः शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे उत्तरकुरुषु कुरुषु माल्यवन्नामा ह्रदः प्रज्ञप्तः, स च नीलवद्ह्रदवदायामविष्कम्भादिना तावद्वक्तव्यो यावत्पद्मवक्तव्यतापरिसमाप्तिः, नामान्वर्थसूत्रमपि तथैव यस्मादुत्पलादीनि 'माल्यवद्ह्रदप्रभाणि' माल्यवद्ह्रदाकाराणि, माल्यवन्नामा वक्षस्कारपर्वतस्तद्वर्णानि—तद्वर्णाभानि माल्यवन्नामा च तत्र देवः परिवसति तेन माल्यवद्ह्रद इति, माल्यवतीराजधानी विजयाराजधानीवद् वक्तव्या काञ्चनकपर्वतवक्तव्यताऽवसाना प्राग्वत् ॥ सम्प्रति जम्बूपृक्षवक्तव्यतामाह—

कहि णं भंते! उत्तरकुराए २ जंबुसुदंसणाए जंबुपेढे नामं पेढे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं नीलवंतस्स वासधरपव्वतस्स दाहिणेणं मालवंतस्स वक्खा-

रपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं गंधमादणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणदीए पुरत्थिमिल्ले कूले एत्थ णं उत्तरकुरुकुराए जंबूपेढे नाम पेढे पंचजोयणसताइं आयामविक्खंभेणं पण्णरस एक्कासीते जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं बहुमज्झदेसभाए बारस जोयणाइं बाहल्लेणं तदाणंतरं च णं माताए २ पदेसे परिहाणीए सव्वेसु चरमंतेसु दो कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते सव्वजंबूणतामए अच्छे जाव पडिरूवे ॥ से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते वण्णओ दोण्हवि । तस्स णं जंबुपेढस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता तं चेव जाव तोरणा जाव चत्तारि छत्ता ॥ तस्स णं जंबूपेढस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहाणामए आलिंगपुक्खरेतिवा जाव मणि० ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं मणिमती अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं महं जंबूसुदंसणा पण्णत्ता अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहेणं दो जोयणातिं खंधे अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं छ जोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं सातिरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता, वइरामयमूला रयतसुपतिट्ठियविडिमा, एवं चेतियरुक्खवण्णओ जाव सव्वो रिट्ठामयविउलकंदा

वेरुलियरुइरक्खंधा सुजायवरजायरूवपढमगविसालसाला नाणामणिरयणविविहसाहप्पसाहवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तविंटा जंबूणयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लवंकुरधरा विचित्तमणिरयणसुरहिकुसुमा फलभारनमियसाला सच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया अहियं मणोनिव्वुइकरा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥ (सू० १५१)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरकुरुषु जम्ब्वाः सुदर्शनायाः, जम्ब्वा हि द्वितीयं नाम सुदर्शनेति तत उक्तं सुदर्शनाया इति, जम्ब्वाः सम्बन्धि पीठं जम्बूपीठं नाम पीठं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरपूर्वेण' उत्तरपूर्वस्यां नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य 'दक्षिणेन' दक्षिणतो गन्धमादनस्य वक्षस्कारपर्वतस्य 'पूर्वेण' पूर्वस्यां दिशि माल्यवतो वक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायां शीताया महानद्याः पूर्वस्यामुत्तरकुरुपूर्वार्द्धस्य बहुमध्यदेशभागे 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे उत्तरकुरुषु कुरुषु जम्ब्वाः सुदर्शनापरनामिकाया जम्बूपीठं प्रज्ञप्तं, पञ्च योजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्यामेकं योजनसहस्रं पञ्चैकाशीतानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि १५८१ परिक्षेपेण, बहुमध्यदेशभागे द्वादश योजनानि बाहल्येन, तदनन्तरं च मात्रया २ परिहीयमानं चरमपर्यन्तेषु द्वौ क्रोशौ बाहल्येन सर्वात्मना जाम्बूनदमयम्, 'अच्छे' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत्, उक्तञ्च—"जंबूनयामयं जंबूपीढमुत्तरकुराएँ पुव्वद्धे। सीयाए पुव्वद्धे पंचसयायामविक्खंभं ॥ १ ॥ पन्नरसेक्कासीए साहीए परिहिमज्झबाहल्लं। जोयणदुछक्कमसो हायंतंतेसु दो कोसा ॥ २ ॥" 'से ण'मित्यादि 'तत्' जम्बूपीठमेकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनखण्डेन 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन परिक्षिप्तं, वेदिकावनषण्डयोर्वर्णकः प्राग्वद्वक्तव्यः। तस्य च जम्बूपीठस्य चतुर्दिशि एकैकस्यां दिशि

एकैकत्रिसोपानप्रतिरूपकभावेन चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि—प्रतिविशिष्टरूपाणि त्रिसोपानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—एकं पूर्वस्यामेकं दक्षिणस्यामेकं पश्चिमायामेकमुत्तरस्याम् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—वज्रमया नेमा भूमेरूर्द्ध्वमुद्गच्छन्तः प्रदेशा इत्यादि जगत्युपरिवाप्यादित्रिसोपानवत्तावद्वक्तव्यं यावन्नानामणिमयान्यवलम्बनानि अवलम्बनवाहाश्च, तोरणान्यपि प्राग्वद्वाच्यानि ॥ 'तस्स णं जंबूपेढस्स ण'मित्यादि, जम्बूपीठस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, स च 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि विजयाराजधान्युपकारिकालयनवत्तावद्वक्तव्यो यावन्मणीनां स्पर्शवक्तव्यतापरिसमाप्तिः, यावच्च बहवो वानमन्तरा देवा देव्यश्चासते शेरते यावद् विहरन्तीति ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, अष्टौ योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां चत्वारि योजनानि बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी 'अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि बहुमध्यदेशभागे, अत्र महती जम्बूः सुदर्शना प्रज्ञप्ता, अष्टौ योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, अर्द्धयोजनमुद्वेधेन, द्वे योजने स्कन्धः षड् योजनानि विडिमा—ऊर्द्ध्वं विनिर्गता शाखा बहुमध्यदेशभागे अष्टौ योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां, सातिरेकान्यष्टौ योजनानि 'सर्वाग्रेण' उद्वेधोच्चैस्त्वपरिमाणमीलनेन, तस्याश्च जम्व्वा वज्रमयानि मूलानि यस्याः सा वज्रमयमूला 'रययसुपइट्ठियविडिमा' इति रजता—रजतमयी सुप्रतिष्ठिता विडिमा—बहुमध्यदेशभागे ऊर्द्ध्वं विनिर्गता यस्याः सा रजतसुप्रतिष्ठितविडिमा, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, 'रिट्ठामयविउलकंदा वेरुलियरुइलखंधा' रिष्ठमयो—रिष्ठरत्नमयः (विपुलः) कन्दो यस्याः सा रिष्ठरत्नमयकन्दा, तथा वैडूर्यरत्नमयो रुचिरो—दीप्यमानः स्कन्धो यस्याः सा वैडूर्यरुचिरस्कन्धा, ततः पूर्वपदेन कर्मधारयसमासः, 'सुजायवरजायरूवपढमगविसालसाला' सुजातं—मूल-

द्रव्यशुद्धं वरं—प्रधानं यत् जातरूपं तदात्मका: प्रथमका—मूलभूता विशाला: शाला:—शाखा यस्याः सा सुजातवरजातरूपप्रथमकविशालशाला: 'नाणामणिरयणविविहसाहप्पसाहवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तविंटा' नानामणिरत्नानां—नानामणिरत्नात्मिका विविधा शाखाप्रशाखा यस्याः सा तथा तथा वैडूर्याणि—वैडूर्यरत्नमयानि पत्राणि यस्याः सा तथा तपनीयानि—तपनीयमयानि पत्रवृन्तानि यस्याः सा तथा, ततः पदद्वय २ मीलनेन कर्मधारयः नानामणिरत्नविविधशाखाप्रशाखावैडूर्यपत्रतपनीयपत्रवृन्ताः, अपरे सौवर्णिक्यो मूलशाखा: प्रशाखा रजतमय्य इत्युचुः, 'जंबूणयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लवंकुरधरा' जाम्बूनदनामकसुवर्णविशेषमया रक्ता—रक्तवर्णा मृदवो—मनोज्ञाः सुकुमाराः—सुकुमारस्पर्शा ये प्रवाला—ईषदुन्मीलितपत्रभावाः पल्लवाः संजातपरिपूर्णप्रथमपत्रभावरूपा वराङ्कुराः-प्रथमसुद्भिद्यमाना अङ्कुरास्तान् धरन्तीति जाम्बूनदरक्तमृदुकसुकुमारप्रवालपल्लवाङ्कुरधराः, कचित्पाठः—'जंबूनयरत्तमउयसुकुमालकोमलपल्लवंकुरग्गसिहरा' तत्र जाम्बूनदानि रक्तानि मृदूनि—अकठिनानि सुकुमाराणि—अकर्कशस्पर्शानि कोमलानि—मनोज्ञानि प्रवालपल्लवाङ्कुरा—यथोदितस्वरूपा अग्रशिखराणि च यस्याः सा तथा, अन्ये तु जम्बूनदमया अग्रप्रवाला अङ्कुरापरपर्याया राजता इत्याहुः, 'विचित्तमणिरयणसुरभिकुसुमफलभारनमियसाला' विचित्रमणिरत्नानि—विचित्रमणिरत्नमयानि सुरभीणि कुसुमानि फलानि च तेषां भरेण नमिता—नामं ग्राहिताः शाला:—शाखा यस्याः सा तथा, उक्तञ्च—"मूला वइरमया से कंदो खंधो य रिट्ठवेरुलिओ। सोवण्णियसाहप्पसाह तह जायरूवा य ॥ १ ॥ विडिमा रययवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तविंटा य। पल्लव अग्गपवाला जंबूणयरायया तीसे ॥ २ ॥" 'रयणमयापुप्फफला' इति 'सच्छाया' इति सती—शोभना छाया यस्याः सा सच्छाया, तथा सती—शोभना प्रभा

यस्याः सा सत्प्रभा, अत एव सश्रीका सह उद्द्योतो यया मणिरत्नानामुद्द्योतभावात् सोद्द्योता अधिकं—अतिशयेन मनोनिर्वृत्तिकरी 'पासाईया' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥

जंबूए णं सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पण्णत्ता, तंजहा—पुरत्थिमेणं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं, तत्थणं जे से पुरत्थिमिल्ले साले एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते एगं कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभ० वण्णओ जाव भवणस्स दारं तं चेव पमाणं पंचधणुसतातिं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं विक्खंभेणं जाव वणमालाओ भूमिभागा उल्लोया मणिपेढिया पंचधणुसतिया देवसयणिज्जं भाणियव्वं ॥ तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले साले एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए पण्णत्ते, कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिय० अंतो बहुसम० उल्लोता। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं । तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले साले एत्थ णं पासायवडेंसए पण्णत्ते तं चेव पमाणं सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं, तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले साले एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए पण्णत्ते तं चेव पमाणं सीहासणं सपरिवारं । तत्थ णं जे से उवरिमविडिमे एत्थ णं एगे महं सिद्धायतणे कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसतसन्निविट्ठे वण्णओ तिदिसिं तओ दारा पंचधणुसता अड्ढाइज्जधणुसयवि-

क्खंभा मणिपेढिया पंचधणुसतिया देवच्छंदओ पंचधणुसतविक्खंभो सातिरेगपंचधणुसउच्चत्ते। तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेधप्पमाणाणं, एवं सव्वा सिद्धायतणवत्तव्वया भाणियव्वा जाव धूवकडुच्छुया उत्तिमागारा सोलसविधेहिं रयणेहिं उवेए चेव जंबू णं सुदंसणा मूले बारसहिं पउमवरवेदियाहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता, ताओ णं पउमवरवेतियाओ अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचधणुसताइं विक्खंभेणं वण्णओ॥ जंबू सुदंसणा अण्णेणं अट्ठसतेणं जंबूणं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता॥ ताओ णं जंबूओ चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं कोसं चोव्वेधेणं जोयणं खंधो कोसं विक्खंभेणं तिण्णि जोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं सातिरेगाइं चत्तारि जोयणाइं सव्वग्गेणं वइरामयमूला सो चेव चेतियरुक्खवण्णओ॥ जंबूए णं सुदंसणाए अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं अणाढियस्स चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि जंबूसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, जंबूए सुदंसणाए पुरत्थिमेणं एत्थ णं अणाढियस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिसीणं चत्तारि जंबूओ पण्णत्ताओ, एवं परिवारो सव्वो णायव्वो जंबूए जाव आयरक्खाणं॥ जंबू णं सुदंसणा तिहिं जोयणसतेहिं वणसंडेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता, तंजहा—पढमेणं दोच्चेणं तच्चेणं। जंबूए सुदंसणाए पुरत्थिमेणं पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं एगे महं

भवणे पण्णत्ते, पुरत्थिमिल्ले भवणसरिसे भाणियव्वे जाव सयणिज्जं, एवं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं ॥ जंबूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमेणं पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ता, तंजहा—पउमा पउमप्पभा चेव कुमुदा कुमुयप्पभा । ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं पंचधणुसयाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णिप्पंकाओ णीरयाओ जाव पडिरूवाओ वण्णओ भाणियव्वो जाव तोरणत्ति ॥ तासि णं णंदापुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं पासायवडेंसए पण्णत्ते कोसप्पमाणे अद्धकोसं विक्खंभो सो चेव सो वण्णओ जाव सीहासणं सपरिवारं । एवं दक्खिणपुरत्थिमेणवि पण्णासं जोयणा० चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ उप्पलगुम्मा नलिणा उप्पला उप्पलुज्जला तं चेव पमाणं तहेव पासायवडेंसगो तप्पमाणो । एवं दक्खिणपच्चत्थिमेणवि पण्णासं जोयणाणं परं—भिंगा भिंगणिभा चेव अंजणा कज्जलप्पभा, सेसं तं चेव । जंबूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमे पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ तं०—सिरिकंता सिरिमहिया सिरिचंदा चेव तह य सिरिणिलया । तं चेव पमाणं तहेव पासायवडिंसओ ॥ जंबूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं

मूले बारस जोयणाइं विक्खंभेणं मज्झे अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं उवरिं चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खंभेणं मूले सातिरेगाइं सत्ततीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं मज्झे सातिरेगाइं पणुवीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं उवरिं सातिरेगाइं बारस जोयणाइं परिक्खेवेणं मूले विच्छिन्ने मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वजंबूणयामए अच्छे जाव पडिरूवे, से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते दोण्हवि वण्णओ ॥ तस्स णं कूडस्स उवरि बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति० ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एगं सिद्धायतणं कोसप्पमाणं सव्वा सिद्धायतणवत्तव्वया । जंबूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च । जंबूए णं सुदंसणाए दाहिणिल्लस्स भवण० पुरत्थिमेणं दाहिणपुरत्थिमस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, दाहिणस्स भवणस्स परतो दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडिंसगस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे जंबूतो पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं एत्थ णं एगे महं कूडे प० तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च, जंबूए पच्चत्थिमभवणउत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमस्स पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं एत्थ णं एगे महं

कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च। जंबूए उत्तरस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमस्स पासायवडेंगस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे कूडे पण्णत्ते, तं चेव, जंबूए उत्तरभवणस्स पुरत्थिमेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, तं चेव पमाणं तहेव सिद्धायतणं। जंबू णं सुदंसणा अण्णेहिं बहूहिं तिलएहिं लउएहिं जाव रायरुक्खेहिं हिंगुरुक्खेहिं जाव सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता। जंबूते णं सुदंसणाए उवरिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तंजहा—सोत्थियसिरिवच्छ० किण्हा चामरज्झया जाव छत्तातिच्छत्ता॥ जंबूएं णं सुदंसणाए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा—सुदंसणा अमोहा य, सुप्पबुद्धा जसोधरा। विदेहजंबू सोमणसा, णियया णिच्चमंडिया॥ १॥ सुभद्दा य विसाला य, सुजाया सुमणीतिया। सुदंसणाए जंबूए, नामधेज्जा दुवालस॥ २॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—जंबूसुदंसणा?, गोयमा! जंबूते णं सुदंसणाते जंबूदीवाहिवती अणाढिते णामं देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठितीए परिवसति, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव जंबूदीवस्स जंबूए सुदंसणाए अणाढियाते य रायधाणीए जाव विहरंति। कहिं णं भंते! अणाढियस्स जाव समत्ता वत्तव्वया रायधाणीए महिड्ढीए। अदुत्तरं च णं गोयमा! जंबुद्दीवे २ तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे जंबूरुक्खा जंबूवणा जंबूवणसंडा णिच्चं कुसुमिया जाव सिरीए अतीव उवसोभे-

माणा २ चिट्ठंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—जंबुद्दीवे २, अदुत्तरं च णं गोयमा! जंबुद्दीवस्स सासते णामधेज्जे पण्णत्ते, जन्न कयावि णासि जाव णिच्चे ॥ (सू० १५२)

'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनायाश्चतुर्दिशि एकैकस्यां दिशि एकैकशाखाभावतश्चतस्रः शाखाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एका पूर्वस्यामेका दक्षिणस्यामेका पश्चिमायामेकोत्तरस्यां, तत्र या सा पूर्वशाला, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देश. प्राकृतत्वात्, 'तस्स ण'मित्यादि, तस्या बहुमध्यदेशभागे अत्र महदेकं भवनं प्रज्ञप्तं, क्रोशमायामतोऽर्द्धक्रोशं विष्कम्भतो देशोनं क्रोशमूर्द्धमुच्चैस्त्वेन, तस्य वर्णको द्वारादिवक्तव्यता च प्रागुक्तमहापद्मवत्, तथा चाह—'पमाणाइया महापउमवत्तव्वया भाणियव्वा अहीणमइरित्ता जाव उप्पलहत्थगा' इति ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र या सा दक्षिणात्या शाखा तस्या बहुमध्यदेशभागे अत्र महानेकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, क्रोशमेकमूर्द्धमुच्चैस्त्वेन, अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन, 'अब्भुग्गयमूसियपहसिया इवे'त्यादि तद्वर्णनमुपर्युल्लोचवर्णनं भूमिभागवर्णनं मणिपीठिकावर्णनं सिंहासनवर्णनं च प्राग्वत्, नवरमत्र मणिपीठिका पञ्चधनुःशतान्यायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि बाहल्येन सिंहासनं च सपरिवारं वाच्यमिति, तस्य च प्रासादावतंसकस्योपरि बहून्यष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलकानीत्यादि तावद्वक्तव्यं यावद्बहवः सहस्रपत्रहस्तका इति, यथा च दक्षिणस्यां शाखायां प्रासादावतंसक उक्तस्तथा पश्चिमायामुत्तरस्यामपि च प्रत्येकं वक्तव्यः, जम्ब्वाः सुदर्शनाया उपरि विडिमाया बहुमध्यदेशभागे सिद्धायतनं, तच्च पूर्वस्यां भवनमिव तावद्वक्तव्यं यावन्मणिपीठिकावर्णनं, तत ऊर्द्धमेवं वक्तव्यं—'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र महानेको देवच्छन्दकः प्रज्ञप्तः, एवं पञ्चधनुःशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां पञ्चधनुःशतानि सातिरेकाणि ऊर्द्धमुच्चैस्त्वेन सर्वात्मना रत्नमयः, अच्छ इत्यादि पूर्ववद् यावत्प्रतिरूप इति । 'तत्थ णं अट्ठसयं जिणपडिमाणं

जिणुस्सेहपमाणमेत्ताणं सन्निक्खित्ताणं चिट्ठइ' इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावत् 'अट्ठसयं धूवकडुच्छुयाणं सन्निक्खित्ताणं चिट्ठइ' इति पदं, 'सिद्धायतणस्स उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा' इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावत् 'सहस्सपत्तहत्थगा' इति, सर्वत्रापि च व्याख्याऽपि पूर्ववत् ॥ 'जंबू णं सुदंसणा' इत्यादि, जम्बूः सुदर्शना द्वादशभिः पद्मवरवेदिकाभिः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्ता । वेदिकावर्णनं प्राग्वत् । 'जंबू ण'मित्यादि, जम्बूः सुदर्शना अन्येन जम्बूनामष्टशतेन तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्रेण 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्ता । तदर्द्धोच्चप्रमाणमेव भावयति—'ताओ ण'मित्यादि, 'ताः' अष्टोत्तरशतसङ्ख्या जम्ब्वः प्रत्येकं चत्वारि योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन क्रोशमुद्वेधेन योजनमेकं स्कन्धः क्रोशं बाहल्येन स्कन्धः, त्रीणि योजनानि विडिमा—ऊर्द्ध्वं विनिर्गता शाखा बहुमध्यदेशभागे चत्वारि योजनान्यायामविष्कम्भाभ्याम्, ऊर्द्ध्वाधोरूपेण सातिरेकाणि चत्वारि योजनानि सर्वाग्रेण उद्वेधपरिमाणमीलनेनेति भावः । 'वइरामयमूलरययसुपइट्ठिया विडिमा' इत्यादिवर्णनं पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावदधिकं नयनमनोनिर्वृत्तिकार्यः, प्रासादीया यावत्प्रतिरूपाः ॥ 'जंबूए ण'मित्यादि, 'जंबूए णं सुदंसणाए' इत्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनाया अवरोत्तरस्यामुत्तरस्यामुत्तरपूर्वस्यां, अत एवासु तिसृषु दिक्ष्वनादृतस्य देवस्य जम्बूद्वीपाधिपतेश्चतुर्णां सामानिकसहस्राणां योग्यानि चत्वारि जम्बूसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, पूर्वस्यां चतसृणामग्रमहिषीणां योग्यानि चतस्रो, महाजम्ब्वा दक्षिणपूर्वस्यामभ्यन्तरपर्षदोऽष्टानां देवसहस्राणां योग्यान्यष्टौ जम्बूसहस्राणि, दक्षिणस्यां मध्यमपर्षदो दशानां देवसहस्राणां योग्यानि दश जम्बूसहस्राणि, दक्षिणापरस्यां बाह्यपर्षदो द्वादश देवसहस्राणां योग्यानि द्वादश जम्बूसहस्राणि, अपरस्यां सप्तानामनीकाधिपतीनां योग्यानि सप्त महाजम्ब्वः, ततः सर्वासु दिक्षु षोडशानामात्मरक्षदेवसहस्राणां योग्यानि षोडश जम्बूसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ 'जंबू णं सुदंसणा' इत्यादि, सा जम्बूः सुद-

र्शना त्रिभिः शतकैः—योजनशतप्रमाणैर्वनपण्डैः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्ता, तद्यथा—अभ्यन्तरकेन मध्येन बाह्येन च । जम्ब्वाः सुदर्शनायाः पूर्वस्यां दिशि प्रथमं वनषण्डं पञ्चाशतं योजनान्यवगाह्यात्र महदेकं भवनं प्रज्ञप्तं, तच्च पूर्वदिग्वर्त्तिभवनवद् वक्तव्यं यावत् शयनीयम् । जम्ब्वाः सुदर्शनाया दक्षिणतः प्रथमं वनषण्डं पञ्चाशतं योजनान्यवगाह्यात्र महदेकं भवनं प्रज्ञप्तं, एतदपि तथैव यावत् शयनीयं, एवं पश्चिमायामुत्तरस्यां च प्रत्येकं च प्रत्येकं च प्रथमं वनषण्डं पञ्चाशतं योजनान्यवगाह्य भवनं वक्तव्यं यावत् शयनीयम् ॥ 'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनाया उत्तरपूर्वस्यां—ईशानकोण इत्यर्थः प्रथमं वनषण्डं पञ्चाशतं योजनान्यवगाह्यात्र महत्यश्चतस्रो नन्दापुष्करिण्यः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पूर्वस्यां पद्मा—पद्माभिधाना, दक्षिणस्यां पद्मप्रभा, पश्चिमायां कुमुदा, उत्तरस्यां कुमुदप्रभा, ताश्च नन्दापुष्करिण्यः प्रत्येकं क्रोशमायामेन अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन पञ्चधनुःशतान्युद्वेधेन, 'अच्छाओ सण्हाओ' इत्यादि पुष्करिणीवर्णनं प्राग्वत्समस्तं यावत्प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्ताः प्रत्येकं २ वनषण्डपरिक्षिप्ताः, पद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णनं प्राग्वत् ॥ 'तासि ण'मित्यादि, तासां पुष्करिणीनां प्रत्येकं चतुर्दिशि एकैकस्यां दिशि एकैकभावेन चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि, तेषां वर्णकः प्राग्वत्, तोरणान्यपि तथैव, तासां पुष्करिणीनां बहुमध्यदेशभागेऽत्र महानेकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, स च जम्बूवृक्षदक्षिणपश्चिमशाखाभाविप्रासादवत् प्रमाणादिना वक्तव्यो यावत् 'सहस्सपत्तहत्थगा' इति पदं, सर्वत्रापि च सिंहासनमनादृतदेवस्य सपरिवारम् । एवं दक्षिणपूर्वस्यां दक्षिणापरस्यामुत्तरापरस्यां च प्रत्येकं वक्तव्यं, नवरं नन्दापुष्करिणीनामनानात्वं, तच्चेदं—दक्षिणपूर्वस्यां पूर्वादिक्रमेण उत्पलगुल्मा नलिना उत्पला उत्पलोज्ज्वला, दक्षिणपूर्वस्यां भृङ्गा भृङ्गनिभा अञ्जना कज्जलप्रभा, अपरोत्तरस्यां श्रीकान्ता श्रीचन्द्रा श्रीनिलया श्रीमहिता, उक्तञ्च—"पउमा पउमप्पभा चेव, कुमुया कुमुयप्पभा । उप्पलगुम्मा न-

लिणा, उप्पला उप्पलुज्जला ॥ १ ॥ भिंगा भिंगनिभा चेव, अंजणा कज्जलप्पभा । सिरिकंता सिरिचंदा, सिरिनिलया चेव सिरिमहिया ॥ २ ॥" 'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनायाः पूर्वदिग्भाविनो भवनस्योत्तरतः उत्तरपूर्वदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य दक्षिणतोऽत्र महानेकः कूटः प्रज्ञप्तः, अष्टौ योजनान्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेन, मूलेऽष्टौ योजनानि विष्कम्भेन मध्ये षड् योजनानि उपरि चत्वारि योजनानि, मूले सातिरेकाणि पञ्चविंशतिर्योजनानि परिक्षेपतः मध्ये सातिरेकाण्यष्टादश योजनानि उपरि सातिरेकाणि द्वादश योजनानि परिक्षेपतः, तथा सति मूले विस्तीर्णो मध्ये सङ्क्षिप्त उपरि तनुकोऽत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थितः सर्वात्मना जम्बूनदमयः, 'अच्छे जाव पडिरूवे' इति प्राग्वत्, स च कूट एकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनषण्डेन सर्वतः समन्तात् परिक्षिप्तः, पद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णनं प्राग्वत् । 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य कूटस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, स च 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यो यावत्तृणानां मणीनां च शब्दवर्णनम् ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र महदेकं सिद्धायतनं प्रज्ञप्तं, तच्च जम्बूसुदर्शनोपरिविडिमासिद्धायतनसदृशं वक्तव्यं यावदष्टोत्तरं शतं धूपकडुच्छुकानामिति । एवं जम्ब्वाः सुदर्शनायाः पूर्वस्य भवनस्य दक्षिणतो दक्षिणपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्योत्तरतः, तथा दाक्षिणात्यस्य भवनस्य पूर्वतो दक्षिणपूर्वस्य प्रासादावतंसकस्य पश्चिमदिशि, तथा दाक्षिणात्यस्य भवनस्य परतो दक्षिणपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्य पूर्वतः, तथा पाश्चात्यस्य भवनस्य पूर्वतो दक्षिणपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्योत्तरतः, तथा पश्चिमस्य भवनस्योत्तरत उत्तरपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्य दक्षिणतः, तथोत्तरस्य भवनस्य पश्चिमायामुत्तरपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्य पूर्वतः, तथोत्तरस्य भवनस्य पूर्वत उत्तरपूर्वस्य प्रासादावतंसकस्यापरतः प्रत्येकमेकैकः कूटः पूर्वोक्तप्रमाणो वक्तव्यः, तेषां च कूटानामुपरि प्रत्येकमेकैकं सिद्धायतनं, तानि च

सिद्धायतनानि पूर्ववद्वाच्यानि, उक्तञ्च—"अट्ठुसहकूडसरिसा सव्वे जंबूनयामया भणिया। तेसुवरिं जिणभवणा कोसपमाणा परमरम्मा ॥ १ ॥" 'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनाया द्वादश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—'सुदंसणे'त्यादि, शोभनं दर्शनं—दृश्यमानता यस्या नयनमनोहारित्वात् सा सुदर्शना १, यथा च तस्याः शोभनदर्शनं तथाऽग्रे स्वयमेव सूत्रकृद् भावयिष्यति, 'अमोहा य' इति मोघं—निष्फलं न मोघा अमोघा अनिष्फला इत्यर्थः, तथाहि—सा स्वस्वामिभावेन प्रतिपन्ना सती जम्बूद्वीपाधिपत्यमुपजनयति, तदन्तरेण तद्विषयस्य स्वामिभावस्यैवायोगात्, ततोऽनिष्फलेति २, 'सुप्पबुद्धा' इति सुष्ठु—अतिशयेन प्रबुद्धेव प्रबुद्धा मणिकनकरत्नानां निरन्तरं सर्वतश्चाकचिक्येन सर्वकालमुन्निद्रेति भावः ३, 'जसोहरा' इति यशः सकलभुवनव्यापि धरतीति यशोधरा लिहादित्वादच्, जम्बूद्वीपो हि विदितमहिमा भुवनत्रयेऽप्यनया जम्ब्वोपलक्षितस्ततो भवति यथोक्तं यशोधारित्वमस्याः ४, 'सुभद्दा य' इति शोभनं भद्रं—कल्याणं यस्याः सा सुभद्रा, सकलकालं कल्याणभागिनीत्यर्थः, न हि तस्याः कदाचिदप्युपद्रवाः संभवन्ति, महर्द्धिकेनाधिष्ठितत्वात् ५, 'विसाला य' इति विशाला—विस्तीर्णा आयामविष्कम्भाभ्यामुच्चैस्त्वेन चाष्टयोजनप्रमाणत्वात् ६, 'सुजाया' इति शोभनं जातं—जन्म यस्याः सा सुजाता, विशुद्धमणिकनकरत्नमूलद्रव्यतया जन्मदोषरहितेति भावः ७, 'सुमणा इय' इति शोभनं मनो यस्याः सकाशाद् भवति सा सुमनाः, भवति हि तां पश्यतां महर्द्धिकानां मनः शोभनमतिरमणीयत्वात् ८, 'विदेहजंबू' इति, विदेहेषु जम्बूर्विदेहजम्बूर्विदेहान्तर्गतोत्तरकुरुकृतनिवासत्वात् ९, 'सोमणसा' इति सौमनस्यहेतुत्वात् सौमनस्या, नहि तां पश्यतः कस्यापि मनो दुष्टं भवति, केवलं तां दृष्ट्वा प्रीतमनास्तां तदधिष्ठातारं च प्रशंसतीति १०, 'नियता' इति नियता

१ अष्टौ ऋषभकूटसदृशाः सर्वे जम्बूनदमया भणिता । तेषामुपरि जिनभवनानि क्रोशप्रमाणानि परमरम्याणि ॥ १ ॥

सर्वकालमवस्थिता शाश्वतत्वात् ११, 'नित्यमंडिता' सदा भूषणभूषितत्वात् १२ । 'सुदंसणाए' इत्यादि तान्येतानि सुदर्शनाया जम्ब्वा द्वादश नामधेयानि ॥ सम्प्रति सुदर्शनाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं पिपृच्छिषुरिदमाह—**'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि प्रतीतं, निर्वचनमाह—**'गोयमे'**त्यादि सुगमं, नवरम् **'अणाढिए नामं देवे'** इति, अनादृताः—अनादरक्रियाविषयीकृताः शेषा जम्बूद्वीपगता देवा येनात्मनोऽत्यद्भुतं महर्द्धिकत्वमीक्षमाणेन सोऽनादृतः, सकलनिर्वचनभावार्थश्चायं—यस्मादेवं महर्द्धिकोऽनादृतनामा देवस्तत्र परिवसति ततस्तस्य समस्ताऽपि स्फातिः तत्र कृतावासेति सा सुदर्शनाऽनादृता, राजधानीवक्तव्यताऽपि प्राग्वद्वक्तव्या, तदेवं यस्मादेवंरूपया जम्ब्वोपलक्षित एष द्वीपस्तस्माज्जम्बूद्वीप इत्युच्यते, अथवेदं जम्बूद्वीपशब्दप्रवृत्तिनिमित्तमिति दर्शयति—**'अदुत्तरं च णं'**मित्यादि, अथान्यत् जम्बूद्वीपशब्दप्रवृत्तिकारणमिति गम्यते, गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो जम्बूवृक्षा जम्बूवनानि जम्बूषण्डाः, इहैकजातीयवृक्षसमुदायो वनं, अनेकजातीयवृक्षसमूहो वनषण्डः, केवलं प्रधानेन व्यपदेश इति जम्बूवनं जम्बूषण्ड इति भेदेनोपात्तं, 'निच्चंकुसुमिया' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत्, तत एष द्वीपो जम्बूद्वीपः, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि ॥ सम्प्रति जम्बूद्वीपगतचन्द्रादिसङ्ख्यापरिज्ञानार्थमाह—

जंबूद्दीवे णं भंते! दीवे कति चंदा पभासिंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा? कति सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा? कति नक्खत्ता जोयं जोयंसु वा जोयंति वा जोएस्संति वा? कति महग्गहा चारं चरिंसु वा चरिंति वा चरिस्संति वा? केवतिताओ तारागणकोडाकोडीओ सोहंसु वा सोहंति वा सोहेस्संतिवा?, गोयमा! जंबूद्दीवे णं दीवे दो चंदा पभासिंसु

वा ३ दो सूरिया तविंसु वा ३ छप्पन्नं नक्खत्ता जोगं जोएंसु वा ३ छावत्तरं गहसतं चारं चारिंसु वा ३—एगं च सतसहस्सं तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं। णव य सया पन्नासा तारागणकोडकोडीणं ॥ १ ॥ सोभिंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा ॥ (सू० १५३)

'जंबूद्दीवे णं भंते! दीवे' इत्यादि सुगमं, नवरं षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि एकैकस्य शशिनः परिवारेऽष्टाविंशतिर्नक्षत्राणां भावात्, षट्सप्ततं ग्रहशतमेकैकं शशिनं प्रत्यष्टाशीतेर्ग्रहाणां भावात्, तथैकस्य शशिनः परिवारे तारागणपरिमाणं षट्षष्टिः सहस्राणि नव शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि कोटीकोटीनां, वक्ष्यति च—"छावट्ठिसहस्साइं नव चेव सयाइं पंचसयराइं। एगससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीणं ॥ १ ॥" (६६९७५) जम्बूद्वीपे च द्वौ शशिनौ तदेतद् द्वाभ्यां गुण्यते ततः सूत्रोक्तं परिमाणं भवति—एकं शतसहस्रं त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि पञ्चाशदधिकानि कोटीकोटीनामिति ॥ तदेवमुक्तो जम्बूद्वीपः, सम्प्रति लवणसमुद्रं विवक्षुरिदमाह—

जंबूद्दीवं णाम दीवं लवणे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे किं समचक्कवालसंठिते विसमचक्कवालसंठिते?, गोयमा! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं? केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पन्नरस जोयणसयसहस्साइं एगासीइसहस्साइं सयमेगोणचत्तालीसे किंचिविसेसाहिए लवणोदधिणो चक्कवालपरिक्खेवेणं। से णं एक्काए पउमवरवेदियाए एगेण य

वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ, दोण्हवि वण्णओ। सा णं पउमवर० अद्धजोयणं उड्ढं० पंचधणुसयविक्खंभेणं लवणसमुद्दसमियपरिक्खेवेणं, सेसं तहेव। से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं जाव विहरइ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—विजये वेजयंते जयंते अपराजिते॥ कहि णं भंते! लवणसमुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमपेरंते धायइखंडस्स दीवस्स पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महानदीए उप्पिं एत्थ णं लवणस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं, एवं तं चेव सव्वं जहा जंबुद्दीवस्स विजयस्ससरिसेवि (दारसरिसमेयंपि) रायहाणी पुरत्थिमेणं अण्णंमि [1]लवणसमुद्दे॥ कहि णं भंते! लवणसमुद्दे वेजयंते नामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! लवणसमुद्दे दाहिणपेरंते धातइसंडदीवस्स दाहिणद्धस्स उत्तरेणं सेसं तं चेव सव्वं। एवं जयंतेवि, णवरि सीयाए महाणदीए उप्पिं भाणियव्वे। एवं अपराजितेवि, णवरं दिसीभागो भाणियव्वो॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स दारस्स य २ एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा!—'तिण्णेव सतसहस्सा पंचाणउतिं भवे सहस्साइं। दो जोयणसत असिता कोसं दारंतरे लवणे॥ १॥' जाव

---

१ यथा अनेकेषु स्थानेष्वत्र मूलटीकापाठयोर्वैषम्यं तथाऽत्र क्वचित् आदर्शे चतुर्णामपि द्वाराणा सामस्त्येण वर्णनं दृश्यते मूले, न च टीकानुसारी प्रागुक्तं च तदित्युपेक्षितं.

अबाधाए अंतरे पण्णत्ते। लवणस्स णं पएसा धायइसंडं दीवं पुट्ठा, तहेव जहा जंबूदीवे धायइसंडेवि सो चेव गमो। लवणे णं भंते! समुद्दे जीवा उदाइत्ता सो चेव विही, एवं धायइसंडेवि॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—लवणसमुद्दे २?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे उदगे आविले रइले लोणे लिंदे खारए कडुए अप्पेज्जे बहूणं दुपयचउप्पयमियपसुपक्खिसिरीसवाणं नण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं, सोत्थिए एत्थ लवणाहिवई देवे महिड्ढीए पलिओवमट्ठिईए, से णं तत्थ सामाणिय जाव लवणसमुद्दस्स सुत्थियाए रायहाणीए अण्णेसिं जाव विहरइ, से एएणट्ठेणं गो०! एवं वुच्चइ लवणे णं समुद्दे २, अदुत्तरं च णं गो०! लवणसमुद्दे सासए जाव णिच्चे॥ (सू० १५४)

'जंबूदीवं दीव'मित्यादि जम्बूद्वीपं द्वीपं लवणो नाम समुद्रो 'वृत्तः' वर्त्तुलः, स च चन्द्रमण्डलवन्मध्यपरिपूर्णोऽपि शङ्क्येत तत आह—'वलयाकारसंस्थानसंस्थितः' वलयाकारं—मध्यशुषिरं यत्संस्थानं तेन संस्थितो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन 'परिक्षिप्य' वेष्टयित्वा तिष्ठति॥ 'लवणे णं भंते!' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः किं समचक्रवालसंस्थितो यद्वा विषमचक्रवालसंस्थितः?, चक्रवालसंस्थानस्योभयथाऽपि दर्शनात्, भगवानाह—गौतम! समचक्रवालसंस्थितः सर्वत्र द्विलक्षयोजनप्रमाणतया चक्रवालस्य भावात्, नो विषमचक्रवालसंस्थितः॥ सम्प्रति चक्रवालविष्कम्भादिपरिमाणमेव पृच्छति—'लवणे णं भंते! समुद्दे' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेन, जम्बूद्वीपविष्कम्भादे-

तद्विष्कम्भस्य द्विगुणत्वात्, पञ्चदश योजनशतसहस्राणि एकाशीतिः सहस्राणि शतमेकोनचत्वारिंशं च किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण, परिक्षेपप्रमाणं चैतत् परिधिगणितभावनया स्वयं भावनीयं क्षेत्रसमासटीकातो वा परिभावनीयम् ॥ 'से ण'मित्यादि, 'सः' लवणनामा समुद्र एकया पद्मवरवेदिकया, अष्टयोजनोच्छ्रितजगत्युपरिभाविन्येति गम्यते, एकेन वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तः, सा च पद्मवरवेदिकाऽर्द्धयोजनमूर्द्धमुच्चैस्त्वेन पञ्चधनुःशतानि विष्कम्भतः परिक्षेपतो लवणसमुद्रपरिक्षेपप्रमाणा, वनखण्डो देशोने द्वे योजने, अभ्यन्तरोऽपि पद्मवरवेदिकाया वनषण्ड एवंप्रमाण एव, उभयोरपि वर्णनं जम्बूद्वीपपद्मवरवेदिकावनषण्डवत् ॥ सम्प्रति द्वारवक्तव्यतामभिधित्सुरिदमाह—'**लवणस्स णं भंते!**' इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—विजयवैजयन्तजयन्तापराजिताख्यानि ॥ '**कहि ण**'मित्यादि, क्व भदन्त! लवणसमुद्रस्य विजयनाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम!, लवणसमुद्रस्य पूर्वपर्यन्ते धातकीखण्डद्वीपपूर्वार्द्धस्य 'पच्चत्थिमेण'न्ति पश्चिमभागे शीतोदाया महानद्या उपर्यत्रान्तरे लवणसमुद्रस्य विजयनाम द्वारं प्रज्ञप्तं, अष्टौ योजनान्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेन । एवं जम्बूद्वीपगतविजयद्वारसदृशमेतदपि वक्तव्यं यावद्बहून्यष्टावष्टौ मङ्गलकानि यावद्बहवः सहस्रपत्रहस्तका इति ॥ सम्प्रति विजयद्वारनामनिबन्धनं प्रतिपिपादयिपुरिदमाह—'**से केणट्ठेणं भंते**' इत्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—विजयद्वारं विजयद्वारम्? इति, भगवानाह—गौतम! विजये द्वारे विजयो नाम देवो महर्द्धिको यावद् विजयाया राजधान्या अन्येषां च बहूनां विजयाराजधानीवास्तव्यानां वानमन्तराणां देवानां देवीनां चाधिपत्यं यावत्परिवसति, ततो विजयदेवस्वामिकत्वाद् विजयमिति, तथा चाह—'**से एएणट्ठेण**'मित्यादि सुगमं ॥ '**कहि णं भंते!**' इत्यादि, क्व भदन्त! विजयस्य देवस्य विजया नाम राजधानी प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! विजयद्वारस्य

पूर्वस्यां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे विजयस्य देवस्य विजया नाम राजधानी प्रज्ञप्ता, सा च जम्बूद्वीपविजयद्वाराधिपतिविजयाराजधानीवद्वक्तव्या ॥ सम्प्रति वैजयन्तद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! लवणस्य समुद्रस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रस्य दक्षिणपर्यन्ते धातकीखण्डद्वीपदक्षिणार्द्धस्योत्तरतोऽत्र लवणसमुद्रस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, एतद्वक्तव्यता सर्वाऽपि विजयद्वारवद्वसेया, नवरं राजधानी वैजयन्तद्वारस्य दक्षिणतो वेदितव्या ॥ जयन्तद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! लवणसमुद्रस्य जयन्तं द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रस्य पश्चिमपर्यन्ते धातकीखण्डपश्चिमार्द्धस्य पूर्वतः शीताया महानद्या उपरि लवणस्य समुद्रस्य जयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तद्वक्तव्यताऽपि विजयद्वारवद् वक्तव्या, नवरं राजधानी जयन्तद्वारस्य पश्चिमभागे वक्तव्या ॥ अपराजितद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! लवणस्य समुद्रस्यापराजितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रस्योत्तरपर्यन्ते धातकीखण्डद्वीपोत्तरार्द्धस्य दक्षिणतोऽत्र लवणस्य समुद्रस्यापराजितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं। एतद्वक्तव्यताऽपि विजयद्वारवन्निरवशेषा वक्तव्या, नवरं राजधानी अपराजितद्वारस्योत्तरतोऽवसातव्या ॥ सम्प्रति द्वारस्य द्वारस्यान्तरं प्रतिपादयितुकाम आह—'लवणस्स णं भंते!' इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य द्वारस्य २ 'एस णं'मिति एतदन्तरं कियता 'अबाधया' अन्तराललव्याघातरूपया प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चनवतिः सहस्राणि अशीते द्वे योजनशते क्रोशश्चैको द्वारस्य द्वारस्याबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, तथाहि—एकैकस्य द्वारस्य पृथुलं चत्वारि योजनानि, एकैकस्मिंश्च द्वारे एकैका द्वारशाखा क्रोशबाहल्या, द्वारे च द्वे द्वे शाखे, तत एकैकस्मिन् द्वारे पृथुलं सामस्त्येन चिन्त्यमानं सार्द्धयो-

जनचतुष्टयप्रमाणं प्राप्यते, चतुर्णामपि द्वाराणामेकत्र पृथुत्वमीलने जातान्यष्टादश योजनानि, तानि लवणसमुद्रपरिरयपरिमाणात् पञ्चदश शतसहस्राणि एकाशीतिःसहस्राणि एकोनचत्वारिंशं योजनशतं इत्येवंपरिमाणादपनीयन्ते, अपनीय च यच्छेषं तस्य चतुर्भिर्भागेऽपहृते यदागच्छति तत् द्वाराणां परस्परमन्तरपरिमाणं, तच्च यथोक्तमेव, उक्तं च—"आसीया दोन्नि सया पणनउइसहस्स तिन्नि लक्खा य। कोसो य अंतरं सागरस्स दाराण विन्नेयं ॥१॥" 'लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स पदेसा' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं प्राग्वद्भावनीयम् ॥ सम्प्रति लवणसमुद्रनामान्वर्थं पृच्छति—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—लवणः समुद्रो लवणः समुद्रः? इति, भगवानाह—गौतम! लवणस्य समुद्रस्य उदकः 'आविलम्' अविमलमस्वच्छं प्रकृत्या 'रइलं' रजोवत्, जलवृद्धिहानिभ्यां पङ्कबहुलमिति भावः, लवणं सान्निपातिकरसोपेतत्वाल्लिन्द्रं गोवराक्ष(ख्य)रसविशेषकलितत्वात्, 'क्षारं' तीक्ष्णं लवणरसविशेषवत्त्वात्, 'कटुकं' कटुकरसोपेतत्वात्, अत एवोपद्रवव्राताद्पेयं, केषामपेयम्?—चतुष्पदमृगपक्षिसरीसृपाणां, नान्यत्र 'तद्योनिकेभ्यः' लवणसमुद्रयोनिकेभ्यः सत्त्वेभ्यस्तेषां पेयमिति भावः, तद्योनिकतया तेषां तदाहारकत्वात्, तदेवं यस्मात्तस्योदकं लवणमतोऽसौ लवणः समुद्र इति, अन्यच्च 'सुट्ठिए लवणाहिवई' इत्यादि सुगमं, नवरमेष भावार्थः—यस्मात् सुस्थितनामा तदधिपतिः—लवणाधिपतिरिति स्वकल्पपुस्तके प्रसिद्धम्, आधिपत्यं च तस्याधिकृतसमुद्रस्य विषये नान्यस्य ततोऽप्यसौ लवणसमुद्र इति, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि ॥ सम्प्रति लवणसमुद्रगतचन्द्रादिसङ्ख्यापरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—

लवणे णं भंते! समुद्दे कति चंदा पभासिंसु वा पभासिंति वा पभासिस्संति वा?, एवं पंचण्हवि पुच्छा, गोयमा! लवणसमुद्दे चत्तारि चंदा पभासिंसु वा ३ चत्तारि सूरिया तविंसु वा ३ बार-

सुत्तरं नक्खत्तसयं जोगं जोएंसु वा ३ तिण्णि बावण्णा महग्गहसया चारं चरिंसु वा ३ दुण्णि सयसहस्सा सत्तट्ठिं च सहस्सा नव य सया तारागणकोडाकोडीणं सोभं सोभिंसु वा ३ ॥ (सू० १५५)

'**लवणे णं भंते! समुद्दे**' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! चत्वारश्चन्द्राः प्रभासितवन्तः प्रभासन्ते प्रभासिष्यन्ते, चत्वारः सूर्यास्तापितवन्तस्तापयन्ति तापयिष्यन्ति, ते च जम्बूद्वीपगतचन्द्रसूर्यैः सह समश्रेण्या प्रतिबद्धा वेदितव्याः, तद्यथा—द्वौ सूर्यौ एकस्य जम्बूद्वीपगतस्य सूर्यस्य श्रेण्या प्रतिबद्धौ, द्वौ सूर्यौ द्वितीयस्य जम्बूद्वीपगतस्य सूर्यस्य, तथा द्वौ चन्द्रमसावेकस्य जम्बूद्वीपगतस्य चन्द्रस्य समश्रेण्या प्रतिबद्धौ, द्वौ द्वितीयचन्द्रस्य, तौ चैवम्—यदा जम्बूद्वीपगत एकः सूर्यो मेरोर्दक्षिणतश्चारं चरति तदा लवणसमुद्रेऽपि तेन सह समश्रेण्या प्रतिबद्ध एकः शिखाया अभ्यन्तरं चारं चरति द्वितीयस्तेनैव सह श्रेण्या प्रतिबद्धः शिखायाः परतः, तदैव च यो जम्बूद्वीपे मेरोरुत्तरतश्चारं चरति तेन सह समश्रेण्या प्रतिबद्धो लवणसमुद्रे उत्तरत एकः शिखाया अभ्यन्तरं चारं चरति, द्वितीयस्तु तेनैव सह समश्रेण्या प्रतिबद्धः शिखायाः परतः, एवं चन्द्रमसोऽपि जम्बूद्वीपगतचन्द्राभ्यां सह समश्रेणिप्रतिबद्धा भावनीयाः, अत एव जम्बूद्वीप इव लवणसमुद्रेऽपि यदा मेरोर्दक्षिणतो दिवसः संभवति तदा मेरोरुत्तरतोऽपि लवणसमुद्रे दिवसः, यदा च मेरोरुत्तरतो लवणसमुद्रे दिवसस्तथा दक्षिणतोऽपि दिवसस्तदा च पूर्वस्यां पश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रे रात्रिः, यदा च मेरोः पूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रे दिवसस्तदा पश्चिमायामपि दिवसः, यदा च पश्चिमायां दिवसस्तदा पूर्वदिश्यपि, तदा च मेरोर्दक्षिणत उत्तरतश्च नियमतो रात्रिः, एवं धातकीखण्डादिष्वपि भावनीयं, तद्गतानामपि चन्द्रसूर्याणां जम्बूद्वीपगतचन्द्रसूर्यैः सह समश्रेण्या

व्यवस्थितत्वात्, उक्तं च **सूर्यप्रज्ञप्तौ**—"जया णं लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढेवि दिवसे हवइ, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे हवइ तया णं लवणसमुद्दे पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं राई भवइ, एवं जहा जंबूद्दीवे दीवे तहेव" तथा "जया णं धायईसंडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढेवि, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे हवइ तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं राई हवइ, एवं जहा जंबूद्दीवे दीवे तहेव, कालोए जहा लवणे तहेव" तथा "जया णं अब्भिंतरपुक्खरद्धे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे दिवसे हवइ, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे हवइ तया णं अब्भिंतरड्ढे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं राई हवइ, सेसं जहा जंबूद्दीवे तहेव" आह—लवणसमुद्रे षोडश योजनसहस्रप्रमाणा शिखा ततः कथं चन्द्रसूर्याणां तत्र तत्र देशे चारं चरतां न गतिव्याघातः?, उच्यते, इह लवणसमुद्रवर्जेषु शेषेषु द्वीपसमुद्रेषु यानि ज्योतिष्कविमानानि तानि सर्वाण्यपि सामान्यरूपस्फटिकमयानि, यानि पुनर्लवणसमुद्रे ज्योतिष्कविमानानि तानि तथाजगत्स्वाभाव्यादुदकस्फाटनस्वभावस्फटिकमयानि, तथा चोक्तं **सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्तौ**—"जोइसियविमाणाइं सव्वाइं हवंति फलिहमइयाइं। दगफालियामया पुण लवणे जे जोइसविमाणा ॥१॥" ततो न तेषामुदकमध्ये चारं चरतामुदकेन व्याघातः, अन्यच्च शेषद्वीपसमुद्रेषु चन्द्रसूर्यविमानान्यधोलेश्याकानि यानि पुनर्लवणसमुद्रे तानि तथाजगत्स्वाभाव्यादूर्ध्वलेश्याकानि तेन शिखायामपि सर्वत्र लवणसमुद्रे प्रकाशो भवति, अयं चार्थः प्रायो बहूनामप्रतीत इति संवादार्थमेतदर्थप्रतिपादको जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणविरचितो **विशेषणवतीग्रन्थ** उपदर्श्यते—"सोलससाहस्सियाए सिहाए कहं जोइसियविघातो न भवति?, तत्थ भन्नइ—जेण सूरपन्नत्तीए भणियं—"जोइसियविमाणाइं सव्वाइं हवंति फलिहमइयाइं। दगफालियामया पुण लवणे जे जोइसविमाणा ॥ २ ॥" जं सव्वदीवसमुद्देसु फालियामयाइं लवणसमुद्दे चेव केवलं दगफालियामयाइं तत्थ इद-

मेव कारणं मा उदगेण विघातो भवउ इति, जंबूसूरपन्नत्तीए चेव भणियं—"लवणंमि उ जोइसिया उड्ढलेसा हवंति नायव्वा। तेण परं जोइसियां अहलेसागा मुणेयव्वा ॥ १ ॥" तंपि उदगमालावभासणत्थमेव लोगठिई एसा" इति। तथा द्वादशं नक्षत्रशतं एवं-चत्वारो हि लवणसमुद्रे शशिनः, एकैकस्य च शशिनः परिवारेऽष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि, ततोऽष्टाविंशतेश्चतुर्भिर्गुणने भवति द्वादशोत्तरं शतमिति। त्रीणि द्विपञ्चाशदधिकानि महाग्रहशतानि, एकैकस्य शशिनः परिवारेऽष्टाशीतेर्महाणां भावात्, द्वे शतसहस्रे सप्तषष्टिः सहस्राणि नव शतानि तारागणकोटीकोटीनाम् २६७९००००००००००००००००, उक्तञ्च—"चत्तारि चेव चंदा चत्तारि य सू-रिया लवणतोए। बारं नक्खत्तसयं गहाण तिन्नेव बावन्ना ॥ १ ॥ दो चेव सयसहस्सा सत्तट्ठी खलु भवे सहस्सा य। नव य सया लवणजले तारागणकोडिकोडीणं ॥ २ ॥" इह लवणसमुद्रे चतुर्दश्यादिषु तिथिषु नदीमुखानामापूरणतो जलमतिरेकेण प्रवर्द्धमानमु-पलक्ष्यते तत्र कारणं पिपृच्छिषुरिदमाह—

कम्हा णं भंते! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णिमासिणीसु अतिरेगं २ वड्ढति वा हायति वा?, गोयमा! जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चउद्दिसिं बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ लवणसमुद्दं पंचाण-उतिं २ जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि महालिंजरसंठाणसंठिया महइमहालया महापायाला पण्णत्ता, तंजहा—वलयामुहे केतूए जूवे ईसरे, ते णं महापाताला एगमेगं जोयणसयसहस्सं उव्वेहेणं मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं मज्झे एगपदेसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसतसहस्सं विक्खंभेणं उवरिं मुहमूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं॥ तेसि णं

महापायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दसजोयणसतबाहल्ला पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति सासया णं ते कुड्डा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं० असासया ॥ तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तंजहा—काले महाकाले वेलंबे पभंजणे ॥ तेसि णं महापायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता, तंजहा—हेट्ठिल्ले तिभागे मज्झिल्ले तिभागे उवरिमे तिभागे ॥ ते णं तिभागा तेत्तीसं जोयणसहस्सा तिण्णि य तेत्तीसं जोयणसतं जोयणतिभागं च बाहल्लेणं । तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ संचिट्ठति, तत्थ णं जे से मज्झिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाए य आउकाए य संचिट्ठति, तत्थ णं जे से उवरिल्ले तिभागे एत्थ णं आउकाए संचिट्ठति, अदुत्तरं च णं गोयमा! लवणसमुद्दे तत्थ २ देसे बहवे खुड्डालिंजरसंठाणसंठिया खुड्डपायालकलसा पण्णत्ता, ते णं खुड्डा पाताला एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं मूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं मज्झे एगपदेसियाए सेढिए एगमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं उप्पिं मुहमूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं ॥ तेसि णं खुड्डागपायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य जाव असासयावि, पत्तेयं २ अद्धपलिओवमट्ठितीताहिं देवताहिं परिग्गहिया ॥ तेसि णं खुड्डगपाता-

लाणं ततो तिभागा प०, तंजहा—हेट्ठिल्ले तिभागे मज्झिल्ले तिभागे उवरिल्ले तिभागे, ते णं तिभागा तिण्णि तेत्तीसे जोयणसते जोयणतिभागं च बाहल्लेणं पण्णत्ते। तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ मज्झिल्ले तिभागे वाउआए आउयाते य उवरिल्ले आउकाए, एवामेव सपुव्वावरेणं लवणसमुद्दे सत्त पायालसहस्सा अट्ठ य चुलसीता पातालसता भवंतीति मक्खाया॥ तेसि णं महापायालाणं खुड्डगपायालाण य हेट्ठिममज्झिमिल्लेसु तिभागेसु बहवे ओराला वाया संसेयंति संमुच्छिमंति एयंति चलंति कंपंति खुब्भंति घट्टंति फंदंति तं तं भावं परिणमंति तया णं से उदए उण्णामिज्जति, जया णं तेसिं महापायालाणं खुड्डागपायालाण य हेट्ठिलमज्झिल्लेसु तिभागेसु नो बहवे ओराला जाव तं तं भावं न परिणमंति तया णं से उदए नो उन्नामिज्जइ अंतरावि य णं ते वायं उदीरेंति अंतरावि य णं से उदगे उण्णामिज्जइ अंतरावि य ते वाया नो उदीरंति अंतरावि य णं से उदगे णो उण्णामिज्जइ, एवं खलु गोयमा! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु अइरेगं २ वड्ढति वा हायति वा॥ (सू० १५६)

'कम्हा णं भंते!' इत्यादि, कस्माद्भदन्त! लवणसमुद्रे चतुर्दश्यष्टम्युद्दिष्टपौर्णमासीषु तिथिषु, अत्रोद्दिष्टा—अमावास्या पौर्णमासी प्रतीता, पूर्णो मासो यस्यां सा पौर्णमासी, 'प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेऽण्' अन्ये तु व्याचक्षते—पूर्णो माः—चन्द्रमा अस्यामिति पौर्णमासी, अण् तथैव, प्राकृतत्वाच्च सूत्रे 'पुण्णमासिणी'ति पाठः, 'अइरेगं अइरेगं' अतिशयेन अतिशयेन वर्द्धते हीयते वा?, भगवानाह—गौतम!

जम्बूद्वीपे द्वीपे यो मन्दरपर्वतस्तस्य चतसृषु पूर्वादिषु दिक्षु लवणसमुद्रं पञ्चनवतिं पञ्चनवतिं योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे चत्वारो 'महइमहालया' अतिशयेन महान्तो महालिञ्जरं—महापिडहं तत्संस्थानसंस्थिताः, कचित् 'महारंजरसंठाणसंठिया' इति पाठस्तत्रा-रञ्जरः—अलिञ्जर इति, महापातालकलशाः प्रज्ञप्ताः, उक्तं च—"पणनउइसहस्साइं ओगाहित्ता चउदिसिं लवणं । चउरोऽलिंजरसंठाणसंठिया होंति पायाला ॥ १ ॥" तानेव नामतः कथयति, तद्यथा—मेरोः पूर्वस्यां दिशि वडवामुखः दक्षिणस्यां केयूपः अपरस्यां यूपः उत्तरस्यामीश्वरः, ते चत्वारोऽपि महापातालकलशा एकैकं योजनशतसहस्रं—लक्षं उद्वेधेन मूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेन तत ऊर्द्ध्वं एकप्रादेशिक्या श्रेण्या विष्कम्भतः प्रवर्द्धमाना २ मध्ये एकैकं योजनशतसहस्रं विष्कम्भेन तत ऊर्द्ध्वं भूयोऽप्येकप्रादेशिक्या श्रेण्या विष्कम्भतो हीयमाना हीयमाना उपरि मुखमूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भतः, उक्तञ्च—"जोयणसहस्सदसगं मूले उवरिं च होंति विच्छिण्णा । मज्झे य सयसहस्सं तेत्तियमेत्तं च ओगाढा ॥ १ ॥" 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां महापातालकलशानां कुड्याः सर्वत्र समा दश योजनशतबाहल्या योजनसहस्रबाहल्या इत्यर्थः, सर्वात्मना वज्रमयाः 'अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् ॥ 'तत्थ णं'मित्यादि, तेषु वज्रमयेषु कुड्येषु बहवो जीवाः पृथिवीकायिकाः पुद्गलाश्च 'अपक्रामन्ति' गच्छन्ति 'व्युत्क्रामन्ति' उत्पद्यन्ते जीवा इति सामर्थ्याद्गम्यं, जीवानामेवोत्पत्तिधर्मकतया प्रसिद्धत्वात्, 'चीयन्ते' चयमुपगच्छन्ति 'उपचीयन्ते' उपचयमायान्ति, एतच्च पदद्वयं पुद्गलापेक्षं, पुद्गलानामेव चयापचयधर्मकतया व्यवहारात्, तत एवं सकलकालं तदाकारस्य सदाऽवस्थानात् शाश्वतास्ते कुड्या द्रव्यार्थतया प्रज्ञप्ताः, वर्णपर्यायैः रसपर्यायैः गन्धपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः पुनरशाश्वताः, वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत्कालादूर्द्ध्वं वाऽन्यथाऽन्यथा भवनात् ॥ 'तत्थ णं'मित्यादि, तत्र तेषु चतुर्षु पातालकलशेषु चत्वारो देवा महर्द्धिका यावत्करणान्महाद्युतिका इत्यादि

परिग्रहः, पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—'काले' इत्यादि, वडवामुखे कालः केयूपे महाकालः यूपे वेलम्बः ईश्वरे प्रभ-
ञ्जनः ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां महापातालकलशानां प्रत्येकं प्रत्येकं त्रयस्त्रिभागाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अधस्तनस्त्रिभागो मध्यमस्त्रिभाग
उपरितनस्त्रिभागः ॥ 'ते ण'मित्यादि, ते त्रयोऽपि त्रिभागास्त्रयस्त्रिंशद् योजनसहस्राणि त्रीणि योजनशतानि त्रयस्त्रिंशानि योजनत्रि-
भागं च बाहल्येन प्रज्ञप्ताः । तत्र चतुर्ष्वपि पातालकलशेषु अधस्तनेषु त्रिभागेषु वातकायः संतिष्ठति, मध्यमेषु त्रिभागेषु वायुकायो-
ऽप्कायश्च, उपरितनेषु त्रिभागेष्वप्काय एव । 'अदुत्तरं च ण'मित्यादि, अथान्यद् गौतम! लवणसमुद्रे 'तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं'
इति तेषां पातालकलशानामन्तरेषु तत्र २ देशे तस्य २ देशस्य तत्र २ प्रदेशे क्षुल्लारञ्जरसंस्थानसंस्थिताः क्षुल्लाः पातालकलशाः प्र-
ज्ञप्ताः, ते क्षुल्लाः पातालकलशा एकमेकं योजनसहस्रमुद्वेधेन मूले एकैकं योजनशतं विष्कम्भेन मध्ये एकैकं योजनसहस्रं विष्कम्भेन
उपरि मुखमूले एकैकं योजनशतं विष्कम्भेन ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां क्षुल्लकपातालकलशानां कुड्याः सर्वत्र समा दश दश योज-
नानि बाहल्यतः, उक्तञ्च—"जोयणसयविच्छिण्णा मूले उवरि दस सयाणि मज्झंमि । ओगाढा य सहस्सं दसजोयणिया य से
कुड्डा ॥ १ ॥" 'सव्ववइरामया' इत्यादि प्राग्वद् यावत् 'फासपज्जवेहिं असासया' इति, प्रत्येकं २ तेऽर्द्धपल्योपमस्थितिकाभि-
र्देवताभिः परिगृहीताः ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां क्षुल्लकपातालकलशानां प्रत्येकं २ त्रयस्त्रिभागाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अधस्तनस्त्रिभागो
मध्यमस्त्रिभाग उपरितनस्त्रिभागः । 'ते ण'मित्यादि, ते त्रिभागाः प्रत्येकं त्रीणि योजनशतानि 'त्रयस्त्रिंशानि' त्रयस्त्रिंशदधिकानि
योजनत्रिभागं च बाहल्येन प्रज्ञप्ताः, तत्र सर्वेषामपि क्षुल्लकपातालकलशानामधस्तनेषु त्रिभागेषु वायुकायः संतिष्ठति, मध्येषु त्रिभागेषु
वायुकायोऽप्कायश्च, उपरितनेषु त्रिभागेष्वप्कायः संतिष्ठति, एवमेव 'सपूर्वापरेण' पूर्वापरसमुदायसङ्ख्यया सप्त पातालकलशसहस्राणि

क्षुल्लकपातालकलशसहस्राणि, अष्टौ च पातालकलशशतानि—क्षुल्लकपातालकलशशतानि 'चतुरशीतानि' चतुरशीत्यधिकानि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, उक्तञ्च—"[1]अन्नेवि य पायाला खुड्डालंजरगसंठिया लवणे। अट्ठसया चुलसीया सत्त सहस्सा य सव्वेवि ॥ १ ॥ पायालाण विभागा सव्वाणवि तिन्नि तिन्नि विन्नेया। हेट्ठिमभागे वाऊ मज्झे वाऊ य उदगं च ॥ २ ॥ उवरिं उदगं भणियं पढमगबीएसु वाउ संखुभिओ। उड्ढं वामइ उदगं परिवड्ढइ जलनिही खुभिओ ॥ ३ ॥" 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां 'क्षुल्लकपातालानां' क्षुल्लकपातालकलशानां महापातालानां चाधस्तनमध्येषु त्रिभागेषु तथाजगत्स्थितिस्वाभाव्यात् प्रतिदिवसं द्विकृत्वस्तत्रापि चतुर्दश्यादिषु तिथिष्वतिरेकेण 'बहवः' अतिप्रभूताः 'उदाराः' ऊर्द्ध्वगमनस्वभावाः प्रबलशक्तयश्च, उत्—प्राबल्येन आरो येषां ते उदारा इति व्युत्पत्तेः, 'वाताः' वायवः 'संस्विद्यन्ते' उत्पत्त्यभिमुखीभवन्ति ततः क्षणानन्तरं 'संमूर्च्छन्ति' संमूर्च्छजन्मना लब्धात्मलाभा भवन्ति ततः 'चलन्ति' कम्पन्ते वातानां चलनस्वभावत्वात्, ततः 'घट्टन्ते' परस्परं सङ्घट्टमाप्नुवन्ति, तदनन्तरं 'क्षुभ्यन्ते' जातमहाद्भुतशक्तिकाः सन्त ऊर्द्ध्वमितस्ततो विप्रसरन्ति, ततः 'उदीरयन्ति' अन्यान् वातान् जलमपि चोत्—प्राबल्येन प्रेरयन्ति, तं तं देशकालोचितं मन्दं तीव्रं मध्यमं वा भावं परिणामं 'परिणमन्ति' धातूनामनेकार्थत्वात् प्रपद्यन्ते। 'जया णं तेसिं खुड्डापायालाण'मित्यादि सुगमं भावितत्वात्। 'तया णं'मित्यादि, तदा णमिति वाक्यालङ्कारे 'तदु' उदकम् 'उन्नामिज्जंते' उन्नाम्यते

---

१ अन्येऽपि च पातालकलशाः क्षुद्रारञ्जरसंस्थिता लवणे। अष्ट शतानि चतुरशीतीनि सप्त सहस्राणि च सर्वेऽपि ॥ १ ॥ पातालाना विभागाः सर्वेषामपि त्रयस्त्रयो विज्ञेया.। अधस्तनभागे वायु, मध्ये वायुश्च उदकं च ॥ २ ॥ उपरितनभागे उदकं भणितं, प्रथमद्वितीययोः वायुः संक्षुभित। ऊर्द्ध्वं। वामयति (निष्काशयति) उदकं परिवर्द्धते जलनिधिः क्षुभित. ॥ ३ ॥

ऊर्द्धमुत्क्षिप्यत इति भावः । 'जया ण'मित्यादि, यदा पुनः 'ण'मिति पुनरर्थे निपातानामनेकार्थत्वात्, तेषां क्षुल्लकपातालानां महापातालानां चाधस्तनमध्यमेषु त्रिभागेषु नो वहव उदारा वाताः संस्विद्यन्ते इत्यादि प्राग्वत् 'तया ण'मित्यादि तदा तदुदकं 'नोन्नाम्यते' नोर्द्धमुत्क्षिप्यते उत्क्षेपकाभावात्, एतदेव स्पष्टतरमाह—'अंतराविय ण'मित्यादि, 'अन्तरा' अहोरात्रमध्ये द्विकृत्वः प्रतिनियते कालविभागे पक्षमध्ये चतुर्दश्यादिषु तिथिष्वतिरेकेण ते वाताः तथाजगत्स्वाभाव्यादुदीर्यन्ते धातूनामनेकार्थत्वादुत्पद्यन्ते, ततोऽन्तरा— अहोरात्रमध्ये द्विकृत्वः प्रतिनियते कालविभागे पक्षमध्ये चतुर्दश्यादिषु तिथिषु अतिरेकेण तत उदकमुन्नाम्यते । 'अंतराविय ण'मित्यादि, 'अन्तरा' प्रतिनियतकालविभागादन्यत्र ते वाताः 'नोदीर्यन्ते' नोत्पद्यन्ते, तदभावात् 'अन्तरा' प्रतिनियतकालविभागादन्यत्र कालविभागे उदकं नोन्नाम्यते उन्नामकाभावात्, तत एवं खलु गौतम! लवणसमुद्रे चतुर्दश्यष्टम्युदिष्टपूर्णमासीषु तिथिषु 'अतिरेकमतिरेकम्' अतिशयेनातिशयेन वर्द्धते हीयते वेति ॥ तदेवं चतुर्दश्यादिषु तिथिष्वतिरेकेण जलवृद्धौ कारणमुक्तमिदानीमहोरात्रमध्ये द्विकृत्वोऽतिरेकेण जलवृद्धौ कारणमभिधित्सुराह—

लवणे णं भंते! समुद्दाए तीसाए मुहुत्ताणं कतिखुत्तो अतिरेगं २ वड्ढति वा हायति वा?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं २ वड्ढति वा हायति वा ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुचइ—लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं २ वड्ढइ वा हायइ वा?, गोयमा! उड्ढमंतेसु पायालेसु वड्ढइ आपूरितेसु पायालेसु हायइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा ॥ (सू० १५७)

'लवणे णं भंते! समुद्दे' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रस्त्रिंशतो मुहूर्त्तानां मध्येऽहोरात्रमध्ये इति भावः 'कतिकृत्वः' कतिवारान् अतिरेकमतिरेकं वर्द्धते हीयते वा? इति, तदेवं (प्रश्ने) भगवानाह—गौतम! द्विकृत्वोऽतिरेकमतिरेकं वर्द्धते हीयते वा॥ 'से केणट्ठेण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! 'उद्धमत्सु' अधस्तनमध्यमत्रिभागगतवातसङ्क्षोभवशाज्जलमूर्द्ध्वमुत्क्षिपत्सु 'पातालेषु' पातालकलशेषु महत्सु लघुषु च वर्द्धते 'आपूर्यमाणेषु' परिसंस्थिते पवने भूयो जलेन भ्रियमाणेषु 'पातालेषु' पातालकलशेषु महत्सु लघुषु च हीयते 'से एएणट्ठे ण'मित्यादि उपसंहारवाक्यम्॥ अधुना लवणशिखावक्तव्यतामाह—

लवणसिहा णं भंते! केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं अइरेगं २ वड्ढति वा हायति वा?, गोयमा! लवणसीहाए णं दस जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं देसूणं अद्धजोयणं अतिरेगं वड्ढति वा हायति वा॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स कति णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारंति?, कइ नागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धरंति?, कइ नागसाहस्सीओ अग्गोदयं धरेंति?, गोयमा! लवणसमुद्दस्स बायालीसं णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारेंति, बावत्तरिं णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति, सट्ठिं णागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारेंति, एवमेव सपुव्वावरेणं एगा णागसतसाहस्सी चोवत्तरिं च णागसहस्सा भवंतीति मक्खाया॥ (सू० १५८)

'लवणसिहा णं भंते!' इत्यादि, लवणशिखा भदन्त! कियच्चक्रवालविष्कम्भेन? कियच्च 'अतिरेकमतिरेकम्' अतिशयेन २ वर्द्धते हीयते वा?, भगवानाह—गौतम! लवणशिखा सर्वतश्चक्रवालविष्कम्भतया 'समा'समप्रमाणा दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेन चक्रवा-

लरूपतया विस्तारेण **'देशोनमर्द्धयोजनं'** गव्यूतद्वयप्रमाणम् **'अतिरेकमतिरेकम्'** अतिशयेनातिशयेन वर्द्धते हीयते वा, इयमत्र भावना—लवणसमुद्रे जम्बूद्वीपाद् धातकीखण्डद्वीपाच्च प्रत्येकं पञ्चनवतिपञ्चनवतियोजनसहस्राणि गोतीर्थं, गोतीर्थं नाम तडागादिष्विव प्रवेशमार्गरूपो नीचो नीचतरो भूदेशो, गोतीर्थमिव गोतीर्थमिति व्युत्पत्तेः, मध्यभागावगाहस्तु दश योजनसहस्रप्रमाणविस्तारः, गोतीर्थं च जम्बूद्वीपवेदिकान्तसमीपे धातकीखण्डवेदिकान्तसमीपे चाङ्गुलासङ्ख्येयभागः, ततः परं समतलाद् भूभागादारभ्य क्रमेण प्रदेशहान्या तावन्नीचत्वं नीचतरत्वं परिभावनीयं यावत्पञ्चनवतियोजनसहस्राणि, पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्तेषु समतलं भूभागमपेक्ष्योण्डत्वं योजनसहस्रमेकं, तथा जम्बूद्वीपवेदिकातो धातकीखण्डद्वीपवेदिकातश्च? तत्र समतले भूभागे प्रथमतो जलवृद्धिरङ्गुलसङ्ख्येयभागः, ततः समतलभूभागमेवाधिकृत्य प्रदेशवृद्ध्या जलवृद्धिः क्रमेण परिवर्द्धमाना तावत्परिभावनीया यावदुभयतोऽपि पञ्चनवतियोजनसहस्राणि, पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्ते चोभयतोऽपि समतलभूभागमपेक्ष्य जलवृद्धिः सप्तयोजनशतानि, किमुक्तं भवति?—तत्र प्रदेशे समतलभूभागमपेक्ष्यावगाहो योजनसहस्रं, तदुपरि जलवृद्धिः सप्त योजनशतानीति, ततः परं मध्ये भागे दशयोजनसहस्रविस्तारेऽवगाहो योजनसहस्रं जलवृद्धिः षोडश योजनसहस्राणि, पातालकलशगतवायुक्षोभे च तेषामुपर्यहोरात्रमध्ये द्वौ वारौ किञ्चिन्न्यूने द्वे गव्यूते उदकमतिरेकेण वर्द्धते पातालकलशगतवायूपशान्तौ च हीयते, उक्तञ्च—"पंचाणउयसहस्से गोतित्थं उभयतोवि लवणस्स। जोयणसयाणि सत्त उ दगपरिवुड्ढीवि उभयोवि ॥ १ ॥ दस जोयणसाहस्सा लवणसिहा चक्कवालतो रुंदा।

---

१ लवणस्य उभयतोऽपि पञ्चनवति सहस्राणि गोतीर्थं तु। उदकपरिवृद्धिरपि उभयतोऽपि सप्त योजनशतानि ॥ १ ॥ लवणशिखा चक्रवालतो दश योजनसहस्राणि रुन्दा।

सोलससहस्सा उच्चा सहस्समेगं च ओगाढा ॥ २ ॥ देसूणमद्धजोयणलवणसिहोवरि दुगं दुवे कालो । अइरेगं २ परिवड्ढइ हायए वावि ॥ ३ ॥" सम्प्रति वेलन्धरवक्तव्यतामाह—'लवणस्स णं भंते!' इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य कियन्तो नागसहस्रा नागकुमाराणां भवनपतिनिकायान्तर्वर्त्तिनां सहस्रा आभ्यन्तरिकीं—जम्बूद्वीपाभिमुखां वेलां—शिखोपरिजलं शिखां च—अर्वाक् पतन्तीं 'धरन्ति' धारयन्ति? कियन्तो नागसहस्रा बाह्यां—धातकीखण्डाभिमुखां वेलां धातकीखण्डद्वीपमध्ये प्रविशन्तीं वारयन्ति?, कियन्तो वा नागसहस्राः 'अग्रोदकं' देशोनयोजनार्द्धजलादुपरि वर्द्धमानं जलं 'धरन्ति' वारयन्ति?, भगवानाह—गौतम! द्विचत्वारिंशन्नागसहस्राण्याभ्यन्तरिकीं वेलां धरन्ति द्वासप्ततिर्नागसहस्राणि बाह्यां वेलां धरन्ति, षष्टिर्नागसहस्राण्यग्रोदकं धरन्ति, उक्तञ्च—"अब्भिंतरियं वेलं धरंति लवणोदहिस्स नागाणं। बायालीससहस्सा दुसत्तरिसहस्सा बाहिरियं ॥ १ ॥ सट्ठिं नागसहस्सा धरंति अग्गोदयं समुद्दस्स" इति। एवमेव 'सपूर्वापरेण' पूर्वापरसमुदायेन एकं नागशतसहस्रं चतुःसप्ततिश्च नागशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातानि मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः ॥

कति णं भंते! वेलंधरा णागराया पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि वेलंधरा णागराया पण्णत्ता, तंजहा—गोथूभे सिवए संखे मणोसिलए ॥ एतेसि णं भंते! चउण्हं वेलंधरणागरायाणं कति

---

१ षोडश योजनसहस्राणि उच्चा सहस्रमेकं चावगाढा ॥ २ ॥ देशोनमर्द्धयोजनं लवणशिखोपरि द्विवारं द्वयोः कालयोः । अतिरेकमतिरेकं परिवर्द्धते हीयते वाऽपि ॥ ३ ॥ २ आभ्यन्तरिकीं वेलां धारयन्ति लवणोदधेर्नागानां । द्विचत्वारिंशत्सहस्राणि द्विसप्ततिसहस्राणि बाह्या ॥ १ ॥ षष्टिर्नागसहस्राणि धारयन्ति अग्रोदकं समुद्रस्य ।

आवासपव्वता पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तंजहा—गोथूभे उदगभासे संखे दगसीमाए ॥ कहि णं भंते! गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते?, गोयमा! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिमेणं लवणं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते सत्तरसएक्कवीसाइं जोयणसंताइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि तीसे जोयणसते कोसं च उव्वेधेणं मूले दसबावीसे जोयणसते आयामविक्खंभेणं मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसते उवरिं चत्तारि चउवीसे जोयणसए आयामविक्खंभेणं मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं मज्झे दो जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीते जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं उवरिं एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य ईयाले जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे जाव पडिरूवे ॥ से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेण य वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते, दोण्हवि वण्णओ ॥ गोथूभस्स णं आवासपव्वतस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए बावट्ठं जोयणद्धं च उड्ढं उच्चत्तेणं तं चेव पमाणं अद्धं आयाम-

विक्खंभेणं वण्णओ जाव सीहासणं सपरिवारं ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुचइ गोथूभे आवासपव्वए २?, गोयमा! गोथूभे णं आवासपव्वते तत्थ २ देसे तहिं २ बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ जाव गोथूभवण्णाइं बहूइं उप्पलाइं तहेव जाव गोथूभे तत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठितीए परिवसति, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव गोथूभयस्स आवासपव्वतस्स गोथूभाए रायहाणीए जाव विहरति, से तेणट्ठेणं जाव णिचे ॥ रायहाणि पुच्छा गोयमा! गोथूभस्स आवासपव्वतस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीतिवइत्ता अण्णंमि लवणसमुद्दे तं चेव पमाणं तहेव सव्वं ॥ कहि णं भंते! सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासणामे आवासपव्वते पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते, तं चेव पमाणं जं गोथुभस्स, णवरि सव्वअंकामए अच्छे जाव पडिरूवे जाव अट्ठो भाणियव्वो, गोयमा! दओभासे णं आवासपव्वते लवणसमुद्दे अट्ठजोयणियखेत्ते दगं सव्वतो समंता ओभासेति उज्जोवेति तवति पभासेति सिवए इत्थ देवे महिड्ढीए जाव रायहाणी से दक्खिणेणं सिविगा दओभासस्स सेसं तं चेव ॥ कहि णं भंते! संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पचत्थिमेणं बाया-

लीसं जोयणसहस्साइं एत्थ णं संखस्स० वेलंधर० संखे णामं आयासपव्वते तं चेव पमाणं णवरं स-
व्वरयणामए अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेण य वणसंडेणं जाव अट्ठो बहूओ खु-
ड्डाखुड्डिआओ जाव बहूइं उप्पलाइं संखाभाइं संखयण्णाइं संखवण्णाभाइं संखे एत्थ देवे महिड्ढीए
जाव रायहाणीए पच्चत्थिमेणं संखस्स आवासपव्वयस्स संखा नाम रायहाणी तं चेव पमाणं ॥
कहि णं भंते! मणोसिलकस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वते पण्णत्ते?,
गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स उत्तरेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ
णं मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वते पण्णत्ते तं चेव पमाणं
णवरि सव्वफलिहामए अच्छे जाव अट्ठो, गोयमा! दगसीमंते णं आवासपव्वते सीतासीतोद-
गाणं महाणदीणं तत्थ गतो सोए पडिहम्मति से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे मणोसिलए एत्थ देवे
महिड्ढीए जाव से णं तत्थ चउण्हं सामाणिय० जाव विहरति ॥ कहि णं भंते! मणोसिलगस्स
वेलंधरणागरायस्स मणोसिला णाम रायहाणी?, गोयमा! दगसीमस्स आवासपव्वयस्स उत्त-
रेणं तिरि० अण्णंमि लवणे एत्थ णं मणोसिलिया णाम रायहाणी पण्णत्ता तं चेव पमाणं जाव
मणोसिलाए देवे—कणगंकरययफालियमया य वेलंधराणमावासा। अणुवेलंधरराईण पव्वया
होंति रयणमया ॥ १ ॥ (सू० १५९)

३ प्रतिपत्तौ
वेलन्धरा-
वासादिः
उद्देशः २
सू० १५९

'कति णं भंते!' इत्यादि, कति भदन्त! वेलन्धरनागराजाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—चत्वारो वेलन्धरनागराजाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—गोस्तूपः शिवकः शङ्खो मनःशिलाकः ॥ **'एएसि ण'**मित्यादि, एतेषां भदन्त! चतुर्णां वेलन्धरनागराजानां कति आवासपर्वताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! एकैकस्य एकैकभावेन चत्वार आवासपर्वताः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—गोस्तूप उदकभासः शङ्खो दकसीमः ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! अस्मिन् जम्बूद्वीपे यो मन्दरपर्वतस्तस्य पूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्यात्र गोस्तूपस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य गोस्तूपो नाम आवासपर्वतः प्रज्ञप्तः, सप्तदश योजनशतानि एकविंशान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, चत्वारि योजनशतानि त्रिंशदधिकानि क्रोशं चैकमुद्वेधेन, उच्छ्रयापेक्षयाऽवगाहस्य चतुर्भागभावात्, मूले दश योजनशतानि द्वाविंशत्युत्तराणि विष्कम्भतः, मध्ये सप्त योजनशतानि त्रयोविंशत्युत्तराणि, उपरि चत्वारि योजनशतानि चतुर्विंशत्युत्तराणि, मूले त्रीणि योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते द्वात्रिंशदुत्तरे किञ्चिद्विशेषोने परिक्षेपेण, मध्ये द्वे योजनसहस्रे द्वे च योजनशते चतुरशीते किञ्चिद्विशेषाधिके परिक्षेपेण, उपर्येकं योजनसहस्रं त्रीणि योजनशतानि एकचत्वारिंशानि किञ्चिद्विशेषोनानि परिक्षेपेण, ततो मूले विस्तीर्णो मध्ये सङ्क्षिप्त उपरि तनुकः, अत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थितो गोपुच्छस्याप्येवमाकारत्वात्, सर्वात्मना जाम्बूनदमयः, 'अच्छे जाव पडिरूवे' इति प्राग्वत् ॥ **'से ण'**मित्यादि, 'सः' गोस्तूपनामा आवासपर्वत एकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनषण्डेन **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन संपरिक्षिप्तः, द्वयोरपि चानयोर्वेदिकावनषण्डयोर्वर्णकः प्राग्वत् ॥ **'गोथूभस्स ण'**मित्यादि, गोस्तूपस्य णमिति पूर्ववद् आवासपर्वतस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, 'से जहा नामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि प्राग्वद् यावत्तत्र बहवो नागकुमारा देवा आसते शेरते यावद्विहरन्तीति ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य बहुसमर-

मणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र महानेकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, स च विजयदेवस्य प्रासादावतंसकसदृशो वक्तव्यः, स चैवं—सार्द्धानि द्वाषष्टिर्योजनानि उच्चैस्त्वेन, सक्रोशान्येकत्रिंशद् योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां, प्रासादवर्णनमुल्लोचवर्णनं च प्राग्वत्। तस्य च प्रासादावतंसकस्यान्तर्बहुमध्यदेशभागे महत्येका सर्वरत्नमयी मणिपीठिका, सा च योजनायामविष्कम्भप्रमाणा गव्यूतद्वयबाहल्या, तस्याश्च मणिपीठिकाया उपरि महदेकं सिंहासनं, तच्चेन्द्रसामानिकादिदेवयोग्यैर्भद्रासनैः परिवृतमिति ॥ 'से केणट्ठेणं भंते!' इत्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते गोस्तूप आवासपर्वतो गोस्तूप आवासपर्वतः? इति, भगवानाह—गौतम! गोस्तूपे आवासपर्वते क्षुल्लासु क्षुल्लिकासु वापीषु यावद्बिलपङ्क्तिषु बहून्युत्पलानि यावत् शतसहस्रपत्राणि गोस्तूपप्रभाणि गोस्तूपाकाराणि गोस्तूपवर्णानि गोस्तूपवर्णस्येवाभा—प्रतिभासो येषां तानि गोस्तूपवर्णाभानि, ततस्तानि तदाकारत्वात् तद्वर्णत्वात्तद्वर्णसादृश्याच्च गोस्तूपानीति प्रसिद्धानि, तद्योगादावासपर्वतोऽपि गोस्तूपः, अनादिकालप्रवृत्तोऽयं व्यवहार इति तेन नेतरेतराश्रयदोषः, एवमुत्तरत्रापि भावनीयं, तथा गोस्तूपश्चात्र भुजगेन्द्रो भुजगराजो महर्द्धिको यावत्करणात् महाद्युतिक इत्यादि परिग्रहः, स च चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चतसृणामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां तिसृणां पर्षदां सप्तानामनीकानां सप्तानामनीकाधिपतीनां षोडशानामात्मरक्षदेवसहस्राणां गोस्तूपस्यावासपर्वतस्य गोस्तूपायाश्च राजधान्या अन्येषां च बहूनां गोस्तूपराजधानीवास्तव्यानां देवानां देवीनां चाधिपत्यं यावद्विहरति, ततो गोस्तूपदेवस्वामिकत्वाच्च गोस्तूपः, 'से एएणट्ठेण'मित्याद्युपसंहारवाक्यं प्रतीतम्॥ सम्प्रति गोस्तूपां राजधानीं पृच्छति—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! गोस्तूपस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य गोस्तूपा नाम राजधानी प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! गोस्तूपस्यावासपर्वतस्य पूर्वस्यां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे गोस्तूपस्य भुज-

गेन्द्रस्य भुजगराजस्य गोस्तूपा नाम राजधानी प्रज्ञप्ता, सा च विजयराजधानीसदृशी वक्तव्या ॥ तदेवमुक्तो गोस्तूपोऽधुना दकाभासवक्तव्यतामाह—'कहिं णं भंते! सिवगस्से'त्यादि प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणतो लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे शिवकस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य दकाभासो नामावासपर्वतः प्रज्ञप्तः, स च गोस्तूपवदविशेषेण वक्तव्यो यावत्सपरिवारं सिंहासनम् ॥ अधुना नामनिमित्तं पिपृच्छिषुराह—'से केणट्ठेण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! दकाभास आवासपर्वतो लवणसमुद्रे सर्वासु दिक्षु स्वसीमातोऽष्टयोजनिके—अष्टयोजनप्रमाणे क्षेत्रे यदुदकं तत् 'समन्ततः' सामस्त्येनातिविशुद्धाङ्कनामरत्नमयत्वेन स्वप्रभयाऽवभासयति, एतदेव पर्यायत्रयेण व्याचष्टे—उद्द्योतयति चन्द्र इव तापयति सूर्य इव प्रभासयति ग्रहादिरिव ततो दकं पानीयमाभासयति—समन्ततः सर्वासु दिक्षु अवभासयतीति दकाभासः, अन्यच्च शिवको नामात्र पर्वतेषु भुजगेन्द्रो भुजगराजो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति । 'से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीण'मित्यादि प्राग्वत् नवरमत्र शिवका राजधानी वक्तव्या, तस्मिंश्च परिवसति स आवासपर्वतो दकमध्येऽतीवाऽऽभासते—शोभते इति दकाभासः, 'से एएणट्ठेण'मित्याद्युपसंहारवाक्यं गतार्थं, शिवकाराजधानी दकाभासस्यावासपर्वतस्य दक्षिणतोऽन्यस्मिन् लवणसमुद्रे विजयाराजधानीव भावनीया ॥ अधुना शङ्खनामकावासपर्वतवक्तव्यतामाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! शङ्खस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य शङ्खो नामावासपर्वतः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे शङ्खस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य शङ्खो नामावासपर्वतः प्रज्ञप्तः, स च गोस्तूपवदविशेपेण तावद्वक्तव्यो यावत्सपरिवारं सिंहासनम् ॥ इदानीं नामनिबन्धनमभिधित्सुराह—'से केणट्ठेण'मि-

त्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—शङ्खे आवासपर्वते क्षुल्लासु क्षुल्लिकासु वापीषु यावद्बिलपङ्क्तिषु बहून्युत्पलानि यावत् शतसहस्रपत्राणि शङ्खाभानि—शङ्खाकाराणि शङ्खवर्णानि—श्वेतानीति भावः शङ्खवर्णाभानि—प्रायः शङ्खवर्णसदृशवर्णानि, शङ्खश्चात्र भुजगेन्द्रो भुजगराजो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति । 'से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सी ण'मित्यादि प्राग्वत्, नवरमत्र शङ्खा राजधानी वक्तव्या, तदेवं यतस्तद्गतान्युत्पलादीनि शङ्खाकाराणि शङ्खदेवस्वामिकश्चायमतः शङ्ख इति, 'से एएणट्ठेण'मित्याद्युपसंहारवाक्यं गतार्थं, शङ्खा राजधानी शङ्खस्यावासपर्वतस्य पश्चिमायां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे विजयाराजधानीसदृशी वक्तव्या ॥ सम्प्रति दकसीमापर्वतवक्तव्यतामाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्रतीतं, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरतो लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्य 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे मनःशिलकस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य दकसीमो नामावासपर्वतः प्रज्ञप्तः, सोऽपि गोस्तूपपर्वतवदविशेषेण तावद्वक्तव्यो यावत्सपरिवारं सिंहासनम् ॥ इदानीं नामनिमित्तं विभणिषुराह—'से केणट्ठेण'मित्यादि प्रतीतं, भगवानाह—गौतम! दकसीमे आवासपर्वते शीताशीतोदयोर्महानद्योः श्रोतांसि—जलप्रवाहास्तत्र गतानि तस्माच्च तेन प्रतिहतानि प्रतिनिवर्त्तन्ते ततो दकसीमाकारित्वाद् दकसीमः, दकस्य सीमा—शीताशीतोदापानीयस्य सीमा यत्रासौ दकसीम इति व्युत्पत्तेः, अन्यच्च मनःशिलको भुजगेन्द्रो भुजगराजो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति । 'से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीण'मित्यादि प्राग्वत् नवरं मनःशिलाऽत्र राजधानी वक्तव्या, ततो मनःशिलस्य देवस्य दके—लवणजलमध्ये सीमा, आवासचिन्तायां मर्यादा, 'अत्रे'ति दकसीमे, मनःशिला च राजधानी दकसीमस्यावासपर्वतस्योत्तरतस्तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे विजयाराजधानीव वक्तव्या । तदेवमुक्ताश्चला-

रोऽपि वेलन्धराणामावासपर्वताः, सर्वत्र च गोस्तूपेनातिदेशः कृतः, अत्र च मूलदले विशेषस्ततस्तमभिधित्सुराह—"कणगंकरययफालियमया य वेलंधराणमावासा । अणुवेलंधरराईण पव्वया होंति रयणमया ॥ १ ॥" वेलन्धराणां—गोस्तूपादीनामावासा गोस्तूपादयश्चत्वारः पर्वता यथाक्रमं कनकाङ्करजतस्फटिकमयाः, गोस्तूपः कनकमयो दकाभासोऽङ्करत्नमयः शङ्खो रजतमयो दकसीमः स्फटिकमय इति, तथा महतां वेलन्धराणामादेशप्रतीच्छकतयाऽनुयायिनो वेलन्धराश्चानुवेलन्धराः ते च ते राजानश्च अनुवेलन्धरराजास्तेषामावासपर्वता रत्नमया भवन्ति ॥

कइ णं भंते! अणुवेलंधररायाणो पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि अणुवेलंधरणागरायाणो पण्णत्ता, तंजहा—कक्कोडए कद्दमए केलासे अरुणप्पभे ॥ एतेसि णं भंते! चउण्हं अणुवेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वया पन्नत्ता?, गोयमा! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तंजहा—कक्कोडए १ कद्दमए २ कइलासे ३ अरुणप्पभे ४ ॥ कहि णं भंते! कक्कोडगस्स अणुवेलंधरणागरायस्स कक्कोडए णाम आवासपव्वते पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं कक्कोडगस्स नागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वते पण्णत्ते सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसताइं तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स णवरि सव्वरयणामए अच्छे जाव निरवसेसं जाव सपरिवारं अट्ठो से बहूइं उप्पलाइं कक्कोडप्पभाइं सेसं तं चेव णवरि कक्कोडगपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं, एवं तं चेव सव्वं, कद्दमस्सवि सो

चेव गमओ अपरिसेसिओ, णवरि दाहिणपुरच्छिमेणं आवासो विज्जुप्पभा रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं, कइलासेवि एवं चेव, णवरि दाहिणपच्चत्थिमेणं कयलासावि रायहाणी ताए चेव दिसाए, अरुणप्पभेवि उत्तरपच्चत्थिमेणं रायहाणीवि ताए चेव दिसाए, चत्तारि विगप्पमाणा सव्वरयणामया य ॥ (सू० १६०)

'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त ! अनुवेलन्धरराजाः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! चत्वारोऽनुवेलन्धरराजाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—कर्कोटकः १ कर्दमः २ कैलासः ३ अरुणप्रभश्च ॥ 'एएसि ण'मित्यादि, एतेषां भदन्त ! चतुर्णामनुवेलन्धरराजानां कति आवासपर्वताः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! एकैकस्य एकैकभावेन चत्वारोऽनुवेलन्धरराजानामावासपर्वताः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—कर्कोटको विद्युत्प्रभः कैलासः अरुणप्रभश्च, कर्कोटकस्य कर्कोटकः कर्दमस्य विद्युत्प्रभः कैलाशस्य कैलाशः अरुणप्रभस्यारुणप्रभ इत्यर्थः ॥ 'कहि णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरपूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्य 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे कर्कोटकस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य कर्कोटको नामावासपर्वतकः प्रज्ञप्तः, 'सत्तरसएकवीसाइं जोयणसयाइं' इत्यादिका गोस्तूपस्यावासपर्वतस्य या वक्तव्यतोक्ता सैवेहापि अहीनानतिरिक्ता भणितव्या, नवरं सर्वरत्नमय इति वक्तव्यं, नामनिमित्तचिन्तायामपि यस्माच्च क्षुल्लाक्षुल्लिकासु वापीषु यावद्बिलपङ्क्तिषु बहून्युत्पलानि यावत् शतसहस्रपत्राणि कर्कोटकप्रभाणि कर्कोटकाकाराणि ततस्तानि कर्कोटकादीनि व्यवह्रियन्ते तद्योगात्पर्वतोऽपि कर्कोटकः, तथा कर्कोटकनामा देवस्तत्र पल्योपमस्थितिकः परिवसति ततः कर्कोटकस्वामित्वात्कर्कोटकः, राजधान्यपि कर्कोटस्यावासपर्वतस्योत्तरपूर्वस्यां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान्

द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य कर्कोटकाभिधाना विजयाराजधानीव प्रतिपत्तव्या । एवं कर्दमकैलाशारुणप्रभवक्तव्यताऽपि भावनीया, नवरं जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य लवणसमुद्रे दक्षिणपूर्वस्यां कर्दमको दक्षिणापरस्यां कैलाशः अपरोत्तरस्यामरुणप्रभः, नामनिमित्तचिन्तायामपि यस्मात्कर्दमके आवासपर्वते उत्पलादीनि कर्दमकप्रभाणि ततः कर्दमकभावना प्रागिव, अन्यच्च कर्दमके विद्युत्प्रभो नाम देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति, स च स्वभावाद् यक्षकर्दमप्रियः, यक्षकर्दमो नाम कुङ्कुमागुरुकर्पूरकस्तुरिकाचन्दनमेलापकः, उक्तञ्च—"कुङ्कुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनानि च । महासुगन्धमित्युक्तं, नामतो यक्षकर्दमम् ॥ १ ॥" ततः प्राचुर्येण यक्षकर्दमसम्भवाच्चासौ पूर्वपदलोपे सत्यभामा भामेतिवत् कर्दम इत्युच्यते, कैलाशे कैलाशप्रभाण्युत्पलादीनि कैलाशनामा च तत्र देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति ततः कैलाशः, एवमरुणप्रभेऽपि वक्तव्यं, कर्दमकाराजधानी कर्दमस्यावासपर्वतस्य दक्षिणपूर्वया कैलाशा कैलाशस्यावासपर्वतस्य दक्षिणापरयाऽरुणप्रभा अरुणप्रभस्यावासपर्वतस्यापरोत्तरया तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रेऽरुणप्रभाराजधानी विजयाराजधानीव वाच्या ॥

कहि णं भंते! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे २ पण्णत्ते, बारसजोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं सत्ततीसं जोयणसहस्साइं नव य अडयाले जोयणसए किंचिविसेसोणे परिक्खेवेणं, जंबूदीवंतेणं अद्धेकोणणउते जोयणाइं चत्तालीसं पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिए जलंताओ लवणसमुद्द-

तेणं दो कोसे ऊसिते जलंताओ ॥ से णं एगाए य पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता तहेव वण्णओ दोण्हवि । गोयमदीवस्स णं दीवस्स अंतो जाव बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहानामए—आलिंग० जाव आसयंति । तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स एगे महं अइक्कीलावासे नामं भोमेज्जविहारे पण्णत्ते बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं अणेगखंभसतसन्निविट्ठे भवणवण्णओ भाणियव्वो । अइक्कीलावासस्स णं भोमेज्जविहारस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीणं भासो । तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ एगा मणिपेढिया पण्णत्ता । सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणबाहल्लेणं सव्वमणिमयी अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं देवसयणिज्जे पण्णत्ते वण्णओ ॥ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—गोयमदीवे णं दीवे ?, तत्थ २ तहिं २ बहूइं उप्पलाइं जाव गोयमप्पभाइं से एएणट्ठेणं गोयमा ! जाव णिच्चे । कहि णं भंते ! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स सुट्ठिया णामं रायहाणी पण्णत्ता ?, गोयमदीवस्स पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे जाव अण्णंमि लवणसमुद्दे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एवं तहेव सव्वं णेयव्वं जाव सुट्ठिए देवे ॥ (सू० १६१)

'कहिं णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! सुस्थितस्य लवणाधिपस्य गौतमद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपस्य पश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे सुस्थितस्य लवणाधिपस्य गौतमद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, द्वादश योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भाभ्यां, सप्तत्रिंशद् योजनसहस्राणि नव चाष्टाचत्वारिंशानि किञ्चिद्विशेषोनानि परिक्षेपेण, 'जंबूदीवंतेणं'मिति जम्बूद्वीपदिशि 'अर्द्धैकोननवतीनि' अर्द्धमेकोननवतेर्येषां तानि अर्द्धैकोननवतीनि साद्धाष्टाशीतिसङ्ख्यानीति भावः, योजनानि चत्वारिंशतं च पञ्चनवतिभागान् योजनस्य 'जलान्तात्' जलपर्यन्तादूर्द्धमुच्छ्रितः, एतावान् जलस्योपरि प्रकट इत्यर्थः, 'लवणसमुद्रान्ते' लवणसमुद्रदिशि द्वौ क्रोशौ जलान्तादुच्छ्रितौ, द्वावेव क्रोशौ जलस्योपरि प्रकट इत्यर्थः ॥ 'से णं'मित्यादि, स एकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनषण्डेन सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः, द्वयोरपि वर्णनं प्राग्वत् । तस्य च गौतमद्वीपस्योपरि बहुसमरमणीयभूमिभागवर्णनं प्राग्वद् यावत्तृणानां मणीनां च शब्दवर्णनं वाप्यादिवर्णनं यावद्बहवो वानमन्तरा देवा आसते शेरते यावद्विहरन्तीति । तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र सुस्थितस्य लवणाधिपस्य योग्यो महानेकः 'अतिक्रीडावासः' अत्यर्थं क्रीडावासो नाम भौमेयविहारः प्रज्ञप्तः, सार्द्धानि द्वाषष्टियोजनान्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेन एकत्रिंशतं च योजनानि क्रोशमेकं च विष्कम्भेन 'अणेगखंभसयसन्निविट्ठे' इत्यादि भवनवर्णनमुल्लोचवर्णनं भूमिभागवर्णनं च प्राग्वत् । तस्य च बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, सा योजनमायामविष्कम्भाभ्यां अर्द्धयोजनं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी अच्छा यावत्प्रतिरूपा ॥ 'तीसे णं'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि देवशयनीयं, तस्य वर्णक उपर्यष्टाष्टमङ्गलकादिकं च प्राग्वत् ॥ नामनिमित्तं पिपृच्छिषुराह—'से केणट्ठेणं'मित्यादि, अथ 'केनार्थेन' केन कारणेन एवमुच्यते—गौतमद्वीपो नाम द्वीपः?, भगवा-

नाह—गौतमद्वीपस्य शाश्वतमिदं नामधेयं न कदाचिन्नासीदित्यादि प्राग्वत् । पुस्तकान्तरेषु पुनरेवं पाठः——'गोयमदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ तहिं तहिं बहूइं उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं गोयमप्पभाइं गोयमवन्नाइं गोयमवण्णाभाइं' इति, एवं प्राग्वद् भावनीयः । सुस्थितश्चात्र लवणाधिपो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति, स च तत्र चतुर्णां सामानिकसहस्राणां यावत्षोडशानामात्मरक्षकदेवसहस्राणां गौतमद्वीपस्य सुस्थितायाश्च राजधान्या अन्येषां च बहूनां वानमन्तराणां देवानां देवीनां चाधिपत्यं यावद्विहरति, तत एवमेव शाश्वतनामत्वात्, पाठान्तरे तद्गतानि उत्पलादीनि गौतमप्रभाणीति गौतमानीति प्रसिद्धानि ततस्तद्योगात्तथा, तदधिपतिगौतमाधिपतिरिति प्रसिद्धं इति सामर्थ्यादेप गौतमद्वीप इति । उपसंहारमाह—'से तेणट्ठेण'मित्यादि गतार्थम् ॥ सम्प्रति जम्बूद्वीपगतचन्द्रसत्कद्वीपप्रतिपादनार्थमाह——

कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! जंबूद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जंबूदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, जंबुद्दीवंतेणं अद्धेकोणणउइ जोयणाइं चत्तालीसं पंचाणउतिं भागे जोयणस्स ऊसिया जलंतातो लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिता जलंताओ, बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, सेसं तं चेव जहा गोतमदीवस्स परिक्खेवो पउमवरवेइया पत्तेयं २ वणसंडपरि० दोण्हवि वण्णओ बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा जाव जोइसिया देवा आसयंति। तेसि णं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पासायवडेंसगा बावट्ठि जोयणाइं बहुम-

उक्त० मणिपेढियाओ दो जोयणाइं जाव सीहासणा सपरिवारा भाणियव्वा तहेव अट्ठो, गोयमा! बहुसु खुड्डासु खुड्डियासु बहूइं उप्पलाइं चंदवण्णाभाइं चंदा एत्थ देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, ते णं तत्थ पत्तेयं पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव चंददीवाणं चंदाण य रायहाणीणं अन्नेसिं च बहूणं जोतिसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! चंददीवा जाव णिच्चा । कहि णं भंते! जंबुदीवगाणं चंदाणं चंदाओ नाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! चंददीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियं जाव अण्णंमि जंबूदीवे २ बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव पमाणं जाव एमहिड्ढीया चंदा देवा २ ॥ कहि णं भंते! जंबुदीवगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव उच्चत्तं आयामविक्खंभेणं परिक्खेवो वेदिया वणसंडा भूमिभागा जाव आसयंति पासायवडेंसगाणं तं चेव पमाणं मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो उप्पलाइं सूरप्पभाइं सूरा एत्थ देवा जाव रायहाणीओ सकाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि जंबूदीवे दीवे सेसं तं चेव जाव सूरा देवा ॥ (सू० १६२) कहि णं भंते! अब्भिंतरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयण-

सहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं अब्भिंतरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, जहा जंबुद्दीवगा चंदा तहा भाणियव्वा णवरि रायहाणीओ अण्णंमि लवणे सेसं तं चेव। एवं अब्भिंतरलावणगाणं सूराणवि लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ॥ कहि णं भंते! बाहिरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता?, गोयमा! लवणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ लवणसमुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं बाहिरलावणगाणं चंददीवा नामं दीवा पण्णत्ता धायतिसंडदीवंतेणं अद्धेकोणणवतिजोयणाइं चत्तालीसं च पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिता जलंतातो लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिता बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पउमवरवेइया वणसंडा बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा सो चेव अट्ठो रायहाणीओ सगाण दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियमसं० अण्णंमि लवणसमुद्दे तहेव सव्वं। कहि णं भंते! बाहिरलावणगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता? गोयमा! लवणसमुद्दपच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ लवणसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं धायतिसंडदीवंतेणं अद्धेकूणणउतिं जोयणाइं चत्तालीसं च पंचनउतिभागे जोयणस्स दो कोसे ऊसिया सेसं तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे लवणे चेव बारस जोयणा तहेव सव्वं भाणियव्वं॥

(सू० १६३) कहि णं भंते! धायतिसंडदीवगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता ?, गोयमा! धायतिसंडस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं धायतिसंडदीवाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, सव्वतो समंता दो कोसा ऊसिता जलंताओ बारस जोयणसहस्साइं तहेव विक्खंभपरिक्खेवो भूमिभागो पासायवडिंसया मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो तहेव रायहाणीओ, सकाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं अण्णंमि धायतिसंडे दीवे सेसं तं चेव, एवं सूरदीवावि, नवरं धायइसंडस्स दीवस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयण० तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ सूराणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे सव्वं तहेव ॥ (सू० १६४) कहि णं भंते! कालोयगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता?, गोयमा! कालोयसमुद्दस्स पुरच्छिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयण्णं समुद्दं पच्चत्थिमेण बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं कालोयगचंदाणं चंददीवा सव्वतो समंता दो कोसा ऊसिता जलंतातो सेसं तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीव० पुरच्छिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे बारस जोयणा तं चेव सव्वं जाव चंदा देवा २। एवं सूराणवि, णवरं कालोयगपच्चत्थिमिल्लातो वेदियंतातो कालोयसमुद्दपुरच्छिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे त-

हेव सव्वं। एवं पुक्खरवरगाणं चंदाणं पुक्खरवरस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पुक्खरसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता चंददीवा अण्णंमि पुक्खरवरे दीवे रायहाणीओ तहेव। एवं सूराणवि दीवा पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पुक्खरोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवे समुद्दगाणं समुद्दे चेव एगाण अब्भिंतरपासे एगाणं बाहिरपासे रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवेसु समुद्दगाणं समुद्देसु सरिणामतेसु (सू० १६५) इमे णामा अणुगंतव्वा, जंबुद्दीवे लवणे धायइ कालोद पुक्खरे वरुणे। खीर घय इक्खु[वरो य]णंदी अरुणवरे कुंडले रुयगे ॥ १ ॥ आभरणवत्थगंधे उप्पलतिलते य पुढवि णिहिरयणे। वासहरदहनईओ विजया वक्खारकप्पिंदा ॥ २ ॥ पुरमंदरमावासा कूडा णक्खत्तचंदसूरा य। एवं भाणियव्वं ॥ (सू० १६६)

'कहि णं भंते!' इत्यादि ॥ क भदन्त! जम्बूद्वीपगतयोर्जम्बूद्वीपसत्कयोश्चन्द्रयोश्चन्द्रद्वीपौ नाम द्वीपौ प्रज्ञप्तौ?, भगवानाह—'गोयमे'त्यादि सर्वं गौतमद्वीपवत्परिभावनीयं, नवरमत्र जम्बूद्वीपस्य पूर्वस्यां दिशीति वक्तव्यं, तथा प्रासादावतंसको वक्तव्यः, तस्य चायामादिप्रमाणं तथैव, नामनिमित्तचिन्तायामपि यस्मात्क्षुल्लिकावाप्यादिषु बहूनि उत्पलादीनि यावत्सहस्रपत्राणि चन्द्रप्रभाणि—चन्द्रवर्णानि, चन्द्रौ च ज्योतिषेन्द्रौ ज्योतिषराजौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तौ चन्द्रौ प्रत्येकं चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चतसृणामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां तिसृणां पर्षदां सप्तानामनीकानां सप्तानामनीकाधिपतीनां षोडशानामात्मरक्षकदेवसहस्राणां स्वस्य

स्वस्य चन्द्रद्वीपस्य स्वस्याश्चन्द्राभिधानाया राजधान्या अन्येषां च बहूनां ज्योतिषाणां देवानां देवीनां चाधिपत्यं यावद्विहरतः । तत-
स्तद्व्रतोत्पलादीनां चन्द्राकारत्वाच्चन्द्रवर्णत्वाच्चन्द्रदेवस्वामिकत्वाच्च तौ चन्द्रद्वीपौ इति, चन्द्राभिधे च राजधान्यौ तयोश्चन्द्रद्वीपयोः पू-
र्वस्यां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य विजयाराजधानीसदृश्यौ
वक्तव्ये । एवं जम्बूद्वीपगतसूरसत्कसूर्यद्वीपावपि वक्तव्यौ, नवरं जम्बूद्वीपस्य पश्चिमायां दिशि एनमेव लवणसमुद्रमवगाह्य वक्तव्यं,
राजधान्यावपि स्वकद्वीपयोः पश्चिमायां दिशि अन्यस्मिन् जम्बूद्वीपे वक्तव्ये, शेषं सर्वं चन्द्रद्वीपवद्भावनीयं नवरं चन्द्रस्थाने सूर्यग्रह-
णमिति ॥ सम्प्रति लवणसमुद्रगतचन्द्रादित्यद्वीपवक्तव्यतामाह—'कहि णं भंते !' इत्यादि, लवणे भवौ लावणिकौ अभ्यन्तरौ च तौ
लावणिकौ च अभ्यन्तरलावणिकौ शिखाया अर्वाक्चारिणावित्यर्थः तयोः, सूत्रे द्वित्वेऽपि बहुवचनं प्राकृतत्वात्, शेषं सुगमं, भगवा-
नाह—गौतम ! जम्बूद्वीपस्य पूर्वस्यां दिशि एनमेव लवणसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे अभ्यन्तरलावणि-
कयोश्चन्द्रयोश्चन्द्रद्वीपौ नाम द्वीपौ वक्तव्यौ, इत्यादि जम्बूद्वीपगतचन्द्रसत्कचन्द्रद्वीपवन्निरवशेषं वक्तव्यं, नवरमत्र राजधान्यौ स्वकी-
ययोर्द्वीपयोः पूर्वस्यां दिशि अन्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य वेदितव्ये । एवमभ्यन्तरलावणिकसूर्यसत्कसूर्यद्वीपा-
वपि वक्तव्यौ, नवरं तौ जम्बूद्वीपस्य पश्चिमायां दिशि एनमेव लवणसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य वक्तव्यौ, राजधान्यावपि
स्वकीययोः द्वीपयोः पश्चिमायां दिशि अन्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादशः योजनसहस्राण्यवगाह्येति ॥ 'कहि णं भंते !' इत्यादि, क भदन्त !
बाह्यलावणिकयोश्चन्द्रयोश्चन्द्रद्वीपौ नाम द्वीपौ प्रज्ञप्तौ ?, बाह्यलावणिकौ नाम लवणसमुद्रे शिखाया बहिश्चारिणौ चन्द्रौ, भगवानाह—
गौतम ! लवणसमुद्रस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्तादर्वाग् लवणसमुद्रं पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्र बाह्यलावणिकयोश्चन्द्रयोश्च-

न्द्रद्वीपौ नाम द्वीपौ प्रज्ञप्तौ, तौ च धातकीषण्डद्वीपान्तेन—धातकीषण्डद्वीपदिशि अर्द्धैकोननवतियोजनानि चत्वारिंशतं च पञ्चनवति-भागान् योजनस्योदकादूर्द्ध्वमुच्छ्रितौ लवणसमुद्रदिशि द्वौ क्रोशौ, शेषवक्तव्यताऽभ्यन्तरलावणिकचन्द्रद्वीपवद्वक्तव्या, अत्रापि च राज-धान्यौ स्वकीययोर्द्वीपयोः पूर्वस्यां तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे वक्तव्ये, एवं बाह्यलावणिकसूर्यसत्क-सूर्यद्वीपावपि वक्तव्यौ, नवरमत्र लवणसमुद्रस्य पश्चिमाद् वेदिकान्ताल्लवणसमुद्रं पूर्वस्यां दिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्येति व-क्तव्यं, राजधान्यावपि स्वकयोर्द्वीपयोः पश्चिमायां दिशि अन्यस्मिन् लवणसमुद्रे इति ॥ सम्प्रति धातकीषण्डगतचन्द्रादित्यद्वीपवक्तव्य-तामभिधित्सुराह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! धातकीषण्डद्वीपगतानां चन्द्राणां, तत्र द्वादश चन्द्रा इति बहुवचनं, च-न्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! धातकीषण्डस्य द्वीपस्य पूर्वस्यां दिशि कालोदं समुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगा-ह्यात्र धातकीषण्डगतानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, ते च जम्बूद्वीपगतचन्द्रसत्कचन्द्रद्वीपवद्वक्तव्याः, नवरं ते सर्वासु दिक्षु जलादूर्द्ध्वं द्वौ क्रोशौ उच्छ्रितौ इति वक्तव्यं, तत्र पानीयस्य सर्वत्रापि समत्वाद्, राजधान्योऽपि तेषां स्वकीयानां द्वीपानां पूर्वत-स्तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् धातकीषण्डे द्वीपे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य विजयाराजधानीवद्वक्तव्याः, एवं धातकीषण्डगतसूर्यसत्कसूर्यद्वीपा अपि वक्तव्याः, नवरं धातकीषण्डस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्कालोदसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्य-वगाह्य वक्तव्याः, राजधान्योऽपि स्वकीयानां सूरद्वीपानां पश्चिमदिशि अन्यस्मिन् धातकीषण्डे द्वीपे शेषं तथैव ॥ सम्प्रति कालोदस-मुद्रगतचन्द्रादित्यसत्कद्वीपवक्तव्यतां प्रतिपिपादयिषुराह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, 'कालोयगाणं'मित्यादि, क भदन्त! 'कालोद-गानां' कालोदसमुद्रसत्कानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! कालोदसमुद्रस्य पूर्वस्माद् वेदिकान्ता-

त्कालोदसमुद्रं पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्र कालोदसमुद्रगतचन्द्राणां चन्द्रद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, ते च सर्वासु दिक्षु जलादूर्द्ध्वं द्वौ द्वौ क्रोशावुच्छ्रितौ, शेषं तथैव । राजधान्योऽपि स्वकीयानां द्वीपानां पूर्वस्यां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् कालोदसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य विजयाराजधानीवद्वक्तव्याः । एवं कालोदगतसूर्यसत्कसूर्यद्वीपा अपि वक्तव्याः, नवरं कालोदसमुद्रस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्कालोदसमुद्रं पूर्वदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्येति वक्तव्यं, राजधान्योऽपि स्वकीयानां द्वीपानां पश्चिमदिशि अन्यस्मिन् कालोदसमुद्रे, शेषं तथैव । एवं पुष्करवरद्वीपगतानां चन्द्राणां पुष्करवरद्वीपस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्तात्पुष्करोदसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य द्वीपा वक्तव्याः, राजधान्यः स्वकीयानां द्वीपानां पश्चिमदिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् पुष्करवरद्वीपे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, पुष्करवरद्वीपगतसूर्याणां द्वीपाः पुष्करवरद्वीपस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्पुष्करवरसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य प्रतिपत्तव्याः, राजधान्यः पुनः स्वकीयानां द्वीपानां पश्चिमदिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् पुष्करवरद्वीपे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, पुष्करवरसमुद्रगतचन्द्रसत्कचन्द्रद्वीपाः पुष्करवरसमुद्रस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्तात्पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य प्रतिपत्तव्याः, राजधान्यः स्वकीयानां द्वीपानां पूर्वदिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् पुष्करवरसमुद्रे द्वादश योजनसहस्रेभ्यः परतः, पुष्करवरसमुद्रगतसूर्यसत्कसूर्यद्वीपाः पुष्करवरसमुद्रस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्पूर्वतो द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, राजधान्यः पुनः स्वकीयानां द्वीपानां पश्चिमदिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् पुष्करोदसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य प्रतिपत्तव्याः । एवं शेषद्वीपगतानामपि चन्द्राणां चन्द्रद्वीपगतात्पूर्वस्माद्वेदिकान्तादनन्तरे समुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य वक्तव्याः, सूर्याणां सूर्यद्वीपाः स्वस्वद्वीपगतात्प-

श्चिमान्ताद्वेदिकान्तादनन्तरे समुद्रे, राजधान्यश्चन्द्राणामासीयचन्द्रद्वीपेभ्यः पूर्वदिशि अन्यस्मिन् सदृशनामके २ द्वीपे, सूर्याणामप्यासीयसूर्यद्वीपेभ्यः पश्चिमदिशि तस्मिन्नेव सदृशनामकेऽन्यस्मिन् द्वीपे द्वादश योजनसहस्रेभ्यः परतः, शेषसमुद्रगतानां तु चन्द्राणां चन्द्रद्वीपाः स्वस्वसमुद्रस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्तात्पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, सूर्याणां तु स्वस्वसमुद्रस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्पूर्वदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, चन्द्राणां राजधान्यः स्वस्वद्वीपानां पूर्वदिशि अन्यस्मिन् सदृशनामके समुद्रे, सूर्याणां राजधान्यः स्वस्वद्वीपानां पश्चिमदिशि, केवलमग्रेतनशेषद्वीपसमुद्रगतानां चन्द्रसूर्याणां राजधान्योऽन्यस्मिन् सदृशनामके द्वीपे समुद्रे वाऽग्रेतने वा पश्चात्तने वा प्रतिपत्तव्या नाग्रेतन एवान्यथाऽनवस्थाप्रसक्तेः ॥ एतच्च देवद्वीपादर्वाक् सूर्यवराभासं यावद्, देवद्वीपादिषु तु राजधानीः प्रति विशेषस्तमभिधित्सुराह—

कहि णं भंते! देवदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! देवदीवस्स देवोदं समुदं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तेणेव कमेण पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं देवदीवं समुदं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं देवदीवयाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ, सेसं तं चेव, देवदीवचंदा दीवा, एवं सूराणवि, णवरं पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पच्चत्थिमेणं च भाणितव्वा, तंमि चेव समुद्दे ॥ कहि णं भंते! देवसमुद्दगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! देवोदगस्स समुद्दगस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ देवोदगं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं तेणेव

कमेणं जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं देवोदगाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं चेव सव्वं, एवं सूराणवि, णवरि देवोदगस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेतियंतातो देवोदगसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता रायहाणीओ सगाणं २ दीवाणं पुरत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं । एवं णागे जक्खे भूतेवि चउण्हं दीवसमुद्दाणं । कहि णं भंते! सयंभूरमणदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, सयंभुरमणस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लातो वेतियंतातो सयंभुरमणोदगं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव रायहाणीओ सगाणं २ दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभुरमणोदगं समुद्दं पुरत्थिमेणं असंखेज्जाइं जोयण० तं चेव, एवं सूराणवि, सयंभूरमणस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ रायहाणीओ सकाणं २ दीवाणं पच्चत्थिमिल्लाणं सयंभुरमणोदं समुद्दं असंखेज्जा० सेसं तं चेव । कहि णं भंते! सयंभूरमणसमुद्दकाणं चंदाणं०, सयंभुरमणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेतियंतातो सयंभुरमणं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, सेसं तं चेव । एवं सूराणवि, सयंभुरमणस्स पच्चत्थिमिल्लाओ सयंभुरमणोदं समुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभुरमणं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं सयंभुरमण जाव सूरादेवा

॥(सूत्रं १६७) अत्थि णं भंते! लवणसमुद्दे वेलंधराति वा णागराया खन्नाति वा अग्घाति वा सिंहाति वा विजाती वा ह्रासवट्टीति?, हंता अत्थि। जहा णं भंते! लवणसमुद्दे अत्थि वेलंधराति वा णागराया अग्घा सिंहा विजाती वा ह्रासवट्टीति वा तहा णं बाहिरतेसुवि समुद्देसु अत्थि वेलंधराइ वा णागरायाति वा अग्घाति वा सीहाति वा विजातीति वा ह्रासवट्टीति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे॥ (सूत्रं १६८) लवणे णं भंते! समुद्दे किं ऊसितोदगे किं पत्थडोदगे किं खुभियजले किं अखुभियजले?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे ऊसिओदगे नो पत्थडोदगे खुभियजले नो अक्खुभियजले। जहा णं भंते! लवणे समुद्दे ओसितोदगे नो पत्थडोदगे खुभियजले नो अक्खुभियजले तहा णं बाहिरगा समुद्दा किं ऊसिओदगा पत्थडोदगा खुभियजला अक्खुभियजला?, गोयमा! बाहिरगा समुद्दा नो उस्सितोदगा पत्थडोदगा नो खुभियजला अक्खुभियजला पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठंति॥ अत्थि णं भंते! लवणसमुद्दे बहवो ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वा वासं वासंति वा?, हंता अत्थि। जहा णं भंते! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति वा तहा णं बाहिरएसुवि समुद्देसु बहवे ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठे णं भंते! एवं वुचति बाहिरगा णं समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडियाए

चिट्ठंति?, गोयमा! बाहिरएसु णं समुद्देसु बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चति—बाहिरगा समुद्दा पुण्णा पुण्ण° जाव समभरघडत्ताए चिट्ठंति ॥(सू० १६९)

'**कहि णं भंते!**' इत्यादि, क्व भदन्त! देवद्वीपगानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! देवद्वीपस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्ताद् देवोदं समुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य अत्रान्तरे देवद्वीपगानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपाः प्रज्ञप्ता इत्यादि प्राग्वत्, राजधान्यः स्वकीयानां चन्द्रद्वीपानां पश्चिमदिशि तमेव देवद्वीपमसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे देवद्वीपगानां चन्द्राणां चन्द्रा नाम राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, ता अपि विजयाराजधानीवद्वक्तव्याः ॥ '**कहि णं भंते!**' इत्यादि, क्व भदन्त! देवद्वीपगानां सूर्याणां सूर्यद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! देवद्वीपस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्ताद् देवोदं समुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्येत्यादि। राजधान्यः स्वकीयानां सूर्यद्वीपानां पूर्वस्यां दिशि तमेव देवद्वीपमसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्येत्यादि ॥ '**कहि णं भंते!**' इत्यादि, क्व भदन्त! देवसमुद्राणां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! देवोदस्य समुद्रस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्ताद्देवोदकं समुद्रं पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे देवोदसमुद्रगानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपाः प्रज्ञप्तास्ते च प्राग्वत्। राजधान्यः स्वकीयानां चन्द्रद्वीपानां पश्चिमदिशि देवोदकं समुद्रमसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे वक्तव्याः, देवोदकसमुद्रगानां सूर्याणां सूर्यद्वीपा देवोदकस्य समुद्रस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्ताद् देवोदकं समुद्रं पूर्वदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे वक्तव्याः, राजधान्योऽपि स्वकीयानां सूर्यद्वीपानां पूर्वदिशि देवोदकं समुद्रमसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्य, एवं नागयक्षभूतस्वयम्भूरमण-

द्वीपसमुद्रचन्द्रादित्यानामपि वक्तव्यं, द्वीपगतानां चन्द्रादित्यानां चन्द्रादित्यद्वीपा अनन्तरसमुद्रे, समुद्रगतानां तु स्वस्वसमुद्र एव, राजधान्यो द्वीपगतानां चन्द्रादित्यानां स्वस्वद्वीपे, समुद्रगतानां स्वस्वसमुद्रे, आह च मूलटीकाकारोऽपि—“एवं शेषद्वीपगतचन्द्रादित्यानामपि द्वीपा अनन्तरसमुद्रेष्ववगन्तव्याः, राजधान्यश्च तेषां पूर्वापरतोऽसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् गत्वा ततोऽन्यस्मिन् सदृशनाम्नि द्वीपे भवन्ति, अन्त्यानिमान् पञ्च द्वीपान् मुक्त्वा देवनागयक्षभूतस्वयम्भूरमणाख्यान्, न तेषु चन्द्रादित्यानां राजधान्योऽन्यस्मिन् द्वीपे, अपि तु स्वस्मिन्नेव पूर्वापरतो वेदिकान्तादसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्य भवन्तीति,” इह बहुधा सूत्रेषु पाठभेदाः परमेतावानेव सर्वत्राप्यर्थोऽनर्थभेदान्तरमित्येतद्व्याख्यानुसारेण सर्वेऽप्यनुगन्तव्या न मोग्धव्यमिति ॥ **‘अत्थि णं भंते!’** इत्यादि, सन्ति भदन्त! लवणसमुद्रे वेलन्धरा इति वा नागराजाः, अग्घा इति वा खन्ना इति वा सीहा इति वा जाइ इति वा ?, अग्घादयो मत्स्यकच्छपविशेषाः, आह च चूर्णिकृत्—“अग्घा खन्ना सीहा विजाइं इति मच्छकच्छभा” इति, ह्रस्ववृद्धी जलस्येति गम्यते इति, भगवानाह—गौतम सन्ति। ‘जहा णं भंते! लवणसमुद्दे वेलंधरा इति वा’ इत्यादि पाठसिद्धम् ॥ **‘लवणे णं भंते!’** इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः किमुच्छ्रितोदकः प्रस्तटोदकः—प्रस्तटाकारतया स्थितमुदकं यस्य स तथा, सर्वतः समोदक इति भावः, क्षुभितं जलं यस्य स क्षुभितजलस्तत्प्रतिषेधादक्षुभितजलः ?, भगवानाह—गौतम! उच्छ्रितोदको न प्रस्तटोदकः क्षुभितजलो नाक्षुभितजलः ॥ **‘जहा णं भंते!’** इत्यादि, यथा भदन्त! लवणसमुद्र उच्छ्रितोदक इत्यादि तथा बाह्या अपि समुद्राः किमुच्छ्रितोदकाः प्रस्तटोदकाः क्षुभितजला अक्षुभितजलाः ?, भगवानाह—गौतम! बाह्याः समुद्रा न उच्छ्रितोदकाः किन्तु प्रस्तटोदकाः सर्वत्र समोदकत्वात्, तथा न क्षुभितजलाः किन्त्वक्षुभितजलाः क्षोभहेतुपातालकलशाद्यभावात्, किन्तु ते पूर्णाः, तत्र किञ्चिद्धीनमपि व्यवहारतः पूर्णं भवति तत आह—

पूर्णप्रमाणाः स्वप्रमाणं यावज्जलेन पूर्णा इति भावः, **'वोसट्टमाणा'** परिपूर्णभृततया उल्लुठन्त इवेति भावः, **'वोलट्टमाणा'** इति विशेषेण उल्लुट्ठन्त इवेत्यर्थः **'समभरघडत्ताए चिट्ठंति'** इति समं—परिपूर्णो भरो—भरणं यस्य स समभरः परिपूर्णभृत इत्यर्थः स चासौ घटश्च समभरघटस्तद्भावस्तत्ता तया समभृतघट इव तिष्ठन्तीति भावः ॥ **'अत्थि णं भंते!'** इत्यादि, अस्त्येतद् भदन्त! लवणसमुद्रे **'ओराला वलाहका'** उदारा मेघाः **'संस्विद्यन्ते'** संमूर्च्छनाभिमुखीभवन्ति, तदनन्तरं संमूर्छन्ति, ततो **'वर्षं'** पानीयं वर्षन्ति?, भगवानाह—हन्त! अस्ति ॥ 'जहा णं भंते! लवणसमुद्दे' इत्यादि प्रतीतम् ॥ **'से केणट्ठेण'**मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते बाह्याः समुद्राः पूर्णाः पूर्णप्रमाणाः? इत्यादि प्राग्वत्, भगवानाह—गौतम! बाह्येषु समुद्रेषु बहव उदकयोनिका जीवाः पुद्गलाश्चोदकतया **'अपक्रामन्ति'** गच्छन्ति **'व्युत्क्रामन्ति'** उत्पद्यन्ते, एके गच्छन्त्यन्ये उत्पद्यन्त इति भावः, तथा **'चीयन्ते'** चयमुपगच्छन्ति **'उपचीयन्ते'** उपचयमायान्ति, एतच्च पुद्गलान् प्रति द्रष्टव्यं, पुद्गलानामेव चयोपचयार्थप्रसिद्धेः, **'से एएणट्ठेण'**मित्याद्युपसंहारवाक्यं प्रतीतं ॥ सम्प्रत्युद्वेधपरिवृद्धिं चिचिन्तयिषुरिदमाह—

लवणे णं भंते! समुद्दे केवतियं उव्वेहपरिवुड्ढीते पण्णत्ते?, गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओपासिं पंचाणउतिं २ पदेसे गंता पदेसं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते, पंचाणउतिं २ वालग्गाइं गंता वालग्गं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते, प० लिक्खाओ गंता लिक्खा उव्वेहपरि० पंचाणउइ जवाओ जवमज्झे अंगुलविहत्थिरयणीकुच्छी धणु [उव्वेहपरिवुड्ढीए] गाउयजोयणजोयणसतजोयणसहस्साइं गंता जोयणसहस्सं उव्वेहपरिवुड्ढीए ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे केवतियं उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते?,

गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओपासिं पंचाणउतिं पदेसे गंता सोलसपएसे उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते, गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स एएणेव कमेणं जाव पंचाणउतिं २ जोयणसहस्साइं गंता सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेधपरिवुड्ढिए पण्णत्ते ॥ (सू० १७०)

'लवणे णं भंते! समुद्दे' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः 'कियत्' कियन्ति योजनानि यावद् उद्वेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्तः?, किमुक्तं भवति?—जम्बूद्वीपवेदिकान्ताल्लवणसमुद्रवेदिकान्ताच्चारभ्योभयतोऽपि लवणसमुद्रस्य कियन्ति योजनानि यावत् मात्रया मात्रया उद्वेधपरिवृद्धिरिति, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रे उभयोः पार्श्वयोर्जम्बूद्वीपवेदिकान्ताल्लवणसमुद्रवेदिकान्ताच्चारभ्येत्यर्थः पञ्चनवतिप्रदेशान् गत्वा प्रदेश उद्वेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्तः, इह प्रदेशस्त्रसरेण्वादिरूपो द्रष्टव्यः, पञ्चनवतिं वालाग्राणि गत्वैकं वालाग्रमुद्वेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्तं, एवं लिक्षायवमध्याङ्गुलवितस्तिरत्निकुक्षिधनुर्गव्यूतयोजनयोजनशतसूत्राण्यपि भावनीयानि, पञ्चनवतिं योजनसहस्राणि गत्वा योजनसहस्रमुद्वेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्तं, त्रैराशिकभावना चैवं योजनादिषु द्रष्टव्या, इहोभयतोऽपि पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्ते योजनसहस्रमवगाहेन दृष्टं ततस्त्रैराशिककर्म्मावतारः, यदि पञ्चनवतिसहस्रपर्यन्ते योजनसहस्रमवगाहस्ततः पञ्चनवतियोजनपर्यन्ते कोऽवगाहः?, राशित्रयस्थापना—९५०००।१०००।९५। अत्रादिमध्ययो राश्योः शून्यत्रयस्यापवर्त्तना ९५।१।९५, ततो मध्यस्य राशेरेकरूपस्य अन्त्येन पञ्चनवतिलक्षणेन राशिना गुणनात् जाता पञ्चनवतिः, तत्राद्येन राशिना पञ्चनवतिलक्षणेन विभज्यते लब्धमेकं योजनं, उक्तञ्च—"पंचाणउइसहस्से गंतूणं जोयणाणि उभओवि। जोयणसहस्समेगं लवणे ओगाहओ होइ ॥ १ ॥ पंचाणउईण वगे (लवणे) गंतूणं जोयणाणि उभओवि। जोयणमेगं लवणे ओगाहेणं मुणेयव्वा ॥ १ ॥" पञ्चनवतियोजनपर्यन्ते च यद्येकं यो-

३ प्रतिपत्तौ लवणे उद्वेधोत्सेधौ उद्देशः २ सू० १७०

जनमवगाहस्ततोऽर्थात्पञ्चनवतिगव्यूतपर्यन्ते एकं गव्यूतं पञ्चनवतिधनुःपर्यन्ते एकं धनुरित्यादि लब्धम् ॥ सम्प्रत्युत्सेधमधिकृत्याह— '**लवणे णं भंते! समुद्दे**' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः '**कियत्**' कियन्ति योजनानि उत्सेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्तः ?, एतदुक्तं भवति—जम्बूद्वीपवेदिकान्ताल्लवणसमुद्रवेदिकान्ताच्चारभ्योभयतोऽपि लवणसमुद्रस्य कियत्या कियत्या मात्रया कियन्ति योजनानि यावदुत्सेधपरिवृद्धिः ?, भगवानाह—गौतम! '**लवणस्स णं समुद्दस्से**'त्यादि, इह निश्चयतो लवणसमुद्रस्य जम्बूद्वीपवेदिकातो लवणसमुद्रवेदिकातश्च समतले भूभागे प्रथमतो जलवृद्धिरङ्गुलसङ्ख्येयभागः, समतलमेव भूभागमधिकृत्य प्रदेशवृद्ध्या जलवृद्धिः क्रमेण परिवर्द्धमाना तावद्वसेया यावदुभयतोऽपि पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्ते सप्त शतानि, ततः परं मध्यदेशभागे दश-योजनसहस्रविस्तारे षोडश योजनसहस्राणि, इह तु षोडशयोजनसहस्रप्रमाणायाः शिखायाः शिरसि उभयोश्च वेदिकान्तयोर्मूले दवरिकायां दत्तायां यदपान्तराले किमपि जलरहितमाकाशं तदपि करणगत्या तदाभाव्यमिति स जलं विवक्षित्वाऽधिकृतमुच्यते—लवणस्य समुद्रस्योभयतो जम्बूद्वीपवेदिकान्ताल्लवणसमुद्रवेदिकान्ताच्च पञ्चनवतिं प्रदेशान् गत्वा षोडश प्रदेशा उत्सेधपरिवृद्धिः प्रज्ञप्ता, पञ्चनवतिं वालाग्राणि गत्वा षोडश वालाग्राणि, एवं यावत् पञ्चनवति योजनसहस्राणि गत्वा षोडश योजनसहस्राणि, अत्रे-यं त्रैराशिकभावना—पञ्चनवतियोजनसहस्रातिक्रमे षोडश योजनसहस्राणि जलोत्सेधस्ततः पञ्चनवतियोजनातिक्रमे क उत्सेधः ?, राशित्रयस्थापना—९५०००।१६०००।९५। अत्रादिमध्ययो राश्योः शून्यत्रिकस्यापवर्त्तना ९५।१६।९५, ततो मध्यमराशेः षोडशल-क्षणस्यान्त्येन पञ्चनवतिलक्षणेन गुणने जातानि पञ्चदश शतानि विंशत्यधिकानि १५२०, एषामादिराशिना पञ्चनवतिलक्षणेन भागे हृते लब्धानि षोडश योजनानि, उक्तञ्च—"पंचाणउइसहस्से गंतूणं जोयणाणि उभओवि । उस्सेहेणं लवणो सोलससाहस्सिओ

भणिओ ॥ १ ॥ पंचाणउई लवणे गंतूणं जोयणाणि उभओवि । उस्सेहेणं लवणो सोलस किल जोयणे होइ ॥ २ ॥" तत्र यदि पञ्चनवतियोजनपर्यन्ते षोडशयोजनावगाहस्ततोऽर्थाल्लभ्यते पञ्चनवतिगव्यूतपर्यन्ते षोडश गव्यूतानि पञ्चनवतिधनुःपर्यन्ते षोडश धनूंषीत्यादि ॥ सम्प्रति गोतीर्थप्रतिपादनार्थमाह—

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थे पण्णत्ते?, गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओपासिं पंचाणउतिं २ जोयणसहस्साइं गोतित्थं पण्णत्तं ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते?, गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स केमहालए उदगमाले पण्णत्ते?, गोयमा! दस जोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते ॥ (सू० १७१)

'लवणस्स णं भंते!' इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य 'किंमहत्' किंप्रमाणमहत्त्वं गोतीर्थं प्रज्ञप्तं?, गोतीर्थमिव गोतीर्थं—क्रमेण नीचो नीचतरः प्रवेशमार्गः, भगवानाह—गौतम! लवणस्य समुद्रस्योभयोः पार्श्वयोर्जम्बूद्वीपवेदिकान्ताल्लवणसमुद्रवेदिकान्ताच्चारभ्येत्यर्थः पञ्चनवतिं योजनसहस्राणि यावद् गोतीर्थं प्रज्ञप्तम्, उक्तञ्च—"पंचाणउइसहस्से गोतित्थं उभयतोवि लवणस्स" इति ॥ 'लवणस्स णं भंते!' इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य 'किंमहत्' किंप्रमाणमहत्त्वं गोतीर्थविरहितं क्षेत्रं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! लवणस्य समुद्रस्य दश योजनसहस्राणि गोतीर्थविरहितं क्षेत्रं प्रज्ञप्तम् ॥ 'लवणस्स णं भंते!' इत्यादि, लवणस्य भदन्त!

समुद्रस्य 'किंमहती' विस्तारमधिकृत्य किंप्रमाणमहत्त्वा उदकमाला—समपानीयोपरिभूता षोडशयोजनसहस्रोच्छ्रया प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! दश योजनसहस्राणि उदकमाला प्रज्ञप्ता ॥

लवणे णं भंते! समुद्दे किंसंठिए पण्णत्ते?, गोयमा! गोतित्थसंठिते नावासंठाणसंठिते सिप्पिसंपुडसंठिए आसखंधसंठिते वलभिसंठिते वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते पण्णत्ते ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं? केवतियं परिक्खेवेणं? केवतियं उव्वेहेणं? केवतियं उस्सेहेणं? केवतियं सव्वग्गेणं पण्णत्ते?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसतसहस्साइं एकासीतिं च सहस्साइं सतं च इगुयालं किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेधेणं सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहेणं सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्तं ॥ (सूत्रं १७२) जइ णं भंते! लवणसमुद्दे दो जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसतसहस्साइं एकासीतिं च सहस्साइं सतं इगुयालं किंचि विसेसूणा परिक्खेवेणं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेधेणं सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते। कम्हा णं भंते! लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं २ नो उवीलेति नो उप्पीलेति नो चेव णं एक्कोदगं करेंति?, गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे भरहेरवएसु वासेसु अरहंतचक्कवट्टिबलदेवा वासुदेवा चारणा विज्जाधरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया एगध-

च्चा पगतिभद्दया पगतिविणीया पगतिउवसंता पगतिपयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा भद्दगा विणीता, तेसि णं पणिहाते लवणे समुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेति नो उप्पीलेति नो चेव णं एगोदगं करेंति, गंगासिंधुरत्तारत्तवईसु सलिलासु देवया महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तेसिणं पणिहाए लवणसमुद्दे जाव नो चेव णं एगोदगं करेति, चुल्लहिमवंतसिहरेसु वासहरपव्वतेसु देवा महिड्डिया तेसि णं पणिहाए०, हेमवतेरण्णवतेसु वासेसु मणुया पगतिभद्दगा०, रोहितंससुवण्णकूलरूप्पकूलासु सलिलासु देवयाओ महिड्डियाओ तासिं पणि०, सद्दावतिवियडावति वट्टवेयड्डपव्वतेसु देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिव०, महाहिमवंतरुप्पिसु वासहरपव्वतेसु देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया, हरिवासरम्मयवासेसु मणुया पगतिभद्दगा गंधावतिमालवंतपरिताएसु वट्टवेयड्डपव्वतेसु देवा महिड्डीया, णिसढनीलवंतेसु वासधरपव्वतेसु देवा महिड्डीया०, सव्वाओ दहदेवयाओ भाणियव्वा, पउमद्दहतिगिच्छिकेसरिदहावसाणेसु देवा महिड्डीयाओ तासिं पणिहाए०, पुव्वविदेहावरविदेहेसु वासेसु अरहंतचक्कवट्टिबलदेववासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावगा सावियाओ मणुया पगति० तेसिं पणिहाए लवण०, सीयासीतोदगासु सलिलासु देवता महिड्डीया०, देवकुरुउत्तरकुरुसु मणुया पगतिभद्दगा०, मंदरे पव्वते देवता महिड्डीया०, जंबूए य सुदंसणाए

३ प्रतिपत्तौ लवणस्य विष्कम्भादिउत्पीलनाभावश्च उद्देशः २ सू० १७१-१७२

जंबूदीवाहिवती अणाढिए णामं देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमठितीए परिवसति तस्स पणिहाए लवणसमुद्दे नो उवीलेति नो उप्पीलेति नो चेव णं एकोदगं करेति, अदुत्तरं च णं गोयमा! लोगट्ठिती लोगाणुभावे जण्णं लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेति नो उप्पीलेति नो चेव णमेगोदगं करेति ॥ (सू० १७३)

'लवणे णं भंते!' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः किंसंस्थितः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! गोतीर्थसंस्थानसंस्थितः क्रमेण नीचैर्नीचैस्तरामुद्वेधस्य भावात्, नावासंस्थितः बुध्नादूर्द्धं नाव इव उभयोरपि पार्श्वयोः समतलं भूभागमपेक्ष्य क्रमेण जलवृद्धिसम्भवेन उन्नताकारत्वात्, 'सिप्पसंपुडसंठिते' इति शुक्तिकासंपुटसंस्थानसंस्थितः, उद्वेधजलस्य जलवृद्धिजलस्य चैकत्रमीलनचिन्तायां शुक्तिकासंपुटाकारसादृश्यसम्भवात्, 'अश्वस्कन्धसंस्थितः' उभयोरपि पार्श्वयोः पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्तेऽश्वस्कन्धस्येवोन्नततया षोडशयोजनसहस्रप्रमाणोच्चैस्त्वयोः शिखाया भावात्, 'वलभीसंस्थितः' वलभीगृहसंस्थानसंस्थितः दशयोजनसहस्रप्रमाणविस्तारायाः शिखाया वलभीगृहाकाररूपतया प्रतिभासनात्, तथा वृत्तो लवणसमुद्रो वलयाकारसंस्थितः, चक्रवालतया तस्यावस्थानात् ॥ सम्प्रति विष्कम्भादिपरिमाणमेककालं पिपृच्छिषुराह—'लवणे णं भंते! समुद्दे' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः कियच्चक्रवालविष्कम्भेन कियत्परिक्षेपेण कियदुद्वेधेन—उण्डत्वेन कियदुत्सेधेन कियत्सर्वाग्रेण—उत्सेधोद्वेधपरिमाणसामस्त्येन प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रो द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेन प्रज्ञप्तः, पञ्चदश योजनशतसहस्राणि एकाशीतिः सहस्राणि शतं चैकोनचत्वारिंशं किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन, षोडश योजनसहस्राण्युत्सेधेन, सप्तदश योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण—उत्सेधो-

द्वेधमीलनचिन्तायां । इह लवणसमुद्रस्य पूर्वाचार्यैर्घनप्रतरगणितभावनाऽपि कृता सा विनेयजनानुग्रहाय दर्श्यते, तत्र प्रतरभावना क्रि-
यते, प्रतरानयनार्थं चेदं करणं—लवणसमुद्रसत्कविस्तारपरिमाणाद् द्विलक्षयोजनरूपाद् दश योजनसहस्राणि शोध्यन्ते, तेषु च शोधि-
तेषु यच्छेषं तस्यार्द्धं क्रियते, जातानि पञ्चनवतिः सहस्राणि, यानि च प्राक् शोधितानि दश सहस्राणि तानि च तत्र प्रक्षिप्यन्ते, जातं
पञ्चोत्तरं लक्षं १०५०००, एतच्च कोटीति व्यवह्रियते, अनया च कोट्या लवणसमुद्रस्य मध्यभागवर्त्ती परिरयो नव लक्षा अष्टचत्वा-
रिंशत्सहस्राणि षट् शतानि त्र्यशीत्यधिकानि ९४८६८३ इत्येवंपरिमाणो गुण्यते, ततः प्रतरपरिमाणं भवति, तच्चेदं—नवनवतिः को-
टिशतानि एकषष्टिः कोटयः सप्तदश लक्षाः पञ्चदश सहस्राणि ९९६११७१५०००, उक्तञ्च—"वित्थाराओ सोहिय दससहस्साइं
सेसअद्धंमि । तं चेव पक्खिवित्ता लवणसमुद्दस्स सा कोडी ॥ १ ॥ लक्खं पंचसहस्सा कोडीए तीएँ संगुणेऊणं । लवणस्स मज्झप-
रिही ताहे पयरं इमं होइ ॥ २ ॥ नवनउई कोडिसया एगट्ठी कोडि लक्ख सत्तरसा । पन्नरस सहस्साणि य पयरं लवणस्स निद्दिट्ठं
॥ ३ ॥" घनगणितभावना त्वेवं—इह लवणसमुद्रस्य शिखा षोडश सहस्राणि योजनसहस्रमुद्वेधः सर्वसङ्ख्यया सप्तदश सहस्राणि, तैः
प्राक्तनं प्रतरपरिमाणं गुण्यते, ततो घनगुणितं भवति, तच्चेदं—षोडश कोटीकोटयस्त्रिनवतिः कोटिशतसहस्राणि एकोनचत्वारिंशत् को-
टिसहस्राणि नव कोटिशतानि पञ्चदशकोट्यधिकानि पञ्चाशल्लक्षाणि योजनानामिति १६९३३९९१५५००००००, उक्तञ्च—"जो-
यणसहस्ससोलस लवणसिहा अहोगया सहस्सेगं । पयरं सत्तरसहस्ससंगुणं लवणघणगणियं ॥ १ ॥ सोलस कोडाकोडी तेणउई कोडि-
सयसहस्सांओ । उणयालीससहस्सा नवकोडिसया य पन्नरसा ॥ २ ॥ पन्नास सयसहस्सा जोयणाणं भवे अणूणाइं । लवणसमुद्द-
स्सेयं जोयणसंखाएँ घणगणियं ॥ ३ ॥" आह—कथमेतावत्प्रमाणं लवणसमुद्रस्य घनगणितं भवति?, न हि सर्वत्र तस्य सप्तदशयो-

जनसहस्रप्रमाण उच्छ्रयः, किन्तु मध्यभाग एव दशसहस्रप्रमाणविस्तारस्ततः कथं यथोक्तं घनगणितमुपपद्यते? इति, सत्यमेतत्, केवलं लवणशिखायाः शिरसि उभयोश्च वेदिकान्तयोरुपरि दवरिकायामेकान्तऋजुरूपायां दीयमानायां २ यदपान्तराले जलशून्यं क्षेत्रं तदपि करणगत्या तदाभाव्यमिति सजलं विवक्ष्यते, अत्रार्थे च दृष्टान्तो मन्दरपर्वतः, तथाहि—मन्दरपर्वतस्य सर्वत्रैकादशभागपरिहाणिरुपवर्ण्यते, अथ च न सर्वत्रैकादशभागपरिहाणिः, किन्तु क्वापि कियती, केवलं मूलादारभ्य शिखरं यावद्दवरिकायां दत्तायां यदपान्तराले क्वापि कियदाकाशं तत्सर्वं करणगत्या मेरोराभाव्यमिति मेरुतया परिकल्प्य गणितज्ञाः सर्वत्रैकादशपरिभागहानिं परिवर्णयन्ति, तद्वदिदमपि यथोक्तं घनपरिमाणमिति, न चैतत्स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत आह **जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणो विशेषणव**त्यामेतद्विचारप्रक्रमे—"एवं उभयवेइयंताओ सोलसहस्सुस्सेहस्स कन्नगईए जं लवणसमुद्दाभव्वं जलसुन्नंपि खेत्तं तस्स गणियं, जहा मंदरपव्वयस्स एक्कारसभागपरिहाणी कन्नगईए आगासस्सवि तदाभव्वंतिकाउं भणिया तहा लवणसमुद्दस्सवि ॥" इति ॥ 'जइ णं भंते!' इत्यादि, यदि भदन्त! लवणसमुद्रो द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेन पञ्चदश योजनशतसहस्राणि एकाशीतिः सहस्राणि शतं चैकोनचत्वारिंशं किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन षोडश योजनसहस्राण्युत्सेधेन सप्तदश योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तः॥ तर्हि **'कम्हा णं भंते!'** इत्यादि, कस्माद् भदन्त! लवणसमुद्रो जम्बूद्वीपं द्वीपं न **'अवपीडयति'** जलेन प्लावयति, न **'उत्पीडयति'** प्राबल्येन बाधते, नापि णमिति वाक्यालङ्कृतौ **'एकोदकं'** सर्वात्मनोदकप्लावितं करोति?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे भरतैरावतयोः क्षेत्रयोरर्हन्तश्चक्रवर्त्तिनो वलदेवा वासुदेवाः **'चारणाः'** जङ्घाचारणमुनयो विद्याधराः **'श्रमणाः'** साधवः **'श्रमण्यः'** संयत्यः श्रावकाः श्राविकाः, एतत् सुषमदुष्षमादिकमरकत्रयमपेक्ष्योक्तं वेदितव्यं, तत्रैवार्हदादीनां यथायोगं सम्भ-

वात्, सुषमसुषमादिकमधिकृत्याह—मनुष्याः प्रकृतिभद्रकाः प्रकृतिप्रतनुक्रोधमानमायालोभाः मृदुमार्दवसंपन्ना आलीना भद्रका विनीताः, एतेषां व्याख्यानं प्राग्वत्, तेषां 'प्रणिधया' प्रणिधानं प्रणिधा, 'उपसर्गादात' इत्यङ्प्रत्ययः, तान् 'प्रणिधाय' अपेक्ष्य तेषां प्रभावत इत्यर्थः, लवणसमुद्रो जम्बूद्वीपं द्वीपं नावपीडयतीत्यादि, दुष्पमदुष्पमादावपि नावपीडयति, भरतवैताढ्याद्यधिपतिदेवताप्रभावात्, तथा क्षुल्लहिमवच्छिखरिणोर्वर्षधरपर्वतयोर्देवता महर्द्धिका यावत्करणान्महाद्युतिका इत्यादिपरिग्रहः परिवसन्ति तेषां 'प्रणिधया' प्रभावेन लवणसमुद्रो जम्बूद्वीपं द्वीपं नावपीडयतीत्यादि । तथा हैमवतहैरण्यवतोर्वर्षयोर्मनुजाः प्रकृतिभद्रका यावद् विनीतास्तेषां प्रणिधयेत्यादि पूर्ववत्, तथा तयोरेव वर्षयोर्यौ यथाक्रमं शब्दापातिविकटापाती वृत्तवैताढ्यौ पर्वतौ तयोर्देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतस्तेषां प्रणिधयेत्यादि पूर्ववत् । तथा महाहिमवद्रुक्मिवर्षधरपर्वतयोर्देवता महर्द्धिका इत्यादि तथैव । तथा हरिवर्षरम्यकवर्षयोर्मनुजाः प्रकृतिभद्रका इत्यादि सर्वं हैमवतवत्, तथा तयोः क्षेत्रयोर्यथाक्रमं गन्धापातिमाल्यवत्पर्यायौ यौ वृत्तवैताढ्यपर्वतौ तयोर्देवौ महर्द्धिकावित्यादि पूर्ववत् । तथा पूर्वविदेहापरविदेहवर्षयोरर्हन्तश्चक्रवर्त्तिनो यावन्मनुजाः प्रकृतिभद्रका यावद् विनीतास्तेषां प्रणिधयेत्यादि पूर्ववत् । तथा देवकुरूत्तरकुरुषु मनुजाः प्रकृतिभद्रका यावद्विनीतास्तेषां प्रणिधयेत्यादि पूर्ववत् । तथा उत्तरकुरुषु कुरुषु जम्ब्वां सुदर्शनायामनादृतो नाम देवो जम्बूद्वीपाधिपतिः परिवसति तस्य 'प्रणिधया' प्रभावेनेत्यादि तथैव । अथान्यद् गौतम! कारणं, तदेवाह—लोकस्थितिरेषा—लोकानुभाव एष यल्लवणसमुद्रो जम्बूद्वीपं द्वीपं जलेन नात्रपीडयतीत्यादि ॥ तृतीयप्रतिपत्ताबेष मन्दरोद्देशकः समाप्तः ॥ तदेवमुक्ता लवणसमुद्रवक्तव्यता, सम्प्रति धातकीषण्डवक्तव्यतामाह—

लवणसमुद्दं धायइसंडे नाम दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खिवित्ता

णं चिट्ठंति, धायतिसंडे णं भंते! दीवे किं समचक्कवालसंठिते विसमचक्कवालसंठिते?, गोयमा! समचक्कवालसंठिते नो विसमचक्कवालसंठिते ॥ धायइसंडे णं भंते! दीवे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! चत्तारि जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं एगयालीसं जोयणसतसहस्साइं दसजोयणसहस्साइं णवएगट्ठे जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते दोण्हवि वण्णओ दीवसमिया परिक्खेवेणं ॥ धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, विजए वेजयंते जयंते अपराजिए ॥ कहि णं भंते! धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! धायइसंडपुरत्थिमपेरंते कालोयसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीयाए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं धायइ० विजए णामं दारे पण्णत्ते तं चेव पमाणं, रायहाणीओ अण्णंमि धायइसंडे दीवे, दीवस्स वत्तव्वया भाणियव्वा, एवं चत्तारिवि दारा भाणियव्वा ॥ धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य २ एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! दस जोयणसयसहस्साइं सत्तावीसं च जोयणसहस्साइं सत्तपणतीसे जोयणसए तिन्नि य कोसे दारस्स य २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स पदेसा कालोयगं समुद्दं पुट्ठा?, हंता पुट्ठा ॥ ते णं भंते! किं धायइसंडे दीवे कालोए स-

मुद्दे?, ते धायइसंडे नो खलु ते कालोयसमुद्दे। एवं कालोयस्सवि। धायइसंडदीवे जीवा उद्दाइत्ता २ कालोए समुद्दे पच्चायंति?, गोयमा! अत्थेगतिया पच्चायंति अत्थेगतिया नो पच्चायंति। एवं कालोएवि अत्थे० प० अत्थेगतिया णो पच्चायंति ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—धायइसंडे दीवे २?, गोयमा! धायइसंडे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं २ पएसे धायइरुक्खा धायइवण्णा धायइसंडा णिच्चं कुसुमिया जाव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति, धायइमहाधायइरुक्खेसु सुदंसणपियदंसणा दुवे देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति से एएणट्ठेणं०, अदुत्तरं च णं गोयमा! जाव णिच्चे ॥ धायइसंडे णं भंते! दीवे कति चंदा पभासिंसु वा ३? कति सूरिया तविंसु वा ३? कइ महग्गहा चारं चरिंसु वा ३? कइ णक्खत्ता जोगं जोइंसु ३? कइ तारागणकोडाकोडीओ सोभेंसु वा ३?, गोयमा! बारस चंदा पभासिंसु वा ३, एवं—चउवीसं ससिरविणो णक्खत्त सता य तिन्नि छत्तीसा। एगं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायईसंडे ॥ १ ॥ अट्ठेव सयसहस्सा तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं। धायइसंडे दीवे तारागण कोडिकोडीणं ॥ २ ॥ सोभेंसु वा ३ ॥ (सू० १७४)

'लवणसमुद्द'मित्यादि, लवणसमुद्रं धातकीषण्डो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्य तिष्ठति ॥ 'धायइसंडे णं दीवे किं समचक्कवालसंठिए' इति सूत्रं लवणसमुद्रवद्भावनीयम् ॥ 'धायइसंडे

ण' मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! चत्वारि योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेन, एकचत्वारिंशत् योजनशतसहस्राणि दश सहस्राणि नव च एकषष्टानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषोनानि परिक्षेपेण, उक्तञ्च—"एयालीसं लक्खा दस य सहस्साणि जोयणाणं तु । नव य सया एगट्ठा किंचूणा परिरओ तस्स ॥ ३ ॥" 'से ण'मित्यादि, स धातकीखण्डो द्वीप एकया पद्मवरवेदिकया अष्टयोजनोच्छ्रयजगत्युपरिभाविन्येति सामर्थ्याद्गम्यते, एकेन वनषण्डेन पद्मवरवेदिकाबहिर्भूतेन सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः । द्वयोरपि वर्णकः प्राग्वत् ॥ **'धायइसंडस्स ण'**मित्यादि, धातकीषण्डस्य भदन्त! द्वीपस्य कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं च ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि, क्व भदन्त! धातकीषण्डस्य द्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह–गौतम! धातकीषण्डस्य द्वीपस्य पूर्वपर्यन्ते कालोदसमुद्रपूर्वार्द्धस्य पश्चिमदिशि शीताया महानद्या उपरि 'अत्र' एतस्मिन्नन्तरे धातकीपण्डस्य द्वीपस्य विजयनाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तच्च जम्बूद्वीपविजयद्वारवदविशेषेण वेदितव्यं, नवरमत्र राजधानी अन्यस्मिन् धातकीषण्डे द्वीपे वक्तव्या । **'कहि णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! धातकीषण्डद्वीपदक्षिणपर्यन्ते कालोदसमुद्रदक्षिणार्द्धस्योत्तरतोऽत्र धातकीषण्डस्य द्वीपस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तदपि जम्बूद्वीपवैजयन्तद्वारवदविशेषेण वक्तव्यं, नवरमत्रापि राजधानी अन्यस्मिन् धातकीषण्डद्वीपे ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं गतार्थं, भगवानाह—गौतम! धातकीपण्डद्वीपपश्चिमपर्यन्ते कालोदसमुद्रपश्चिमार्द्धस्य पूर्वतः शीतोदाया महानद्या उपर्यत्र धातकीपण्डस्य द्वीपस्य जयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तदपि जम्बूद्वीपजयन्तद्वारवद्वक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् धातकीषण्डे द्वीपे ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! धातकीषण्डद्वीपोत्तरार्द्धपर्यन्ते कालोदसमुद्रदक्षिणार्द्धस्य दक्षिणतोऽत्र धातकीपण्डस्य द्वीपस्यापरा-

जितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तदपि जम्बूद्वीपगतापराजितद्वारवद्वक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् धातकीषण्डे द्वीपे ॥ **'धायइसंडस्स णं भंते!'** इत्यादि, धातकीषण्डस्य भदन्त! द्वीपस्य द्वारस्य २ च परस्परमेतदन्तरं **'कियत्'** किंप्रमाणम् **'अवाधया'** अन्तरित्वा व्याघातेन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! दश योजनशतसहस्राणि सप्तविंशतिर्योजनसहस्राणि सप्त शतानि पञ्चत्रिंशानि द्वारस्य २ परस्परमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, तथाहि—एकैकस्य द्वारस्य सद्वारशाखस्य जम्बूद्वीपद्वारस्येव पृथुत्वं सार्द्धानि चत्वारि योजनानि, ततश्चतुर्णां द्वाराणामेकत्र पृथुत्वपरिमाणमीलने जातान्यष्टादश योजनानि, तान्यनन्तरोक्तात्परिरयमानात् ४११०९६१ शोध्यन्ते, शोधितेषु च तेषु जातं शेषमिदम्—एकचत्वारिंशल्लक्षा दश सहस्राणि नव शतानि त्रिचत्वारिंशदधिकानि ४११०९४३, एतेषां चतुर्भिर्भागे हृते लब्धं यथोक्तं द्वाराणां परस्परमन्तरम्, उक्तञ्च—"पणतीसा सत्त सया सत्तावीसा सहस्स दस लक्खा। धायइसंडे दारंतरं तु अवरं च कोसतियं ॥ १ ॥" **'धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स पएसा'** इत्यादीनि चत्वारि सूत्राणि प्राग्वद्भावनीयानि ॥ **'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—धातकीषण्डो द्वीपो धातकीखण्डो द्वीपः? इति, भगवानाह—धातकीषण्डे द्वीपे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो धातकीवृक्षा बहवो धातकीवनषण्डा बहूनि धातकीवनानि, वनषण्डयोः प्रतिविशेषः प्रागेवोक्तः, 'निच्चंकुसुमिया' इत्यादि प्राग्वत्, **'धायइमहाधायइरुक्खेसु एत्थ'**मित्यादि पूर्वार्द्धे उत्तरकुरुषु नीलवद्गिरिसमीपे धातकीनामवृक्षोऽवतिष्ठते, पश्चिमार्द्धे उत्तरकुरुषु नीलवद्गिरिसमीपे महाधातकीनामवृक्षोऽवतिष्ठते, तौ च प्रमाणादिना जम्बूवृक्षवद्वेदितव्यौ, तयोरत्र धातकीषण्डे द्वीपे यथाक्रमं सुदर्शनप्रियदर्शनौ द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, ततो धातकीषण्डोपलक्षितो द्वीपो धातकीषण्डद्वीपः, तथा चाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि गतार्थं ॥ सम्प्रति चन्द्रादिवक्तव्यतामाह—**'धायइसंडे णं भंते! दीवे कति चंदा पभासिंसु'** इत्यादि

प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! धातकीषण्डे द्वादश चन्द्राः प्रभासितवन्तः प्रभासन्ते प्रभासिष्यन्ते, द्वादश सूर्यास्तापितवन्तस्तापयन्ति तापयिष्यन्ति, त्रीणि नक्षत्रशतानि षट्त्रिंशानि योगं चन्द्रमसा सूर्येण च सार्द्धं युक्तवन्तो युञ्जन्ति योक्ष्यन्ति, तत्र त्रीणि षट्त्रिंशानि नक्षत्राणां शतानि, एकैकस्य शशिनः परिवारेऽष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां भावात्, तथा एकं षट्पञ्चाशदधिकं महाग्रहसहस्रं चारं चरितवन्तश्चरन्ति चरिष्यन्ति, एकैकस्य शशिनः परिवारेऽष्टाशीतेर्महाग्रहाणां भावात्, अष्टौ शतसहस्राणि त्रीणि सहस्राणि सप्त शतानि तारागणकोटीकोटीनां शोभितवन्तः शोभन्ते शोभयिष्यन्ते, एतदपि एकशशिनः तारापरिमाणं द्वादशभिर्गुणयित्वा भावनीयं, उक्तं च—"बारस चंदा सूरा नक्खत्तसया य तिन्नि छत्तीसा। एगं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायईसंडे ॥ १ ॥ अट्ठेव सयसहस्सा तिन्नि सहस्सा य सत्त य सया उ। धायइसंडे दीवे तारागणकोडिकोडीओ ॥ २ ॥" सम्प्रति कालोदसमुद्रवक्तव्यतामाह—

धायइसंडं णं दीवं कालोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ, कालोदे णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठाणसंठिते विसम०?, गोयमा! समचक्कवाल० णो विसमचक्कवालसंठिते॥ कालोदे णं भंते! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं एकाणउतिं जोयणसयसहस्साइं सत्तरि सहस्साइं छच्च पंचुत्तरे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते॥ से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेणं वणसंडेणं दोण्हवि वण्णओ॥ कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—विजए वेजयंते जयंते अपराजिए॥

कहि णं भंते! कालोदस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! कालोदे समुद्दे पुरत्थिम-
पेरंते पुक्खरवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीतोदाए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं कालोदस्स
समुद्दस्स विजये णामं दारे पण्णत्ते, अट्ठेव जोयणाइं तं चेव पमाणं जाव रायहाणीओ। कहि
णं भंते! कालोयस्स समुद्दस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! कालोयसमुद्दस्स दक्खिणपे-
रंते पुक्खरवरदीवस्स दक्खिणद्धस्स उत्तरेणं एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स वेजयंते नामं दारे पन्नत्ते।
कहि णं भंते! कालोयसमुद्दस्स जयंते नामं दारे पन्नत्ते?, गोयमा! कालोयसमुद्दस्स पच्चत्थिमपेरंते
पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमद्धस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणदीए उप्पिं जयंते नामं दारे पण्णत्ते।
कहि णं भंते! अपराजिए नामं दारे पण्णत्ते? गोयमा! कालोयसमुद्दस्स उत्तरद्धपेरंते पुक्खरवरदीवो-
त्तरद्धस्स दाहिणओ एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स अपराजिए णामं दारे०, सेसं तं चेव॥ कालोयस्स णं
भंते! समुद्दस्स दारस्स य २ एस णं केवतियं २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा!—बावीस
सयसहस्सा बाणउति खलु भवे सहस्साइं। छच्च सया बायाला दारंतर तिन्नि कोसा य॥ १॥
दारस्स य २ आबाहाए अंतरे पण्णत्ते। कालोदस्स णं भंते! समुद्दस्स पएसा पुक्खरवरदीव०
तहेव, एवं पुक्खरवरदीवस्सवि जीवा उद्दाइत्ता २ तहेव भाणियव्वं॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति
कालोए समुद्दे २?, गोयमा! कालोयस्स णं समुद्दस्स उदके आसले मासले पेसले कालए मासरा-

सिवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते, कालमहाकाला एत्थ दुवे देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव णिच्चे ॥ कालोए णं भंते! समुद्दे कति चंदा पभासिंसु वा ३? पुच्छा, गोयमा! कालोए णं समुद्दे बायालीसं चंदा पभासेंसु वा ३— बायालीसं चंदा बायालीसं च दिणयरा दित्ता। कालोदधिम्मि एते चरंति संबद्धलेसागा ॥ १ ॥ णक्खत्ताण सहस्सं एगं बावत्तरं च सतमण्णं। छच्च सता छण्णउया महागहा तिण्णि य सहस्सा ॥ २ ॥ अट्ठावीसं कालोदहिम्मि बारस य सयसहस्साइं। नव य सया पन्नासा तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३ ॥ सोभेंसु वा ३ ॥ (सू० १७५)

'धायइसंडे णं दीव'मित्यादि, धातकीषण्डं णमिति पूर्ववत् द्वीपं कालोदसमुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थितः सर्वतः समन्तात् 'संपरिक्षिप्य' वेष्टयित्वा तिष्ठति ॥ 'कालोए णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठिए' इत्यादि प्राग्वत् ॥ **'कालोए णं भंते'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! अष्टौ योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेन एकनवतिः योजनशतसहस्राणि सप्ततिः सहस्राणि षट् शतानि पञ्चोत्तराणि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, एकं च योजनसहस्रमुद्वेधेनेति गम्यते, उक्तञ्च—"अट्ठेव सयसहस्सा कालोओ चक्कवालओ रुंदो। जोयणसहस्समेगं ओगाहेणं मुणेयव्वो ॥ १ ॥ इगनउइ सयसहस्सा हवंति तह सत्तरी सहस्सा य। छच्च सया पंचहिया कालोयहिपरिरओ एसो ॥ २ ॥" **'से णं एगाए'** इत्यादि, स कालोदसमुद्र एकया पद्मवरवेदिकयाऽष्टयोजनोच्छ्रयया जगत्युपरिभाविन्येति गम्यते, एकेन वनषण्डेन सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः, द्वयोरपि वर्णकः प्रा-

ग्वत् ॥ 'कालोयस्स णं भंते!' इत्यादि, कालोदस्य समुद्रस्य भदन्त! कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं च ॥ क भदन्त! कालोदसमुद्रस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, गौतम! कालोदसमुद्रस्य पूर्वपर्यन्ते पुष्करवरद्वीपस्य पूर्वार्द्धस्य पश्चिमदिशि शीतोदाया महानद्या उपर्यत्र कालोदस्य समुद्रस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, एवं विजयद्वारवक्तव्यता पूर्वानुसारेण वक्तव्या, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् कालोदे समुद्रे । वैजयन्तद्वारप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह्—गौतम! कालोदसमुद्रदक्षिणपर्यन्ते पुष्करवरद्वीपदक्षिणार्द्धस्योत्तरतोऽत्र कालोदसमुद्रस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, एवं जम्बूद्वीपगतवैजयन्तद्वारवद्वक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् कालोदे समुद्रे । जयन्तद्वारप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह्—गौतम! कालोदसमुद्रपश्चिमपर्यन्ते पुष्करवरद्वीपपश्चिमार्द्धस्य पूर्वतः शीताया महानद्या उपर्यत्र कालोदसमुद्रस्य जयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, एतदपि जम्बूद्वीपगतजयन्तद्वारवत्, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् कालोदे समुद्रे । अपराजितद्वारप्रश्नसूत्रमपि सुगमं, भगवानाह्—गौतम! कालोदसमुद्रोत्तरार्द्धपर्यन्ते पुष्करवरद्वीपोत्तरार्द्धस्य दक्षिणतोऽत्र कालोदसमुद्रस्यापराजितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तदपि जम्बूद्वीपगतापराजितद्वारवत् नवरं राजधानी अन्यस्मिन् कालोदसमुद्रे ॥ सम्प्रति द्वाराणा परस्परमन्तरं प्रतिपिपादयिषुराह—'**कालोयस्स णं भंते!**' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! द्वाविंशतिर्योजनशतसहस्राणि द्विनवतिः सहस्राणि षड् योजनशतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि त्रयश्च क्रोशा द्वारस्य द्वारस्य परस्परमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, तथाहि—चतुर्णामपि द्वाराणामेकत्र पृथुत्वमीलनेऽष्टादश योजनानि कालोदसमुद्रपरिरयपरिमाणाद् ९१७०६०५ इत्येवंरूपात् शोध्यन्ते, शोधितेषु च तेषु जातमिदम्—एकनवतिर्लक्षाः सप्ततिः सहस्राणि पञ्च शतानि सप्ताशीत्यधिकानि ९१७०५८७ च, तेषां चतुर्भिर्भागे हृते लब्धं यथोक्तं द्वाराणां परस्परमन्तरपरिमाणं २२९२६४६ क्रोशः

३, उक्तञ्च—"छायाला छच्च सया बाणउय सहस्स लक्ख बावीसं । कोसा य तिन्नि दारंतरं तु कालोयहिस्स भवे ॥ १ ॥" '**कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स पएसा**' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं पूर्ववद्भावनीयम् ॥ नामान्वर्थमभिधित्सुराह—'**से केणट्ठेण**'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते कालोदः समुद्रः कालोदः समुद्रः? इति, भगवानाह—गौतम! कालोदस्य समुद्रस्योदकं '**आसलम्**' आस्वाद्यम् उदकरसत्वात् मांसलं गुरुधर्मकत्वात् पेशलं आस्वादमनोज्ञत्वात् 'कालं' कृष्णम्, एतदेवोपमया प्रतिपादयति—माषराशिवर्णाभं, उक्तञ्च—"पगईए उदगरसं कालोए उदग मासरासिनिभं" इति, ततः कालमुदकं यस्यासौ कालोदः, तथा कालमहाकालौ च तत्र द्वौ देवौ पूर्वार्द्धपश्चिमार्द्धाधिपती महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तत्र कालयोरुदकं यस्मिन् स कालोदः, तथा चाह—'**से एएणट्ठेण**'मित्यादि सूत्रं पाठसिद्धं । एवंरूपं च चन्द्रादीनां परिमाणमन्यत्राप्युक्तम्—"बायालीसं चंदा बायालीसं च दिणयरा दित्ता । कालोयहिम्मि एए चरंति संबद्धलेसागा ॥ १ ॥ नक्खत्ताण सहस्सा सयं च बावत्तरं मुणेयव्वं । छच्च सया छन्नउया गहाण तिन्नेव य सहस्सा ॥ २ ॥ अट्ठावीसं कालोयहिम्मि बारस य सयसहस्साइं । नव य सया पन्नासा तारागणकोडीकोडीणं ॥[1] ३ ॥" सम्प्रति पुष्करवरद्वीपवक्तव्यतामाह—

कालोयं णं समुद्दं पुक्खरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरि० तहेव जाव समचक्कवालसंठाणसंठिते नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए । पुक्खरवरे णं भंते! दीवे

---

१ अत्र यद्यपि सूत्रादर्शेषु गाथात्रिकं दृश्यते इदमेव, परं वृत्तिकारावाप्तादर्शेषु न संभाव्यते सूत्ररूपतया सत्ताऽस्य परिमाणस्येत्युदितं 'अन्यत्राप्युक्त'मिति, अतोऽस्माभिरुक्तमेतत्

केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! सोलस जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं—'एगा जोयणकोडी बाणउतिं खलु भवे सयसहस्सा। अउणाणउतिं अट्ठ सया चउणउया य [परिरओ] पुक्खरवरस्स ॥ १ ॥ से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेण य वणसंडेण संपरि० दोण्हवि वण्णओ ॥ पुक्खरवरस्स णं भंते! कति दारा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—विजए वेजयंते जयंते अपराजिते ॥ कहि णं भंते! पुक्खरवरस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! पुक्खरवरदीवपुरच्छिमपेरंते पुक्खरोदसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं पुक्खरवरदीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते तं चेव सव्वं, एवं चत्तारिवि दारा, सीयासीओदा णत्थि भाणितव्वाओ ॥ पुक्खरवरस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य २ एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा!—'अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं। अगुणुत्तरा य चउरो दारंतर पुक्खरवरस्स ॥ १ ॥ पदेसा दोण्हवि पुट्ठा, जीवा दोसु भाणियव्वा ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति पुक्खरवरदीवे २?, गो०! पुक्खरवरे णं दीवे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे पउमरुक्खा पउमवणसंडा णिच्चं कुसुमिता जाव चिट्ठंति, पउममहापउमरुक्खे एत्थ णं पउमपुंडरीया णामं दुवे देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति पुक्खरवरदीवे २ जाव निच्चे ॥ पुक्खरवरे णं

भंते! दीवे केवइया चंदा पभासिंसु वा ३?, एवं पुच्छा,—चोयालं चंदसयं चउयालं चेव सूरियाण सयं। पुक्खरवरदीवंमि चरंति एते पभासेंता ॥ १ ॥ चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं चेव होंति णक्खत्ता। छच्च सया बावत्तर महग्गहा बारह सहस्सा ॥ २ ॥ छण्णउइ सयसहस्सा चत्तालीसं भवे सहस्साइं। चत्तारि सया पुक्खर [वर] तारागणकोडकोडीणं ॥ ३ ॥ सोभेंसु वा ३ ॥ पुक्खरवरदीवस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं माणुसुत्तरे नामं पव्वते पण्णत्ते वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते जे णं पुक्खरवरं दीवं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठंति, तंजहा—अब्भिंतरपुक्खरद्धं च बाहिरपुक्खरद्धं च ॥ अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते! केवतियं चक्कवालेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं—कोडी बायालीसा तीसं दोण्णि य सया अगुणवण्णा। पुक्खरअद्धपरिरओ एवं च मणुस्सखेत्तस्स ॥ १ ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति अब्भिंतरपुक्खरद्धे य २?, गोयमा! अब्भिंतरपुक्खरद्धेणं माणुसुत्तरेणं पव्वतेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते, से एएणट्ठेणं गोयमा! अब्भिंतरपुक्खरद्धे य २, अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे ॥ अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते! केवतिया चंदा पभासिंसु वा ३ साचेव पुच्छा जाव तारागणकोडकोडीओ?, गोयमा!—बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणकरा दित्ता। पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एते पभासेंता ॥ १ ॥ तिन्नि सया छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु। णक्खत्ताणं तु भवे सोलाइ दुवे सह-

स्साइं ॥ २ ॥ अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं । दोन्नि सया पुक्खरद्धे तारागण-कोडिकोडीणं ॥ ३ ॥ सोभेंसु वा ३ ॥ (सू० १७६)

'**कालोयं णं समुद्द**'मित्यादि, कालोदं णमिति वाक्यालङ्कारे समुद्रं पुष्करवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति । 'पुक्खरवरे णं दीवे किं समचक्कवालसंठिए' इत्यादि प्राग्वत् ॥ विष्कम्भादिप्रतिपादनार्थमाह—'**पुक्खरवरे णं भंते! दीवे**' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! षोडश योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेन एका योजनकोटी द्विनवतिः शतसहस्राणि एकोननवतिः सहस्राणि अष्टौ शतानि चतुर्नवतानि ९४ योजनानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः ॥ '**से ण**'मित्यादि, स पुष्करवरद्वीप एकया पद्मवरवेदिकयाऽष्टयोजनोच्छ्रयया जगत्युपरिभाविन्येति गम्यते, एकेन वनषण्डेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तः, द्वयोरपि वर्णकः पूर्ववत् ॥ अधुना द्वारवक्तव्यतामाह—'**पुक्खरवरस्स ण**'मित्यादि, पुष्करवरद्वीपस्य कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं च ॥ '**कहि णं भंते!**' इत्यादि, क भदन्त! पुष्करवरद्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! पुष्करवरद्वीपपूर्वार्द्धपर्यन्ते पुष्करोदस्य समुद्रस्य पश्चिमदिशि अत्र पुष्करवरद्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तत्र जम्बूद्वीपविजयद्वारवदविशेषेण वक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् पुष्करवरद्वीपे वक्तव्या । एवं वैजयन्तादिसूत्राण्यपि भावनीयानि, सर्वत्र राजधानी अन्यस्मिन् पुष्करवरद्वीपे ॥ सम्प्रति द्वाराणां परस्परमन्तरमाह—'**पुक्खरवरदीवस्स ण**'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! अष्टचत्वारिंशद् योजनशतसहस्राणि द्वाविंशतिर्योजनसहस्राणि चत्वारि योजनशतानि एकोनसप्ततानि द्वारस्य द्वारस्य च परस्परमबाधयाऽन्तरपरिमाणं, चतुर्णामपि द्वाराणामेकत्र

पृथुत्वमीलनेऽष्टादश योजनानि, तानि पुष्करवरद्वीपपरिमाणाद् १९२८९८९४ इत्येवंरूपात् शोध्यन्ते, शोधितेषु च तेषु जातमिदम्—एका योजनकोटी द्विनवतिः शतसहस्राणि एकोननवतिः सहस्राणि अष्टौ शतानि षट्सप्तत्यधिकानि १९२८९८७६, तेषां चतुर्भिर्भागे हृते लब्धं यथोक्तं द्वाराणां परस्परमन्तरपरिमाणं ४८२२४६९ ॥ 'पुक्खरवरदीवस्स णं भंते! दीवस्स पएसा पुक्खरवरसमुद्दं पुट्ठा ?' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नामनिमित्तप्रतिपादनार्थमाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते पुष्करवरद्वीपः २? इति, भगवानाह—गौतम! पुष्करवरद्वीपे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र २ प्रदेशे बहवः पद्मवृक्षाः, पद्मानि अतिविशालतया वृक्षा इव पद्मवृक्षाः, पद्मखण्डाः—पद्मवनानि, खण्डवनयोर्विशेषः प्राग्वत्, 'निच्चं कुसुमिया' इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् । तथा पूर्वार्द्धे उत्तरकुरुषु यः पद्मवृक्षः पश्चिमार्द्धे उत्तरकुरुषु यो महापद्मवृक्षस्तयोरत्र पुष्करवरद्वीपे यथाक्रमं पद्मपुण्डरीकौ द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ यथाक्रमं पूर्वार्द्धापरार्द्धाधिपती परिवसतः, तथा चोक्तम्—"पउमे य महापउमे रुक्खा उत्तरकुरूसु जंबुसमा । एएसु वसंति सुरा पउमे तह पुंडरीए य ॥ १ ॥" पद्मं च पुष्करमिति पुष्करवरोपलक्षितो द्वीपः पुष्करवरो द्वीपः 'से एएणट्ठेण'मित्याद्युपसंहारवाक्यम् ॥ सम्प्रति चन्द्रादित्यादिपरिमाणमाह—'पुक्खरवरे'त्यादि पाठसिद्धं, नवरं नक्षत्रादिपरिमाणमष्टाविंशत्यादिसङ्ख्यानि नक्षत्रादीनि चतुश्चत्वारिंशेन शतेन गुणयित्वा स्वयं परिभावनीयं, उक्तं चैवंरूपं परिमाणमन्यत्रापि—"चोयालं चंदसयं चोयालं चेव सूरियाण सयं । पुक्खरवरंमि दीवे चरंति एए पगासिंता ॥ १ ॥ चत्तारि सहस्साइं

---

१ पद्मश्च महापद्मो वृक्षौ उत्तरकुरुषु जम्बूसमौ । एतयोर्वसतः सुरौ पद्मस्तथा पुण्डरीकश्च ॥ १ ॥ २ चतुश्चत्वारिंशं चन्द्रशतं चतुश्चत्वारिंशं चैव सूर्याणां शतं । पुष्करवरे द्वीपे चरन्ति एते प्रकाशयन्त ॥ १ ॥ चत्वारि सहस्राणि.

बत्तीसं चेव होंति नक्खत्ता । छच्च सया बावत्तर महागहा बारससहस्सा ॥ २ ॥ छन्नउइ सयसहस्सा चोयालीसं भवे सहस्साइं । चत्तारिं च सयाइं तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३ ॥" इति ॥ सम्प्रति मनुष्यक्षेत्रसीमाकारिमोनुपोत्तरपर्वतवक्तव्यतामाह—**'पुक्खरवरदीवस्स ण'**मित्यादि, पुष्करवरस्य णमिति वाक्यालङ्कृतौ द्वीपस्य बहुमध्यदेशभागे मानुपोत्तरो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः, स च वृत्तः, वृत्तं च मध्यपूर्णमपि भवति यथा कौमुदीशशाङ्कमण्डलं ततस्तद्रूपताव्यवच्छेदार्थमाह—वलयाकारसंस्थानसंस्थितो, यः पुष्करवरं द्वीपं द्विधा सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च विभजमानो विभजमानस्तिष्ठति, केनोल्लेखेन द्विधा विभजमानस्तिष्ठति ? इत्यत आह—तद्यथा—अभ्यन्तरपुष्करार्द्धं च बाह्यपुष्करार्द्धं च, चशब्दौ समुच्चये, किमुक्तं भवति ?—मानुपोत्तरात्पर्वतादर्वाग् यत्पुष्करार्द्धं तदभ्यन्तरपुष्करार्द्धं, यत्पुनस्तस्मान्मानुषोत्तरपर्वतात्परतः पुष्करार्द्धं तद् बाह्यपुष्करार्द्धमिति ॥ **'अब्भिंतरपुक्खरद्धे ण'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम ! अष्टौ योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेन एका योजनकोटी द्वाचत्वारिंशच्छतसहस्राणि त्रिंशत्सहस्राणि द्वे च योजनशते एकोनपञ्चाशे किञ्चिद्विशेषाधिके परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः ॥ **'से केणट्ठेण'**मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते—अभ्यन्तरपुष्करार्द्धमभ्यन्तरपुष्करार्द्धम् ? इति, भगवानाह—गौतम ! अभ्यन्तरपुष्करार्द्धं मानुपोत्तरोत्तरेण पर्वतेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तं, ततो मानुषोत्तरपर्वताभ्यन्तरे वर्त्तमानत्वादभ्यन्तरपुष्करार्द्धं, तथा चाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि गतार्थं ॥ **'अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते ! कइ चंदा पभासिंसु ?'** इत्यादि चन्द्रादिपरिमाणसूत्रं पाठसिद्धं, नवरं नक्षत्रादिपरिमाणमष्टाविंशत्यादीनि नक्षत्राणि द्वासप्तत्या गुण-

१ द्वात्रिंशच्चैव भवन्ति नक्षत्राणि । महाग्रहा द्वादश सहस्राणि षट् शतानि द्विसप्ततानि ॥ २ ॥ षण्णवति शतसहस्राणि चतुश्चत्वारिंशत् सहस्राणि । चत्वारि च शतानि तारागणा' कोटीकोटीना भवेयुः ॥ ३ ॥

के मध्य मानपना धर्म बिना कहां से होय,और धर्म बिना अति मनोग्य रमणी का लाभ कहां से होय, और धर्म बिना यहां अपने वांछित अर्थ का लाभ कैसे होय,और यहां धर्म बिना अपने मन की शुद्धता कहां से होय, और धर्म बिना उत्तम धर्म जो निजात्म शुद्ध धर्म उसका लाभ कहां से होय,और धर्मबिना यहां यथाख्यात, संयम का लाभ कहां से होय,और धर्म बिना इंद्र अहमिंद्र, तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव, प्रतिवासुदेव, काम देव आदि उत्तम पदों का लाभ कैसे होय, और धर्म बिना यहां सत्पुरुषों के वाह्य अभ्यंतर वैरियों का विजय कहां से होय,इस भांत जानकर भो बुध जन हो,तुम आत्म हित के अर्थ सर्वज्ञ भाषित अनुपम धर्म का सदाकाल बडे यत्न से मन वचन कायकी शुद्धता कर निरंतर सेवन करो,कैसा है धर्म ? समस्त संसार के दुःखों का घातक है और समस्त मनोवांछित अर्थ का प्रकट करन हारा है,और परमार्थ भूत आत्मिक सुख का अद्वितीय एक कारण है ऐसा जान कर मैं भी धर्म के तांई बारम्बार नमस्कार करूं हूं। और धर्म ही विषे निरंतर लगा हूं । धर्म के उपार्जनके वास्ते ही मैंने (सकलकीर्ति नामा आचार्यने) इस सारभूत चरित्र के रचनेका मिसकर अत्यंत धीर बीर श्रीसुकुमाल मुनि की यह स्तुतिकरी है कैसे हैं सुकुमाल महामुनि? तीन भवनोंकरके वंदनीय हैं। सो वह श्री सुकुमालमुनी मेरे कर्मरूप वैरीकेविजय विषयिकसमस्त उपद्रवोंका घात करो। अपना अद्भुत वीर्य मुझे भी दो, और समस्त अशुभ कर्मों का बिनाश कर ऐसा समाधि मरण और अपने समस्त उत्तम क्षमा

दिक गुणों के समुदाय मुझे दो, यही मेरी उनसे प्रार्थना है, और अल्प श्रुत का धारक ऐसा जो मैं सकल कीर्ति नामा मुनि मुझ कर किया जो यह सुकुमाल चरित्र इस में समस्त अज्ञान संबंधी दोषों के घातक ऐसे बहुज्ञानी मुनिराज शुद्ध करो और इस सुकुमाल चरित्र की रचना विषे जो मैं प्रमादके बस कर अक्षर, स्वर, संधि तथा मात्रा और पदों के जोड़ने विषेजो मैं कुछ चूककरी हो सो समस्त मेरा अपराध हे महा भगवती परमेश्वरी जिन वाणी तुम क्षमा करो, और इस सुकुमाल चरित्र को जो मुनिराज मोक्ष की सिद्धी के अर्थ पढे हैं, सो मुनिराज समस्त श्रुति समुद्र का पार को पायकर परम पद का आश्रय करे हैं और जो निपुण ज्ञानी जन इस सुकुमाल चरित्र को परम सुख के लाभ के अर्थ सुने हैं सो पुरुष तुरत ही रागदोष का नाश कर परमबीत रागधर्म का सेवन करे हैं। कैसा है यह चरित्र बृष कहिये मुनिधर्म और श्रावक धर्म इन दोनों का बीज कहिये मूल कारण है। और कैसा है यह चरित्र समस्त राग भाव का बिनाशक है। और निर्मल समस्त सुखों की खान हैं। और अब मैं पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करूं हूं। कैसे वह पंच परमेष्ठी भगवान् बृषभ देव आदि वर्धमान जिन राज पर्यंत चौबीस तीर्थंकर कर अनंत गुणों के निवास समस्त लोक के परमेश्वर महेश्वर ऐसे अर्हंत परमेष्ठी और समस्त कर्मों कर रहित परमपद को प्राप्त भये परमपूज्य ऐसे अनंत सिद्ध परमेष्ठी और शिव के अभिलाषी समस्त मुनिराजों के हितकारी ऐसे आचार्य परमेष्ठी और द्वादशांग श्रुति समुद्र के पारगामी पच्चीस

गुणों कर विराजमान ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी और आठबीस मूल गुण के धारक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता रूप मुक्ति मार्ग के साधक ऐसे सकल साधु परमेष्ठी ऐसे यह पंच परमेष्ठी परमोत्कृष्ट तपके फलको प्राप्त भये। सो पंच परम गुरु इस सुकुमाल चरित्र की परिपूर्णता विषे मुझ सकल कीर्ति मुनिराज का और तुम समस्त भव्य जीवों को पंचकल्याणक रूप परम मंगल प्रकर्षपने कर देवें ऐसे यह प्रार्थना रूप तथा आशीर्वाद रूप परम मंगल शास्त्र की समाप्ति विषे आचार्य ने किया है। और निर्मल गुण रत्नों का निधान, तीन लोक विषे अद्वितीय दीपक समान समस्त दोषों कर रहित कल्याण सुख की और कर्मक्षय की मूल कारण चार ज्ञान के धारक मुनिराज कर पूजनीक ऐसी यह जिनवाणी सम्यग्ज्ञान रूप परम, पवित्र तीर्थ भूतल विषे अद्वितीय अतिशय पने कर जयवंतो प्रवर्तो, अंत विषे ग्रंथ रचिता ने यह जिन बाणी को महिमा वर्णन कर अंत विषे यह मंगल किया है ॥

इत्यचार्थ श्रीसकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थ, उस की देश भाषामें वचनिका विषे सुकुमालकी माता यशोभद्रा के दीक्षा का ग्रहण और यशोभद्र, सुरेंद्रदत्त, वृषभांक कनकध्वज इन का मोक्ष गमन और अहमिंद्रदेव की विभूति का है वर्णन जिस में ऐसा नवम सर्ग समाप्त भया।

॥ इति सुकुमाल चरित्रं संपूर्णम् ॥